शिक्षा शतकम्	मुनि छत्रमल जी
जयाचार्य शतकम्	,,
कालू शतकम्	,,
तुलसी शतकम्	,,
तेरापंथ शतकम्	,,
तुलसी शतकम्	मुनि दुलीचन्दजी 'दिनकर'
भिक्षु शतकम्	मुनि मगराज जी
आषाढभूति शतकम्	मुनि मिट्ठालाल जी
अणुव्रत शतकम्	मुनि चम्पा लाल जी
धर्म शतकम्	,,
समस्या शतकम्	मुनि मधुकर जी
नैषं द्विशतकम्	मुनि राकेशकुमार जी
हरिश्चन्द्र-कालिक त्रिशतकम्	साध्वी फूलकुमारी जी
श्लोक शतकम्	साध्वी मोहनकुमारी जी
पृथ्वी शतकम्	साध्वी कनकश्री जी

संस्कृत काव्य की एक और विधा है—चित्रमय काव्य। यह विधा बहुत ही जटिल और क्लिष्ट है। इसमें रचना करना अगाध पाडित्य का सूचक है। इसके लिये गहरे अध्यवसाय की आवश्यकता होती है। विक्रम की बारहवी-तेरहवी शताब्दी के लगभग वाग्भट्ट ने अपनी कृति 'वाग्भट्टालंकार' में चित्रमय श्लोको का दिग्दर्शन कराया है। चित्रमय काव्य की रचना जटिल और क्लिष्ट होने के कारण अधिक प्रसारित नहीं हो सकी। सोलहवी शताब्दी के पश्चात् तो वह प्राय: लुप्त हो गई। किन्तु इस लुप्तप्राय काव्य रचना की विधि को तेरापंथ धर्मसंघ में पुनर्जीवन प्राप्त हुआ है। उदाहरणार्थ एक श्लोक प्रस्तुत है।

> विश्वेस्मिन् प्राप्तुकामा विमलमतिमया मानवा! नव्यनव्यां,
> सच्चिद् रोचिर्विचित्रच्छविरविशिविका सिद्धिसाम्राज्यनिष्ठाम्।
> माहात्म्यार्चि: प्रविष्ठां सितमधुसरसां संप्रधत्ताशु तर्हि,
> सच्छिक्षा सत्यसन्धे: कविवरतुलसेश्चन्द्रवच्छीतरश्मे ॥

उक्त शिविका बन्ध चित्रमय श्लोक मे 84 अक्षर होते है किन्तु उनमे से केवल 70 अक्षर ही लिखे जाते है। शेष 14 अक्षरो की पूर्ति भिन्न-भिन्न प्रकोष्ठो से की जाती है। उक्त श्लोक के रचयिता मनि नवरत्नमल जी हैं। उन्होने अनेक प्रकार के चित्रमय श्लोको की रचना की है।

इस प्रकार के तेरापथ सस्कृत-साहित्य के उद्भव और विकास की सक्षिप्त प्रस्तुति इस निबन्ध में हुई है। अनवगति और अनुपलब्धि के कारण सभव है पूर्ण परिचिति में कुछ अवशेष भी रहा हो फिर भी उपलब्ध साहित्य का यथासभव परिचय देने का प्रयत्न किया गया है। विक्रम की बीसवी शताब्दी के उत्तरार्ध और इक्कीसवी शताब्दी के पूर्वार्ध मे तेरापथ धर्म-सघ ने संस्कृत वाङ्मय को विभिन्न नए उन्मेष प्रदान किये हैं। अतीत के सिंहावलोकन के आधार पर अनागत का योग और अधिक मूल्यवान हो सकेगा, ऐसी आशका स्वाभाविक है।

संस्कृत साहित्य एवं साहित्यकार : 4

डा. कस्तूरचन्द कासलीवाल

1. रविषेणाचार्य.—रविषेण पुराण ग्रन्थ के कर्ता के रूप में प्रसिद्ध आचार्य है। इन्होने स्वय ने अपने सम्बन्ध में कही कोई उल्लेख नही किया किन्तु इन्होने जिस गुरु परम्परा का उल्लेख किया है उसके अनुसार इन्द्रसेन के शिष्य दिवाकर सेन, दिवाकर सेन के शिष्य अर्हत्सेन, अर्हत्सेन के शिष्य लक्ष्मणसेन और लक्ष्मणसेन के शिष्य रविषेण।[1]सनान्त नाम होने के कारण ये सेनसंघ के विद्वान् जान पडते है। सेन सघ का राजस्थान मे बहुत जोर रहा। सोमकीर्ति आदि भट्टारक राजस्थान के ही जैन सन्त थे। इसलिये रविषेण का भी राजस्थान से विशेष सम्बन्ध रहा इसमे दो मत नही हो सकते।

रविषेण की एक मात्र कृति पद्मचरित (पद्मपुराण) उपलब्ध होती है लेकिन यह एक ही कृति उनके विशाल पाण्डित्य एवं अद्भुत व्यक्तित्व की परिचायक है। यह एक चरित काव्य है। जिसमे 123 पर्व है। इसमें त्रेसठ शालाका के महापुरुषो में से आठवें बलभद्र राम, आठवें नारायण लक्ष्मण, भरत, सीता, जनक, अजना, पवन, भामण्डल, हनुमान, राक्षसवशी रावण, विभीषण एव सुग्रीव आदि का विस्तृत वर्णन किया गया है। इसे हम जैन रामायण कह सकते है। रामकथा के अनेक रूप है उसमें जैन आम्नाय के अनुसार इस चरित काव्य में उसका एक रूप मिलता है। पद्मचरित मे सीता के आदर्श की सुन्दर झाकी प्रस्तुत की गयी है तथा राम के जीवन की सभी दृष्टियो से महत्ता स्वीकार की गयी है। ग्रन्थ में रामचरित के साथ वन, पर्वत, नदी, ऋतु आदि के प्राकृतिक दृश्यो को तथा विवाह, जन्म, मृत्यु आदि सामाजिक रीति-रिवाजो का सुन्दर वर्णन हुआ है। जैन पुराण साहित्य में रविषेण के पद्मपुराण का महत्वपूर्ण स्थान है। रविषेण ने महावीर भगवान् के निर्वाण के 1203 वर्ष 6 महीने व्यतीत होने पर वि. स. 734 (सन् 677) मे इसे समाप्त किया था जैसा कि निम्न प्रशस्ति से ज्ञात होता है.—

द्विशताभ्यधिके समासहस्रे समतीते अर्ध-चतुर्थ-वर्शयुक्ते।
जिन-भास्कर-वर्द्धमान सिद्धे चरितं पद्ममुनेरिदं निबद्धम्॥

2 ऐलाचार्य—ऐलाचार्य प्राकृत एव सस्कृत के प्रसिद्ध विद्वान् थे। ये सिद्धान्त शास्त्रो के विशेष ज्ञाता एव महान् तपस्वी थे। चित्रकूटपुर (चितौड) इनका निवास स्थान था। इन्होने ही आचार्य वीरसेन को सिद्धान्त ग्रन्थो का अध्ययन कराया था। वीरसेनाचार्य ने धवला टीका प्रशस्ति में ऐलाचार्य का निम्न शब्दो में उल्लेख किया है—

जस्स पसाएण मए सिद्धत मिद हि अहिलहुद।
महुसो एलाइरियो पसियउ वर वीरसेणस्स॥

ऐलाचार्य का समय 8वी शताब्दी का अन्तिम पाद होना चाहिये क्योकि वीरसेन न धवला टीका सन् 811 मे (शक में 738) मे निबद्ध की थी।

---

1. आसीदिन्द्रगुरो दिवाकरयतिः शिष्योऽस्य चार्हन्मनि।
स्तस्माल्लक्ष्मणसेन सन्मुनिरदः शिष्यो रविस्तु स्मृतम्—॥

3. आचार्य अमृतचन्द्र सूरि—आचार्य कुन्दकुन्द के समयसार, प्रवचनसार एव पचास्तिकाय की टीका करने के कारण आचार्य अमृतचन्द्र जैन सस्कृत साहित्य में अत्यधिक लोकप्रिय टीकाकार हैं। इनकी टीकाओं के कारण आज कुन्दकुन्द के ग्रन्थो का रहस्य सबके समझने में आ सका। उक्त टीकाओ के अतिरिक्त इनकी पुरुषार्थ सिद्ध्युपाय, तत्वार्थसार एव समयसार कलश भी अत्यधिक लोकप्रिय रचनायें मानी जाती हैं।

महापडित आशाधर ने अमृतचन्द्र का उल्लेख सूरि पद के साथ किया है इससे ज्ञात होता है कि अमृतचन्द्र किसी सम्मानित कुल के व्यक्ति थे। प. नाथूराम प्रेमी ने अमृतचन्द्र के सम्बन्ध में जो नया प्रकाश डाला है उसके आधार पर माधवचन्द्र के शिष्य अमृतचन्द्र 'बामणवाडे' में आये और यहा उन्होने रल्हण के पुत्र सिह या सिद्ध नामक कवि को पज्जुण्णचरिउ बनाने की प्रेरणा की। यदि बयाना (राज) के पास स्थित बाभणवाड-ब्रह्मवाद दोनो एक ही है तो अमृतचन्द्र ने राजस्थान को भी पर्याप्त समय तक अलकृत किया था ऐसा कहा जा सकता है। उसके अतिरिक्त राजस्थान के विभिन्न जैन भण्डारो में अमृतचन्द्र के ग्रन्थो का जो विशाल संग्रह मिलता है उससे भी हम इन्हें राजस्थानी विद्वान् कह सकते हैं। यही नही राजस्थानी विद्वान् राजमल ने सर्व प्रथम अमृतचन्द्र कृत समयसार कलश टीका पर हिन्दी में टब्बा टीका लिखी थी। अमृतचन्द्र का समय अधिकाश विद्वानो ने 11वी शताब्दी का उत्तरार्ध माना है। लेकिन पं जगलकिशोर मुख्तार ने इनका समय 10वी शताब्दी का तृतीय चरण बतलाया है।

इनका पुरुषार्थसिद्ध्युपाय श्रावकाचार सम्बन्धी ग्रन्थ है इसमें 226 संस्कृत पद्य हैं। श्रावक धर्म के वर्णन के साथ ही उसमें सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान सम्यक्चारित्र का सुन्दर वर्णन किया गया है। ग्रन्थ के प्रारम्भ में निश्चय नय एव व्यवहार नय की चर्चा है तो अन्त में रत्नत्रय को मोक्ष का उपाय बतलाया गया है। पुण्यास्रव को शुभोपयोग का बाधक बतलाना पुरुषार्थ-सिद्ध्युपाय की विशेषता है।

तत्वार्थसार को आचार्य अमृतचन्द्र ने मोक्षमार्ग का प्रकाश करने वाला एक प्रमुख दीपक बतलाया है। यह तत्वार्थसूत्र का सार रूप ग्रन्थ है जिसमें 9 अधिकार है और जीव अजीव आस्रव बध आदि तत्वो का विशद विवेचन है। इसमें युक्ति आगम से सुनिश्चित सम्यग्दर्शन सम्यग्ज्ञान, सम्यक्चारित्र का स्वरूप प्रतिपादित किया गया है।

समयसार कलश—आचार्य कुन्दकुन्द के समयसार पर कलश रूप में लिखा गया है। इसका विषय वर्गीकरण भी समयसार के अनुसार ही है। इसमें 278 पद्य है जो 12 अधिकारो में विभक्त है। प्रारम्भ में आचार्य अमृतचन्द्र ने आत्म तत्व को नमस्कार करते हुए बतलाया है:—

नम. समयसाराय स्वानुभूत्या चकासते।
चितस्वभावाय भावाय सर्वभावान्तरच्छिदे।

समयसार टीका आत्मख्याति के नाम से प्रसिद्ध है। टीका में उन्होंने गाथा के शब्दों की व्याख्या करके उसके अभिप्राय को अपनी परिष्कृत गद्यशैली में व्यक्त किया है। इसी तरह प्रवचनसार की टीका का नाम तत्वदीपिका है। इस टीका में आचार्य अमृतचन्द्र की आध्यात्मिक रसिकता, आत्मानुभव, प्रखर विद्वत्ता, एव वस्तु स्वरूप को तर्क पूर्वक सिद्ध करने की असाधारण शक्ति का परिचय मिलता है। कही कही तो मूल ग्रन्थकार ने जिन भावो को छोड दिया है उनको भी उन्होंने इस टीका म खोल दिया है। इसी तरह पचास्तिकाय टीका भी इनकी प्रांजलकृति है जिसमें जीवादि पचास्तिकाय का विशद विवेचन हुआ है।

अमतचन्द्र (द्वितीय)—लेकिन पं. परमानन्द जी शास्त्री का मत है कि अमृतचन्द्र-II माधवचन्द्र मलधारी के शिष्य थे। अपभ्रंश के महाकवि सिह अथवा सिद्ध इन्ही के शिष्य थे

जिन्होंने अमृतचन्द्र की प्रेरणा से अपूर्ण एवं खण्डित प्रद्युम्नचरित का उद्धार किया था। प्रद्युम्नचरित की प्रशस्ति मे अमृतचन्द्र के लिये लिखा है कि अमृतचन्द्र तप तेज रूपी दिवाकर तथा व्रत नियम एवं शील के रत्नाकर थे। अपने तर्क रूपी लहरों से जिन्होने अन्य दर्शनों को झंकोलित कर दिया था। जो उनमें व्याकरण रूप पदों के प्रसारक थे तथा जिनके ब्रह्मचर्य के आगे कामदेव भी हिल गया था।[1]

4. रामसेन —रामसेन नामके कितने ही विद्वान् हो चुके हैं लेकिन प्रस्तुत रामसेन काष्टासंघ, नन्दीतटगच्छ और विद्यागण के आचार्य थे। आचार्य सोमकीर्ति द्वारा रचित गुर्वावलि में रामसेन को नरसिंहपुरा जाति का सस्थापक माना है। बागड प्रदेश से रामसेन का अधिक सम्बन्ध था और राजस्थान इनकी विहार भूमि थी। रामसेन की परम्परा में कितने ही भट्टारक प्रसिद्ध विद्वान् थे और उन्होने अपनी प्रशस्तियो में रामसेन का सादर स्मरण किया है। रामसेन को विद्वानो ने 10 वी शताब्दी का स्वीकार किया है। इनकी एक मात्र कृति तत्वानुशासन संस्कृत की महत्वपूर्ण रचना है। इसमें 258 पद्य हैं जिनमें अध्यात्म विषय का बहुत ही सुन्दर प्रतिपादन हुआ है। एक विद्वान् के शब्दो में रामसेन ने अध्यात्म जैसे नीरस, कठोर और दुर्बोध विषय को उतना सरल एव सुबोध बना दिया है कि पाठक का मन कभी ऊब नहीं सकता। इस ग्रन्थ में ध्यान का विशद विवेचन हुआ है। कर्मबन्ध की निवृत्ति के लिये ध्यान की आवश्यकता बतलाते हुए ध्यान, ध्यान की सामग्री और उसके भेदो आदि का सुन्दर प्रतिपादन हुआ है। स्वाध्याय से ध्यान का अभ्यास करें क्योकि ध्यान और स्वाध्याय से परमात्मा का प्रकाश होता है।

5. आचार्य महासेन:—आचार्य महासेन लाड बागड संघ के पूर्णचन्द्र आचार्य जयसेन के शिष्य और गुणाकरसेनसूरि के शिष्य थे। लाड बागड संघ का राजस्थान से विशेष सम्बन्ध था। इसलिये आचार्य महासेन ने राजस्थान में विशेष रूप से विहार किया और धर्म साहित्य एवं संस्कृति का प्रचार किया। प्रद्युम्न चरित की प्रशस्ति के अनुसार ये सिद्धान्तज्ञ, वादी, वाग्मी और कवि थे तथा शब्दरूपी ब्रह्म के विचित्र धाम थे। वे यशस्वियों द्वारा मान्य, सज्जनों में अग्रणी एव पाप रहित थे और परमार वशी राजा मुन्ज के द्वारा पूजित थे।[2]

आचार्य महासेन की एक मात्र कृति प्रद्युम्नचरित उपलब्ध है। यह एक महाकाव्य है। इसमें 14 सर्ग हैं जिनमें श्रीकृष्ण जी के पुत्र प्रद्युम्न का जीवन चरित निबद्ध है। काव्य का कथाभाग बडा ही सुन्दर रस और अलकारो से अलकृत है। कवि ने इसमें रचनाकाल का उल्लेख नहीं किया है किन्तु राजा मुन्ज का समय 10 वी शताब्दी का है अत: यही समय आचार्य महासेन का होना चाहिए।

6. कवि डड्ढा —ये संस्कृत के अच्छे विद्वान् थे। चित्तौड इनका निवास स्थान था। इनके पिता का नाम श्रीपाल एवं ये जाति से पोरवाड थे। जैसा कि निम्न प्रशस्ति म दिया गया है—

श्रीचित्रकूट वास्तव्य प्राग्वार वणिजा कृते।
श्रीपालसुत-डड्ढेण स्फुट: प्रकृतिसग्रह ॥

इनकी एक मात्र कृति संस्कृत पंचसंग्रह है जो प्राकृत पंचसंग्रह की गाथाओं का अनुवाद है। अमितिगति आचार्य ने भी सस्कृत में पंचसंग्रह की रचना की थी लेकिन दोनों के अध्ययन से ज्ञात

---

1. जैन धर्म का प्राचीन इतिहास—भाग 2 पृष्ठ 357
2. तच्छिष्यो विदिता खिलोरुसमयो वादी च वाग्मी कवि
   शब्दब्रह्मविचित्रधाम यशसा मान्या सतामग्रणी।
   आसीत् श्रीमहसेनसूरिरनघ श्री मुन्जराजार्चित:
   सीमा-दर्शन-बोधवृत्त तपसां, भव्याब्जनी बांधव:

होता है कि डड्ढा के पचसंग्रह में जहां प्राकृत गाथाओं का अनुवाद मात्र है वहां अमितिगति के पंचसंग्रह में अनावश्यक कथन भी पाया जाता है।

कवि डड्ढा अमृतचन्द्रसूरि के वाद के तथा अमितिगति के पूर्व के विद्वान् हैं। अमितिगति ने अपना पचसग्रह वि स. 1073 में बना कर समाप्त किया था इसलिए डड्ढा इसक पूर्व के विद्वान् है। विद्वानो ने इनका समय सवत् 1055 का माना है।

7. आचार्य शुभचन्द्र-(प्रथम) —शभचन्द्र नाम के कितने ही विद्वान् हो गये है। आगे इन्हीं पृष्ठो में दो शुभचन्द्र का और वर्णन किया जावेगा। प्रस्तुत शुभचन्द्र ज्ञानार्णव के रचयिता है जिनके निवास स्थान, कुल जाति एव वंश परम्परा के वारे में कोई जानकारी उपलब्ध नही होती। शुभचन्द्र के ज्ञानार्णव का राजस्थान में सर्वाधिक प्रचार रहा। एक एक भण्डार में इनकी 25-30 प्रतिया तक मिलती है। यही नही इस पर हिन्दी गद्य पद्य टीका भी राजस्थानी विद्वानो की है। इसलिये अधिक सम्भव यही है कि शुभचन्द्र राजस्थानी विद्वान् रहे हो अथवा इन्होने राजस्थान को भी अपने विहार से एव उपदेशो से पावन किया हो।

ज्ञानार्णव योगशास्त्र का प्रमुख ग्रन्थ है। इसमें 48 प्रकरण है जिनमें 12 भावना, पंच महाव्रत एव ध्यानादि का सुन्दर विवेचन हुआ है। ज्ञानार्णव पूज्यापाद के समाधितन्त्र एवं इष्टोपदेश से प्रभावित है। ग्रन्थ की भाषा सरल एव प्रवाहमय है तथा वह सामान्य पाठक के भी अच्छी तरह समझ में आ सकती है।

8 ब्रह्मदेव —ब्रह्मदेव राजस्थानी विद्वान् थे। प्राकृत, अपभ्रंश एवं संस्कृत के वे धुरन्धर पडित थे। वे आश्रमपत्तन नामक नगर में निवास करते थे। आश्रमपत्तन का वर्तमान नाम केशोरायपाटन है। यह स्थान बून्दी से तीन मील दूर चम्बल नदी के किनारे पर अवस्थित है। यही पर मुनिसुव्रत नाथ का विशाल एव प्राचीन मन्दिर है जो अतीत में एक तीर्थ स्थल के रूप मे प्रतिष्ठित था जहा प्रतिवर्ष हजारो यात्री दर्शनार्थ आते है। 13 वी शताब्दी में होने वाले मुनि मदनकीर्ति ने अपनी शासन चतुस्त्रिशिका में इस नगर का उल्लेख किया है। यही नही इस तीर्थ की निर्वाण काण्ड गाथा में भी "अस्सारम्मे पट्टणि मुणिसुव्वयजिणं च वदामि" शब्दो में वन्दना की है।

ब्रह्मदव ने इसी नगर में वृहद्द्रव्यसंग्रह एवं परमात्मप्रकाश पर संस्कृत में टीका लिखी थी टीका वहुत ही विस्तृत एव महत्वपूर्ण है। यह टीका सोमराज श्रेष्ठी के लिये लिखी गयी थी और सबसे बडी विशेषता यह है कि स्वय ग्रन्थकार मुनि नेमिचन्द्र, टीकाकार ब्रह्मदेव एव सोमराज श्रेष्ठी इस साहित्यिक यज्ञ में सम्मिलित थे। द्रव्यसग्रह कृति में सोमराज श्रेष्ठि के दो प्रश्नो का उत्तर नामोल्लेख के साथ किया गया है इससे यह स्पष्ट प्रतीत होता है कि कृतिकार के समय वे भी उपस्थित थे।

द्रव्यसग्रह कृति की प्राचीनतम पाण्डुलिपि स. 1416 की जयपुर के ठोलियो के मंदिर में उपलब्ध होती है। द्रव्यसग्रह एव प्रवचनसार टीकाओ से अमृतचन्द्र, रामसिंह, अमितिगति, डड्ढा और प्रभाचन्द्र आदि के ग्रन्थो के उद्धरण मिलते हैं जो 10वी और 11 शताब्दी के विद्वान है। इसलिये ब्रह्मदेव का समय 11वी शताब्दी का अंतिम चरण अथवा 12वी शताब्दी का प्रथम चरण माना जा सकता है।

9 आ जयसेन—आचार्य अमृतचन्द्र के समान जयसेन ने भी समयसार, प्रवचनसार एव पचास्तिकाय इन तीनो पर सस्कृत टीका लिखी है और इन टीकाओ की भी समाज में लोकप्रियता रही है। जयसेन आचार्य वीरसेन के प्रशिष्य

एवं सोमसेन के शिष्य थे। एक प्रशस्ति के अनुसार इनके पितामह का नाम मालू साहू एव पिता का नाम महीपति साधु था। उनका स्वय का नाम चारूभट था और जब वे दिगम्बर मुनि हो गये तब उनका नाम जयसेन रखा गया ।[1]

समयसार, प्रवचनसार एव पञ्चास्तिकाय पर निर्मित टीकाओ का नाम तात्पर्य वृत्ति है । वृत्ति की भाषा सरल एवं सुगम है । राजस्थान में जैन शास्त्र भण्डारो मे इन टीकाओ की प्रतिया अच्छी सख्या में मिलती हैं ।

जयसेन ने अपनी टीकाओ मे समय का कोई उल्लेख नही किया । डा. ए एन उपाध्ये ने इनका समय 12वी शताब्दी का उत्तरार्द्ध एव 13वी शताब्दी का पूर्वार्द्ध निश्चित किया है क्योंकि इन्होंने वीरनन्दि के आचारसार मे दो पद्य उद्धृत किये है । वीरनन्दि के गुरु माघवचन्द्र त्रैविघदेव का स्वर्गवास विक्रम की 12वी शताब्दी में हुआ था इसलिये जयसेन का समय 13वी शताब्दी का प्रथम चरण मानना ही उचित है ।

10 आशाधर:—महापंडित आशाधर राजस्थान के लोकप्रिय विद्वान् थे । वे मूलत माडलगढ (मेवाड) के निवासी थे । इनका जन्म भी उसी नगर में हुआ था । इनके पिता का नाम सल्लखण एव माता का नाम श्रीरत्नी था । इनकी पत्नी का नाम सरस्वती एव पुत्र का नाम छाहड था । इनके पुत्र छाहड ने अर्जुन वर्मा को अनुरजित किया था । आशाधर मांडलगढ में दस-पन्द्रह वर्ष ही विता पाये थे कि शहावुद्दीन गोरी ने सन् 1292 में पृथ्वीराज को हराकर दिल्ली को अपनी राजधानी वनायी और अजमेर पर भी अपना अधिकार कर लिया । उनके आक्रमणो से संत्रस्त होकर अपने चरित्र की रक्षार्थ वे सपरिवार वहुत से अन्य लोगो के साथ मालवदेश की राजधानी धारा में आकर वस गये थे ।[2] उस समय धारा नगरी विद्या का केन्द्र थी और अनेक विद्वानों की वहां भीड रहती थी । आशाधर ने धारा में आने के पश्चात् पडित श्रीधर के शिष्य पडित महावीर से न्याय और व्याकरण शास्त्र का अध्ययन किया था । लेकिन कुछ समय धारा में रहने के उपरान्त वे वहा से नलकच्छपुर चले गये जो धारा नगरी से 10 कोश दूरी पर स्थित था ।[3]

नलकच्छपुर (नालछा) धर्मनिष्ठ श्रावको का केन्द्र था । वहा का नेमिनाथ का मन्दिर आशाधर के स्वाध्याय एव ग्रन्थ निर्माण करने का केन्द्र था । यहा वे 30-35 वर्ष तक रहे

---

1. सूरि: श्री वीरसेनाख्यो मूलसघेपि सत्तया. ।
नैर्ग्रन्थ्यपदवी भेजे जातरूप धरोपि य:
तत. श्री सोमसेनोऽभूद् गणी गुणगणाश्रय ।
तद्विनेयोस्ति यस्तस्मै जयसेन तपोभृते ॥
शीघ्रं बभूव मालू साधु: सदा धर्मरतो वदान्य .
सूनुस्तत साधु. महीपतिस्तस्मादयं चारूभटस्तनूज ॥

2. म्लेच्छेशेन सपादलक्षविषये व्याप्ते सुवृत्तक्षति—
त्रासाद्विन्ध्य नरेन्ददो. परिमलस्फूर्जत्त्रिवर्गौजसि
प्राप्तो मालवमण्डले वहुपरीवार पुरीमावसन्
यो धारामपठज्जिनप्रमिति वाक्शास्त्रे महावीरत ॥5॥

3. श्रीमदर्जुन भूपाल राज्ये श्रावकसंकुले ।
जैनधर्मोदार्यं यो नलकच्छपुरेवसत् ।

और रहते हुए उन्होंने अनेक ग्रन्थ लिखे, उनकी टीकायें लिखी और वहा अध्यापन कार्य भी सम्पन्न किया । लेकिन सवत् 1282 में आशाधर जी नालछा से सलखणपुर चले गये जहा जैन अच्छी सख्या में रहते थे । मल्ह का पुत्र नागदेव भी वहा का निवासी था जो मालवराज्य की चुगी विभाग मे कार्य करता था तथा यथाशक्ति धर्म-साधन भी करता था । नागदेव की पत्नी के लिये उन्होने रत्नत्रय विधान की रचना की थी ।

आशाधर संस्कृत के महान् पडित थे तथा न्याय, व्याकरण, काव्य, अलंकार, शब्दकोष, धर्मशास्त्र, योगशास्त्र और वैद्यक आदि विषयो पर उनका पूर्ण अधिकार था । वे प्रतिभासम्पन्न विद्वान् थे । उनकी लेखनी केवल जैन ग्रन्थो तक ही सीमित नही रही किन्तु अष्टांगहृदय, काव्यालकार एव अमरकोष जैसे ग्रन्थों पर उन्होने टीकायें लिख कर अपने पाण्डित्य का भी परिचय दिया । लेकिन खेद है कि ये सभी टीकायें वर्तमान मे उपलब्ध नही हैं। विभिन्न विद्वानो ने उन्हें कवि कालिदास, प्रज्ञापुज एव नवविश्वचक्षु जैसी उपाधियो से उनका अपने ग्रन्थो मे अभिनन्दन किया है । वास्तव में सस्कृत भाषा के ऐसे धुरन्धर विद्वान् पर जैन समाज को ही नही किन्तु समस्त देश को गर्व है ।

महापंडित आशाधर का 18 रचनाओ का उल्लेख मिलता है, लेकिन इनमें 11 रचनायें उपलब्ध है और सात रचनाये अनुपलब्ध है । इन रचनाओं का सामान्य परिचय निम्न प्रकार है :—

1. प्रमेयरत्न कर:—यह ग्रन्थ अभी तक अप्राप्य है । ग्रन्थकार ने इसे स्याद्वादविद्या का निर्मल प्रसाद बतलाया है ।

2. भरतेश्वराभ्युदय.—यह काव्य ग्रन्थ भी अप्राप्त है । इस काव्य में प्रथम तीर्थकर ऋषभदेव के पुत्र भरत चक्रवर्ती के अभ्युदय का वर्णन है ।

3. ज्ञानदीपिका.—यह सागार एवं अनगारधर्मामृत की स्वोपज्ञ पजिका है । यह भी अभी तक अनुपलब्ध ही है ।

4. राजमती विप्रलभ.—यह एक खण्ड काव्य है जिसमें राजमती और नेमिनाथ के वियोग का वर्णन किया गया है । रचना स्वोपज्ञ टीका सहित है लेकिन अभी तक अनुपलब्ध है ।

5. अध्यात्मरहस्य.—इस रचना को खोज निकालने का श्रेय श्री जुगल किशोर मुख्तार को है । इसकी एक मात्र पाण्डुलिपि अजमेर के भट्टारकीय शास्त्र भण्डार में सुरक्षित है । प्रस्तुव कृवि मुख्तार सा. द्वारा हिन्दी टीका के साथ सम्पादित होकर वीर सेवा मन्दिर से प्रकाशित हो चुकी है । यह अध्यात्म विषय का ग्रन्थ है । आचार्य कुन्दकुन्द ने आत्मा के वहिरात्मा, अन्तरात्मा और परमात्मा ये तीन भेद किये हैं जबकि आशाधर ने स्वात्मा, शुद्धस्वात्मा एव परब्रह्म इस प्रकार तीन भेद किये है ।

6. मूलाराधना टीका.—यह प्राकृत भाषा मे निबद्ध शिवार्य की भगवती आराधना की टीका है ।

7. इष्टोपदेश टीका:—आचार्य पूज्यपाद के प्रसिद्ध ग्रन्थ इष्टोपदेश की टीका है ।

8. भूपाल चतुर्विशति टीका.—भूपाल कवि कृत चतुर्विशति स्तोत्र की टीका है जो विनयचन्द्र के लिये बनायी गयी थी ।

9. आराधनासार टीका— यह देवसेन के आराधनासार पर टीका है। इसकी एक पाण्डुलिपि आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर में उपलब्ध है।

10. अमरकोश टीका— यह अमरसिंह कृत अमरकोश पर टीका है जो अभी तक अप्राप्य स्थिति में ही है।

11. क्रियाकलाप— इसमें आचार शास्त्र का वर्णन है।

12. काव्यालंकार टीका— यह रूद्रट कवि के काव्यालकार पर टीका है।

13. जिन सहस्रनाम— यह जिनेन्द्र भगवान् का स्तोत्र है जिस पर स्वय ग्रन्थकार की टीका है। यह श्रुतसागर सूरि की टीका के साथ भारतीय ज्ञानपीठ से प्रकाशित हो चुका है।

14. जिन-पजरकाव्य— इसमें प्रतिष्ठा सम्बन्धी क्रियाओ का विस्तृत वर्णन किया हुआ है। महापडित आशाधर ने इसे सवत् 1285 में नलकच्छपुर के नेमिनाथ चैत्यालय में समाप्त किया था। उस समय मालवा पर परमारवशी देवपाल का शासन था।

15. त्रिषष्टिस्मृतिशास्त्र— इसमें सक्षिप्त रूप में त्रेसठ शलाका पुरुषों का चरित्र वर्णित है। ग्रन्थ की रचना नित्य स्वाध्याय के लिये जाजाक पडित की प्रेरणा से सम्पन्न हुई थी। इस ग्रन्थ का रचनाकाल वि. सं. 1292 है। यह भी नलकच्छपुर के नेमिनाथ चैत्यालय में ही समाप्त हुआ था।

16. रत्नत्रय विधान— यह लघु ग्रन्थ है जो सलखणपुर के निवासी नागदेव की प्रेरणा से उसकी पत्नी के लिये लिखा गया था। इसका रचना काल सवत् 1282 है।

17–18. सागारधर्मामृत एवं अनगार धर्मामृत भव्यकुमुद चन्द्रिका टीका सहित— महापडित आशाधर के ये दोनों ही अत्यधिक लोकप्रिय ग्रन्थ हैं। सागारधर्मामृत में गृहस्थधर्म का निरूपण किया गया है जो आठ अध्यायो मे विभक्त है। इसी तरह अनगारधर्मामृत में मुनिधर्म का वर्णन किया गया है। इसमे मुनियो के मूलगुण एव उत्तरगुणो का विस्तार पूर्वक वर्णन हुआ है। सागार धर्मामृत टीका सहित रचना वि. स. 1296 में पौष सुदी 7 शुक्रवार के दिन समाप्त की गयी। इस ग्रन्थ-रचना की प्रेरणा देने वाले थे पौरपाटान्वयी महीचन्द साधु। अनगारधर्मामृत की रचना इसके चार वर्ष पश्चात् वि. स 1300 में कार्तिक सुदी 5 सोमवार के दिन समाप्त हुई थी। यह भी टीका सहित है। कवि ने मूल ग्रन्थ की रचना 954 श्लोको में की थी।

इस प्रकार महापडित आशाधर ने सस्कृत भाषा की जो सेवा की थी, वह सदा उल्लेखनीय रहेगी। आशाधर का समय विक्रम की 13 वीं शताब्दी निश्चित है। अनगार धर्मामृत उनकी अन्तिम कृति थी जो सवत 1300 की रचना है। इसके पश्चात् कवि अधिक समय तक जीवित रहे हो इसकी कम समावना है।

11. वाग्भट्ट

वाग्भट्ट नाम के कितने ही विद्वान् हो गये है। आयुर्वेद शास्त्र की सुप्रसिद्ध कृति अष्टाग-हृदय के रचयिता वाग्भट्ट के नाम से अधिकाश विद्वान् परिचित हैं, ये सिन्धु देश

निवासी थे। नेमिनिर्वाण महाकाव्य के निर्माता वाग्भट्ट महाकवि थे जो पोरवाड जाति के श्रावक थे तथा छाहड के पुत्र थे। वाग्भटालकार के कर्त्ता तीसर वागृभट्ट थे जो गुजरात के सोलंकी राजा सिद्धराज जयसिंह के महामात्य थे। ये श्वेताम्बर सम्प्रदाय के विद्वान् थे।

प्रस्तुत वाग्भट्ट उक्त तीनो विद्वानो से भिन्न हैं। ये वाग्भट्ट भी अत्यधिक सम्पन्न घराने के थे जिनके पितामह का नाम माक्कलय था। माक्कलय के दो पुत्र थे, इसमें राहड ज्येष्ठ एवं नेमिकुमार लघु पुत्र थे। इन दोनों भाइयों में राम लक्ष्मण जैसा प्रेम था। राहड ने व्यापार में विपुल द्रव्य एव प्रतिष्ठा प्राप्त की थी। राहड ने दो नगरों को बसाया था जो राहडपुर एव तलोटकपुर के नाम से विख्यात हुये। राहडपुर मे भगवान् नेमिनाथ का विशाल जिनालय भी इन्होंने ही बनवाया। तलोटकपुर मे राहड द्वारा निर्मित ऋषभदेव के विशाल जिनालय में 22 वेदिया बनवायी गयी। मेवाड की जनता नेमिकुमार से बहुत प्रभावित थी। इन्ही नेमिकुमार के पुत्र थे वाग्भट्ट, जिनकी दो कृतिया छन्दोनुशासन एव काव्यानुशासन उपलब्ध होती हैं, छन्दोनुशासन संस्कृत के छन्द शास्त्र का ग्रन्थ है जो पाच अध्यायो मे विभक्त है। ये अध्याय हैं— सज्ञाध्याय, समवृत्ताख्य, अर्घ समवृत्ताख्य, मात्रासमक एवं मात्रा छन्दक।

काव्यानुशासन लघु ग्रन्थ है जिसमें 289 सूत्र है तथा जिनमे काव्य संबंधी विषयों का रस, अलकार, छन्द, गुण, दोष आदि का कथन किया गया है। इसकी स्वोपज्ञवृत्ति में कवि ने विभिन्न ग्रन्थों के पद्य उद्धृत किये है।

वाग्भट्ट स्वय ने अपने आपको महाकवि लिखा है। ये 13 वीं शताब्दी के विद्वान् थे।

12 भट्टारक प्रभाचन्द्र

प्रभाचन्द्र भट्टारक थे। वे भट्टारक धर्मचन्द्र के प्रशिष्य एवं भट्टारक रत्नकीर्ति के शिष्य थे। भट्टारक धर्मचन्द्र एव भट्टारक रत्नकीर्ति दोनों ही अपने समय के प्रभावशाली भट्टारक थे। इनके द्वारा प्रतिष्ठापित कितनी ही मूर्तिया रणथम्भौर, भरतपुर एवं जयपुर आदि नगरो में मिलती हैं। प्रभाचन्द्र तुगलक वंश के शासन काल में हुये थे। वे जैन संघ के आचार्य थे और अजमेर उनकी गादी का प्रमुख केन्द्र था तथा राजस्थान, देहली एवं उत्तर-प्रदेश उनका कार्यक्षेत्र था।

एक पट्टावली के अनुसार भट्टारक प्रभाचन्द्र का जन्म संवत् 1290 पौष सुदी 15 को हुआ। वे 12 वर्ष तक गृहस्थ रहे तथा 12 वर्ष तक साधु की अवस्था में दीक्षित रहे। वे 74 वर्ष 11 मास 15 दिन तक भट्टारक पद पर बने रहे।

इन्होने ज्यपाद के समाधितन्त्र पर तथा आचार्य अमृतचन्द्र के आत्मानुशासन पर संस्कृत टीकायें लिखी जो अपने समय की लोकप्रिय टीकायें मानी जाती रही।

13. भट्टारक पद्मनन्दि

भ. प्रभाचन्द्र के ये प्रमुख शिष्य थे। वे प्रभाचन्द्र की ओर से गुजरात में धर्म प्रचार के लिये नियुक्त थे और वही पर वे समाज द्वारा भट्टारक पद पर प्रतिष्ठित कर दिये गये। भट्टारक बनने से पूर्व ये आचार्य शब्द से सबोधित किये जाते थे। एक पट्टावली के अनुसार वे जाति से ब्राह्मण थे। वे केवल 10 वर्ष 7 महीने तक ही अपने पिता के पास रहे और 11 वर्ष की आयु में ही वैराग्य धारण कर इन्होने भट्टारक प्रभाचन्द्र का शिष्यत्व स्वीकार कर लिया। युवावस्था में वे आचार्य बन गये। इसके पश्चात् संवत 1385 पौष सुदी सप्तमी की शुभ वेला में भट्टारक

पद पर सुशोभित कर दिये गये । इस समय उनकी आयु केवल 34 वर्ष की थी । वे पूर्ण युवा थे, और प्रतिभा के धनी थे। पद्मनन्दि पर सरस्वती की असीम कृपा थी । एक बार उन्होने पाषाण की सरस्वती को मुख से बुला दिया था ।

गुजरात प्रदेश के अतिरिक्त आचार्य पद्मनन्दि ने राजस्थान को अपना कार्य क्षेत्र चुना तथा चित्तौड, मेवाड, बून्दी, नैणवा, टोंक झालावाड जैसे स्थानो को अपनी गतिविधियो का केन्द्र बनाया । वे नैणवा (चित्तौड) जैसे सास्कृतिक नगर में 10 वर्ष से भी अधिक समय तक रहे । भ. सकलकीर्ति ने उनसे इसी नगर में शिक्षा प्राप्त की थी और यही पर उनसे दीक्षा धारण की थी। इनके पन्थ में अनेक साधु-साध्विया थी। इनके चार शिष्य प्रधान थे जिन्होने देश के अलग-अलग भागों में भट्टारक गादिया स्थापित की थी ।

आचार्य पद्मनन्दि संस्कृत के बड़े भारी विद्वान् थे। राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों में इनकी कितनी ही रचनायें उपलब्ध हो चुकी है उनमे से कुछ रचनाओ के नाम निम्न प्रकार है –

1. पद्मनन्दि श्रावकाचार
2. अनन्तव्रत कथा
3. द्वादशव्रतोद्यापन पूजा
4. पार्श्वनाथ स्तोत्र
5. नन्दीश्वर भक्ति पूजा
6. लक्ष्मी स्तोत्र
7. वीतराग स्तोत्र
8. श्रावकाचार टीका
9. देव-शास्त्र-गुरुपूजा
10. रत्नत्रयपूजा
11. भावना चौतीसी
12. परमात्मराज स्तोत्र
13. सरस्वती पूजा
14. सिद्धपूजा
15. शान्तिनाथ स्तवन

14. भट्टारक सकलकीर्ति

15 वीं शताब्दी में जैन साहित्य की जबरदस्त प्रभावना करने वाले आचार्यों में भट्टारक सकलकीर्ति का नाम सर्वोपरि है। देश में जैन साहित्य एव सस्कृति का जो जबरदस्त प्रचार एवं प्रसार हो सका उसमें इनका प्रमुख योगदान रहा। सकलकीर्ति ने संस्कृत एव प्राकृत साहित्य को नष्ट होने से बचाया और लोगों में उसके प्रति अद्भुत आकर्षण पैदा किया।

जीवन परिचय

सन्त सकलकीर्ति का जन्म संवत् 1443 (सन् 1386)में हुआ था।[1] इनके पिता का नाम करमसिंह एवं माता का नाम शोभा था। ये अणहिलपुर पट्टण के रहने वाले थे। इनकी जाति हूंबड थी।[2]

इनके बचपन का नाम 'पूर्नसिंह' अथवा पूर्णसिंह था। एक पट्टावली में इनका नाम 'पदर्थ' भी दिया हुआ है। 25 वर्ष तक ये पूर्ण गृहस्थ रहे लेकिन 26वें वर्ष में इन्होने अपार

---

1. हरषी सुणीय सुवाणि पालइ अन्य ऊअरि सुपर ।
चोऊद त्रिताल प्रमाणि पूरइ दिन पुत्र जनमीउ ॥

2. न्याति मांहि मुहुतवत हूंवड हरषि वखाणिइए ।
करमसिंह वितपन्न उदयवन्त इम जाणीइए ॥3॥
शोभित तरस अरधांगि, मूलीसरीस्य सुंदरीय ।
सील स्यंगारित अंगि पेखु प्रत्यक्ष पुरदरीय ॥4॥

—सकलकीर्ति रास

सम्पत्ति को तिलांजलि देकर साधु जीवन अपना लिया । उस समय भट्टारक पद्मनन्दि का मुख्य केन्द्र नैणवा (राजस्थान) था । वे आगम ग्रन्थो के पारगामी विद्वान् माने जाते थे। इसलिये ये भी नैणवा चले गये और उनके शिष्य बन कर अध्ययन करने लगे । वहां ये आठ वर्ष रहे और प्राकृत एवं संस्कृत के ग्रन्थो का गम्भीर अध्ययन किया, उनके मर्म को समझा और भविष्य में सत्-साहित्य का प्रचार-प्रसार ही अपना एक उद्देश्य बना लिया । 34 वें वर्ष में उन्होंने भट्टारक पदवी ग्रहण की और अपना नाम सकलकीर्ति रख लिया ।

व्यक्तित्व एवं पाण्डित्य

भट्टारक सकलकीर्ति असाधारण व्यक्तित्व वाले सन्त थे । इन्होंने जिन-जिन परम्पराओ की नींव रखी, उनका बाद में खूब विकास हुआ । अध्ययन गम्भीर था—इसलिये कोई भी विद्वान् इनके सामने नही टिक सकता था । प्राकृत एवं संस्कृत भाषाओ पर इनका समान अधिकार था । ब्रह्म जिनदास एव भट्टारक भुवनकीर्ति जैसे विद्वानो का इनका शिष्य होना ही इनके प्रबल पाण्डित्य का सूचक है । इनकी वाणी में जादू था इसलिये जहा भी इनका विहार हो जाता था वही इनके सैंकडो भक्त बन जाते थे । ये स्वय तो योग्यतम विद्वान् थे ही, किन्तु इन्होने अपने शिष्यो को भी अपने ही समान विद्वान् बनाया । ब्रह्म जिनदास ने, अपने "जम्बूस्वामी चरित" में इनको महाकवि, निर्ग्रन्थ राज एव शुद्ध चरित्रधारी[1] तथा हरिवंश पुराण में तपोनिधि एव निर्ग्रन्थ श्रेष्ठ[2] आदि उपाधियों से सम्बोधित किया है ।

भट्टारक सकलभूषण ने अपने उपदेश-रत्नमाला की प्रशस्ति में कहा है कि सकलकीर्ति जन-जन का चित्त स्वत ही अपनी ओर आकृष्ट कर लेते थे । ये पुण्य-मूर्ति स्वरूप थे तथा पुराण ग्रन्थों के रचयिता थे ।[3]

इसी तरह भट्टारक शुभचन्द्र ने सकलकीर्ति को पुराण एवं काव्यों का प्रसिद्ध नेता कहा है । इनके अतिरिक्त इनके बाद होने वाले प्राय. सभी भट्टारक सन्तो ने सकलकीर्ति के व्यक्तित्व एव विद्वत्ता की भारी प्रशसा की है । ये भट्टारक थे किन्तु मुनि नाम से भी अपने आपको सम्बोधित करते थे । "धन्य कुमार चरित्र" ग्रन्थ की पुष्पिका में इन्होने अपने-आपको "मुनि सकलकीर्ति" नाम से परिचय दिया है ।

मृत्यु

एक पट्टावली के अनुसार भट्टारक सकलकीर्ति 56 वर्ष तक जीवित रहे । संवत् 1499 में महसाना नगर मे उनका स्वर्गवास हुआ । प्र. परमानन्द शास्त्री ने भी "प्रशस्ति संग्रह" में इनकी मृत्यु सवत् 1499 में महसाना (गुजरात) में होना लिखा है । डा. ज्योति-

---

1. ततोभवत्तस्य जगत्प्रसिद्धे. पट्टे मनोज्ञे सकलादिकीर्ति ।
महाकवि. शुद्धचरित्रधारी निर्ग्रन्थराजा जगति प्रतापी ॥
—जम्बूस्वामी चरित्र

2. तत्पट्ट पंकेजविकासभास्वान् बभूव निर्ग्रन्थवर. प्रतापी ।
महाकवित्वादिकला प्रवीणः तपोनिधिः श्री सकलादिकीर्तिः ॥
—हरिवंश पुराण

3. तत्पट्टधारी जनचित्तहारि पुराणमुख्योत्तम-शास्त्रकारी ।
भट्टारक-श्रीसकलादिकीर्ति. प्रसिद्धनामाजनि पुण्यमूर्ति. ॥216॥
उपदेशरत्नमाला, सकलभूषण

प्रसाद जैन एवं डा. प्रेमसागर भी इसी सवत् को सही मानते हैं। लेकिन डा ज्योतिप्रसाद इनका पूरा जीवन 81 वर्ष स्वीकार करते हैं जो अब लेखक को प्राप्त विभिन्न पट्टावलियो के अनुसार वह सही नही जान पडता। 'सकलकीर्ति रास' मे उनकी विस्तृत जीवन गाथा है जिसमें स्पष्ट रूप से सवत् 1443 को जन्म एव 1499 मे मृत्यु तिथि लिखी है।

राजस्थान मे ग्रन्थ भडारो की जो अभी खोज हुई है उनमें हमें अभी तक निम्न रचनायें उपलब्ध हो सकी है :—

संस्कृत की रचनाए

1. मूलाचार प्रदीप
2 प्रश्नोत्तरोपासकाचार
3. आदि पुराण
4 उत्तर पुराण
5 शान्तिनाथ चरित्र
6 वर्द्धमान चरित्र
7 मल्लिनाथ चरित्र
8. यशोधर चरित्र
9 धन्यकुमार चरित्र
10 सुकुमाल चरित्र
11 सुदर्शन चरित्र
12 सद्भाषितावलि
13 पार्श्वनाथ चरित्र
14 व्रतकथा कोष
15 नेमिजिन चरित्र
16 कर्मविपाक
17. तत्वार्थसार दीपक
18 सिद्धान्तसार दीपक
19. आगमसार
20 परमात्मराज स्तोत्र
21. सारचतुर्विंशतिका
22 श्रीपाल चरित्र
23. जम्बूस्वामी चरित्र
24 द्वादशानुप्रेक्षा

पूजा ग्रन्थ

25 अष्टान्हिका पूजा
26 सोलहकारण पूजा
27 गणधरवलय पूजा

राजस्थानी कृतिया

1 आराधना प्रतिवोध सार
2 नेमीश्वर गीत
3 मुक्तावलि गीत
4 णमोकार फल गीत
5 सोलह कारण रास
6 सारसीखामणि रास
7 शान्तिनाथ फागु

उक्त कृतियो के अतिरिक्त अभी और भी रचनाए हो सकती हैं जिनकी अभी खोज होना बाकी है। भट्टारक सकलकीर्ति की सस्कृत भाषा के समान राजस्थानी भाषा मे भी कोई वडी रचना मिलनी चाहिये, क्योकि इनके प्रमुख शिष्य ब्र जिनदास ने इन्ही की प्रेरणा एव उपदेश से राजस्थानी भाषा मे 50 से भी अधिक रचनाऐं निवद्ध की है। अकेले इन्ही के साहित्य पर एक शोध प्रवन्ध लिखा जा सकता है। अब यहा कुछ ग्रन्थो का परिचय दिया जा रहा है।

1 <u>आदिपुराण</u>—इस पुराण मे भगवान् आदिनाथ, भरत, वाहुवलि, सुलोचना, जयकीर्ति आदि महापुरुषो के जीवन का विस्तृत वर्णन किया गया है। पुराण सर्गो मे विभक्त है और इसमे 20 सर्ग है। पुराण की श्लोक सख्या 4628 श्लोक प्रमाण है। वर्णन, शैली सुन्दर एव सरस है। रचना का दूसरा नाम 'वृषभनाथचरित्र' भी है।

2 उत्तर पुराण —इसमे 23 तीर्थंकरो के जीवन का वर्णन है एवं साथ में चक्रवर्ती, वलभद्र, नारायण, प्रतिनारायण आदि शलाका-महापुरुषो के जीवन का भी वर्णन है । इसमे 15 अधिकार है । उत्तरपुराण, भारतीय ज्ञानपीठ, वाराणसी मे प्रकाशित हो चुका है ।

3 कर्मविपाक —यह कृति सस्कृत गद्य मे है । इसमें आठ कर्मों के तथा उनके 148 भेदो का वर्णन है । प्रकृतिबन्ध, प्रदेशबन्ध, स्थितिबन्ध एव अनुभाग बन्ध की अपेक्षा से कर्मों के बन्ध का वर्णन है । वर्णन सुन्दर एव बोधगम्य है । यह ग्रन्थ 547 श्लोक सख्या प्रमाण है । रचना अभी तक अप्रकाशित है ।

4 तत्वार्थसार दीपक —सकलकीर्ति ने अपनी इस कृति को अध्यात्म महाग्रन्थ कहा है । जीव, अजीव, आस्रव, बन्ध, सवर, निर्जरा तथा मोक्ष इन सात तत्वों का वर्णन 12 अध्यायो मे निम्न प्रकार विभक्त है :—

प्रथम सात अध्याय तक जीव एवं उसकी विभिन्न अवस्थाओ का वर्णन है । शेष 8 से 12 वें अध्याय में अजीव, आस्त्रव, वन्ध, सवर, निर्जरा, मोक्ष का क्रमश. वर्णन है । ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित है ।

5. धन्यकुमार चरित्र— यह एक छोटा सा ग्रन्थ है जिसम सेठ धन्यकुमार के पावन-जीवन का यशोगान किया गया है । पूरी कथा साथ अधिकारो म समाप्त होती है । धन्यकुमार का जीवन अनेक कौतूहलो एव विशेषताओ से ओत-प्रोत है । एक बार कथा आरम्भ करने के वाद पूरी पढे विना उसे छोडने को मन नही करता । भाषा सरल एव सुन्दर है ।

6 नेमिजिन चरित्र—नेमिजिन चरित्र का दूसरा नाम हरिवश पुराण भी है । नेमिनाथ 22वें तीर्थंकर थे जिन्होने कृष्ण युग में अवतार लिया था। वे कृष्ण के चचेरे भाई थे। अहिंसा में दृढ विश्वास होने के कारण तोरण-द्वार पर पहुचकर एक स्थान पर एकत्रित जीवो को वध के लिये लाया हुआ जानकर विवाह के स्थान पर दीक्षा ग्रहण कर ली थी तथा राजुल जैसी अनुपम सुन्दर राजकुमारी को त्यागने में जरा भी विचार नही किया था । इस प्रकार इसमें भगवान् नेमिनाथ एव श्री कृष्ण के जीवन एव उनके पूर्व-भवो मे वर्णन है । कृति की भाषा काव्यमय एवं प्रवाहयुक्त है । इसकी सवत् 1571 मे लिखित एक प्रति आमेर शास्त्र भडार जयपुर मे सग्रहीत है ।

7 मल्लिनाथ चरित्र— 20 वें तीर्थंकर मल्लिनाथ के जीवन पर यह एक छोटा सा काव्य ग्रन्थ है जिसमें 7 सर्ग है ।

8 पार्श्वनाथ चरित्र— इसमे 23 वें तीर्थंकर भगवान् पार्श्वनाथ के जीवन का वर्णन है। यह एक 23 सर्ग वाला सुन्दर काव्य है । मगलाचरण के पश्चात् कुन्दकुन्द, अकलक, समन्तभद्र, जिनसेन आदि आचार्यों को स्मरण किया गया है ।

9 सुदर्शन चरित्र— इस प्रबन्ध काव्य म सेठ सुदर्शन के जीवन का वर्णन किया गया है, जो आठ परिच्छेदो मे पूर्ण होता है । काव्य की भाषा सुन्दर एव प्रभावयुक्त है ।

10 सुकुमाल चरित्र— यह एक छोटा सा प्रबन्ध काव्य है, जिसमे मुनि सुकुमाल के जीवन का पूर्व-भव सहित वर्णन किया गया है । पूर्व में हुआ बैर-भाव किस प्रकार अगले जीवन में भी चलता रहता है इसका वर्णन इस काव्य में सुन्दर रीति से हुआ है । इसमे

सुकुमाल के वैभव पूर्ण जीवन एव मुनि अवस्था की घोर तपस्या का अति सुन्दर एव रोमाचकारी वर्णन मिलता है। पूरे काव्य में 9 सर्ग हैं।

11. मूलाचार प्रदीप—यह आचार शास्त्र का ग्रन्थ है जिसमे जैन साधु के जीवन मे कौन कौन सी क्रियाओ की साधना आवश्यक है—इन क्रियाओ का स्वरूप एव उनके भेद-प्रभेदो पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। इसमे 12 अधिकार हैं जिनमे 28 मूलगुण, पचाचार, दशलक्षण धर्म, बारह अनुप्रेक्षा एव बारह नय आदि का विस्तार से वर्णन किया गया है।

12 सिद्धान्तसार दीपक—यह करणानुयोग का ग्रन्थ है—इसमे उर्ध्वलोक, मध्यलोक एव पाताल लोक और उनमे रहने वाले देवो, मनुष्यो, तिर्यंचो तथा नारकियो का विस्तृत वर्णन है। इसमें जैन सिद्धान्तानुसार सारे विश्व का भूगोलिक एव खगोलिक वर्णन आ जाता है। इसका रचना काल स. 1481 है। रचना स्थान है—नगली नगर। प्रेरक थे इसके ब्र. जिनदास।

जैन सिद्धान्त की जानकारी के लिये यह बडा उपयोगी है। ग्रन्थ 16 सर्गो मे है।

13. वर्द्धमान चरित्र—इस काव्य में अन्तिम तीर्थंकर महावीर वर्द्धमान के पावन-जीवन का वर्णन किया गया है। प्रथम 6 सर्गों मे महावीर के पूर्व भवो का एव शेष 13 अधिकारो मे गर्भ कल्याणक से लेकर निर्वाण प्राप्ति तक विभिन्न लोकोत्तर घटनाओ का विस्तृत वर्णन मिलता है। भाषा सरल किन्तु काव्यमय है। वर्णन शैली अच्छी है। कवि जिस किसी वर्णन को जब प्रारम्भ करता है तो वह फिर उसी मे मस्त हो जाता है।

14. यशोधर चरित्र—राजा यशोधर का जीवन जैन समाज मे बहुत प्रिय रहा है। इसलिये इस पर विभिन्न भाषाओ मे कितनी ही कृतिया मिलती है। सकलकीर्ति की यह कृति सस्कृत भाषा की सुन्दर रचना है। इसमें आठ सर्ग है। इसे हम एक प्रबध काव्य कह सकते है।

15 सद्भाषितावलि—यह एक छोटा सा सुभाषित ग्रन्थ है जिसमे धर्म, सम्यक्त्व, मिथ्यात्व, इन्द्रियविषय स्त्री सहवास, कामसेवन, निर्ग्रन्थ सेवा, तप, त्याग, राग, द्वेष, लोभ आदि विषयो पर अच्छा प्रकाश डाला गया है।

16. श्रीपाल चरित्र—यह सकलकीर्ति का एक काव्य ग्रन्थ है जिसमे 7 परिच्छेद है। कोटीभट श्रीपाल का जीवन अनेक विशेषताओ से भरा पडा है। राजा से कुष्टी होना, समुद्र मे गिरना, सूली पर चढना आदि कितनी हो घटनाये उसके जोवन मे एक के बाद दूसरी आती है जिससे उसका सारा जोवन नाटकोय बन जाता है। सकलकीर्ति ने इसे बडा सुन्दर रीति से प्रतिपादित किया है। इस चरित्र की रचना कर्मफल सिद्धात को पुरुषार्थ से अधिक विश्वसनीय सिद्ध करने के लिये की गई है। मानव ही क्या विश्व के सभी जीवधारियो का सारा व्यवहार उसके द्वारा उपार्जित पाप—पुण्य पर आधारित है। उसके सामने पुरुषार्थ कुछ भी नही कर सकता। काव्य पठनीय है।

17. शान्तिनाथ चरित्र—शान्तिनाथ 16 वे तीर्थंकर थे। तीर्थंकर के साथ-साथ वे कामदेव एव चक्रवर्ती भी थे। उनके जीवन की विशेषताये बतलाने के लिये इस काव्य की रचना की गई है। काव्य मे 16 अधिकार है तथा 3475 श्लोक सख्या प्रमाण है। इस काव्य को महाकाव्य की सज्ञा मिल सकती है। भाषा अलकारिक एव वर्णन प्रभावमय है। प्रारम्भ में कवि ने श्रृगार-रस से ओत-प्रोत काव्य की रचना क्यो नही करनी चाहिये इस पर अच्छा प्रकाश डाला है। काव्य सुन्दर एव पठनीय है।

18 प्रश्नोत्तर श्रावकाचार— इस कृति मे श्रावकों के आचार-धर्म का वर्णन है। श्रावकाचार 24 परिच्छेदो मे विभक्त है, जिसमे आचार शास्त्र पर विस्तृत विवेचन किया गया है। भट्टारक सकलकीर्ति स्वय मुनि भी थे—इसलिये उनसे श्रद्धालु भक्त आचार-धर्म के विषय मे विभिन्न प्रश्न प्रस्तुत करते होंगे—इसलिये उन सबके समाधान के लिये कवि ने इस ग्रन्थ का निर्माण किया। भाषा एव शैली की दृष्टि से रचना सुन्दर है। कृति मे रचनाकाल एव रचना स्थान नही दिया गया है।

19 पुराणसार सग्रह— प्रस्तुत पुराण सग्रह मे 6 तीर्थ कर के चरित्रो का सग्रह है और ये तीर्थ कर है—आदिनाथ, चन्द्रप्रभ, शान्तिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ एव महावीर वर्द्धमान। भारतीय ज्ञानपीठ की ओर से "पुराणसार सग्रह" प्रकाशित हो चुका है। प्रत्येक तीर्थ कर का चरित्र अलग-अलग सर्गा में विभक्त है जो निम्न प्रकार है—

आदिनाथ चरित्र	5 सर्ग
चन्द्रप्रभ चरित्र	1 सर्ग
शान्तिनाथ चरित्र	6 सर्ग
नेमिनाथ चरित्र	5 सर्ग
पार्श्वनाथ चरित्र	5 सर्ग
महावीर चरित्र	5 सर्ग

20 व्रतकथा कोष— व्रतकथा कोष की एक हस्तलिखित प्रति जयपुर के दि. जैन मन्दिर पाटोदी के शास्त्र भडार मे सग्रहीत है। इनमे विभिन्न व्रतो पर आधारित कथाओ का सग्रह है। ग्रन्थ की पूरी प्रति उपलब्ध नही होने से अभी तक यह निश्चित नही हो सका कि भट्टारक सकलकीर्ति ने कितनी व्रत कथाये लिखी थी।

21. परमात्मराज स्तोत्र— यह एक लघुस्तोत्र है, जिसमे 16 पद्य है। स्तोत्र सुन्दर एव भावपूर्ण है। इसका 1 प्रति जयपुर के दि जैन मन्दिर पाटोदी के शास्त्र भडार मे सग्रहीत है।

उक्त सस्कृत कृतियो के अतिरिक्त पञ्चपरमेष्ठिपूजा, अष्टान्हिका पूजा, सोलहकारण पूजा, गणधरवलय पूजा, द्वादशानुप्रेक्षा एव सारचतुर्विंशतिका आदि और कृतिया है जो राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो मे उपलब्ध होती है।

15. भट्टारक ज्ञानभूषण

ज्ञानभूषण नाम के भी चार भट्टारक हुए है। इसमे सर्व प्रथम भट्टारक सकलकीर्ति की परम्परा मे भट्टारक भवनकीर्ति के शिष्य थे। दूसरे ज्ञानभूषण भट्टारक वीरचन्द्र के शिष्य थे जिनका सम्बन्ध सूरत शाखा के भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति की परम्परा से था। ये सवत् 1600 से 1616 तक भट्टारक रहे। तीसर ज्ञानभूषण का सम्बन्ध अटेर शाखा से रहा था और इनका समय 17 वी शताब्दी का माना जाता है और चौथे ज्ञानभूषण नागौर गादी के भट्टारक रत्नकीर्ति के शिष्य थे। इनका समय 18 वी शताब्दी का अन्तिम चरण था।

---

1. देखिये भट्टारक पट्टावलि शास्त्र भण्डार म यश कीर्ति दि जैन सरस्वती भवन, ऋषभदेव, (राजस्थान)

प्रस्तुत भट्टारक ज्ञानभूषण पहिले भट्टारक विमलेन्द्रकीर्ति के शिष्य थे और बाद मे इन्होने भट्टारक भुवनकीर्ति को भी अपना गुरु स्वीकार कर लिया था। ज्ञानभूषण एव ज्ञानकीर्ति ये दोनो ही सगे भाई एव गुरु भाई थे और वे पूर्वी गोलालारे जाति के श्रावक थे। लेकिन सवत् 1535 मे सागवाडा एव नोगाम मे एक साथ दो प्रतिष्ठाए प्रारम्भ हुई। सागवाडा मे होने वाली प्रतिष्ठा के सचालक भट्टारक ज्ञानभूषण और नोगाम की प्रतिष्ठा महोत्सव का सचालन ज्ञानकीर्ति ने किया। यही से भट्टारक ज्ञानभूषण बृहद् शाखा के भट्टारक माने जाने लगे और भट्टारक ज्ञानकीर्ति लघु शाखा के गुरु कहलाने लगे।[1]

एक नन्दि सघ की पट्टावली से ज्ञात होता है कि ये गुजरात के रहने वाले थे। गुजरात मे ही उन्होने सागार-धर्म धारण किया, अहीर (आभीर) देश मे ग्यारह प्रतिमाए धारण को और वाग्वर या वागड देश मे दुर्धर महाव्रत ग्रहण किये। तैलव देश के यतियो मे इनकी बडी प्रतिष्ठा थी। तैलव देश के उत्तम पुरुषो ने उनके चरणो की वन्दना की, द्रविड देश के विद्वानो ने उनका स्तवन किया, महाराष्ट्र में उन्हें बहुत यश मिला, सौराष्ट्र के धनी श्रावको ने उनके लिए महामहोत्सव किया। रायदेश (ईडर के आस-पास का प्रान्त) के निवासियो ने उनके वचनो को अतिशय प्रमाण माना, मेरूमाट (मेवाड) के मूर्ख लोगो को उन्होने प्रतिवोधित किया, मालवा के भव्यजनो के हृदय-कमल को विकसित किया, मेवात मे उनके अध्यात्म–रहस्यपूर्ण व्याख्यान से विविध विद्वान् श्रावक प्रसन्न हुए। कुरुजागल के लोगो का अज्ञान रोग दूर किया, बैराठ (जयपुर के आस-पास) के लोगो को उभय मार्ग (सागार, अनगार) दिखलाये, नमियाड (नीमाड) मे जैन धर्म की प्रभावना की। भैरव राजा ने उनकी भक्ति की इन्द्रराज ने चरण पूजे, राजाधिराज देवराज ने चरणो की आराधना की। जिन धर्म के आराधक मुदलियार, रामनाथराय, वोम्मरसराय, कलपराय, पाडुराय आदि राजाओ ने पूजा की और उन्होने अनेक तीर्थों की यात्रा की। व्याकरण-छन्द-अलकार-साहित्य-तर्क-आगम-आध्यात्म आदि शास्त्र रूपी कमलो पर विहार करने के लिए वे राजहस थे और शुद्ध ध्यानामृत-पान की उन्हे लालसा थी।[2] ये उक्त विवरण कुछ अतिशयोक्तिपूर्ण भी हो सकता है लेकिन इतना अवश्य है कि ज्ञानभूषण अपने समय के प्रसिद्ध सन्त थे और उन्होने अपने त्याग एव विद्वत्ता से सभी को मुग्ध कर रखा था।

ज्ञानभूषण भट्टारक भुवनकीर्ति के पश्चात् सागवाडा मे भट्टारक गादी पर बैठे। अब तक सबसे प्राचीन उल्लेख सवत् 1531 बैशाख सुदी 2 का मिलता है जब कि इन्होने डूगरपुर मे आयोजित प्रतिष्ठा महोत्सव का सचालन किया था। उस समय डूगरपुर पर रावल सोमदास एव रानी गुराई का शासन था।[3] ज्ञानभूषण भट्टारक गादी पर सवत् 1531 से 1557-58 तक रहे। सवत् 1560 में उन्होने तत्वज्ञान तरगिणी की रचना समाप्त की थी इसकी पुष्पिका में इन्होने अपने नाम के पूर्व मुमुक्षु शब्द जोडा है जो अन्य रचनाओ में नही मिलता। इससे ज्ञात होता ह कि इसी वर्ष अथवा इससे पूर्व ही इन्होने भट्टारक पद छोड दिया था।

साहित्य साधना

ज्ञानभूषण भट्टारक बनने से पूर्व और इस पद को छोडने के पश्चात् भी साहित्य-साधना मे लगे रहे। वे जबरदस्त साहित्य सेवी थे। प्राकृत, सस्कृत, हिन्दी, गुजराती एव राजस्थानी

---

1. देखिये भट्टारक पट्टावलि शास्त्रभण्डार भ. यश. कीर्ति दि. जैन सरस्वती भवन ऋषभदेव, (राजस्थान)
2. देखिये प नाथूरामजी प्रेमी कृत जैन साहित्य और इतिहास पृ. 381–82
3. सवत् 1531 वर्षे वैसाख वुदी 5 बुधे श्री मूलसघे भ श्री सकलकीर्तिस्तत्पट्टे भ भुवनकीर्ति देवास्तत्पट्टे भ. श्री ज्ञानभूषणस्तदुपदेशात् मेघा भार्या टीगू प्रणमति श्री गिरिपुर रावल श्री सोमदास राजी गुराई सुराज्ये।

भाषा पर इनका पूर्ण अधिकार था। इन्होंने सस्कृत एवं हिन्दी मे मौलिक कृतियां निबद्ध कीं और प्राकृत ग्रन्थो की सस्कृत टीकाए लिखी। यद्यपि सख्या की दृष्टि से इनकी कृतिया अधिक नही हैं फिर भी जो कुछ हैं वे ही इनकी विद्वत्ता एव पाडित्य को प्रदर्शित करने के लिये पर्याप्त है। श्री नाथूराम जी प्रेमी ने इनके "तत्वज्ञानतरगिणी, सिद्धान्तसार भाष्य, परमार्थोपदेश, आदीश्वर फाग, भक्तामरोद्यापन, सरस्वती पूजा" ग्रन्थो का उल्लेख किया है।[2] पडित परमानन्द जीन उक्त रचनाओ के अतिरिक्त सरस्वती स्तवन, आत्म सम्बोधन आदि का और उल्लेख किया है।[3] इधर राजस्थान के जैन ग्रन्थ भडारो की जब से लेखक ने खोज एव छानबीन की है तब से उक्त रचनाओ के अतिरिक्त इनके और भी ग्रन्थो का पता लगा है। अब तक इनकी जितनी रचनाओ का पता लग पाया है उनके नाम निम्न प्रकार है —

सस्कृत ग्रन्थ

1 आत्मसबोधन काव्य
2 ऋषिमडल पूजा[4]
3 तत्वज्ञान तरगिणी
4 पूजाष्टक टीका
5 पचकल्याणकोद्यापन पूजा[5]
6 भक्तामर पूजा[6]
7 श्रुत पूजा[7]
8. सरस्वती पूजा[8]
9 सरस्वती स्तुति[9]
10 शास्त्र मडल पूजा[10]
11 दशलक्षण व्रतोद्यापन पूजा[11]

तत्वज्ञानतरगिणी —इसे ज्ञानभूषण की उत्कृष्ट रचना कही जा सकती है। इसमे शुद्ध आत्म तत्व की प्राप्ति के उपाय बतलाये गये है। रचना अधिक बडी नही है किन्तु कवि ने उसे 18 अध्यायो मे विभाजित किया है इसकी रचना स 1560 मे हुई थी जब वे भट्टारक पद छोड चुके थे और आत्मतत्व की प्राप्ति के लिये मुमुक्ष बन चुके थे। रचना काव्यत्वपूर्ण एव विद्वत्ता लिये हुए है।

16 भट्टारक शुभचन्द्र

शुभचन्द्र भट्टारक विजयकीर्ति के शिष्य थे। वे अपने समय के प्रसिद्ध भट्टारक, साहित्य प्रेमी, धर्म-प्रचारक एव शास्त्रो के प्रबल विद्वान् थे।

---

2. देखिये पं. नाथूरामजी प्रेमी कृत जैन साहित्य और इतिहास पृ 382
3 देखिये प. परमानन्द जी का "जैन-ग्रन्थ प्रशस्ति-सग्रह"
4 राजस्थान क जैन शास्त्र भडारो की ग्रन्थ सूची भाग चतुर्थ पृ स 463
5 " " 650
6 " " 523
7 , , 537
8 " " 515
9 राजस्थान के जैन शास्त्र भडारो की ग्रन्थ सूची भाग चतुर्थ पृ. स. 657
10 " , 830
11 " " 830

इनका जन्म संवत् 1530-40 के मध्य कभी हुआ होगा। ये जब बालक थे तभी से इनका इन भट्टारको से सम्पर्क स्थापित हो गया। प्रारम्भ में इन्होंने अपना समय सस्कृत एव प्राकृत भाषा के ग्रन्थो के पढने मे लगाया। व्याकरण एव छन्द शास्त्र में निपुणता प्राप्त की और फिर भट्टारक ज्ञानभूषण एव भट्टारक विजयकीर्ति के सान्निध्य में रहने लगे। श्री वी पी. जोहरापुरकर के मतानुसार ये सवत् 1573 मे भट्टारक बने।[4] और वे इसी पद पर सवत् 1613 तक रहे। इस तरह शुभचन्द्र ने अपने जीवन का अधिक भाग भट्टारक पद पर रहते हुए ही व्यतीत किया। बलात्कारगण की ईडर शाखा की गद्दी पर इतने समय तक सम्भवत ये ही भट्टारक रहे। इन्होंने अपनी प्रतिष्ठा एव पद का खूब अच्छी तरह सदुपयोग किया और इन 40 वर्षों मे राजस्थान, पजाब, गुजरात एवं उत्तर प्रदेश में भगवान् महावीर के शासन का जबरदस्त प्रभाव स्थापित किया।

विद्वत्ता

शुभचन्द्र शास्त्रो के पूर्ण मर्मज्ञ थे। ये पट् भाषा-कवि चक्रवर्ती कहलाते थे। छह भाषाओ में सम्भवत सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, हिन्दी, गुजराती एव राजस्थानी भाषाये थी। ये त्रिविध विद्याधर (शब्दागम, युक्त्यागम एव परमागम) के ज्ञाता थे। पट्टावलि के अनुसार ये प्रमाणपरीक्षा, पत्र परीक्षा, पुष्प परीक्षा (?) परीक्षा-मुख, प्रमाण-निर्णय, न्यायमकरन्द, न्यायकुमुदचन्द्र, न्याय विनिश्चय, श्लोकवार्तिक, राजवार्तिक, प्रमेयकमल मार्त्तण्ड, आप्तमीमासा, अष्टसहस्री, चितामणिमीमांसा, विवरण वाचस्पति, तत्व कौमुदी आदि न्याय ग्रन्थो के जैनेन्द्र, शाकटायन, एन्द्र, पाणिनी, कलाप आदि व्याकरण ग्रन्थो के, त्रैलोक्यसार गोम्मटसार, लब्धिसार, क्षपणासार, त्रिलोकप्रज्ञप्ति, सुविज्ञप्ति, अध्यात्माष्ट-सहस्री (?) और छन्दोलकार आदि महाग्रन्थो के पारगामी विद्वान् थे।[5]

साहित्यिक सेवा

शुभचन्द्र ज्ञान के सागर एव अनेक विद्याओ मे पारगत विद्वान् थे। वे वक्तृत्व-कला में पटु तथा आकर्षक व्यक्तित्व वाले सन्त थे। इन्होंने जो साहित्य सेवा अपने जीवन में की थी वह इतिहास में स्वर्णाक्षरो में लिखने योग्य है। अपने सघ की व्यवस्था तथा धर्मोपदेश एव आत्म-साधना के अतिरिक्त जो भी समय इन्हे मिला उसका साहित्य-निर्माण में ही सदुपयोग किया गया। वे स्वय ग्रन्थो का निर्माण करते, शास्त्र भण्डारो की सम्हाल करत, अपने शिष्यों से प्रतिलिपिया करवाते, तथा जगह-जगह शास्त्रागार खोलने की व्यवस्था कराते थे। वास्तव मे ऐसे ही सन्तो के सद्प्रयास से भारतीय साहित्य सुरक्षित रह सका है।

पाण्डवपुराण इनकी सवत् 1608 की कृति है। उस समय साहित्यिक-जगत में इनकी ख्याति चरमोत्कर्ष पर थी। समाज में इनकी कृतिया प्रिय बन चुकी थी और उनका अत्यधिक प्रचार हो चुका था। सवत् 1608 तक जिन कृतियो को इन्होंने समाप्त कर लिया था उनमें (1) चन्द्रप्रभ चरित्र (2) श्रेणिक चरित्र (3) जीवधर चरित्र (4) चन्दना कथा (5) अष्टान्हिका कथा (6) सद्वृत्तिशालिनी (7) तीन चौबीसी पूजा (8) सिद्धचक्र पूजा (9) सरस्वती पूजा (10) चिंतामणि पूजा (11) कर्मदहन पूजा (12) पार्श्वनाथ काव्य पजिका (13) पल्यव्रतोद्यापन (14) चारित्र शुद्धिविधान (15) सशयवदन विदारण (16) अपशब्द खण्डन (17) तत्व निर्णय (18) स्वरूप सबोधन वृत्ति (19) अध्यात्म तरगिणी (20) चितामणि प्राकृत व्याकरण (21) अगप्रज्ञप्ति आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। उक्त साहित्य भट्टारक शुभचन्द्र के कठोर परिश्रम एव त्याग का फल है। इसके पश्चात्

---

4. देखिये भट्टारक सम्प्रदाय पृष्ठ सख्या 158

5 देखिये नाथूरामजी प्रेमी कृत-जैन साहित्य और इतिहास पृ स 383

इन्होने और भी कृतिया लिखी ।[1] सस्कृत रचनाओ के अतिरिक्त इनकी कुछ रचनाये हिन्दी मे भी उपलब्ध होती है । लेकिन कवि ने पाण्डव पुराण मे उनका कोई उल्लेख नही किया है । राजस्थान के प्राय सभी ग्रन्थ भण्डारो मे इनकी अब तक जो कृतिया उपलब्ध हुई है वे निम्न प्रकार है —

सस्कृत रचनाएं

1 ऋषि मडल पूजा
2 अनन्त व्रत पूजा
3 अम्बिका कल्प
4 अष्टान्हिका व्रत कथा
5 अष्टान्हिका पूजा
6 अढाईद्वीप पूजा
7 करकण्डु चरित्र
8. कर्मदहन पूजा
9 कार्तिकेयानुप्रेक्षा टीका
10. गणधरवलय पूजा
11 गरावली पूजा
12. चतुर्विशति पूजा
13 चन्दना चरित्र
14 चन्दनषष्टिव्रत पूजा
15 चन्द्रप्रभ चरित्र
16 चरित्र शुद्धि विधान
17 चिंतामणि पार्श्वनाथ पूजा
18 जीवधर चरित्र
19 तेरह द्वीप पूजा
20 तीन चौवीसी पूजा
21 तीस चौवीसी पूजा
22 त्रिलोक पूजा
23 त्रपन क्रियागति
24 नन्दीश्वर पक्ति पूजा
25 पच कल्याणक पूजा
26 पच गणमाल पूजा
27 पचपरमेष्टी पूजा
28 पल्यव्रतोद्यापन
29 पाण्डवपुराण
30 पार्श्वनाथ काव्य पजिका
31 प्राकृत लक्षण टीका
32 पुष्पाजलिव्रत पूजा
33 प्रद्युम्न चरित्र
34 वारहसौ चौतीस व्रत पूजा
35 लघु सिद्ध चक्रपूजा
36 वृहद् सिद्धपूजा
37 श्रेणिक चरित्र
38 समयसार टीका
39 सहस्त्रगुणित पूजा
40 सुभाषितार्णव

17. भट्टारक श्रीभूषण

ये भट्टारक भानुकीर्ति के शिष्य थे तथा नागोर गादी के सवत् 1705 मे भट्टारक बने थे। 7 वर्ष तक भट्टारक रहने के पश्चात् इन्होने अपने शिष्य धर्मचन्द्र को भट्टारक गादी देकर एक उत्तम उदाहरण उपस्थित किया था । ये खण्डेलवाल एव पाटनी गौत्र के थे। साहित्य रचना मे इन्हे विशेष रुचि थी। इनकी कुछ रचनायें निम्न प्रकार है —

अनन्तचतुर्दशी पूजा	सस्कृत
अनन्तनाथ पूजा	,,
भक्तामर पूजा विधान	,,
श्रुतस्कध पूजा	,,
सप्तर्षि पूजा	,,

18. भट्टारक धर्मचन्द्र

भट्टारक धर्मचन्द्र का पट्टाभिषेक मारोठ में सवत् 1712 में हुआ था। ये नागौर गादी के भट्टारक थे। एक पट्टावली के अनुसार ये 9 वर्ष गृहस्थ रहे, 20 वर्ष तक साधु अवस्था में रहे तथा 15 वर्ष तक भट्टारक पद पर आसीन रहे। सस्कृत एव हिन्दी दोनो के ही थे।

---

1 विस्तृत प्रशस्ति के लिये देखिये लेखक द्वारा सम्पादित 'प्रशस्ति सग्रह' पृ स 7।

अच्छे विद्वान् थे और इन्होंने संवत् 1726 में 'गौतमस्वामीचरित' की रचना की थी। संस्कृत का यह एक अच्छा काव्य है। मारोठ (राजस्थान) में इसकी रचना की गई थी। उस समय मारोठ पर रघुनाथ का राज्य था। उक्त रचना के अतिरिक्त नेमिनाथ वीनती, सम्बोघ पंचासिका एव सहस्रनाम पूजा कृतियां और मिलती है।

19. प. खेता

सम्यक्त्व कौमुदी के रचयिता पण्डित खेता राजस्थानी विद्वान् थे। यह एक कथा-कृति है जिसका राजस्थान में विशेष प्रचार रहा और यहा के शास्त्र भण्डारो में इसकी अनको प्रतिया उपलब्ध होती हैं। सम्यक्त्व कौमुदी की एक पाण्डुलिपि सवत् 1582 मे प्रतिलिपि करवा कर चपावती नगरी मे ब्र. वूचराज को प्रदान की गयी थी। ये वैद्य-विद्या मे पारगत थे और अपनी विद्या के कारण रणथम्भौर दुर्ग के वादशाह शेरशाह द्वारा सम्मानित हुये थे।

20. पण्डित मेघावी

पडित मेधावी सस्कृत के धुरन्धर विद्वान् थे। ये भट्टारक जिनचन्द्र के प्रिय शिष्य थे। इनके पिता का नाम उद्धरण साहु तथा माता का नाम भीषुही था। जाति से अग्रवाल जैन थे। एक प्रशस्ति में उन्होने अपने आपको पण्डित-कुजर लिखा है।

> अग्रोतवंशज : साघुर्लवदेवाभिघानक ।
> तत्वगुद्धरणः सज्ञा तत्पत्नी भीषुहीप्सुभि· ॥32॥
>
> तयो पुत्रोस्ति मेघावी नामा पडितकुंजरः।
> आप्तागमविचारज्ञो जिनपदाम्वुज षट्पद. ॥33॥

इन्होने इसी तरह अन्य प्रशस्तियो में भी अपना परिचय दिया है । इन्होने सवत् 1541 में धर्मसग्रह श्रावकाचार की रचना नागौर में सम्पन्न की थी । वैसे इन्होने इसे हिसार में प्रारम्भ किया था। उन्होने यह भी सकेत दिया है कि प्रस्तुत धर्मसग्रह श्रावकाचार, समन्तभद्र वसुनन्दि एव आशाधर के विचारो के आधार पर ही अपने आचार शास्त्र की रचना की है। इस ग्रन्थ की विस्तृत प्रशस्ति दी हुई है।

21. पण्डित जिनदास

पण्डित जिनदास रणथम्भौर दुर्ग के समीप स्थित नवलक्षपुर के रहने वाले थे। इनके पिता का नाम खेता था जिनका ऊपर परिचय दिया जा चुका है। पण्डित जिनदास भी आयुर्वेद विशारद थे। इन्होने 'होली रेणुका चरित्र' की रचना सवत् 1608 में (सन् 1551 ई.) में समाप्त की थी। रचना अभी तक अप्रकाशित है।

22. पण्डित राजमल्ल

प. राजमल्ल संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् थे। वे जयपुर से दक्षिण की ओर 40 मील दूरी पर स्थित वैराठ नगर के रहने वाले थे। व्याकरण, सिद्धान्त, छदशास्त्र और स्याद्वाद विद्या में पारंगत थे। अध्यात्म का प्रचार करने के लिये वे मारवाड, मेवाड एव ढूढाड के नगरो में भ्रमण करते। इन्होने आचार्य अमृतचन्द्र कृत समयसार टीका पर राजस्थानी में टीका लिखी थी। अब तक इनके निम्न ग्रन्थ उपलब्ध हो चुके हैं:—जम्बू स्वामीचरित्र, अध्य ात्मकमलमार्त्तण्ड, लाटी सहिता, छन्दो विद्या एवं पचाध्यायी। जम्बूस्वामी चरित्र की रचना सवत् 1632 में

सम्पन्न हुई थी। इसमें अन्तिम केवली जम्बूस्वामी का जीवन चरित्र निबद्ध है। 'अध्यात्मकमल-मार्तण्ड' 250 श्लोक प्रमाण रचना है। इसमें सात तत्व एवं नौ पदार्थों का वर्णन है। लाटी संहिता आचार शास्त्र है इसमें सात सर्ग हैं और 1600 के लगभग पद्यों की संख्या है। इसकी रचना वैराट नगर के जिन मन्दिर में सम्पन्न हुई थी। पचाध्यायी में पाच अध्याय होने चाहिये लेकिन बीच में कवि का निधन होने के कारण यह रचना पूर्ण नहीं की जा सकी। इनका समय 17वी शताब्दी का है।

23. ब्र. कामराज

ब्र. कामराज भ. सकलभूषण के प्रशिष्य एव भ नरेन्द्रकीर्ति के शिष्य ब्र प्रह्लाद वर्णी के शिष्य थे। इन्होंने सवत् 1691 में 'जयपुराण' को मेवाड में समाप्त किया था। जिनका उल्लेख निम्न प्रकार है —

राष्ट्रस्यैतत्पुराण शकमनुजपतेर्मेदपाटस्य पुर्या
पश्चात्सवत्सरस्य प्ररचितपटत पच पचाशतो हि।
अम्राभ्राक्षैकसवच्छरनिवियुज. (1555) फाल्गुने मासि पूर्णे-
मुख्यायामौदयायो सुकविनयिनो लाल्जिष्णोश्च वाक्यात् ॥

24. पण्डित जगन्नाथ

पोमराज श्रेष्ठि के पुत्र पण्डित जगन्नाथ तक्षकगढ (वर्तमान नाम टोडारायसिंह) के रहने वाले थे। ये भट्टारक नरेन्द्रकीर्ति के शिष्य थे। इनके भाई वादिराज भी सस्कृत के बड़े भारी विद्वान् थे। प जगन्नाथ की अब तक 6 रचनाये उपलब्ध हो चुकी हैं जिनमें चतुर्विंशति सधान स्वोपज्ञ टीका, सुखनिधान, सुषेण चरित, नेमिनरेन्द्र स्तोत्र, कर्मस्वरूप वर्णन के नाम उल्लेखनीय हैं। सभी रचनायें सस्कृत भाषा की अच्छी रचनाये हैं।

25. वादिराज

ये खण्डेलवाल वशीय श्रेष्ठि पोमराज के दूसरे पुत्र थे। ये सस्कृत के अच्छे विद्वान् थे तथा राजनीति में भी पटु थे। वादिराज ने अपने आपको धनजय, आशाधर और वाणभट्ट का पद धारण करने वाला दूसरा वाणभट्ट लिखा है। वहा के राजा राजसिंह को दूसरा जयसिंह तथा तक्षकनगर को दूसरे अणहिलपुर की उपमा दी है।

धनञ्जयाशाधरवाग्भटाना धत्ते पद सम्प्रति वादिराज ।
खाडिल्लवशोद्भव-पोमसूनु, जिनोक्तिपीयूषसुतृप्तगात्र. ॥

वादिराज तक्षकनगर के राजा राजसिंह के महामात्य थे। राजसिंह भीमसिंह के पुत्र थे। वादिराज के चार पुत्र थे—रामचन्द्र, लालजी, नेमिदास और विमलदास।

वादिराज की तीन कृतिया मिलती हैं एक है वाग्भटालंकार की टीका कविचन्द्रिका' दूसरी रचना ज्ञानलोचन स्तोत्र तथा तीसरी सुलोचना चरित्र है। कविचन्द्रिका को इन्होंने सवत् 1729 को दीपमालिका के दिन समाप्त की थी। कवि 18वी शताब्दि के प्रथम चरण के विद्वान् थे।

26. भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति

भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति भट्टारक जगत्कीर्ति के शिष्य थे। सवत् 1770 की माह बुदी 11 को आमेर मे इनका पट्टाभिषेक हुआ था। उस समय आमेर अपने पूर्ण वैभव पर था और महाराजा सवाई जयसिह उसके शासक थे। ये करीब 22 वर्ष तक भट्टारक पद पर रहे। इन्होने समयसार पर एक संस्कृत टीका ईसरदा (राज.) में सवत् 1788 में समाप्त की थी। देवेन्द्रकीर्ति ने राजस्थान एवं विशेषत ढूंढाड प्रदेश में विहार करके साहित्य का अच्छा प्रचार किया था।

27. भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति

भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति का जयपुर में भट्टारक गादी पर पट्टाभिषेक हुआ था। भ पट्टावली मे पट्टाभिषेक का समय सं 1822 तथा बुद्धिविलास में सवत् 1823 दिया हुआ है। सुरेन्द्र-कीर्ति सस्कृत के अच्छे विद्वान् थे। अब तक इनकी निम्न रचनाये उपलब्ध हो चुकी है --

1 अष्टाह्निका कथा
2 पच कल्याणक विधान
3 पचमास चतुर्दशी व्रतोद्यापन
4 पुरन्दर-व्रतोद्यापन
5 लब्धि विधान
6 सम्मेदशिखर पूजा
7 प्रतापकाव्य

28. आचार्य ज्ञानसागर

वर्तमान शताब्दि मे सस्कृत भाषा मे महाकाव्यो के रचना की परम्परा को जीवित रखने वाले विद्वानो में जैनाचार्य ज्ञानसागरजी महाराज का नाम विशेषत. उल्लेखनीय है। वे 50 वर्षो से भी अधिक समय तक सस्कृत वाङमय की अनवरत सेवा करने में लगे रहे।

आचार्य श्री का जन्म राजस्थान के सीकर जिलान्तर्गत राणोली ग्राम में सवत् 1948 मे एक सम्पन्न परिवार मे हुआ था। उनके पिता का नाम चतुर्भुज एवं माता का नाम घेवरी देवी था। उस समय उनका नाम भूरामल रखा गया। गाव की प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करने के पश्चात् उनको सस्कृत भाषा के उच्च अध्ययन की इच्छा जाग्रत हुई और माता-पिता की अनुमति लेकर ये वाराणसी चले गये जहा उन्होने सस्कृत एवं जैन सिद्धान्त का गहरा अध्ययन करके शास्त्री की परीक्षा पास की। राजस्थान के प्रसिद्ध दार्शनिक विद्वान् प चैनसुखदासजी न्याय-तीर्थ आपके सहपाठियो मे से थे। काशी के स्नातक बनने के पश्चात ये वापिस ग्राम आ गये और ग्रन्थो के अध्ययन के साथ-साथ स्वतन्त्र व्यवसाय भी करने लगे। लेकिन काव्य-निर्माण में विशेष रुचि लेने के कारण उनका व्यवसाय मे मन नही लगा। विवाह की चर्चा आने पर उन्होने आजन्म अविवाहित रहने की अपनी हार्दिक इच्छा व्यक्त की और अपने आपको मा भारती की सेवा मे समर्पित कर दिया।

महाकवि के रूप मे--

आचार्य श्री ने तीन महाकाव्य वीरोदय, जयोदय एवं दयोदय चम्पू चरित्र काव्य-समुद्रदत्त चरित्र, सुदर्शनोदय, भद्रोदय आदि एव हिन्दी काव्य-ऋषभचरित, भाग्योदय, विवेकोदय आदि

करीब 20 काव्य लिखकर मां भारती की अपूर्व सेवा की है। 'वीरोदय' भगवान महावीर के जीवन पर आधारित महाकाव्य है जो हमें महाकवि कालिदास, भारवि, श्रीहर्ष एव माघ आदि के महाकाव्यो की याद दिलाता है। इस काव्य में इन कवियो के महाकाव्यो की शैली को पूर्ण रूप से अपनाया गया है। तथा "माघे सन्ति त्रयो गणा." वाली कहावत में वीरोदय काव्य में पूर्णत: चरितार्थ होती है।

जयोदय काव्य में जयकुमार सुलोचना की कथा का वर्णन किया गया है। काव्य का प्रमुख उद्देश्य अपरिग्रह व्रत का महात्म्य दिखलाना है। इस काव्य में 28 सर्ग हैं जो आचार्य श्री के महाकाव्यो में सबसे बडा काव्य है। इसकी सस्कृत टीका भी स्वयं आचार्य श्री ने की है जिसमें काव्य का वास्तविक अर्थ समझने में पाठको को सुविधा दी गई है। यह महाकाव्य संस्कृत टीका एव हिन्दी अर्थ सहित शीघ्र ही प्रकाशित होने वाला है।

दयोदय चम्पू में मृगसेन धीवर की कथा वर्णित है। महाकाव्यो मे सामान्य वर्ग के व्यक्ति को नायक के रूप में प्रस्तुत करना जैन कवियो की परम्परा रही है और इस परम्परा के आधार पर इस काव्य में एक सामान्य जाति के व्यक्ति के व्यक्तित्व को उभारा गया है। धीवर जाति हिंसक होती है किन्तु मृगसेन द्वारा अहिंसा व्रत लेने के कारण इसके जीवन में कितना निखार आता है और अहिंसा व्रत का कितना महत्व है इस तथ्य को प्रस्तुत करने के लिये आचार्य श्री ने दयोदय चम्पू काव्य की रचना की है। इसमे सात लम्ब (अधिकार) है और सस्कृत गद्य पद्य में निर्मित यह काव्य सस्कृत भाषा का अनूठा काव्य है।

आचार्य श्री ने सस्कृत में काव्य रचना के साथ-साथ हिन्दी में भी कितने ही काव्य लिखे है। कुछ प्राचीन ग्रन्थो का हिन्दी में अनुवाद किया तथा कर्तव्य-पथ-प्रदर्शन जैसी कृतियो द्वारा जन साधारण को छोटी-छोटी कथाओ के रूप में दैनिक कर्त्तव्यो पर प्रकाश डाला है। ऋषभदेव चरित हिन्दी का एक प्रबन्ध काव्य है जिसके 17 अध्यायो में आदि तीर्थंकर ऋषभदेव का जीवन चरित निबद्ध है। इस काव्य में आचार्य श्री ने मानव को सामान्य धरातल से उठाकर जीवन को सुखी एव समुन्नत बनाने की प्रेरणा दी है।

उक्त विद्वानों के अतिरिक्त पं. चैनसुखदास न्यायतीर्थ, प. इन्द्रलाल शास्त्री, प. मूलचन्द शास्त्री, प. श्री प्रकाश शास्त्री के नाम विशेषत: उल्लेखनीय हैं। प चैनसुखदास जी का जैनदर्शनसार, भावना-विवेक, पावनप्रवाह, निक्षेपचक्र सस्कृत की उत्कृष्ट रचनायें है। जैन दर्शनसार में जैन दर्शन के सार को जिस उत्तम रीति से प्रतिपादित किया गया है वह प्रशंसनीय है। प. मूलचन्द शास्त्री का अभी वचनदूतम् खण्ड काव्य प्रकाशित हुआ है। इस काव्य में मेघदूत की चतुर्थपंक्ति को लेकर राजुल के मनोभावो को नेमि के पास प्रेषित किया गया है।

जैन-संस्कृत महाकाव्य : 5

—डा. सत्यव्रत

भारतीय संस्कृति के विभिन्न अगों की भांति साहित्य के उन्नयन तथा विकास में भी राजस्थान ने मल्यवान् योग दिया है 1। जैन-बहुल प्रदेश होने के नाते संस्कृत-महाकाव्य की समृद्धि में जैन कवियो ने श्लाघ्य प्रयत्न किया है। यह सुखद आश्चर्य है कि जैन साधुओ ने, दीक्षित जीवन तथा निश्चित दृष्टिकोण की परिधि मे बद्ध होते हुए भी, साहित्य के व्यापक क्षेत्र में झाकने का साहस किया है, जिसके फलस्वरूप वे न केवल साहित्य की विभिन्न विधाओ की अपितु विभिन्न विधाओ की नाना शैलियो की रचनाओ से भारती के कोष को समृद्ध बनाने मे सफल हुए हैं। राजस्थान के जैन कवियो ने शास्त्रीय, ऐतिहासिक, पौराणिक, चरितात्मक तथा चित्र-काव्य शैली के संस्कृत-महाकाव्यो की रचना करके संस्कृत काव्य-परम्परा पर अमिट छाप अंकित कर दी है।

शास्त्रीय-महाकाव्य.—वाग्भट का नेमिनिर्वाण (बारहवी शताब्दी) राजस्थान में रचित शास्त्रीय शैली का कदाचित् प्राचीनतम जैन संस्कृत-महाकाव्य है। काव्य मे यद्यपि इसके रचनाकाल अथवा रचना-स्थल का कोई उल्लेख नही है, किन्तु जैन सिद्धान्त भवन, आरा तथा पं. दौर्बलि जिनदास शास्त्री की हस्तप्रति के अतिरिक्त प्रशस्ति-श्लोक के अनुसार नेमिनिर्वाण का निर्माता अहिछत्रपुर का वासी था, जो म. म. ओझा जी के विचार में नागौर का प्राचीन नाम है[2]।

नेमि प्रभु के चरित के आधार पर जैन संस्कृत-साहित्य में दो महाकाव्यो की रचना हुई है। वाग्भट के प्रस्तुत काव्य के अतिरिक्त कीर्तिराज उपाध्याय का नेमिनाथ महाकाव्य इस विषय की अन्य महत्वपूर्ण कृति है। नेमिनिर्वाण की भाति नेमिनाथ महाकाव्य (पन्द्रहवी शताब्दी) में भी प्रशस्ति का अभाव है, किन्तु कवि की गुरु परम्परा, विहार क्षेत्र आदि के आधार पर इसे राजस्थान रचित मानना सर्वथा न्यायोचित है। कीर्तिराज को उपाध्याय तथा आचार्य पद पर क्रमश महेवा तथा जैसलमेर में प्रतिष्ठित किया गया था। कवि के जीवन-काल सम्वत् 1505, मे लिखित काव्य की प्रति की बीकानेर में प्राप्ति भी कीर्तिराज के राजस्थानी होने की ओर सकेत करती है।

दोनो काव्यो में तीर्थकर नेमिनाथ के जीवन-वृत्त की प्रमुख घटनाएं समान हैं, किन्तु उनके प्रस्तुतीकरण में बहुत अन्तर है। वाग्भट ने कथानक के स्वरूप और पल्लवन में बहुधा जिनसेन प्रथम के हरिवंश पुराण का अनुगमन किया है। दोनो में स्वप्नों की सख्या तथा क्रम समान है। देवताओ का आगमन, जन्माभिषेक, नेमि प्रभु की पूर्व–भवावली, तपश्चर्या,

---

1. भारतीय संस्कृति एवं साहित्य में राजस्थान के योगदान के लिए देखिये।
K. C Jain Jainism in Rajasthan, Sholapur, 1963.
2. नेमिचन्द्र शास्त्री : संस्कृत काव्य के विकास में जैन कवियो का योगदान, पृष्ठ 282.

केवल ज्ञान प्राप्ति, धर्मोपदेश तथा निर्वाण-प्राप्ति आदि घटनाएं भी जिनसेन के विवरण पर आधारित है। नेमिनाथ महाकाव्य की कथावस्तु अधिक विस्तृत नही है किन्तु कवि की अलंकारी-वृत्ति ने उसे सजा-संवार कर बारह सर्गों का विस्तार दिया है। नेमिनिर्वाण में मूल कथा से सम्बन्धित घटनाएं और भी कम हैं। सब मिलाकर भी इसका कथानक नेमिनाथ काव्य की अपेक्षा छोटा माना जाएगा। पर वाग्भट ने उसमें एक ओर वस्तु-व्यापार के परम्परागत वर्णनो को ठूसकर और दूसरी ओर पुराण-वर्णित प्रसंगों को आवश्यकता से अधिक महत्व देकर उसे पन्द्रह सर्गों की विशाल काया प्रदान की है। ऐसा करने से वे अपने स्रोत तथा महाकाव्य के बाह्य तत्वो के प्रति भले ही निष्ठावान् रहे हों परन्तु वे स्वाभाविकता तथा सतुलन से दूर भटक गये हैं। वीतराग तीर्थंकर के जीवन से सम्बन्धित रचना मे, पूरे छह सर्गो मे, कुसुमावचय, जल-क्रीडा, चन्द्रोदय, मधुपान, सम्भोग आदि के शृ गारी वर्णनो की क्या सार्थकता है ? स्पष्टत वाग्भट काव्य-रूढियो के जाल से मुक्त होने मे असमर्थ हैं। इसी परवशता के कारण उसे शान्त-पर्यवसायी काव्य मे पान-गोष्ठी और रति-क्रीडा का रगीला चित्रण करने मे भी कोई वैचित्र्य दिखाई नही देता। काव्य-रूढियो का समावेश कीर्तिराज ने भी किया है, किन्तु उसने विवेक तथा संयम से काम लिया है। उसने जल-क्रीडा, सूर्यास्त, मधुपान आदि मूल कथा से असबद्ध तथा अनावश्यक प्रसगो की तो पूर्ण उपेक्षा की है, नायक के पूर्वजन्म के वर्णन को भी काव्य मे स्थान नही दिया है। उनके तप, समवसरण तथा देशना का भी बहुत संक्षिप्त उल्लेख किया है जिससे काव्य नेमिनिर्वाण जैसे विस्तृत वर्णनो से मुक्त रहता है। अन्यत्र भी कीर्तिराज के वर्णन सन्तुलन की परिधि का उल्लघन नही करते। जहाँ वाग्भट ने तृतीय सर्ग में प्रातःकाल का वर्णन करके अन्त में जयन्त देव के शिवा के गर्भ मे प्रविष्ट होने का केवल एक पद्य में उल्लेख किया है वहा कीर्तिराज ने नेमिनिर्वाण के अप्सराओ के आगमन के प्रसग को छोडकर उसके द्वितीय तथा तृतीय सर्गों मे वर्णित स्वप्नदर्शन तथा प्रभात वर्णन का केवल एक सर्ग में समाहार किया है। इसी प्रकार वाग्भट ने वसन्त वर्णन पर पूरा एक सर्ग व्यय किया है जबकि कीर्तिराज ने अकेले आठवे सर्ग का उपयोग छहो ऋतुओ का रोचक चित्रण करने मे किया है।

नेमिनिर्वाण तथा नेमिनाथ महाकाव्य दोनो ही सस्कृत महाकाव्य के ह्रासकाल की रचनाएं है। इस युग के अन्य अधिकाश महाकाव्यो की तरह इनमें भी वे प्रवृत्तिया दृष्टिगत होती हैं जिनका प्रवर्तन भारवि ने किया था और जिनको विकसित कर माघ ने साहित्य पर प्रभुत्व स्थापित किया था। वाग्भट पर यह प्रभाव भरपूर पड़ा है जबकि कीर्तिराज अपने लिये एक समन्वित मार्ग निकालने मे सफल हुए है। माघ का प्रभाव वाग्भट की वर्णन-शैली पर भी लक्षित होता है, उनके वर्णन माघ की तरह ही कृत्रिम तथा दूरारूढ कल्पना से आक्रान्त है। वाग्भट की प्रवृत्ति अलकरण की ओर है। कीर्तिराज के काव्य में सहजता है, जो काव्य की विभूति है और कीर्तिराज की श्रेष्ठता की द्योतक भी। कवित्व—शक्ति की दृष्टि से दोनो में अधिक अन्तर नही है[1]।

राजस्थान के शास्त्रीय महाकाव्यो मे जिनप्रभसूरिकृत श्रेणिक चरित को प्रतिष्ठित पद प्राप्त है। वृद्धाचार्य प्रबन्धावली के जिनप्रभसूरि-प्रबन्ध के अनुसार जिनप्रभ मोहिल-वाडी लाडनूं के श्रीमाल ताम्बी गोत्रीय श्रावक महाधर के आत्मज थे[2]। सम्वत् 1356 में रचित श्रेणिकचरित अपरनाम 'दुर्गवृत्तिद्व्याश्रय महाकाव्य' जिनप्रभसूरि की काव्यकीर्ति का आधार-स्तम्भ है। अठारह सर्गों के इस महाकाव्य में भगवान् महावीर के समका-

1 नेमिनिर्वाण तथा नेमिनाथ महाकाव्य के विस्तृत तुलनात्मक विवेचन के लिये देखिये लेखक द्वारा सम्पादित नेमिनाथ महाकाव्य के मुद्रणाधीन संस्करण की भूमिका।

2. मणिधारी जिनचन्द्रसूरि अष्टम शताब्दी स्मृतिग्रन्थ, पृ. 33।

लीन राजा श्रेणिक का जीवनचरित वर्णित है। इसके प्रथम सात सर्ग पुस्तकाकार प्रकाशित हो चुके हैं, शेष ग्यारह सर्ग अभी अमुद्रित हैं। श्रेणिकचरित की एक हस्तलिखित प्रति जैन शालानो भण्डार, खम्भात में विद्यमान है। श्रेणिकचरित में शास्त्रीय और पौराणिक शैलियों के तत्वों का ऐसा मिश्रण है कि इसे गेटे के शब्दों में धरा तथा आकाश का मिलन कहा जा सकता है।

श्रेणिकचरित का कथानक स्पष्टतया दो भागों में विभक्त है। प्रथम ग्यारह सर्ग, जिनमें श्रेणिक की धार्मिकता और जिनेश्वर की देशनाओं का वर्णन है, प्रथम खण्ड के अन्तर्गत आते हैं। हार के खोने और उसकी खोज की कथा वाले शेष सात सर्गों का समावेश द्वितीय भाग में किया जा सकता है। कथानक के ये दोनों खण्ड अतिसूक्ष्म तथा शिथिल तन्तु से आबद्ध हैं। कथानक में कतिपय अंश तो सर्वथा अनावश्यक प्रतीत होते हैं। सुलसोपाख्यान इसी कोटि का प्रसंग है, जो काव्य में बलात् ठूंसा गया है, यद्यपि कथावस्तु में इसका कोई औचित्य नहीं है।

श्रेणिकचरित के कर्त्ता का मुख्य उद्देश्य काव्य के व्याज से कातन्त्र व्याकरण की दुर्गवृत्ति के अनुसार व्याकरण के सिद्ध प्रयोगों को प्रदर्शित करना है। इस दृष्टि से वे भट्टि के अनुगामी हैं और भट्टिकाव्य की तरह श्रेणिकचरित को न्यायपूर्वक शास्त्रकाव्य कहा जा सकता है[1]।

टीका की अवतरणिका के प्रासंगिक उल्लेख के अनुसार जयशेखरसूरि के जैन कुमारसम्भव की रचना खम्भात में सम्पन्न हुई थी, किन्तु कवि के शिष्य धर्मशेखर ने काव्य पर टीका सांभर में लिखी, इसका स्पष्ट निर्देश टीका-प्रशस्ति में किया गया है[2]। अतः यहां इसका सामान्य परिचय देना अप्रासंगिक न होगा। महाकवि कालिदास-कृत कुमारसम्भव की भांति जैन कुमारसम्भव का उद्देश्य कुमार (भरत) के जन्म का वर्णन करना है, किन्तु जिस प्रकार कुमारसम्भव के प्रामाणिक अंश (प्रथम आठ सर्ग) में कार्तिकेय का जन्म वर्णित नहीं है, वैसे ही जैन कवि के महाकाव्य में भी भरतकुमार के जन्म का कहीं उल्लेख नहीं हुआ है। और, इस तरह दोनों काव्यों के शीर्षक उनके प्रतिपादित विषय पर पूर्णतया चरितार्थ नहीं होते। परन्तु, जहां कालिदास ने अष्टम सर्ग में पार्वती के गर्भाधान के द्वारा कुमार कार्तिकेय के भावी जन्म की व्यंजना कर काव्य को समाप्त कर दिया है, वहां जैन कुमारसम्भव में सुमंगला के गर्भाधान का निर्देश करने के पश्चात् भी (6/74) काव्य को पांच अतिरिक्त सर्गों में लिखा गया है। यह अनावश्यक विस्तार कवि की वर्णनात्मक प्रकृति के अनुरूप भले ही हो, इससे काव्य की अन्विति नष्ट हो गई है, कथानक का विकासक्रम छिन्न हो गया है और काव्य का अन्त अतीव आकस्मिक ढंग से हुआ है।

खरतरगच्छीय सूरचन्द्र का स्थूलभद्र गुणमाला काव्य राजस्थान में रचित एक अन्य शास्त्रीय महाकाव्य है। हरविजय, रुक्मिणाभ्युदय आदि महाकाव्यों के समान स्थूलभद्रगुणमाला में भी वर्णनों की भित्ति पर महाकाव्य की अट्टालिका का निर्माण किया गया है। इसके उपलब्ध साढ़े पन्द्रह सर्गों (अधिकांश) में नन्दराज के महामन्त्री शकटाल के पुत्र स्थूलभद्र तथा पाटलिपुत्र की वेश्या कोशा के प्रणय की सुकुमार पृष्ठभूमि में मन्त्रि-पुत्र की प्रव्रज्या का वर्णन करना कवि को अभीष्ट है।

---

1. विस्तृत विवेचन के लिये देखिये, श्यामशंकर दीक्षित कृत तेरहवीं चौदहवीं शताब्दी के जैन संस्कृत महाकाव्य, पृ. 120-143।

2. देशे सपादलक्षे सुखलक्ष्ये पद्यरे पुरप्रवरे।
   नयनवसुवार्धिचन्द्रे वर्षे हर्षेण निर्मिता सेयम्॥ 5॥

स्थूलभद्र गुणमाला की एक प्रति केसरियानाथ जी का मन्दिर, जोधपुर में स्थित ज्ञान भण्डार मे विद्यमान है। दुर्भाग्यवश यह हस्तलेख अधूरा है। इसमें न केवल प्रथम दो पत्र अप्राप्त हैं, अन्तिम से पूर्ववर्ती तीन पत्र भी नष्ट हो चुके हैं। घाणेराव भण्डार की काव्य की एक पूर्ण प्रति की प्रशस्ति से ज्ञात होता है कि कवि ने स्थूलभद्र गुणमाला की पूर्ति जयपुर नरेश जयसिंह के शासन काल में सम्वत् 1680 (1623 ई.) पौष तृतीया को जयपुर के उपनगर सांगानेर (संग्राम नगर) में की थी[1]। इस प्रति से यह भी स्पष्ट है कि काव्य मे सतरह अधिकार है और इसकी समाप्ति व स्थूलभद्र के उपदेश से वेश्या के प्रतिबोध तथा नायक के गुणगान एव स्वर्गारोहण से होती है[2]। खेद है, यह प्रति हमे अध्ययनार्थ प्राप्त नही हो सकी।

कथानक के नाम पर स्थूलभद्र गुणमाला में वर्णनो का जाल बिछा हुआ है। दो-तीन सर्गो में सौन्दर्य-चित्रण करना तथा पांच स्वतन्त्र सर्गों मे विस्तृत ऋतु-वर्णन कर देना कवि की काव्य-शैली का उग्र प्रमाण है। भोग की अति की परिणति अनिवार्यत भोग के त्याग में होती है, अपने इस सन्देश को कवि ने सरस काव्य के परिधान मे प्रस्तुत किया है, किन्तु उसे अधिक आकर्षक बनाने के आवेश मे वह काव्य में सन्तुलन नही रख सका। काव्य में वर्णित सभी उपकरणो सहित इसे 6-7 सर्गों में सफलता-पूर्वक समाप्त किया जा सकता था। किन्तु सूरचन्द्र की काव्य-प्रतिभा तथा वर्णनात्मक अभिरुचि ने इसे 17 सर्गों का वृहद् आकार दे दिया है। किसी विषय से सम्बन्धित अपनी कल्पना का कोश जब तक वह रीता नही कर देता, कवि आगे बढने का नाम नही लेता। यह सत्य है कि इन वर्णनो में कवि-प्रतिभा का भव्य उन्मेष हुआ है, किन्तु उनके अतिशय के विस्तार ने काव्य चमत्कार को नष्ट कर दिया है। स्थूलभद्र गुणमाला का महत्व इसके वर्णनो तक सीमित है, किन्तु ये इसके लिए घातक भी बने हैं। कवि की विस्तार भावना ने उसकी कवित्व-शक्ति को दबा दिया है। सूरचन्द्र की काव्य-प्रतिभा प्रशसनीय है, परन्तु उसने अधिकतर उसका अनावश्यक क्षय किया है। सारा काव्य सूक्ष्म वर्णनो से भरा हुआ है।

माघकाव्य का समस्यापूर्ति रूप मेघविजयगणि-कृत देवानन्द महाकाव्य सात सर्गों की प्रौढ एव अलकृत कृति है। इसमे जैन धर्म के प्रसिद्ध प्रभावक, तपागच्छीय आचार्य विजयदेवसूरि तथा उनके पट्टधर विजयप्रभसूरि के साधु-जीवन के कतिपय प्रसगों को निबद्ध करने का उपक्रम किया गया है, किन्तु कवि का वास्तविक उद्देश्य चित्रकाव्य के द्वारा पाठक को चमत्कृत करते हुए अपने पाण्डित्य तथा रचना-कौशल की प्रतिष्ठा करना है। इसीलिये देवानन्द के तथाकथित इतिहास का ककाल चित्रकाव्य की बाढ मे डूब गया है और यह मुख्यत. अलकृति-प्रधान चमत्कारजनक काव्य बन गया है। इसकी रचना मारवाड के सादडी नगर मे सम्वत् 1727 (1650 ई) मे विजयदशमी को पूर्ण हुई थी, इसका उल्लेख काव्य की प्रान्त प्रशस्ति में किया गया है। इसकी एक प्रतिलिपि स्वय ग्रन्थकार ने ग्वालियर में की थी[3]।

---

1. संग्रामनगरे तस्मिन् जैनप्रासादसुन्दरे।
   काशीवत्काशते यत्र गगेव निर्मला नदी ॥ 296 ॥
   राज्ये श्रीजयसिंहस्य मानसिंहस्यसन्तते । 298

2 श्री स्थूलभद्रस्य गुणमालानामनि चरिते वेश्या-प्रतिबोधन-श्राविकीकरण-श्रीगुरुपाद-मूलसमागत-श्रीस्थूलातिप्रशसना ' स्थूलभद्रस्वर्गमन-गुणमाला-समर्थनवर्णनो नाम सप्तदशो-धिकार सम्पूर्ण.।

3-देवानन्दमहाकाव्य, ग्रन्थप्रशस्ति 3।

देवानन्द की रचना माघ के सुविख्यात काव्य शिशुपालवध की समस्यापूर्ति के रूप मे हुई है। इसमे माघ के प्रथम सात सर्गों को ही समस्या पूर्ति का आधार बनाया गया है। अधिकतर माघकाव्य के पद्यो के चतुर्थ पाद को समस्या के रूप में ग्रहण करके अन्य तीन चरणों की रचना कवि ने स्वय की है, किन्तु कही-कही दो अथवा तीन चरणो को लेकर भी समस्यापूर्ति की गई है। कुछ पद्यो के विभिन्न चरणो को लेकर अलग-अलग श्लोक रचे गये हैं। माघ के 3/48 के चारो पादो के आधार पर मेघविजय ने चार स्वतन्त्र पद्य बनाये हैं (3/51-54)। कभी-कभी एक समस्या-पाद की पूर्ति चार पद्यो में की गई है। माघ के 3/69 के तृतीय चरण 'प्रायेण निष्क्रामति चक्रपाणौ' का कवि ने चार पद्यो में प्रयोग किया है (3/117-120)। कहीं-कहीं एक समस्या दो-दो पद्यो का विषय बनी है। 'सहरितालसमाननधाशुक' के आधार पर मेघविजय ने 4/27-28 की रचना की है। 'क्वचित् कपिशयन्ति चामीकरा' की पूर्ति चतुर्थ सर्ग के बत्तीसवें तथा तैंतीसवें पद्य में की गयी है। मेघविजय ने एक ही पद्य में यथावत दो बार प्रयुक्त करके भी अपने रचना-कौशल का चमत्कार दिखाया है। 'अक्षमिष्ट मधुवासरपारम्, 'प्रभावनी केतनवैजयन्ती' 'परितस्ततार रवेरसत्यवश्यम्' को क्रमश 6/79-80,81 के पूर्वार्ध तथा अपरार्ध में प्रयुक्त किया गया है, यद्यपि, दोनो भागो में, इनके अर्थ मे, आकाश-पाताल का अन्तर है।

भाषा का कुशल शिल्पी होने के कारण मेघविजय ने माघकाव्य से गृहीत समस्याओं का बहुधा सर्वथा अज्ञात तथा चमत्कारजनक अर्थ किया है। वाछित नवीन अर्थ निकालने के लिये कवि को भाषा के साथ मनमाना खिलवाड करना पडा है। कविने अभीष्ट अर्थ की प्राप्ति अधिकतर नवीन पदच्छेद के द्वारा की है। अभिनव पदच्छेद की सहायता से वह ऐसे विचित्र अर्थ निकालने में सफल हुआ है, जिनकी कल्पना माघ ने भी कभी नही की होगी। इसमे उसे पूर्वचरण की पदावली से बहुत सहायता मिली है। देवानन्द मे माघ के कतिपय पद्य भी यथावत्, अविकल ग्रहण किये गये है, किन्तु अकल्पनीय पदच्छेद से कवि ने उनसे चित्र-विचित्र तथा चमत्कारी अर्थ निकाले हैं। देवानन्द के तृतीय सर्ग के प्रथम तीन पद्य माघ के उसी सर्ग के प्रथम पद्य है, पर उनके अर्थ में विराट् अन्तर है। कवि के ईप्सित अर्थ को हृदयगम करना सर्वथा असम्भव होता यदि कवि ने इस प्रकार के पद्यो पर टिप्पणी लिखने की कल्पना न की होती।

माघकाव्य से गृहीत समस्याओ की सफल पूर्ति के लिये उसी कोटि का वस्तुत उससे भी अधिक, गुरु गम्भीर पाण्डित्य अपेक्षित है। माघ की भाति मेघविजय की सर्वतोमुखी विद्वत्ता का परिचय तो उनके काव्य से नही मिलता क्योकि देवानन्द की विषयवस्तु ऐसी है कि उसमें शास्त्रीय पाण्डित्य के प्रकाशन का अधिक अवकाश नही है। किन्तु अपने कथ्य को जिस प्रौढ भाषा तथा अलकृत शैली मे प्रस्तुत किया है, उससे स्पष्ट है कि मेघविजय चित्रमार्ग के सिद्धहस्त कवि है। उनकी तथा माघ की शैली में कही भी अन्तर दिखाई नही देता। अपने प्रयोजन की सिद्धि के लिये कवि ने भाषा का जो हृदयहीन उत्पीडन किया है, उससे जूझता पाठक झुझला उठता है तथा इस भाषायी जादूगरी के चक्रव्यूह में फसकर वह हताश हो जाता है, परन्तु यह शाब्दी-क्रीडा तथा भाषात्मक उछलकूद, उसके गहन पाण्डित्य तथा भाषाधिकार के द्योतक हैं, इसमे तनिक भी सन्देह नही है। मेघविजय का उद्देश्य ही चित्रकाव्य से पाठक को चमत्कृत करना है।

मेघविजय का एक अन्य चित्रकाव्य सप्तसन्धान नानार्थक काव्य-परम्परा का उत्कर्ष है। नौ सर्गों के इस काव्य मे जैन धर्म के पाच तीर्थंकरो-ऋषभदेव, शान्तिनाथ, नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, महावीर तथा पुरुषोत्तम राम एव कृष्ण वासुदेव का चरित श्लेषविधि से गुम्फित है। काव्य में यद्यपि इन महापुरुषो के जीवन के कुछ महत्वपूर्ण प्रकरणो का ही निबन्धन हुआ

है, किन्तु उन्हें एक साथ चित्रित करने के दुस्साध्य कार्य की पूर्ति के लिये कवि को विकट चित्रशैली तथा उच्छृ खल शाब्दी-क्रीडा का आश्रय लेना पडा है जिससे काव्य वज्रवत् दुर्भेद्य बन गया है। टीका के जल-पाथेय के बिना काव्य के इस मरुस्थल को पार करना सर्वथा असभव है । ग्रन्थप्रशस्ति के अनुसार सप्तसन्धान की रचना सम्वत् 1760 मे हुई थी 1 ।

सात व्यक्तियो के चरित को एक साथ ग्रथित करना दुस्साध्य कार्य है। प्रस्तुत काव्य मे यह कठिनाई इसलिये और बढ गयी है कि यहा जिन महापुरुषो का जीवनवृत्त निबद्ध है, उनमे से पाच जैन धर्म के तीर्थकर है, अन्य दो हिन्दू धर्म के आराध्य देव, यद्यपि जैन साहित्य में भी वे अज्ञात नही है । कवि को अपने लक्ष्य की प्राप्ति मे सबसे अधिक सहायता सस्कृत भाषा की सश्लिष्ट प्रकृति से मिली है । श्लेष एक ऐसा अलकार है जिसके द्वारा कवि भाषा का इच्छानुसार तोड-मरोड कर उससे अभीष्ट अर्थ निकाल सकता है। इसलिए काव्य मे श्लेष की निर्बाध योजना की गयी है, जिससे काव्य का सातो पक्षो में अर्थ ग्रहण किया जा सके। किन्तु यहा यह ज्ञातव्य है कि सप्तसन्धान के प्रत्येक पद्य के सात अर्थ नही हैं। वस्तुत ऐसे पद्य बहुत कम है जिनके सात स्वतन्त्र अर्थ किये जा सकते है। अधिकांश पद्यो के तीन अर्थ निकलते है, जिनमें से एक जिनेश्वरो पर घटित होता है, शेष दो का सम्बन्ध राम तथा कृष्ण से है। तीर्थकरो की निजी विशेषताओ के कारण कुछ पद्यो के चार, पांच अथवा छह अर्थ भी किये गये हैं । कुछ पद्य तो श्लेष से सर्वथा मुक्त है तथा उनका केवल एक अर्थ है । वही अर्थ सातो नायको पर चरितार्थ होता है। प्रस्तुत काव्य का यही सप्तसन्धानत्व है । कवि की यह उक्ति भी—काव्येऽस्मिन्नत एवं सप्त कथिता अर्था. समर्थाः श्रिये (4142)—इसी अर्थ में सार्थक है । इस सप्तसन्धानात्मक गड्डमड्ड के कारण अधिकाश काव्य-नायको के चरित धूमिल रह गये है। ऋषभदेव की कथा में ही कुछ विस्तार मिलता है।

अपने काव्य की समीक्षा की जो आकाक्षा कवि ने पाठक से की है, उसकी पूर्ति में उसकी दूरारूढ शैली सब से बडी बाधा है । पर हमें यह नही भूलना चाहिये कि सप्तसन्धान का उद्देश्य चित्रकाव्य-रचना मे कवि की दक्षता का प्रदर्शन करना है, सरस कविता से पाठक का मनोरजन करना नही। इसमें कवि पूर्णतः सफल हुआ है ।

ऐतिहासिक महाकाव्य —राजस्थान के जैन कवियो ने दो प्रकार के ऐतिहासिक महाकाव्यो के द्वारा अपनी ऐतिहासिक प्रतिभा की प्रतिष्ठा की है । प्रथम वर्ग के हम्मीर महाकाव्य, कुमारपाल चरित तथा वस्तुपालचरित आदि भारतीय इतिहास के गौरवशाली शासको के ऐतिहासिक वृत्त का निरूपण करते है। दूसरी कोटि के ऐतिहासिक महाकाव्य वे है जिनमे सयम धन-साधुओ का जीवन-वृत निबद्ध है, यद्यपि इन तपस्वियो का धर्मशासन सम्राटो से भी अधिक मान्य तथा तेजस्वी था। रोचक सयोग है, इनका इतिहास-पक्ष सस्कृत के प्राचीन बहु प्रसंसित ऐतिहासिक महाकाव्यो की अपेक्षा कही अधिक विश्वसनीय है । इनमे से कुछ कवित्व की दृष्टि से भी बहुत समर्थ तथा सफल है ।

हम्मीर महाकाव्य देश के किस भाग मे लिखा गया, इसका कोई सकेत काव्य मे उपलब्ध नही । यद्यपि जैसे स्वय नयचन्द्र ने सूचित किया है उसे हम्मीर महाकाव्य के प्रणयन की प्रेरणा तोमरनरेश वीरम के सभासदो की इस व्यग्योक्ति से मिली थी कि प्राचीन कवियो के समान उत्कृष्ट काव्य-रचना करने वाला अब कोई कवि नही [2] तथापि जिस तल्लीनता तथा तादात्म्य से कवि ने राजस्थान के मध्यकालीन इतिहास का निरूपण किया है उस आधार पर यह

---

1 ग्रन्थ प्रशस्ति, 3

2. हम्मीर महाकव्य, 14/43

कल्पना करना अयुक्त नही कि नयचन्द्र यदि जन्मना राजस्थानी नही थे, तो भी इस प्रदेश से उनका गहरा सम्बन्ध रहा होगा। तभी तो हम्मीरचरित का प्रणयन करने की लालसा उन्हे दिन–रात मथ रही थी [1]।

चौदह सर्गों के इस वीरांक काव्य मे राजपूती शौर्य की साकार प्रतिमा महाहठी हम्मीरदेव तथा भारतीय इतिहास के कुटिलतम शासक अलाउद्दीन खिलजी के घनघोर युद्धो तथा अन्तत हम्मीर के प्राणोत्सर्ग का गौरवपूर्ण इतिहास प्रशस्त शैली म निबध्द है। बध्दमूल-परम्परा के अनुसार यद्यपि कवि ने इतिहास का काव्य के आकर्षक परिधान में प्रस्तुत किया है, किन्तु हम्मीर महाकाव्य की विशेषता यह है कि इसका ऐतिहासिक भाग कवित्व के इन्द्रधनुषी सौन्दर्य में विलीन नही हुआ अपितु वह स्पष्ट, सुग्रथित, प्रामाणिक तथा अलौकिक तत्वो से प्राय मुक्त है तथा इसकी पुष्टि यवन इतिहासकारो के स्वतन्त्र विवरणो से होती है। काव्य की दृष्टि से भी नयचन्द्र का ग्रन्थ उच्च बिन्दु का स्पर्श करता है। स्वय कवि को इसमें काव्यगत वैशिष्ट्य पर गर्व है [2]। ज्ञातव्य है कि काव्य का मुख्य प्रतिपाद्य-हम्मीरकथा-केवल छ. (8-13) सर्गों तक सीमित है। प्रथम चार सर्ग, जिनमें चाहमानवश की उत्पत्ति तथा हम्मीर के पूर्वजो का वर्णन है, एक प्रकार से, हम्मीरकथा की भूमिका है। नयचन्द्र के सृजन मे इतिहास तथा काव्य का यह रासायनिक सम्मिश्रण हम्मीर महाकाव्य को अत्युच्च धरातल पर प्रतिष्ठित करता है।

वस्तुपाल-चरित की रचना जिनहर्ष ने चित्रकूटपुर (चित्तौड) के जिनेश्वर मन्दिर में सम्वत् 1497 (सन् 1440) में की थी [3]। इसके आठ विशालकाय प्रस्तावों में चौलुक्यनरेश वीरधवल के नीतिनिपुण महामात्य वस्तुपाल की बहुमुखी उपलब्धियो, दुर्लभ मानवीय गुणों, साहित्यप्रेम तथा जैन धर्म के प्रति अपार उत्साह और उसके प्रचार-प्रसार के लिये किये गये अथक प्रयत्नो, कूटनीतिक कौशल एव प्रशासनिक प्रवीणता का सागोपाग वर्णन हुआ है। वस्तुत काव्य में वस्तुपाल तथा उसके अनुज तेजपाल दोनो का चरित गुम्फित है, किन्तु वस्तुपाल के गरिमापूर्ण व्यक्तित्व के प्रकाश में तेज-पाल का वृत्त मन्द पड गया है। वस्तु-पाल की प्रधानता के कारण ही काव्य का नाम वस्तुपाल चरित रखा गया है।

वस्तुपाल चरित को ऐतिहासिक रचना माना जाता है। निस्सन्देह इसमे चालुक्य-वश, धौलका-नरेश वीरधवल, विशेषकर उसके प्रखरमति अमात्य वस्तुपाल के विषय में कुछ उपयोगी जानकारी प्राप्त होती है। किन्तु इन सूक्ष्म ऐतिहासिक सकेतो को पौराणिकता के चक्रव्यूह में इस प्रकार बन्द कर दिया गया है कि पाठक का अभिमन्यु इससे जूझन-जूझता वही खेत रह जाता है। 4559 पद्यो के इस बृहत् काव्य में कवि ने ऐतिहासिक सामग्री पर 200-250 से अधिक पद्य व्यय करना उपयुक्त नही समझा है। सतोष यह है कि वस्तुपाल चरित का ऐतिहासिक अश यथार्थ, प्रामाणिक तथा विश्वसनीय है। यही इस काव्य का आकर्षण है।

जैनाचार्यों के इतिहास-सम्बन्धी महाकाव्यो मे श्रीवल्लभ पाठक का विजयदेव माहात्म्य महत्वपूर्ण रचना है। उन्नीस सर्गों का यह काव्य तपागच्छ के सुविज्ञात आचार्य विजयदेवसूरि के धर्म-प्रधान वृत्त का तथ्यात्मक विवरण प्रस्तुत करता है। अपने कथ्य के चित्रण में कवि ने इतनी तत्परता दिखाई है कि चरित-नायक के जीवन की विभिन्न घटनाओ के दिन, नक्षत्र, सम्वत् तक का इसमे यथातथ्य उल्लेख हुआ है। विजयदेवसूरि की धार्मिक गतिविधियो की जानकारी के लिये प्रस्तुत काव्य वस्तुत बहुत उपयोगी तथा विश्वसनीय है।

---

1. वही, 14/26
2. वही, 14/46
3. वस्तुपालचरित, प्रशस्ति, 11.

श्रीवल्लभ ने विजयदेव माहात्म्य में इसके रचनाकाल का कोई सकेत नही किया है, किन्तु काव्य के आलोडन से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि इसकी रचना सम्वत् 1687 (सन् 1630) के पश्चात् हुई थी। विविध ग्रन्थो पर कवि की टीकाओ में प्रयुक्त मारवाडी शब्दों के आधार पर यह मानना भी असगत नही कि उसका जन्म राजस्थान के मारवाड प्रदेश मे हुआ था।

देवानन्द महाकाव्य मे मेघविजय ने विजयप्रभ के चरित पर दृष्टिपात तो किया, किन्तु इससे उन्हे सतोष नही हुआ। दिग्विजय महाकाव्य के तेरह सर्गो मे पूज्य गुरु के जीवन-वृत्त का स्वतन्त्र रूप से निबद्ध करने की चेष्टा की गयी है। इसकी रचना के मूल में गुरुभक्ति की उदात्त प्रेरणा निहित है। किन्तु खेद है कि विद्वान् तथा प्रतिभाशाली होता हुआ भी कवि महाकाव्य रूढियो के जाल में फस कर अपने निर्धारित लक्ष्य से भ्रष्ट हो गया है। 1274 पद्यो के इस विशाल काव्य को पढने के पश्चात् भी विजयप्रभसूरि के विषय में हमारी जानकारी मे विशेष वृद्धि नही होती, यह कटु तथ्य है। सारा काव्य वर्णनो की बाढ से आप्लावित है। इतना अवश्य है कि कवि के अन्य दो काव्यो की भाति इसकी परिणति दुरूहता में नही ई है, यद्यपि इसके कुछ अशो मे भी पाण्डित्य-प्रदर्शन की प्रवृत्ति फुफकार उठी है।

पौराणिक महाकाव्य :—पौराणिक कथाओ के द्वारा जन साधारण को धर्मबोध देने की प्रवृत्ति बहुत प्रभावी तथा प्राचीन है। जैन कवियो ने पौराणिक आख्यानो के आधार पर चरितात्मक काव्य रच कर उक्त उद्देश्य की पूर्ति की है। यह बात भिन्न है कि पौराणिक काव्यो मे से कुछ अपनी प्रौढता, कवित्व तथा भाषागत सौन्दर्य के कारण शास्त्रीय काव्यो के बहुत निकट पहुच जाते है। कहना न होगा कि जैन साहित्य मे पौराणिक रचनाओ का ही बाहुल्य है।

सनत्कुमारचक्रिचरित्र (सन 1205–1221) राजस्थान के पौराणिक महाकाव्यो मे प्रतिष्ठित पद का अधिकारी है। इसके रचयिता जिनपाल उपाध्याय जिनपतिसूरि के शिष्य थे, जिनका जन्म 1153 ईस्वी मे जैसलमेर राज्य के विक्रमपुर (बीकमपुर) स्थान पर हुआ था तथा जिन्होंने अजमेर के प्रख्यात चौहान शासक पृथ्वीराज द्वितीय की सभा मे पधार कर उसे गौरवान्वित किया था।

सनत्कुमारचक्रिचरित्र के 24 सर्गो में जैन साहित्य में सुविज्ञात चक्री सनत्कुमार के चरित्र का मनोहर शैली में निरूपण किया गया है। इसमे शास्त्रीय तथा पौराणिक शैलियो का इतना गहन मिश्रण है कि इसके स्वरूप का निश्चयात्मक निर्णय करना दुष्कर है। पौराणिक तत्वो के प्राचुर्य के कारण इसे पौराणिक काव्य माना गया है, किन्तु इसकी चमत्कृति प्रधानता, चित्रकाव्य-योजना तथा पाण्डित्य-प्रदर्शन की प्रवृत्ति आदि के कारण इसे शास्त्रीय महाकाव्यो के अन्तर्गत स्थान देना भी न्यायोचित होगा। सनत्कुमारचरित्र का कथानक सुसगठित और व्यवस्थित है। इसकी समस्त घटनाऐ परस्पर सबद्ध है, जिसके फलस्वरूप इसमे अविच्छिन्नता तथा धाराबाहिकता बराबर बनी रहती है। यह महत्वपूर्ण महाकाव्य महोपाध्याय विनय सागर द्वारा सम्पादित होकर, प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान जोधपुर मे प्रकाशित हो चुका है।

अभयदेवसूरि-कृत जयन्तविजय (1221 ई.) को विशुद्ध पौराणिक महाकाव्य नही कहा जा सकता, क्योकि सनत्कुमारचक्रिचरित्र की भाति इसमे भी शास्त्रीय रूढियो का व्यापक समावेश हुआ है। इसके 19 सर्गो में विक्रमसिंह के पुत्र जयन्त का जीवनवृत्त रोचक शैली मे वर्णित है। जयन्तविजय मे कथावस्तु का सामान्यत सफल निर्वाह हुआ है। पन्द्रहवें सर्ग मे दार्शनिक सिद्धान्तो का विस्तृत विवेचन और सतरहवें सर्ग मे जयन्त और रतिसुन्दरी

के पूर्वभव का वर्णन मुख्य कथा में व्याघात पहुंचाते हैं। पौराणिकता के कारण कथा-प्रवाह में कहीं-कहीं शिथिलता अवश्य आ गयी है पर क्रम कहीं भी छिन्न नहीं होता। नवें, दसवें और चौदहवे सर्गों के युद्ध प्रसगो में पात्रों के संवाद नाटकीयता से तरलित हैं[1]।

जैन साहित्य में ऐसी रचनाओं की तो कमी नही, जिनमे पूर्वोक्त काव्यो की भांति महाकाव्य की पौराणिक तथा शास्त्रीय शैलियों के तत्व परस्पर अनुस्यूत है, पर अचलगच्छीय आचार्य माणिक्यसुन्दर के श्रीधरचरित में शास्त्र काव्य की विशेषताओं का भी गठबन्धन दिखाई देता है। इसके नौ माणिक्याक सर्गों में मगलपुर नरेश जयचन्द्र के पुत्र विजयचन्द्र का जीवन-वृत्त निबद्ध है। विजयचन्द्र पूर्व जन्म का श्रीधर है। काव्य का शीर्षक उसके भवान्तर क इसी नाम पर आधारित है। इस दृष्टि से प्रस्तुत शीर्षक काव्य पर पूर्णतया चरितार्थ नही होता। चरित-वर्णन के साथ-साथ कवि का उद्देश्य अपनी छन्द-मर्मज्ञता तथा उन्हें यथेष्ट रूप से उदाहृत करने की क्षमता का प्रदर्शन करना है। इसीलिए काव्य में 92 वर्णिक तथा मात्रिक वृत्त तथा उनके ऐसे भेदो प्रभेदो और कतिपय अज्ञात अथवा अल्पज्ञात छन्दो का प्रयोग हुआ है, जो साहित्य में अन्यत्र शायद ही प्रयुक्त हुए हो। छन्दो के प्रायोगिक उदाहरण प्रस्तुत करने के कारण श्रीधरचरित छन्दो के बोध के लिए लक्षण-ग्रन्थों की अपेक्षा कही अधिक उपयोगी है। किन्तु कवि का यह लक्ष्य, शास्त्र अथवा नानार्थक काव्यो की भांति, काव्य के लिए घातक नही है क्योंकि उसकी प्रतिभा छन्दो की धारा मे बन्दी नही है। वैसे भी अज्ञात छन्द व्याकरण के दुस्साध्य प्रयोगो के समान रस-चर्वणा में बाधक नही है।

श्रीधरचरित का कथानक बहुत सक्षिप्त है, किन्तु कवि ने उसे महाकाव्योचित परि-वेश देने के लिए प्रभात, सूर्योदय, पर्वत, नगर, दूतप्रेषण, स्वयवर आदि के वर्णनो से मासल बनाकर प्रस्तुत किया है। फलत श्रीधरचरित का कथानक वस्तु व्यापार के वर्णनो के सेतुओ से टकराता हुआ आगे बढता है। काव्य के उत्तरार्ध मे तो कवि की वर्णनात्मक प्रवृत्ति ने विकराल रूप धारण कर लिया है। आठवे तथा नवे सर्ग का ससार यक्षो, गन्धर्वों, सिद्धो, नागकन्याओ, युद्धो, नरमेध, स्त्री-हरण तथा चमत्कारो का अजीब ससार है। इनमे अति प्राकृतिक तत्वों, अबाध वर्णनो तथा विषयान्तरो का इतना बाहुल्य है कि ये सर्ग, विशेषत अष्टम सर्ग काव्य की अपेक्षा रोमाचक कथा बन गये है। काव्य की जो कथा सातवे सर्ग तक लंगडाती चली आ रही थी, वह आठवें सग म आकर एकदम ढेर हो जाती है। वस्तुत श्रीधर चरित को पौराणिक काव्य बनाने का दायित्व इन दो सर्ग पर ही है।

प्रान्त प्रशस्ति के अनुसार श्रीधरचरित की रचना सम्वत् 1463 (1406 ई.) में मेवाड के देवकुलपाटक (देलवाडा ?) नगर में सम्पन्न हुई थी।

श्रीमेदपाटदेशे ग्रन्थो माणिक्यसुन्दरेणायम्।
देवकुलपाटकपुरे गुणरसवार्धीन्दुवर्षे व्यरचि ॥ प्रशस्ति, 2.

अठारहवी शताब्दी मे प्रदेश को एक महाकाव्य प्रदान करने का श्रेय जोधपुर को है। जैसा ग्रन्थ प्रशस्ति मे सूचित किया गया है, रूपचन्द्र गणि अपरनाम रामविजय ने गौतमीय काव्य का निर्माण जोधपुर नरेश रामसिंह के शासनकाल मे, सम्वत् 1807 (सन 1650) में किया[2]। रूपचन्द्र के शिष्य क्षमाकल्याण ने इस पर म 1852 (सन् 1695) में टीका लिखी जिसका प्रारम्भ तो राजनगर (अहमदाबाद) मे किया था, किन्तु पूर्ति जैसलमर मे हुई[3]।

---

1. श्यामशकर दीक्षित : तेरहवी चौदहवी शताब्दि के जैन सस्कृत महाकाव्य, पृ 282
2. ग्रथकार-प्रशस्ति, 1–3
3. टीकाकार-प्रशस्ति, 1–3.

गौतमीय काव्य का उद्‍देश्य कविता क व्याज से जैन सिद्रान्त का निरूपण करना है। भगवान् महावीर के गणधर तथा प्रमुख शिष्य गौतम इन्द्रभूति और उनके अनुज के सशयो के निवारणार्थ कवि ने महाश्रमण के उपदेश के माध्यम से जैन दर्शन का प्रतिपादन किया है, जो पारिभाषिक शव्दावली में होने के कारण शुष्क तथा नीरस बन गया है। कवि ने प्रथम सर्ग मे ऋतु वर्णन के द्वारा काव्य में रोचकता लाने प्रयास किया है, किन्तु काव्य-कथा का सकेत किए विना प्रथम सर्ग मे ही ऋतुवर्णन मे जूट जाना अवाछनीय है और कथानक के विनियोग में कवि की कौशल-हीनता का सूचक भी ।

अपभ्रंश जैन साहित्य

अपभ्रंश साहित्य : सामान्य परिचय 1.

–डा. देवेन्द्रकुमार जैन

अपशब्द और अपभ्रंश

अपभ्र श के साहित्य के साथ भाषा से भी परिचित होना, जरूरी है। भाष्यकार के अनुसार "शब्द थोडे हैं और अपशब्द बहुत"। एक–एक शब्द के कई अपभ्रंश है, जैसे–'गो' के गावी, गौणी, गोता और गोपोतलिका। सस्कृत भाषा के सदर्भ में गो शब्द है। शेष अपशब्द है। गावी आदि शब्द, गो के अपभ्रंश है, अर्थात् तद्भव है, या गोमूलक शब्द ह जो सस्कृत के लिये अपशब्द होते हुए भी, दूसरी भाषाओ के लिय शब्द है। अत. अपशब्द और अपभ्रंश का एक अर्थ नही है, जैसा कि प्राय: भ्रम है।

भाष्यकार से लगभग छह सौ साल बाद ईसवी 3री सदी में भरत मुनि ने आभीरोक्ति को उकार बहुला बताते हुए उसका उदाहरण दिया है-'मोरल्लउ नच्चन्तउ' इसका सस्कृत में होगा 'नृत्यमान मयूर', नृत्यमान का नच्चन्त और मयूर का मोरल्लउ रूप प्राकृतिक प्रक्रिया पारकर ही सभव हो सका। अत: आभीरोक्ति आभीरो की स्वतत्र बोली न होकर सस्कृत परपरा मूलक बोली ही है,जो प्राकृतो की ओकारात प्रकृति के समानान्तर विकसित हो रही थी, और 'नियप्राकृत' में जिसका पूर्वाभास मिलता है। राम का विकास रामो और रामु दोनो रूपो में सभव है, चूंकि अपभ्र श क्रिया कृदन्त क्रिया बहुल है अत उसमें भी उकारात की प्रवृत्ति आ गई। ईसा की 6ठी सदी मे सस्कृत साहित्य समीक्षक दडी आभीरोक्ति को साहित्यिक भाषा बनने पर, अपभ्र श कहने के पक्ष में थे। इसका अर्थ है, वह भी आर्यभाषा मूलक-भाषा सस्कृत का एक विकसित रूप है।

अपभ्र श और देशी

अपभ्र श को प्राय. देशी तत्व से प्रचुर समझा जाता है। इसे भी स्पष्ट कर लेना जरूरी है। पाणिनी अपनी भाषा को वैदिक भाषा की तुलना में लोकभाषा कहते हैं, वह भाषा जो लोक में व्यवहृत हो। साहित्यरूढ होने पर सस्कृत कहलाई। प्राकृतकाल मे लोक के शब्द की जगह बोलचाल की भाषा के लिए देशी शब्द चल पडा। यह एक भाषा-वैज्ञानिक तथ्य है कि कोई भाषा बिना लोकाधार के पैदा नही होती, इसी प्रकार वह बिना सस्कार या नियमन के व्यापक और शिष्ट नही बनती। यह देशीभाषा साहित्यिक बनने पर प्राकृत कहलाई, जिसका व्याकरणिक, सस्कृत को प्रकृति मानकर किया गया। अपभ्र श कवि स्वयभु 'पउमचरिउ' को एक ओर 'देशीभाषा उभय तडुज्जल' कहते हैं और दूसरी ओर अपनी भाषा को 'गोमिल्ल वचन' से रहित भी बताते ह। स्वयभू के समय देशी-वचन का स्थान ग्राम्य-वचन ले लेता है। कहने का अभिप्राय, सस्कृत, प्राकृत और अपभ्रंश, लोक देश ग्राम्य स्तर से उठकर ही साहित्यिक और सामान्य व्यवहार की भाषाये बनती हैं। अत अपभ्रश का अर्थ न तो बिगडी हुई भाषा है और न जनबोली, और न यह कि जिसका उच्चारण ठीक से न हो सके। जैसा कि अपभ्र श के कुछ युवा अध्येता समझते है। यह भ्रम भी निराधार है कि अपभ्रश केवल काव्यभाषा थी, या यह कि उसमें गद्य नही था। सस्कृत, प्राकृत की तुलना म अपभ्रंश का क्षेत्र सीमित है, परन्तु उसकी कडवक शैली में और सवादो और वर्णनो में अपभ्रंश गद्य का रूप देखा जा सकता है। सोचने की बात है कि क्या बिना गद्य के कोई भाषा विकास कर सकती है ? अपभ्र श में उकारान्त प्रकृति के साथ आकारात प्रकृति की भी बहुलता है, कृदत क्रियाओ की मुख्यता, शब्द क्रियारूपो की कमी, विभक्तियो का लोप, षष्ठी विभक्ति की व्यापकता, दुहरी विभक्तियो और परसर्ग के समान नए शब्दो का प्रयोग

पूर्वकालिक और क्रियार्थक क्रियाओ के प्रयोगो मे विकल्पो की भरमार, कृदंत क्रिया के कारण कालबोध के लिए सहायक क्रिया का विस्तार, उसकी प्रमुख विशषताए है।

अपभ्रंश साहित्य का युग

सस्कृत साहित्य-मीमासको और इधर–उधर के उल्लेखो से यह स्पष्ट है कि ईसा की छठी सदी से न केवल अपभ्रंश साहित्य लिखा जाने लगा था, वल्कि उसे मान्यता भी मिल चुकी थी। मै 12वी सदी तक अपभ्रंश का युग मानता हू। यद्यपि उसके बाद 15वी 16 वी सदी तक अपभ्रंश साहित्य लिखा जाता रहा है, परन्तु वह रूढ साहित्य है, भापा और अभिव्यक्ति की दृष्टि से उसमे वह युगवोध नही है जो कि होना चाहिए। फिर इस काल मे आ भा आर्य-भापाओ का साहित्य अस्तित्व मे आ चुका था। 7वी से 12वी तक का यह काल, राजनीतिक दृष्टि से हर्ष के साम्राज्य के विघटन, राजपूतशक्तियो के उदय ओर सघर्प तथा मुहम्मदविन कासिम (ई 711), महमूद गजनी (1026) और मुहम्मद गोरी (1194) जैसे विदेशी आक्राताओ की सफल घुसपेठ का समय है। धामिक दृष्टि से आलोच्यकाल मे बौद्ध और जैनधर्म के समानातर शैव और वैष्णव भक्तिमतो का वोलवाला रहा। सभी धर्ममत आडवर पूर्ण थे। धर्म और राज्य एक दूसरे पर आधारित थे। धम राज्य से विस्तार चाहता था, और राज्य धर्म से प्रेरणा। सिद्ध और हठयोग साधनाए भी इसी युग की देन है। सस्कृत और प्राकृत साहित्य भी काफी मात्रा मे इस काल म लिखा गया।

स्वयभू के पूर्व का अपभ्रंश साहित्य

दण्डी, भामह और वाणभट्ट के उल्लेखो और स्वयभूच्छद से यह स्पष्ट है कि स्वयभू (आठवी और नौवी सदियो का मध्यविन्दु) से दो सौ वर्प पूर्व से अपभ्रंश साहित्य की रचना होन लगी थी। स्वयभूच्छद में अंकित एक दर्जन कवियो मे पद्धडिया बन्ध के निर्माता कवि चतुर्मुख और गोइद (गोविन्द) के नाम उल्लेखनीय है। दोनो हरिकथा काव्य के रचयिता प्रतीत होते है। अनुमान है कि चतुर्मुख ने कोई राम कथा काव्य लिखा होगा। स्वयंभूच्छद के कृष्ण-कथा से सवन्धित एक उद्धरण का अर्थ है, 'यद्यपि कृष्ण सभी गोपियो को आदर से देखते है परन्तु उनकी दृष्टि वही पडती है जहा राधा है, स्नेहपूरित नेत्रो को कौन रोक सकता है?' इसमे राधा के प्रति कृष्ण के आकर्पण का उल्लेख महत्वपूर्ण है। इससे सिद्ध है कि स्वयभू के पूर्व राधा कृष्ण लीलाए लोकप्रिय हो चुकी थी। स्वयभूच्छद के उदाहरण में प्रकृति-चित्रण, ऋतु-प्रेम और उपालंभ से सम्बन्धित अवतरण है। जहा तक अपभ्रंश प्रवन्ध काव्यो (चरित काव्यो) का प्रश्न है उनकी कथा-वस्तु के मुख्य स्रोत रामायण और महाभारत की 'वस्तु' है।

विधाए

आलोच्य-काव्य की दो विधाए मुख्य और महत्वपूर्ण है, ये है प्रवन्ध और मुक्तक। अपभ्रंश साहित्य मे नाटक और गद्य-साहित्य का अभाव है। प्रारंभिक अपभ्रंश प्रवन्धकाव्य पुराण-काव्य के रूप में मिलते है। यहा 'चरिउ' और 'पुराण काव्य' का अन्तर समझ लेना उचित होगा। त्रेसठ शलाका पुरुषो के चरित्रो का वर्णन करने वाला काव्य महापुराण कहलाता है। त्रेसठ शलाका पुरुषो मे 24 तीर्थ कर, 12 चक्रवर्ती और क्रमश 9-9 वलभद्र, नारायण और प्रतिनारायण। वाल्मीकि रामायण और महाभारत की कथा-वस्तु का सम्बन्ध, वलभद्र (राम) और नारायण (कृष्ण) से सम्बद्ध है। राम, बीसवे तीर्थ कर मुनिसुव्रत के तीर्थकाल मे हुए, जवकि कृष्ण 22 वें तीर्थकर नेमिनाथ के समय। सस्कृत मे पृथक्–पृथक् रूप मे लिखित काव्यो को भी पुराण कहा गया, जैसे–आदि पुराण, पद्म पुराण, हरिवश पुराण इत्यादि। आचार्य रविषेण ने पद्मचरित्र नाम भी दिया है। इसके विपरीत अपभ्रंश के स्वयंभू, पउम चरिउ और रिट्ठणेमि चरिउ नाम देते

है। पुष्पदन्त ने समग्र चरितो के सकलन को महापुराण कहा है, परन्तु पृथक्-पृथक रूप में वह चरित काव्य कहने के पक्ष में है। वह लिखते है—

घम्माणमामणाणंद भरिउ, पुणु कहमि विरहु णाभय चरिउ। म. पु. 1/2 में फिर धर्म के अनुशासन और आनन्द से भरे पवित्र नाभेय चरित्र का वर्णन करता हूं। इस प्रकार उनके महापुराण में कई चरित-काव्य हैं। इसमें संदेह नही कि अपभ्रंश चरित-काव्य विषय-वस्तु और वर्णन में वहुत कुछ संस्कृत जैन पुराणो पर आधारित है, परन्तु वस्तुनियोजन और वर्णन में अन्तर है। संस्कृत पुराण काव्यो की तुलना में इनमे सक्षेप है और कथा-निर्वाह में अपेक्षाकृत कार्यकारण सम्बन्ध हैं। पौराणिक वस्तु-निर्देश कम है तथा विविध छदो वाली सर्गबद्ध शैली के स्थान पर, कडवक शैली है। एक संधि मे कई कडवक रहते हैं, प्रत्येक कडवक के अन्त मे घत्ता के रूप में कोई छद रहता है, कडवक मे कई तुकात दो पक्तिया रहती है। यह शैली प्राकृत काव्यो में भी नही है। विषय और प्रसंग के अनुरोध से कडवक की पक्तियो मे संकोच विस्तार संभव है। हमारा अनुमान है कि लोकगीत शैली के आधार पर ही कडवक शैली का विकास हुआ। पुष्पदन्त जैसे कवियो ने संस्कृत के वर्णिक वृत्तो का प्रयोग कडवक शैली के अन्तर्गत किया है। जायसी के पद्मावत और तुलसी के मानस के, दोहा-चौपाई शैली, इसी का परवर्ती विकास है।

चरित काव्य के दो भेद

अपभ्रंश में दो प्रकार के चरित-काव्य है, एक पुराणो के प्रभाव से ग्रस्त जैसे पउमचरिउ और नाभेयचरिउ। दूसरे है, रोमाचक अथवा कल्पना प्रधान जैसे णायकुमार चरिउ, करकंडुचरिउ, जसहर चरिउ। धर्म से अनुशासित होने पर भी इनमे रोमास, कल्पना-प्रवणता और प्रेम तथा युद्ध की उत्तेजक स्थितिया होती हैं। विशेष उल्लेखनीय यह है कि अपभ्रंश में लौकिक-पुरुष पर एक भी चरित-काव्य नही लिखा गया। अपभ्रंश कवि कथा-काव्य और चरित-काव्य मे भेद नही करते। भेद है भी नही। भविसयत्त कहा और भविसयत्त चरिउ एक ही बात है। प्राकृत में अवश्य कथा-काव्य कहने का प्रचलन था। इधर हिन्दी प्रेमाख्यानक काव्यो पर अपभ्रंश चरित-काव्यो का प्रभाव सिद्ध करने के लिए, अपभ्रंश के एक नए खोजी ने उसमे भी प्रेमाख्यानक काव्य खोज निकाले है। उसके अनुसार धाहिल का पउमसिरि चरिउ प्रेमाख्यानक काव्य है, (अपभ्रंश भाषा और साहित्य की शोधप्रवृत्तिया पृ स 36) जो सचमुच चिन्तनीय है। प्रेमकाव्य और प्रेमाख्यानक काव्य मे जमीन आसमान का अन्तर है। प्रेम काव्यो में प्रेम की मुख्यता होतीहै, जबकि प्रेमाख्यानक-काव्य म लौकिक प्रेम वाली कथा के माध्यम से अलौकिक प्रेम अर्थात् ईश्वरीय प्रेम का साक्षात्कार किया जाता है। पउमसिरि चरिउ कवि धाहिल के अनुसार, धर्माख्यान है जिसका उद्देश्य यह वताना है कि धर्म के लिए भी किया गया कपटाचरण दुखदायी होता है। यह सोचना भी भ्रांतिपूर्ण है, कि अपभ्रंश चरित-काव्यो के नायक लोक सामान्य जीवन से आए हैं, वे सब अभिजात्य वर्ग के है। सस्कृत जैन पुराण-काव्य मे जो पात्र अभिजात्यवर्ग के है, वे अपभ्रंश में सामान्यवर्ग के कैसे हो गए। वस्तुत वे पुण्यसिद्ध सामन्तवर्ग के हैं। अपभ्रंश चरित-काव्य वस्तुत धवल मगल गान से युक्त हैं। आध्यात्मिक गुणो से सम्बन्धित गीत मगल-गीत है और लौकिक गुणो से सम्बन्धित गीत धवल-गीत है। अपभ्रंश कथा-काव्य के नायक दोनो प्रकार के गुणो से अलकृत हैं। आध्यात्मिक गुणो से शून्य होने पर, इन्हें प्राकृत जन कहा जाएगा, जिनका गान करने पर तुलसीदास की सरस्वती माथा पीटने लगती है। हिन्दी का रासो-काव्य वस्तुत प्राकृत जन गुणगान ही है। चरित काव्यो के अतिरिक्त रासो-काव्य, सधिकाव्य, रूपक आदि छोटी-छोटी रचनाएं भी अपभ्रंश में मिलती है जो वस्तुत चरित-काव्यो के विघटन से अस्तित्व में आई। एक तो ये रचनाएँ परवर्ती है और दूसरे काव्यात्मक दृष्टि से इनका विशेष महत्व नही है। खडकाव्य के रूप में रहमान का संदेश-रासक उपलब्ध है, जो सुखात विप्रलभ शृंगार का प्रतिक्रियात्मक-काव्य है। इसमें विक्रमपुर की एक वियोगिनी, अपने प्रवासी पति के लिए प्रेम सदेश भेजती है। जैसे ही पथिक प्रस्थान करता है कि उसका पति आ जाता है। यह विशुद्ध पाठ्यकाव्य

है । डा हजारीप्रसाद द्विवेदी इसे गेय-काव्य समझते है । इसमे एक ओर सरल मुहावर वाली भाषा है और दूसरी ओर ऊहात्मक अलकृत शैली भी है ।

जहा तक अपभ्र श चरित-काव्यो के वस्तुवर्णन का सम्बन्ध है, उसमे यथासभव पुराण-काव्य और लोकरूढियो का वर्णन है, प्रकृति-चित्रण , देश-नगर-वर्णन, नदी-वन और सरोवर चित्रण, प्रात काल सूर्य-चन्द्र-सायकाल का वर्णन, विवाह, भोजन, युद्ध, स्वयवर, नारी, जलक्रीडा, नख-शिख वर्णन भरपूर है । श्रोता वक्ता शैली और सवाद शैली, विशेषरूप से उल्लेखनीय है । उनका अतिम उद्देश्य तीन पुरुषार्थों की सिद्धि के अनतर मोक्ष पुरुषार्थ की प्राप्ति है ।

मुक्तक काव्य -

मुक्तक-काव्य क रूप मे एक ओर उपदेश रसायन रास, चर्चरी आदि ताललय पर आश्रित गेय रचनाए हैं और दूसरी ओर सिद्धो के चर्यापद है । जिस प्रकार अपभ्र श प्रबन्व-काव्य मे चरित-काव्य प्रमुख है उसी प्रकार मुक्तक-काव्य मे दोहा । जैन और बौद्ध दोनो के दोहा-कोश मिलते है । इनमे विशुद्ध आध्यात्मिक अनुभूतियो की अभिव्यक्ति है । सावयधम्म-दोहा में जैन गृहस्थ धर्म का निरूपण है, जबकि योगसार और परमात्मप्रकाश म ससार के दु.ख का निदान करते हुए कवि ऊची आध्यात्मिक कल्पनाए करने लगता है । वह आत्मा को शिव, हंस और ब्रह्म के नाम से पुकारता है, वह रूपको, प्रतीको और पारिभाषिक शब्दावली मे बात करने लगता है, उसके अनुसार शुद्ध आत्मा ही परमात्मा है और वह मानव शरीर में है, इसलिए मानव शरीर तीर्थ है । चित्त की शद्धि ही उसका एकमात्र साधन है, आत्मा-परमात्मा में प्रेयसी और प्रियतम का आरोपकर कवि इस बात पर अफसोस व्यक्त करता है कि एक ही शरीर में रहते हुए भी, अ ग से अ ग नही मिला । "यदि लोग पागल-पागल कहते है तो कहने दो, तू मोह को उखाड कर शिव को पा । आगे-पीछे ऊपर जहा देखता हू, वहा वही है ।" कहन (कृष्णपाद) कहते है, दुनिया जग मे भ्रमित है, वह अपने स्वभाव को समझने में असमर्थ है, मनुष्य को चित्त बाधता है और वही मुक्त करता है । सरह कहता है, जहा मन पवन सचार नही करते, जहा सूर्य और चन्द्रमा का प्रवेश नही, हे मूर्ख, वहा प्रवेश कर । आध्यात्मिक दोहो के अतिरिक्त शृ गार, नीति, प्रेम, वीर, रोमास और अन्योक्ति से सम्बन्धित दोहो की कमी नही । भाषा और विषय-वर्णन की दृष्टि से ये दोहे दो टूक अभिव्यक्ति देते है, उनमे कृत्रिमता नही है । धवल (बैल) सामतयग की स्वामी-भक्ति का प्रतीक है, स्वामी का भारी भार देखकर वह कहता है,-'स्वामी ने मेरे दो टुकडे कर दोनो ओर क्यो नही जोत दिया । गुणो से सम्पत्ति नही मिलती है, केवल कीर्ति मिलती है । लोग सिह को कौडी के भाव नही खरीदते जब कि हाथी लाखो मे खरीदा जाता है ।' एक योद्धा गिरनार पर्वत को उलाहना देता है, 'हे गिरिनार, तू ने मनमे ईर्ष्या की, खगार के मारे जाने पर तू दुश्मन पर एक शिखर तक नही गिरा सका ।' वीर रस की दर्पोक्तियो का एक से बढकर एक दोहा है । एक वीर पत्नी यह कहकर संतुष्ट है कि,-'युद्ध में उसका पति मारा गया, क्योकि यदि वह भागकर घर आता तो उसे सखियो के सामने लज्जित होना पडता । ऐसा योद्धा सचमुच वलिहारी के काबिल है कि, सिर के कधे पर लटक जाने पर भी, जिसका हाथ कटारी पर है ।' एक प्रोषित पतिका कहती है,-"प्रिय ने मुझे जो दिन दिए थे, उन्हे नख से गिनते-गिनते मेरी अगुलिया क्षीण हो गई ।" एक ओर पथिक बादल से कहता है,' हे दुष्ट बादल ! मत गरज, यदि मेरी प्रिया सचमुच प्रेम करती होगी तो मर चुकी होगी, यदि प्रेम नही करती, तो स्नेह-हीन है, वह दोनो तरह से मेरे लिए नष्ट हुए के समान है ।' कुछ मुक्तक इतिवृत्तात्मक खण्डो पर आधारित है, जैसे कोशा (वेश्या) को एक जैन मुनि नेपाल से लाकर रत्नकबल देता है, वह उसे नाली में फैंक देती है, मुनि सोच में पड जाता है । वेश्या कहती है-'हे मुनि! तुम कबल के नष्ट होने की चिन्ता करते हो, परन्तु अपने सयम-रूपी रत्न की चिन्ता नही करते ।'

निष्कर्ष

कुल मिलाकर अपभ्र श भाषा और साहित्य, परम्परागत भा. आर्यभाषा और साहित्य को ही एक कडी है। पूर्णरूप से काव्यात्मक और व्यापक भाषा होते हुए भी उसकी विषयवस्तु सीमित रही है। गद्य और नाटको के अभाव की पूर्ति वह, अपनी कडवक शैली मे उनके तत्वो के सयोजन द्वारा करती है। उसका भाषाई गठन आर्यभाषा की सयोगात्मक और वियोगात्मक स्थितियो का संधिकाल है। अपभ्रंश साहित्य का अंतिम चरण (12 वी सदी) के पहिले दो सौ साल नई भाषाओ के विकास के साल थे। जबकि वाद के दो सौ साल, साहित्य सक्रमण काल के। अधिकाश साहित्य धार्मिक है, वह भौतिक हीनताओ और दुर्बलताओ पर आत्मा की विजय, चित्त का सयम और जिनभक्ति इसका प्रमुख स्वर है। लौकिक भावो और राग-विराग की प्रतिक्रिया भी, आलोच्य साहित्य मे व्यक्तिगत स्तर पर अंकित है। युग के सामाजिक और राजनीतिक द्वद्वो, यहाँ तक कि बाह्य आक्रमणो के प्रति ये कवि तटस्थ हैं। अपभ्र श चरित-काव्य गीत-तत्व को अपने में समाहार करके चलते हैं। भाग्य की विडम्बना के प्रति अपभ्र श साहित्य का स्वर सबसे अधिक सवेदनशील और आक्रोश पूर्ण है। आलोच्य साहित्य में लोक और शास्त्र, दोनो का समन्वय है, उसकी कला रसवती और अलंकृत कला है, वीर और शृ गार रस की प्रचुरता होते हुए भी उसका अन्त शात रस मे होता है। युग की धार्मिक सवेदनाओ को यह साहित्य अकित करता है। अत मे निष्कर्षरूप मे यह कहा जा सकता है, अपभ्र श भाषा की तरह उसका साहित्य भी आ भा आर्यभाषाओ के प्रारंभिक साहित्य के लिये आधारभूत उपजीव्य रहा है। इस प्रकार अपभ्र श, भाषा और साहित्य दोनो स्तरो पर, आ भा आर्यभाषाओ और साहित्यो की प्रारम्भिक रूपरचना और विकास मे महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं।

अपभ्रंश साहित्य : विकास एवं प्रवृत्तियां 2.

डा. राजाराम जैन

भारतीय वाङ्मय का प्रारम्भ वैदिककाल के उन साधक ऋषियों की वाणी से प्रारम्भ होता है, जिन्होंने प्रकृति की कोमल और रौद्र शक्तियों से प्रभावित होकर आशा-निराशा, हर्ष-विषाद एवं सुख-दुख सम्बन्धी अपने उद्गार आलंकारिक वाणी मे प्रकट किए थे। विद्वानों ने उस वाणी को छान्दस् भाषा कहा है। ऋग्वेद एवं अथर्ववेद की भाषा वही छान्दस् थी, किन्तु गम्भीर अध्ययनो के बाद भाषा-वैज्ञानिक विद्वान् इस निष्कर्ष पर पहुचे है कि उक्त दोनो वेदो की छान्दस् भाषा में भी पर्याप्त अन्तर है। उनका अभिमत है कि ऋग्वेद की भाषा ब्राह्मण ग्रन्थो की सस्कृत मे ढाली हुई एक सुनिश्चित परम्परा-सम्मत है, किन्तु अथर्ववेद की भाषा--जनभाषा[1] है और इसके साहित्य मे पर्याप्त लोकतत्व पाए जाते है। अतएव स्पष्ट है कि आर्य-भाषा और आर्य-साहित्य पर द्रविड और मुण्डा वर्ग की भाषा और साहित्य का प्रभाव पर्याप्त रूप मे पडा है और अथर्ववेद उसी प्रभाव को स्पष्ट रूप मे अभिव्यक्त कर रहा है[2]।

आर्यों के सामाजिक एव आर्थिक परिवर्तनों के सदर्भ मे उनकी बोलचाल की भाषा भी बदलती रही और ध्वन्यात्मक तथा पद-रचनात्मक दृष्टि से पर्याप्त विकास होता रहा। ब्राह्मण एवं उपनिषद् काल मे वैभाषिक-प्रवृत्तिया स्पष्टत परिलक्षित होती है। वैदिक-भाषा पर प्राच्य जनभाषा का इतना अधिक प्रभाव पडा कि जिससे ब्राह्मण-ग्रन्थो ने असस्कृत एव अशुद्ध प्राच्य-प्रभाव से अपने को सुरक्षित रखने की घोषणा की[3]। कौषीतिकी ब्राह्मण मे उदीच्य लोगो के उच्चारण की प्रशसा की गई है और उन्हे भाषा की शिक्षा मे गुरु माना गया है[4]। महर्षि पाणिनि ने जिस संस्कृत भाषा को शब्दानुसार लिखा, वह उदीच्य-भाषा ही है। प्राच्य-भाषा, उदीच्य भाषा की दृष्टि मे असस्कृत एवं अशुद्ध थी, क्योकि उस पर मुण्डा एव द्रविड जैसी लोक-भाषाओ का पर्याप्त प्रभाव था[5]। व्रात्यो की निन्दा जहा उनके यज्ञ-यागादि मे आस्था न रहने के कारण की गई है, वही उनकी 'देश्य-भाषा' भी उसका एक कारण था। अतएव निष्पक्षरूप से यह स्वीकार करना होगा कि छान्दस् युग मे देश्य-भाषा की एक क्षीण-धारा प्रवाहित हो रही थी, जो आगे चलकर प्राकृत के नाम से विख्यात हुई।

पी डी गुणे प्रभृति अनेक भाषाविदो की यह मान्यता है कि 'छान्दस' के समानान्तर कोई जनभाषा अवश्य थी और यही जनभाषा परिनिष्ठित साहित्य के रूप मे वेदो मे प्रयुक्त हुई[6]। सुप्रसिद्ध महावैयाकरण पाणिनि ने वैदिक सस्कृत को व्याकरण के द्वारा अनुशासित कर लौकिक सस्कृत-भाषा का रूप उपस्थित किया है। पाणिनि के व्याकरण से स्पष्ट है कि छान्दस् की प्रवृत्तिया वैकल्पिक थी। उन्होने इन विकल्पो का परिहार कर एक सार्वजनीन मान्यरूप उपस्थित किया। वेद की वैकल्पिक विधिया अपने मूल-रूप मे बराबर चलती रही, जिनके ऊपर पाणिनीय-तन्त्र का अकुश न रहा और ये विकसित प्रवृतिया ही 'प्राकृत' के नाम से पुकारी जाने लगी। यहा यह ध्यातव्य है कि प्राकृत की उत्पत्ति के सम्बन्ध मे सर्वमान्य धारणा यही है कि छान्दस् भाषा से ही

---

1 प्राकृत भाषा (लेखक-प्रबोध पण्डित) पृ 13-14/ 2 भारतीय आर्यभाषा और हिन्दी (चटर्जी) पृ स 63, 3 ताण्ड्य ब्राह्मण 17।4,/ 4 कौषीतिकी ब्राह्मण 7।6/ 5 सस्कृत का भाषा शास्त्रीय अध्ययन (बनारस, 1957 ई) पृ 270-271/ 6 तुलनात्मक भाषा-विज्ञान (गुणे) पृ 129-130

मुख्यतया प्राकृत का आविर्भाव व विकास हुआ है। छान्दस् के समानान्तर प्रवाहित होने वाली जनभाषा की प्रवृत्तिया पृथक् रूप में उपलब्ध नही हैं, किन्तु इनका आभास छान्दस से मिल जाता है[1]।

प्राच्या, जो कि 'देश्य' या 'प्राकृत' का मूल है, उसका वास्तविक रूप क्या था, इसकी निश्चित जानकारी हमें ज्ञात नही है। महावीर एवं बुद्ध के उपदेशो की भाषा भी हमे आज मूलरूप मे प्राप्त नही है। जो रूप आज निश्चित रूप से उपलब्ध है, वह प्रियदर्शी अशोक के अभिलेखो की भाषा का ही है, किन्तु इन अभिलेखो की भाषा मे भी एकरूपता नहीं है। उनमें विभिन्न वैभाषिक प्रवृत्तिया सन्निहित है। इन अभिलेखो का प्रथम रूप पूर्व की स्थानीय बोली है, जो कि मगध की राजधानी पाटलीपुत्र तथा उसके समीपवर्ती प्रदेश मे बोली जाती थी और जिसको साम्राज्य की अन्तर्प्रान्तीय भाषा कहा जा सकता है।

प्राच्या का दूसरा रूप, उत्तर पश्चिम की स्थानीय बोली है। इसका अत्यन्त प्राचीन स्वरूप अभिलेखो मे सुरक्षित है। इस प्रकार इसी भाषा को साहित्यिक प्राकृत का मूलरूप कहा जा सकता है।

उसका तीसरा रूप पश्चिम की स्थानीय बोली है, जिसका रूप हिन्दुकुश पर्वत के आसपास एव विन्ध्याचल के समीपवर्ती प्रदेशो मे माना गया है। विद्वानो का अनुमान है कि यह पैशाची भाषा रही होगी या उसीसे पैशाची भाषा का विकास हुआ होगा।

प्रियदर्शी अशोक के अभिलेखो के उक्त भाषाक्षेत्रो मे से पूर्वीय भाषा का सम्बन्ध मागधी एव अर्धमागधी के साथ है। यद्यपि उपलब्ध अर्धमागधी साहित्य की भाषा में उक्त समस्त प्रवृत्तियो का अस्तित्व उपलब्ध नही होता। उत्तर पश्चिम की बोली का सम्बन्ध शौरसैनी के साथ है, जिसका विकसित रूप सम्राट् खारवेल के शिलालेख, दि जैनागमो एव संस्कृत नाटकों मे उपलब्ध होता है। पश्चिमी बोली का सम्बन्ध पैशाची के साथ है, जिसका रूप गणाढ्य की 'वड्ढकहा' में सुरक्षित था।

भाषाविदो ने प्रथम प्राकृत को 'आर्ष' एव 'शिलालेखीय' इन दो भागो मे विभक्त किया है, जिनमे से आर्ष प्राकृत जैनागमो एव बौद्धागमो मे उपलब्ध है और शिलालेखीय प्राकृत ब्राह्मी और खरोष्ठी-लिपि मे उपलब्ध हुए शिलालेखो मे।

द्वितीय प्राकृत मे वैयाकरणो द्वारा विवेचित महाराष्ट्री, शौरसैनी, मागधी और पैशाची भाषाओ का साहित्य प्रस्तुत होता है। महाराष्ट्री द्वितीय प्राकृत की साहित्यिक परिनिष्ठित भाषा मानी गई है[2]। महाकवि दण्डी ने महाराष्ट्रीय प्राकृत की पर्याप्त प्रशसा की है[3]। वररुचि के 'प्राकृत-प्रकाश' से भी इस बात का समर्थन होता है कि महाराष्ट्री प्राकृत पर्याप्त समृद्ध रूप मे वर्तमान थी। यह भाषा-शैली उस समय आविन्ध्य–हिमालय भारत की राष्ट्र-भाषा मानी जा सकती है, यद्यपि कुछ विचारक मनीषी महाराष्ट्री और शौरसैनी को दो पृथक् पृथक् भाषाए नही मानते, बल्कि एक ही भाषा की दो शैलिया मानते है[4]। उनका मत है कि गद्य-शैली का नाम शौरसैनी और पद्यशैली का नाम महाराष्ट्री है। मूलत यह प्राकृत सामान्य प्राकृत ही है और शैली-भेद से ही इसके दो भेद किए जा सकते है।

---

1 दे. आष्टाध्यायी के सूत्र–विभाषा छदसि 1-2-26
बहुल छन्दसि 2-3-62 आदि

2 इन्ट्रोडक्शन टू प्राकृत (वॉलर) पृष्ठ-2-5/ 3, काव्यादर्श 1।34,

4 कर्पूरमजुरी (कलकत्ता वि वि प्रकाशन) भूमिका पृ. 76

तीसरी प्राकृत को वैयाकरणो ने अपभ्रंश की सज्ञा प्रदान की है। कुछ लोगो का विचार कि अपभ्रंश एक भ्रष्ट भाषा है, पर हम इस विचार से सहमत नही है। वस्तुत अपभ्रंश वह भाषा है, जिसकी शब्दावली एवं काव्य-विन्यास संस्कृत शब्दानुशासन के नियमो एव उप-नियमो से अनशासित नही है, जो शब्दावली देशी-भाषाओ मे प्रचलित है तथा सस्कृत के शब्दो के यथार्थ उच्चरित न होने से कुछ विकृत रूप म उच्चरित है, वही शब्दावली अपभ्रंश भाषा के अन्तर्गत मानी जाती है । यही कारण है कि महर्षि पतञ्जलि ने एक ही सस्कृत-शब्द के उच्चारण भेद से अनेक शब्द स्वीकार किए है[1]। अतएव अपभ्रंश वह भाषा है जिसमे प्राकृत की तुलना मे अपेक्षाकृत अधिक देशी-शब्द उपलब्ध है तथा वाक्य-रचना एव अन्य कई दृष्टियो से सरलीकरण तथा देशीकरण की प्रवृत्ति अधिकतर प्राप्त होती है और जिसकी शब्दराशि पाणिनि के व्याकरण से सिद्ध नही है।

ईस्वी सन् की दूसरी सदी के समर्थ आचार्य भरतमनि ने यद्यपि अपभ्रंश भाषा का स्पष्ट उल्लेख नही किया, किन्तु उन्होने सस्कृत एवं प्राकृत के साथ–साथ दश्य-भाषा[2] का भी उल्लेख किया ह तथा इसी देश्य-भाषा मे शबर, आभीर, चाण्डाल, द्रविड, ओड़ तथा अन्य नेचरों को विभाषाओ की भी गिनती की है[3]। अतः भरतमुनि का उक्त उल्लेख अपभ्रंश की सूचना देता है क्योकि आगे चलकर विविध देशो मे विविध प्रकार की भाषाओ के प्रयोग किये जाने का उन्होने उल्लेख किया है । उनके अनुसार हिमालय क आसपास स्थित प्रदेशो तथा सिन्धु, सौवीर जैसे देशवासियो के लिये उकार-बहुला भाषा का प्रयोग होना चाहिये[4]। उकार-बहुल शब्द अपभ्रंश की ही सर्वविदित प्रवृत्ति है ।

उक्त भरतमुनि की उकार–बहुला भाषा-अपभ्रंश काव्य-भाषा कब बनी, इसका स्पष्ट उल्लेख बलभी के राजा धरसेन द्वितीय (678 ई. के लगभग) के दानपत्र में मिलता है। उसके समय में प्राकृत एव संस्कृत के साथ ही अपभ्रंश मे भी काव्य-रचना करना एक विशिष्ट प्रतिभा का द्योतक प्रशसनीय-चिन्ह माना जाने लगा था । उक्त दान-पत्र में धरसेन ने अपने पिता गुहसेन (559-569 ई) को सस्कृत, प्राकृत एवं अपभ्रंश काव्य-रचना में अत्यन्त निपुण कहा है[5]। इससे ज्ञात होता है कि छठवी सदी तक अपभ्रंश भाषा व्याकरण एवं साहित्य के नियमो से परि-निष्ठित हो चुकी थी और वह काव्य-रचना का माध्यम बन चुकी थी । आगे चलकर महाकवि दण्डी, राजशेखर, नमिसाधु, अमरचन्द्र प्रभृति आचार्यों ने विविध दृष्टिकोणो से विचार किया है और उनके अध्ययन से यही विदित होता है कि इसकी दूसरी शती में जहा अपभ्रंश का प्रच्छन्न नामोल्लेख मात्र मिलता था और अपाणिनीय शब्दो के अतिरिक्त अपभ्रष्ट, विकृत या अशुद्ध शब्दमात्र अपभ्रंश की सज्ञा प्राप्त करते थे, वही ईस्वी की छठवी-सातवी सदी तक वह साहित्यिक भाषा के रूप मे प्रचलित हो गई और नौवी-दसवी सदी तक वह सर्वाधिक सशक्त एवं समृद्ध भाषा के रूप मे विकसित हो गई । उसके बाद वही अपभ्रंश आधुनिक देश-भाषाओ के रूप मे विक-सित होने लगी, यद्यपि उसकी साहित्यिक रचनाए पन्द्रहवी-सोलहवी सदी तक चलती रही ।

अपभ्रंश के उक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि छठी सदी के अनन्तर उसमे साहित्यिक रचनाए होने लगी थी, पर अपभ्रंश साहित्य का क्रमबद्ध इतिहास महाकवि चउमुह से प्रारम्भ-होता है और उसके बाद दसवी सदी से तेरहवी सदी के पूर्वार्ध तक तो इसका स्वर्णकाल ही माना जाने लगा ।

---

1 महाभाष्य 1।1।1।
2 नाट्यशास्त्र 18।22-23
3 वही 17।50
4 नाट्यशास्त्र 18।47-48
5. इण्डियन एन्टीक्वेरी वोल्यम 10, पृष्ठ-284

उपलब्ध अपभ्रंश साहित्य से यह सिद्ध है कि वह मुक्तक-काव्य से प्रारम्भ होकर प्रबन्ध-काव्य मे पर्यवसान को प्राप्त हुआ । यत. साहित्य की परम्परा सदैव ही मुक्तक से प्रारम्भ होती है । प्रारम्भ मे जीवन किसी एक दो भावना के द्वारा ही अभिव्यञ्जित किया जाता है । पर, जैसे-जैसे ज्ञान और सस्कृति के साधनो का विकास होने लगता है, जीवन भी विविधमुखी होकर साहित्य में प्रस्फुटित होता है । सस्कृत और प्राकृत मे साहित्य की जो विविध प्रवृत्तिया अग्रसर हो रही थी, प्राय वे ही प्रवृत्तिया कुछ रूपान्तरित होकर अपभ्रंश साहित्य मे प्रविष्ट हुई । फलत दोहा-गान के साथ-साथ प्रबन्धात्मक पद्धति भी अपभ्रंश में समादृत हुई । इस दृष्टि से महाकवि चउमुह, द्रोण, ईशान,पुष्पदन्त, धनपाल प्रभृति कवि प्रमुख है । इन कवियो के साहित्य का अध्ययन करने से अपभ्रंश-साहित्य की निम्न प्रमुख प्रवृत्तिया ज्ञात होती है—1. प्रबन्ध-काव्य प्रवृत्ति, 2 आध्यात्मिक-काव्य प्रवृत्ति, 3. बौद्ध दोहा एव चर्यापद तथा 4. शौर्य-वीर्य एवं प्रणय–श्रृंगार काव्य प्रवृत्ति ।

प्रथम प्रबन्ध-काव्य प्रवृत्ति के अन्तर्गत पुराण, चरित, काव्य एवं कथा-साहित्य की गणना की जा सकती है । वर्ण्य-विषय की दृष्टि से इन काव्यो को पौराणिक एव रोमाण्टिक काव्य रूप में इन दो वर्गों मे विभक्त कर सकते है । महाकवि स्वयम्भू, पुष्पदन्त एव धनपाल ये तीनों ही इस विधा के "त्रिरत्न" है । इन्होने अपभ्रंश-साहित्य मे जिन प्रबन्ध-रूढियो एवं कथानक सम्बन्धी अभिप्रायो का ग्रथन किया है, वे उत्तरवर्ती अपभ्रंश-साहित्य के लिये आधार ही बन गए हैं । महाकवि स्वयभू के पउमचरिउ में काव्य की सरसता का पूर्ण निर्वाह हुआ है। उक्त ग्रन्थ की अंग्रेजी प्रस्तावना मे बताया गया है कि 'रसात्मकता एवं सौन्दर्य उत्पन्न करने के लिये कवि ने विभिन्न मर्मस्पर्शी भावो के चित्रण, प्राकृतिक दृश्यो एव घटनाओ के वर्णन तथा वस्तु-व्यापार के संश्लिष्ट और प्रासंगिक निरूपण में पर्याप्त मौलिकता एव धार्मिक रूढियो से ऊपर उठकर स्वतन्त्रता की प्रवृत्ति का परिचय दिया है[1] ।' काव्यारम्भ में देव-स्तुति, विषय वस्तु का निर्देश, अपनी असमर्थता एव दीनता का निवेदन, पूर्वकवि-प्रशसा, सज्जन-प्रशंसा, दुर्जन-निन्दा, देश एवं नगर वर्णन के साथ ही साथ राजनीति, दण्डनीति, अर्थनीति आदि विषयो का वर्णन उस कोटि का है, जो इस रचना को प्रबन्व-काव्यो मे महत्वपूर्ण स्थान प्रदान करता है।

महाकवि पुष्पदन्त कृत महापुराण[2] नाममात्र का ही महापुराण है । वस्तुत वह महाभारत की शैली का विकसनशील महाकाव्य है । महाभारत के सम्बन्ध मे जो यह किवदती है कि—'यदिहास्ति तदन्यत्र, यन्नेहास्ति न तत्क्वचित्' । उसी प्रकार पुष्पदन्त के महापुराण के सम्बन्ध में स्वयं ही कवि ने कहा है :—

> अत्र प्राकृतलक्षणानि सकला नीति. स्थितिश्छन्दसा—
> मर्थालङ्कृतयो रसाश्च विविधास्तत्त्वार्थनिर्णीतय ।
> किचान्यद्यदिहास्ति जैनचरिते नान्यत्र तद्विद्यते
> द्वावेतौ भरतेश-पुष्पदशनौ सिद्धं ययोरीदृशम् ॥

(महापुराण 59 वी सन्धि का प्रारम्भिक फुटनोट)

उक्त कथन से स्पष्ट है कि जो यहा (उक्त महापुराण में) है, वह अन्यत्र है ही नहीं । अत उद्देश्य की महत्ता, शैली की उदात्तता एवं गरिमा तथा भाव-सौन्दर्य और वस्तु-व्यापार वर्णन आदि की दृष्टि से उक्त महाकाव्य में अपूर्व रस विभोर करने की क्षमता विद्यमान है ।

---

1 पउमचरिउ (सिंघी सीरीज) प्र. भा प्रस्तावना पृष्ठ 48

2 माणिकचन्द्र जैन ग्रन्थमाला (वम्बई, 1940) द्वारा प्रकाशित

पौराणिक शैली के वैयक्तिक महापुरुषो से सम्बन्धित महाकाव्य भी अपभ्रंश में लिखे गए हैं। इन काव्यो की प्रवृत्ति यह रही है कि इनमे किसी पौराणिक या धार्मिक व्यक्ति की जीवन-कथा जैन-परम्परा मे स्वीकृत शैली मे कही जाती है। कवि अपनी कल्पना शक्ति से कथा के रूप मे इतना परिवर्तन कर देता है कि समस्त चरित काव्यात्मक रूप धारण कर रसमय बन जाता है। इस श्रेणी के अपभ्रंश काव्यो मे णेमिणाहचरिउ (हरिभद्र, 13वी सदी), जम्बूसामि-चरिउ (वीर कवि 10 वी सदी), पासणाह चरिउ (विबुध श्रीधर, 12 वी सदी), मतिणाहचरिउ (शुभकीर्ति) प्रभृति रचनाएं प्रमुख है। इन सभी पौराणिक काव्यो का आलोडन करने पर निम्न सामान्य प्रवृत्तिया लक्षित होती है —

1 प्रबन्ध काव्यों में प्रारम्भ करने की शैली प्राय एक सदृश है। प्रारम्भ म तीर्थंकरो की स्तुति, पूर्ववर्ती कवियो और विद्वानो का स्मरण, सज्जन-प्रशसा एव दुर्जननिन्दा, काव्य-रचना में प्रेरणा एवं सहायता करने वालों की अनुशसा, विनम्रता अथवा दीनता प्रदर्शन, महावीर का राजग्रही मे समवशरण का आगमन तथा महाराज श्रेणिक का उसमें पहुंचकर प्रश्न करना तथा गौतम गणधर का उत्तर देना आदि पिष्टपेषित सन्दर्भांश विद्यमान है।

2. त्रेसठ शलाका महापुरुषो अथवा अन्य किन्हीं पुण्यशाली महापुरुषो के जीवन-चरितो को लेकर अपभ्रंश-कवियों ने कल्पना के द्वारा यत्किंचित् परिवर्तन कर काव्य का रूप-खडा किया है। यद्यपि ढाचा संस्कृत एवं प्राकृत जैसा ही है, पर विषय-प्रतिपादन की शैली उनकी अपनी निजी है।

3. चरित-नायको और उनसे संबंधित व्यक्तियो के विभिन्न जन्मो की कथा के उस मार्मिक अश को ग्रहण किया गया है, जो लोक-जीवन का आदर्श आधार हो सकता है। यद्यपि क्वचित् भवान्तरो का निरूपण भी है, पर सस्कृत और प्राकृत की अपेक्षा उनकी निरूपण-शैली में भी भिन्नता है। सस्कृत और प्राकृत के कवि जहा भवान्तरो की झडी लगा देते हैं, वहा अपभ्रश के पौराणिक महाकाव्यो के रचयिता कवि मात्र मर्मस्पर्शी भवान्तरो को ही समाविष्ट करते है।

4 उक्त भवान्तर-वर्णन का मूल कारण कर्मफल प्राप्ति में अडिग आस्था ही है और उसका मुख्य उद्देश्य जैन धर्म का उपदेश देना है। परिणाम स्वरूप ये सभी काव्य वैराग्यमूलक और शान्तरस पर्यवसायी है। यत उनके नायको का साधु हो जाना और निर्वाण प्राप्त करना आवश्यक माना गया है।

5 उक्त श्रेणी के काव्यो में लोक-विश्वासो और लोक—कथाओ का पर्याप्त रूप में समावेश हुआ है। अलौकिक और अप्राकृतिक तत्व भी यथेष्ट रूप में समाविष्ट है। यथा—देव, यक्ष, राक्षस, विद्याधर आदि के अलौकिक कार्यों, मत्तगज से यद्ध, आकाश गमन जैसे वर्णन प्राचीन परम्परा के आधार पर ही वर्णित है।

6 यद्यपि पौराणिक-काव्य धर्मविषयक है, पर शृंगार और युद्धवर्णन की परम्परा भी प्राय. सभी काव्यो में उपलब्ध है। कथा के भीतर अवसर मिलते ही कवि सन्ध्या, प्रभात, चन्द्रमा, नदी, सागर, पर्वत, वन आदि का सुन्दर चित्रण उपस्थित करता है। स्त्रियो के शारीरिक सौन्दर्य, जल क्रीडा एवं सुरति आदि के वर्णनो से भी परहेज दिखाई नही पडता। युद्ध-प्रयाण, कुमार-जन्म, विवाहोत्सव आदि के भी सजीव चित्र उपलब्ध होते हैं। कही-कही तो ऐसा होता है कि कथा-प्रवाह को दबा कर वस्तु-वर्णन हावी हो गया है।

रोमाण्टिक काव्य की कोटि की रचनाओ में धार्मिकता और ऐतिहासिकता का संगम है। इनमें कुछ धार्मिक महापुरुषो अथवा कामदेव के अवतारो के जीवन-चरित वर्णित है और

कुछ व्रतो और मन्त्रो का फल दिखाने के लिये दृष्टान्त के रूप में लिये गये आख्यान है। इस श्रेणी के काव्यो में पुष्पदन्त कृत णायकुमार चरिउ, नयनन्दि कृत सुदसणचरिउ, कनकामर कृत करकड चरिउ, लाखू कवि कृत जिणदत्त चरिउ आदि प्रमुख है। धनपाल कृत भविसयत्तकहा को भी इस कोटि का काव्य माना जा सकता है। इन समस्त रोमाण्टिक काव्यो में उपर्युक्त करकड चरिउ, णायकुमार चरिउ एव सुदसणचरिउ प्रथम श्रेणी के रोमाण्टिक काव्य है। इन काव्यो का पृथक्-पृथक् विश्लेषण न कर इनकी सामान्य प्रवृत्तियो का सक्षिप्त परिचय यहा प्रस्तुत किया जा सकता है।

1 अपभ्र श के रोमाण्टिक-काव्यो की प्रमुख विशेषता पात्रो के मनोवैज्ञानिक चरित्र-चित्रण संबंधी है, यद्यपि नख-शिख वर्णन एव वेशभूषा के चित्रण में पूर्णतया श्रृंगारिकता है। कथावस्तु मे रोमाञ्च उत्पन्न करने हेतु साहसिक-यात्राएं तथा युद्ध एव प्रेम का वर्णन उदात्त शैली में हुआ है।

2. अपभ्रंश के रोमाण्टिक-काव्यो की कथा का आधार प्रचलित लोक-कथाए और लोक-गाथाएं है। कवियो ने कुछ धार्मिक बाते जोडकर उन्हे चरित या कथा काव्य का परिधान पहिना दिया है। नायक को जैन धर्म का बाना पहिना कर ऐतिहासिकता और धार्मिकता के प्रयागराज में लाकर उपस्थित कर दिया है।

3 रोमाण्टिक-काव्य एक प्रकार से प्रेमाख्यानक काव्य है। इनमे वीरगाथात्मक काव्यो के समान युद्ध और प्रेम को अधिक महत्व दिया गया है। यह लोक-गाथाओ और वीर-गीतो की प्रवृत्ति है या जिनके चक्र से विकसनशील महाकाव्यो का विकास होता है। इसमे सन्देह नही कि अपभ्र श के कवियो ने धार्मिक आवरण मे रोमाञ्चक काव्य लिखे है।

4 प्रस्तुत काव्यो मे कल्पना की गगनचुम्बी उडाने एव अतिशयोक्तियो की भरमार है। यद्यपि उनका आधार यथार्थ जीवन है, तो भी कल्पना की रगरेलिया आखमिचौनी खेलती हुई दृष्टिगोचर हो जाती है। पुष्पदन्त के णायकुमार चरिउ मे नायक नागकुमार सैकडो राजकुमारियो से विवाह करता है, जिसका यथार्थ आधार यह है कि सामन्ती वीरयुग मे सामन्त लोग युद्ध मे विजित राजाओ की राजकुमारियो से विवाह करते थे। इस प्रकार बहुविवाह करने की प्रथा विकसित थी। कवियो ने इसी सभावना के बल पर अतिशयोक्तिपूर्ण घटनाओ का अकन किया है।

5 साहसिक-कार्य, बीहड यात्राएं, उजाड नगर अथवा भयकर वन में अकेले जाना, उन्मत्त हाथी से अकेले ही युद्ध करना, यक्ष, गन्धर्व और विद्याधरादि से युद्ध करना, समुद्र-यात्रा और उसमे जहाज का फट जाना आदि का वर्णन मिलता है। ये वर्णन कथा में रोमाञ्च गुण उत्पन्न करने के लिये उस नमक के समान है जो व्यञ्जन को स्वादिष्ट बनाने के लिये अत्यन्त उपयोगी है।

6 पौराणिक-काव्यो के समान रोमाण्टिक काव्यो के कथानक भी उलझे हुए और जटिल है। कथा के भीतर कथा की परम्परा जिसे कि 'कदलीस्तम्भशिल्प' कहा जा सकता है, सर्वत्र वर्तमान है। अवान्तर-कथाओ और भवान्तरो का वर्णन इन काव्यो की एक सामान्य विशेषता है। पूर्वजन्मो के कर्मों का फल दिखाकर शील का उन्नत बनाना एव वर्तमान जीवन को परिष्कृत करना ही इन काव्यो का उद्देश्य है। नायक आरम्भ में विषयासक्त दिखलाई पड़ेगा, पर अन्त मे विरक्त होकर सन्यास ग्रहण कर लेता है तथा मुक्ति प्राप्त कर लेता है।

7 अपभ्रंश के रोमान्टिक-काव्यो मे कथानक रूढियो का प्रचुर परिमाण मे उपयोग हुआ है, जिनमे से निम्न रूढिया तो अत्यन्त प्रसिद्ध हैं :—

(क) उजाड नगर का मिलना, वहा किसी कुमारी का दर्शन होना और उससे विवाह हो जाना। भविसयत्तकहा इसका सुन्दर उदाहरण है।

(ख) प्रथम-दर्शन, गुण-श्रवण या चित्र-दर्शन द्वारा प्रेम का जागृत होना। यथा—भविसयत्त कहा, णायकुमार चरिउ, सुदसण चरिउ आदि।

(ग) द्वीप-द्वीपान्तरो की यात्रा, समुद्र मे जहाज का टूट जाना, नाना प्रकार की बाधाय और उन बाधाओ को पारकर निश्चित स्थान पर पहुचना। यथा भविसयत्त कहा, णायकुमार चरिउ, सिरिवाल कहा आदि।

(घ) दोहद कामना। यथा करकड चरिउ।

(ङ) पञ्चाधिवासितो द्वारा राजा का निर्वाचन। यथा करकंड चरिउ।

(च) शत्रु-सन्तापित सरदार की सहायता एवं युद्ध मोल लेना। यथा करकड चरिउ, णायकुमार चरिउ।

(छ) मुनि-श्राप। यथा करकड चरिउ, भविसयत्त कहा।

(ज) पूर्व जन्म की स्मृति के आधार पर शत्रुता एव मित्रता का निर्वाह, पूर्व-जन्म के उपकारो का बदला चुकाना तथा जन्मान्तरो के दम्पतियो का पति-पत्नी के रूप मे होना। यथा जसहर चरिउ, णायकुमार चरिउ, करकड चरिउ, भविसयत्त कहा आदि।

(झ) दुश्चरित्र अथवा धोखेबाज पत्नी का होना। यथा करकड चरिउ, जसहर चरिउ, सुदसण चरिउ आदि।

(च) रूप परिवर्तन। यथा करकड चरिउ, भविसयत्त कहा आदि॥

दूसरी आध्यात्मिक काव्य-प्रवृत्ति को कुछ विद्वानो ने रहस्यवादी काव्य-प्रवृत्ति भी कहा है। इस विधा मे सबसे प्राचीन जोइदु कृत परमप्पयासु-जोयसारु एवं मुनि रामसिंह कृत पाहुडदोहा तथा सावयधम्मदोहा नामक दोहा-ग्रन्थ प्रमुख है। अपभ्रंश के इस श्रेणी के साहित्य पर एक ओर कुन्दकुन्द के समयसार का प्रभाव है, तो दूसरी ओर उपनिषद् तथा गीता के ब्रह्मवाद का प्रभाव परिलक्षित होता है। इसमे आत्मा—परमात्मा, सम्यक्त्व—मिथ्यात्व एव भेदानुभूति का बहुत ही सुन्दर चित्रण हुआ है। परमात्मा का स्वरूप बतलाते हुए कवि जोइदु ने कहा है—

> वर्यहिं सत्थहिं इदियहिं जो जिय मुणहु ण जाइ।
> णिम्मल झाणह जो विसउ जो परमप्पु अणाइ॥ (1।23)

अर्थात्—केवली की दिव्यवाणी से, महामुनियो के वचनो से तथा इन्द्रिय एवं मन से भी शुद्धात्मा को नहीं जाना जा सकता, किन्तु जो आत्मा निर्मल ध्यान द्वारा ग्रम्य है, वही आदि अन्त रहित परमात्मा है।

मुनि रामसिंह ने रहस्यवाद का बहुत ही सुन्दर अकन किया है । भारतीय परम्परा में जिस रहस्यवाद के हमे दर्शन होते हैं, वह रहस्यवाद रामसिंह के निम्न दोहे में स्पष्ट रूप से विद्यमान है —

हउ सगुणी पिउ णिग्गुणउ णिल्लक्खणु णीसगु ।
एकहिं अगि वसतयह मिलिउ ण अंगहिं अगु ॥ (पाहुड-10)

अर्थात्—मैं सगुण हूं और प्रिय निर्गुण, निर्लक्षण और निःसंग है । एक ही अग रूपी अक अर्थात् कोठे में बसने पर भी अग से अग नही मिल पाया ।

तुलनात्मक दृष्टि से अध्ययन करने पर अवगत होता है कि अपभ्रंश की इस विधा पर योग एव तान्त्रिक पद्धति का भी यत्किञ्चित् प्रभाव पड़ा है । इसमें चित्-अचित्, शिव-शक्ति, सगुण-निर्गुण, अक्षर, रवि-शशि आदि पारिभाषिक शब्दो का प्रयोग मिलता है, जो जैन परम्परा के शब्द नही हैं । शिव—शक्ति के सम्बन्ध में कहा गया है —

सिव विणु सत्ति ण वावरइ सिउ पुणु सत्ति-विहीणु ।
दोहिंमि जाणहिं सयलु जगु वुज्झइ मोह विलीणु ॥ (पाहुड-55)

अर्थात् शिव के बिना शक्ति का व्यापार नही होता और न शक्ति-विहीन शिव का। इन दोनो को जान लेने से सकल जगत् मोह में विलीन समझ मे आने लगता है ।

तीसरी महत्वपूर्ण विधा बौद्ध-दोहा एव चर्या-पद सम्बन्धी है, जिसे सन्ध्याभाषा की सज्ञा भी प्राप्त है । सिद्धो ने परमानन्द की स्थिति, उस मार्ग की साधना एव योग-तत्व का वर्णन प्रतीकात्मक भाषा में किया है । इतना ही नही, उन्होने तात्कालिक सामाजिक कुरीतियो तथा रूढियो की निन्दा के साथ ब्राह्मण धर्म के पाखण्डो का भण्डाफोड किया है । यद्यपि इन दोहो में आध्यात्मिक तत्व और दार्शनिक परम्पराये निहित हैं, पर इनमे ध्वसात्मक-तत्व प्रधान रूप से सजग है, जबकि जैन आध्यात्मिक अपभ्रंश दोहो में तीव्र ध्वंसात्मक रूप न होकर आध्यात्मिक तत्व का निरूपण ही उपलब्ध होता है । मुनि रामसिंह ने भी यद्यपि आडम्बर-पूर्ण कुरीतियो का निराकरण किया है, पर वे अपनी वर्णन—प्रक्रिया में उग्र नही हो पाए हैं । यथा.—

मुडिय मंडिय मुंडिया सिरु मुडिउ चित्तु ण मुडिया ।
चित्तह मुडणु जि कियउ ससारहं खडणु ति कियउ ॥ (पाहुड—135)

अर्थात् हे मूड मुडाने वालो में श्रेष्ठ मुडी, तूने सिर तो मुंडाया पर चित्त को न मोडा । जिसने चित्त का मुण्डन कर डाला उसनें संसार का खण्डन कर डाला ।

जैन कवि कण्ह या सरह की भाति अपने विरोधी को जोर की डाट-फटकार नही बतलाते और तान्त्रिक-पद्धति भी उस रूप में समाविष्ट नही है, जिस रूप में बौद्ध—दोहो में । यत बौद्ध-तान्त्रिको ने स्त्री-सग और मदिरा को साधना का एक आवश्यक अग माना है । इन तान्त्रिको की कृपा से ही शैव और शाक्त साधना में पच—मकार को स्थान प्राप्त हुआ है । वज्रयान शाखा के कवियो ने अपनी रहस्यात्मक मान्यताओ को स्त्री-संग सबधी प्रतीको से व्यक्त किया है । यही कारण है कि वाला, रण्डा, डोम्बी, चाण्डाली, रजकी आदि के साथ भोग करना इन्होने विहित समझा । यद्यपि यह सत्य है कि योग-स्थिति का वर्णन करने के हेतु वे अश्लील प्रतीक चुनते थे पर उनका अभिप्रेत अर्थ भिन्न ही होता था । वाला, रण्डा के साथ सम्भोग करनें का अर्थ है कि कुण्डलिनी को सुषुम्ना के मार्ग से ब्रह्म रन्ध्र में ले जाना । अतएव स्पष्ट है कि बौद्ध-दोहो के द्वारा अपभ्रंश—साहित्य में प्रतीकात्मक—रहस्यवाद की एक परम्परा प्रारम्भ हुई।

चर्यापद तो परवर्ती-साहित्य के लिये वहुत ही अमूल्य-निधि सिद्ध हुए। इन्हीं पदो से हिन्दी के पद-साहित्य के विकास की कडी सहज में ही जोडी जा सकती है।

चौथी काव्य प्रवृत्ति शौर्य एवं प्रणय सबधी है, जो अपभ्र श दोहा-साहित्य मे प्राचीन काल से चली आ रही है। डा हीरालाल जैन ने इस प्रवृत्ति को भावनात्मक-मुक्तक प्रवृत्ति[1] की सज्ञा प्रदान की है। उन्होने इस प्रवृत्ति के जन्मदाता राजस्थानी चारणया भाट कवियो को वताया है। वस्तुत इस प्रवृत्ति का दर्शन हमें महाकवि कालिदास के 'विक्रमोर्वशीय' नामक नाटक की उन उक्तियो में मिलता है, जिनमें विरही पुरुरवा अपने हृदय की मार्मिक दशा को व्यक्त करता है। पुरुरवा देखता है कि सामने से कोई हस मन्द गति से चला जा रहा है। हस को यह अलसगति कहा से मिली ? उसे सहसा ही उर्वशी का जघनभरालसगमन स्मरण आ जाता है और वह कह उठता है—

> रे रे हसा किं गोइज्जइ गइ अणुसारें मइ लक्खिज्जइ।
> कइ पइ सिक्खिउ ए गइ लालस सा पइं दिट्ठी जहणभरालस ॥

(विक्रमोर्वशीय नाटकम् 4।32)

पुरुरवा हस-युवा को हसिनी के साथ प्रेमरस के साथ क्रीडा करते हुए देखकर उर्वशी के विरह से भर जाता है और उसके मुख से निकल पडता है, काश, मै भी हस होता —

> एक्कक्कमवड्ढिअगुरुअरपेम्मरसें।
> सरे हसजुआणओ कीलइ कामरसें (विक्रमोर्वशीय 4।41)

यहां यह स्मरणीय है कि उक्त पद्यो की अभिव्यञ्जना शैली लोकगीतो के अतिनिकट है। उपर्युक्त पद्य अडिल्ल छन्द में लिखा गया है, जो अपभ्र श का अपना छद है। अत यह निष्कर्ष निकालना कठिन नही है कि अपभ्र श की प्रवन्ध-पद्धति के विकास में लोकगीतो का प्रमुख स्थान रहा है।

कालिदास के प्रणय-मुक्तको के उपरान्त दूसरी मोतियो की लडी हमे आचार्य हेमचन्द्र के व्याकरण-दोहो में मिलती है। जहा कालिदास के मुक्तको में टीस, वेदना और कसक है वहा हमचन्द्र के दोहो में शौर्य-वीर्य का ज्वलन्त तेज, युवक-युवतियो के उल्लास, प्रणय-निवेदन के वैविध्य एव रतिभावो के गाम्भीर्य दृष्टिगोचर होते है। इसमें सदेह नही कि हेमचन्द्र के उन अपभ्रंश-दोहो में लोक-जीवन का तरल चित्रण मिलता है। प्रणय के भोलेपन और शौर्य की प्रौढी की झलक अद्वितीय है। हेमचन्द्र द्वारा उदाहृत इन दोहो में मात्र रमणी के विरह मे कुम्हलाने वाला प्रेम या संयोग की कसौटी पर कनकरेखा की तरह चमकने वाला प्रेम दिखलाई नही देता, किन्तु प्रेम का वह रूप दृष्टिगोचर होता है, जिसमें प्रिय अपने शौर्य और पराक्रम-प्रदर्शन द्वारा अपनी वीरता से नायिका के हृदय को जीत लेता है। यहा श्रृंगार-मिश्रित वीर-रस के कुछ पद उद्धृत किये जाते है —

> संगर सएंहि जु वण्णिअइ देक्खु अम्हारा कतु।
> अइमत्तहं चत्त कुसहं गयकुंभइं दारंतु ॥ (सिद्धहेम 45)

अर्थात् जो सैकडो युद्धो में बखाना जाता है, उस अतिमत्त त्यक्ताकुश गजो के कुम्भस्थलो को विदीर्ण करने वाले मेरे कन्त को देखो।

---

1 नागरी प्रचारिणी पत्रिका—अक 50 पृष्ठ 108

एक नायिका युद्धस्थल में अपने प्रियतम के हाथों में करवाल देखकर प्रसन्न हो जाती है । वह देखती है कि जब उसकी अथवा शत्रुओ की सेना भागने लगती है तब उसके प्रियतम के हाथो में तलवार चमकने लगती है —

मग्गउ देक्खिवि निअय-बलु बलु पसरिअउ परस्सु ।
उम्मिल्लइ ससिरेहं जिवं करि करवालु पियस्सु (सिद्धहेम. 354)

हेमचन्द्र के अनन्तर प्रवन्ध-चिन्तामणि में कवि मुञ्ज के भी उक्त प्रवृत्ति सम्बन्धी कुछ दोहे उपलब्ध होते है । यहा वीरता सम्बन्धी दो एक उदाहरण प्रस्तुत किये जाते है जिससे उक्त प्रवृत्ति का आभास उपलब्ध हो सके —

एहु जम्मु नग्गहं गियउ भडसिरि खग्गु न भग्गु ।
तिक्खां तुरिय न माडिया गोरी गलि न लग्गु ॥ (पद्य-75)

अर्थात् यह जन्म व्यर्थ गया क्योकि भट के सिर पर खड्ग भग्न नही किया, न तीखे घोड़े पर सवारी की और न गौरी को गले से ही लगाया ।

आपणइं प्रभु होइयइ कइ प्रभु कीजइ हत्थि ।
काजु करेवा माणसह तीजइ मग्गु न अत्थि ॥ (पद्य 179)

अर्थात् या तो स्वय अपने ही स्वामी हो या स्वामी को अपने हाथ में करे । कार्य करने वाले पुरुष के लिये अन्य तीसरा कोई मार्ग नही ।

तत्पश्चात् इसी अपभ्रंश से आधुनिक भारतीय लोकभाषाओ का उदय हुआ जिसमे नागर अथवा शौरसेनी अपभ्रंश से उसकी प्राय समस्त प्रवृत्तियो को लिए हुए राजस्थानी भाषा का विकास हुआ । "राजस्थान" अथवा "राजस्थानी" शब्द युगो-युगो तक हमारे गौरव का प्रतीक-चिन्ह रहा है क्योकि उस पुण्यभूमि पर निर्मित विविध साहित्य अध्यात्म–जगत् मे तो सर्वोपरि रहा ही, साथ ही स्वाभिमान, संस्कृति एवं देश-गौरव की सुरक्षा की कहानी के रूप में भी वह महामहिम रहा है । उसके शौर्य-वीर्य पूर्ण साहित्य से प्रभावित होकर कर्नल टाड ने लिखा है कि "राजस्थान मे कोई छोटा सा राज्य भी ऐसा नही है कि जिसमें थर्मापिली जसी रण-भूमि न हो और न ही ऐसा कोई नगर अथवा ग्राम है जहा लाइयोनिडस जैसा वीर महापुरुष उत्पन्न न हुआ हो । " तात्पर्य यह है कि राजस्थानी भाषा में 12वी-13वी सदी से ही ऐसे साहित्य का सृजन होता रहा है जिसमें एक ओर तो जैन कवियो द्वारा शान्तरस की अविच्छिन्न-धारा प्रवाहित रही और दूसरी ओर मुगलो के आक्रमणो के बाद रण में जूझने वाले लक्ष-लक्ष राष्ट्रप्रेमी आवाल-वृद्ध नर-नारियो की वीर-गाथाओ को लेकर राजस्थानी कवियो ने अपने विविध वीर काव्यो की रचनाए की और शृगार एवं वीर रस को नया ओज प्रदान किया । समग्र राजस्थानी साहित्य का अध्ययन करने से प्रतीत होता है कि वह युग-युग की पुकार के अनुसार एक योजनावद्ध 'टीम-वर्क' के रूप मे विकसित हुआ है। राजस्थानी कवियो ने राजस्थान एवं राजस्थानी-भाषा, राजस्थानी-संस्कृति, राजस्थानी-इतिहास, राजस्थानी-लोक परम्पराये तथा अध्यात्म, धर्म, दर्शन एवं विचारधाराओ तथा सम-सामयिक परिस्थितियो के अनुसार समाज एवं देश को उदवोध देने हेतु अपनी-अपनी शक्ति एवं प्रतिभा के अनुसार साहित्य सृजन किया है । फिर भी अध्ययन की सुविधा से उसे तीन भागो में विभक्त किया जा सकता है —

1 राजस्थानी जैन साहित्य 2 राजस्थानी चारण भाटो द्वारा लिखित साहित्य एव 3 राजस्थानी लौकिक साहित्य ।

प्राचीनता प्रामाणिकता एवं परिमाण में राजस्थानी जैन-साहित्य जैन-संस्कृति का पोषक होने पर भी भाषा-वैज्ञानिक दृष्टि से अत्यन्त प्रामाणिक है, क्योकि राजस्थानी भाषा के विकास के साथ ही जैन कवियो ने उसमें अपनी रचनाएं आरम्भ करदी थी । अतः प्रारम्भिक राजस्थानी भाषा मे लिखे जाने तथा उन रचनाओ की समकालिक प्रतिलिपिया सुशिक्षित एवं गृहत्यागी साधक यतियो द्वारा लिखित होने से वे राजस्थानी भाषा के भाषा-वैज्ञानिक अध्ययन की दृष्टि से अत्यन्त महत्वपूर्ण है । वर्धमानसूरि कृत 'वर्धमान पारणउ' जैसी अनेक रचनाएं राजस्थानी क उदयकाल में लिखी गई । तत्पश्चात् रासा-साहित्य मे भरतेश्वर वाहुवलि घोर, भरतेश्वर वाहुवलि रास, बुद्धि रास, जीवदया रास, आवू रास एवं धवलगीत जैसी अनेक रचनाएं इसी कोटि मे लिखी गई, साथ ही विविध कथा, चरित, आख्यान तथा छन्द, अलंकार और लोकोपयोगी अनेक ग्रन्थ लिखे जाते रहे। यह क्रम मुगल-आक्रमणो के पूर्व तक तीव्रगति से चलता रहा । उसके वाद विपम राजनैतिक उथल-पुथल की स्थिति मे चारण-भाटो ने रण-वाकुरो मे रण-जोश जगाने हेतु वीरोचित्त अनेक काव्यो का प्रणयन किया, जो वर्षों तक कण्ठ-परम्परा मे ही प्रचलित वने रहे ।

कुछ विद्वानो ने राजस्थानी जैन कवियो पर सम्प्रदायवाद का दोपारोपण किया है । उसका मूल कारण राजस्थानी कवियो की विविधमुखी साहित्यिक रचनाओ के प्रति उन (दोपारोपणा करने वालों) की सर्वथा अनभिज्ञता ही कही जानी चाहिये । साधन-सामग्री के अभाव अथवा स्वय के प्रमादवश सम्भवत उन्हें यह जानकारी प्राप्त नही हो सकी कि जैन कवि निरन्तर ही निस्पृह भावना से लोकानुगामी रहे है । उन्होंने जैन विपयो पर मात्र इसलिये ही नही लिखा है कि वे जैन थे, वलिक इसलिये लिखा है कि जैनधर्म एव दर्शन राजस्थान एव गुजरात के प्रमुख धर्म-दर्शनो मे से एक था तथा वहा पर जैनधर्मियो की सख्या भी पर्याप्त थी । अत उस युग की माग को पूर्ण करने के लिये ही उसे एक विधा के रूप में लिखा गया, जो जैनधर्म, दर्शन, आचार एव अध्यात्म को तो पुष्ट करता ही है साथ ही वह भाषात्मक प्रवृत्तियो, साहित्यिक विविध शैलियो, विविध कथाओ, चरितो, आख्यानो, छन्दभेदो तथा अलकार, रस एव रीति-सिद्धान्तो की दृष्टि से भी कम महत्वपूर्ण नही है । जायसी, सूर, कवीर एवं तुलसी साहित्य का साहित्य के विकास-क्षेत्र में जो अनुदान है, राजस्थानी जैन कवियो के अनुदान उनसे कम नही माने जा सकते । यदि राजस्थानी जैन कवि सम्प्रदायवादी तथा एकागी विचारधारा वाले होते तो दलपत, हेमरत्न, लव्धोदय, कुशललाभ, राजसोम, सोमसुन्दर, विद्याकुशल, चारित्रधर्म जैसे राजस्थानी जैन कवि (खुमानरासो, गोरा वादल चउपइ आदि) जैनेत्तर रचनाएं कभी न लिखते। जैन कवि मुंहणोत नणसी यदि राजस्थानी ख्याते न लिखते तो राजस्थान एवं गुजरात का इतिहास लिखा जाना भी सम्भव न होता । राठोरो की ख्याते, राठोरो की वशावलिया तथा प्रबन्धकोश, प्रबन्ध-चिन्तामणि पुरातन-प्रवन्ध-सग्रह, कुमारपाल प्रतिबोध प्रभृति ग्रन्थ राजस्थान एव गुजरात के इतिहास के लिये ही नहीं अपितु भारतीय-साहित्य एव इतिहास के भी स्रोत-सदर्भ ग्रन्थ माने गये हैं । जैन कवि भानुचन्द्र सिद्धिचन्द्र गणि ने लोहे के चने समझी जाने वाली वाण-भट्ट कृत कादम्बरी की सरल सस्कृत टीका न लिखी होती, तो वह सम्भवत लुप्त-विलुप्त अथवा अपठित एव अप्रकाशित ही रहती । इसी प्रकार लीलावती भाषा चउपइ, गणितसार चउपइ, सारस्वत वालाववोध, वृत्तरत्नाकर वालाववोध, रसिकप्रिया वालाववोध, अमरुशतक टीका, क्रिसनवेलीरुक्मिणी टीका, माधव निदान टव्वा, चमत्कार चिन्तामणि वालावबोध, अगफुरकन चउपइ, मुहूर्त चिन्तामणि वालाववोध, हीरकलश, चाणक्यनीति टव्वा, हीयाली, ऊदररासो, तमाखू निपध, शृंगारशत, वारहमासा, लोचन काजल सवाद, कर्पूरमंजरी, ढोलामारु, भोज चरित्र, विक्रमचरित्र, विल्हणपचाशिका, सदयवत्ससावलिंगा चउपइ प्रभृति रचनायें ऐसी है, जो जैनेतर विपयो से सम्बन्धित है, किन्तु वे सभी राजस्थानी जैन कवियो द्वारा लिखित है और वे राजस्थानी साहित्य की सर्वोपरि रचनाए भी सिद्ध हुई है । वस्तुत. जैन कवियो के सम्मुख जनाजन का भेदभाव न था । उनके सम्मुख तो एक ही दृष्टिकोण था—राजस्थानी-भाषा, राजस्थानी-साहित्य, लोकमगल, सर्वोदय एव समन्वय की भावना को जागृत कर उनके आदर्श रूपों को अधिकाधिक लोकोपयोगी वनाकर उनका सहज रूप में प्रस्तुतीकरण । अपने इसी

लक्ष्य की पूर्ति मे जैन कवि व्यक्तिगत सुख-सुविधाओ की भी निरन्तर उपेक्षा करते रहे । ऐसे शिरोमणि महाकवियो में समयसुन्दर, जिनहर्ष, जिनसमुद्रसूरि (बेगड), हालू, कुशललाभ, जिनदत्तसूरि, विनयसमुद्र, मतिसागर, लब्धोदय, सुमतिहंस, सिंहगणि, बच्छराज, मानसागर, सारंग, लक्ष्मीवल्लभ, हीरानन्द, केशव, वेल्ह, आनन्दघन प्रभृति प्रमुख है । ये निश्चय ही ऐसे सरस्वती-पुत्र हैं जिन्होने अपने साहित्य-साधना द्वारा राजस्थानी-अपभ्र श के माध्यम से राष्ट्र-भारती की वेदिका को द्योतित कर उसे महार्घ्यदान दिया है ।

राजस्थानी जैन कवियो ने राजस्थानी जैनेतर कवियो की कमी पूर्ति तो की ही, उन्होने राजस्थानी साहित्य-शैलियो का कोना-कोना भी छान मारा और उन्हे जहा जो रिक्तता का अनुभव हुआ उसे पूरा ही नही किया बल्कि प्रत्येक विधा मे उन्होंने भरमार जैसी ही करदी । यदि उन्होंने छन्दशास्त्र पर कुछ लिखा तो सामान्य रूप से ही नही बल्कि स्वरसगीत की दृष्टि से पृथक्, वर्ण-संगीत की दृष्टि से पृथक् और सरल सगीत की दृष्टि से पृथक् रूप से रचनाए की । यदि उन्होंने कथाओं या आख्यानो पर रचनाए की तो उनमें भी सामान्य रूप से ही नही, बल्कि धार्मिक, सामाजिक, ऐतिहासिक, उपदेशात्मक, मनोरंजनात्मक, अलौकिक, नैतिक, पशुपक्षि सम्बन्धी, शाप-वरदान विषयक, व्यवसाय सम्बन्धी, यात्रा-सम्बन्धी, मन्त्र-तन्त्र-सम्बन्धी, विशिष्ट न्याय विषयक, काल्पनिक एव प्रकीर्णक आदि विषयो के वर्गीकरण करके तदनुसार सहस्रो-सहस्रो की मात्रा मे कथाए लिख डाली । ये कथाए इतनी सरस, मार्मिक एव लोक-प्रिय हुई कि कुछ ने तो देश की परिधि भी लाघ डाली और सुदूर एशिया एव योरुप मे जाकर वहा के साहित्य की कुछ स्थानीय परिवर्तनो के साथ वे उसकी प्रमुख अग बन गई ।

इस प्रकार राजस्थानी भाषा का यह साहित्य वस्तुत परवर्ती अपभ्र श के बहुमुखी विकास एवं विविध प्रवृत्तियो की रसवती कहानी तथा साहित्यिक इतिहास की अक्षयनिधि है । हिन्दी-साहित्य के इतिहासकार इसे हिन्दी-साहित्य के महामहिम प्रथम अध्याय-आदिकाल के रूप में स्वीकार करते हैं । यथार्थता यह है कि अपभ्र श साहित्य इतना विशाल, युगानुगामी तथा लोकानुगामी रहा है तथा उसका परिवार इतना विस्तृत रहा है कि हर प्रात एव हर बोली वालो ने उसे अपना-अपना नाम देकर तथा अपनी मुद्रा लगाकर उसे अपना ही घोषित किया है । विकसनशील लोकभाषा का यही प्रधान गुण भी होता है । परवर्ती अपभ्र श के इस रूप एव परिधि के विस्तार में राजस्थानी कवियो, विशेषतया राजस्थानी जैन कवियो का योगदान कभी भी विस्मृत नही किया जा सकेगा ।

अपभ्रंश के साहित्यकार 3

—डा. देवेन्द्रकुमार शास्त्री

प्राचीनकाल मे टक्क, भादानक, मालवा और मेदपाट से सयुक्त मरुभूमि न केवल शूर-वीरता के लिए रण-भूमि में राजपूताना की आन-बान को गौरव प्रदान करने वाली थी, वल्कि विभिन्न विषयो की साहित्य-सर्जना मे भी ऊर्जस्वित स्वरो को मुखरित करने वाली थी । युद्ध-क्षेत्र में रण-बाकुरो की भाति इस प्रदेश के साहित्यकारो में भी वाणी की तेजस्विता थी, जो सतत जन-चेतना को जागृत करती रही है। यहा की भाषा भी सदा ओजस्फुरण वाली रही है। ओज गुण के अनुकूल ही मूर्धन्य वर्णों की प्रधानता इसी प्रवृत्ति की सूचक है। इसी प्रकार से राजस्थानी की रागात्मकता, स्वराघात तथा प्लुत आदि का प्रयोग अपने निरालेपन को सूचित करते है।

राजस्थान से अपभ्र श का पुराना सम्वन्ध रहा ह । अपभ्र श भारत की पश्चिमोत्तर प्रदेश की वोली थी । ज्यो-ज्यो समय वीतता गया यह वोली दक्षिण-पूर्व मे फैलती गई। इसके प्रसार का सम्बन्ध आभीरो से बताया जाता है। इस देश के कई प्रदेशो मे आभीरो का राज्य रह चुका है। नेपाल, गुजरात, महारांष्ट्र और पश्चिमी सीमान्त प्रदेशो मे कई आभीर राजाओ का राज्य था। आचार्य भरत मुनि ने हिमालय की तराई, सिन्ध प्रदेश और सिन्धु नदी के पूर्ववर्ती घाटी प्रदेश मे वसने वाले वनचरो की भाषा को आभीरोक्ति कहा है। राजशेखर अपभ्र श का क्षेत्र सम्पूर्ण राजपूताना, पजाव (पूर्व में व्यास नदी से पश्चिम मे सिन्ध नदी तट का प्रदेश) और भादानक (भदावर) प्रान्त बताते है। इस से यह स्पष्ट है कि दसवी शताब्दी में अपभ्र श राजस्थान मे बोली जाती थी । पाचवी-छठी शताब्दी मे यहा प्राकृत भाषा का प्रचलन था। सातवी शताब्दी से अपभ्र श के स्पष्ट उल्लेख मिलने लगते है। दसवी शताब्दी तक आते आते यह विभिन्न नाम-रूपो को ग्रहण करने लगती है। वस्तुस्थिति यह है कि आधुनिक भारतीय आर्यभाषाओ के लिए अपभ्र श एक सामान्य भूमिका रही है। इसलिए कोई क्षेत्रीय शब्द-रूपो के साथ इसे जूनी गुजराती कहता है, तो कोई प्राचीन पश्चिम राजस्थानी नाम से अभिहित करता है, तो कोई देशी भाषा या अवहट्ट कहता है। समय-समय पर अलग-अलग नाम विभिन्न स्थिति के सूचक रहे है। "कुवलयमालाकहा" के विशेष अध्ययन से पता लगता है कि आठवी शताब्दी मे राजस्थान में अपभ्र श बोल-चाल की भाषा थी। डॉ ग्रियर्सन तथा अन्य भाषाशास्त्रियो के अनुसार अपभ्र श के क्षेत्रीय रूप ठेठ बोलिया रही है। अपभ्र श ने छठी शताब्दी मे ही साहित्य का स्थान प्राप्त कर लिया था । अपभ्र श के सुप्रसिद्ध महाकवि स्वयम्भू ने चउमुंख, धूर्त, माउरदेव, धनदेव, आर्यदेव, छइल्ल, गोविन्द, शुद्धशील और जिनदास आदि का उल्लेख किया है, जो उन के पूववर्ती कवि है। इन मे से चतुर्मुख और गोविन्द कृष्णविषयक प्रबन्धकाव्य की रचना कर चुके थे। गोविन्द श्वेताम्बर जैन थे और चतुर्मुख दिगम्बर जैन आम्नाय के थे। अनुमान यह किया जाता है कि गोविन्द सौराष्ट्र के निवासी थे और चतुर्मुख राजस्थान के थे। महाकवि धवल ने कृष्णकथा (हरिवशपुराण) की रचना चतुर्मुख के प्रबन्धकाव्य को ध्यान मे रख कर की थी। इस प्रकार अपभ्र श भाषा और साहित्य से राजस्थान का प्रारम्भ से ही रागात्मक सम्वन्ध रहा है।

कविवर हरिषेण

राजस्थान के दि. जैन अपभ्र श-कवियो मे कविवर हरिषेण का समय तथा स्थान निश्चित रूप से ज्ञात है। उन का जन्म राजस्थान के चित्तौड नगर मे हुआ था। राजस्थान के ही प्रसिद्ध

वंश धक्कड (धर्कट) को उन्होने विभूपित किया था। इस वश मे प्राकृत तथा अपभ्र श के अनेक कवि हुए। कवि ने इस कुल का वर्णन निम्नलिखित शब्दो मे किया है —

इह मेवाड- देसी- जण-सकुलि,
सिरिउजहर - णिग्गय- धक्कडकुलि ।

उन के पिता का नाम गोवर्द्धन था, जो चित्तौड मे रहते थे। उन की माता का नाम गुणवती था। कविवर हरिषेण चित्तौड में ही रहते थे। किसी कार्य से वे एक बार अचलपुर गए। यह अचलपुर वर्तमान में आबू होना चाहिए। वैसे तो राजस्थान मे अचलपुर नाम से कई ग्राम हैं, किन्तु कविवर ने "जिणहर-पउरहो" कह कर जिस अचलपुर का सकेत किया है, वह आजकल का अचलगढ है। यहा पर अनेक जिन-मन्दिर हैं जो इतिहास-प्रसिद्ध हैं। बुध हरिषेण ने अचलपुर में रह कर "धर्मपरीक्षा" की रचना की थी। कवि के ही शब्दो में—

सिरि-चित्तउडु चइवि अचलउरहो,
गयउ णियकज्जे जिणहर-पउरहो ।
तहि छंदालकार - पसाहिय,
धम्मपरिक्ख एह तें साहिय ॥ (अन्त्य प्रशस्ति)

काव्य की रचना पूर्व-निबद्ध प्राकृत गाथा मे जयराम कवि की "धर्मपरीक्षा" के आधार पर की गई थी। कविवर हरिषेण ने 'धर्मपरीक्षा" की रचना पद्धडिया छन्द मे वि स 1044 मे की थी। कवि ने स्वयं निर्देश किया है—

विक्कमणिव परिवत्तिए कालए, गणए वरिस सहसचउतालए ।
इउ उप्पण्णु भवियजण सुहकरु, डभरहिय धम्मासय-सायरु ॥

यह काव्य ग्यारह सन्धियो में निबद्ध है। इस मे कुल 238 कडवक हैं। पूर्ववर्ती कवियो मे चतुर्मुख, स्वयम्भू, पुष्पदन्त, सिद्धसेन और जयराम का उल्लेख किया गया है। काव्य मे मनोवेग और पवनवेग के रोचक सवाद के माध्यम से जैनधर्म की उत्कृष्टता निरूपित की गयी है।

अपभ्रंश में इस रचना के पश्चात् भट्टारक श्रुतकीर्ति कृत "धर्मपरीक्षा" की रचना हुई जिसका रचना-काल वि स 1552 कहा गया है। यह काव्य कविवर हरिषेण की "धर्मपरीक्षा" के आधार पर लिखा गया। कथानक का ही नही, वर्णन का भी अनुगमन किया गया है। अतएव दोनो में बहुत कुछ साम्य लक्षित होता है। यद्यपि अद्यावधि इस को एक ही अपूर्ण प्रति उपलब्ध है, किन्तु उसके आधार पर डा जैन ने उल्लेख किया है कि प्रस्तुत कृति का कथानक हरिषेण कृत दसवी सन्धि के छठे कडवक तक पाया जाता है। अनन्तर उसी सन्धि में ग्यारह कडवक और है, फिर ग्यारहवी सन्धि मे सत्ताईस कडवको की रचना है, जिन में श्रावकधर्म का उपदेश दिया गया है। यह भाग श्रुतकीर्ति कृत "धर्मपरीक्षा" से विच्छिन्न हो गया है। सम्भवत वह सातवी सन्धि में ही पूरा हो गया होगा[1]। कविवर हरिषेण की "धर्मपरीक्षा" नि सन्देह मनोरजक है। प परमानन्द शास्त्री के शब्दो में "वह पौराणिक कथानको के अविश्वसनीय तथा असम्बद्ध चित्रण से भरपूर है और उन आख्यानो को असगत बतलाते हुए जैनधर्म के प्रति आस्था उत्पन्न की गई है"। किन्तु उसमें पुराण ग्रन्थो के मूल वाक्यो का कोई उल्लेख नही है।[2]

---

1. डा. हीरालाल जैन . श्रुतकीर्ति और उन की धर्मपरीक्षा, अनेकान्त मे प्रकाशित लेख, अनेकान्त, वर्ष 11, किरण 2, पृ 106।
2. जैन ग्रन्थ प्रशस्ति-सग्रह, पृ. 52।

महाकवि धनपाल

जैन साहित्य में धनपाल नाम के कई साहित्यकारो का उल्लेख मिलता है। प परमानन्द शास्त्री ने धनपाल नाम के चार विद्वानो का परिचय दिया है[1]। ये चारो ही भिन्न-भिन्न काल के विद्वान् हुये। इनमे से दो सस्कृत भाषा के विद्वान् थे और दो अपभ्रंश के। प्रथम धनपाल सस्कृत के कवि राजा भोज के आश्रित थे, जिन्होने दसवी शताब्दी में 'तिलकमंजरी' और 'पाइयलच्छीनाममाला" ग्रन्थो की रचना की थी। द्वितीय धनपाल तेरहवी शताब्दी के कवि है। उनके रचे हुये ग्रन्थो मे से अभी तक "तिलकमजरीसार" का ही पता लग पाया है। ततीय धनपाल अपभ्रंश भाषा मे लिखित "बाहुबलिचरित" के रचयिता है। इनका समय पन्द्रहवी शताब्दी कहा गया है। ये गुजरात के पुरवाड वंश के तिलक स्वरूप थे। इन की माता का नाम सुहडा देवी और पिता का नाम सुहडप्रभ था। चतुर्थ धनपाल का जन्म धक्कड वश मे हुआ था। इनका कोई विशेष परिचय नही मिलता है। इनके पिता का नाम मातेश्वर और माता का नाम धनश्री था। कहा जाता है कि इन्हे सरस्वती का वर प्राप्त था। इनकी रची हुई एक मात्र प्रसिद्ध रचना "भविसयत्तकहा" (भविष्यदत्तकथा) उपलब्ध होती है। अन्य किसी रचना के निर्माण का न तो उल्लेख मिलता है और न कोई संकेत ही। पता नही, किस आधार पर डा कासलीवाल ने कवि धनपाल की जन्म-भूमि चित्तौडगढ मानी है2। इसका एक कारण तो यह कहा जाता है कि कवि धनपाल का जन्म उसी धक्कड कुल मे हुआ था, जिस में "धर्म परीक्षा" के कविवर हरिषेण और महाकवि वीर का जन्म हुआ था। यह वंश अधिकतर राजस्थान मे पाया जाता है, इसलिये यह अनुमान कर लेना स्वाभाविक है कि कवि का जन्म राजस्थान मे हुआ होगा। इसके अतिरिक्त भविष्यदत्त कथा मे कुछ राजस्थानी भाषा के शब्द भी पाये जाते हैं। हमारी जानकारी के अनुसार "तीमण" तीमन या तेमन मिष्ठान्न केवल राजस्थान मे ही पाया जाता है। राजस्थानी संस्कृति के अभिव्यजक निदर्शनो से भी यह सूचित होता है कि कवि धनपाल राजस्थान के निवासी होगे। राजपूती आन-बान और शान का जो चित्रण महाकवि धनपाल ने किया है, वह अत्यन्त सजीव और हृदयग्राही है3। अतएव राजस्थान के प्रति उनका विशिष्ट अनुराग अभिव्यजित है।

पं लाखू

प लाखू विरचित "जिनदत्तकथा" अपभ्रंश के कथाकाव्यो म एक उत्तम रचना मानी जाती है। कवि का जन्म राजस्थान मे हुआ था। वे कुछ समय तक आगरा और बादीकुई के बीच रायभा मे रहे। हमारे विचार मे पं लाखू के बाबा रायभा के निवासी थे। वे जैसवाल वश के थे। किसी समय वे सपरिवार तहनगढ में आकर बस गये थे। तहनगढ बयाना से पश्चिम-दक्षिण मे पन्द्रह मील दूर है। इसका प्राचीन नाम त्रिभुवनगिरि है। करौली राज्य के मल संस्थापक राजा विजयपाल थे। उन्होने 1040 ई मे विजयमन्दिरगढ नामक दुर्ग का निर्माण कराया था। विजयपाल मथुरा के यदुवंशी राजा जयेन्द्रपाल या इन्द्रपाल (966-992 ई.) के ग्यारह पुत्रो में से एक था। इसी विजयपाल के अठारह पुत्रो मे से एक अत्यन्त पराक्रमी तिहुणपाल नाम का राजा हुआ। त्रिभुवनगिरि या तहनगढ इस तिहुणपाल राजा ने बसाया था4। तहनगढ म प्राचीन काल से यदुवशी राजाओ का राज्य रहा है। ऐतिहासिक

---

1. प. परमानन्द जैन शास्त्री · धनपाल नाम के चार विद्वान् कवि, अनेकान्त, किरण 7-8 पृ 82।
2. डा. कस्तूरचन्द कासलीवाल ग्रन्थ एव ग्रन्थकारो की भूमि—राजस्थान, अनेकान्त, वर्ष 15, किरण, 2, पृ 78।
3. द्रष्टव्य है भविसयत्तकहा तथा अपभ्रंश-कथाकाव्य, पृ 102-141।
4. डा ज्योतिप्रसाद जैन · शोधकण, "जैन सन्देश" शोधाक, भाग 22, संख्या 36, पृ. 81।

उल्लेख के अनुसार विजयपाल के उत्तराधिकारी धर्मपाल और धर्मपाल के उत्तराधिकारी अजयपाल हुए। महाबाण प्रशस्ति के अनुसार 1150 ई में अजयपाल का वहा राज्य था। परम्परा के अनुसार अजयपाल क पुत्र व उत्तराधिकारी हरपाल थे। महावन मे 1170 ई. का हरपाल का शिलालेख भी मिला है2। हरपाल के पुत्र कोशपाल थे, जो लाखू के पितामह थे। कोशपाल के पुत्र यशपाल थे। यशपाल के पुत्र लाहड थे। उनकी भार्या का नाम जिनमती था। उन दोनो के अल्हण, गाहुल, साहुल, सोहण, रयण, मयण, और सतण नाम के सात पुत्र हुये। इनमे से साहुल पं. लाखू के पिता थे। इस प्रकार कवि के पूर्वज यदुवंशी राजघराने से संबंधित थे। रचना की प्रशस्ति से स्पष्ट है कि कोसवाल यादववंश के राजा थे और उनका यश चारो ओर फैला हुआ था। कवि के शब्दो में—

जायसहोवस उवयरणसिघु गुणगरुअमाल माणिक्कसिघु।
जायव णरणाहहो कोसवालु जयरसमुद्दिय दिगचक्कवालु॥

कवि की रची हुई तीन रचनाओ का विवरण मिलता है। कवि की प्रारम्भिक रचना "चंदणछट्ठीकहा" है जो एक इतिवृत्तात्मक लघुकाय रचना है। इसम चन्दन षष्ठी व्रत का माहात्म्य एव फल वर्णित है। दूसरी "जिनदत्तचरित" वि सं 1275 की रचना है। तीसरी "अणुव्रतप्रदीप" का रचना-काल वि सं 1313 है।

जिनदत्त कथा एक सशक्त रचना है, जिसमे संस्कृत काव्य-रचना की तुलना मे प्रकृति का श्लिष्ट वर्णन तथा अलकृत शैली मे रूप-वर्णन आदि चित्रवद्ध रूपो मे लक्षित होते हैं। कवि की सबसे सुन्दर तथा सजीव रचना यही हैं।

मुनि विनयचन्द

मुनि विनयचन्द ने "चूनडीरास" नामक काव्य की रचना त्रिभुवनगढ में अजयनरेन्द्र के विहार में बैठ कर रची थी। अजयनरेन्द्र तहनगढ का राजा कुमारपाल का भतीजा था, जो राजा कुमारपाल के अनन्तर राज्य का उत्तराधिकारी वना था। त्रिभुवनगिरि या तहनगढ वर्तमान मे करौली से उत्तर-पूर्व में चौवीस मील की दूरी पर अवस्थित है। तेरहवी शताब्दी में वहा पर यादव वशीय महाराजा कुमारपाल राज्य करते थे। वि सं 1252 मे वहा मुसलमानी राज्य स्थापित हो गया था। त्रिभुवनगिरि जयपुर राज्य का तहनगढ ही है।

"चूनडीरास" मे 32 पद्य है। चूनडी या चुनडी छपी हुई साडी को कहते हैं। प्रस्तुत कृति में चूनडी के रूपक से एक गीतकाव्य की रचना की गई है। राजस्थान की महिलायें विशेष रूप से चूनडी ओढती है। कोई मुग्धा युवती मुस्कराती हुई अपने प्रियतम से कहती है कि, हे सुभग! आप जिन मन्दिर पधारिये और मेरे ऊपर दया कर शीघ्र ही एक अनुपम चूनडी छपवा दीजिये, जिससे मै जिनशासन में विचक्षण हो जाऊ। सुन्दरी यह भी कहती है कि, यदि चनडी छपवा कर नही ला देगे, तो वह छीपा मुझ पर फब्ती कसेगा और उल्हाना देगा। पति इन वचनो को सुन कर कहता है—हे मुग्धे! उस छीपा ने मुझ से कहा है कि मै जैन सिद्धान्त के रहस्य से भरपूर एक सुन्दर चूनडी शीघ्र ही छाप कर दूंगा।

---

1 द स्ट्रगल फार इम्पायर, भारतीय विद्याभवन प्रकाशन, प्रथम संस्करण, पृ 55।

2 वही, पृ. 55।

3 अगरचन्द नाहटा त्रिभुवनगिरि व उसके विनाश के संबध मे विशेष प्रकाश, अनेकान्त, 8-12, पृ 457।

चूनडीरास के अतिरिक्त 'णिज्झरपंचमीकहारासु' और 'पंचकल्लाणरासु' भी मुनि विनयचन्द कृत रचनायें उपलब्ध होती हैं। निर्झरपचमीकथा रास की रचना त्रिभवनगिरि की तलहटी में बैठकर की थी। इसम निर्झरपंचमी व्रत का माहात्म्य तथा फल बतलाया गया है। रचना सक्षिप्त तथा सुन्दर है। पचकल्याणक रास मे जैन तीर्थकरो के पाच कल्याणको की तिथियो का वर्णन किया गया है। रचना-काल तेरहवी शताब्दी अनुमानित है।

कवि ठक्कुर

कवि ठक्कुर सोलहवी शताब्दी के अपभ्र श तथा हिन्दी भाषा के कवि थे। इन का जन्म स्थान चाटसू (राजस्थान) कहा जाता है। इनकी जाति खण्डेलवाल तथा गोत्र अजमेरा था। इनके पिता का नाम "घेल्ह" था, जो स्वयं एक अच्छे कवि थे। कवि का रचना-काल वि. स. 1578-1585 कहा गया ह[1]। पं परमानन्द शास्त्री के अनुसार कवि ने वि सं 1578 में "पारस श्रवण सत्ताइसी" नामक एक रचना बनाई थी, जो ऐतिहासिक विवरण प्रस्तुत करती है। कवि ने इसमे आखो देखा वर्णन किया है। इनके अतिरिक्त जिन चउवीसी, कृपणचरित्र (वि सं 1580), पंचेन्द्रियवेलि (वि सं 1585) और नेमीश्वर की वेलि आदि रचनाये भी बनाई थी। परन्तु डा कासलीवाल ने कवि की उपलब्ध नौ रचनाओ का उल्लेख किया है, जो इस प्रकार है—इनकी एक रचना बुद्धिप्रकाश कुछ समय पूर्व अजमेर के भट्टारकीय शास्त्र-भण्डार में उपलब्ध हुई थी। ठक्कुरसी की अब तक 9 रचनाये उपलब्ध हो चुकी है, जिनके नाम निम्न प्रकार हैं[2]— (1) पार्श्वनाथ शकुनसत्तावीस (वि. सं 1575), मेघमाला-व्रतकथा (वि सं 1580), (3) कृपण-चरित्र (वि. सं 1585), (4) शील बत्तीसी (वि सं 1585),(5) पंचेन्द्रिय-वेलि (वि स 1585),(6) गुणवेलि, (7) नेमि राजवलि वेलि, (8) सीमन्धरस्तवन, (9) चिन्तामणि जयमाल। इन रचनाओ के अतिरिक्त इन के कुछ पद भी प्राप्त हुये हैं, जो विभिन्न गुटको में संग्रहीत हैं।

हमारी जानकारी के अनुसार उक्त रचनाओ मे से "मेघमालाव्रत कथा" और "चिन्तामणि जयमाल" ये दोनो रचनायें अपभ्रंश भाषा की है। मेघमालाव्रत कथा में 115 कडवक है। इसमें मेघमाला व्रत की कथा का संक्षिप्त तथा सरल वर्णन है। यह व्रत भाद्रपद मास मे प्रतिपदा से किया जाता है। यह व्रतकथा प. माल्हा के पुत्र कवि मल्लिदास की प्रेरणा से रची थी। चिन्तामणि जयमाल केवल 11 पद्य है। इस में सयम का महत्व बताया गया है। रचना का प्रारम्भ इस प्रकार किया गया है—

> पणविवि जिणपासहु पूरण आसहु दूरुज्झिय संसार भलु।
> चिंतामणि जं तहु मणि सुमरंतहु सुणहु जेम संजमह फलु॥

उक्त विवरण के आधार पर पता लगता है कि कवि का रचना-काल वि. सं 1575 से लगभग 1590 तक रहा होगा। कवि ठक्कुर अपभ्रंश के एक अन्य कवि ठाकुरसी से भिन्न हैं। उनका परिचय निम्नलिखित ह।

शाह ठाकुर

रचना में इन का नाम शाह ठाकुर मिलता है। अभी तक इन की दो रचनाय ही उपलब्ध हो सकी हैं। एक अपभ्रंश में निबद्ध है और दूसरी हिन्दी मे। "शान्तिनाथ चरित्र" एक

---

1 प परमानन्द जैन शास्त्री जैन ग्रन्थ प्रशस्ति-सग्रह, प्रस्तावना, पृ. स 141।

2 डा कस्तूरचन्द कासलीवाल अलभ्य ग्रन्थो की खोज, अनेकान्त मे प्रकाशित, वर्ष 16, किरण 4, पृ. 170-171।

अपभ्रंश काव्य है। यह पाच सन्धियो मे निवद्ध है। कवि की दूसरी रचना "महापुराण-कलिका" है, जो 27 सन्धियों मे विरचित एक हिन्दी प्रबन्धकाव्य है। शान्तिनाथ चरित्र मे सोलहवें तीर्थंकर श्री शान्तिनाथ का संक्षेप मे जीवन-चरित वर्णित है। कवि ने यह प्रबन्ध-काव्य वि. सं 1652 मे भाद्रपद शु पंचमी के दिन चकत्तावंश के जलालुद्दीन अकबर बादशाह के शासनकाल में ढूढाहड देश के कच्छपवंशी राजा मानसिंह के राज्य मे बनाया था। राजा मानसिंह की राजधानी उस समय अंबावती या आमेर में थी[1]। कवि के पितामह का नाम साहु सील्हा और पिता का नाम खेता था। ये खण्डेलवाल जाति और लुहाड्या गोत्र के थे। ये भ चन्द्रप्रभु के विशाल जिनमन्दिर से अलंकृत लुवाइणिपुर के निवासी थे। कवि संगीत, छन्द-अलंकार आदि मे निपुण तथा विद्वानो का सत्संग करने वाला था। इनके गुरु अजमेर शाखा के विद्वान् भट्टारक विशालकीर्ति थे[2]। अत कवि राजस्थान का निवासी था। कवि की भाषा बहुत ही सरल है। अपभ्रंश की रचना होने पर भी उस समय की हिन्दी से प्रभावा-पन्न है। क्योकि सतरहवी शताब्दी में व्रज भाषा अपने उत्कर्ष पर थी। अतएव उससे प्रभावित होना स्वाभाविक था। उदाहरण के लिये कुछ अन्तिम पक्तिया है —

> जिणधम्मचक्क सासणि सरंति गयणय लहु जिम ससि सोह दिंति,
> जिणधम्मणाण केवलरवी य तह अट्ठकम्ममल विलय कीय।
> एत्तउ मागउ जिण सतिणाह महु किज्जहु दिज्जहु जइ बोहिलाह।
>
> 5,59

कवि ने अपनी गुरु-परम्परा का विस्तार के साथ वर्णन किया है। दिल्ली से लेकर अजमेर तक प्रतिष्ठित भट्टारक-परम्परा का एक ऐतिहासिक दस्तावेज इस रचना की अन्तिम प्रशस्ति में उपलब्ध है।

मुनि महनन्दि

मुनि महनन्दि भट्टारक वीरचन्द के शिष्य थे। इन की रची हुई एक मात्र कृति बारक्खडी या पाहुडदोहा उपलब्ध हुई है। इसकी एक हस्तलिखित प्रति दि जैन तेरहपंथी बडे मन्दिर, जयपुर में क्रमाक 1825, वेष्टन सं 1653, लेखनकाल वि स 1591 मिलती है[3]। इससे यह निश्चित है कि रचना पन्द्रहवी शताब्दी या इससे पूर्व रची गई होगी। डा कासलीवाल जी ने इसका समय पन्द्रहवी शताब्दी बताया है[4]। इसके रचयिता एक राजस्थानी दि जैन सन्त थे। किसी-किसी हस्तलिखित प्रति मे कवि का नाम "महयद" (महीचन्द) भी मिलता है। इस कृति मे 335 दोहे मिलते है। किसी-किसी प्रति में 333 दोहे देखने मे आते है। अपभ्रंश में अभी तक प्राप्त दोहा-रचनाओ मे निस्सन्देह यह एक सुन्दर एवं सरस रचना है। भाषा और भाव दोनो ही अर्थपूर्ण है। इसमे लगभग सभी तरह के दोहे मिलते है। आत्मा क्या है इसे समझाता हुआ कवि कहता है—

> खीरह मज्झह जेम घिउ तिलह मज्झि जिम तिल्लु।
> कट्ठहु आरणु जिम वसइ तिम देहहि देहिल्लु ॥22॥

अर्थात् जैसे दूध मे घी रहता है, तिल में तेल समाया रहता है, अरनिकाष्ठ मे अग्नि छिपी हुई रहती है, वैसे ही शरीर के भीतर आत्मा व्याप्त है।

---

1 प परमानन्द जैन शास्त्री · जैन ग्रन्थ प्रशस्ति-सग्रह, प्रस्तावना, पृ स 130।

2 वही, प. 130-131।

3 डा. कस्तूरचन्द कासलीवाल राजस्थान के जैन शास्त्र-भण्डारो की ग्रन्थ-सूची, भाग 2, पृ. 287।

4. डा. कस्तूरचन्द कासलीवाल राजस्थान के जैन सन्त-व्यक्तित्व एव कृतित्व, पृ 173।

कवि हरिचन्द

अपभ्रंश में हरिश्चन्द्र नाम के दो कवि हो गए है। एक हरिश्चन्द्र अग्रवाल हुए, जिन्होंने अणत्यमियकहा, दशलक्षणकथा, नारिकेरकथा, पुष्पांजलिकथा और पचकल्याणक की रचना की थी। दूसरे कवि हरिचन्द राजस्थान के कवि थे। पं परमानन्द शास्त्री के अनुसार कवि का नाम हल्ल या हरिइद अथवा हरिचन्द है। कवि का "वड्ढमाणकव्व" या वर्द्धमानकाव्य विक्रम की पन्द्रहवी शती की रचना ज्ञात होती है। उसका रचनास्थल राजस्थान है[1]। यह काव्य देवराय के पुत्र संघाधिप होलिवर्म के अनुरोध से रचा गया था। कवि हरिचन्द ने अपने गुरु मुनि पद्मनन्दि का भक्तिपूर्वक स्मरण किया है। कवि के शब्दो में—

पउमणंदि मुणिणाह गणिदहु चरणसरणगुरु कइ हरिइंदहु ।

मुनि पद्मनन्दि दि. जैन शासन-सघ के मध्ययुगीन परम प्रभावक भट्टारक थे जो बाद में मुनि अवस्था को प्राप्त हुए थे। ये मन्त्र-तन्त्रवादी भट्टारक थे। इन्होंने अनेक प्रान्तो में ग्राम-ग्राम में विहार कर अनेक धार्मिक, साहित्यिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक लोकोपयोगी कार्यों को सम्पन्न किया था। आप के सम्वन्ध मे ऐतिहासिक घटना का उल्लेख मिलता है[2]।

ब्रह्म बूचराज

ब्रह्म बूचराज या वल्ह मूलत एक राजस्थानी कवि थे। इनकी रचनाओ में इनके कई नामो का उल्लेख मिलता है—बूचा, वल्ह, वील्ह या वल्हव। ये भट्टारक विजयकीर्ति के शिष्य थे। ब्रह्मचारी होने के कारण इन का 'ब्रह्म' विशेषण प्रसिद्ध हो गया। डा कासलीवाल जी ने इनकी रची हुई आठ रचनाओ का उल्लेख किया है[3]—मयणजुज्झ, सतोषतिलक जयमाल, चेतन-पुद्गल-धमाल, टंडाणा गीत, नेमिनाथ वसतु, नेमीश्वर का वारहमासा, विभिन्न रागो मे आठ पद, विजयकीर्ति-गीत। विजयकीर्ति-गीत मे गुरु भ विजयकीर्ति की स्तुति का गान किया गया है। इन रचनाओ में से केवल 'मयणजुज्झ' एक अपभ्रंश रचना है। मयणजुज्झ या मदनयुद्ध एक रूपक काव्य है। अपभ्रंश मे ही महाकवि हरदेव का भी 'मयणजुज्झ' काव्य मिलता है जो भारतीय ज्ञानपीठ, दिल्ली से प्रकाशित हो चुका है। मदनयुद्ध मे जिनदेव और कामदेव के युद्ध का वर्णन किया गया है, जिस में अन्तत कामदेव पराभूत हो जाता है। कवि का वसन्त-वर्णन देखिए—

वज्जउ नीसाण वसंत आयउ छल्लकुंदसि खिल्लियं ।
सुगंध मलय-पवण झुल्लिय अंव कोइल्ल कुल्लियं ।
रुणझुणिय केवइ कलिय महुवर सुतरपत्तिह छाइयं ।
गावंति गीय वजंति वीणा तरुणि पाइक आइयं ॥37॥

---

1. पं परमानन्द जैन शास्त्री जैन ग्रन्थप्रशस्ति- संग्रह, प्रस्तावना, पृ 86।
2. प. परमानन्द जैन शास्त्री राजस्थान के जैन सन्त मुनि पद्मनन्दी, अनेकान्त, वर्ष 22, कि 6, पृ. 285।
3. डा. कस्तूरचन्द कासलीवाल · राजस्थान के जैन सन्त-व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ. 71।

'सन्तोषतिलक जयमाल' भी एक रूपक काव्य है। इसमें शील, सदाचार, सम्यग्ज्ञान, सम्यक्-चारित्र, वैराग्य, तप, करुणा, क्षमा तथा संयम के द्वारा सन्तोष की उपलब्धि का वर्णन किया गया है। यह रचना वि. स. 1591 में हिसार नगर में लिख कर सम्पूर्ण हुई थी। यह एक प्राचीन राजस्थानी रचना है।

इनके अतिरिक्त अन्य कवियो में से अपभ्रंश-साहित्य-की श्री-समृद्धि को समुन्नत करने वाले लगभग आठ-दस साहित्यकारो का उलेख किया जा सकता है। परन्तु उनके सम्बन्ध में कोई विवरण उपलब्ध न होने से कुछ भी कहना उचित प्रतीत नही होता है। हा, कुछ ऐसे विद्वानो का विवरण देना अनुचित न होगा, जिन्होने स्वयं अपभ्रंश की कोई रचना नही लिखी पर दूसरो को प्रेरित कर लिखने या लिखवाने मे अथवा प्रतिलिपि कराने मे अवश्य योग दिया है। भट्टारक प्रभाचन्द्र का नाम इस संदर्भ मे विशेष रूप से उल्लेखनीय है। दि. जैन आम्नाय में प्रभाचन्द्र नाम के चार भट्टारक विद्वानो के नाम मिलते है। प्रथम भट्टारक प्रभाचन्द्र बारहवी शताब्दी के सेनगण भट्टारक बालचन्द्र के शिष्य थे। दूसरे प्रभाचन्द्र चमत्कारी भट्टारक थे जो गुजरात के बलात्कारगण शाखा के भ रत्नकीर्ति क शिष्य थे। तीसरे प्रभाचन्द्र भ जिनचन्द्र के शिष्य थे और चौथे प्रभाचन्द्र ज्ञानभूषण के शिष्य थे[1]। भट्टारक जिनचन्द्र के शिष्य प्रभाचन्द्र खण्डेलवाल जाति के थे। वि सं 1571 में दिल्ली के पट्ट पर इनका अभिषेक हुआ। भट्टारक बनने के पश्चात् इन्होने अपनी गद्दी दिल्ली से स्थानान्तरित कर चित्तौड में प्रतिष्ठित की। तब से ये बराबर राजस्थान में पैदल भ्रमण करते रहे। स्थान-स्थान पर इन्होने मन्दिरो मे मूर्तियो तथा साहित्य की प्रतिष्ठा का कार्य किया। ये स्वयं बहुत बडे तार्किक तथा वाद-विवादो में विद्वानो का मद-मर्दन करने वाले थे। इन्हें स्थान-स्थान पर श्रावको की ओर से प्रतिलिपि करा कर स्वाध्याय के लिये कई अपभ्रंश काव्य भेंट मे प्राप्त हुए थे। उनके नाम इस प्रकार है—पुष्पदन्त कवि कृत 'जसहरचरिउ' की प्रति वि. सं 1575 म, प. नरसेन कृत "सिद्धचक्र-कथा' टोक मे वि सं 1579 में, पुष्पदन्त कृत 'जसहरचरिउ' सिकन्दराबाद में वि सं 1580 में, इनके शिष्य ब्र रत्नकीर्ति को महाकवि धनपाल कृत "बाहुबलिचरित" वि सं 1584 में स्वाध्याय के लिये भेट प्रदान किया गया था[2]। इससे पता चलता है कि सोलहवी शताब्दी में अपभ्रंश साहित्य की अध्ययन-परम्परा बराबर बनी हुई थी।

यथार्थ मे राजस्थान श्रमण-जैन संस्कृति का अत्यन्त प्राचीन काल से एक प्रमुख केन्द्र रहा है। यहा प्राकृत, अपभ्रंश, राजस्थानी, सस्कृत, हिन्दी आदि विभिन्न भारतीय भाषाओ मे लगभग सभी विषयो पर साहित्य लिखा जाता रहा है। साहित्य, कला, पुरातत्व आदि की दृष्टि से यह प्रदेश अत्यन्त समृद्ध है, इस में कोई सन्देह नही है। इन सभी क्षेत्रो मे जैन साहित्यकार कभी पीछे नही रहे है, वरन् वे अग्रतम पंक्ति मे आते है, यह इस निबन्ध से प्रकट हो जाता है।

1 डा. कस्तूर चन्द कासलीवाल राजस्थान के जैन सन्त—व्यक्तित्व एवं कृतित्व, पृ 183
2 वही. 185

अपभ्रंश साहित्य के आचार्य 4

—डा. कस्तूरचन्द कासलीवाल

राजस्थान मे अपभ्र श साहित्य को सर्वाधिक प्रश्रय मिला । मुस्लिम शासन काल में भट्टारको ने अपभ्र श भाषा के ग्रथो का अपने शास्त्र-भण्डारो मे अच्छा सग्रह किया और उनकी पाण्डुलिपिया करवाकर उनके पठन-पाठन मे योगदान दिया । राजस्थान के अतिरिक्त अन्य प्रदेशो के शास्त्र-भण्डारो मे अपभ्र श के ग्रन्थ या तो मिलते ही नही है और कदाचित् कही-कही उपलब्ध भी होते है तो उनकी सख्या बहुत कम होती है । राजस्थान मे अपभ्र श के ग्रन्थो की दृष्टि से भट्टारकीय शास्त्र भण्डार नागौर, अजमेर, जयपुर के शास्त्र-भण्डार सर्वाधिक महत्वपूर्ण हैं और इन्ही भण्डारो में अपभ्र श का 95 प्रतिशत साहित्य सग्रहीत है । अपभ्र श के सभी प्रमुख कवि जैसे स्वयम्भू, पुष्पदन्त, धवल, वीर, नयनन्दि, धनपाल, हरिषेण, रइधू की अधिकाश कृतिया इन्ही भण्डारो में सुरक्षित है । और जो कुछ साहित्य प्रकाश मे आया है अथवा इस साहित्य पर शोध-कार्य हुआ है वह सब राजस्थान के जैन भण्डारो मे सग्रहीत पाण्डुलिपियो क आधार पर ही सम्पन्न हो सका है । अब यहा अपभ्र श के ऐसे कवियो पर प्रकाश डाला जा रहा है जिनका राजस्थान का किसी न किसी रूप में सम्बन्ध रहा है ।

1. <u>महाकवि नयनन्दि</u> —

महाकवि नयनन्दि अपभ्र श के उन कवियो में से है जिनसे अपभ्र श साहित्य स्वय गौरवान्वित है । जिनकी लेखनी द्वारा अपभ्र श में दो महाकाव्य लिखे गये और जिनके द्वारा उसके प्रचार-प्रसार मे पूर्ण योगदान दिया गया । महाकवि नयनन्दि 11 वी शताब्दि के अन्तिम चरण के विद्वान् थे । इनकी अब तक दो कृतिया उपलब्ध हुई है और दोनो की पाण्डुलिपिया जयपुर के महावीर भवन के सग्रह मे है । नयनन्दि परमारवशी राजा भोजदेव त्रिभुवन नारायण के शासन काल में हुए थे । इनके राज्यकाल के शिलालेख सवत् 1077 से 1109 तक के उपलब्ध होते है । त्रिभुवन नारायण का शासन राजस्थान के चितौड प्रदेश पर भी रहा था । इस कारण नयनन्दि को राजस्थानी कवि भी कहा जा सकता है । इन्होने अपना प्रथम महाकाव्य "सुदसण चरिउ" को धारा नगरी के एक जैन मन्दिर के विहार में बैठकर समाप्त किया था । मालवा और राजस्थान की सीमाए भी एक दूसरे से लगी हुई है इसलिये नयनन्दि जैसे विद्वान् का सम्पर्क तो दोनो ही प्रदेशो मे रहा होगा । सुदसण चरिउ का रचना काल सवत 1100 है ।[1] यह महाकाव्य अभी तक अप्रकाशित है ।

सुदसण चरिउ अपभ्रंश का एक प्रबन्ध काव्य है जो महाकाव्यो की श्रेणी में रखने योग्य है । ग्रन्थ का चरित भाग रोचक एव आकर्षक है तथा अलकार एव काव्य-शैली दोनो ही दृष्टियो से महत्वपूर्ण है । महाकवि ने अपने काव्य को निर्दोष बतलाया है तथा कहा है कि रामायण मे राम और सीता का वियोग, महाभारत मे पाण्डवो एवं कौरवो का परस्पर कलह एव मार-काट तथा लौकिक काव्यो में कौलिक, चौर, व्याध आदि की कहानिया सुनने मे आती

1. णिव विक्कम काल हो ववगएसु, एगारह सवच्छर सएसु ।
तहि केवली चरिउ अमयच्छरेण, णयणदी विरयउ वित्थरेण ॥

है किन्तु उसके काव्य मे ऐसा एक भी दोष नही है ।[1]

ग्रन्थ मे 12 सधिया और 207 कडवक छन्द है जिनम सुदर्शन के जीवन-परिचय को अंकित किया गया है । सुदर्शन एक वणिक् श्रेष्ठी है । उसका चरित्र अत्यन्त निर्मल तथा सुमेरु के समान निश्चल है । उसका रूप-लावण्य इतना आकर्षक था कि यवतियो का समूह इसे देखने के लिये उत्कठित होकर महलो की छतो पर एव झरोखो मे एकत्रित हो जात था । वह साक्षात् कामदेव था । उसके यहा अपार धन-सम्पदा थी किन्तु फिर भी वह धर्माचरण मे तत्पर, मधुरभाषी एवं मानव-जीवन की महत्ता से परिचित था । सुदर्शन का चरित्र भारतोय सस्कृति का जीवन है जो लोभ एव प्रलोभनो मे भी अपने चरित्र की रक्षा करता है ।

सयलविहि-विहाणकव्व —

यह महाकवि का दूसरा काव्य है जो 58 सधियो में पूर्ण होता है । प्रस्तुत काव्य विशाल काव्य है जिसका किसी एक विषय से संबंध न होकर विविध विषयो से सबध है । इस ग्रन्थ की एक मात्र पाण्डलिपि आमेर शास्त्र भण्डार, जयपुर मे संग्रहीत है जिनमे बीच की 16 सधिया नही है । कवि ने काव्य के प्रारम्भ में अपने पूर्ववर्ती जैन एवं जनतर विद्वानो के नामो का उल्लेख किया है । इन विद्वानो मे वररुचि, वामन, कालिदास, कौतूहल, बाण, मयूर, जिनसेन, वादरायण, श्रीहर्ष, राजशेखर, जसचन्द्र, जयराम, जयदेव, पादलिप्त, वीरसेन, सिंहनन्दी, गुणभद्र, समन्तभद्र, अकलंक, दण्डी, भामह, भारवि, भरत, चउमुह, स्वयम्भू, पुष्पदन्त, श्रीचन्द, प्रभाचन्द्र के नाम उल्लेखनीय हैं ।[2]

कवि ने अपने इस काव्य में विभिन्न छन्दो का प्रयोग किया है जिनकी सख्या 50 मे अधिक होगी । छन्द शास्त्र की दृष्टि में इनका अध्ययन अत्यधिक महत्वपूर्ण सिद्ध हो सकता है । काव्य की दूसरी सधि में अंबाडम एवं कंचीपुट का उल्लेख है । 'अबाडम' अम्बावती का ही दूसरा नाम हो सकता है जो बाद मे आमेर के नाम से प्रसिद्ध हुआ । इससे भी सिद्ध होता है कि नयनन्दि को राजस्थान से विशेष प्रेम था और वह इस प्रदेश में अवश्य घूमा होगा ।

---

1. रामो सीय-विओय-सोयविहुरं सपत्तु रामायणे,
जादं पाडव-धायरट्ठ-सदद गोत्तं कली भारहे ।
डेडा-कोलिय चोर-रज्जु-णिरदा आहासिदा सुद्दये,
णो एक्क पि सुदसणस्स चरिदे दोस समुब्भासिदं ।।

2 मणु जण्ण वक्कु वम्मीउ वासु, वररुइ वामण, कवि, कालियासु ।
कोऊहलु बाणु मऊरू सूरु, जिणसेण, जिणागम-कमल-सूरू ।
वारायण वरणाउ विवियदड्, सिरिहरिसु रायसेहरु गुणड्ढ ।
जसइंधु, जए जयराम णामु, जयदेउ जणमणाणद कामु ।
पालित्तउ पाणिणि पवरसेणु, पायजलि पिंगलु वीरसेणु ।
सिरि-सिहणदि गुणसिह भद्दु, गुणभद्दु गुणिल्लु समतभद्दु ।
अकलंक विसम वाइय विहडि, कामद्दु रुद्दु गोविन्दु दडि ।
भम्मुई भारहि भरहुवि माहंतु, चउमुह सयभु कइ पुप्फयन्तु ।

घत्ता

सिरिचन्दु पहाचन्दु वि विवुह, गुणगणनदि मणोहरु
कइ सिरिकुमारु सरसइ कुमरु, कित्ति विलासिणी सेहरु ।

2. दामोदर :—

कविवर दामोदर राजस्थानी कवि थे। इन्होने अपने आपको मूलसंघ सरस्वती गच्छ और बलात्कार गण के भट्टारक, प्रभाचन्द्र, पद्मनन्दि, शुभचन्द्र, जिनचन्द्र की परम्परा का बतलाया है। भट्टारक जिनचन्द्र का राजस्थान से गहरा सबध था और ये राजस्थान के विभिन्न भागो में विहार करते थे। आवां (टोंक) में इनकी अपने गुरु शुभचन्द्र एव शिष्य प्रभाचन्द्र के साथ निषेधिकाये मिलती हैं। जिनचन्द्र ने राजस्थान में अनेक प्रतिष्ठा समारोहो का सचालन किया है। ऐसे प्रभावशाली एव विद्वान् भट्टारक जिनचन्द्र का कविवर दामोदर को शिष्य होने का गौरव प्राप्त था।

कविवर दामोदर की तीन कृतिया उपलब्ध होती हैं। ये कृतिया हैं :— सिरिपाल चरिउ, चदप्पह चरिउ एव णेमीणाह चरिउ। इन तीनो ही काव्यो की पाण्डुलिपिया नागौर के भट्टारकीय शास्त्र भण्डार में उपलब्ध होती हैं।

सिरिपाल चरिउ :—

यह कवि का एक रमण काव्य है जिसमें सिद्धचक्र के महात्म्य का उल्लेख करते हुए उसका फल प्राप्त करने वाले चम्पापुर के राजा श्रीपाल एव मैनासुन्दरी का जीवन परिचय दिया हुआ है। मैनासुन्दरी ने अपने कुष्ठी पति राजा श्रीपाल और उसके सातसौ साथियों का कुष्ठ रोग सिद्धचक्र के अनुष्ठान और जिनभक्ति की दृढता से दूर किया था। काव्य में श्रीपाल के अनेक साहसिक कार्यों का भी वर्णन किया गया है। चरित काव्य में चार सधिया हैं। यह काव्य श्री देवराज के पुत्र साहू नरवत्तु के आग्रह पर लिखा गया था। काव्य अभी तक अप्रकाशित है।

चदप्पहचरिउ —

यह कवि की दूसरी कृति है जिसमें आठवें तीर्थंकर चन्द्रप्रभु के जीवन का वर्णन किया गया है। इसकी एकमात्र पाण्डुलिपि नागौर के शास्त्र भण्डार में सग्रहीत है।

णेमिणाहचरिउ :—

यह कवि की तीसरी अपभ्र श भाषा की कृति है जिसमे 22 वे तीर्थंकर नेमिनाथ का जीवन अत्यधिक रोचक ढग से निबद्ध है। कवि का यह काव्य भी अभी तक अप्रकाशित है।

3 महाकवि रइधू :—

महाकवि रइधू उत्तरकालीन अपभ्र श कवियो में सर्वाधिक लोकप्रिय कवि है। रचनाओ की सख्या की दृष्टि से अपभ्र श साहित्य के इतिहास में इनका स्थान सर्वोपरि है। डा. राजाराम जैन ने रइधू की अब तक ज्ञात एव अज्ञात 35 अपभ्र श कृतियो का नाम उल्लेख किया है।[1] इनमें मेहेसर चरिउ, णेमिणाहचरिउ, पासणाह चरिउ, सम्मजिणचरिउ, बलहद्दचरिउ, प्रद्युम्न चरिउ, धन्यकुमार चरित, जसहरचरिउ, सुदसणचरिउ आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। महाकवि पर डा. राजाराम जैन ने गहरी छानबीन की है और 'रइधू ग्रन्थावली' के नाम से महाकवि के सभी उपलब्ध काव्यो के प्रकाशन की योजना पर कार्य हो रहा है।

---

1. रइधू साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन पृ. 48

निवास स्थान :—

महाकवि का जीवन सार्वभौमिक एवं सार्वलौकिक होता है । भौगौलिक एव राजनीतिक सीमाए उन्हें बाध नही सकती । महाकवि रइधू ने अपनी किसी भी रचना में अपने जन्म-स्थान के सम्बन्ध में कोई जानकारी नही दी किन्तु उनके अपने काव्यो मे रोहतक, पानीपत, हिसार, जोगिनीपुर, ग्वालियर, उज्जयिनी आदि नगरो का नामोल्लेख किया है । रइधू साहित्य के विशेषज्ञ डा राजाराम जैन ने कवि के निवास-स्थान के सम्बन्ध में अपना अभिमत लिखते हुए लिखा है कि "उनकी हिन्दी रचना बारह-भावना में प्रयुक्त हिन्दी की प्रवृत्ति देखकर ऐसा प्रतीत होता है कि उनका जन्म या निवास स्थान पजाब एव राजस्थान के सीमान्त से लेकर मध्यभारत के ग्वालियर तक के बीच का कोई स्थान होना चाहिये ।" हमारे विचार से तो कवि का जन्म राजस्थान का सीमान्त प्रदेश धौलपुर प्रदेश का कोई भाग होना चाहिये । वयस्क होने के पूर्व तक कवि का जीवन कोई विशेष उल्लेखनीय नहीं रहा इसलिये यह कहा जा सकता है कि कवि का प्रारम्भिक जीवन अपने जन्म-स्थान में ही व्यतीत हुआ और वयस्क होने पर एव काव्य रचना में रुचि लेकर वे मध्य-प्रदेश मे चले गये । महापडित आशाधर भी राजस्थान को छोडकर मालवा में जाकर बस गये थे और इसी शताब्दी में होने वाले प्राकृत एव अपभ्र श के महान् विद्वान् डा नेमिचन्द्र शास्त्री भी अपने निवास स्थान धौलपुर को छोडकर आरा (विहार) में जाकर रहने लगे थे ।

महाकवि रइधू की सभी अपभ्रंश कृतिया भाषा एव काव्य शैली में अत्यधिक महत्व-पूर्ण है । कवि ने अपभ्र श का जनभाषा के रूप में प्रयोग किया है और जहा तक सभव हो सका ह उसने अपने काव्यो की भाषा को सरल एव सुबोध बनाने का प्रयास किया है। रइधू ने अपनी अधिकाश रचनायें किसी न किसी श्रेष्ठि के आग्रह अथवा अनुरोध पर निबद्ध की है । कवि ने अपने आश्रयदाता का विस्तृत वर्णन किया है एव उसका उसके पूर्वजो सहित यशोगान गाया है । यही नहीं तत्कालीन शासको का भी अच्छा वर्णन किया है जिससे कवि के सभी काव्य इतिहास की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण बन गये है । इनकी प्रशस्तियो के आधार पर तत्कालीन सामाजिक एव राजनैतिक स्थिति का अध्ययन किया जा सकता है ।

राजस्थान के ग्रथ सग्रहालयो में रइधू का साहित्य अच्छी सख्या मे उपलब्ध होता है । जयपुर, अजमेर, नागौर, मोजमाबाद आदि स्थानो के ग्रथ-सग्रहालयो में कवि की अपभ्र श कृतिया सग्रहीत है और सम्पादन के लिये अत्यधिक उपयोगी है । राजस्थान के अपभ्र श कवि की दृष्टि से रइधू के साहित्य पर विशेष अध्ययन की आवश्यकता है । अब तक महाकवि रइधू के निम्न ग्रथ प्राप्त हो चुके है:—

1. पउम चरिउ अथवा बलभद्र चरित
2. हरिवश पुराण
3. पज्जुण्ण चरिउ
4. पासणाह पुराण
5. सम्मत्त गुणनिधान
6. मेहेसर चरिउ
7. जीवधर चरिउ
8. जसहर चरिउ
9. पुण्णासवकहाकोषु
10. धण्णकुमार चरिउ
11. सुकोसल चरिउ
12. सम्मइ जिण चरिउ
13. सिरिवाल कहा
14. सिद्धान्तार्थसार

15	अप्पसवोह कव्व	19.	सातिणाह चरिउ
16	सम्मत्त कउमुदी	20.	णेमिणाह चरिउ
17	दशलक्षण जयमाल	21.	करकडु चरिउ
18	षोडशकारण जयमाल	22	भविसयत्त चरिउ

4 विनयचन्द्र —

कविवर विनयचन्द्र माथुरसघ के भट्टारक उदयचन्द्र के प्रशिष्य और वालचन्द मुनि के शिष्य थे। इनकी अब तक तीन रचनायें चूनडीरास, निज्भर पचमी महारास एव कल्याणक रास उपलब्ध हो चुकी है। प्रथम दो रचनाये कवि ने त्रिभुवनगिरि मे निवद्ध की थी। कवि ने अपनी प्रथम रचना चूनडीरास त्रिभुवनगिरि के राजा कुमारपाल के भतीजे अजयपाल के विहार में बैठकर निर्मित की थी। कवि के समय मे त्रिभुवनगिरि जन-धन से समृद्ध था। कवि ने उसे 'सग्गखण्डण धरियल आयउ' अर्थात् स्वर्ग-खण्ड के तुल्य वतलाया है। अजयराज तहनगढ के राजा कुमारपाल का भतीजा था तथा उसके वाद राज्य का उत्तराधिकारी हुआ। सवत् 1253 मे मोहम्मद गौरी ने उस पर अपना अधिकार कर लिया और नगर को तहस-नहस कर दिया। अजयराज का नाम करौली के शासको मे दर्ज है। इसलिये 13 वी शताब्दि में यह प्रदेश त्रिभुवनगिरि के नाम से प्रसिद्ध था।

चूनडीरास —

यह कवि की लघु-कृति है जिसमें 32 पद्य है। रास मे चूनडी नामक उत्तरीय वस्त्र को रूपक बनाकर एक गीति-काव्य के रूप में रचना की गई है। कोई मुग्धा युवती हसती हुई अपने पति से कहती है कि, हे सुभग! जिन मन्दिर जाइये और मेरे ऊपर दया करते हुए एक अनुपम चूनडी शीघ्र छपवा दीजिये जिससे मैं जिन शासन में विचक्षण हो जाउ। वह यह भी कहती है कि यदि आप वैसी चूनडी छपवा कर नही देगे तो वह छीपा मुझे तानाकशी करेगा।

चूनडी राजस्थान का विशेष परिधान है जिसे राजस्थानी महिलायें विशेष रूप से ओढती है। यह राजस्थान का विशेष वस्त्र है। कवि ने इसी के आधार पर रूपक काव्य का निर्माण किया है। रचना सरस एव आकर्षक है।

निज्झर पचमी कहा रास —

यह कवि की दूसरी रचन है जिसमें निर्झर पचमी के व्रत का फल वतलाया गया है। कवि ने लिखा है कि आषाढ शुक्ला पचमी के दिन जागरण करे और उपवास करे तथा कार्तिक के महीने मे इसका उद्यापन करे अथवा श्रावण मे आरम्भ करके अगहन के महीने में उसका उद्यापन करे उद्यापन मे छत्र चमरादि पाच-पाच वस्तुयें मन्दिर मे भेंट करे। यदि किसी की उद्यापन करने की शक्ति न हो तो व्रत को दूने समय तक करे। कवि ने इस रास को भी त्रिभुवनगिरि में निवद्ध किया था।

कल्याणकरास —

यह कवि की तीसरी कृति है इसमे तीर्थंकरो के पाचो कल्याणको की तिथियो आदि का वर्णन किया गया है।

5. महाकवि सिंह:—

महाकवि सिंह अपभ्रंश के प्रकाण्ड विद्वान् थे। इसके अतिरिक्त वे प्राकृत एव संस्कृत के भी प्रसिद्ध पडित थे। इनके पिता रल्हण भी सस्कृत एव प्राकृत के विद्वान् थे। कवि की माता का नाम जिनमती था और कवि ने इन्ही की प्रेरणा से अपभ्रंश भाषा में पज्जुण्णचरिउ जैसा सुन्दर काव्य निबद्ध किया था। ये तीन भाई थे जिनमे प्रथम का नाम शुभकर, द्वितीय का गुणप्रवर और तृतीय का साधारण था। ये तीनो ही धर्मात्मा थे। कवि ने इन सबका वर्णन निम्न प्रकार किया है —

> तह पयरउ णिरु उण्णय अमइयमाणु, गुज्जर-कुल-णह-उज्जोय-भाणू।
> जो उहयपवर वाणी-विलासु, एवविह विउसहो रल्हणासु।
> तहो पणइणि जिणमइ सुहम सील, सम्मत्तवत ण धम्मसील।
> कइ सीउ ताहि गब्भतरमि, सभविउ कमलु जह सुर-सरमि।
> जणवच्छलु सज्जणु जणिय हरिसु, सुइवतु तिविह वइराय सरिसु।
> उप्पण्णु सहोयरु तासु अवर, नामेण सुहंकरु गुणहपवरु।
> साहारण लघवउ तासु जाउ, धम्माण रत्तु अइदिव्वकाउ॥

महाकवि सिंह का दूसरा नाम सिद्ध भी मिलता है जिससे यह कल्पना की गयी कि सिंह और सिद्ध एक ही व्यक्ति के नाम थे। पं परमानन्द जी शास्त्री का अनुमान है कि सिद्ध कवि ने सर्व प्रथम प्रद्युम्न चरित का निर्माण किया और कालवश ग्रन्थ नष्ट होने पर सिंह कवि ने खंडित रूप से प्राप्त इस ग्रन्थ का पुनरुद्धार किया [1]। डा हीरालाल जैन का भी यही विचार है[2] और डा हरिवश कोछड ने भी इसी तथ्य को स्वीकार किया है [3]।

रचना स्थान:—

कवि सिंह ने पजुण्णचरिउ की ग्रथ प्रशस्ति म बहाणवाड नगर का वर्णन किया है और लिखा है कि उस समय वहा रणधोरी या रणधीर का पुत्र वल्लाल था जो अर्णोराज को क्षय करने के लिये कालस्वरूप था और जिसका माडलिक भृत्य गुहिलवशीय क्षत्रिय मल्लण ब्राह्मणवाड का शासक था। जब कुमारपाल गुजरात की गद्दी पर बैठा था तब मालवा का राजा वल्लाल था। इसके पश्चात् वल्लाल यशोधवल को दे दिया जिसने वल्लाल को मारा था। कुमारपाल का शासन वि स 1199 से 1209 तक रहा अत बल्लाल की मृत्यु सवत् 1208 से पूर्व हुई होगी। इसके आधार पर यह कहा जा सकता है कि प्रद्युम्न चरित की रचना भी 1208 के पूर्व ही हो चुकी थी। अतएव सिंह कवि का समय विक्रम की 12 वी शताब्दी का अन्तिम पाद या 13 वी शताब्दी का प्रथम पाद मानना उचित प्रतीत होता है।

'ब्राह्मणवाड' या 'ब्राह्मवाद' नाम का स्थान बयाना (राजस्थान) के समीप है। वह भी पहिले एक प्रसिद्ध नगर था और वहा एक लेख में 'ब्राह्मणवाद नगरे' इस शब्द का प्रयोग किया है। यदि यह, ब्राह्मवाद वही नगर है जिसका उल्लेख सिंह कवि ने अपनी प्रशस्ति मे किया है तो कवि राजस्थानी थे ऐसा कहा जा सकता है। ब्राह्मवाद मे आज भी एक जैन मन्दिर है जिसमें 15 वी शताब्दी तक की जिन प्रतिमाए विराजमान है।

---

1 महाकवि सिंह और प्रद्युम्न चरित, अनेकान्त वर्ष 8 किरण 10-11 पृ 391।

2. नागपुर युनिवर्सिटी जनरल, सन 1942, पृ 82-83।

3 अपभ्रंशसाहित्य डा हरिवश कोछड, पृ 221।

पज्जुण्णचरिउ:—

पज्जुण्णचरिउ अथवा प्रद्युम्नचरित 15 सधियो का अपभ्र श काव्य है जिसमे श्रीकृष्ण जी के पुत्र प्रद्युम्न का जीवन-चरित निबद्ध किया गया है। जैन धर्म मे प्रद्युम्न को पुण्य पुरुषो मे माना गया है। रुक्मिणी से उत्पन्न होते ही प्रद्युम्न का हरण एक राक्षस द्वारा कर लिया जाता है। प्रद्युम्न वहीं बडे होते है और फिर 12 वर्ष पश्चात् श्रीकृष्ण जी से आकर मिलते है। प्रद्युम्न चरित्र में सभी वर्णन बडे सुन्दर हुए है तथा ग्राम, नगर, ऋतु, सरोवर, उपवन, पर्वत आदि के वर्णन के साथ ही पात्रो की भावनाओ का भी अकन किया गया है। काव्य मे करुणरस का भी अपूर्व चित्रण हुआ है तथा बालक्रीडाओं के वर्णन मे कवि ने अपनी काव्य चतुरता दिखलाई है। इसी तरह का एक वर्णन देखिये—

चाणउर विमद्दणु देवइ णदणु, सख चक्क सारगधरु।
रणि कस खयकरु, असुर भयंकरु, वसुह तिखडह गहियकरु। 1 12
रजो दाणव माणव दलइ दप्पु जिणि गहिउ असुर णर खयर कप्पु।
णव णव जोव्वण सुमणोहराइ, चक्कल घण पीण पउहराइ।
छण इद बिबसम वयणि याह, कुवलय दल दीहर णयणियाह।
केऊर हार कुण्डलधराह, कण कण कणत ककणकराह।। 1 13

6. ब्रह्म बूचराज—

बूचराज राजस्थानी विद्वान् थे। यद्यपि अभी तक किसी भी कृति में इन्होने अपने जन्म-स्थान एव माता-पिता आदि का परिचय नही दिया है किन्तु इनकी कृतियो की भाषा के आधार पर एव भ. विजयकीर्ति के शिष्य होने के कारण इन्हे राजस्थानी विद्वान् मानना अधिक तर्क-सगत होगा। वैसे ये सन्त थे। इन्होने ब्रह्मचारी पद धारण कर लिया था इसीलिये साहित्य-प्रचार एव धर्मप्रचार के लिये ये उत्तरी भारत मे विहार किया करते थे। राजस्थान, पजाब, देहली एव गुजरात इनके मुख्य प्रदेश थे। सवत् 1582 में ये चम्पावती (चाटसू) राजस्थान में थे और इस वर्ष फाल्गुन सुदी 14 के दिन इन्हें सम्यक्त्व कौमुदी की प्रति भेंट स्वरूप प्रदान की गयी थी।[1] इन्होने अपनी कृतियो में बूचराज के अतिरिक्त बूचा, वल्ह, वील्ह अथवा वल्हव नामो का उपयोग किया है। एक ही कृति मे दोनो प्रकार के नाम भी प्रयोग मे आये है। इनकी रचनाओ के आधार पर यह कहा जा सकता है कि बूचराज का व्यक्तित्व एव मनोवल बहुत ही ऊचा था। इनकी रचनाए या तो भक्ति-पूरक हैं अथवा उपदेश-पूरक।

समय:—

कविवर के समय के बारे मे निश्चित तो कुछ भी नही कहा जा सकता लेकिन इनकी रचनाओ के आधार पर इनका समय सवत् 1530 से 1600 तक का माना जा सकता है इन्होने अपने जीवनकाल में भट्टारक भुवनकीर्ति, भ ज्ञानभूषण एव भ. विजयकीर्ति का समय देखा और इनके सानिध्य मे रहकर आत्मलाभ के अतिरिक्त साहित्यिक लाभ भी प्राप्त किया। अभी तक इनकी आठ रचनाय प्राप्त हो चुकी है। 'मयणजुज्झ' इनकी अपभ्रंश कृति है तथा शेष सब हिन्दी कृतिया है। इनकी अन्य कृतियो के नाम हैं-सतोष जयतिलक, चेतनपुद्गल धमाल, टंडाणा गीत, नेमिनाथ वसत, नेमीश्वर का बारहमासा, विजयकीर्ति गीत आदि।

---

1 सवत् 1582 फाल्गुन सुदी 14 शुभ दिने चम्पावतीनगरे·· एतान। इद शास्त्र कौमदी लिखाप्य कर्मक्षयनिमित्त ब्रह्म बूचाय दत्तम्।
प्रशस्ति सग्रह पृ 63

मयणजुज्झ :—

यह एक रूपक-काव्य है जिसमे भगवान् ऋषमदेव द्वारा कामदेव पराजय का वर्णन है। यह एक आध्यात्मिक रूपक काव्य है जिसका मुख्य उद्देश्य मनोविकारो पर विजय प्राप्त करना है। काम मोक्षरूपी लक्ष्मी प्राप्त करने में एक बडी बाधा है। मोह, माया, राग एव द्वेष काम के मल्ल सहायक हैं। वसन्त काम का दत है जो काम की विजय के लिये पृष्ठभूमि बनाता है, लेकिन मानव अनन्त-शक्ति एव ज्ञानवाला है, यदि वह चाहे तो समी विकारो पर विजय प्राप्त कर सकता है। भगवान् ऋपमदेव भी अपने आत्मिक-गुणो द्वारा काम पर विजय प्राप्त करते हैं। कवि ने इसी रूपक को मयणजुज्झ मे बहुत ही सुन्दर रीति से प्रस्तुत किया है।

वसन्त कामदेव का दूत होने के कारण उसकी विजय के लिये पहिले जाकर अपने अनुरूप वातावरण बनाता है। वसन्त के आगमन का वृक्ष एव लतायें तक नव पुष्पो से उसका स्वागत करती हैं। कोयल कुहु-कुहु की रट लगाकर एव भ्रमर-पक्ति गुजार करती हुई उसके आगमन की सूचना देती है। युवतिया अपने आपको सज्जित करके भ्रमण करती हैं। इसी वर्णन को कवि के शब्दो में पढिये —

बज्जउ नीसाण वसत आयउ, छल्ल कुंद सिखिल्लिय।
सुगध मलया पवण झुल्लिय, अब कोइल्ल कुल्लिय।
रुण झुणिय केवइ कलिय महुवर, सुतर पत्तिह छाइय।
गावति गीय वजति वीणा, तरुणि पाइक आइय।।3।।

मयणजुज्झ को कवि ने सवत् 1589 में समाप्त किया था जिसका उल्लेख कवि ने रचना के अन्तिम छन्द में किया है। इस कृति की पाण्डुलिपिया राजस्थान के कितने ही शास्त्र-भण्डारो में उपलब्ध होती हैं।

7. ब्रह्म साधारण.—

ब्रह्म साधारण राजस्थानी सन्त थे। पहिले वे पडित साधारण के नाम से प्रसिद्ध थे। किन्तु बाद में ब्रह्मचारी बनने के कारण उन्हें ब्रह्म साधारण कहा जाने लगा। उन्होने अपनी पूर्ववर्तीगुरु-परम्परा मे भ. रतनकीर्ति, भ प्रभाचन्द्र, भ. पद्मनन्दि, हरिभषण, नरेन्द्रकीर्ति, एव विद्यानन्दि का उल्लेख किया है और अपने आपको भ नरेन्द्रकीर्ति का शिष्य लिखा है। भ. नरेन्द्रकीर्ति का राजस्थान से विशेष सम्बन्ध था और वे इसी प्रदेश में विहार किया करते थे। सवत् 1577 की एक प्रशस्ति मे प. साधारण का उल्लेख मिला है जिसके अनुसार इन्हे पचास्तिकाय की एक पाण्डुलिपि सा धौपाल द्वारा भेट की गई थी [1]।

ब्रह्म साधारण अपभ्र श भाषा के विद्वान् थे। छोटी-छोटी कथाओ की रचना करके वे श्रावको को स्वाध्याय की प्रेरणा दिया करते थे। 15 वी 16 वी शताब्दी में भी अपभ्र श भाषा की रचनाओ का निवद्ध करना उनके अपभ्र श-प्रेम का द्योतक है। अब तक उनकी 9 रचनायें उपलब्ध हो चुकी हैं —

1. कोइलपचमी कहा (कोकिला पचमी कथा)
2. मउड सप्तमी कहा (मुकुट सप्तमी कथा)
3 रविवय कहा (रविव्रत कथा)
4 तियालचउवीसी कहा (त्रिकाल चउवीस कथा)
5. सुमजलि कहा (पुष्पाजली कथा)

---

1. राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो की ग्रन्थसूची, पचम भाग, पृ. 72

6 निद्दूसि सत्तमी वय कथा (निर्दोष सप्तमी व्रत कथा)
7. णिज्झर पंचमी कहा (निर्झर पचमी कथा)
8. अणुवेक्खा (अनुप्रेक्षा)
9 दुद्धारसि कहा (दुग्ध द्वादशी कथा)

उक्त सभी कृतियो मे लघु-कथाए है। भाषा अत्यधिक सरल किन्तु प्रवाहमय है। सभी कथाओ मे अपनी पूर्ववर्ती गुरु परम्परा का उल्लेख किया है तथा कथा-समाप्ति की पंक्ति मे अपने आपको नरेन्द्रकीर्ति का शिष्य लिखा है।

8. तेजपाल —

तेजपाल राजस्थानी विद्वान् थे। अपभ्र श भाषा में काव्य-निबद्ध करने की ओर इनकी विशेष रुचि थी। ये मलसघ के भट्टारक रत्नकीर्ति, भुवनकीर्ति, धर्मकीर्ति और विशालकीर्ति की आम्नाय के थे। कवि ने अपना परिचय देते हुए लिखा है कि 'वासनपुर' नामक गाव से बरसावडह वश में जाल्हड नामके एक साहू थे। उनके पुत्र का नाम सुजड साहू था। वे दयावत एव जिनधर्म में अनुरक्त रहते थे। उनके चार पुत्र थे—रणमल, बल्लाल, ईसरू और पोल्हणु। ये चारो ही भाई खण्डेलवाल जाति के भूषण थे। रणमल साहू के पुत्र ताल्हुप के पुत्र साहु हुए और उनके तेजपाल हुए। इस प्रकार तेजपाल खण्डेलवाल जाति मे उत्पन्न हुए थे और अपभ्र श के अच्छे कवि थे।

तेजपाल की अब तक तीन कृतिया उपलब्ध हो चुकी हैं, जिनके नाम पासणाह चरिउ, सभवणाह चरिउ एव वराग चरिउ हैं।

पासणाह चरिउ.—

पार्श्वनाथ चरित्र एक खण्ड-काव्य है, जिसका रचनाकाल सवत् 1515 कार्तिक कृष्णा पचमी है। सारी रचना अपभ्र श के लाडला छन्द पद्धडिया मे निर्मित है। इसमें भगवान् पार्श्वनाथ के जीवन का तीन सधियो मे वर्णन किया गया है। इस काव्य को कवि ने पद्मवंशी साहु शिवदास के पुत्र घूघलि साहु की अनुमति से रचा था। कृति अभी तक अप्रकाशित है तथा इसकी एक पाण्डुलिपि अजमेर के शास्त्र भण्डार में सग्रहीत है।

सभवणाह चरिउ.—

इस काव्य में छह सधिया और 170 कडवक है। इसमे तीसरे तीर्थंकर भगवान् संभवनाथ का जीवन-चरित्र निबद्ध है। महापुराणो के अतिरिक्त सभवनाथ का जीवन बहुत कम लिखा गया है, इसलिये कवि ने सभवनाथ पर काव्य रचना करके उल्लेखनीय कार्य किया है। इसकी रचना श्रीमन्त नगर में हुई थी तथा मित्तल गोत्रीय साहु लखमदेव के चतुर्थ पुत्र थील्हा के अनुरोध पर लिखी गई थी। रचना सुरुचिपूर्ण एव अत्यन्त सुन्दर भाषा में निबद्ध है। इसका रचनाकाल सवत् 1500 के आस-पास का है। रचना अभी तक अप्रकाशित है।

वराग चरिउ—

यह कविवर तेजपाल की तीसरी कृति है। इसमें चार सधिया है जिनमें राजा वराग का जीवन निबद्ध है। इसका रचनाकाल सवत् 1507 की वैशाख शुक्ला सप्तमी है। रचना सरल एव सरस है तथा हिन्दी के विकास पर प्रकाश डालने वाली है। यह कृति भी अभी तक अप्रकाशित है।

उक्त कवियो के अतिरिक्त अपभ्र श के अन्य कवियो का भी राजस्थान से विशेष सम्बन्ध रहा है। ऐसे कवियो मे जम्बूसामि चरिउ के रचयिता महाकवि वीर, पासणाह चरिउ, सुकुमाल चरिउ एव भविसयत्त चरिउ के रचयिता श्रीधर, महाकवि यश कीर्ति, माणिक्यराज, भगवतीदास आदि के नाम उल्लेखनीय है।

जिनदत्तसूरि —

जिनदत्तसूरि राजस्थानी सन्त थे। धन्धुका के रहने वाले वाछिग मन्त्री की पत्नी देल्हणदे की कोख से आपका सवत् 1132 मे जन्म हुआ। बाल्यकाल मे ही 9 वर्ष की आयु मे आपने दीक्षा ग्रहण करली। आपका जन्म नाम सोमचन्द्र था। चित्तौड के वीर जिनालय मे जिनवल्लभसूरि के मरणोपरान्त आपको सूरि पद प्राप्त हुआ और आपका नाम जिनदत्तसूरि रखा गया। मरुदेश, अजमेर, महाराष्ट्र एव राजस्थान के अन्य प्रदेशो मे आपने खूब विहार किया। मन्त्र शास्त्र के आप बडे भारी साधक थे। जब से जिनदत्तसूरि ने पाटण नगर मे अबड के हाथ पर वासक्षेप का प्रक्षेपन कर उन अक्षरो को पढा तभी से आप युगप्रधान कहलाने लगे। आपने त्रिभुवनगिरि के राजा कुमारपाल एव सामर नरेश अर्णोराज को प्रतिबोध दिया। आपकी मृत्यु 1211 मे आषाढ शुक्ला 11 को अजमेर नगर मे हुई थी।[1]

अपभ्र श-भाषा की अब तक आपकी तीन रचनाए उपलब्ध हुई है जिनके नाम है, उपदेश-रसायन रास, कालस्वरूप कुलक और चर्चरी। उपदेश रसायन रास मे 80 गाथाओ का सग्रह है। मगलाचरण के पश्चात् जिनदत्तसूरि ने मनुष्य जन्म के लिये आत्मोद्धार को आवश्यक बतलाया है। इसी रास में मन्दिरो में होने वाले तालरास एव लगुड रास का निषेध किया है। रास में पद्धटिका-पज्झटिका छन्द का प्रयोग हुआ है। ओरियटल इन्स्टीट्यूट, बडौदा से "अपभ्र श काव्यत्रयी" मे उक्त रचना प्रकाशित हो चुकी है।

कालस्वरूप कुलक —

यह श्री जिनदत्तसूरि की लघुकृति है जिसमे केवल 32 पद्य है। इसका दूसरा नाम उपदेश-कुलक भी है।

मगलाचरण के पश्चात् जिनदत्तसूरि ने 12 वी शताब्दी मे सामाजिक स्थिति का उल्लेख किया है जिसके अनुसार लोगो मे धर्म के प्रति अनादर, मोहनिद्रा की प्रबलता और गुरु वचनो के प्रति अरुचि प्रमुख है। कवि ने सुगुरु और कुगुरु का भेद बतलाया है और कुगुरु का धतूरे के फल से समान बतलाया है। साथ ही में सुगुरुवाणी और जिनवाणी मे श्रद्धा का उपदेश दिया है। इस प्रकार कृति का विषय पूर्णत धर्मोपदेश है। इसी प्रकार सुगुरु और कुगुरु बाहर से समान दिखते हैं किन्तु कुगुरु अभ्यन्तर व्याधिरूप है जो बुद्धिमान् दोनो में भेद करता है वह परम पद को प्राप्त होता है।

चर्चरी —

प्रस्तुत चर्चरी मे जिनदत्तसूरि ने 47 छन्दो मे अपने गुरु जिनवल्लभसूरि का गुणानुवाद एव चैत्य-विधि का विधान किया है। इस चर्चरी की रचना जिनदत्तसूरि ने वागड (राज.)

---

1. ऐतिहासिक जैन काव्य सग्रह, पृ. 5।

देशान्तर्गत व्याघ्रपुर नगर में विक्रम की 12वी के उत्तरार्ध में की । कवि अपने गुरु जिनवल्लभ-सूरि को कालिदास एव वाक्पतिराज से भी बढकर मानता है ।—

कालियासु कइ आसि जु लोइहि वन्नियइ ।
ताव जाव जिणवल्लहु कइ ना अन्नियइ ।।
अप्पु चित्त परियाणहि त पि विसुद्ध न य ।
ते वि चित्त कइराय भणिज्जहि मुद्धनय ।।

हरिभद्रसूरि:—

हरिभद्र नाम से दो प्रसिद्ध विद्वान् हुए है । प्रथम हरिभद्रसूरि 8वी शताब्दि मे हुए जिनका चित्तौड़ से गहरा सम्बन्ध था । ये प्राकृत एव सस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् थे और जिन्होने सैकडो की सख्या मे रचनाए निबद्ध करके एक अभूतपूर्व कार्य किया था । दूसरे हरिभद्र जिनेचन्द्रसूरि के प्रशिष्य एव श्रीचन्द्र के शिष्य थे । इनका सम्बन्ध गुजरात से अधिक था और वही चालुक्यवशी राजा सिद्धराज और कुमारपाल के अमात्य पृथ्वीपाल के आश्रय में रहते थे किन्तु राजस्थान से भी उनका विशेष सम्बन्ध था और उस प्रदेश मे उनका बरावर विहार होता रहता था ।

डा. देवेन्द्रकुमार शास्त्री ने हरिभद्र की दो अपभ्र श कृतियो का उल्लेख किया है जिनके नाम सनत्कुमार चरित एव णमिणाह चरिउ है[1] । लेकिन डा. हरिवश कोछड ने अपने 'अपभ्रंश साहित्य' पुस्तक मे लिखा है कि नेमिनाथ चरित का एक अश सनत्कुमार चरित के नाम से प्रकाशित हुआ है । नेमिनाथ चरित के 443 पद्य से 785 पद्य तक अर्थात् 343 रड्डा पद्यो मे सनत्कुमार का चरित मिलता है । वैसे दोनो चरित काव्य कथानक की दृष्टि से स्वतन्त्र काव्य प्रतीत होते हैं ।

नेमिनाथ चरित में 22वे तीर्थंकर नेमिनाथ के जीवन पर आधारित काव्य निबद्ध किया गया है जबकि सनत्कुमार चरित, चक्रवर्ती सनत्कुमार के जीवन पर आधारित काव्य है। काव्य में सनत्कुमार की विजय यात्रा, उनके अनेक विवाहो का वर्णन, उसके अमित तेज एव सौन्दर्य का वर्णन एव अन्त मे भोगो से विरक्ति, तपस्या का वर्णन और अन्त मे स्वर्ग प्राप्ति का वर्णन मिलता है । काव्य का कथानक अन्य चरित-काव्यों के समान वीर और श्रृ गार के वर्णनो से युक्त है । लेकिन काव्य का पर्यवसान शान्त रूप मे होता है ।

महेश्वरसूरि.—

महेश्वरसूरि राजस्थानी सन्त थे। इनके द्वारा रचित 'सयममजरी' अपभ्रंश भाषा की लघुकृति प्राप्त है[2] । सयममजरी मे कवि ने सयम मे रहने का उपदेश दिया है। उसने सयम के 17 प्रकारो का उल्लेख करते हुए कुकर्म त्याग और इन्द्रिय निग्रह का विधान किया है।

उक्त अपभ्र श कृतियो के अतिरिक्त, रास एव फागु सज्ञक की कुछ रचनायें उपलब्ध होती है जिनमे विजयसेन सूरि कृत रेवतगिरिरास व देल्हण कृत गयसुकुमालरास, अवदेव कृत समरारास, राजेश्वरसूरि कृत नेमिनाथरास, शालिभद्रसूरि कृत भरत बाहुबलि रास के नाम उल्लेखनीय हैं ।

---

1. अपभ्र श भाषा और साहित्य की शोध प्रवृत्तिया डा देवेन्द्रकुमार, पृ. 187
2. अपभ्र श साहित्य डा. हरिवश कोछड 295

राजस्थानी जैन साहित्य

राजस्थानी साहित्य का सामान्य परिचय (पृष्ठभूमि) 1

—डा० हीरालाल माहेश्वरी

—1—

अन्य आधुनिक भारतीय आर्य भाषाओ की भाति राजस्थानी का विकास भी तत्कालीन गुजरात और राजस्थान में लोक प्रचलित अपभ्रश से हुआ है। विक्रम 5वी से 12वी शताब्दी अपभ्रंश का समृद्ध काल है। आचार्य हेमचन्द्र (सवत् 1145-1229) को अपभ्रश की ऊपरी सीमा स्वीकार किया जा सकता है। यद्यपि अपभ्रश की रचनाये उनके बाद भी लगभग चार शताब्दियो तक होती रही, तथापि देशी भाषाओ के आविर्भाव और प्रचलन के सदर्भ में, उसका प्रयोग परम्परा का पालन ही कहा जायेगा। प्राप्त अपभ्रश साहित्य के आधार पर उसको तीन रूपो मे विभाजित किया जा सकता है—1 पश्चिमी, 2. उत्तरी और 3 पूर्वी। ये भेद अपभ्रश के एक प्रचलित सामान्य रूप मे स्थानीय भाषाओ की विशेषताओ के समावेश के कारण हैं। उसका एक सामान्य रूप था जिसका मूलाधार शोरसैनी अपभ्रश या पश्चिमी अपभ्रश था। 9वी से 12वी शताब्दी के बीच यह पश्चिमी अपभ्रश पूरे उत्तरी और पूर्वी भारत मे साहित्यिक भाषा के रूप मे समादृत हो चुकी थी। इसके दो प्रधान कारण थे—1 राजपूतो का उत्थान और इन राजाओ द्वारा उत्तरकालीन शोरसैनी अपभ्रश तथा इससे मिलती जुलती बोली को अपनाना एव प्रश्रय देना। 2 इसका शैव, जैन और वज्रयान बौद्धसिद्धो में एक धार्मिक भाषा के रूप मे मान्य होना।

सर्वाधिक साहित्य पश्चिमी अपभ्रश मे ही पाया जाता है तथा प्राप्त अपभ्रश साहित्य में सबसे अधिक रचनायें जैन कवियो की है। सनत्कुमार चरिउ, हेमचन्द्र द्वारा सग्रहीत दोहे, कुमारपाल प्रतिबोध मे प्राप्त अपभ्रश पद्यो आदि को विद्वानो ने गुर्जर अपभ्रश कहा है और गुर्जर अपभ्रश में पश्चिमी अपभ्रंश की सभी विशेषताये प्राप्त होती हैं—'मारू-गुर्जर' या पुरानी राजस्थानी का विकास गुर्जरी अपभ्रश से हुआ है।

इस प्रकार, 'मारू-गुर्जर' और उसके साहित्य में गुर्जरी अपभ्रश और उसके साहित्य की सर्वाधिक विशेषतायें और परम्पराये सुरक्षित है। उसके काव्य रूप, कथ्य और शैली तथा साहित्यिक धारायें, कतिपय कालज और देशज विशेषताओ के साथ 'मारू-गुर्जर' के साहित्य में निर्विच्छिन्न रूप से मिलती हैं। अत पुरानी राजस्थानी और उसके साहित्य के सम्यक्रूपेण अध्ययन के लिये पश्चिमी अपभ्रंश, विशेषत गुर्जरी अपभ्रश का अध्ययन अतीव आवश्यक है। पुरानी राजस्थानी मे भी सर्वाधिक रचनायें जैन कवियो की हैं। लगभग सवत् 1100 से आगे चार शताब्दियो तक के साहित्य को 'मारू-गुर्जर' या पुरानी राजस्थानी का साहित्य कहा जा सकता है।

—2—

राजस्थानी साहित्य के इतिहास का काल-विभाजन इस प्रकार किया जा सकता है—

1. विकास काल (विक्रम संसवत् 1100 से 1500)।

2. मध्य काल क—विकसित काल (संवत् 1500 से 1650)।
ख—विवर्द्धित काल (संवत् 1650 से 1900)।

3 अर्वाचीन काल (सवत् 1900 से वर्तमान समय तक)।

इस विभाजन के औचित्य के सवध में साहित्यिक, भाषिक, धार्मिक, सास्कृतिक तथा ऐतिहासिक—राजनैतिक अनेक कारण वताये जा सकते हैं।

भाषा की दृष्टि से विकास काल का साहित्य 'मारू-गुर्जर' का साहित्य है। इसके 'पुरानी राजस्थानी', 'पुरानी पश्चिमी राजस्थानी', 'जूनी गुजराती', 'मारू-सोरठ' आदि नाम भी दिये गये है, पर सर्वाधिक उचित नाम 'मारू-गुर्जर' ही है। इससे तत्कालीन गुजरात और राजस्थान-मरुप्रदेश की भाषाओ का सामूहिक रूप से वोध होता है।

उल्लेखनीय है कि विक्रम 15वी शताव्दी तक पुरानी गुजराती और पुरानी राजस्थानी एक ही थी। सवत् 1500 के लगभग दोनो पृथक्-पृथक् हुई। इसलिये 'मारू-गुर्जर' का साहित्य गुजराती और राजस्थानी दोनो का साहित्य है, दोनो का उस पर समान अधिकार है। यही कारण है कि इन 400 सालो मे रचित साहित्य की चर्चा गुजराती और राजस्थानी साहित्य के इतिहासो में समान रूप से होती है। यद्यपि भाषिक दृष्टि से सवत् 1500 तक गुजराती और राजस्थानी अलग-अलग हो गई थी, तथापि सास्कृतिक और कुछेक अशो तक साहित्यिक परम्पराओ की दृष्टि से, उसके पश्चात् भी दोनो मे काफी समानताये मिलती है।

इस सवध में डा० टैसीटरी की डिंगल विषयक धारणा की अमान्यता का उल्लेख भी आवश्यक है क्योकि अभी भी राजस्थानी के कुछ विद्वान उसको सत्य और प्रमाणिक मानते हैं, यही नही उन्होने राठोड पृथ्वीराज कृत 'वेली', 'ढोलामारू' आदि रचनाओ के पाठो मे शब्दरूप भी उसी के अनुसार रखे हैं। जव कि सवधित महत्वपूर्ण प्राचीन प्रतियो मे ऐसे रूप उपलब्ध नही होते। इससे राजस्थानी के विकास सवधी गलत धारणा को प्रश्रय मिलता है। डा० टैसीटरी ने डिंगल के दो रूप माने हैं—1 प्राचीन डिंगल और 2 अर्वाचीन डिंगल। उन्होने ईसा की 13वी शती से 16वी शती के अन्त तक की डिंगल को प्राचीन डिंगल और ईसा की 17वी शती के आरम्भ से आज तक की डिंगल को अर्वाचीन डिंगल वताया है। उनके अनुसार इन दोनो मे मुख्य भेद यह है कि प्राचीन डिंगल मे जहा 'अई' और 'अउ' का प्रयोग होता है, वहा अर्वाचीन डिंगल मे उनके स्थान पर क्रमश 'ऐ' और 'औ' का। उनकी यह धारणा नितान्त निराधार है, जिसकी सप्रमाण पुष्टि प्रस्तुत पक्तियो के लेखक ने अन्यत्र की है, साथ ही यह स्थापना भी कि पन्द्रहवी शताव्दी के अन्तिम वर्षो तक 'पुरानी राजस्थानी' या 'मारू-गुर्जर' अपना पुराना स्वरूप छोड कर नया रूप ग्रहण कर चुकी थी। प्राचीन 'अई', 'अउ' के स्थान पर नवीन रूप 'ऐ', 'औ' इस शताव्दी मे पूर्णरूपेण प्रतिष्ठित हो चुके थे। विकास का यह क्रम धीरे-धीरे आया।

'डिंगल' की व्युत्पत्ति, अर्थ आदि के विषय में विभिन्न मत प्रकट किये गये है। 'डिंगल' को भाषा भी माना गया है और शैली भी। भाषा मानने वालो मे भी मतैक्य नहीं है, किन्तु उन सवकी चर्चा यहा न कर इतना कहना ही पर्याप्त समझता हू कि 'डिंगल' मरुभाषा या राजस्थानी का ही पर्याय है, चाहे वह साहित्यिक हो या वोलचाल की। राजस्थानी के छन्दशास्त्रीय ग्रन्थो से इसकी पुष्टि होती है। एक और तरह से भी इसकी पुष्टि की जा सकती है कि डिंगल मे लिखने वालो ने उसको क्या समझा है। दो उदाहरण पर्याप्त होगे।

1 पदम भगत ने सवत् 1545 के लगभग 'रुक्मणी मंगल' या 'हरजी रो व्यावलो' नामक लोककाव्य लिखा था। यह राजस्थानी के प्राचीनतम आख्यान काव्यो मे एक है। कहने

की आवश्यकता नहीं कि इसकी भाषा बोलचाल की मरुभाषा है। इसकी प्राचीनतम उपलब्ध प्रति सवत् 1669 की लिपिबद्ध है। इसमे तो नहीं पर इसके पश्चात् की लिपिबद्ध बहुत सी प्रतियो मे रचना के पुष्पिका स्वरूप यह दोहा मिलता है—

कविता मोरी डीगली, नही व्याकरण ग्यान।
छन्द प्रबन्ध कविता नही, केवल हर को ध्यान॥

यह दोहा मूल का नहीं प्रतीत होता है तथापि इतना तो स्पष्ट ही है कि इसको लिखने या रचने वाला 'व्यावले' को 'डीगली कविता' समझता है। श्री अगरचन्दजी नाहटा ने सवत् 1669 वाली प्रति का पाठ छपवाया है। उसमें सवत् 1891 की लिखी हुई एक अन्य प्रति का कुछ अतिरिक्त अश भी दिया गया है। जिसमे उल्लिखित दोहा भी है। तात्पर्य यह है कि बोलचाल की राजस्थानी का भी दूसरा नाम 'डिंगल' है।

2 चारण स्वरूपदासजी दादूपंथी (समय-सवत् 1860-1900/1925) का 'पाण्डवयशेन्दु चन्द्रिका' काव्य प्रसिद्ध है। इसमे 16 अध्यायो मे महाभारत की कथा का साराश है। इसकी भाषा बहुत ही सरल पिंगल है। इसकी भाषा के सबध में स्वय कवि का कथन यह है—

पिंगल डिंगल सस्कृत, सव समझन के काज।
मिश्रित सी भापा करी, क्षमा करहु कविराज॥

अर्थात् (1) डिंगल भाषा है और वह (2) 'सव समझन के काज' स्वरूप भाषा है। सबके समझने लायक भाषा तो बोलचाल की ही हो सकती है। अत बोलचाल की मरुभाषा की गणना डिंगल के अन्तर्गत है।

इस प्रकार की अनेक उक्तियो के आधार पर यह कहा जा सकता है कि मरुभाषा या राजस्थानी और डिंगल एक ही है।

— 3 —

राजस्थानी साहित्य को निम्नलिखित रूपो में विभाजित कर सकते है—

1 जैन साहित्य,
2 चारण साहित्य,
3 लौकिक साहित्य,
4 सतभक्ति साहित्य,
तथा
5 गद्य साहित्य।

प्रथम चार प्रकार की रचनाओ में प्रत्येक की एक विशिष्ट शैली लक्षित होती है, अत. प्रत्येक को उस शैली का साहित्य भी कहा जा सकता है।

भारत मे अंग्रेजी राज्य की स्थापना के कुछ पश्चात् और सन् 1857 (सवत् 1914) के स्वतन्त्रता-सग्राम से भी पूर्व, त्वरा से बदलती परिस्थितियो के कारण राजस्थानी कविता का स्वर भी वदलने लगा। यहा यह उल्लेखनीय है कि राजस्थान (अजमेर-मेरवाडा को छोड कर) सीधा अंग्रेजी शासन के अन्तर्गत नही आया। यहा की विभिन्न रियासतो में वहा के परम्परागत नरेशो का ही राज्य रहा। यद्यपि अंग्रेजो की सार्वभौम सत्ता के कारण उनका प्रभुत्व सीमित हो गया था तथापि अपने-अपने अनेकश आन्तरिक मामलो मे वे स्वतन्त्र थे। अधिकाश जनता 1857 के वाद भी राजाओ के प्रति स्वामिभक्त और राजभक्त बनी रही। कालान्तर

में जब देश के अन्यान्य भागों में स्वराज्य और स्वतन्त्रता की आवाज उठने लगी, तो उसकी प्रतिध्वनि शनै शनै राजस्थान में भी सुनाई देने लगी। इस प्रकार अर्वाचीन काल में परम्परागत काव्य-धाराये तथा नवीन भावनायें और विचार साथ-साथ मिलते हैं। स्वतन्त्रता के पश्चात् देश में अन्यत्र जिन भावो और विचारो की परम्परायें चली, उनके प्रवाह में कम-वेशी रूप मे कुछ अशो तक स्थानीय रंगत के साथ राजस्थानी साहित्य भी प्रवाहित हुआ। परन्तु अनेक कारणो से इसकी गति अपेक्षाकृत बहुत मन्द रही है।

यहा राजस्थानी साहित्य का केवल स्थूल दिग्दर्शन ही कराया जा सकता है।

— 4 —

राजस्थानी साहित्य के इतिहास में प्राचीनता, प्रवाह नैरन्तर्य, प्रामाणिकता तथा रचना और रूप विविधता की दृष्टि से जैन साहित्य का महत्व सर्वोपरि है। हिन्दी साहित्य के इतिहास मे भी इन दृष्टियो से हिन्दी जैन साहित्य का विशेष महत्व है किन्तु उसकी स्वीकृति और यथोचित मूल्याकन अभी किया जाना बाकी है।

जैन साहित्य की प्रेरणा का मूल केन्द्र धर्म है और उसका मुख्य स्वर धार्मिक है। रस की दृष्टि से यह साहित्य मुख्यत' शान्तरस प्रधान है।

राजस्थानी मे चरित और कथाओ से संबंधित प्रभूत साहित्य का निर्माण हुआ। कथा-काव्यो में विविध प्रकार के वर्णित पापों के दुष्परिणाम, पुण्य के प्रसाद तथा धर्म पालन की महत्ता जान कर जन साधारण सहज ही धर्मोन्मुख होता है और तदनुकूल धर्मपालन में कटिवद्ध होता है। जैन धर्म मूलत आध्यात्मिक है। जैन मुनियो का उद्देश्य व्यक्ति को धर्म प्रेरणा देना और उसको धर्मोन्मुख करना था।

'मारू-गुर्जर' के विकास-चिन्ह 11वी शताब्दी से दो प्रकार की अपभ्रंश रचनाओं में मिलने लगते हैं—एक तो कवि-विशेष द्वारा रचित रचनाओ मे और दूसरे जैन प्रवन्ध ग्रन्थों में उपलब्ध अपभ्रश पद्यो मे। पहले प्रकार के अन्तर्गत कवि धनपाल कृत 15 पद्यो की छोटी सी रचना 'सच्च-उरिय महावीर उत्साह' तथा अन्य ऐसी कृतियो की गणना है। दूसरे के अन्तर्गत (1) प्रभावक चरित, (2) प्रवन्ध चिन्तामणि, (3) प्रवन्धकोष, (4) पुरातन प्रवन्ध 'सग्रह' (5) कुमारपाल प्रतिवोध, (6) उपदेश सप्तति आदि ग्रन्थो मे आये पद्य आते हैं। इन प्रवन्ध ग्रन्थो मे कालक्रम की दृष्टि से आचार्य वृद्धवादी और सिद्धसेन दिवाकर के प्रबन्ध में उद्धृत अपभ्रश और 'मारू-गुर्जर' के पद्यों को अपेक्षाकृत प्राचीन माना गया है। इनमे चारणो के कहे हुये पद्य भी उपलब्ध हैं जो 12वी से 14वी शताब्दी तक के है। इस काल में दोहा और छप्पय (कवित्त)-दो छन्द बहुत प्रसिद्ध रहे हैं। छप्पयों में बप्पभट्टसूरि प्रवन्ध में उद्धृत छप्पय तथा वादिदेवसूरि सबधित छप्पय (समय लगभग 12वी शताब्दी) सर्वाधिक प्राचीन है।

12वी शताब्दी की रचनाओ में 'मारू-गुर्जर' का रूप और अधिक खुल कर सामने आने लगता है तथा उत्तरोत्तर अपभ्रश का प्रभाव कम होता चलता है। इस शताब्दी की रचनाओ मे पल्ल कवि कृत 'जिनदत्तसूरि स्तुति' और उनकी स्तुति रूप रचनाओ की गणना है। दोनो शताब्दियो की रचनाओ मे अपभ्रश का प्राधान्य है।

13वी शताब्दी में और अधिक तथा अपेक्षाकृत वडी रचनाये मिलने लगती हैं। इनमे ये मुख्य है—वज्रसेनसूरि द्वारा सवत् 1225 के आसपास रचित भरतेश्वर बाहुवलि घोर, शालिभद्रसूरि कृत भरतेश्वर बाहुवलि रास (सवत् 1241), बुद्धिरास, आसिगुरचित जीवदया

रास(संवत् 1257), चन्दनबाला रास, नेमिचन्द्र भण्डारी कृत गुरु-गुणवर्णन, देल्हण कृत गयसुकुमार रास, धर्मकृत जम्बूस्वामिरास, स्थूलभद्ररास, सुभद्रासती चतुष्पदिका, जिनपतिसूरि वधावणागीत और जिनपितसूरिजी से सबधित श्रावक कवि रयण और भत्तु रचित रचनायें; पाल्हण कृत आबूरास, रेवतगिरिरास, जगडू रचित सम्यकृत्व माई चौपाई, पृथ्वीचन्द्र कृत रस विलास, अभय देवसूरि रचित जयत विजय काव्य आदि आदि। इनका महत्व साहित्यिक दृष्टि से उतना नही है जितना प्राचीनता और भाषिक दृष्टि से है। इन दो शताब्दियो (12वी 13वी) की रचनाओ मे कुछ की भाषा अपभ्रश है जिसमे 'मारू-गुर्जर' का भी यत्किचित पुट है तथा कुछ की भाषा अपभ्रश प्रभावित 'मारू-गुर्जर' है।

14वी शताब्दी से तो अनेकानेक रचनाये मिलती है जिनका नामोल्लेख भी यहा सभव नही है। 15 वी शताब्दी मे पौराणिक प्रसगो के अतिरिक्त लोककथाओ को लेकर भी भाषा-काव्य लिखे जाने लगे। विकास काल की जैन रचनाओ के लिये गुर्जर रासावली, प्राचीन गुर्जर काव्य सग्रह, प्राचीन गुजराती गद्य सदर्भ, जैन ऐतिहासिक गुर्जर काव्य सचय, ऐतिहासिक जैन काव्य सग्रह, प्राचीन फागु सग्रह, पन्द्रमा शतकना प्राचीन गुर्जर काव्य, रास और रासान्वयी काव्य, पन्द्रमा शतकना चार फागु काव्यो आदि ग्रन्थो मे सग्रहीत कृतिया दृष्टव्य हैं। अनेक सस्थाओ और पत्र-पत्रिकाओ के माध्यम से सवत् 1500 के पश्चात् सैकडो जैन रचनाये प्रकाश मे लाई गई है। इन सबका सक्षिप्त विवरण भी यहा नही दिया जा सकता। आगे जैन साहित्य की कतिपय प्रमुख विशेषताओ का उल्लेख किया जा रहा है.—

1. 'मारू-गुर्जर' के प्राचीनतम रूप का पता जैन कृतियो से ही मिलता है। 13वी शताब्दी से अर्वाचीन काल तक प्रत्येक शताब्दी के प्रत्येक चरण की रचनाये मिलती हैं।

2. अनेक रचना-प्रकार और काव्यरूप मिलते हैं।

3. प्राचीनतम गद्य के नमूने भी जैन कृतियो मे ही मिलते है।

4. रचनाओ में नीति, धर्म, सदाचरण और आध्यात्म की प्रेरणा मुख्य हैं। शान्त रस प्रधान है।

5. जैन पुराणानुसार कथा-काव्य और रचित-काव्यो की प्रचुर मात्रा मे सृष्टि हुई है।

6. विभिन्न लोक प्रचलित कथानको के आधार पर भी जैन धर्मानुसार काव्य सृजन किया गया है। विक्रमादित्य, भोज, अलाउद्दीन-पद्मिनि, ढोला-मारू, सदयवत्स-सावलिगा आदि से सबधित अनेकश रचनाये जैन कवियो ने लिखी है।

7 लोकगीतो और लोककथाओ की देशियो को अपना कर लोक साहित्य का सरक्षण किया है। बहुत से जैन कवियो ने प्रसिद्ध और प्राचीन लोकगीतो की देशियो की चाल पर अपनी कृतिया ढालबद्ध की है। इनसे अनेकश लोकगीतो की प्राचीनता और प्रचलन का पता लगाया जा सकता है। श्री मोहनलाल दुलीचन्द देसाई ने ऐसी लगभग 2500 देशियो की सूची दी है।

इस प्रकार लगभग सवत् 1100 से वर्तमान समय तक राजस्थानी साहित्य अनेक धाराओ मे प्रवाहित हो रहा है। देश और काल के अनुसार कई धाराये क्षीण भी हुई, कई किंचित परिवर्तित भी हुई, अनेक लोकभूमि का जीवन रस पाकर 'नई' भी मिली परन्तु सामूहिक रूप मे इसका सातत्य निरन्तर बना रहा।

राजस्थानी पद्य साहित्यकार 2

—श्री अगरचन्द नाहटा

11वी शताब्दी की अपभ्रंश रचनाओ मे राजस्थानी भाषा के विकास के चिह्न मिलने लगते हैं। कवि धनपाल रचित 'सच्चउरिय महावीर उत्साह' ऐसी ही एक रचना है। इसमे केवल 15 पद्य है लेकिन ऐतिहासिक दृष्टि से यह अत्यधिक महत्वपूर्ण कृति है। 12वी शताब्दी में रचित पल्ह कवि की जिनदत्तसूरि स्तुति 10 छप्पय छन्दो की रचना है, इसकी भाषा अपभ्रंश प्रधान है। इसी प्रकार जिनदत्तसूरिजी की स्तुति रूप कई और छप्पय जैसलमेर के ताड़पत्रीय भण्डार मे सग्रहीत हैं। 13वी शताब्दी मे नागौर मे होने वाले देवसूरि नामक विद्वान् आचार्य द्वारा अपने गुरु मुनिचन्द्रसूरि की स्तुति रूप मे 25 पद्य अपभ्रंश मे रचे हुये मिलते हैं। इन वादि-देवसूरि को नमस्कार करके वज्रसेनसूरि ने 'भरतेश्वर बाहुबलि घोर' नामक 45 पद्यो की राज-स्थानी कृति निबद्ध की थी। इसमे भगवान् ऋषभदेव के पुत्र भरत और उनके भ्राता बाहुबलि के युद्ध का वर्णन है। शालिभद्रसूरि कृत 'भरतेश्वर बाहुबलि रास' राजस्थानी भाषा की सवतो-ल्लेख वाली प्रथम रचना है। इसमे 203 पद्य है। इन्ही की दूसरी रचना 'बुद्धिरास' है जो 63 पद्यो मे पूर्ण होती है।[1] कवि असगु ने सवत् 1257 मे जीवदयारास नहजिगपुर के पार्श्वनाथ जिनालय मे निबद्ध किया था। कवि जालौर का निवासी था। जैसलमेर के वृहद ज्ञान भण्डार मे सग्रहीत सवत् 1437 मे लिखित स्वाध्याय पुस्तिका में एव 'चन्दनबाला रास' भी उल्लेखनीय है। सवतोल्लेख वाली एक रचना 'जम्बूसामिरास' है जिसे महेन्द्रसूरि के शिष्य धर्म ने सवत् 1266 मे बनायी थी। 41 पद्यो की इस रचना मे भगवान महावीर के प्रशिष्य जम्बूस्वामी का चरित्र वर्णित है। इन्ही की दूसरी कृति 'सुभद्रासती चतुष्पादिका' है जो 42 पद्यो की है। 13वी शताब्दी की अन्य रचनाओ में 'आबूरास' (सवत् 1289) एवं रेवतगिरि-रास के नाम उल्लेखनीय है।

14वी शताब्दी—

सवत् 1307 मे भीमपल्ली (भीलडिया) के महावीर जिनालय की प्रतिष्ठा के समय अभयतिलकगणि ने 21 पद्यो का 'महावीर राम' बनाया। इन्ही के लघुभ्राता लक्ष्मीतिलक उपाध्याय भी सस्कृत एव राजस्थानी के अच्छे विद्वान् थे। इन्होने 'शातिनाथ देव रास' नामक राजस्थानी काव्य लिखा था। वह एक ऐतिहासिक राम है जिसमे सवत् 1313 मे जालोर मे उदयसिंह के शासन मे शाति जिनालय की प्रतिष्ठा जिनेश्वरसूरि ने की थी, उसका उल्लेख है। सवत् 1332 मे जिनप्रबोधसूरि द्वारा रचित 'शालिभद्ररास' 35 पद्यो की एक सुन्दर राज-स्थानी रचना है। इसमे राजगृही के समृद्धशाली सेठ शालिभद्र का चरित्र वर्णित है।

रत्नसिंहसूरि के शिष्य विनयचन्द्रसूरि ने सवत् 1338 मे 'बारहव्रत रास' लिखा जिसमे 53 पद्य है। सवत् 1341 में जिनप्रबोधसूरि के पट्ट पर जिनचन्द्रसूरि स्थापित हुये। उनके सबध में हेमभूषणगणि रचित 'युगप्रधान श्री जिनचन्द्रसूरि चर्चरी' नामक 25 पद्यो की रचना मिली है। सवत् 1363 मे प्रज्ञातिलक के समय मे रचित 'कच्छुलीरास' की रचना कोरटा

---

1. भारतीय विद्या—द्वितीय वर्ष, प्रथम अक।

(जोधपुर) में हुई थी। इसी तरह इस शताब्दी मे रचित निम्न रचनायें और उल्लेखनीय है —

1	बीस विहरमान रास[1]	कवि वस्तिग	सवत् 1368
2.	श्रावक विधि रास[2] .	गुणाकरसूरि ..	सवत् 1371
3	समरा रास[3] .	अंबदेवसूरि . ..	सवत् 1371
4	जिनकुशलसूरि पट्टाभिषेक रास .	धर्मकलश मुनि .	सवत् 1377
5.	पद्मावती चौपई[4] .	जिनप्रभुसूरि . .	सवत् 1386
6	स्थूलिभद्र फाग .	जिन पद्मसूरि .	सवत् 1390
7	शालिभद्र काक . ..	पउम कवि	14वी
8	नेमिनाथ फाग .	पउम कवि .	14वी

15वी शताब्दी —

इस शताब्दी में राजस्थानी साहित्य में एक नया मोड आता है। इस शती की प्रारम्भ की कुछ रचनाओ मे अपभ्रश का प्रभाव अधिक है पर उत्तरार्ध की रचनाओ मे भाषा काफी सरल पायी जाती है। वडे-वडे रास उसी शताब्दी मे रचे जाने लगे। लोक-कथाओ को लेकर राजस्थानी भाषा में काव्य लिखे जाने का प्रारम्भ भी इसी शताब्दी मे हुआ।

राजशेखरसूरि ने सवत् 1405 मे 'प्रबन्ध कोष' की रचना की और 'नेमिनाथ फागु' नामक कृति को छन्दोबद्ध किया। सवत् 1410 मे पूर्णिमागच्छ के शालिभद्रसूरि ने नादउद्री में देवचन्द्र के अनुरोध से 'पाच पाडव रास' वनाया। इसी समय सवत् 1412 मे विनयप्रभ ने 'गौतम-स्वामी रास' को छन्दोबद्ध किया। इस रास ने अत्यधिक लोकप्रियता प्राप्त की और राजस्थान के कितने ही शास्त्र भण्डारो मे इसकी हजारो पाण्डुलिपिया उपलब्ध होती हैं। सवत् 1423 मे रचित 'ज्ञान पचमी चौपई' 548 पद्यो की रचना है जिसके रचियता है श्रावक विद्धणु। ये जिनोदयसूरि के शिष्य थे। सवत् 1432 मे मेरुनन्दनगणि ने 'जिनोदयसूरि गच्छनायक विवाह-लउ' की रचना की। यह काव्य छोटा होने पर भी बहुत सुन्दर है। सवत् 1455 मे साधुहस मे 222 पद्यो मे 'शालिभद्र रास' का निर्माण किया। इसी समय के लगभग जयशेखरसूरि हुये जिन्होने 'त्रिभुवन दीपक प्रबन्ध' नामक 448 पद्यो का रूपक काव्य लिखा। पीपलगच्छ के हीरानन्दसूरि ने 'वस्तुपालतेजपाल रास' (स 1484), 'विघाविलास पवाडा' (स 1485), 'कलिकाल रास' (1495) की रचना की। उक्त कवियो के अतिरिक्त इस शताब्दी मे और भी कितने ही कवि हुये जिन्होने राजस्थानी मे अनेक काव्यो की रचना की। इनमे से निम्न काव्य विशेषत. उल्लेखनीय है.—

1	जिनोदयसूरि पट्टाभिषेक रास	मुनि ज्ञानकलश	सवत् 1415
2	स्थूलिभद्र फाग	हलराज कवि	सवत् 1409 आधाटनगर
3	भट्टारक देवसुन्दरसूरि रास	चांप कवि	सवत् 1445/55 पद्य
4.	चिहुगति चौपाई	वस्तो कवि	15वी शताब्दी

---

1 जैन गुर्जर कविओ भाग—2।
2 आत्मानन्द शताब्दी स्मारक ग्रन्थ में प्रकाशिद।
3 प्राचीन गुर्जर काव्य सग्रह में प्रकाशित।
4 भैरव पद्मावती काव्य, परिशिष्ट—10।

5	सिद्धचक्र श्रीपाल रास	माडण सेठ	सवत् 1498 258 पद्य
6	राणकपुर स्तवन	मेहा कवि	सवत् 1499
7	तीर्थमाला स्तवन	मेहा कवि	सवत् 1499
8	ऋषभ रास एव भरत वाहुवलि पवाडा	गुणरत्नसूरि	15वी
9	नेमिनाथ नवरस फाग	सोमसुन्दरसूरि	1481
10	स्थूलिभद्र कवित्त	सोमसुन्दरसूरि	1481

मध्यकाल —

राजस्थानी साहित्य का मध्यकाल काफी लम्वे (400 वर्षों) समय का है और इस काल मे रचनाये भी वहुत अधिक रची गई है। शताधिक जैन कवि इस समय मे हो गये हैं और उनमे से कई कवि ऐसे भी है जिन्होने वहुत वडे परिमाण मे साहित्य निर्माण किया है। इसलिये इस काल के सब जैन कवियो और उनकी रचनाओ का परिचय देना इस निवन्ध मे सभव नही है। 16वी शताव्दी से मध्यकाल का प्रारम्भ होता है और उस शताव्दी की रचनाये तो कम है, पर 17वी और 18वी शताव्दी तो राजस्थानी साहित्य का परमोत्कर्ष काल है, अत इस समय मे राजस्थानी जैन साहित्य का जितना अधिक निर्माण हुआ, अन्य किसी भी शताव्दी में नही हुआ। 19वी शताव्दी से साहित्य निर्माण की वह परम्परा कमजोर व क्षीण होने लगती है। उत्कृष्ट कवि भी 17वी व 18वी शताव्दी मे ही अधिक हुये हैं। गद्य मे रचनायें तो वहुत थोडे विद्वानो ने ही लिखी है। वहुत सी रचनायें अज्ञात कवियो की ही है और ज्ञात कवियो की रचनाओ में भी किन्ही मे रचनाकाल और किसी मे रचना स्थान का उल्लेख नही मिलता है। 16वी शताव्दी में तो रचना स्थान का उल्लेख थोडे से कवियो ने किया है। 17वी व 18वी शताव्दी के अधिकाश जैन कवियो ने रचनाकाल के साथ-साथ रचना स्थान का भी उल्लेख कर दिया है। अन्त मे जिन व्यक्तियो के अनुरोध से रचना की गई, उन व्यक्तियो का भी उल्लेख किसी-किसी रचना मे पाया जाता है। कवियो ने अपनी गुरु परम्परा का तो उल्लेख प्राय किया है पर अपना जन्म कव एव कहा हुआ, माता पिता का नाम क्या था, वे किस वश या गोत्र के थे, उनकी दीक्षा कव व कहा हुई, शिक्षा किससे प्राप्त की और जीवन मे क्या क्या विशेष कार्य किये तथा स्वर्गवास कव एव कहा हुआ, इन ज्ञातव्य वातो की जानकारी उनकी रचनाओ से प्राय नही मिलती। इसलिये साहित्यकारो की जीवनी पर अधिक प्रकाश डालना सभव नही। उनकी रचनाओ को ठीक से पढे विना उनकी आलोचना करना भी उचित नहीं है। इसलिये प्रस्तुत निबन्ध में कवियो की सक्षिप्त जानकारी ही दी जा सकेगी।

मध्यकाल की जैन रचनाओ मे चरित काव्य जिस 'रास-चोपाई' आदि की सज्ञा दी गई है, ही अधिक रचे गये है। 14-15वी शताव्दी तक के अधिकाश रास छोटे-छोटे थे। 16वी शताव्दी मे भी उनका परिमाण मध्यम सा रहा, पर 17वी व 18वी शताव्दी मे तो बहुत वडे-वडे रास रचे गये, जिनमे से कई रास तो 8-10 हजार श्लोक परिमित भी है। मध्यकाल मे रास के स्वरूप और उसकी शैली में भी काफी परिवर्तन हो गया है। दोहा और लोकगीतो की देशियो का प्रयोग ही मध्यकाल के रासो मे अधिक हुआ है। किसी-किसी रास मे चौपई छन्द का प्रयोग होने से उसका नाम चतुष्पदी या चौपई रखा गया है पर आगे चल कर जव वह सज्ञा चरित काव्यादि के लिये रूढ हो गई तो चौपई छन्द का प्रयोग न होने वाली रचनाओ को भी चौपई के नाम से प्रसिद्ध कर दिया। एक ही रचना को किसी ने चौपई के नाम से और किसी ने रास के नाम से सवोधित किया है अर्थात् फिर रास और चौपई में कोई खास भेद नही रह गया और चरित काव्य के लिये इन दोनो नामो का खुल कर प्रयोग होने लगा। 'वेलि' सज्ञा काव्यो का निर्माण भी 16वी से प्रारम्भ होता है और सवसे अधिक वेलिया 17-18वी सदी में बनाई गई है।

सुदर्शन श्रेष्ठिरास —

सवतोल्लेख वाली सुदर्शन श्रेष्ठि रास या प्रबन्ध की रचना सवत् 1501 में हुई है । 225 पद्यो के इस रास के रचियता के सवध मे प्रत्यन्तरो में पाठ-भेद पाया जाता है । श्री मोहन लाल देसाई ने इसका रचयिता तपागच्छीय मुनिसुन्दरसूरि के शिष्य सघविमल या शुभशील माना है, पर बीकानेर के बृहद ज्ञान भण्डार मे जो प्रति उपलब्ध है उसमे 'तपागच्छी गुरु गौतम सभायें मा श्री मुनिसुन्दरसूरि पू' के स्थान पर 'चन्द्रगच्छी गौतम सभाये मा श्री चन्द्रप्रभसूरि' पाठ मिलता है । रास का चरित नायक सुदर्शन सेठ है जो अपने शीलधर्म की निष्ठा के कारण बहुत ही प्रसिद्ध है ।

कविवर देपाल —

इस शताब्दी के प्रारम्भ मे देपाल नामक एक उल्लेखनीय सुकवि हुआ है । 17वी शताब्दी के कवि ऋषभदास ने अपने से पूर्ववर्ती प्रसिद्ध कवियो मे इसका उल्लेख किया है । 'कोचर व्यवहारी रास' के अनुसार यह कवि दिल्ली के प्रसिद्ध देसलहरा, साह समरा और सारग का आश्रित था । देपाल कवि की रचनाओ में तत्कालीन अनेक रचना-प्रकारो का उपयोग हुआ है । रास, सूड, चौपई, धवल, विवाहला, मास, गीत, कडावा एव पूजा सज्ञक रचनायें मिलती है जिनकी सख्या 18 है ।

संघकलश —

16वी शताब्दी की जिन रचनाओ में रचना स्थान, राजस्थान के किसी ग्राम या नगर का उल्लेख हो ऐसी सर्व प्रथम रचना 'सम्यकत्वरास' है । यह मारवाड के तलवाडा गाव मे सवत् 1505 मगसिर महिने मे रची गयी थी । सवत् 1538 की लिखी हुई उसकी प्रति पाटण भण्डार में है । रास के प्रारम्भ में कवि ने तलवाडा में 4 जैन मन्दिर व मूर्तिया होने का उल्लेख किया है :—

तव कोई मारवाड कहीजई, तलवाडो तेह माह गणीजई, जाणी जे सचराचरी ।
तिहा श्री विमल, वीर, शाति पास जिन सासणधीर, ए धारड जिणवर नमई ।।

ऋषिवर्द्धन सूरि —

रचना स्थान के उल्लेख वाली कृतियो में अचलगच्छीय जयकीर्ति सूरि शिष्य ऋषिवर्द्धन सूरि का 'नल दमयन्ती रास' उल्लेखनीय है । 331 पद्यो के इस रास की रचना सवत् 1512 मे चित्तौड में हुई । नल दमयन्ती की प्रसिद्ध कथा को इस रास मे सक्षेप में पर बहुत सुन्दर ढग से व्यक्त की है । प्रारम्भ और अन्त के पद्य इस प्रकार हैं —

सकल सघ सुह शातिकर, प्रणमीय शाति जिनेसु ।
दान शील तप भावना, पुण्य प्रभाव भणेसु ।।
सुणता सुपुरिष वर चरिय, वाघइ पुण्य पवित ।
दवयती नलराय नु, निसुणु चारु चरित ।।

अत-सवत् पनर वारोतर वरसे, चित्रकूट गिरि नयर सुवासे, श्री सघआदर घणई ।
ए ह चरित जेह भणई भणावई, ऋद्धि वृद्धि सुख उच्छवआवई, नितु नितु मन्दिर तम्ह तणई ए ।

मतिशेखर —

इसके पश्चात् उपकेशगच्छीय मतिशेखर सुकवि हो गये है। इस कवि की कई रचनायें प्राप्त होती हैं। यद्यपि उनमे रचना स्थान का उल्लेख नहीं है पर उपकेशगच्छ मारवाड के ओसिया गाव के नाम से प्रसिद्ध हुआ और उसका प्रचार प्रभाव भी राजस्थान मे अधिक रहा, इसलिये मतिशेखर की रचनाये राजस्थान में ही रची गई होगी। इनके रचित 1. धन्नारास, सवत् 1514, पद्य 328, 2. मयणरेहा रास, सवत् 1537, गाथा 347 और 3 बावनी प्राप्त है। इनके अतिरिक्त 4. नेमिनाथ वसत फुलडा फाग, गाथा 108, 5. कुरगडू महर्षि रास सवत् 1536, 6 इलापुत्र चरित्र, गाथा 165 और 7. नेमिगीत है। मतिशेखर वाचक पद से विभूषित कवि थे।

रत्नचूड रास —

रत्नचूड रास नामक एक और चरित काव्य इसी समय का प्राप्त है पर उसमें रचना स्थान का उल्लेख नही है और विभिन्न प्रतियो मे रचना काल और रचयिता सबधी पाठ भेद पाया जाता है। इसी तरह की और भी कई रचनायें है जिनका यहा उल्लेख नही किया जा रहा है।

आज्ञासुन्दर —

सवत् 1516 मे जिनवर्द्धनसूरि के शिष्य आज्ञासुन्दर उपाध्याय रचित 'विद्या विलास चरित्र चौपई' 363 पद्यो की प्राप्त है।

विवाहले —

आचार्य कीर्तिरत्नसूरि की जीवनी के सम्वन्ध मे उनके शिष्य कल्याणचन्द्र ने 54 पद्यो का 'श्री कीर्तिरत्नसूरि विवाहलउ' की रचना की। यह ऐतिहासिक कृति है। इसमे कीर्तिरत्न-सूरि के जन्म से स्वर्गवास तक का सवतोल्लेख सहित वृत्तात दिया गया है। इसी तरह का एक और भी विवाहलउ कीर्तिरत्नसूरि के शिष्य गुणरत्नसूरि के संवध मे पद्ममन्दिर गणि रचित प्राप्त हुआ है।

कवि पुण्यनन्दि —

पुण्यनन्दि ने राजस्थानी मे 32 पद्यो मे 'रूपकमाला' की रचना की इस पर सस्कृत मे भी टीकायें लिखा जाना विशेष रूप से उल्लेखनीय है। सवत् 1582 मे रत्नरग उपाध्याय ने इस पर बालावबोध नामक भाषा टीका बनायी और सुप्रसिद्ध कवि समयसुन्दर ने संवत् 1663 मे सस्कृत मे चूर्णि लिखी।

राजशील —

खरतरगच्छ के साधु हर्ष शिष्य राजशील उपाध्याय ने चित्तौड मे सवत् 1563 में 'विक्रम-चरित्र चौपई' की रचना की। इसमे खापरा चोर का प्रसग वर्णित है। रचनाकाल और स्थान का उल्लेख इस प्रकार किया है :—

पनरसइ त्रिसठी सुविचारी, जेठमासि उज्जल पाखि सारी।
चित्रकूट गढ तास मझारि, भणतां भवियण जयजयकारि।

वाचक धर्मसमुद्र :—

धर्मसमुद्र वाचक विवेकसिंह के शिष्य थे। इन्होंने 'सुमित्र कुमार रास' सवत् 1567 मे जालौर मे 337 पद्यो मे बनाया था। दानधर्म के महात्म्य पर इस चरित्र काव्य की रचना हुई। 'कुलध्वज कुमार रास' को कवि ने 1584 मे समाप्त किया। इसमे 143 पद्य है। कवि ने मेवाड के धजिलाणापुर मे सवत् 1573 मे श्रीमल साह के आग्रह से एक कल्पित कथा 'गुणाकर चौपई' की रचना की। इसमे 530 पद्य है। कवि ने 104 पद्यो मे 'शकुन्तला रास' का निर्माण किया। इनके अतिरिक्त सुदर्शनरास, सुकमाल सज्झाय आदि और भी कितनी ही लघु रचनाए मिलती है।

सहजसुन्दर .—

उपाध्याय रत्नसमुद्र के शिष्य कवि सहजसुन्दर भी इसी शताब्दी के कवि थे। सवत् 1570 से सवत् 1596 तक इनकी 10 रचनाये प्राप्त हो चुकी है। इनके इलाती पुत्र सज्झाय, गुणरत्नाकर छन्द (स 1572), ऋषिदत्तारास, आत्मराग रास, परदेशी राजा रास का नाम विशेषत उल्लेखनीय है।

भक्तिलाभ व उनके शिष्य चारुचन्द्र —

खरतरगच्छ के प्रसिद्ध विद्वान् उपाध्याय जयसागर के प्रशिष्य भक्तिलाभ उपाध्याय भी अच्छे विद्वान हो गये हैं। जिनकी कल्पान्तरवाच्य, बाल-शिक्षा आदि सस्कृत रचनाओ के अतिरिक्त 'लघु जातक' नामक ज्योतिष ग्रन्थ की भाषा टीका सवत् 1571 बीकानेर मे रचित प्राप्त है। यह राजस्थानी के अच्छे कवि भी थे, यद्यपि इनकी कोई बडी रचना नही मिली पर सीमधर स्तवन, वरकाणा स्तवन, जीरावली स्तवन, रोहिणी स्तवन आदि कई स्तवन प्राप्त है। इनमे सीमधर स्तवन का तो काफी प्रचार रहा है। भक्तिलाभ के शिष्य चारुचन्द्र रचित उत्तमकुमार चरित्र की स्वय लिखित प्रति हमारे सग्रह मे है जो सवत् 1572 बीकानेर मे लिखी गई है।

पार्श्वचन्द्र सूरि —

इस शताब्दी के अन्त मे और उल्लेखनीय राजस्थानी जैन कवि पार्श्वचन्द्र सूरि हैं। इनके नाम से पार्श्वचन्द्र गच्छ प्रसिद्ध हुआ। बीकानेर मे इस गच्छ की श्रीपूज्य गद्दी है। नागौर मे भी गच्छ का प्रसिद्ध उपाश्रय है। पार्श्वचन्द्र का जन्म सिरोही राज्य के हमीरपुर के पोरवाड वेलगसाह की पत्नी विमलादे की कुक्षि से स 1537 मे हुआ था। 9 वर्ष की छोटी आयु मे ही उन्होने मुनि दीक्षा स्वीकार की और जल्दी ही पढ-लिख कर विद्वान बन गये, इसलिये केवल 17 वर्ष की आयु मे उपाध्याय पद और 28 वर्ष की आयु मे आचार्य पद प्राप्त किया। सवत् 1612 मे जोधपुर मे इनका स्वर्गवास हुआ। गद्य और पद्य मे इनकी छोटी बडी शताधिक रचनाये मिलती है। पार्श्वचन्द्र सूरि की अधिकाश रचनाये सैद्धान्तिक विषया सबधी है। इसलिये काव्य की दृष्टि से, रचनायें सख्या मे अधिक होने पर भी, उतनी उल्लेखनीय नही। इनकी बालावबोध सज्ञक भाषा टीकाये तत्कालीन राजस्थानी गद्य के स्वरूप को जानने के लिये महत्व की है। अग सूत्रो पर सबसे पहले भाषा टीकायें इन्ही की मिलती हैं।

विजयदेवसूरि —

इनके प्रगुरु पुजराज के शिष्य विजयदेवसूरि का 'शीलरास' काव्य की दृष्टि से भी (छोटा होने पर भी) महत्व का है और उसका प्रचार इतना अधिक रहा है कि पचासो हस्तलिखित

प्रतिया प्राप्त हैं, यद्यपि उसमे रचनाकाल का उल्लेख नही है, पर संवत् 1611 की लिखी हुई प्रति प्राप्त है। पार्श्वचन्द्रसूरि के पट्टधर समरचन्द्र को आचार्य पद सवत् 1604 मे मिला था और उससे पहले ही विजयदेवसूरि का स्वर्गवास हो गया इसलिये इस रचना को 16वी शताब्दी के अन्त की ही मानी जा सकती है। इस रास की रचना जालौर मे हुई थी। 80 पद्यो का यह रास प्रकाशित भी हो चुका है। 'वीसलदेव रास' की तरह इसका छन्द काफी बडा है। इसलिये 80 पद्यो का श्लोक परिमाण 270 पद्यो का हो जाता है। शील के महात्म्य का बडे सुन्दर ढग से और सरल भाषा मे कवि ने निरूपण किया है, इसीलिये वह इतना लोकप्रिय हो सका।

वाचक विनयसमुद्र —

इस शताब्दी के अन्तिम कवि जिनकी स 1611 तक की रचना प्राप्त है, वाचक विनयसमुद्र हुए है जो उपकेश गच्छ के वाचक हर्षसमुद्र के शिष्य थे। बीकानेर मे रची हुई इनकी कई रचनाये प्राप्त है। एक जोधपुर और एक तिवरी मे भी रची गई। सवत् 1583 से 1614 तक मे रची हुई इनकी करीब 25 रचनाये प्राप्त हुई है, जिनमे से 20 का विवरण राजस्थान भारती, भाग 5, अक 1 मे प्रकाशित 'वाचक विनयसमुद्र' लेख मे दिया गया है।

17वी शताब्दी

मालदेव —

वाचक मालदेव आचार्य भानदेवसूरि के शिष्य थे। सस्कृत, प्राकृत रचनाओ के अतिरिक्त, कवि ने राजस्थानी भाषा मे कितनी ही रचनाये लिखी। इनके द्वारा रचित 'पुरन्दर चौपई' का तो विशेष प्रचार है। विक्रम और भोज को लेकर उन्होने बडे-बडे राजस्थानी काव्य लिखे हैं। कवि की पुरन्दर चौपई, सुरसुन्दर चौपई, भोज प्रबन्ध, विक्रम पचदण्ड चौपई, अजना सुन्दरी चौपई, पद्मावती पद्मश्री रास, आदि 20 से भी अधिक रचनायें उपलब्ध है।

पुण्यसागर —

महोपाध्याय पुण्यसागर ने सुबाहुसधि की रचना सवत् 1604 मे जैसलमेर मे की थी। इसमे 89 पद्य है। इसके अतिरिक्त साधु वन्दना, नमि राजर्षिगीत आदि और भी कितनी ही रचनायें मिलती है। इनके अनेक शिष्य, प्रशिष्य थे और वे सभी राजस्थानी के अच्छे विद्वान थे। इनके शिष्य पद्मराज ने अभयकुमार चौपई (स 1650), क्षुल्लक ऋषि प्रबन्ध (सं 1667), सनत्कुमार रास (1669) की रचना की थी। पुण्यसागर के प्रशिष्य परमानन्द ने देवराज वच्छराज चौपई (स 1675) की रचना की थी।

साधुकीर्ति —

जैसलमेर वृहद् ज्ञान भण्डार के संस्थापक जिनभद्रसूरि की परम्परा मे अमरमाणिक्य के शिष्य उपाध्याय साधुकीर्त्ति राजस्थानी के अच्छे विद्वान थे। विशेष नाममाला, सघपट्टकवृत्ति, भक्तामर अवचूरि आदि सस्कृत रचनाओ के अतिरिक्त आपने राजस्थानी गद्य-पद्य मे अनेक रचनाये की है। आपकी सर्वप्रथम रचना सप्तस्मरण बालावबोध सवत् 1611 की है। उसके पश्चात् दिल्ली, अलवर, नागौर आदि नगरो मे इन्होने और भी रचनाये लिखी।

इनके गुरुभ्राता कनकसोम भी अच्छे कवि थे, जिनकी जैतपदवेलि (स 1625), जिनपालित जिनरक्षित रास (1632), आषाढभूति धमाल (1638), हरिकेशी सधि

(1640), आर्द्रकुमार धमाल (1644), नेमिफाग आदि कितनी ही रचनायें उपलब्ध होती हैं ।

कुशललाभ :—

कुशललाभ खरतरगच्छीय अभयधर्म के शिष्य थे। ढोला-मारू और माधवानल कामकन्दला चौपई आपकी लोकप्रिय एव प्रसिद्ध रचनाये हैं। जैसलमेर के रावल मालदेव के कुवर हरराज के कौतुहल के लिये इन दोनो लोककथाओ सबधी राजस्थानी काव्यो की रचना सवत् 1616 एव 1617 मे की थी। इनके अतिरिक्त तेजसार रास, अगडदत्त रास जैसी और भी रचनाये उपलब्ध होती हैं।

कविवर हीरकलश —

बीकानेर और नागौर प्रदेश मे समान रूप से बिराजने वाले इस कवि ने राजस्थानी भाषा मे 'हीरकलश जोइस हीर' नामक महत्वपूर्ण रचना सवत् 1657 मे समाप्त की थी। प्रस्तुत कृति भाषा की दृष्टि से भी उल्लेखनीय है। कुमति विध्वसंन (स 1617), सम्यक्त्व-कौमुदी रास, अठारह नाता, आराधना चौपई, मोती कपासिया सम्वाद, रतनचूड चौपई, हीयाली आदि और भी कितनी ही इनकी रचनाये उपलब्ध होती हैं। सवत् 1615 से लेकर सवत् 1657 तक आपकी करीब 40 रचनाये प्राप्त हुई हैं।

महोपाध्याय समयसुन्दर :—

राजस्थानी साहित्य के सबसे बडे गीतकार एव कवि के रूप मे महोपाध्याय समयसुन्दर का नाम उल्लेखनीय है। सवत् 1641 से 1700 तक 60 वर्षो मे आपका साहित्य-रचना का दीर्घकाल है। 'राजा नो ददते सौख्यम' इन आठ अक्षरो के वाक्य के आपने 10 लाख से भी अधिक अर्थ करके सम्राट अकबर और समस्त सभा को आश्चर्य चकित कर दिया था। 'सीताराम चौपई' नामक राजस्थानी जैन रामायण की एक ढाल आपने साचौर मे बनायी थी। राजस्थानी गद्य-पद्य मे आपकी सैकडो रचनाये उपलब्ध होती है, जिनमे 563 रचनाये 'समयसुन्दर कृति कुसुमाजलि' मे प्रकाशित हो चुकी है। सम्वप्रद्युम्न चौपई, मृगावती रास (1668), प्रियमेलक रास (1672), शत्रु जय रास, स्थूलिभद्र रास आदि रचनाओ के नाम उल्लेखनीय है। आपका शिष्य परिवार भी विशाल था और जिसकी परम्परा अभी तक उपलब्ध है।

उक्त कवियो के अतिरिक्त विमलकीर्ति, नयरग, जयनिधान, वाचक गणरत्न, चारित्रसिह, धर्मरत्न, धर्मप्रमोद, कल्याणदेव, वीरविजय, हेमरत्नसूरि, सारग, उपाध्याय जयसोम, उपाध्याय गुणविनय, उपाध्याय लब्धिकल्लोल, महोपाध्याय सहजकीर्ति, श्रीसार, विनयमेरु, वाचक सूरचन्द्र आदि कितने ही राजस्थानी कवि हुये है जिन्होंने राजस्थानी भाषा को अपनी साहित्य सर्जना का माध्यम बना कर उसके प्रचार-प्रसार मे योग दिया।

सम्राट अकबर प्रतिबोधक युगप्रधान जिनचन्द्रसूरि के अनेक शिष्य एव प्रशिष्य थे जो राजस्थानी के अच्छे विद्वान थे। ऐसे विद्वानो मे समयप्रमोद, मुनिप्रभ, समयराज उपाध्याय, हर्षवल्लभ, सुमतिकल्लोल, धर्मकीर्ति, श्रीसुन्दर, ज्ञानसुन्दर, जीवराज, जिनसिंहसूरि, जिनराजसूरि आदि के नाम उल्लेखनीय है।

इसी शताब्दी मे होने वाले भुवनकीर्ति की सवत् 1667 से 1706 तक रचनाये मिलती हैं जिनमे भरतबाहुबलि चौपई, गजसुकुमाल चौपई, अजनासुन्दरी रास के नाम उल्लेखनीय है।

लावण्यकीर्ति खरतरगच्छीय ज्ञानविलास के शिष्य थे। इनकी सबसे उल्लेखनीय 'रामकृष्ण चौपई' है जो छह खण्डो मे कृष्ण और बलराम के चरित्र को लेकर लिखी गई है। लाभोदय खरतरगच्छीय भुवनकीर्ति के शिष्य थे। इनके द्वारा रचित 'कयवन्ना रास' महत्वपूर्ण कृति है। गुणनन्दन सागरचन्द्रसूरि शाखा के विद्वान ज्ञानप्रमोद के शिष्य थे। इनके द्वारा रचित इलापुत्र रास (स. 1676) उल्लेखनीय कृति है। इनके अतिरिक्त कविवर लब्धिरत्न, देवरत्न, महिमामेरु, लब्धिराज, कल्याणकलश, पद्मकुमार, कनककीर्ति एव लखपत के नाम उल्लेखनीय हैं।

18वी शताब्दी —

सतरहवी शती राजस्थानी साहित्य का उत्कर्ष काल था। उसका प्रभाव 18वी के पूर्वार्द्ध तक रहा, फलत पूर्वार्द्ध मे कई विशिष्ट विद्वानो एव सुकवियो के दर्शन होते है जिनमे से कुछ का जन्म 17वी मे और कुछ कवियो का जन्म 17वी के अन्त मे हुआ है। ऐसे विद्वानों मे तपागच्छ मे उ मेघविजय, विनयविजय, यशोविजय एव खरतरगच्छ मे धर्मवर्द्धन, जिनहर्ष, योगीराज आनदघन, लक्ष्मीवल्लभ, जिनसमुद्रसूरि एव उत्तरार्द्ध मे श्रीमद्देवचन्द्र विशेष रूप से उल्लेख योग्य है। इनमे से मेघविजय का विहार तो राजस्थान मे रहा पर उनकी काव्यादि रचनाए सस्कृत मे ही अधिक है। व्याकरण, काव्य, ज्योतिष, सामुद्रिक, मत्र, छद, न्याय आदि के आप प्रकाण्ड विद्वान थे। यशोविजय, विनयविजय का विहार गुजरात मे ही अधिक है। इनकी सस्कृत के साथ लोकभाषा की भी प्रचुर रचनाये प्राप्त है पर उनकी भाषा गुजराती है। जिनहर्ष एव देवचन्द्र दो ऐसे विद्वान है जिनका उत्तरकाल (जीवन) गुजरात मे बीता। अत आपकी पूर्ववर्ती रचनाए राजस्थानी मे और परवर्ती रचनायें गुजराती भाषा मे पाई जाती हैं।

इस शती के दो जैन कवियो ने मातृभाषा की अनुपम सेवा की है। इनकी समस्त रचनायें लोकभाषा की ही है और उनका समग्र परिमाण लाख श्लोको के बराबर है। वे है—जिनहर्ष और जिनसमुद्र सूरि। वैसे जयरग, सुमतिरग, धर्ममन्दिर, लब्धोदय, अभयसोम, लाभवर्द्धन, कुशलधीर, अमरविजय, विनयचन्द्र, आनन्दघन, लक्ष्मीवल्लभ, अमरविजय आदि पचासो कवियो ने राजस्थानी साहित्य के भण्डार को भरा है।

कविवर जिनहर्ष —

आपका नाम जसराज था और दीक्षित अवस्था का नाम जिनहर्ष है। आपकी गुरु परम्परा खरतरगच्छ के प्रकट प्रभावी दादा श्री जिनकुशलसूरि के प्रशिष्य क्षेमकीर्ति क्षेम शाखा से सबधित है एव परवर्ती परम्परा मे बीकानेर के श्री पूज्य जिनविजयेन्द्र सूरि एक दशक पूर्व विद्यमान थे। आपकी सर्वप्रथम रचना स 1704 की उपलब्ध होने से जन्म स 1675 के लगभग होना सम्भव है। दीक्षा जिनराजसूरि के हाथ से स 1690 के लगभग हुई होगी। आपका जन्म तो मारवाड में ही होना सुनिश्चित है, क्योकि स 1704 से 1735 तक की रचनाये भी आपकी मारवाड प्रदेश मे ही रचित हैं। आपके बडे-बडे ग्रन्थो की सूची इस प्रकार है :—

चन्दनमलयागिरी चौ, स 1704, विद्याविलास रास, स 1711 सरसा, मगलकलश चौ, स 1714, मत्स्योदर रास, स 1718 वाहडमेर, शीलनववाड सम्यक्, स 1729, नदवहत्तरी, स 1714, गजसुकुमाल चौ, स 1714, जिनप्रतिमा हुण्डी रास, स. 1725; कुसुमश्री रास, स 1719, मृगापुत्र चौ, स. 1714 सत्यपुर, मातृका बावनी, स 1730, ज्ञातासूत्र सज्झाय, स. 1736 पाटण, समकित सतमी, स 1736, सुकराज रास, स. 1736 पाटण,

श्रीपाल रास, स 1740, रत्नसिंह रास, सं 1741, श्रीपाल रास सक्षिप्त स 1742, अवती सुकुमाल रास, स 1741 राजनगर, उत्तमकुमार रास स 1745 पाटण, कुमारपाल रास स 1742 पाटण, अमरदत्त मित्रानन्द रास स 1749 पाटण, चन्दन मलयागिरी चौपाई स 1744 पाटण, हरिश्चन्द्र रास स 1744 पाटण, हरिबलमच्छी रास स 174 , सुदर्शन सेठ रास स 1749/अजितसेन कनकावती रास स 1751, गुणावली रास स 1751, महाबल मलयासुन्दरी रास स 1751, शत्रुंजय महात्म्य रास स 1753, सत्यविजय निर्वाण रास स 1756, रत्नचूड रास स 1757, अभयकुमार रास स 1758, रात्रिभोजन रास स 1758, रत्नसार रास स 1759, वयरस्वामी रास स 1759 पाटण, जम्बूस्वामी रास स 1760 पाटण, स्थूलिभद्र सझाय स 1760 पाटण, नर्मदासुन्दरी सज्झाय स 1760 पाटण, आरामसोभा रास स 1761 पाटण, वसुदेव रास स 1762 पाटण, जसराज बावनी स 1738 पाटण, मेघकुमार चौढालिया पाटण, यशोधर रास स 1747 पाटण, श्रीमती रास स 1761 पाटण, कनकावती रास, उपमिति भवप्रपचारास स 1745, ऋषिदत्त रास स 1749 पाटण, शीलवती रास सं 1758, रत्नेश्वर रत्नावती रास स 1759, चौबीसी (हिन्दी) स 1738, वीशी स 1745, दस वैकालिक दस गीत स 1737, दोहा सग्रह, चौबोली कथा आदि, विविध स्तवन सज्झाय आदि, गजसिंह चरित चौ स 1708, उपदेश छत्तीसी सवैया (हिन्दी) स 1713, सवैया 39, वीसी सं 1727, गाथा 144, आहार दोष छत्तीसी स 17 7, गाथा 36, वैराग्य छत्तीसी स 1727, गाथा 36, आदिनाथ स्तवन स 1738, सम्मेतसिखर यात्रा स्तवन स 1744, अमरसेन वयरसेन रास स 1744; दीवाली कल्पबालावबोध, स 1751, शत्रुंजय यात्रास्तवन स 1759, कलावती रास स 1759, पूजा पचाशिका बालावबोध स 1763 नेमि चरित्र (शीलोपदेशमाला-शीलतात्विक बोध)।

जिनसमुद्रसूरि —

आपका जन्म श्री श्रीमाल जातीय शाह हरराज की भार्या लखमादेवी की कुक्षि से हुआ। आपका जन्म स्थान एव सवत् अभी तक अज्ञात है। जैसलमेर भण्डार की एक पट्टावली मे लिखा है, कि आपने 31 वर्ष साधु पद पाला, और स 1713 में आचार्य पद प्राप्त किया। आपके गुरु श्री जिनचन्द्रसूरि थे। आपकी साधु अवस्था का नाम महिमसमुद्र था जो कि आपकी अनेक रचनाओ में पाया जाता है। आपकी रचनाओ से पता चलता है कि आपका विहार जैसलमेर के निकटवर्ती, सिन्ध प्रान्त एवं जोधपुर राज्य मे ही विशेष तौर से हुआ था। स 1713 मे वेगड गच्छ के आचार्य जिनचन्द्रसूरि का स्वर्गवास होने पर आपको इनके पट्टधर के रूप मे आचार्य पद प्राप्त हुआ। स 1741 की कार्तिक सुदी 15 को वर्द्धनपुर में आप स्वर्ग सिधारे।

आपकी सर्वप्रथम रचना नेमिनाथ फाग स 1697 की रचना है तथा अन्तिम कृति सर्वार्थसिद्धि मणिमाला है, जो सवत् 1740 मे पूर्ण हुई थी। इसके अतिरिक्त 25 रचनायें और हैं जिनमे वसुदेव चौपई, ऋषिदत्ता चौपई, रुक्मणि चरित्र, गुणसुन्दर चौपई, प्रवचन रचनावेलि, मनोरथमाला बावनी के नाम उल्लेखनीय हैं।

महोपाध्याय लब्धोदय —

ये जिनमाणिक्यसूरि शाखा के विद्वान् एव जिनरगसूरि की गद्दी के आज्ञावर्ती थे। कवि की प्रथम रचना पद्मिनी चरित्र चौपई की रचना सवत् 1706 उदयपुर में हुई थी। इसके बाद की सभी रचनायें उदयपुर, गोगुन्दा, एव धुलेवा में रचित है। कवि की अन्य उपलब्ध रचनाओ मे रत्नचूड मणिचूड चौपई, मलयसुन्दरी चौपई, गुणावली चौपई है। सभी रचनायें भाषा एव साहित्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। कवि अपने समय के प्रसिद्ध विद्वान् सन्त थे।

जयरंग (जैतसी)—

आपका जन्म नाम जैतसी व दीक्षा का नाम जयरग था। सवत् 1700 से 1739 तक की आपकी रचनाये मिलती है। उनमें अमरसेन वयरसैन चौपई, दशवैकालिक गीत (1707), कयवन्नाराम (1721) आदि के नाम प्रमुख हैं।

योगीराज आनन्दघन—

आपका मूल नाम लाभानन्द था। आनन्दघन की रचनायें अनुभूति प्रधान हैं। ये मेडते मे काफी रहे थे। आपके अधिकाश पद आध्यात्मिक परक हैं। उक्त कवियो के अतिरिक्त अभयसोम, महिमोदय, सुमतिरग, लाभवर्द्धन, राजलाभ, धर्ममन्दिर, उपाध्याय लक्ष्मीवल्लभ, कमलहर्ष, महोपाध्याय धर्मवर्द्धन, कुशलधीर, यशोवर्द्धन, विनयचन्द्र के नाम उल्लेखनीय हैं। कुछ कवियो का सक्षिप्त परिचय निम्न प्रकार है.—

लब्धिविजय के शिष्य महिमोदय ने सवत् 1722 में श्रीपाल रास की रचना की। सुकवि सुमतिरग ने कितने ही आध्यात्मिक ग्रथो का राजस्थानी में अनुवाद किया। आपकी प्रमुख रचनाओ मे ज्ञानकला चौपई, योगशास्त्र चौपई, हरिकैसी सधि, चौवीसजिन सवैय्या आदि उल्लेखनीय हैं।

लाभवर्द्धन कविवर जिनहर्ष के गुरुभ्राता थे। जन्म नाम बालचन्द था। आप अच्छे कवि थे। अब तक इनकी 11 रचनाये प्राप्त हो चुकी हैं। जिनमे लीलावती रास (स 1728) विक्रम पचदण्ड चौपई (स 1733), धर्मबुद्धि पापवुद्धि चौपई आदि के नाम उल्लेखनीय हैं। इन्ही के समान कविवर राजलाभ, धर्ममन्दिर, उपाध्याय लक्ष्मीवल्लभ की साहित्यक सेवायें उल्लेखनीय हैं।

महोपाध्याय धर्मवर्द्धन राजस्थानी भाषा के उत्कृष्ट कवियो मे से है। जन्म नाम धर्मसी था। आप राजमान्य कवि थे। महाराजा सुजाणसिंह के दिये पत्रो में आपको सादर वदना लिखी है। श्रेणिक चौपई (1719), अमरसेन वयरसैन चौपई (1724), सुर-सुन्दरी रास (1736), शील रास आदि आपकी उल्लेखनीय रचनायें हैं। कुशलधीर वाचक कल्याणलाभ के शिष्य थे। कवि के साथ भाषा टीकाकार भी थे। स 1696 मे कृष्ण-वेलि का बालावबोध मानसिंह के आग्रह से लिखा था। शीलवती रास (1722), लीलावती रास (1728), भोज चौपई आदि आपकी प्रमुख रचनायें हैं।

यशोवर्द्धन रत्नवल्लभ के शिष्य थे। इनके रत्नहास रास, चन्दनमलयगिरी रास, जम्बूस्वामी रास एव विद्याविलास रास प्राप्त होते हैं। कविवर विनयचन्द्र महोपाध्याय समय-सुन्दर की परम्परा मे ज्ञानतिलक के शिष्य थे। आपकी उत्तमकुमार रास, बीसी, चौवीसी, एव एकादश अग सज्झाय (1755) तथा शत्रुजय रास (1755) रचनायें मिलती हैं। इसी तरह लक्ष्मीविनय, श्रीमद् देवचन्द्र एव अमरविजय भी राजस्थानी भाषा के अच्छे कवि थे। अमर विजय की अब तक 25 रचनाये प्राप्त हो चुकी हैं। जिनमे भावपच्चीसी (1761), मेघकुमार चौढालिया (1774), सुकुमाल चौपई, सुदर्शन चौपई, अक्षरबत्तीसी, उपदेश बत्तीसी आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

रामविजय दयासिंह के शिष्य थे। आपका जन्म नाम रूपचन्द था। आपकी गद्य-पद्य दोनो में रचनाये मिलती है। राजस्थानी पद्य रचनाओ में चित्रसेन पद्मावती चौपई, नेमि-नाथरासो, मोतीदाल रास, आबू स्तवन आदि के नाम प्रमुख रूप से लिये जा सकते हैं।

सुकवि रुघपति खरतरगच्छाचार्य जिमसुखसूरि के शिष्य विद्यानिधान के शिष्य थे। आपकी समस्त रचनायें राजस्थानी भाषा मे हैं। सवत् 1788 से 1848 तक आपका साहित्य निर्माण काल है। नदिषेण चौपई, श्रीपाल चौपई, रत्नपाल चौपई, सुभद्रा चौपई, छप्पय, वावनी, उपदेश वत्तीसी एव उपदेश रसाल बत्तीसी के नाम उल्लेखनीय हैं।

इस शताब्दी के अन्य कवियो में भुवनसेन (1701), सुमतिवल्लभ (1720), श्रीसोम (1725), कनकनिधान, मतिकुशल (1722), रामचन्द्र (1711), विनयलाभ (1748), कुशलसागर, (1736), जिनरत्नसूरि (1700-11), क्षेमहर्ष (1704), राजहर्ष, राजसार, दयासार, जिनसुन्दरसूरि, जिनरगसूरि (1731), लब्धिसागर (1770), जिनवर्द्धनसूरि (1710), जयसोम (1703), विद्यारुचि और लब्धिरुचि, मानसागर (1724-59), उदयविजय, सुखसागर, जैसे पचासो कवि हुये जिन्होने राजस्थानी भाषा की अपूर्व सेवा की।

19 वी शताब्दी.—

17वीं शताव्दी के स्वर्णयुग की साहित्य धारा 18वीं शताब्दी तक ठीक से चलती रहने पर 19वी शताब्दी से उसकी गति मन्द पड़ गई। यद्यपि 5-7 कवि इस शताब्दी में भी महत्वपूर्ण हुये हैं पर इन्हें परवर्ती कवियो की टक्कर में नही रखा जा सकता। रचनाओ की विशालता, विविधता और गुणवत्ता सभी दृष्टियो से 19वी शताब्दी को अवनत काल कहा जा सकता है। इस शताब्दि में होने वाले प्रमुख, कवियो में आलमचन्द, रत्नविमल, ज्ञानसार, लाभचन्द, उपाध्याय क्षमाकल्याण, मतिलाभ, खुश्यालचन्द, उदयकमल, गुणकमल, चारित्रसुन्दर, जिनलाभसूरि, शिवचन्द्र, अमरसिन्धुर, सत्यरत्न, उदयरत्न, गुमानचन्द्र, जयरग, तत्वकुमार, गिरधरलाल, जगन्नाथ, क्षमाप्रमोद, जयचन्द, हेमविलास, ज्ञानकीर्ति, दयामेरु, अगरचन्द्र, विनयसागर के नाम उल्लेखनीय है।

राजस्थानी कवि 3

—डा. नरेन्द्र भानावत,

—डा. (श्रीमती) शान्ता भानावत

विश्व के इतिहास में 15-16वी शताब्दी वैचारिक क्रान्ति और आचारगत पवित्रता की शताब्दी रही है। यूरोप में पोपवाद के विरुद्ध मार्टिन लूथर ने क्रान्ति का शखनाद किया। भारत मे पजाब मे गुरुनानक, मध्यप्रदेश मे सत कबीर और दक्षिण में नामदेव आदि ने धार्मिक आडम्बर, बाह्याचार, जडपूजा आदि के विरुद्ध आवाज बुलन्द कर जनमानस को शुद्ध सात्विक आन्तरिक धर्मसाधना की ओर प्रेरित किया। इसी कड़ी में महान् क्रान्तिकारी वीर लोकाशाह हुये जिन्होने जैन धर्म मे प्रचलित रूढिवादिता तथा जड़ता का उन्मूलन कर साध्वाचार की मर्यादा और सयम की कठोरता पर बल देते हुये गुणपूजा की प्रतिष्ठा की। लोकाशाह द्वारा किये गये प्रयत्नो की इसी पृष्ठभूमि मे स्थानकवासी परम्परा का उद्भव, विकास और प्रसार हुआ।

लोकाशाह के जन्मस्थान, समय और माता-पिता आदि के नाम के सबध मे विभिन्न मत हैं पर सामान्यत यह माना जाता है कि उनका जन्म सवत् 1472 की कार्तिक शुक्ला पूर्णिमा को अरहटवाडा मे हुआ। इनके पिता का नाम हेमा भाई और माता का गगा बाई था। अहमदाबाद मे इन्होंने अपना रत्न-व्यवसाय आरम्भ किया और थोडे ही समय में अपनी प्रामाणिकता, श्रमशीलता और दूरदर्शिता से इस क्षेत्र में चमक उठे। गुजरात के तत्कालीन बादशाह मुहम्मद ने इनकी कार्य कुशलता और विवेकशीलता से प्रभावित होकर इन्हें खजाची बना लिया। इतना सब कुछ होते हुये भी लोकाशाह वैभव और ऐश्वर्य में नहीं उलझे। वे प्रारम्भ से ही तत्वशोधक थे। शास्त्रों के गहन अध्ययन और प्रतिलेखन से उनके ज्ञानचक्षु खुल गये और समाज मे व्याप्त शिथिलता तथा आगमो में वर्णित आचरण का अभाव देख इन्हें बडा आघात पहुचा। इन्होंने तप, त्याग, सयम और साधना द्वारा आत्मशुद्धि के शाश्वत सत्य को उद्घोषित करने का दृढ सकल्प कर लिया। तत्कालीन घोर विरोध और विषाक्त वातावरण में भी इन्होने अपनी विचार धारा का खुल कर प्रचार किया। इनके उपदेशो से प्रभावित होकर लखमसी, भाणजी, नूनजी आदि लोगो ने इनका साथ दिया। इस प्रकार लोकाशाह के माध्यम से धार्मिक जगत में महान् क्रान्ति का सूत्रपात हुआ।[1]

लोकागच्छ की परम्परा का राजस्थान मे भी खूब प्रचार हुआ। जालोर, सिरोही, नागौर, बीकानेर और जैतारण में लोकागच्छ की गद्दिया प्रतिष्ठापित हो गई। कालान्तर में लोंकाशाह के 100 वर्षों बाद यह गच्छ मुख्यत तीन शाखाओ में बट गया—गुजराती लोका, नागौरी लोका, और लाहोरी उत्तराधी लोका तथा धीरे-धीरे धार्मिक क्रान्ति की ज्योति मद पड़ने लगी। क्रिया मे शिथिलता आने के कारण परिग्रह का प्रादुर्भाव होने लगा। फलत क्रान्ति शिखा को पुन प्रज्वलित करने के लिये कुछ आत्मार्थी साधक क्रियोद्धारक के रूप मे सामने आये। इनमें मुख्य थे पूज्य श्री जीवराज जी, धर्मसिंह जी, लवजी, धर्मदासजी और

---

1. देखिये—धर्मवीर लोंकाशाह · मरुधर केसरी श्री मिश्रीमलजी म ।

हरिदास जी महाराज । राजस्थान मे जिस स्थानकवासी परम्परा का विकास हुआ है, वह इन्ही महान् क्रियोद्धारक महापुरुषो से सबद्ध है ।[1]

लोकागच्छ और स्थानकवासी परम्परा का राजस्थान के धार्मिक जीवन, सामाजिक जागरण और साहित्यक विकास मे महत्वपूर्ण योगदान रहा है । इस परम्परा में शताधिक कवि और शास्त्रज्ञ हुये हैं जिन्होने अपने उपदेशो और साधनामय जीवन से लोक मानस को उपकृत किया है । पर यह खेद का विषय है कि इनकी साहित्यिक निधि का अभी तक समुचित मूल्याकन नही हो पाया है । इसका मुख्य कारण यह रहा है कि इनका कृतित्व हस्तलिखित प्रतियो के रूप मे यत्र-तत्र विखरा पडा है और उसके व्यवस्थित सग्रह-सरक्षण की दिशा में ठोस प्रयत्न वर्षो तक नही किया गया । अब आचार्य श्री हस्तीमल जी महाराज साहब की प्रेरणा से आचार्य श्री विनयचन्द्र ज्ञान भण्डार, लाल भवन, जयपुर में इस परम्परा के साहित्य का विशाल सग्रह किया गया है । इस दिशा में मरुधरकेसरी श्री मिश्रीमलजी म सा एव मुनि श्री मिश्रीमलजी 'मधुकर' ने भी विशेष प्रेरणा दी है । सग्रहीत ग्रन्थो के विषयवार सूचीकरण का कार्य अब भी नही हुआ है । इसके अभाव मे शोधकर्ताओ को भारी दिक्कत का सामना करना पडता है । इस दिशा मे आचार्य श्री विनयचन्द्र ज्ञान भण्डार ग्रन्थ सूची भाग–1 का प्रकाशन[2] महत्वपूर्ण कदम है जिसमे 3710 रचनाओ का विवरण प्रकाशित किया गया है । ऐसे सूचीपत्र कई भागो में प्रकाशित होने पर ही यह साहित्य शोधार्थियो के सम्मुख आ सकता है और तभी इसका समुचित मूल्याकन सभव है ।

स्थानकवासी परम्परा की मुख्य बाईस शाखायें होने से यह 'बाइस टोला' के नाम से भी प्रसिद्ध है । सभी शाखाओ का न्यूनाधिक रूप से साहित्यिक विकास मे योगदान रहा है । पर केन्द्रीय सस्थान के अभाव मे सभी शाखाओ की विखरी हुई साहित्यिक सम्पदा से साक्षात्कार करना सभव नही है । प्रयत्न करने पर हमे जो जानकारी प्राप्त हो सकी उसी के आधार पर यह निवन्ध प्रस्तुत किया जा रहा है । इस वात की पूरी सभावना है कि इसमें कई कवियो के नाम छूट गये हो ।

साहित्य के विकास मे जैन मुनियो के साथ-साथ साध्वियो और उनके अनुयायी श्रावको की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही है और इनकी सख्या सैकड़ो मे है । लोकागच्छ की परम्परा के कवियो में जसवतजी, रूपऋषि, गणि तेजसिह जी, केशवजी आदि प्रमुख है ।[3]

यहा प्रमुख कवियो का परिचय सत कवि, श्रावक कवि और साध्वी कवयित्रियो के क्रम से प्रस्तुत किया जा रहा है ।

---

1 देखिये—(अ) पट्टावली प्रबन्ध सग्रह स आचार्य श्री हस्तीमलजी म. ।
(व) जैन आचार्य चरितावली . आचार्य श्री हस्तीमलजी म ।

2 सम्पादक—डा नरेन्द्र भानावत ।

3 इस सवध में "मुनि श्री हजारीमल स्मृति ग्रथ" में प्रकाशित मुनि काति सागरजी का लेख "लोकाशाह की परम्परा और उसका अज्ञात साहित्य," पृ 214-253 तथा श्री आलमशाह खान का लेख 'लोकागच्छ की साहित्य सेवा' पृ. 201-213 विशेष दृष्टव्य हैं ।

(अ) संत कवि

1 जयमल्ल —

संत कवि आचार्य श्री जयमल्ल जी का स्थानकवासी परम्परा के कवियो में विशिष्ट स्थान है। इनका जन्म सवत् 1765, भादवा सुदी 13 को लाविया (जोधपुर) नामक गाव मे हुआ इनके पिता का नाम मोहन लाल जी समदडिया तथा माता का नाम महिमादेवी था। सवत् 1788 मे इन्होने आचार्य श्री भूधर जी म सा के पास दीक्षा व्रत अगीकार किया। ये साधना मे वज्र की तरह कठोर थे। श्रमण जीवन मे प्रवेश करते ही एकान्तर (एक दिन उपवास, एक दिन आहार) तप करने लगे। यह तपाराधना 16 वर्ष तक निरन्तर चरलती रही। अपने गुरु के प्रति इनकी असीम श्रद्धा थी। भूधर जी के स्वर्ग सिधारने पर इन्होने कभी न लेटने की प्रतिज्ञा की थी फल स्वरूप 50 वर्ष (जीवन पर्यन्त) तक ये लेट कर न सोये। सवत् 1853 की वैशाख शुक्ला चतुर्दशी को नागौर में इनका स्वर्गवास हुआ।

आचार्य जयमल्ल जी अपने समय के महान् आचार्य और प्रभावशाली कवि थे। सामान्य जनता से लेकर राजवर्ग तक इनका सम्पर्क था। जोधपुर नरेश अभयसिह जी, बीकानेर नरेश गजसिह जी, उदयपुर के महाराणा रायसिह जी (द्वितीय) के अतिरिक्त जयपुर और जैसलमेर के तत्कालीन नरेश भी इनका वडा सम्मान करते थे। पोकरण के ठाकुर देवी सिह जी चापावत, देवगढ के जसवतराय, देलवाडा के राव रघु आदि कितने ही सरदार इनके उपदेश सुनकर धर्मानुरागी वने और आखेट चर्या न करने की प्रतिज्ञा की। 'सूरज प्रकाश' के रचियता यशस्वी कवि करणीदान भी इनके सम्पर्क मे आये थे।

मुनि श्री मिश्रीलाल जी 'मधुकर' ने वडे परिश्रम से इनकी यत्र-तत्र बिखरी हुई रचनाओं का 'जयवाणी'[1] नाम से सकलन किया है। इस सकलन मे इनकी 71 रचनायें सकलित है। इन समस्त रचनाओ को विपय की दृष्टि से चार खण्डो में विभक्त किया गया है—स्तुति, सज्झाय, उपदेशी पद और चरित्र। इन सकलित रचनाओ के अतिरिक्त भी इनकी और कई रचनायें विभिन्न भण्डारो मे सुरक्षित है। हमारी दृष्टि मे जो नई रचनायें हैं उनमे से कुछेक के नाम इस प्रकार है।[2]

1. चन्दनवाला की सज्झाय
2. मृगलोढ़ा की कथा
3. श्रीमती जी नी ढाल
4. मल्लिनाथ चरित
5. अजना रो रास
6. पांच पाडव चरित
7. कलकली की ढाल
8. नंदन मनिहार
9. क्रोध की सज्झाय
10. आनन्द श्रावक
11. सोलह सती की सज्झाय व चौपई
12. अजितनाथ स्तवन
13. दुर्लभ मनुष्य जन्म की सज्झाय
14. रावण–विभीषण संवाद
15. इलायची पुत्र को चौढालियो
16. नव तत्व की ढाल
17. नव नियाणा की ढालो
18. दान-शील-तप-भावना सज्झाय
19. मिथ्या उपदेश निषेध सज्झाय
20. लघु साधु वन्दना
21. वज्र पुरन्दर चौढालिया
22. कुंडरीक पुण्डरीक चौढ़ालिया

---

1 प्रकाशक—सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा।
2 इन समस्त रचनाओ की हस्तलिखित प्रतियां आचार्य श्री विन[illegible] भंडार, लाल भवन, जयपुर में सुरक्षित हैं।

23.	सुरपिता का दोहा	24.	रोहिणी
25	प्रबड सन्यासी	26	कर्म फल पद।

जयमल्ल जी की रचनाओ का परिमाण काफी विस्तृत है। इनके कवि-व्यक्तित्व मे सत कवियो का विद्रोह और भक्त कवियो का समर्पण एक साथ दिखाई पडता है। प्रबन्ध काव्य मे उन्होने तीर्थ करो, सतियो, व्रती श्रावको आदि को अपना वर्ण्य विषय बनाया है। मुक्तक काव्य में जैन दर्शन के तात्विक सिद्धातो के साथ-साथ जीवन को उन्नत बनाने वाली व्यावहारिक बातो का सरल, सुबोध ढग से निरूपण किया गया है।

सस्कृत, प्राकृत के विशिष्ट ज्ञाता होते हुये भी इन्होंने अपनी रचनाये बोलचाल की सरल राजस्थानी भाषा मे ही लिखी हैं।[1]

(२) कुशलो जी —

इनका जन्म सवत् 1767 मे सेठो की रीयां (मारवाड) मे हुआ। इनके पिता का नाम लाधूराम जी चगेरिया और माता का कानू बाई था। संवत् 1794 मे फाल्गुन शुक्ला सप्तमी को इन्होने पूज्य आचार्य श्री भूधर जी म से दीक्षा अगीकृत की। आचार्य श्री जयमल्ल जी म इनके बडे गुरु भाई थे। संवत् 1840 ज्येष्ठ कृष्णा छठ को इनका स्वर्गवास हुआ। आप अपने समय के प्रभावशाली सत थे। पूज्य रत्नचन्द्र जी म की परम्परा के ये मूल स्तम्भ माने जाते हैं। शास्त्रज्ञ विद्वान् होने के साथ-साथ ये कवि भी थे। इनकी रचनायें ज्ञान भण्डारो मे बिखरी पडी है। जिन रचनाओ की जानकारी मिली है उनमे स्तवन और उपदेशी पदो के अतिरिक्त 'राजमती सज्झाय', साधुगण की सज्झाय, दशारण भद्र को चौढालियो, धन्ना जी ढाल, नेमनाथ जी का सिलोका, विजय सेठ,-विजया सेठानी की सज्झाय, सीता जी की आलोयणा आदि मुख्य हैं।[2]

(३) रायचन्द —

इनका जन्म सवत् 1796 की आश्विन शुक्ला एकादशी को जोधपुर मे हुआ। इनके पिता का नाम विजयचन्दजी धाडीवाल तथा माता का नाम नन्दा देवी था। सवत् 1814 की आषाढ शुक्ला एकादशी को पीपाड शहर में इन्होने आचार्य श्री जयमल्ल जी से दीक्षा व्रत अगीकार किया। 65 वर्ष की आयु मे संवत् 1861 की चैत्र शुक्ला द्वितीया को रोहिट गाव मे इनका स्वर्गवास हुआ।

आचार्य श्री रायचन्द जी अपने समय के प्रख्यात कवि और प्रभावशाली आचार्य थे। इनकी वाणी मे माधुर्य और व्यक्तित्व में आकर्षण था। जो भी इनके सम्पर्क मे आता, इनका अपना बन जाता। सफल कवि, मधुर व्याख्याता होने के साथ-साथ ये प्रखर चर्चावादी भी थे। इन्होने रीतिकालीन उद्दाम वासनात्मक शृ गारधारा को भक्तिकालीन प्रशांत साधनात्मक प्रेम-धारा की ओर मोड़ा। इनकी दो सौ से अधिक रचनाये उपलब्ध है। प्रमुख रचनाओ के नाम

---

1 इनके जीवन और कवित्व के सबंध मे विस्तृत जानकारी के लिये देखिये —

(अ) सन्त कवि आचार्य श्री जयमल्ल व्यक्तित्व और कृतित्व—श्रीमती उषा बाफना।

(ब) मुनि श्री हजारीमल स्मृति ग्रथ मे प्रकाशित डा नरेन्द्र भानावत का लेख 'सत कवि आचार्य श्री जयमल्ल · व्यक्तित्व और कृतित्व', पृ 137-155।

2 इनकी हस्तलिखित प्रतियां अ वि ज्ञा. भ जयपुर में सुरक्षित हैं।

हैं—आठ कर्मों की चौपाई, जम्बू स्वामी की सज्झाय, नन्दन मणिहार की चौपाई, मल्लिनाथ जी की चौपाई, महावीर जी को चौढालियो, कमलावती की ढाल, एवन्ता ऋषि की ढाल, गौतम-स्वामी को रास, आषाढ भूति मुनि को पचढालियो, सती नरमदा की चौपाई, करकडु की चौपाई, देवकी राणी की ढाल, मेतारज मुनि चरित्र राजर्षि का पंचढालिया, राजा श्रेणिक रो चौढ लियो, शालिभद्र को षट्ढालियो, महामती चेलना की ढाल, श्रेयास कुमार की ढाल, कलावती की चौपाई, चन्दनबाला की ढाल आदि ।[1]

इन रचनाओ के अतिरिक्त इन्होने पच्चीसी सज्ञक कई रचनाये लिखी ।[2] इनमें सवद्र विषय के गुणावगुणो की चर्चा करते हुये आत्मा को निर्मल वनाने की प्रेरणा दी गई है। इन रचनाओ मे मुख्य है वय पच्चीसी, जोवन पच्चीसी, चित्त समाधि पच्चीसी, ज्ञान पच्चीसी, चेतन पच्चीसी, दीक्षा पच्चीसी, कोध पच्चीसी, माया पच्चीसी, लोभ पच्चीसी, निन्दक पच्चीसी आदि।

परिमाण की दृष्टि से रायचन्द जी की सार्वाधिक रचनाये प्राप्त हुई हैं। विषय की दृष्टि से एक ओर इन्होंने ऋषभदेव, नेमिनाथ, महावीर आदि तीर्थंकरो, जम्बू स्वामी, गौतम स्वामी, स्थूलिभद्र आदि श्रमणो, तेजपाल, वस्तुपाल आदि श्रेष्ठियों, तथा चदनबाला, नर्मदा, कलावती, पुष्पा चूला आदि सतियो को अपने आख्यान का विषय बनाया है तो दूसरी ओर अपने आराध्य के चरणो मे भक्ति भावना से पूर्ण पद लिखते हुये जीवन-व्यवहार मे उपयोगी उपदेश और चेतावनिया दी हैं। इनका सारा काव्य लोकभूमि पर आश्रित है और उसमे राजस्थान की सास्कृतिक गरिमा के सरस चित्र मिलते हैं।

(4) चौथमल —

ये आचार्य श्री रघुनाथ जी म के शिष्य मुनि श्री अमीचन्द जी के शिष्य थे। इनका जन्म सवत् 1800 मे मेडता के निकट भवाल मे हुआ। इनके पिता का नाम रामचन्द्र जी व माता का गुमान बाई था। सवत् 1810 मे माघ मे शुक्ला पचमी को इन्होने दीक्षा अगीकृत की। 70 वर्ष का सयम पालन के बाद सवत् 1880 मे मेडता मे इनका निधन हुआ। ये सुमधुर गायक और कवि थे। इनकी जिन रचनाओ का पता चला है, उनमे मुख्य है—जयवन्ती की ढाल, जिनरिख–जिनपाल, सेठ सुदर्शन, नदन मणियार, सनतकुमार चौढालिया, महाभारत ढाल सागर (ढाल सख्या 163), रामायण, श्रीपाल चरित्र, दमघोष चौपाई, जम्बू चरित्र, ऋषि देव ढाल, तामली तापस चरित्र आदि ।[3] रामायण और महाभारत की कथा जो जैन दृष्टि से पद्यबद्ध कर इन्होने अत्यन्त लोकप्रियता प्राप्त की।

(5) दुर्गादास —

इनका जन्म सवत् 1806 में मारवाड जंक्शन के पास मालटिया गाव हुआ मे। इनके पिता का नाम शिवराज जी और माता का नाम सेवादेवी था। 15 वर्ष की लघु वय में सवत् 1821 मे मेवाड के ऊठाला (अब वल्लभनगर) नामक गांव मे इन्होने आचार्य कुशलदास जी

---

1. इस संबध मे 'मरुधर केसरी मुनि श्री मिश्रमल जी म अभिनन्दन ग्रथ' मे प्रकाशित प मुनि श्री लक्ष्मीचन्द जी म सा का 'सत कवि रायचन्द जी और उनकी रचनाये' (पृ 420-429) लेख द्रष्टव्य है।
2. देखिये—कुमारी स्नेहलता माथुर का 'कवि रायचन्द और उनकी पच्चीसी सज्ञक रचनायें लघुशोध प्रबन्ध (अप्रकाशित—राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर)।
3. इनकी हस्तलिखित प्रतियां आ वि ज्ञा भ, जयपुर मे सुरक्षित।

(कुशलोजी) म के पास दीक्षा अगीकार की। साधना मे ये बडे दृढ व्रती थे। निरन्तर एकांतर तप करते थे। पू गुमानचन्द जी म के क्रियोद्धार में इन्होंने पूरा सहयोग दिया। सवत् 1882 मे श्रावण शुक्ला दसमी को जोधपुर मे इनका स्वर्गवास हुआ। ये समर्थ कवि थे। स्फुट रूप से पद सज्झाय, ढाले आदि के रूप मे इनकी रचनाये प्राप्त होती हैं। इनके पद भावपूर्ण और वैराग्य प्रधान हैं। प्रमुख रचनाओ के नाम है—नोकरवारी स्तवन, पार्श्वनाथ स्तवन, जम्बूजी की सज्झाय, महावीर के तेरह अभिग्रह की सज्झाय, गौतम रास, ऋषभ चरित, उपदेशात्मक ढाल, सवैये आदि।[2]

(6) आसकरण —

इनका जन्म गाव सवत् 1812 मार्गशीर्ष कृष्णा द्वितीया को जोधपुर राज्य के तिवरी गाव में हुआ। इनके पिता का नाम रूपचन्द जी बोथरा तथा माता का गीगादे था। सवत् 1830 की वैशाख कृष्णा पचमी को इन्होंने आचार्य जयमल्ल जी के चरणो मे दीक्षा अगीकृत की। 70 वर्ष की आयु में सवत् 1882 की कार्तिक कृष्णा पचमी को इनका स्वर्गवास हुआ। आसकरण जी अपने समय के प्रसिद्ध कवि और तपस्वी साधक सत थे। आचार्य रायचन्द जी के बाद सवत् 1868 माघ शुक्ला पूर्णिमा के दिन ये आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुये। अपने गुरु रायचन्दजी के समान ही इनमे काव्य-प्रतिभा थी। इनकी छोटी-बडी अनेक आध्यात्मिक भावपूर्ण रचनाये हस्तलिखित ग्रन्थ भण्डारो मे विखरी पडी है। ये रचनाये प्रबन्ध और मुक्तक दोनो रूपो मे मिलती हैं। इनकी 'छोटी साधु वदना' रचना का जन समुदाय मे व्यापक प्रचार है। जिन रचनाओ की जानकारी मिली है उनमे प्रमुख है–दस श्रावको की ढाल, पुण्यवाणी ऊपर ढाल, केशी गौतम चर्चा ढाल, साधु गुण माला, भरत जी री रिद्धि, नमिराय जी सप्तढालिया, राजमती सज्झाय, पार्श्वनाथ स्तुति, श्री पार्श्वनाथ चरित्र, गजसिंह जी का चौढालिया, श्री धन्ना जी की 7 ढाला, जय घोष विजयघोष की 7 ढाला, श्री तेरा काठिया की ढाल, श्री अठारह नाता को चौढालियो, पूज्य श्री रायचद जी म के गुणो की ढाल।

(7) जीतमल —

ये अमरसिंह जी म की परम्परा के प्रभावशाली आचार्य थे। इनका जन्म सवत् 1826 मे रामपुरा (कोटा) मे हुआ। इनके पिता का नाम सुजानमल जी व माता का सुभद्रा देवी था। सवत् 1834 मे इन्होंने आचार्य सुजानमल जी म सा के चरणो मे दीक्षा अगीकृत की। सवत् 1912 की ज्येष्ठ शुक्ला दसमी को जोधपुर मे 78 वर्ष की आयु मे इनका निधन हुआ। ये बहुमुखी प्रतिमा के धनी थे। कवि होने के साथ-साथ वे उच्च कोटि के चित्रकार और सुन्दर लिपिकर्ता भी थे। ये दोनो हाथो से ही नही दोनो पैरो से भी लेखनी थाम कर लिखा करते थे। कहा जाता है कि इन्होंने 13000 ग्रथो की प्रतिलिपिया तैयार की। अठाई द्वीप, त्रासनाडी, स्वर्ग, नरक, परदेसी राजा का स्वर्गीय दृश्य आदि चित्र कृतिया इनकी सूक्ष्मकला की प्रतीक हैं। एक बार तत्कालीन जोधपुर नरेश को कागज के एक छोटे से टुकडे पर 108 हाथियो के चित्र दिखा कर इन्होने चमत्कृत और प्रभावित किया था। 'अण विंधिया मोती' इनकी स्फुट कविताओ का सुन्दर सग्रह है जो प्रकाशनाधीन है।[2]

---

1 इन रचनाओ की हस्तलिखित प्रतियां आ वि ज्ञान भ जयपुर में सुरक्षित हैं।

2 इनका सम्पादन श्री देवेन्द्र मुनि शास्त्री ने किया है।

(8) सबलदास —

इनका जन्म सवत् 1828 में भाद्रपद शुक्ला द्वादशी को पोकरण मे हुआ। इनके पिता का नाम आनन्द राज जी लूणिया और माता का सुन्दर देवी था। इन्होने 14 वर्ष की अवस्था मे सवत् 1842 मे मार्गशीर्ष शुक्ला तृतीया को बुचकला ग्राम मे आचार्य रायचद जी मे दीक्षा अगीकृत की। आचार्य आसकरण जी के बाद सवत् 1882 की माघ शुक्ला त्रयोदशी को जोधपुर मे ये आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए। सवत् 1903 मे वैशाख शुक्ला नवमी को मोजत मे इनका स्वर्गवास हुआ। ये अच्छे कवि और मधुर गायक थे। इनकी कई रचनाए ज्ञान भण्डारो मे बिखरी पडी है। प्रमुख रचनाओ के नाम है–आसकरण जी महाराज के गुण, गुरु महिमा स्तवन, जुग मन्दिर स्वामी की सज्झाय, विमलनाथ का स्तवन, कनकरथ राजा रो चरित, खदक जी की लावणी, तामली तापस की चौपई, त्रिलोक सुन्दरी नी ढाल, धन्ना जी री चौपी, अख पोरवली को चरित, उपदेशी ढाल, साधु कर्तव्य की ढाल आदि।[1]

(9) रत्नचन्द्र —

इनका जन्म सवत् 1834 मे वैशाख शुक्ला पचमी को जोधपुर राज्य के कुड नामक गाव मे हुआ। इनके पिता का नाम लालचन्द जी और माता का हीरा देवी था। सवत् 1848 मे पूज्य गुमानचन्द जी म सा के नेश्राय मे इन्होंने दीक्षा अगीकृत की। आप बडे प्रभावी सत थे और साध्वाचार की पवित्रता पर विशेष बल देते थे। जोधपुर नरेश मानसिंह जी इनकी विद्वता और काव्यशक्ति से अत्यन्त प्रभावित थे। जोधपुर के राजगुरु कवि लाडूनाथ जी भी इनके सम्पर्क मे आये थे और वे इनके साधनानिष्ठ कवि-जीवन से विशेष प्रभावित थे। जोधपुर के दीवान लक्ष्मीचन्द जी मूथा इनके अनन्य भक्तो मे से थे। सवत् 1902 मे जोधपुर मे इनका स्वर्गवास हुआ। इन्होंने छोटी-बडी अनेक रचनाए लिखी है। इनकी रचनाओ का एक सग्रह 'श्री रत्नचन्द्र पद मुक्तावली' नाम से प्रकाशित हुआ है।[2] सगृहीत रचनाओ को तीन भागो मे बाटा गया है–स्तुति, उपदेश और धर्मकथा। स्तुतिपरक पद्यो मे तीर्थकरो, गणधरो, विरहमानो, तथा अन्य साधक पुरुषो की स्तुति की गई है। औपदेशिक भाग मे पुण्य-पाप, आत्मा–परमात्मा, बध-मोक्षादि भावो का सुन्दर चित्रण किया गया है। धर्म कथा खड मे जीवन को उदात्त बनाने वाली पद्यात्मक कथाए है। इनके औपदेशिक पद अत्यन्त ही भावपूर्ण और मर्मस्पर्शी हैं।

(10) रत्नचन्द्र :—

ये रत्नचन्द्र आचार्य मनोहरदासजी की परम्परा से सबद्ध हैं। इनका जन्म सवत् 1850 भाद्रपद कृष्णा चतुर्दशी को तातीजा (जयपुर) नामक गाव मे हुआ। इनके पिता का नाम चौधरी गगाराम जी व माता का सरूपादेवी था। सवत् 1862 भाद्रपद शुक्ला छठ को नारनौल (पटियाला) मे श्री मुनि श्री हरजीमल जी के पास ये दीक्षित हुए। सवत् 1921 मे वैशाख शुक्ला पूर्णिमा को आगरा मे इनका स्वर्गवास हुआ। ये बड़े तार्किक, महान् शास्त्राभ्यासी और गभीर विद्वान तथा कवि होने पर भी पद लोलुपता से निर्लिप्त और विनम्रता की प्रतिमूर्ति थे। इनका गद्य और पद्य दोनो पर समान अधिकार था। पद्य रूप मे इन्होने 'जिन स्तुति' 'सती स्तवन', 'ससारवैराग्य', 'बारह भावना बारहमासा' है आदि पर आध्यात्मिक पद लिखे

---

1 इनकी हस्तलिखित प्रतिया आ वि ज्ञा भ जयपुर मे सुरक्षित है।

2. सम्पादक–पं. मुनि श्री लक्ष्मीचन्द जी म, प्रकाशक–सम्यग्ज्ञान प्रचारक मडल, जयपुर।

है जो बडे ही भावपूर्ण हैं। इनका प्रकाशन 'रत्नज्योति' 1 नाम से दो भागो मे हुआ है। पदों के अतिरिक्त इन्होने चरित काव्य भी लिखे है जिनमे सुखानन्द मनोरमा चरित्र विस्तृत है, अन्य चरित काव्यो मे सगर चरित, और इलायची चरित प्रकाशित हो चुके है। इन चरितो मे विभिन्न छदो और राग-रागिनियो का प्रयोग किया गया है।2

(11) कनीराम —

इनका जन्म सवत् 1859 मे माघ शुक्ला एकादशी को खिवसर (जोधपुर) मे हुआ। इनके पिता का नाम किसनदास जी पूणोत तथा माता का राऊदेवी था। सवत् 1870 मे पौष कृष्णा त्रयोदशी को पूज्य दुर्गादासजी म के शिष्य मुनि श्री दलीचन्द जी से इन्होने दीक्षा अंगीकृत की। सवत् 1936 मे माघ शुक्ला पचमी को पीपाड मे इनका स्वर्गवास हुआ। ये अत्यन्त सेवा भावी और चर्चावादी सत थे। नागौर, अजमेर, कालू, पाली, पीपाड तथा पजाब प्रदेश मे इन्होंने कई तात्विक चर्चाओ मे भाग लिया। अपने मत की पुष्टि करते समय ये नैतिक मर्यादाओ का पूरा ध्यान रखते थे। चर्चावादी होने के कारण ये 'वादीभ केसरी' नाम से प्रसिद्ध थे। इनके औपदेशिक पद तात्विक होते हुए भी बडे भावप्रवण है। अन्य प्रमुख रचनाए हैं जम्बूकुमार की सज्झाय, तु गिया के श्रावक की सज्झाय, पडिमा छत्तीसी, सिद्धान्तसार, ब्रह्मविलास (इसमे 87 ढालें हैं) आदि।[3]

(12) विनयचन्द्र —

इनका जन्म सवत् 1897 मे आसोज शुक्ला चतुर्दशी को फलोदी (मारवाड) मे हुआ। इनके पिता का नाम प्रतापमल जी पुगलिया तथा माता का रमाजी था। 16 वर्ष की अवस्था मे सवत् 1912 मे मार्गशीर्ष कृष्णा द्वितीया को अपने लघु भ्राता श्री कस्तूरचन्दजी के साथ ये पूज्य कजोडमलजी म के पास दीक्षित हुए। सवत् 1937 मे ज्येष्ठ कृष्णा पचमी को अजमेर मे ये आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुये। नेत्र ज्योति क्षीण हो जाने से सवत् 1959 से जयपुर मे इनका स्थिरवास रहा। सवत् 1972 मे मार्गशीर्ष कृष्णा द्वादशी को 75 वर्ष की आयु मे जयपुर मे ही इनका स्वर्गवास हुआ। जयपुर मे स्थित आचार्य श्री विनयचन्द्र ज्ञान भण्डार इन्ही के नाम पर है। ये बडे शात स्वभावी, वात्सल्य प्रेमी, उदार हृदय और विद्वान् कवि थे। इनके पद बडे हृदयस्पर्शी और भावपूर्ण हैं। प्रमुख रचनाये है—मुनि अनाथी री सज्झाय, रतनचन्द्र जी म का गुण, अजना सती को रास, गौतम रास, धन्ना जी की सज्झाय, नवराय चरित, नेम जी को व्यावलो, मेणरेहा कथा, सुभद्रा सती की चौपाई, उपदेशी सज्झाय, होली रो चौढालियो, नेमनाथ राजमती वारहमासियो आदि।[4]

(13) लालचन्द —

इनका जन्म कातरदा (कोटा) नामक गाव मे हुआ। ये कोटा-परम्परा के आचार्य श्री दौलतराम जी म के शिष्य थे। ये कुशल चित्रकार थे। एक बार किसी दिवाल पर

---

1 स श्री श्रीचन्द्रजी म, प्र श्री रत्नमुनि जैन कालेज, लोहामडी, आगरा।

2 देखिये—गुरुदेव श्री रत्नमुनि स्मृति ग्रथ में प्रकाशित डा नरेन्द्र भानावत का लेख पूज्य रत्नचन्द्र जी की काव्य साधना, पृ 317-327।

3 देखिये — आचार्य श्री विनयचन्द्र ज्ञान भडार ग्रथ सूची भाग 1, स डा नरेन्द्र भानावत।

4 देखिए—आ वि ज्ञा भ ग्रथसूची भाग 1, स डा नरेन्द्र भानावत।

इन्होंने चित्रकारी की। उस पर अच्छा रंग किया और प्रात काल उसे देखा तो हजारों कीट मच्छर उस रग पर चिपके हुए दृष्टिगत हुए। इस दृश्य को देखकर उनका कोमल-करुण हृदय पसीज उठा और ये साधु बन गये। ये वडे विद्वान् कवि, तपस्वी एव शासन-प्रभावक संत थे। कोटा, बूंदी, झालावाड, सवाई माधोपुर, टोंक इनके प्रमुख विहार क्षेत्र रहे। इनके उपदेशो से प्रभावित होकर मीणा लोगो ने मास, मदिरादि सेवन का त्याग किया। इनका रचनाकाल 19 वी शताब्दी का उत्तरार्द्ध रहा है। उनकी रचनाओ मे महावीर स्वामी चरित, जम्बू चरित, चन्द सेन राजा की चौपाई, चौवीसी, अठारह पाप के सवैये, बकचूल का चरित्र, श्रीमती का चौढालिया, बिजयकवर व विजय कुवरी का चौढालिया, लालचन्द बावनी आदि प्रमुख है।

(14) हिम्मतराम —

ये सवत् 1895 मे जोधपुर मे आचार्य श्री रतनचन्द म के चरणो मे दीक्षित हुए। ये अपनी साधना मे कठोर और स्वभाव से मधुर तथा विनयशील थे। कवि होने के साथ-साथ ये अच्छे लिपिकार भी थे। इन्होंने अनेक सूत्रो, थोकडो, चौपाइयो और स्तवनो का प्रतिलेखन भी किया। अपने गुरु रतनचन्द जी से इन्हे काव्य रचना करने की प्रेरणा मिली। इनकी रचनायें मुख्यत दो प्रकार की हैं—कथापरक और उपदेश परक। कथापरक रचनाओ मे तीर्थ करो और आदर्श जीवन जीने वाले मुनि-महात्माओ का यशोगान किया है। उपदेशपरक रचनाओ मे मन को राग-द्वेष से रिक्त होकर आत्मकल्याण की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा दी गई है। सम्यक्ज्ञान प्रचारक मडल जयपुर ने उनकी रचनाओ का एक सग्रह 'हिम्मतराम पदावली' नाम से प्रकाशित किया है

(15) सुजानमल —

इनका जन्म वि स 1896 मे जयपुर के प्रतिष्ठित जौहरी परिवार मे हुआ। उनके पिता का नाम ताराचन्द जी सेठ व माता का राई बाई था। वैभव सम्पन्न घराने मे जन्म लेकर भी इनकी धर्म मे गहरी श्रद्धा थी। इनका कठ मधुर था और सगीत मे अच्छी रुचि थी। इनके जीवन के 50वे वर्ष मे एक व्याधि उत्पन्न हुई। बड़े-बड़े डाक्टरो और वैद्यो का उपचार किया गया पर शान्त होने के बजाय वह और बढती गई। इससे ये सर्वथा पगु और परावलम्बी बन गये। अत मे इन्होंने अनाथीमुनि की तरह मन ही मन दृढ सकल्प किया कि यदि मैं नीरोग हो जाऊ तो पूज्य विनयचद जी म सा के सान्निध्य मे प्रव्रज्या धारण करू। इस सकल्प के थोड़े ही दिनो बाद इनकी व्याधि दूर हो गई और इन्होंने सवत् 1951 मे आश्विन शुक्ला त्रयोदशी को जयपुर मे अपने 15 वर्षीय बाल साथी कपूरचन्द पाटनी के साथ आचार्य विनय चद जी म के पास दीक्षा अगीकृत की। इनमे काव्य रचना की प्रतिभा प्रारम्भ से ही थी। अब सुमार्ग पाकर प्रति दिन ये नये-नये पदो की रचना करने लगे। इनके रचे लगभग चार सौ पद्य मिलते है। इनका सग्रह 'सुजान पद सुमन वाटिका' नाम से प्रकाशित हुआ है।[1] इनके प्रत्येक पद्य मे आत्मकल्याण और जीवन-सुधार का प्रेरणादायी सदेश भरा पडा है। सवत् 1968 मे इनका निधन हुआ।

(16) रामचन्द्र —

ये आचार्य जयमल्ल जी की परम्परा के श्रेष्ठ कवियो मे से है। इनके औपदेशिक पद आध्यात्म भावना से ओतप्रोत हैं। इनकी रचनाएं ज्ञान-भण्डारो मे बिखरी पडी है जिनमे

---

1. स प. मुनि श्री लक्ष्मीचन्द जी म, प्रकाशक सम्यग्ज्ञान प्रचारक मंडल, जयपुर।

विजयकुमार का चौढालिया, विष्णु कुमार चरित, शालिभद्र धन्ना अधिकार छहढालिया, हरिकेशी मुनि चरित, उपदेशी ढाल आदि प्रमुख है ।[1]

(17) तिलोक ऋषि —

इनका जन्म संवत् 1904 मे चैत्रकृष्णा तृतीया को रतलाम में हुआ । इनके पिता का नाम दुलीचन्द जी सूराणा और माता का नानूबाई था । सवत् 1914 मे माघ कृष्णा प्रतिपदा को ये अपनी मा, वहिन और भाई के साथ अयवता ऋषि के सान्निध्य मे दीक्षित हुए । इनका विहारक्षेत्र मुख्यत मेवाड, मालवा और महाराष्ट्र रहा । 36 वर्ष की अल्पायु मे ही स 1940 मे श्रावणकृष्णा द्वितीया को अहमदनगर मे इनका निधन हो गया । पिछडी जाति के लोगो को व्यसन मुक्त बनाने मे इनकी वडी प्रेरणा रही है ।

तिलोक ऋषि कवित्व की दृष्टि से स्थानकवासी परम्परा के श्रेष्ठ कवियों में से है । इनका काव्य जितना भावनामय है, उतना ही सगीतमय भी । इन्होने जन-साधारण के लिये भी लिखा और विद्वत्मण्डली के लिये भी । पदो के अतिरिक्त इन्होने भक्ति और वैराग्य भाव से परिपूर्ण वहुत ही प्रभावक कवित्त और सवैये लिखे । इनके समस्तकाव्य को दो वर्गों मे रक्खा जा सकता है —रसात्मक और कलात्मक । रसात्मक कृतिया विशुद्ध साहित्यिक रस बोध की दृष्टि से लिखी गई हैं । इनमे कवि की अनुभूति, उसका लोक निरीक्षण और गेय व्यक्तित्व समाविष्ट है । ये आगमज्ञ, सस्कृत, प्राकृत आदि भाषाओ के विद्वान् शास्त्रीय ज्ञान के धनी, विभिन्न छदो के विशेषज्ञ और लोक सस्कृति के पडित थे । यही कारण है कि इनकी रचनाओ मे एक ओर सत कवि का सारल्य है तो दूसरी ओर शास्त्रज्ञ कवि का पाडित्य । ये रसात्मक कृतिया तीन प्रकार की हैं—स्तवनमूलक, आख्यानमूलक और औपदेशिक । स्तवनमूलक रचनाओ मे चौबीस तीर्थ करो, पच परमेष्ठियो, गणधरो और सत-सतियो की स्तुति विशेष रूप से की गई है । इनमे इनके वाह्य रूप रग का वर्णन कम, आतरिक शक्ति तथा गरिमा का वर्णन अधिक रहा है । आख्यानमूलक रचनाओ मे इतिवृत्त की प्रधानता है । इनमे विभिन्न दृढव्रती श्रावको और मुनियो को वर्ण्य विषय बनाया गया है । औपदेशिक रचनाओ मे कवि की विशेषता यह रही है कि उसमे रूपक योजना द्वारा सामान्य लौकिक विषयो को अध्यात्म भावो के माधुर्य से विमडित कर दिया है ।[2]

कलात्मक कृतियो मे कवि की एकाग्रता, उसकी सूझवूझ, लेखन-कला, चित्रण-क्षमता, और अपार भाषा-शक्ति का परिचय मिलता है । ये कलात्मक कृतिया दो प्रकार की हैं—चित्रकाव्यात्मक और गूढार्थमूलक ।

चित्रकाव्यात्मक रचनाए तथाकथित चित्रकाव्य से भिन्न है । इनमे प्रधान दृष्टि चित्रकार के लाघव व गणितज्ञ की बुद्धि के कारण, चित्र बनाने की रही है । ये चित्रकाव्य दो प्रकार के हैं । सामान्य और रूपकात्मक । सामान्य चित्रो मे कवि ने स्वरचित या किसी प्रसिद्ध कवि की कविताओ, दोहे, सवैये, कवित्त आदि को इस ढग से लिखा है कि एक चित्ररूप खडा हो जाता है । समुद्र वध, नागपाश बध आदि कृतिया इसी प्रकार की हैं । इन चित्रो के नामानुरूप भाववाली कविताओ को ही यहा लिपिवद्ध किया गया है । समुद्रवन्ध कृति मे ससार को समुद्र के रूप मे उपमित करने वाली कविता का प्रयोग किया गया है । नागपाश वन्ध मे भगवान पार्श्वनाथ के जीवन की उस घटना को व्यक्त करने वाला छन्द सन्निहित है जिसमे उन्होंने कमठ तापस की पचाग्नि से सकटग्रस्त नाग दम्पत्ति का उद्धार किया था । रूपकात्मक

1 इनकी हस्तलिखित प्रतिया आ वि ज्ञा भ जयपुर मे सुरक्षित है ।

2. देखिए—अध्यात्म पर्व दशहरा स्वाध्याय, प्र श्री जैन धर्म प्रसारक सस्था नागपुर ।

चित्र-काव्यों मे कवि की रूपक योजक-वृत्ति काम करती रही है। 'ज्ञान कुंजर और शीलरथ' के रूपकात्मक चित्र अत्यन्त सुन्दर बन पडे हैं। गूढार्थमूलक रचनाए कूट शैली मे लिखी गई हैं।

तिलोक ऋषि का छन्द प्रयोग भी विविधता लिये हुए है। दोहा और पद के अतिरिक्त इन्होने रीतिकालीन कवियो के सवैया और कवित्त जैसे छन्द को अपनाकर उसमे जो सगीत की गूज और भावना की पवित्रता भरी है, वह अन्यतम है। सक्षेप मे कहा जा सकता है कि तिलोक ऋषि के काव्य मे भक्तियुग की रसात्मकता और रीति युग की कलात्मकता के एक साथ दर्शन होते है।[1]

(18) किशनलाल —

ये आचार्य रतनचन्द जी म सा की परम्परा के मुनि श्री नन्दलाल जी म. के शिष्य थे। इनकी रचनाये विभन्न ज्ञान भण्डारो मे यत्र-तत्र बिखरी पडी है। इनकी रचनाये औपदेशिक पदों और पद्यकथाओ के रूप मे मिलती है। इनके पद अध्यात्म प्रवण और आत्म-कल्याण मे साधक हैं। हमे जो रचनायें ज्ञात हुई हैं उनमे नवकार मत्र की लावणी, पचपरमेष्ठी गुणमाला, चण्डरुद्र आचार्य की सज्झाय, सनतकुमार राजर्षि चौढालिया, कर्मों की लावणी, आदि उल्लेखनीय हैं।[2]

(19) नेमिचन्द्र —

इनका जन्म वि स 1925 मे आश्विन शुक्ला चतुर्दशी को बगडुन्दा (मेवाड) मे हुआ। इनके पिता का नाम देवीलालजी लोढा और माता का कमला देवी था। इन्होने आचार्य श्री अमरसिंह जी म की परम्परा के छठे पट्टधर श्री पूनमचन्द जी म सा से सवत् 1940 फाल्गुन कृष्णा छठ को बगडुन्दे मे दीक्षा अगीकृत की। सवत् 1975 मे कार्तिक शुक्ला पचमी को छीपा का आकोला (मेवाड) मे इनका निधन हुआ। ये आशु कवि थे और चलते-फिरते वार्तालाप मे या प्रवचन मे शीघ्र ही कविता बना लिया करते थे। कवि होने के साथ-साथ ये प्रत्युत्पन्नमति और शास्त्रज्ञ विद्वान थे। इनकी प्रवचन शैली अत्यन्त चित्ताकर्षक और प्रभावक थी। इन्होने धर्म-प्रचार की दृष्टि से गावो को ही अपना विहार क्षेत्र बनाया। मेवाड के पर्वतीय प्रदेश गोगुन्दा, झाडोल, एव कोटडा आदि क्षेत्रो को उन्होंने अपने उपदेशो से उपकृत किया। इनकी काव्य-प्रतिभा व्यापक थी। एक ओर इन्होने रामायण और महाभारत के विभिन्न प्रसगो को अपने काव्य का आधार बनाया तो दूसरी ओर जैनागमो के विविध चरित्रो को सगीत की स्वर-लहरी मे बाधा। इनकी रचनाओ मे भक्ति भावना की तरगिणी प्रवहमान है तो 'निह्नव भावना सप्तढालिया' जैसी रचनाओ मे युग के अनाचार और बाह्य आडम्बर के खिलाफ विद्रोह की भावना है। 'भाव नौकरी', क्षमा माताशीतला, 'चेतन चरित' जैसी रचनाओ मे कवि की सागरूपक योजना का चमत्कार दृष्टिगत होता है। 'नेमवाणी'[3] नाम से इनकी रचनाओ का प्रकाशन हुआ है।

---

1 विशेष जानकारी के लिए देखिए–

(अ) कुमारी मधु माथुर का 'सत कवि तिलोक ऋषि व्यक्तित्व और कृतित्व' लघु शोधप्रवन्ध (अप्रकाशित)।

(ब) डा शान्ता भानावत का 'तिलोक ऋषि की काव्य साधना' लेख, मुनि श्री हजारीमल स्मृति ग्रथ मे प्रकाशित, पृ 168-173।

2 आ वि ज्ञा भ. ग्रन्थसूची भाग 1।

3. सं. पुष्कर मुनि, प्र श्री तारक गुरु ग्रथालय, पदराड़ा (उदयपुर)।

(20) दीपचन्द —

इनका जन्म सवत् 1926 मे आश्विन शुक्ला छठ को पजाब के फिरोजपुर क्षेत्र के अन्तर्गत झूबो नामक गाव मे हुआ। इनके पिता का नाम बधावासिह और माता का नाम नारायणीदेवी था। इन्होने सवत् 1951 मे मार्गशीर्ष शुक्ला तृतीया को दिल्ली मे पूज्य श्री धर्मदास जी महाराज की परम्परा के जीवनरामजी म के पास अपनी धर्मपत्नी सहित 25 वर्ष की अवस्था मे दीक्षा ग्रहण की। सवत् 1994 मे श्री जीवनरामजी म. ने इन्हे सोनीपत मे पूज्य पदवी प्रदान की। ये आदर्श तपस्वी सत और आध्यात्मिक कवि थे। इनके पदो मे ससार की नश्वरता, आत्मा की अमरता का सुन्दर निरूपण है। इनकी भाषा राजस्थानी प्रभावित हिन्दी है। 'दीप भजनावली' नाम से इनकी रचनाओ का एक सग्रह प्रकाशित हुआ है।

(21) गजमल —

इनका जन्म किशनगढ के फतेहगढ नामक गाव मे हुआ। इनके पिता का नाम कल्याण मल जी ललवाणी तथा माता का नाम केसर बाई था। सवत् 1926 मे चैत्र शुक्ला चतुर्दशी को उन्होंने अपनी माता के साथ पूज्य नानकराम जी महाराज के सम्प्रदाय के मुनि श्री मगनमलजी के पास दीक्षा अगीकृत की। सवत् 1975 मे फाल्गुन शुक्ला त्रयोदशी को ठाठोठी ग्राम मे इनका निधन हुआ। ये अध्ययनशील प्रवृत्ति के तत्ववादी साधक थे। घटो तात्विक विषयो पर चर्चा किया करते थे। इन्होंने छोटी-मोटी कई रचनायें लिखी है उनमे सबसे उल्लेखनीय रचना 'धर्मसेन' ग्रथ है जो छह खड एव 64 ढालो मे पूरा हुआ है। ग्रथ प्रमाण 6500 श्लोक है।

(22) माधव मुनि —

इनका जन्म सवत् 1928 मे भरतपुर के निकट अचनेरा गाव मे हुआ। इनके पिता का नाम वशीधर सनाढ्य और माता का राय कवर था। सवत् 1940 मे इन्होंने मगन मुनिजी के पास दीक्षा अगीकृत की। संवत् 1978 मे वैशाख शुक्ला पचमी को ये धर्मदासजी महाराज की परम्परा मे आचार्य श्री नदलालजी म के बाद आचार्य बने। सवत् 1981 मे जयपुर के पास गाडोता गाव मे इनका स्वर्गवास हुआ। जैनागमो मे इनकी गहरी पैठ थी। व्याकरण, न्याय, साहित्य आदि भारतीय दर्शनो का इनका गहन अध्ययन था। इनमे कवित्व-प्रतिभा के साथ-साथ पैनी तर्कणा शक्ति भी थी। इनके काव्य मे चिन्तन की गहराई, अर्थगौरव और सिद्धान्त निष्ठता की दृढता से प्राण प्रतिष्ठा हुई है। इनकी भाषा प्रौढ और अभिव्यक्ति सशक्त है। इनकी रचनाओ का एक सग्रह 'जैन स्तवन तरगिणी' 1 नाम से प्रकाशित हुआ है जिसमे विनय, भक्ति, और उपदेश की तीव्र तरगे प्रवहमान हैं।

(23) खूबचन्द —

इनका जन्म सवत् 1930 मे कार्तिक शुक्ला अष्टमी को निम्बाहेडा (मेवाड) मे हुआ। इनके पिता का नाम टेकचन्दजी जैतावत और माता का गेंदी बाई था। 22 वर्ष की अवस्था मे सवत् 1952 मे आषाढ शुक्ला तृतीया को इन्होंने नीमच शहर मे नन्दलाल जी म सा के चरणों मे दीक्षा अगीकृत की। सवत् 1991 मे फाल्गुन शुक्ला तृतीया को रतलाम मे ये आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुए। सवत् 2002 चैत्र शुक्ला तृतीया को इनका स्वर्गवास हुआ। इनका जीवन बडा ही सयत, तपोमय और त्याग-वैराग्य से परिपूर्ण था। इनकी व्याख्यान शैली बड़ी ही रोचक और ओजपूर्ण थी। इनके उपदेशो से प्रभावित होकर जयपुर-नरेश श्री माधोसिह जी तथा

---

1 प्रकाशक—श्री वर्धमान जैन स्थानकवासी श्री सघ, कोटा।

अलवर नरेश श्री जयसिंह जी ने सवत्सरी महापर्व के दिन हमेशा के लिये अगता रखाया। ये सुमधुर गायक और प्रतिभाशाली कवि थे। इनकी कविताओ का एक सकलन 'खूब कवितावली'[1] नाम से प्रकाशित हुआ है जिसमे स्तवन, उपदेशामृत, चरितावली और विविध विषयो से सम्बद्ध कविताए सगृहीत है। इन्होने विविध राग-रागिनियो, दोहा, कवित-सवैया, ढाल आदि छन्दो के साथ-साथ ख्यालो मे प्रयुक्त शेर, चलत, मिल्लत, छोटी कडी झेला, द्रोण जैसे छन्दो का भी प्रयोग किया है। इनकी कविताओ मे लोक जीवन और लोक सस्कृति की अच्छी अभिव्यक्ति हुई है।

(24) अमी ऋषि —

इनका जन्म सवत् 1930 मे दलोद (मालवा) मे हुआ। इनके पिता का नाम श्री भेरुलाल जी और माता का प्यारा बाई था। सवत् 1943 मे इन्होने श्री सुखा ऋषि जी म के पास मगरदा (भोपाल) मे दीक्षा अगीकृत की। सवत् 1988 मे शुजालपुर मे इनका स्वर्गवास हुआ। मालवा, मेवाड, मारवाड गुजरात, महाराष्ट्र आदि क्षेत्रो मे विहार कर इन्होने जिन शासन का उद्योत किया। इनकी बुद्धि और धारणा शक्ति अत्यन्त तीव्र थी। शास्त्रीय और दार्शनिक चर्चा मे इनकी विशेष रुचि थी। ये जितने तत्वज्ञ थे उतने ही कुशल कवि भी। इन्होने लगभग 23 ग्रथो की रचना की। इनकी कविताओ का एक सग्रह 'अमृत काव्य सग्रह'[2] के नाम से प्रकाशित हुआ है। इन्होने अनेक छन्दो और अनेक शैलियो मे रचना की है। छन्दो मे दोहा, कवित्त, सवैया, सोरठा, पद्धरी, हरिगीतिका, शिखरिणी, शार्दूलविक्रीडित, मालिनी, आदि छन्दो का सुचारु निर्वाह हुआ है। सवैया और कवित्त पर तो उनका विशेष अधिकार जान पडता है। रूप-भेद की दृष्टि से जहा इन्होने अष्टक, चालीसा, बावनी, शतक आदि सज्ञक काव्य लिखे हैं वहा चरित्र काव्यो मे सीता चरित, जिन सुन्दरी, भरत बाहुबलि चौढालिया, अम्बड सन्यासी चौढालिया, कीर्ति ध्वज राजा चौढालिया, धारदेव चरित आदि मुख्य है। इनकी कविता मे जहा निश्छलता, स्पष्टोक्ति है, वही चमत्कारप्रियता भी है। इस दृष्टि से इन्होने खड्गबध, कपाटबध, कदली बध, मेरु बध, कमल बध, चमर बध, एकाक्षर त्रिपदी बध, चटाई बध, छत्र बध, धनुर्बन्ध, नागपाश बध, कटारबध, चौपड बध, स्वस्तिक बध आदि अनेक चित्र-काव्यो की रचना की है। 'जयकुजर' इस दृष्टि से इनकी श्रेष्ठ रचना है। लोकजीवन की निश्छल अभिव्यक्ति इनके काव्य की विशेषता है। पचतत्र मे आई हुई कई कहानियो को लेकर इन्होने सवैया छद मे उन्हे निबद्ध किया है। पूर्ति मे भी इन्हे पर्याप्त सफलता मिली है।

(25) जवाहरलाल —

इनका जन्म सवत् 1932 मे कार्तिक शुक्ला चतुर्थी को थादला (मालवा) गाव मे हुआ। इनके पिता का नाम जीवराज जी और माता का नाथी बाई था। 16 वर्ष की लघुवय मे सवत् 1948 मे मार्गशीर्ष शुक्ला द्वितीया को इन्होने मुनि श्री मगनलाल जी म सा के चरणो मे दीक्षा अगीकृत की। सवत् 1977 आषाढ शुक्ला तृतीया को ये आचार्य श्री श्रीलाल जी म सा के बाद आचार्य पद पर प्रतिष्ठित हुये। सवत् 2000 मे आषाढ शुक्ला अष्टमी को भीनासर मे इनका स्वर्गवास हुआ। इनका व्यक्तित्व बडा आकर्षक व प्रभावशाली था। इन्होने राष्ट्रीय स्वतन्त्रता आन्दोलन के सत्याग्रह, अहिंसक प्रतिरोध, स्वदेशी वस्तुओ का प्रयोग, खादी धारण, अछूतोद्धार जैसे रचनात्मक कार्यक्रमो मे सहयोग देने की जनमानस को विशेष प्रेरणा दी। इनके ओजस्वी व्यक्तित्व और क्रातिकारी विचारो से प्रभावित होकर महात्मा गाधी,

---

1. स. प मुनि श्री हीरालालजी म, प्रकाशक-श्री सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा।
2. प्रकाशक-श्री रत्न जैन पुस्तकालय पाथर्डी (अहमदनगर)।

लोकमान्य तिलक, महामना मालवीय, सरदार पटेल आदि राष्ट्रीय महापुरुष इनके सम्पर्क में आये। इनकी उपदेश-शैली बडी रोचक, प्रेरक और विचारोत्तेजक थी। इनके प्रवचनो का प्रकाशन 'जवाहर किरणावली'[1] नाम से कई भागो मे किया गया है। 'अनुकम्पा विचार' नाम से इनके राजस्थानी काव्य के दो भाग प्रकाशित हुये है। इनमें अहिंसा के विधेयात्मक स्वरूप पर बल देते हुये दया और दान की धार्मिक संदर्भ मे विशेष महत्ता प्रतिपादित की है। राग-रागिनियो और ढालो मे निबद्ध यह काव्य सरस और रोचक बन पडा है।

(26) चौथमल.—

जैन दिवाकर प्रसिद्ध वक्ता के रूप मे प्रसिद्ध इन चौथमलजी म. का जन्म स 1934 मे कार्तिक शुक्ला त्रयोदशी को नीमच मे हुआ। इनके पिता का नाम श्री गगारामजी और माता का केसरा बाई था। स 1952 मे इन्होंने श्री हीरालाल जी म सा से दीक्षा अगीकृत की। ये जैन तत्व और साहित्य के प्रकाण्ड विद्वान् होने के साथ-साथ प्रभावशाली वक्ता, मधुरगायक और प्रतिभा सम्पन्न कवि थे। इनके विचार बडे उदार और दृष्टि व्यापक थी। जैन धार्मिक तत्वो को सकीर्ण दायरे से उठा कर सर्व साधारण मे प्रचारित-प्रसारित करने का इन्होंने महत्वपूर्ण कार्य किया। इनकी प्रवचन-सभा मे राजा-महाराजा और सेठ-साहूकारो से लेकर चमार, खटीक, भील, मीणे आदि पिछड़े वर्ग के लोग भी समान रूप से सम्मिलित होते थे। इनके उपदेशो से प्रभावित होकर अनेको ने आजीवन मासभक्षण, मदिरा-पान, भाग-गाजा, तम्बाखू आदि का त्याग किया। मेवाड, मालवा एव मारवाड के अनेक जागीरदारो और राजा-महाराजाओ ने इनसे जीव दया का उपदेश सुनकर अपने-अपने राज्यो मे हिंसाबन्दी की स्थायी आज्ञाये जारी करवा दी और उन्हे इस आशय की सनदे लिख दी। उदयपुर के महाराणा फतहसिंह जी और भोपालसिंह जी इनके अनन्य भक्त थे। इनका गद्य और पद्य दोनो पर समान अधिकार था। इन्होंने सैकडो भक्ति रस से परिपूर्ण भजन लिखे हैं, जिन्हे भक्तजन आत्म-विभोर होकर गाते है। काव्य के क्षेत्र मे 'आदर्श रामायण' और 'आदर्श महाभारत' इनके प्रसिद्ध ग्रथ है। जैन सुबोध गुटका[2] भाग 1, 2 मे इनके लगभग 1000 पद सग्रहीत हैं। इन्होंने राजस्थानी और हिन्दी दोनो भाषाओ मे समान अधिकार के साथ काव्य-रचना की है। इनके प्रवचन 'दिवाकर दिव्य ज्योति'[3] नाम से 21 भागो में प्रकाशित हुये है। इनके द्वारा सग्रहीत और अनुवादित 'निर्ग्रन्थ प्रवचन'[4] अत्यन्त लोकप्रिय ग्रथ हैं। इसमें जैनागमों के आधार पर जैन दर्शन और धर्म सबधी महत्वपूर्ण गाथाओ का संकलन किया गया है।

(27) चौथमल —

आचार्य जयमल्ल जी म की परम्परा से सबद्ध इन चौथमल जी का जन्म सवत् 1947 मे कुचेरा के पास फीरोजपुरा (मारवाड) गाव मे हुआ। इनके पिता का नाम हरचन्दराय और माता का कुवरादे जी था। इन्होंने सवत् 1959 में बैशाख कृष्णा सप्तमी को सेठा री रीया मे श्री नथमल जी म. से दीक्षा अगीकृत की। सवत् 2008 में इनका निधन हुआ। ये कई भाषाओ के ज्ञाता और राजस्थानी के आशु-कवि थे। अपनी परम्परा के आचार्यों और सन्तो की महत्वपूर्ण जीवन-घटनाओ को इन्होंने पद्यबद्ध किया जिनका ऐतिहासिक महत्व है। पूज्य गुणमाला[5] में इनकी ऐसी रचनायें सग्रहीत हैं। इन्होंने कई चरित काव्य भी लिखे हैं जिनका प्रकाशन 'व्याख्यान नव रत्नमाला' भाग 1, 2 में हुआ है।

---

1. स पं शोभाचन्द्र भारिल्ल, प्र. श्री जवाहर साहित्य समिति, भीनासर, (बीकानेर)।
2. प्रकाशक—श्री जैनोदय पुस्तक प्रकाशन समिति, रतलाम।
3. सं. प शोभाचन्द्र भारिल्ल, प्र. श्री दिवाकर दिव्य ज्योति कार्यालय, ब्यावर।
4. प्र. श्री दिवाकर दिव्य ज्योति कार्यालय, ब्यावर।
5. प्रकाशक—श्री मलगट परिवार मदारा (महाराष्ट्र)।

(28) मिश्रीमल:—

'मरुधर केसरी' नाम से प्रसिद्ध मुनि श्री मिश्रीमल जी म का जन्म स. 1955 मे श्रावण शुक्ला चतुर्दशी को पाली में हुआ। इनके पिता का नाम श्री शेषमल जी सोलकी तथा माता का केसर कुवर था। सवत् 1975 मे इन्होंने मुनि श्री वुधमल जी के पास दीक्षा अगीकृत की। इनका राजस्थानी और हिन्दी दोनो भाषाओ पर समान रूप से अधिकार है। अव तक ये 100 से भी अधिक ग्रथो का प्रणयन कर चुके हैं जिनमे विशालकाय 'पाडव यशोरासायन' (महाभारत) विशेष महत्वपूर्ण है। यह 309 ढालो मे विभक्त है। भजनो की सख्या तो हजारो तक पहुच चुकी है। 'मरुधर केसरी ग्रथावली'[1] भाग 1, 2 मे इनका प्रकाशन हुआ है। इनके काव्य मे एक ओर सत कवि का रूढ परम्पराओ के प्रति विद्रोह और भक्त कवि का अपने आराध्य के प्रति समर्पण भाव है, वही दूसरी ओर चमत्कार प्रिय कवि का वौद्धिक विलास और कथाकार का चरित्र-निरूपण भी है। इनकी सम्पूर्ण काव्य चेतना लोकजीवन से रस-ग्रहण करती है। 'मधुर दृष्टात मजूषा' इस दृष्टि से कवि के लोक अनुभवो का सचित कोष है।[2]

(व) श्रावक कवि.—

विनयचन्द.—

इनका जन्म जोधपुर-भोपालगढ के बीच एक छोटे से गाव देईकडा में हुआ। इनके पिता का नाम गोकुल चन्द कुभट था। ये आचार्य श्री हम्मीरमल जी के निष्ठावान श्रावक थे और प्रज्ञाचक्षु थे। इनकी 'विनयचन्द्र चौबीसी' अत्यन्त प्रसिद्ध रचना है जिसे कवि ने सवत् 1906 मे पूरी की थी। इनमें 24 तीर्थंकरो की स्तुति की गई है। इसीलिये इसे चौबीसी कहा गया है। भावो की सरसता, कमनीयता एव आध्यात्मिकता के कारण इनका एक-एक पद भक्तो को भाव-विह्वल एव आत्मविभोर वना देता है। आज भी भक्त लोग इनके पदो को सस्वर गाते हुये मुग्ध और तन्मय वन जाते हैं। आचार्य श्री जवाहरलाल जी म इनके पदो से ही प्रवचन प्रारम्भ किया करते थे। इनकी दूसरी प्रसिद्ध कृति 'आत्मनिन्दा'[3] है। यह रचना भी अत्यन्त प्रभावोत्पादक है। इसमे आत्मा की उसके किये हुये कलुषित कर्मों के लिये भर्त्सना की गई है। पूर्वकृत पापों को पश्चाताप की अग्नि से धो डालने का यह विधान साधक को आत्मोन्नति की ओर अग्रसर करता है। कवि ने हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन, परिग्रह आदि पापो की निन्दा करते हुये चेतन को आत्म-स्वभाव मे रमण करने की प्रेरणा दी है। तीसरी कृति 'पट्टावली' है जिसमें ऐतिहासिक दृष्टि से कवि ने भगवान महावीर से लेकर अपनी गुरु-परम्परा तक का उल्लेख किया है। इनकी एक अन्य रचना 'पूज्य हमीर चरित' भी है।

2. जेठमल:—

इनका जन्म जयपुर के प्रतिष्ठित जौहरी परिवार मे हुआ। इनके पिता का नाम भूधर जी चोरडिया और माता का लक्ष्मी देवी था। ये सहृदय और गायक कवि थे। इनकी 'जम्बू गुण रत्नमाला' प्रसिद्ध काव्य कृति है जिसकी रचना सवत् 1920 मे की गई। इस कृति का समाज में वडा प्रचार है। साधु लोग भी अपने व्याख्यानो में इसे गा-गा कर सुनाते है। विभिन्न

1. प्रकाशक—मरुधर केसरी साहित्य प्रकाशन समिति, जोधपुर-व्यावर।
2. विशेष के लिये देखिये 'मरुधर केसरी अभिनन्दन ग्रथ' में प्रकाशित डा नरेन्द्र भानावत का लेख 'मरुधर केसरी की काव्यकला', पृ 34-52।
3. प्रकाशक—सम्यग्ज्ञान प्रचारक मंडल, जयपुर।

गटकों में इनकी और भी कई फुटकर रचनायें मिलती हैं। इन्होंने कई उपदेशात्मक पद भी लिखे हैं जो वैराग्य भाव से परिपूर्ण है और उनमे प्रभाव डालने की क्षमता है। सभी सतो के प्रति इनके मन मे बडा आदर था। अत. जो भी गुणी सत जयपुर मे आते, उनके गुण-कीर्तन के रूप मे इनकी काव्य धारा फूट पड़ती। विभिन्न साधुओं पर लिखी गई ऐसी कई रचनायें प्राप्य हैं।[1]

(स) साध्वी कवयित्रियां.—

भारतीय धर्म परम्परा मे साधुओ की तरह साध्वियों का भी विशेष योगदान रहा है। ऐतिहासिक पम्परा के रूप मे हमे भगवान् महावीर के वाद के साधुओ की आचार्य-परम्परा का तो पता चलता है पर साध्वियो की परम्परा अन्धकाराच्छन्न है। भगवान् महावीर के समय मे 36,000 साध्वियों का नेतृत्व करने वाली चन्दनबाला उनकी प्रमुख शिष्या थी। महावीर से ही तत्व-चर्चा करने वाली जयन्ती का उल्लेख 'भगवती सूत्र' मे आया है। अत यह निश्चित है कि साधुओ और श्रावको के साथ-साथ साध्वियो और श्राविकाओ की भी अवच्छिन्न परम्परा रही है। इतिहासज्ञो एव साहित्यकर्मियो का यह महत्वपूर्ण दायित्व है कि वे इस परम्परा को खोजें। साधुओ की तरह साध्वियो का भी अन्य क्षेत्रो की तरह साहित्य के निर्माण और सरक्षण मे भी महत्वपूर्ण योग रहा है। 14वी शती से लेकर आज तक काव्य-रचना मे रत जिन साध्वियो का उल्लेख मिलता है, उनमें गुण समृद्धि महत्ता, विनयचूला, पद्मश्री, हेमश्री, हेमसिद्धि, विवेक-सिद्धि, विद्या सिद्धि आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।[2] यहा स्थानकवासी परम्परा से सबद्ध कतिपय साध्वी कवयित्रीयो का सक्षेप में परिचय दिया जा रहा है—

1. हरकू वाई—

आचार्य विनयचन्द्र ज्ञान भण्डार, जयपुर में पुष्ठा सं. 105 मे 88वी रचना मे 'महासती श्री अमरुजी का चरित्र' इनके द्वारा रचित मिलता है। इसकी रचना सवत् 1820 मे किशनगढ़ मे की गई है। इन्ही की एक अन्य रचना 'महासती चतरुजी सज्झाय' भी मिलती है, जिसका प्रकाशन श्री अगरचन्द जी नाहटा ने 'ऐतिहासिक काव्य सग्रह' में पृ स 214-15 पर किया है।

2. हुलासाजी—

आचार्य विनयचन्द्र ज्ञान भण्डार, जयपुर में पुष्ठा सं. 218 मे 50वी रचना 'क्षमा व तप ऊपर स्तवन' इनकी रचित मिलती है। इसकी रचना सवत् 1887 मे पाली मे हुई।

3 सरूपावाई—

ये पूज्य श्री श्रीमलजी म. सा से संवधित हैं। नाहटाजी ने 'ऐतिहासिक काव्य संग्रह' में पृ 156-58 पर इनकी एक रचना 'पू. श्रीमलजी की सज्झाय' प्रकाशित की है।

---

1. आ वि ज्ञा. भ में ये सुरक्षित हैं।

2. देखिये—डा. शान्ता भानावत का 'मुनिद्वय अभिनन्दन ग्रंथ' में प्रकाशित 'साध्वी परम्परा की जैन कवयित्रिया' शीर्षक लेख, पृ. 301-307।

4. जडावजी —

इनका जन्म सं. 1898 में सेठों की रीयां मे हुआ था। बाल्यावस्था मे ही इनका विवाह कर दिया गया। कुछ समय बाद ही इनके पति का देहान्त हो गया। परिणामस्वरूप इन्हे संसार के प्रति विरक्ति हो गई और 24 वर्ष की अवस्था मे स 1922 मे इन्होने आचार्य रत्नचन्द्र जी म. के सम्प्रदाय की प्रमुख शिष्या रम्भाजी के पास दीक्षा अंगीकृत करली। रभाजी की 16 विशिष्ट साध्विया थी जिनमे ये प्रधान थी। नेत्र ज्योति क्षीण-हो जाने से सवत् 1950 से अन्तिम समय तक ये जयपुर मे ही स्थिरवासी बन कर रही। सवत् 1972 मे ज्येष्ठ कृष्णा चतुर्दशी को इनका स्वर्गवास हुआ।

सती जडाव जी जैन कवयित्रियो मे नगीने की तरह जडी हुई प्रतीत होती हैं। यद्यपि ये अधिक पढी लिखी नही थी पर कविता करना इनकी जीवनचर्या का एक अग बन गया था। 50 वर्ष के सुदीर्घ साधना काल मे इन्होने जीवन के विविध अनुभव आत्मसात् कर काव्य मे उतारे। इनका जीवन जितना साधनामय था काव्य उतना ही भावनामय। इनकी रचनाओ का एक सकलन "जैन स्तवनाकली" नाम से जयपुर से प्रकाशित हुआ है। प्रवृत्तियों के आधार पर इनकी रचनाओ को चार वर्गों मे बांट सकते हैं—स्तवनात्मक, कथात्मक, उपदेशात्मक और तात्विक। सुमति-कुमति को चौढालियो, अनाथी मुनि रो सतढालियो, जम्बू स्वामी को सतढालियो, इनकी कथात्मक रचनाये है। सरल बोलचाल की राजस्थानी मे विविध राग-रागिनियों मे हृदय की उमडती भावधारा को व्यक्त करने मे ये वडी कुशल है। लोक व्यवहार और प्राकृतिक वातावरण की भावभूमि पर लम्बे-लम्बे सागरूपक बाधने मे इन्हे विशेष सफलता मिली है।[1]

5 पार्वता जी —

ये पूज्य श्री अमरसिंह जी म की परम्परा से सबद्ध है। इनका जन्म आगरा के निकट खेडा भाउपुरी गाव मे सवत् 1911 मे हुआ। इनके पिता का नाम श्री वलदेव सिंह जी चौहान व माता का धनवती था। सवत् 1924 मे श्री कवरसेन जी महाराज के प्रतिवोध से इन्होने साध्वी हीरादेवी जी के पास दीक्षा गहण की। ये तपस्विनी सयम-साधिका, प्रभावशाली व्याख्याता और कवित्वशक्ति की धनी थीं। 'जैन गुर्जर कवियो' भाग 3 खण्ड 1 पृ 389 पर इनकी चार रचनाओ का उल्लेख है—वृत्त मडली (स 1940), (2) अजितसेन कुमार ढाल (सं 1940), (3) सुमति चरित्र (स 1961), (4) अरिदमन चौपई (स 1961)। इनकी कई गद्य कृतिया भी प्रकाशित हैं।[2]

6 भूरसुन्दरी —

इनका जन्म सवत् 1914 मे नागौर के समीप वुसेरी नामक गाव मे हुआ। इनके पिता का नाम अखयचन्द जी राका और माता का रामबाई था। अपनी वुआ से प्रेरणा पाकर 11 वर्ष की अवस्था मे साध्वी चम्पाजी से इन्होंने दीक्षा ग्रहण की। पद्य और गद्य दोनो पर इन का समान अधिकार था। इनकी रचनायें मुख्यत स्तवनात्मक और उपदेशात्मक है। इन्होने कई सुन्दर पहेलियां भी लिखी हैं। बीकानेर से इनके निम्नलिखित 6 ग्रथ प्रकाशित हुये है।

---

1 इस सबंध में 'महावीर जयन्ती स्मारिका' अप्रेल 1964 मे प्रकाशित—डा नरेन्द्र भानावत का 'जडावजी की काव्यसाधना' लेख द्रष्टव्य है।

2. विस्तृत जानकारी के लिये देखिये—'साधनापथ की अमर साधिका' ग्रंथ, लेखिका-साध्वी श्री सरला जी।

भूर सुन्दरी जैन भजनोद्धार (सं. 1980),(2) भूर सुन्दरी विवेक विलास (स. 1984),(3) भूर सुन्दरी बोध विनोद (सं. 1984), (4) भूर सुन्दरी अध्यात्म बोध (स. 1985),(5) भूर सुन्दरी ज्ञान प्रकाश (सं. 1986), (6) भूर सुन्दरी विद्याविलास (स 1986)।

7. रत्नकुंवर—

आचार्य श्री आनन्द ऋषि जी महाराज की आज्ञानुवर्ती प्रवर्तिनी श्री रत्नकुंवरजी शास्त्र पंडिता और तपस्विनी साध्वी है। काव्य क्षेत्र मे इनकी अच्छी गति है। स्तवनो और उपदेशो का एक सग्रह 'रत्नावली' नाम से प्रकाशित हुआ है। 51 ढालो मे निवद्ध इनकी एक अन्य रचना 'श्री रत्नचूड़, मणिचूड चरित्र' भी प्रकाशित हुई है। भीलवाडा से एक आख्यानक काव्य 'सती चन्द्रलेखा' स. 2004 मे प्रकाशित हुआ।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर स्थानकवासी परम्परा के कवियो की काव्य-साधना की मुख्य विशेपताओं को सक्षेप मे इस प्रकार रखा जा सकता है—

(1) ये कवि प्रमुख रूप से साधक और शास्त्रज्ञ रहे है। कवित्व इनके लिये गौण रहा है। प्रतिदिन जनमानस को प्रतिवोधित करना इनके कार्यक्रम का मुख्य अग होने से अपने उपदेश को वोधगम्य और जनसुलभ वनाने की दृष्टि से ये समय-समय पर स्तवन, भजन, कथाकाव्य आदि की रचना करते रहे हैं।

(2) इस परम्परा मे वत्तीस आगमों की मान्यता होने से इनके काव्य का मूल-प्रेरणा-स्रोत आगम साहित्य और इससे सवद्ध कथा साहित्य रहा है। सुविधा की दृष्टि से इनके काव्य के चार वर्ग किये जा सकते हैं—चरितकाव्य, उत्सव काव्य, नीति काव्य और स्तुति काव्य। चरित काव्य मे सामान्यत तीर्थंकरो, गणधरो, महान् आचार्यों, निष्ठावान श्रावको, सतियो आदि की कथा कही गई है। 'रामायण' और 'महाभारत' को अपने ढग से ढालो मे निवद्ध कर उनके आदर्शों का व्यापक प्रचार प्रसार करने में ये वडे सफल रहे हैं। ये काव्य रस, चौपाई ढाल, सज्झाय, संधि, प्रवन्ध, चौढालिया, पचढालिया, पट्ढालिया, सप्तढालिया, चरित, कथा आदि रूपों में लिखे गये हैं। उत्सव काव्य विभिन्न आध्यात्मिक पर्वों और ऋतु विशेष के वदलते हुये वातावरण को माध्यम वना कर लिखे गये है। इनमे सामान्यत लौकिक रीति-नीति को माग-रूपक के माध्यम से लोकोत्तर रूप मे ढाला जा रहा है। नीति काव्य जीवनोपयोगी, उपदेशो, तथा तात्विक सिद्धातो से सवधित हैं। इनमे सदाचार पालन, कपायत्याग, सप्तव्यसन-त्याग ब्रह्मचर्य, व्रत-प्रत्याख्यान, वारह भावना, ज्ञान दर्शन, चारित्र, तप, दया, दान, सयम, आदि का माहात्म्य तथा प्रभाव वर्णित है। स्तुति काव्य चौबीस तीर्थंकरो, वीस विहरमानो और महान् आचार्यों तथा मुनियो से सवधित हैं।

(3) इन विभिन्न काव्यो का महत्व दो दृष्टियो से विशेप है। साहित्यिक दृष्टि से इन कवियों ने महाकाव्य और खण्ड काव्यो के बीच काव्य-रूपो के कई नये स्तर कायम किये और उनमे लोक सगीत का विशेष सौन्दर्य भरा। वर्ण्य-विषय की दृष्टि से अधिकांश चरित काव्यों मे कथा की कोई नवीनता या मौलिकता नही है। पिष्टपेषण मात्र सा लगता है। एक ही चरित्र को विभिन्न रूपो में वार-वार गाया गया है। पर इन कथाओ के माध्यम से क्षेत्रीय लोकजीवन और लोक सस्कृति का जो चित्र अकित किया गया है, वह सास्कृतिक दृष्टि से वडे महत्व का है। आगमिक कथाओ के अतिरिक्त अपनी परम्परा से सवद्ध जिन महान् आचार्यों मुनियो और साध्वियो पर जो सज्झाय, स्तवन और ढालें लिखी गई हैं, उनमे ऐतिहासिक शोध की पर्याप्त सामग्री है।

(4) यह परम्परा मूल रूप से धार्मिक क्रांति और सामाजिक जागरण से जुडी हुई है। इस कारण इन कवियो में धर्म के क्षेत्र में व्याप्त आडम्बर, बाह्याचार, रूढिवादिता और जड़ता के प्रति स्वाभाविक रूप से विद्रोह की भावना रही है। इन्होने सदैव निर्मल सयम-साधना, आतरिक पवित्रता और साध्वाचार की कठोर मर्यादा पर बल दिया है।

(5) इस परम्परा के कवियो का विहार क्षेत्र मुख्यत राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र और पजाब रहा है। जन्मना, राजस्थानी होकर भी अपने साधनाकाल में ये विभिन्न क्षेत्रो मे पद विहार करते रहे है। इस कारण इनकी भाषा मे स्वाभाविक रूप से अन्य प्रातो के देशज शब्दो का समावेश हो गया है। भाषा के क्षेत्र मे इन कवियो का दृष्टिकोण बडा उदार और लचीला रहा है। इन्होने सदैव तत्सम प्रयोगो के स्थान पर तद्भव प्रयोगो को विशेष महत्व दिया है। भाषा की रूढिबद्धता से ये सदैव दूर रहे है। यही कारण है कि इनके काव्यो में भले ही रीतिकालीन कवियो सा चमत्कार-प्रदर्शन और कलात्मक सौन्दर्य न मिले पर भाषा विज्ञान की दृष्टि से इनके अध्ययन का विशेष महत्व है। अलकारो के प्रयोग मे ये बडे सजग रहे है। उपमानो के चयन मे इनकी दृष्टि शास्त्रीयता की अपेक्षा लोकजीवन पर अधिक टिकी है। लम्बे-लम्बे सागरूपक बाधने मे ये विशेष दक्ष प्रतीत होते है।

(6) छन्द के क्षेत्र मे इनका विशेष योगदान है। जहा एक ओर इन्होने प्रचलित मात्रिक और वर्णिक छन्दो का सफलतापूर्वक निर्वाह किया है, वहा दूसरी ओर विभिन्न छन्दो को मिलाकर कई नये छन्दो की सृजना की है। ये कवि अपने काव्य का सृजन मुख्यत जनमानस को प्रतिबोधित करने के उद्देश्य से किया करते थे, अत समय-समय पर प्रचलित लोक धुनो और लोक प्रिय तर्जों को अपनाना ये कभी नही भूले। जहा वैराग्य प्रधान कवित्त और सवैये लिख कर इन्होने मा भारती का भडार भरा, वहा ख्यालो में प्रचलित तोडे भी इनकी पहुच से नही बचे। गज़ल और फिल्मी धुन के प्रयोग भी आध्यात्मक के क्षेत्र में ये बडी कुशलता से कर सके है। चित्रकाव्यात्मक छन्दबद्ध रचना मे तिलोक ऋषि और अमी ऋषि का योगदान विस्मृत नही किया जा सकता है।

(7) काव्य-निर्माण के साथ-साथ प्रति-लेखन और साहित्य-सरक्षण में भी इन कवियो की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। कई मुनियो और साध्वियो ने अपने जीवन मे सैकडो मूल्यवान और दुर्लभ ग्रथों का प्रतिलेखन कर, उन्हे कालकवलित होने से बचाया है। साहित्य के सरक्षण और प्रतिलेखन में इन्होंने कभी भी साम्प्रदायिक दृष्टि को महत्व नहीं दिया। जो भी इन्हे ज्ञान-वर्द्धक, जनहितकारी और साहित्यिक तथा ऐतिहासिक दृष्टि से मूल्यवान लगा, फिर चाहे वह जैन हो या जैनेतर, उसका सग्रह-सरक्षण अवश्य किया। राष्ट्रीय एकता एव सास्कृतिक दाय की दृष्टि से इनका योगदान अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

राजस्थानी पद्य साहित्यकार 4.

—साध्वी कनकश्री

—0 . 0—

सत्य एक है, अखण्ड है और शाश्वत है। लेकिन उसकी अभिव्यक्ति के स्रोत, साधन और परिवेश भिन्न-भिन्न होते है। यह विविधता साहित्यकार के विश्वजनीन व्यक्तित्व को भी सीमाओ, रेखाओ और नाना वर्गों मे विभक्त कर देती है। साहित्य की मूल प्रेरणा है आन्तरिक सघर्ष और अपनी अनुभूतियो को जन-सामान्य की अनुभूतियो मे भिगो देने की एक तीव्रतम उत्कठा। फिर भी प्रत्येक साहित्यकार की यह मजबूरी होती है कि वह अपने कथ्य को अपने परिवेश के आवेष्टनो से आवेष्टित करके ही विश्व के सामने प्रस्तुत करता है और विश्व-चेतना उसे साम्प्रदायिकता की दृष्टि से देखने लगती है।

इस दृष्टि से देखे तो सभी जैन सम्प्रदायो के यशस्वी विद्वानो ने राजस्थानी भाषा का समादर किया है और समय-समय पर उसके साहित्य भण्डार को बहुमूल्य ग्रन्थरत्नो का अर्घ्य चढाया है। इस क्रम मे तेरापथ सघ की साहित्य-परम्परा ने भी अपने युग का सफल प्रतिनिधित्व किया है। तेरापथ के आद्य प्रणेता आचार्य श्री भिक्षु से लेकर युगप्रधान आचार्य श्री तुलसी द्वारा प्रवाहित स्रोतस्विनी की एक-एक धारा इस तथ्य को उजागर करती हुई आगे बढ रही है। तेरापथ सघ के अनेक-अनेक मनिषियो ने राजस्थानी साहित्य को समृद्ध बनाने में अपना महत्वपूर्ण योग दिया है।

प्रस्तुत है उनमे से कुछ चुने हुए साहित्यकारो का परिचय और उनकी पद्यबद्ध कृतियो की सक्षिप्त समीक्षा।

आचार्य श्री भिक्षु और उनकी साहित्य सेवा·—

आचार्य श्री भिक्षु तेरापथ धर्म-सघ के प्रवर्तक थे पर अपने स्वतन्त्र दर्शन और मौलिक चिन्तन के आधार पर युग-चेतना ने उन्हें युगप्रवर्तक और क्रान्त-द्रष्टा के रूप मे सहज स्वीकृति दी है।

आचार्य श्री भिक्षु की काव्य प्रतिभा नैसर्गिक थी। उन्होंने गद्य और पद्य दोनो ही विधाओ में अपनी अनुभूतियो को गूथा है। वह समग्र साहित्य 38,000 श्लोक परिमित हो जाता है।

उनकी पद्यमय कृतिया 'भिक्षु ग्रन्थ रत्नाकर' नामक ग्रन्थ में सकलित हैं। उसके दो खण्ड हैं। पहले खण्ड के 938 पृष्ठो में उनकी छोटी-बडी 34 कृतिया प्रकाशित है और दूसरे खण्ड के 712 पृष्ठो मे 21 कृतिया।

उनकी रचनाओ में सहज सौन्दर्य है, माधुर्य है, ओज है और है अद्भुत फक्कडपन के साथ पूर्ण अनाग्रहवृत्ति, ऋजु दृष्टिकोण, वीतराग प्रभु के प्रति अगाध आस्था, आगम वाणी के प्रति सम्पूर्ण समर्पण भाव और आन्तरिक विनम्रता की सुस्पष्ट झलक है।

उनकी तात्त्विक और दार्शनिक कृतियो मे, एक गहनतम कृति है 'नव पदार्थ सद्भाव'। यह एक उच्चकोटि का दार्शनिक ग्रथ है। जैन दर्शन सम्मत नौ तत्वो का सूक्ष्म प्रतिपादन जिस समग्रता और सहजता से इसमे हुआ है, वह अन्यत्र दुर्लभ है।

श्री मज्जाचार्य और उनकी विशाल साहित्य राशि.—

आचार्य श्री भिक्षु से लगभग एक शताब्दी पश्चात् आये, तेरापथ के चतुर्थ आचार्य श्री जीतमलजी स्वामी, जिन्हे हम जयाचार्य की अभिधा से अभिहित करते है। वे महान् साहित्कार थे। श्रुत समुपासना मे एकार्णवीभूत होकर उन्होने जो पाया और युग को दिया वह आज भी उनकी प्रचुर साहित्य राशि में सुरक्षित है।

अद्वितीय टीकाकार—

जयाचार्य की प्रतिभा चमत्कारी थी। उनकी साहित्यिक प्रतिभा बचपन मे ही परिस्फुट थी। ग्यारह वर्ष की किशोरावस्था में 'सन्तगुणमाला' नामक कृति की सरचना कर उन्होंने समूचे सघ को चौंका दिया था। यौवन की दहलीज पर पाव धरते ही मानो उनका कवि एक साथ अगडाई लेकर जाग उठा और मात्र 18 वर्ष की वय मे उन्होने 'पन्नवणा' जैसे गहनतम जैन आगम पर, राजस्थानी भाषा मे पद्यबद्ध टीका लिख डाली। उसके बाद तो उनकी साहित्य स्रोतस्विनी इतनी तीव्र गति से बही कि थामे भी नही थमी। अपने जीवन काल मे साढे तीन लाख पद्य प्रमाण ग्रन्थ रचना कर मानो उन्होने राजस्थानी साहित्य की दिशा मे नये युग का सूत्रपात कर दिया।

'भगवती की जोड' आपकी अद्वितीय कृति है। यह है वृहत्तम जैन आगम भगवती की पद्यवद्ध राजस्थानी टीका। 80,000 पद्य परिमित यह अनुपम कृति अपनी दुरूहता की स्वयभूत प्रमाण है। सरस राग-रागिनियो में सदृब्ध यह टीका साहित्य-जगत् की अमूल्य धरोहर है।

इसके अतिरिक्त निशीथ, आचाराग और उत्तराध्ययन की पद्यवद्ध टीकायें लिखकर उन्होंने न केवल नई साहित्यिक विधा को जन्म दिया, बल्कि उसे सर्वजनीन बनाने मे भी वे सफल सिद्ध हुये हैं।

जयाचार्य पहले व्यक्ति थे, जिन्होंने जैन आगमों की पद्यमय टीकायें लिखकर राजस्थानी साहित्य का गौरवान्वित किया। उन टीकाओ के माध्यम से उन्होंने गूढतम सैद्धातिक प्रश्नों को समाहित किया और चिन्तन के नये आयाम उद्घाटित किये। टीकाओ की भाषा सरस, सरल और प्रवाहपूर्ण है। उनकी लेखनी की क्षमता अद्भुत थी। एक दिन में तीन-तीन सौ पद्यो का निर्माण कर लेना उनके लिये कोई कठिन नही था। तभी तो वे 'भगवती की जोड' जैसे महाग्रथ को पाच वर्षों का स्वल्प अवधि में तैयार कर सके।

भक्त कवि.—

जयाचार्य एक उच्चकोटि के भक्त कवि थे। भक्ति रस से ओतप्रोत उनकी अनेक रचनाए जब लोक-गीतो के रूप में जन-जन के मुह पर थिरकती हैं तो व्यक्ति की अध्यात्म चेतना जागृत हो उठती है। 'चौवीसी' (चौवीस तीर्थकरो की स्तुति) आपकी ऐसी ही भक्ति प्रधान जनप्रिय कृति है। एक अध्यात्म कृति होते हुये भी उसका साहित्यिक रूप भी कम निखरा हुआ नही है।

उन्होंने तात्विक और दार्शनिक विषयो मे स्वतन्त्र रूप से भी बहुत कुछ लिखा है। जिनमें 'झीणी चरचा, झीणो ज्ञान, प्रश्नोत्तर तत्व बोध और जिनाज्ञा को चौढालियो' प्रमुख है। चरित्र प्रबन्धो में 'भिक्षु जस रसायण, हेमन बरसो, सरदार सुजस, महिपाल चरित्र' प्रमुख है। इस प्रकार हम देखते हैं कि जयाचार्य की नाना विधाओ मे विनिर्मित साहित्य राशि अपनी मौलिकता की प्रस्तुति के साथ-साथ शोध विद्वानो के लिये प्रचुर सामग्री प्रस्तुत कर रही है। उनकी अमर कृतिया राजस्थानी साहित्य की अप्रतिम उपलब्धि है।

युग प्रधान आचार्य श्री तुलसी और उनकी काव्य-कृतिया —

युग प्रधान आचार्यश्री तुलसी तेरापथ सघ के नौवें अधिशास्ता और जैन परम्परा के महान् वर्चस्वी युगप्रभावक आचार्य हैं। आप ग्यारह वर्ष की वय में मुनि बने, बाईस वर्ष की अवस्था मे तेरापथ के आचार्य बने। पैंतीस वर्ष की वय में अणुव्रत अनुशास्ता बने और एक महान् नैतिक क्राति के सूत्रधार बनकर अन्तर्राष्ट्रीय क्षितिज पर एक महान् शक्ति के रूप मे उभर आए।

आचार्यश्री की साहित्यिक प्रतिभा अनेक-अनेक धाराओ मे बही है और दर्शन, न्याय, सिद्धात, काव्य आदि साहित्य की नाना विधाओ में परिस्फुटित हुई है। आपने जहा हिन्दी और सस्कृत को अपनी अमूल्य काव्य-कृतिया और ग्रन्थ-रत्न समर्पित किए हैं वहा अपनी मातृ-भाषा के चरणो मे भी अनर्घ्य मणियो का अर्घ्य चढाया है। उन्होंने राजस्थानी भाषा मे बहुत कुछ लिखा है, जिसमे उल्लेखनीय है—'श्री कालू उपदेश वाटिका, श्री कालू यशोविलास, माणक महिमा, डालिम चरित्र, मगन चरित्र' आदि कृतिया।

कालू उपदेश वाटिका —

आचार्यश्री के भावप्रवण औपदेशिक गीतो एव भजनो का उत्कृष्ट कोटि का सकलन है यह, इन गीतो में मीरा की भक्ति और कबीर का फक्कडपन दोनो ही प्रखरता लिये हुये है।

श्री कालू यशोविलास —

आचार्यश्री की अप्रतिम काव्य कृति है—श्री कालू यशोविलास। राजस्थानी भाषा मे संदृब्ध यह कृति काव्य परम्परा की बेजोड कड़ी है। भाषा की सस्कृत निष्ठता ने राजस्थानी भाषा के गौरव को कम नही होने दिया है, प्रत्युत उसकी सजीवता और समृद्धि का सवर्द्धन ही किया है।

माणक महिमा —

माणक महिमा आचार्यश्री की राजस्थानी भाषा मे ग्रथित दूसरी काव्य कृति है। इसमे तेरापथ के छठे आचार्यश्री माणक गणी की जीवन-गाथा गुम्फित है। इसमे तेरापथ सघ की गौरवशाली परम्परा, इतिहास और तत्कालीन परिस्थितियो को जिस पटुता से गूथा गया है वह कवि की व्यजना शक्ति, भाव प्रवणता और अतीत को वर्तमान से सम्पृक्त कर देन की अद्भुत क्षमता का परिचायक है।

प्रस्तुत कृति में प्राकृतिकता चित्रण और काल्पनिक की अपेक्षा कवि ने मानवीय भावो के आकलन मे अधिक सफलता पाई है। कवित्व की दृष्टि से अनेक स्थल बडे ही चमत्कारी

और कलापूर्ण बन पडे हैं। कही-कही अनुभूतियो की तीव्रता और कविता में उतर आई कवि की संवेदनशीलता हृदय को झकझोर देती है।

डालिम चरित्र —

इस प्रवन्ध काव्य मे तेरापथ के सप्तम आचार्यश्री डालगणी के गरिमामय व्यक्तित्व की विस्तृत झाकी प्रस्तुत की है आचार्यश्री तुलसी ने सरल भाषा और आकर्षक शैली मे। काव्य-नायक का व्यक्तित्व स्वत. स्फूर्त था और नेतृत्व सक्षम। उनकी वरिष्ठता का प्रमाण है, संघ के द्वारा आचार्य पद के लिये उनका निर्विरोध चुनाव।

आचार्य चरितावली की पूरक कडिया —

तेरापन्थ के पाच पूर्वाचार्यो का यशस्वी जीवन चरित्र 'आचार्य चरितावली' नामक ग्रन्थ के दो खण्डो मे प्रकाशित है जो तेरापन्थ की सन्त परम्परा के विभिन्न कवियो द्वारा अपनी-अपनी शैली और अपने-अपने ढग से प्रणीत है। इन कृतियो का भी राजस्थानी पद्य-साहित्य परम्परा मे गौरवपूर्ण स्थान है। अपने पूर्वाचार्यो का प्रामाणिक जीवन वृत्त लिखकर तेरापन्थ सघ ने साहित्य-जगत् को अपनी मौलिक देन दी है। पश्चातवर्ती तीन आचार्यों के जीवन-वृत्त अलिखित थे, आचार्यश्री की चमत्कारी काव्य प्रतिभा का योग मिला, उस कमी की पूर्ति हुई। 'माणक महिमा, डालम चरित्र और कालू यशोविलास' ये तीनो काव्य कृतिया आचार्य चरितावली की अधूरी शृखला की पूरक कडिया बन गई है।

मगन चरित्र —

मगन चरित्र आचार्यश्री तुलसी का राजस्थानी गेय काव्य है, जिसमे एक ऐसे महामना व्यक्ति की जीवन-गाथा कविता के कमनीय स्वरो में मुखर हुई है, जिसने तेरापन्थ के पाच-पाच आचार्यो के विभिन्न युगो मे अपनी महत्वपूर्ण भूमिका निभाई थी और आचार्यश्री ने उनकी विरलताओ का मूल्याकन कर उन्हे मन्त्री पद से समलकृत किया था। वे थे शासन-स्तम्भ मुनि श्री मगनलाल जी स्वामी जिनकी विभिन्न भूमिकाओ का सक्षिप्त चित्र प्रस्तुत है कवि के शब्दो में—

मघवा मान्यो, माणक जान्यो, सम्मान्यो गणि डाल।
कालू अपनो अग पिछाण्यो, तुलसी मानी ढाल॥

तेरापन्थ के साधु-साध्वियो ने भी राजस्थानी भाषा मे बहुत कुछ लिखा है। उनका गीति साहित्य और आख्यान साहित्य राजस्थान के पद्यात्मक वाङ्मय में अपना विशिष्ट स्थान रखता है और लोक-जीवन को प्रभावित करने मे वह काफी सफल रहा है।

राजस्थानी पद्य साहित्यकार 5

—डा. कस्तूरचन्द कासलीवाल

(1) भट्टारक सकलकीर्ति (सवत् 1443-1499)

भट्टारक सकलकीर्ति सस्कृत के समान ही राजस्थानी भाषा के भी जबरदस्त विद्वान थे। इसलिये जहा उन्होने एक ओर सस्कृत भाषा मे 28 से भी अधिक कृतिया निबद्ध की वहा राजस्थानी मे भी सात रचनाये छन्दोबद्ध करके राजस्थानी के प्रचार-प्रसार मे महत्वपूर्ण योग दिया है। ये 15वी शताब्दी के विद्वान् थे तथा इनका मुख्य केन्द्र मेवाड, बागड एव राजस्थान मे मिलने वाले गुजरात के नगर एव गाव थे। इनकी राजस्थानी रचनाओ के नाम निम्न प्रकार हैं —

आराधना प्रतिबोध सार
नेमीश्वर गीत
मुक्तावलि गीत
णमोकार फल गीत
सोलहकारण रास
सार सीखामणि रास
शान्तिनाथ फागु

ये सभी कृतिया भाषा साहित्य के अध्ययन की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। णमोकार फल गीत में 15 पद्य हैं जिनमे णमोकार मन्त्र का महात्म्य एव उनके फल का वर्णन है। आराधना प्रतिबोध सार मे 55 पद्य हैं जिनमे विविध विषयो का वर्णन मिलता है। इसी तरह सार सीखामणि रास शिक्षाप्रद रचना है। इसमे 4 ढालें और तीन वस्तुबध छन्द है। मुक्तावली गीत, सोलहकारण रास एव शान्तिनाथ फागु भी लघु रचनाये अवश्य है किन्तु राजस्थानी भाषा एव शैली की दृष्टि से अवश्य महत्वपूर्ण है। नेमीश्वरगीत एव मुक्तावली गीत उनकी सगीत प्रधान रचनाये है।

(2) ब्रह्म जिनदास —

ब्रह्म जिनदास भट्टारक सकलकीर्ति के प्रमुख शिष्य थे। इसलिये ये योग्य गुरु के योग्यतम शिष्य थे। साहित्य सेवा ही इनके जीवन का एक मात्र उद्देश्य था। यद्यपि इनका सस्कृत एव राजस्थानी दोनो भाषाओ पर समान अधिकार था लेकिन राजस्थानी से उन्हें विशेष अनुराग था इसलिये 50 से भी अधिक रचनाये इन्होने इसी भाषा मे लिखी। राजस्थानी भाषा के ब्रह्म जिनदास सभवत प्रथम महाकवि हैं जिन्होने इतनी अधिक सख्या मे काव्य रचना की हो। अपने जीवन काल मे और उसके सैकडो वर्षो बाद तक राजस्थानी भाषा को प्रश्रय देना इनकी बहुत बडी सेवा मानी जानी चाहिये।

ब्रह्म जिनदास के जन्म, जन्म-तिथि, जन्म-स्थान आदि के बारे मे तो निश्चित जानकारी नही मिलती। यह अवश्य है कि ये भ सकलकीर्ति के शिष्य थे साथ ही लघु भ्राता भी थे। इसलिये भ सकलकीर्ति का उन पर सबसे अधिक अनुराग रहा होगा। इन्होने सबसे अधिक रास सज्ञक काव्य लिखे जिससे पता चलता है कि वे काव्य की इस विधा को सबसे अधिक मान्यता देने वाले महाकवि थे। रामरास को इन्होने सवत् 1508 मे तथा हरिवश पुराण को सवत् 1520 मे निबद्ध किया था। शेष रचनाओ मे इन्होने इनकी समाप्ति का कोई समय नही दिया। इन महाकवि की रचनाओ को हम चार भागो मे विभक्त कर सकते हैं —

(1) पुराण साहित्य :—

- आदिनाथ पुराण
- हरिवंश पुराण

(2) रासक साहित्य :—

- राम सीता रास
- नागकुमार रास
- होली रास
- श्रेणिक रास
- अम्बिका रास
- जम्बूस्वामी रास
- सुकोशलस्वामी रास
- दश लक्षण रास
- धन्यकुमार रास
- धनपाल रास
- नेमीश्वर रास
- अठावीस मूलगुण रास
- यशोधर रास
- परमहस रास
- धर्मपरीक्षा रास
- सम्यक मिथ्यात्व रास
- नागश्री रास
- भद्रबाहु रास
- रोहिणी रास
- अनन्तव्रत रास
- चारुदत्त प्रबन्ध रास
- भविष्यदत्त रास
- करकण्डु रास
- हनुमत रास
- अजितनाथ रास
- ज्येष्ठ जिनवर रास
- सुदर्शन रास
- श्रीपाल रास
- कर्मविपक रास
- सोलहकारण रास
- बकचूल रास
- पुष्पाजलि रास
- जीवन्धर रास
- सुभौमचक्रवर्ति रास

(3) गीत एव स्तवन —

- मिथ्या-दुकड विनती
- आलोचना जयमाल
- जिणदगीत
- आदिनाथ स्तवन
- जीवडा गीत
- बारहव्रत गीत
- स्फुट वीनती, गीत आदि

(4) कथा साहित्य —

- रविव्रत कथा
- चौरासी जाति जयमाल
- अष्टाग सम्यक्त्व कथा
- भट्टारक विद्याधरकथा
- व्रत कथा कोष
- पञ्च परमेष्ठि गुणवर्णन

पूजा साहित्य —

- गुरु जयमाल
- जम्बूद्वीप पूजा
- गुरु पूजा
- सरस्वती पूजा
- शास्त्र पूजा
- निर्दोष सप्तमी व्रत पूजा

भाषा —

कवि के मुख्य क्षेत्र की भाषा गुजराती होने के कारण इनकी सभी रचनाओ पर गुजराती का स्पष्ट प्रभाव है। इसलिये कही-कही तो ऐसा लगने लगता है जैसे मानो वह गुजराती की ही रचना हो। ब्रह्म जिनदास ने अपने गुरु भ सकलकीर्ति का प्रत्येक रचना मे उल्लेख ही नही किया किन्तु श्रद्धा के साथ उनको वन्दना भी की है।

ब्रह्म जिनदास की कृतियो मे काव्य के विविध लक्षणो का समावेश है। यद्यपि प्राय सभी काव्य शान्त-रस पर्यवसायी हैं लेकिन वीर, शृगार, हास्य आदि रसो का भी यत्र-तत्र प्रयोग

हुआ है। कवि मे अपने मन्तव्य को आकर्षक रीति से कहने की क्षमता है। कवि के काव्य सदा ही लोकप्रिय रहे हैं। आज भी राजस्थान के पचासो शास्त्र भण्डार इनकी कृतियो से समलंकृत हैं।

(3) पद्मनाभ :—

ये राजस्थानी विद्वान थे और चित्तौड इनका निवास स्थान था। अभी तक इनकी एक रचना बावनी उपलब्ध हुई है जिसे इन्होने सघपति डूगर के आग्रह से लिखी थी। बावनी का रचना काल सन् 1486 है। इसमे सभी 54 छन्द छप्पय छन्द हैं। राजस्थानी भाषा एव शैली की दृष्टि से यह एक उच्चस्तरीय रचना है। इसका दूसरा नाम 'डूगर की बावनी' भी है क्योकि बावनी के प्रत्येक छन्द मे सघपति डूगर को सबोधित किया गया है।

(4) ठक्कुरसी :—

कविवर ठक्कुरसी राजस्थानी के अच्छे विद्वान थे। इनकी लिखी हुई अब तक 5 रचनायें उपलब्ध हो चुकी हैं जिनके नाम है —पार्श्वनाथ सत्तावीसी, शील बत्तीसी, पचेन्द्रिय बेलि, कृपण चरित्र एव नेमि राजमति वेलि। प्रथम रचना सवत् 1578 मे तथा दूसरी एव तीसरी रचना सवत् 1585 मे समाप्त हुई थी। यद्यपि ये सभी लघु रचनायें हैं लेकिन भाषा एवं वर्णन शैली की दृष्टि से ये उच्चकोटि की कृतिया हैं। कविवर ठक्कुरसी अपनी रचनाओ के कारण राजस्थान मे काफी लोकप्रिय रहे। भण्डारो मे पंचेन्द्रिय वेलि, कृपण चरित्र जैसी रचनाए अच्छी सख्या मे उपलब्ध होती हैं।

इनके पिता का नाम घेल्ह अथवा थेल्ह था। ये राजस्थान के किस प्रदेश मे निवास करते थे इसके बारे मे इनकी रचनायें मौन है।

(5) छीहल —

राजस्थानी कवियो मे छीहल का नाम विशेषत उल्लेखनीय है। राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो मे इनकी प्रमुख रचना बावनी पर्याप्त सख्या मे उपलब्ध है। ये अग्रवाल जैन थे और इनके पिता का नाम नाथू था। अब तक इनकी पाच कृतिया उपलब्ध हो चुकी हैं जिनके नाम निम्न प्रकार हैं —

पच सहेली गीत	पथी गीत	बावनी
उदरगीत	वेलि	गीत (रे जीव-जगत सुपणो जाणि)

आचार्य रामचन्द्र शुक्ल एव डा रामकुमार वर्मा ने भी अपने हिन्दी साहित्य के इतिहास मे कवि के पच पहेली गीत का उल्लेख किया है।

उक्त रचनाओ मे पथी गीत एव पच पहेली गीत का रचनाकाल सवत् 1575 तथा बावनी का सवत् 1584 है। बावनी कवि की सबसे बडी रचना है जो एक से अधिक विषयो के वर्णन से युक्त है। जिसमे ससार की दशा, नारी चरित्र आदि विषय प्रमुख हैं। बावनी के प्रत्येक छद में कवि ने अपने नाम का उल्लेख किया है। कवि की शेष सभी रचनायें गीतो के रूप मे है जिससे पता चलता है कि तत्कालीन जन साधारण को हिन्दी भाषा की ओर आकृष्ट

करने के लिए गीतात्मक शैली अपनायी है। कवि ने प्रत्येक विषय का सूक्ष्म वर्णन किया है भाषा एव शैली की दृष्टि से सभी रचनाये ठीक है।

(6) आचार्य सोमकीर्ति :—

आचार्य सोमकीर्ति 15वी शताब्दी के उद्भट विद्वान् प्रमुख साहित्य सेवी एवं उत्कृष्ट जैन संत थे। वे स्वाध्याय करते, साहित्य सृजन करते और लोगो को उसकी महत्ता बतलाते। वे सस्कृत, प्राकृत, राजस्थानी एव गुजराती भाषा के प्रसिद्ध विद्वान् थे। आचार्य सोमकीर्ति काष्ठासघ के नन्दीतट शाखा के सन्त थे। सवत् 1518 मे रचित एक ऐतिहासिक पट्टावली मे उन्होंने अपने आपको काष्ठासघ का 7वा भट्टारक लिखा है। राजस्थानी भाषा मे अब तक इनकी 6 रचनायें उपलब्ध हो चुकी है। इनके नाम निम्न प्रकार है —

गुर्वावली	यशोधर रास	रिषभनाथ स्तुति
मल्लिनाथ गीत	आदिनाथ विनती	त्रेपन क्रियागीत

गुर्वावली सस्कृत एव राजस्थानी मिश्रित रचना है। इस कृति के आधार पर सवत् 1518 मे रचित राजस्थानी गद्य का नमूना देखा जा सकता है। यशोधर रास कवि की सबसे बड़ी रचना है। इसे उसने सवत् 1536 मे लिखा था। ऋतुओ, पेड-पत्तो एव प्राकृतिक दृश्यों का इस काव्य मे अच्छा वर्णन हुआ है। शेष सभी कृतिया सामान्य है।

(7) भ. ज्ञानभूषण :—

भट्टारक ज्ञानभूषण विक्रम की 16वी शताब्दी के विद्वान थे। ये भ. भुवनकीर्ति के शिष्य थे। ये संवत् 1530-31 मे किसी समय भट्टारक गादी पर बैठे और 1560 के पूर्व तक भट्टारक रहे। ये सस्कृत, प्राकृत, गुजराती एव राजस्थानी के प्रमुख विद्वान थे। अब तक इनके 10 सस्कृत ग्रन्थ एवं 5 राजस्थानी भाषा मे निबद्ध ग्रथ मिल चुके हैं। राजस्थानी कृतियो के नाम निम्न प्रकार हैं :—

आदीश्वर फाग	जल गालण रास	पोसह रास
षट् कर्म रास	नागद्रा रास	

आदीश्वर फाग राजस्थानी भाषा की अच्छी कृति है। फाग सज्ञक काव्यो मे इसका विशिष्ट स्थान है। यह कृति भी सस्कृत एव राजस्थानी भाषा मे निबद्ध है। इसमे दोनो भाषाओ के 501 पद्य हैं जिनमे 262 राजस्थानी और शेष 239 सस्कृत पद्य हैं।

कवि की अन्य सभी रचनायें भी भाषा, विषय वर्णन एव छन्दो की दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। ज्ञानभूषण ने राजस्थानी भाषा के विकास मे जो योगदान दिया वह सभी दृष्टियो से महत्वपूर्ण है।

(8) ब्रह्म बूचराज :—

राजस्थानी भाषा मे रूपक काव्यो के निर्माता की दृष्टि से ब्रह्म बूचराज का उल्लेखनीय स्थान है। इनकी रचनाओं के आधार पर इनका समय सवत् 1530 से 1600 तक का माना जा सकता है। मयणजुज्झ इनकी सर्वाधिक लोकप्रिय रचना रही जिनकी कितनी ही पाण्डुलिपिया राजस्थान के विभिन्न भण्डारो मे उपलब्ध होती है। कवि पूर्णत आध्यात्मिक थे

और अपने काव्यो मे भी उसने मानव के असद् गुणो पर सद्गुणो की विजय बतलायी है। मयणजुज्झ मे कामदेव पर विजय प्राप्ति का जो चित्र उपस्थित किया है वह बडा ही आकर्षक है। इसी तरह उसने सन्तोष तिलक जयमाल मे सन्तोष की लोभ पर जो विजय बताई है वह अपने दृष्टि का अकेला काव्य है और अपनी चेतन पुद्गल धमाल मे जो जड और चेतन का द्वन्द्व बतलाया है तथा जन्म जन्मान्तरो से चले आ रहे सघर्ष को जिन शब्दो मे उपस्थित किया है वह कवि के काव्यत्व शक्ति एव काव्य प्रतिभा का परिचायक है। चेतन और जड का सबाद बहुत ही सुन्दर रीति से प्रस्तुत किया गया है।

ब्रह्म बूचराज की अब तक निम्न रचनायें उपलब्ध हो चुकी हैं—

मयणजुज्झ (मदनयुद्ध)	सतोष तिलक जयमाल	चेतन पुद्गल धमाल
टडाणा गीत	नेमिनाथ वसतु	नेमीश्वर का बारहमासा
विजयकीर्ति गीत	पद	

(9) ब्रह्म यशोधर (संवत् 1520-90) —

ब्रह्म यशोधर काष्ठासघ मे होने वाले भ सोमकीर्ति के प्रशिष्य एव विजयसेन के शिष्य थे। ये महाव्रती थे। इनका विहार स्थान राजस्थान, गुजरात, महाराष्ट्र एव उत्तर प्रदेश रहा। विभिन्न उपलब्ध प्रमाणो के आधार पर इनका समय सवत् 1520 से 1590 तक माना जा सकता है। इनकी अब तक निम्न कृतिया प्राप्त हो चुकी है —

नेमिनाथ गीत (स. 1581)	नेमिनाथ गीत	मल्लिनाथ गीत
नेमिनाथ गीत	वलिभद्र चौपई	

ब्रह्म यशोधर की काव्य शैली परिमार्जित है। वे किसी भी विषय को सरल शब्दों में प्रस्तुत करने मे सक्षम थे। उन्होने नेमिनाथ पर तीन गीत लिखे लेकिन तीनो ही गीतो मे अपनी-अपनी विशेषताए हैं। वलिभद्र चौपई इनकी सबसे अच्छी काव्य कृति है। यह श्रीकृष्ण एवं वलराम के सहोदर प्रेम की एक उत्तम कृति है। यह लघु काव्य है। निखरी हुई भाषा मे निबद्ध यह काव्य राजस्थानी भाषा की उत्तम कृति है। अभी इनकी और भी कृतियां मिलने की सभावना है।

(10) भट्टारक शुभचन्द्र —

भट्टारक शुभचन्द्र भ विजयकीर्ति के शिष्य थे। सवत् 1530 के आस पास इनका जन्म हुआ और बाल्यकाल मे ही इनका भट्टारको से सम्पर्क हो गया। सवत् 1573 मे ये भट्टारक वने और इस पद पर सवत् 1613 तक वने रहे। इन्होंने देश के विभिन्न भागो में बिहार किया और जीवन पर्यन्त सद् साहित्य का प्रचार करने में लगे रहे। इन्होने ग्रथो का भारी अध्ययन किया और जनता द्वारा ये षट्भाषा चक्रवर्ति कहलाए जाने लगे। अब तक इनकी 24 संस्कृत रचनायें एव 7 राजस्थानी रचनायें प्राप्त हो चुकी हैं।

राजस्थानी रचनाओ के नाम निम्न प्रकार हैं—

महावीर छन्द	विजयकीर्ति छन्द	गुरुछन्द
नेमिनाथ छन्द	दान छन्द	तत्वसार दूहा

गीत आदि।

इनकी भी सभी रचनायें लघु हैं। तत्वसार दूहा मे 91 छन्द हैं जो जैन सिद्धांतो पर आधारित हैं। इनकी भाषा सस्कृत-निष्ठ है। कितने ही शब्दो का अनुस्वार सहित ज्यों का त्यो प्रयोग कर लिया गया है। सभी रचनायें मौलिक एव पठनीय है।

(11) ब्रह्म जयसागर—

ब्रह्म जयसागर भ रत्नकीर्ति के प्रमुख शिष्यो मे से थे। इनका समय सवत् 1580 से 1665 तक का माना जा सकता है। इनकी निम्न रचनायें महत्वपूर्ण हैं.—

नेमिनाथ गीत	जसोधर गीत	पंचकल्याणक गीत
चुनडी गीत	सघपति मल्लिदासजी गीत	
क्षेत्रपाल गीत	शीतलनाथ नी वीनती	

पचकल्याणक गीत कवि की सबसे बडी कृति है। इसमे 70 पद्य हैं। राजस्थानी भाषा मे लिखे गये ये सभी गीत अत्यधिक लोकप्रिय रहे है। चुनडी गीत एक रूपक गीत है। इसमें नेमिनाथ के वन चले जाने पर उन्होंने अपने चरित्र रूपी चुनडी को किस रूप मे धारण किया इसका सक्षिप्त वर्णन है।

(12) आचार्य चन्द्रकीर्ति—

आचार्य चन्द्रकीर्ति 17वी शताब्दी के विद्वान् थे। ये भ रत्नकीर्ति के शिष्य थे। कांकरोली, डूगरपुर, सागवाड़ा आदि नगर इनके साहित्य निर्माण के केन्द्र थे। 'सोलहकारण-रास, जयकुमाराख्यान, चारित्र चूनडी, चोरासी लाख जीव योनि बीनती' ये चार रचनायें उपलब्ध हो चुकी है।

सोलहकारण रास एक लघु कृति है जिसमे 46 पद्य हैं। उसे भडौच (गुजरात) के शान्तिनाथ मन्दिर मे रची गई थी। जयकुमाराख्यान 4 सर्गों मे विभक्त एक खण्ड काव्य है जिसमें प्रथम तीर्थंकर ऋषभदेव के पुत्र सम्राट भरत के सेनाध्यक्ष का भव्य जीवन-चरित्र वर्णित है। आख्यान वीर रस प्रधान है। इसकी रचना बारडोली नगर के चन्द्रप्रभ चैत्यालय मे सवत् 1655 की चैत्र शुक्ला दशमी के दिन समाप्त हुई थी। शेष दोनो ही कृतिया लघु कृतिया हैं।

(13) मुनि महनन्दि.—

मुनि महनन्दि भ वीरचन्द्र के शिष्य थे। इनकी एक मात्र कृति बारक्खरी दोहा उपलब्ध होती है। इस कृति का दूसरा नाम दोहा पाहुड भी है। इसमे विविध विषयो का वर्णन दिया हुआ है जिनमें उपदेशात्मक, आध्यात्मिक एव नीति परक दोहे प्रमुख रूप से हैं।

(14) ब्रह्म रायमल्ल.—

ब्रह्म रायमल्ल 17वी शताब्दी के विद्वान् थे। राजस्थानी भाषा के विद्वान् सन्तो में इनका उल्लेखनीय स्थान है। ये मुनि अनन्तकीर्ति के शिष्य थे। ये राजस्थान के विभिन्न नगरों में विहार किया करते थे तथा वही पर श्रावको के आग्रह से नवीन कृतिया निबद्ध करते रहते थे।

इनमे सागानेर, रणथम्भोर, साभर, टोडारायसिंह, हारसोर आदि स्थानो के नाम उल्लेखनीय हैं। अब तक इनकी निम्न रचनाएं उपलब्ध हो चुकी हैं।

नेमीश्वर रास (1615) | हनुमन्त रास (1616) | प्रद्युम्न रास (1628)
सुदर्शन रास (1629) | श्रीपाल रास (1630) | भविष्यदत्त रास (1633)
परमहस चौपई (1636) | जम्बूस्वामी चौपई | निर्दोष सप्तमी कथा
आदित्यवार कथा | चिन्तामणि जयमाल | छियालीस ढाणा
चन्द्रगुप्त स्वप्न चौपई | ज्येष्ठ जिनवर कथा

उक्त सभी कृतियो की भाषा राजस्थानी है तथा गीतात्मक शैली में लिखी हुई है। ऐसा लगता है कि कवि अथवा इनके शिष्य इन कृतियो को सुनाया करते थे। इसलिये कृतियो की भाषा अत्यधिक सरल एव रुचिकर है। भविष्यदत्त रास इनकी सबसे अच्छी कृति है जिसमे 115 दोहा-चौपई हैं तथा नगरो, वहा के बाजारो में चलने वाला व्यापार, रहन-सहन आदि का भी सुन्दर वर्णन किया है। भविष्यदत्त रास मे सागानेर का इसी तरह का एक वर्णन देखिये —

सोलहसै तैतीसै सार, कातिग सुदि चौदसि शनिवार,
स्वाति नक्षित्र सिद्धि शुभ जोग, पीडा दुख न व्यापै रोग ।908।
देस ढूढाहड सोभा घणी, पूजै तहा आलि मण तणी ।
निर्मल तलौ नदी बहु फैरि, सुषस बसै बहु सागानेरि ।909।
चहुदिसि बण्डा भला बाजार, भरे पटोला मोती हार ।
भवन उत्तु ग जिनेसुर तणा, सोने चन्दवो तोरण घणा ।910।
राजा राजै भगवतदास, राजकुवर सेवहि बहुतास ।
परिजा लोग सुखी सुख वास, दुखी दलिद्री पूरवै आस ।।

(15) छीतर ठोलिया —

छीतर ठोलिया मोजमाबाद के निवासी थे। उनकी जाति खण्डेलवाल एव गोत्र ठोलिया था। इनकी एक मात्र रचना होली की कथा सवत् 1660 की कृति है जिसमे उन्होंने अपने ही ग्राम मोजमाबाद में निबद्ध की थी। उस समय नगर पर आमेर के महाराजा मानसिंह का शासन था।[1]

(16) हर्षकीर्ति —

हर्षकीर्ति राजस्थान के जैन सन्त थे। इन्होने राजस्थानी एव हिन्दी मे कितनी ही छोटी वडी रचनाये निवद्ध की थी। चतुर्गति वेलि इनकी अत्यधिक लोकप्रिय रचना रही है जिसे इन्होने सवत् 1683 मे समाप्त किया था। ये आध्यात्मिक कवि थे। नेमिराजुल गीत, नेमीश्वर गीत, मोरडा, कर्महिण्डोलना, पचगति वेलि आदि सभी आध्यात्मिक रचनायें है। कवि द्वारा निबद्ध कितने ही पद भी मिलते है जो अभी तक प्रकाश मे नही आये हैं। कवि की एक और रचना त्रेपनक्रिया रास की खोज की जा चुकी है। यह सवत् 1684 मे रची गई थी।

(17) ठाकुर —

ठाकुर कवि 17वी शताब्दी के कवि थे। कवि किस प्रदेश के थे तथा माता-पिता कौन थे इस सवध में कोई जानकारी नही मिलती। इनकी एक मात्र कृति शान्तिनाथ पुराण की एक

---

1. शाकम्भरी के विकास मे जैन धर्म का योगदान—डा. कासलीवाल, पृ. 47।

पाण्डुलिपि अजमेर के भट्टारकीय ग्रथ भण्डार में संग्रहीत है। इसका रचनाकाल सवत् 1652 है। पुराण विस्तृत है तथा सभी काव्यगत तत्वो से युक्त है।

(18) देवेन्द्र —

यशोधर के जीवन पर सभी भापाओ मे कितने ही काव्य लिखे गये है। राजस्थानी एव हिन्दी मे भी विभिन्न कवियो ने इस कथा को अपने काव्यो का आधार वनाया है। इन्ही काव्यो मे देवेन्द्र कृत यशोधर चरित भी है जिसकी पाण्डुलिपि डूगरपुर के शास्त्र भण्डार मे उपलब्ध है। काव्य वृहद् है। इसका रचना काल स 1683 है। देवेन्द्र विक्रम के पुत्र थे जो स्वय भी सस्कृत एव हिन्दी के अच्छे कवि थे। कवि ने महुआ नगर मे यशोधर की रचना समाप्त की थी—

सवत् 16 आठ त्रीसि आसो सुदी वीज शुक्रवार तो।
रास रच्यो नवरस् भर्यो महुआ नगर मझार तो॥

कवि ने अपनी कृति को नवरस से परिपूर्ण कहा है।

(19) कल्याणकीर्ति —

भट्टारक सकलकीर्ति की परम्परा मे होने वाले मुनि देवकीर्ति के शिष्य कल्याणकीर्ति थे। ये 17वी शताब्दी के विद्वान् थे। कवि की अब तक निम्न रचनाये उपलब्ध हो चुकी हैं —

चारुदत्त चरित्र (1692)
श्रेणिक प्रवन्ध
पार्श्वनाथ रासो (1697)
वधावा

चारुदत्त चरित्र में सेठ चारुदत्त के जीवन पर प्रकाश डाला गया है। रचना दूहा और चौपई छन्द मे है। इसका दूसरा नाम चारुदत्त रास भी है। इस कृति को इन्होने भिलोडा ग्राम मे निवद्ध की थी। श्रेणिक सवध तो इन्होने वागड देश के कोटनगर मे सवत् 1705 मे लिखा था।

कल्याणकीर्ति राजस्थानी भाषा के अच्छे कवि है। इनके द्वारा रचित सस्कृत रचनाये भी मिलती है जिनके नाम जीरावली पार्श्वनाथ स्तवन, नवग्रह स्तवन एवं तीर्थंकर विनती हैं।

(20) वर्धमान कवि —

भगवान् महावीर पर यह प्राचीनतम रास सज्ञक कृति है जिसका रचना काल सवत् 1665 है। रास के निर्माता वर्धमान कवि है। काव्य की दृष्टि से यह अच्छी रचना है। वर्धमान कवि ब्रह्मचारी थे और भट्टारक वादिभूषण के शिष्य थे। रास की एकमात्र पाण्डुलिपि उदयपुर के अग्रवाल दिगम्बर जैन मन्दिर मे सग्रहीत है।

(21) भट्टारक वीरचन्द्र —

वीरचन्द्र प्रतिभा सम्पन्न विद्वान् थे। व्याकरण एव न्यायशास्त्र के प्रकाण्ड वेत्ता थे। सस्कृत, प्राकृत, गुजराती एव राजस्थानी पर इनका पूर्ण अधिकार था। ये भ लक्ष्मीचन्द्र के

शिष्य थे। ये 17वीं शताब्दी के विद्वान् थे। अब तक इनकी आठ रचनायें उपलब्ध हो चुकी हैं जिनके नाम निम्न प्रकार है —

वीरविलास फाग	सबोध सत्ताणु	जम्बूस्वामी वेलि
नेमिनाथ रास	जिन आतरा	चित्तनिरोध कथा
सीमधर स्वामी गीत	बाहुबलि वेलि	

वीरविलास फाग एक खण्ड काव्य है जिसमे 22 वें तीर्थ कर नेमिनाथ की जीवन घटना का वर्णन किया गया है। फाग मे 137 पद्य है। जम्बूस्वामी वेलि एक गुजराती मिश्रित राजस्थानी रचना है। जिन आतरा में 24 तीर्थंकरो के समय आदि का वर्णन किया गया है। सबोध सत्ताणु एक उपदेशात्मक गीत है जिसमे 57 पद्य है। चित्तनिरोधक कथा 15 पद्यो की एक लघु कृति है इसमे भ वीरचन्द्र को 'लाड नीति शृगार' लिखा है। नेमिकुमार रास की रचना स 1673 मे समाप्त हुई थी यह भी नेमिनाथ की वैवाहिक घटना पर आधारित एक लघु कृति है।

(22) सन्त सुमतिकीर्ति —

सुमतिकीर्ति भट्टारकीय परम्परा के विद्वान् थे। एक भट्टारक विरुदावली मे सुमतिकीर्ति को सिद्धातवेदि एव निर्ग्रन्थाचार्य इन दो विशेषणो से सबोधित किया है। ये राजस्थानी के अच्छे विद्वान् थे। अब तक इनकी निम्न रचनाये प्राप्त हो चुकी है —

धर्मपरीक्षा रास	जिनवरस्वामी वीनती
जिह्वादन्त विवाद	वसन्त विद्या विलास
शीतलनाथ गीत	पद

धर्मपरीक्षा रास इनकी सबसे बडी रचना है जिसे इन्होने सवत् 1625 मे समाप्त की थी।

(23) टीकम —

टीकम 18वी शताब्दी के प्रथम चरण के कवि थे। ये ढूढाड प्रदेश के कालख ग्राम के निवासी थे। इन्होने सवत् 1712 में चतुर्दशी चौपई की रचना इसी ग्राम के जिन मन्दिर मे समाप्त की थी।

(24) खडगसेन (सवत् 1713) —

खड्गसैन का जन्म स्थान नारनौल था जो बागड देश मे स्थित था। ये मानूशाह के पौत्र एव लूणराज के पुत्र थे। इनको शिक्षा आगरा मे चतुरभुज वैरागी के पास हुई तथा लाहोर नगर मे सम्राट शाहजहा के शासन काल मे सवत् 1713 मे त्रिलोकदर्पण कथा की रचना समाप्त की। रचना दोहा चौपई छन्द में निबद्ध है तथा तीन लोक का वर्णन करने वाली है। कवि ने कृति के अन्त मे अपना विस्तृत परिचय दिया है।

(25) दिलाराम —

कवि के पूर्वज खडेले के पहल गाव के रहने वाले थे। किन्तु बूदी नरेश के अनुरोध से ये सपरिवार बूदी आकर रहने लगे थे और वही इनकी 6 पीढिया गुजर गयी थी। इसके

पूर्व चार पीढिया टोडारायसिंह में समाप्त हुई थी। इनकी तीन रचनायें प्राप्त हो चुकी हैं। दिलाराम विलास इनकी सभी लघु कृतियो का सकलन है तथा आत्म द्वादशी मे आत्मा का वर्णन हुआ है। सवत् 1768 मे दिलाराम विलास की रचना पूर्ण हुई थी। तीसरी रचना व्रत-विधानरासौ है जिसकी रचना सवत् 1767 मे समाप्त हुई थी। तीनो ही रचनायें अभी तक अप्रकाशित है। कवि की भाषा परिमार्जित है तथा उस पर हाडोती का प्रभाव है।

(26) मुनि शुभचन्द्र —

मुनि शुभचन्द्र भ जगत्कीर्ति के सघ में मुनि थे। भट्टारको के सघ में आचार्य, मुनि, ब्रह्मचारी आदि सभी रहते थे। मुनि शुभचन्द्र इसका प्रमाण है। मुनि शुभचन्द्र हाडौती प्रदेश के कुजडपुर में रहते थे। वहा चन्द्रप्रभ स्वामी का चैत्यालय था। उमी मन्दिर मे इन्होने होली कथा को निवद्ध किया था। यह रचना भाषा की दृष्टि से अच्छी कृति है। इसका रचना काल स 1755 है।

(27) नथमल बिलाला (सवत् 1822) —

नथमल बिलाला यद्यपि मूल निवासी आगरा के थे लेकिन पहिले भरतपुर और फिर हिण्डौन आकर रहने लगे थे। उनके पिता का नाम शोभाचन्द्र था। इन्होने सिद्धातसार दीपक की रचना भरतपुर में सुखराम की सहायता से तथा भक्तामर स्तोत्रकी भाषा हिण्डौन मे सवत् 1829 में अटेर निवासी पाण्डे वालचन्द्र की सहायता से की थी। उक्त दोनो रचनाओ के अतिरिक्त कवि की निम्न रचनाए और उपलब्ध हो चुकी है —

जिणगुणविलास (1822) नागकुमार चरित्र (1834)
जीवन्धर चरित (1835) जम्वूस्वामी चरित्र
अष्टाहि्नका कथा

नथमल प्रतिभा सम्पन्न कवि था इसलिये इसकी रचनाओ में सहज भाषा मिलती है। कवि ने सभी रचनाओ स्वान्त सुखाय निवद्ध की थी। कवि ने अपना परिचय निम्न प्रकार दिया—

नन्दन सोभाचन्द को नथमल अति गुनवान।
गीत बिलाला गगन में उग्यो चन्द समान।
नगर आगरो तज रहे, हीरापुर में आय।
करत देखि उग्रसैन को कीनो अधिक सहाय॥

(28) अचलकीर्ति —

ये 18वी शताब्दी के कवि थे। अब तक इनकी विषापहार स्तोत्र भाषा, कर्मबत्तीसी एव रविव्रतकथा रचनायें प्राप्त हो चुकी हैं। कर्मबत्तीसी को इन्होने सवत् 1777 में समाप्त की थी। ये भट्टारकीय परम्परा के सन्त थे।

(29) थानसिंह —

कविवर थानसिंह सागानेर के रहने वाले थे। इनकी जाति खण्डेलवाल एव गोत्र ठोलिया था। सुवुद्धिप्रकाश की ग्रन्थ प्रशस्ति में इन्होने आमेर, सागानेर तथा जयपुर का वर्णन लिखा है। जव इनके माता-पिता जयपुर में अशान्ति के कारण करौली चले गये थे तब भी

ये सागानेर में रहे और वही रहते हुये रचनायें लिखी थी। इनकी अभी तक दो रचनायें प्राप्त होती है—रत्नकरण्ड श्रावकाचार एव सुबुद्धिप्रकाश। प्रथम रचना को इन्होंने स 1821 में तथा दूसरी को सवत् 1824 मे समाप्त की थी। सुबुद्धिप्रकाश का दूसरा नाम थानविलास भी है। इसमे छोटी रचनाओ का सग्रह है। दोनों ही रचनाये भाषा एव वर्णन शैली की दृष्टि से सामान्य रचनाये है। इनकी भाषा पर राजस्थानी का प्रभाव है।

(30) हीरा —

हीरा कवि बूदी के रहने वाले थे। इन्होंने सवत् 1848 मे नेमिनाथ ब्याहलो नामक लघु रचना लिखी थी। रचना गीतात्मक है।

(31) टेकचन्द्र.—

टेकचन्द्र 18वी शताब्दी के राजस्थानी कवि हैं। इनके पिता का नाम दीपचन्द एवं पितामह का नाम रामकृष्ण था। ये मूलत जयपुर निवासी थे लेकिन फिर माहिपुरा मे जाकर रहने लगे थे। अब तक इनकी 21 से भी अधिक रचनायें उपलब्ध हो चुकी है। इनमें 'पुण्यास्रवकथाकोश (स 1822), पच परमेष्टीपूजा, कर्मदहनपूजा, तीनलोक पूजा (1828), सुदृष्टितरंगिणी (1838), व्यसनराज वर्णन (1827), पचकल्याण पूजा, पचभेदपूजा, अध्यात्म वारहखडी एव दशाध्यान सूत्र टीका' के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इनके पद भी मिलते हैं जो अध्यात्मरस से ओतप्रोत होते हैं। पुण्यास्रव कथाकोश इनकी वृहत् रचना है जिसमे 79 कथाओ का सग्रह है। चौपई एव दोहा छन्दो में लिखा हुआ यह एक सुन्दर काव्य है। कवि ने इसे सवत् 1822 मे समाप्त किया था।

इनकी सुदृष्टितरगिणी जैन समाज मे लोकप्रिय रचना मानी जाती है। इसमें सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान एव सम्यक्चरित्र का अच्छा वर्णन हुआ है।

(32) जोधराज कासलीवाल —

जोधराज कासलीवाल महाकवि दौलतराम कासलीवाल के सुपुत्र थे। अपने पिता के समान यह भी राजस्थानी के अच्छे कवि थे। इनकी एकमात्र कृति सुखविलास है जिसमे इनकी सभी रचनाओ का सकलन है। इनका यह सकलन सवत् 1884 को समाप्त हुआ था। उस समय कवि की अतिम अवस्था थी। महाकवि दौलतराम के मरने के पश्चात् कवि जोधराज किसी समय कामा चले गये। सुखविलास में कवि की गद्य पद्य दोनो ही रचनायें सम्मिलित हे।

(33) सेवाराम पाटनी —

सेवाराम पाटनी महापण्डित टोडरमल के समकालीन विद्वान् थे तथा उन्ही के विचारो के समर्थक थे। इनके पिता का नाम मायाचन्द था। ये पहिले दौसा मे रहते थे फिर वहा से डीग जाकर रहने लगे। सवत् 1824 में दौसा में रहते हुये ही इन्होंने शातिनाथ चरित की रचना समाप्त की। इसके पश्चात् सवत् 1850 मे इन्होंने डीग में रहते हुये मल्लिनाथ चरित की रचना समाप्त की। उस समय वहा महाराजा रणजीतसिंह का शासन था। प्रस्तुत रचना की मूल पाण्डुलिपि कामा के दिगम्बर जैन मन्दिर में सुरक्षित है।

सेवाराम कुछ समय तक जयपुर में भी रहे। लेकिन पं टोडरमलजी की मृत्यु के पश्चात् इन्होंने जयपुर छोड दिया तथा डीग एव मालवा आदि मे चले गये। पाटनीजी स्वभाव से भी साहित्यिक थे।

(34) ब्रह्म चन्द्रसागर—

ये राजस्थानी जैन सत थे तथा सोजत नगर इनका प्रमुख साहित्यिक केन्द्र था। ये भट्टारक रामसैन के अन्वय मे होने वाले भ. सुरेन्द्रकीर्ति के प्रशिष्य एवं सकलकीर्ति के शिष्य थे। सोजत नगर मे रहते हुये ही इन्होने सवत् 1823 मे श्रीपाल चरित की रचना समाप्त की थी। काव्य की भापा एव शैली दोनो ही उत्तम हैं तथा वह विविध छन्दो मे निवद्ध की गयी है। ब्रह्म-चन्द्रसागर की एक और रचना पच परमेष्ठि स्तुति प्राप्त होती है। कवि ने उसे भी सोजत नगर मे ही सम्पूर्ण की थी।

(35) वख्तराम साह—

कविवर वख्तराम साह इतिहास, सिद्धात एवं दर्शन के महान् विद्वान् थे। ये भट्टारकीय परम्परा के पण्डित थे। इन्होंने मिथ्यात्वखण्डन लिख कर भट्टारक परम्परा का खुला समर्थन किया। जयपुर नगर के लश्कर का दिगम्वर जन मन्दिर इनका साहित्यिक केन्द्र था। 'वुद्धिविलास' इनकी महत्वपूर्ण कृति है जिसका इतिहास से पूर्ण सवध है। कवि ने इसमे तत्कालीन समाज, राजव्यवस्था एव जयपुर नगर निर्माण आदि का अच्छा वर्णन किया है यह उनकी सवत् 1827 की कृति है।

वख्तराम चाकसू के निवासी थे। इनके पिता का नाम प्रेमराज साह था जो वही रहते थे। लेकिन कुछ समय पश्चात् कवि जयपुर आकर रहने लगे। मिथ्यात्वखण्डन नाटक मे कवि ने अपना परिचय निम्न प्रकार दिया है

आदि चाटसू नगर के, वासी तिनि को जानि।
हाल सवाई जै नगर, माहि वसे है आनि॥
तहा लसकरी देहुरे, राजत श्री प्रभु नेम।
जिनको दरसण करत ही, उपजत है अति प्रेम॥

कवि ने अपने वुद्धिविलास मे महापण्डित टोडरमलजी की मृत्यु के सवध में जो प्रकाश डाला है वह अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

(36) मन्ना साह—

मन्ना साह 17वी शताव्दी के विद्वान् थे। राजस्थान के ये किस प्रदेश को सुशोभित करते थे इसका कोई उल्लेख नही मिलता। अभी तक इनकी दो कृतिया मान वावनी एव लघु वावनी उपलव्ध हुई हैं। दोनो ही अपने ढग की अच्छी रचनायें हैं। कवि का दूसरा नाम मनोहर भी मिलता है।

(37) डालराम—

ये 19वी शताव्दी के कवि थे। इनकी गुरुपदेश श्रावकाचार, चतुर्दशी कथा तथा सम्यकत्व प्रकाश प्रसिद्ध रचनाये है। इन रचनाओ के अतिरिक्त इन्होने पूजा साहित्य भी खूव लिखा है। जो राजस्थान के विभिन्न भडारो मे सग्रहीत है।

उक्त सन्त कवियो के अतिरिक्त भट्टारक शुभचन्द्र[1] (द्वितीय) भ. नरेन्द्रकीर्ति[2], भ. सुरेन्द्रकीर्ति[3], ब्र गुणकीर्ति[4], आचार्य जिनसेन[5], ब्रह्म धर्मरुचि[6], आचार्य सुमतिसागर[7], सयमसागर[8], त्रिभुवनकीर्ति[9], ब्रह्म अजित[10], भ महीचन्द्र[11], मुनि राजचन्द्र[12], विद्यासागर, भ रत्नचन्द्र (द्वितीय), विद्याभूषण, ज्ञानकीर्ति आदि के नाम उल्लेखनीय है। इन विद्वानो ने राजस्थानी भाषा में विविध कृतिया लिख कर जन-जन मे स्वाध्याय के प्रति रुचि पैदा की।

---

1 राजस्थान के जैन सन्त व्यक्तित्व एव कृतित्व, पृ 161
2 वही, पृ. 165
3. वही, पृ 164
4 वही, पृ 186
5. वही, पृ 187
6 वही, पृ. 188
7 वही, पृ 191
8 वही, पृ 193
9 वही, पृ 193
10 वही, पृ. 195
11. वही, पृ 198
12 वही, पृ 207

राजस्थानी पद्य साहित्यकार 6

(विक्रम की 18वी शताब्दी से 20वी शताब्दी तक)

लेखक—डा. गगाराम गर्ग

—.0 0—

पश्चिमी राजस्थान की अपेक्षा पूर्वी राजस्थान मे दिगम्बर जैन समाज का बाहुल्य रहा। पूर्वी राजस्थान के ढूढाड तथा हाडौती क्षेत्रो मे सामन्तो और श्रेष्ठिजनो की प्रेरणाओ से अनेक जैन उत्सवो का आयोजन तथा जिनालयो का निर्माण हुआ। इससे जैन साहित्य के सृजन को बड़ी प्रेरणा मिली। पूर्वी राजस्थान के ब्रज के सन्निकट होने तथा आगरा के प्रसद्धि कवि बनारसीदास, भूधरदास, द्यानतराय के प्रभाव के कारण राजस्थान के दिगम्बर जैन कवियो की भाषा भी ब्रजभाषा के प्रभाव से पूर्णत वचित न रह सकी। तथापि जैन साहित्य में लोक-भाषा को प्राथमिकता दिये जाने के कारण राजस्थानी की प्रमुख शाखा ढूढाडी भाषा ही इन कवियो की अभिव्यक्ति का माध्यम रही है।

आलोच्य काल मे कवियो ने जिन तीर्थ करो और विशिष्ट पौराणिक पात्रो के विषय मे अपने महाकाव्य और खण्डकाव्य लिखे हैं, वे पात्र है—तीर्थंकर, ऋषभदेव, तीर्थंकर नेमिनाथ, तीर्थंकर शातिनाथ, धन्य कुमार, जीवन्धर, श्रीपाल, यशोधर, जम्बूस्वामी, श्रेणिक, भद्रबाहु आदि। ये प्रबन्ध काव्य अधिकाशत प्राकृत और अपभ्रश के चरित्र ग्रथो के आधार पर ही लिखे गये है। फिर भी उनमे यत्र-तत्र मूल भाव का सा ही काव्यानन्द प्राप्त होता है। जैन प्रवन्धकारो मे चरित्र ग्रथो का पद्यानुवाद करते समय उनके मूल छन्दो के एक-एक शब्द का अर्थ ग्रहण करने की अपेक्षा उनका समग्रभाव ग्रहण कर अभिव्यजित करने की प्रवृति अधिक रही है। जैन पुराणो के चरित्रो मे भाषा के कथ्य एव प्रतिपाद्य मे यत्किञ्चित परिवर्तन न करने की प्रवृत्ति मे भाषा कवियो की धार्मिक भावना ही प्रधान रही है। ब्रह्म रायमल्ल, आचार्य नेमिचन्द जैसे एक दो कवि अवश्य ऐसे थे, जिन्होने जैन पुराणो के कथ्य को कुछ अधिक मौलिक ढग से प्रतिपादित करके श्रेष्ठ प्रबन्ध कवि की क्षमता को नि सकोच प्रकट किया है।

18वी शताब्दी के प्रमुख कवि नमिचन्द का 'प्रीतकर मोषिगामि चौपई', 829 दोहा-चौपाइयो मे लिखा हुआ एक श्रेष्ठ एव मौलिक चरित्र ग्रथ है। इस ग्रन्थ की रचना बैशाख शुक्ला 11 सवत् 1771 में हुई। ग्रथ के प्रारम्भ मे पच परमेष्टि व गणधरों को प्रणाम करते हुये कवि ने श्रेणिक के प्रश्नोत्तर के रूप मे प्रीतकर की कथा गौतम मुनि द्वारा कहलवाई है।

कुछ ही प्रवन्ध काव्यो की अपेक्षा जैन कवियो ने फुटकर रचनायें अधिक लिखी हैं। मुक्तक रचनाओ मे दोहा, सवैया, छद अपेक्षाकृत कम और पद अधिक है। दोहा-परक मुक्तक रचनाओ में आलोच्य काल की प्रमुख रचनायें हेमराज का दोहा शतक, दौलतराम का विवेक विलास, नवल की दोहा पच्चीसी तथा बुधजन रचित बुधजन सतसई हैं। दोहा-परक रचनाओ मे जैन कवियो ने जैन दर्शन तथा भक्ति भाव का यत्किचित प्रतिपादन करते हुये नीति का विश्लेपण अधिक किया है। जैन दोहो में अहिंसा, मास-भक्षण, परधन-प्राप्ति, परस्त्री गमन, नारी निन्दा, अहकार वचन, क्रोध, दया आदि विभिन्न नैतिक विषयो पर अपने विचार प्रकट किये हैं। बुधजन सतसई आलोच्य काल का ही नही, समूचे हिन्दी जैन काव्य का प्रतिनिधि दोहा काव्य है।

कविवर बुधजन ने विभिन्न विषयो पर कही गई सूक्तियो को चार भागो में विभाजित किया है, देवानुरागशतक, सुभाषित नीति तथा उपदेशाधिकार।

ढूढाड के जैन कवियो मे जोधराज और पार्श्वदास के सवैया बडे मनोहारी है। सवैया का प्रयोग दरबारी कवियो ने श्रृगार रस तथा सत कवियो ने अध्यात्म और नीति के वर्णन के लिये किया है। सत सुन्दरदास की तरह आत्मा व तत्व के विवेचन, ससार की नश्वरता व भयावहता के चित्रण एव दया, अहिंसा, त्याग आदि नीति तत्वो के प्रतिपादन के लिये जैन कवियो ने सवैये लिखे है। इस दृष्टि से जोधराज की दो कृतिया ज्ञान समुद्र और धर्मसरोवर उल्लेखनीय हैं। दोनो कृतियो की छद सख्या क्रमश 147 और 387 है।

पद साहित्य —

विभिन्न राग-रागिनियो से समन्वित गेय पदो की रचना का प्रारम्भ सिद्ध और नाथो द्वारा नवी दसवी शताब्दी मे ही कर दिया गया था, किन्तु इनकी प्रगतिशील परम्परा सोलहवी शताब्दी बाद सत और वैष्णव भक्तो के काव्य मे उपलब्ध होती ह। जैन साहित्य में पद रचना का प्रारम्भ तो वैष्णव भक्तो से कुछ पहले हुआ किन्तु उसका परम्पराबद्ध विकास और प्रसार वैष्णव पद साहित्य के कुछ बाद हो। 18वी और 19वी शताब्दी मे आगरा और जयपुर मे विपुल पद साहित्य लिखा गया। आगरा के प्रमुख पद रचयिता थे बनारसीदास, भूधरदास, भैया भगवतीदास, द्यानतराय, जगतराय और जगजीवन। जयपुर में विपुल सख्या मे पद रचना करने वाले कवियो मे नवल, बुधजन, माणिकचन्द, उदयचन्द, नयनचन्द, रत्नचन्द और पार्श्वदास आदि है। उक्त प्रमुख कवियो के अतिरिक्त ऐसे फुटकर कवि तो अनेक हे जिनके थोडे थोडे पद ही अभी तक जानकारी में आ सके है। डा कस्तूरचन्द कासलीवाल के अनुसार यदि इन जैन कवियो के पदो की गणना की जाये तो यह सभवत दस हजार से कम न होगी।

जैन पद साहित्य को चार भागो मे विभाजित किया जा सकता है, भक्तिपरक, अध्यात्मपरक, विरहपरक एव नीतिपरक। भक्तिपरक पदो में तीर्थंकरो का गुणगान, स्वदोषानुभूति, अनन्यता आदि भक्ति तत्व विद्यमान है। भक्तिपरक पद साहित्य मे नवधा भक्ति, प्रपत्तिवाद, दश आसक्तिया आदि तत्वो के साथ-साथ जैनाचार्यों द्वारा प्रतिपादित दशधा भक्ति का विवेचन जैन भक्तो की समन्वय भावना का प्रतीक है। अध्यात्मपरक पद साहित्य मे जैन तत्वो, आत्मा, पुद्गल, परमात्मा, मोक्ष आदि का वर्णन किया गया है। विरहपरक पद साहित्य मे राजुल नेमिनाथ प्रसग को लेकर लिखा गया है। अहिंसा, सत्य, मन की पवित्रता, त्याग, दान, दया आदि नीति तत्व नीतिपरक पद साहित्य में अभिव्यंजित हुये है। आत्माभिव्यजन अनुभूति की पूर्णता, भावो का ऐक्य तथा माधुर्यपूर्ण भाषा गीतिकाव्य के सभी तत्व जैन पद साहित्य मे विद्यमान हैं।

आलोच्यकाल मे प्रबन्ध और मुक्तक काव्यो की रचना करने वाले प्रमुख कवि इस प्रकार है —

1 जोधराज गोदीका —

जोधराज गोदीका सागानेर निवासी अमरचन्द गोदीका के पुत्र थे। जोधराज के नाना धरमदास और मामा कल्याण दास के पास लाखो की सम्पत्ति था। दूर-दूर तक उनका व्यापार फैला हुआ था। ऐसे धनसम्पन्न परिवार में जन्म लेने पर भी बचपन से ही जोधराज के हृदय मे धम की लगन थी। जोधराज ने प हरिनाथ मिश्र को अपना मित्र बनाकर उनकी सगति से शास्त्रज्ञान उपलब्ध किया तथा उनसे अपने पढने के लिये कई हस्तलिखित ग्रन्थो की प्रतिलिपिया करवाई। जोधराज गोदीका के ग्रन्थ इस प्रकार है —

1. सम्यक्त कौमुदी भाषा (1724)
2. प्रवचनसार भाषा

3. कथाकोषभाषा
4 प्रीतकर चरित्र भाषा
5 ज्ञान समुद्र (1722)
6 धर्म सरोवर (1724)

जोधराज के प्रथम चार ग्रन्थ पद्यानुवाद तथा अन्तिम दो कृतिया मौलिक है। ज्ञान समुद्र और धर्म सरोवर दोनो ही नीति प्रधान ग्रन्थ है।

2. हेमराज —

इनका आविर्भाव ढूढाड प्रदेश के सागानेर गाव मे हुआ। हेमराज पाण्डे रूपचन्द के शिष्य थे। अपने जीवन के आखिरी दिनो में हेमराज कामा चले गए। कामा में उस समय कीर्तिसिह राज्य करते थे।

हेमराज का एक मौलिक ग्रन्थ दोहा शतक है। दोहा शतक की समाप्ति कवि ने सवत् 1725 मे की थी। इस मे नीति सवधी लगभग सौ दोहे हैं। हेमराज ने आगरावासी पाण्डे हेमराज के गद्यग्रन्थ प्रवचनसार का भी पद्यानुवाद किया है।

3. नेमिचन्द.—

नेमिचन्द आमेर मे स्थापित मूलसघ के शारदा गच्छ के भट्टारक सुरेन्द्रकीर्ति के प्रशिष्य देवेन्द्रकीर्ति (जगतकीर्ति के शिष्य) के अनुयायी थे। यह खण्डेलवाल जाति के सेठी गोत्र के श्रावक थे। नेमिचन्द अपनी आजीविका उपार्जन के अतिरिक्त शेष समय को काव्य रचना मे लगाया करते थे। नेमिचन्द के छोटे भाई का नाम झगूडू था। इनके प्रमुख शिष्य दो थे। डूगुरसी और रूपचन्द। जैन मन्दिर निवाई (टौक) के दो गुटको में प्राप्त इनकी निम्नलिखित रचनायें है .—

1. प्रीतकर चौपई (1771)
2. नेमिसुर राजमती की लूहरि
3. चेतन लूहरि
4. जीव लूहरि
5. जीव समोधन लूहरि
6. विसालकीर्ति को देहुरो
7. जखडी
8. कडखो
9. आसिक को गीत
10 नेमिसुर को गीत
11. पद सग्रह

नेमिचन्द की प्रथम रचना एक मौलिक खण्डकाव्य तथा अन्य रचनाये गेय रचनायें हैं। नेमिचन्द के गीत भावपूर्ण तथा मर्मस्पर्शी है।

डा. कस्तूरचन्द कामलीवाल ने नेमिचन्द की एक महत्वपूर्ण कृति नेमिश्वर रास की खोज की है। इस ग्रन्थ की रचना सवत् 1769 मे हुई। इस रास मे 36 अधिकार और 1308 छद हैं। ग्रन्थ की महत्वपूर्ण विशेपता यह भी है कि इसमें गद्य और पद्य दोनो को ही अपनाया गया है।

4. ब्रह्म नाथू —

ब्रह्मचारी नाथू का साधना स्थल वर्तमान टौंक जिले में स्थित 'नगर' ग्राम का जैन मन्दिर था। टौंक जिले के प्रमुख जैन मन्दिरो के शास्त्र भण्डारो की खोज करते समय ब्रह्म नाथू की निम्नलिखित रचनायें प्राप्त हुई हैं —

1. नेमीश्वर राजमती को ब्याहुलो (1728)
2 नेमजी की लूहरि
3 जिनगीत
4. डोरी का गीत
5 दाई गीत
6 राग मलार, सोरठ, मारु, धनाश्री के गीत

मधुर गीतकर नाथू ब्रह्म की उक्त रचनाओ में नेमिश्वर राजमती को ब्याहुलो एक बडी रचना है। इसमें 'तलदी, निकासी, सिन्दूरी, विन्द्रावनी की ढालो मे नेमिनाथ और राजमती के समस्त विवाह प्रसंग का वर्णन किया गया है। उबटन, दूलह का शृगार, बारात की निकासी, सभी लोकाचार के वर्णन में कवि ने बडी रुचि ली है।

5. सेवक —

कवि लोहट द्वारा सेवक को अपना गुरु लिखे जाने के कारण स्पष्ट है कि सेवक का आविर्भाव अठारहवी शताब्दी के प्रारम्भ मे हुआ। सेवक की दो रचनायें तथा 50 से अधिक पद हैं। इनकी प्रथम रचना 'नेमिनाथ जी का दस भव वर्णन' चौधरियान मन्दिर टौंक में प्राप्त गुटका नं 102 व में सग्रहीत है। इस रचना में नेमिनाथ और राजमती के दस जन्मो के अनन्य सम्बन्ध को दिखलाया गया है। सेवक की दूसरी रचना 'चौबीस जिन स्तुति' जैन मन्दिर निवाई (टौंक) के एक गुटके में पृष्ठ 124-26 पर सग्रहीत है। इसमे 30 छद है। सेवक के पद जयपुर के छाबडो के मन्दिर और तेरह पथी मन्दिर में क्रमश गुटका न. 47 और पद सग्रह नं. 946 मे प्राप्त हुये है।

6 लोहट —

बघेरवाल जाति मे उत्पन्न कवि लोहट के पिता का नाम धर्म तथा बडे भाइयों का नाम हीग और सुन्दर था। लोहट पहले साभर और बाद में बूदी मे रहने लगे। अभी तक इनकी केवल दो रचनायें टौंक के जैन मन्दिरो मे मिली हैं। लोहट की प्रथम रचना 'अढाई को रासो' का रचनाकाल संवत् 1736 है। इसमें 22 छदो में मैनासुन्दरी और श्रीपाल की कथा कही गई है। कवि की दूसरी रचना चौढालियो संवत् 1784 मे लिखी गई। इसमे 4 ढालो में 50 छद है। ग्रन्थ का विषय जैन आचार और नीति है। डा नरेन्द्र भानावत ने अपने शोध प्रबन्ध 'राजस्थानी वेली साहित्य' मे स 1735 मे रचित इनकी षटलेश्या बेलि का परिचय दिया है। इसके अतिरिक्त कवि की यशोधरचरित (1725), पार्श्वनाथ जयमाला आदि रचनायें और मिलती है।

7 अजयराज पाटणी —

इनका जन्म सागानेर में हुआ। इनके पिता का नाम मनसुख राम अथवा मनीराम था। इन्होने भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति के शिष्य महेन्द्रकीर्ति मे ज्ञान ग्रहण किया और अधिकतर आमेर रहने लगे। अजयराज हिन्दी तथा सस्कृत के अच्छे ज्ञाता थे। इनकी 20 रचनायें मिलती हैं।

1. आदि पुराण भाषा (1797)
2. नेमिनाथ चरित्र भाषा (1735)
3 कक्का बत्तीसी
4 चरखा चउपई
5 चार मित्रो की कथा
6 चौबीस तीर्थंकर पूजा
7 चौबीस तीर्थंकर स्तुति
8 जिन गीत
9 जिन जी की रसोई
10 णमोकार सिद्धि
11 नन्दीश्वर पूजा
12 पचमेरु पूजा
13 पार्श्वनाथ जी का सालेहा
14 बाल्य वर्णन
15 बीस तीर्थंकरो की जयमाल
16. यशोधर चौपई
17 वदना
18. शान्तिनाथ जयमाल
19 शिवरमणी विवाह
20 विनती

उक्त रचनाओ मे काव्यत्व की दृष्टि से शिवरमणी विवाह और चरखा चउपई श्रेष्ठ रचनायें है। दोनो ही रूपक काव्य हैं। 17 पद्यो के ग्रथ शिवरमणी विवाह में तीर्थ कर रूपी दूल्हा भव्यजनो की बारात के साथ पचम गति रूपी ससुराल में पहुच कर भक्तिरूपी शिवरमणी से विवाह करते हैं। तदुपरान्त वर-वधु ज्ञान सरोवर मे मिलकर तृप्त हो जाते हैं। चरखा चउपई के 12 पद्यो में कवि ने एक ऐसा चरखा चलाने का उपदेश दिया है जिसमें खूटे शील और सयम, ताडिया शुभ ध्यान, पाया शुक्ल ध्यान, दामन सवर, माल दशधर्म, हाथली चार दान, ताकू आत्म सार, सूत सम्यकत्व और कूकडी 12 व्रत है। जिन जी की रसोई भी एक सुन्दर रचना है। इसमे जिन को माता द्वारा परोसे गये नाना प्रकार की मिठाई, पक्वान्न और फलो की चर्चा करते हुये वात्सल्य भाव का प्रतिपादन है।

8 खुशालचन्द्र काला —

काला गोत्रीय खुशालचन्द्र के पिता का नाम सुन्दरदास तथा माता का नाम सुजानदे था। खुशालचन्द्र की प्रारम्भिक शिक्षा उनके जन्मस्थान जयसिंहपुरा (जिहानावाद) मे हुई। कालान्तर में भट्टारक देवेन्द्र कीर्ति के साथ सागानेर आ गये। यहा लक्ष्मीदास चादवाड से कवि ने शास्त्र-ज्ञान प्राप्त किया और फिर वापिस जयसिंहपुरा चले गये। खुशालचन्द्र ने अपनी अधिकाश रचनायें यही लिखी। रचनायें जैन पुराणो के आधार पर लिखी गई है —

1 हरिवश पुराण (1780)
2 यशोधर चरित्र
3 पद्मपुराण
4 व्रतकथा कोष (1787)
5 जम्बूस्वामी चरित
6 उत्तरपुराण (1799)
7 सद्भाषितावली

8. धन्यकुमार चरित्त
9. वर्द्धमान पुराण
10. शान्तिनाथ पुराण
11. चौबीस महाराज पूजा

उक्त सभी रचनायें भाषा एव काव्य कला की दृष्टि से अच्छी रचनायें हैं।

9 किशनसिंह —

किशनसिंह के पिता मथुरादास पाटनी अलीगढ रामपुरा जिला टौक के लब्धप्रतिष्ठ व्यक्ति थे। इन्होने अलीगढ (रामपुरा) मे एक विशाल जिन मन्दिर का निर्माण कराय.। किशनसिंह के छोटे भाई का नाम आनन्दसिंह था। किशनसिंह का साधना स्थल सागानेर रहा। उन्होने निम्नाकित रचनाये की —

1. णमोकार रास (1760)
2. चौबीस दण्डक (1764)
3. पुण्यास्रव कथा कोष (1773)
4. भद्रबाहु चरित्र (1783)
5. त्रेपन क्रिया कोष (1784)
6. लब्धि विधान कथा (1782)
7. निर्वाण काण्ड भाषा (1783)
8. चतुर्विशति स्तुति
9. चेतन गीत
10. चेतन लोरी
11. पद सग्रह

10 देवा ब्रह्म —

इनका आविर्भाव 18वी शताब्दी मे हुआ। इनका जन्मस्थान सभवत जयपुर ही था। बडा तेरहपथी मन्दिर जयपुर में पद सग्रह 946 मे देवा ब्रह्म के लगभग 72 पद सग्रहीत है। जिनेन्द्र के चरणो मे देवा ब्रह्म का भक्तिभाव बेजोड है।

11 दौलतराम कासलीवाल (सवत् 1749-1829) —

जैन साहित्य में दौलतराम नामक तीन कवि हुये है। एक तो पल्लीवाल-जातीय आगरा के रहने वाले तथा दूसरे बूदी के। तीसरे दौलतराम ढूढाड़ प्रदेश के वसवा ग्राम के निवासी आनन्दराम के पुत्र थे। इनका जन्म आषाढ की 14, सवत् 1749 को हुआ। दौलतराम के अजीत दास, जोधराज, गुलाबदास आदि छ पुत्र हुये। दौलतराम का जीवन काल वसवा, जयपुर, उदयपुर और आगरा आदि चार स्थानो पर अधिक व्यतीत हुआ। दौलतराग की साहित्यिक रुचि का बढाने मे आगरावासी विद्वान् बनारसीदास, भूधरदास और ऋषभदास के सम्पर्क का वडा योग रहा है। दौलतराम कासलीवाल जयपुर राज्य के महत्वपूर्ण पद को सभालते हुए भी अध्यात्म प्रवचन, जिनपूजा, शास्त्रचर्चा, गद्यलेखन और काव्य-सृजन में बडी रुचि रखते थे। इनकी राजस्थानी गद्य-पद्य में लिखी हुई 18 कृतिया प्राप्त हो

चुकी है जिनमें 8 पद्य रचनायें, 7 गद्य रचनायें एवं 3 रेखा टीकापरक रचनायें हैं। इनकी काव्य रचनायें हैं:—

1. जीवंधर चरित (1805)
2. त्रैपन क्रिया कोष (1795)
3. अध्यात्म बारह खडी
4. विवेक विलास
5. श्रेणिक चरित (1782)
6. श्रीपाल चरित (1822)
7. चौबीस दण्डक भाषा
8. सिद्ध पूजाष्टक
9. सार चौबीसी

दौलतराम कासलीवाल के उक्त चरित एवं अध्यात्म सम्बन्धी ग्रन्थो का आधार प्राचीन पुराण एव जैन शास्त्र है। डा कस्तूरचन्द कासलीवाल ने अपनी कृति 'महाकवि दौलतराम कासलीवाल व्यक्तित्व और कृतित्व' में कवि का मागोपाग अध्ययन प्रस्तुत करते हुए आचार्यत्व, काव्यत्व तथा वचनिका के क्षेत्र में दौलतराम की अप्रतिम गरिमा को प्रतिष्ठापित किया है। डा कासलीवाल ने कवि की 'विवेक विलास' की विशेप प्रशसा करते हुए उसे काव्य प्रतिभा का सम्पूर्ण निदर्शन कहा है।

12. साहिबराम —

साहिबराम की जीवनी के विषय में कोई जानकारी नही मिलती है। जयपुर के जैन मन्दिरो में इनकी रचनाओ की प्राप्ति तथा भाषा की दृष्टि से साहिबराम ढूंढाड के ही प्रतीत होते है। इनके पदो की संख्या 60 है।

13 नवल —

यह बसवा के रहने वाले थे। इनका सम्मावित जीवनकाल सवत् 1790-1855 तक बतलाया जाता है। दौलतराम कासलीवाल से इनका घनिष्ठ सम्बन्ध था। इन्ही की प्रेरणा से इनकी रुचि साहित्य मे हुई। वधीचन्द मन्दिर जयपुर के गुटका न 1087 तथा पद सग्रह न 492 में नवल के 222 पद मिलते है। नवल की 'दोहा पच्चीसी' नामक एक छोटी सी रचना बीसपथी मन्दिर पुरानी टौक के ग्रन्थाक 102 व के पृष्ठ 6 पर अकित है। नवल का एक चरित ग्रन्थ वर्धमान पुराण भी बतलाया जाता है।

14 नयनचन्द्र —

जयपुर के सभी प्रमिद्ध मन्दिरो वावा दुलीचन्द भण्डार, आमेर शास्त्र भण्डार, वधीचन्द भण्डार मे लगभग 246 पद नैन अथवा नैनसुख की छाप से मिलते हैं। उनको अभी तक प्रमिद्ध विद्वान् गोम्मटसार त्रिलोकसार जैसे जटिल शास्त्रो के टीकाकार जयचन्द छावडा की रचना माना जाता है। पुष्ट प्रमाणो के अभाव में 'नैन' छाप के पदो को जयचन्द छावडा के पद मान लेना मर्वथा सदिग्घ है। चरित ग्रन्थो की प्रशस्ति मे तो कवि अपना परिचय लिख देता है, कोई चरित ग्रन्थ लिखने के अभाव में नयनचन्द हमें अपने परिचय से अवगत नही करा मके। अत नयनचन्द नामक किसी भक्त कवि के होने की सम्भावना से इन्कार नही किया जा सकता है।

15. बुधजन:—

इनका जन्म जयपुर शहर में निहालचन्द्र बज के यहाँ हुआ। बुधजन का दूसरा नाम भदीचन्द्र था। इनके पाच भाई और थे। इनके गुरु प मागीलाल जी थे। बचपन से ही जैन धर्म और शास्त्रो मे अधिक रुचि लेने के कारण बडे होने पर बुधजन बहुत विद्वान् हो गए। गहन पाण्डित्य के अतिरिक्त शका समाधान की भी इनमे अद्भुत क्षमता थी। बुधजन दीवान अमर चन्द के यहा मुनीम का काम करते थे। इनका बनवाया हुआ भदीचन्द मन्दिर जयपुर के प्रसिद्ध जैन मन्दिरो मे से है। बुधजन के निम्नलिखित ग्रंथ उपलब्ध है :—

1. बुधजन सतसई
2. तत्वार्थ बोध
3. भक्तामर स्तोत्रोत्पत्ति कथा
4. सबोध अक्षर बावनी
5. योगसार भाषा
6. पचास्तिकाय भाषा
7. पच कल्याणक पूजा
8. मृत्यु महोत्सव
9. छहढाला
10. इष्ट छत्तीसी
11. वर्द्धमान पुराण सूचनिका
12. दर्शनपच्चीसी
13. बारह भावना पूजन
14. पद सग्रह

16. माणिकचद —

माणिकचद भावसा गोत्रीय खडेलवाल जैन थे। बाबा दुलीचद भडार जयपुर के पद सग्रह न 428 मे इनके 183 पद प्राप्त हुए हैं, जो भक्ति और विरह के है।

17. उदयचन्द —

यह जयपुर नगर अथवा इसके आस-पास के ही रहने वाले थे। उदयचन्द लुहाडिया गोत्रीय खण्डेलवाल जैन थे। इनका रचनाकाल सवत् 1890 बतलाया जाता है। अभी तक उदयचन्द के लगभग 94 पद प्राप्त हुये हैं। प्राप्त पदो मे आराध्य का महिमागान तथा कवि का अवगुण निवेदन अधिक है।

18. पार्श्वदास —

पार्श्वदास जयपुर निवासी ऋषभदास निगोत्या के पुत्र थे। पार्श्वदास के दो बडे भाई मानचन्द और दौलतराम थे। पार्श्वदास को प्रारम्भिक शिक्षा अपने पिता से मिली। शास्त्र-पठन और परमार्थ तत्व की ओर इनका झुकाव प सदासुखदास के सम्पर्क से हुआ। पार्श्व-दास का साधना स्थल शान्तिनाथ जी का वडा मन्दिर जयपुर था। वहा इनके प्रवचन को सुनने के लिये काफी जैन समुदाय एकत्र होता था। पार्श्वदास के शिष्यो मे बख्तावर कासलीवाल प्रमुख थे। उसे ही ये अपना पुत्र और मित्र समझते थे। पार्श्वदास अपने जीवन के अन्तिम वर्षों मे अजमेर रहने लग गये थे। वहा सर सेठ मूलचन्द सोनी के सान्निध्य में वैशाख सुदि 5 सवत् 1936 को इन्होने समाधि मरण लिया।

पार्श्वदास का एक गद्य ग्रन्थ 'ज्ञान सूर्योदय नाटक की वचनिका' तथा समस्त काव्य-रचनायें 'पारस-विलास' मे सग्रहीत है। लघु ग्रन्थो की अपेक्षा कविवर पार्श्वदास की काव्य-प्रतिमा का पूर्ण निदर्शन उनके पदो मे अधिक है। 43 राग-रागिनियो मे लिखित 425 पदों

मे ग्रध्यात्म, भक्ति, विरह तथा नीति ग्रादि विभिन्न विषयक हैं। पार्श्वदास के पद विभिन्न प्रतिलिपियो के पाठ सम्पादन के ग्राधार पर पार्श्वदास पदावली के रूप में दिगम्बर जैन समाज ग्रमीरगज, टौंक द्वारा प्रकाशित करवाये जा चुके है।

19 पेतसी साह—

इन्होंने नेमजी की लूहरि लिखी। इस रचना मे राजमति के बारह महीनो के वियोग का वर्णन है। यह रचना तेरहपथी मन्दिर, टौंक के ग्रन्थाक 50 व मे सग्रहीत है।

20. पेतसी बिलाला—

इनकी 'सील जखडी' मे नारी निन्दा की गई है। यह रचना तेरहपथी मन्दिर के गुटका नं 50 के पृष्ठ 195 पर ग्रकित है।

21. डालूराम—

यह सवाई माधोपुर के ग्रग्रवाल श्रावक थे। इन्होने कुछ पूजाग्रो के ग्रतिरिक्त सवत् 1895 में 'पच परमेष्ठीगुण स्तवन' लिखी।

22 नन्दराम—

यह वखतराम के पुत्र थे। इनके पद तेरहपथी मन्दिर, टौंक मे ग्रन्थाक 50 मे पृष्ठ 208-213 पर मिलते हैं।

23 रामदास—

तेरहपथी मन्दिर, टोंक के ग्रन्थाक 100 व के पृष्ठ 120-122 पर इनकी रचना 'विनती' सग्रहीत है।

24 मूलकचन्द—

तेरहपथी मन्दिर टोंक के ग्रन्थाक 100 ब के पृष्ठ 146-148 पर इनकी रचना 'विनती' ग्रकित है।

25 रामचन्द्र—

सवत् 1957 में पंडित शिवदत्त द्वारा लिखी गई इनकी एक रचना 'चौवीस तीर्थंकर पूजा' जैन मन्दिर निवाई में प्राप्त है। राम उपनाम मे मिलने वाले इनके कुछ पद दिगम्बर जैन शोध सस्थान, जयपुर में सग्रहीत हैं।

26. मयिलाल:—

संवत् 1958 में लिखी 'छंदबद्ध समव शरण पूजा' जैन मन्दिर निवाई में उपलब्ध है।

27 स्वरूपचन्द मुनि —

सवत् 1910 मे लिखी गई एक रचना चौंसठ ऋद्धि विधान पूजा जैन मन्दिर निवाई मे प्राप्त है।

28. सवाईराम —

इनकी एक रचना 'जगतगुरु की वीनती' चौधरियान मन्दिर टौंक के ग्रन्थाक 102 ब के पृष्ठ 67 पर अकित है।

29 सुगनचन्द —

यह जीवराज बड़जात्या के पुत्र थे। इनकी माता गगा और भाई मगनलाल, सुज्ञान, बख्तावर और हरसुख थे। यह अपने पिता के मझले पुत्र थे। इन्हे छद और व्याकरण का अच्छा ज्ञान था। इन्होने जिनभक्ति की प्रेरणा से 'रामपुराण' ग्रन्थ की रचना की।

30 चन्द —

चन्द नाम से दो रचनाये चोईस तीर्थाकिरा की वीनती तथा चौईस तीर्थाकिरा की समुच्चय वीनती, तेरहपथी मन्दिर टौक के गुटका नम्बर 100 ब में पृष्ठ 102-121 पर सग्रहीत हैं।

31 दीपचन्द शाह —

इनकी प्रमुख रचना 'ज्ञान दर्पण' जैन मन्दिर निवाई में ग्रन्थ सख्या 33 पर उपलब्ध हैं। इसमे कवि ने दोहा, कवित्त, सवैया, अडिल्ल, छप्पय आदि 196 छन्दो मे अध्यात्म की चर्चा की है। दीप उपनाम से 12 दोहे और कुछ पद तेरहपथी मन्दिर टौक के गुटका न 50 ब में सग्रहीत है।

32. महेन्द्रकीर्ति —

यह सागानेर रहते थे। इनकी एक रचना 'धमालि' तेरहपंथी **मन्दिर टौंक के गुटका** न 50 ब में सग्रहीत है।

33 विश्वभूषण —

इनकी दो रचनायें श्री गुरु जोगी स्वरूप गीत और मुनीश्वरा की **बीनती, तेरहपथी मन्दिर** टौंक के गुटका न 50 ब मे सग्रहीत है। इनके कुछ पद भी दिगम्बर जैन शोध सस्थान जयपुर मे उपलब्ध हैं।

उक्त विवेचन के आधार पर स्पष्ट है कि 18-20 वी शताब्दी के मध्य परिनिष्ठित राजस्थानी तथा ढूढाडी (राजस्थानी तथा व्रज भाषा का सम्मिलित रूप) में अनेक कवियो द्वारा विशाल साहित्य का सृजन हुआ। समृद्ध साहित्य भण्डारो में खोजे जाने पर कई अज्ञात कवि तथा ज्ञात कवियो की अज्ञात रचनाए उपलब्ध हो सकती हैं। राजस्थानी तथा हिन्दी साहित्य के इतिहास में आलोच्य काल के कई प्रमुख कवियो, भट्टारक नेमिचन्द्र, ब्रह्म नाथु, दौलतराम नवल, बुधजन, पार्श्वदास का उचित प्रतिनिधित्व नितान्त आयोजित एव न्याय सगत है।

राजस्थानी जैन गद्य की परम्परा 7.

—अगरचन्द नाहटा

यह तो निश्चित है कि अपभ्रश मे पद्य रचनाओ की जो धारा वही वह गद्य मे नही दिखायी देती और अपभ्रश से ही राजस्थानी भापा विकसित हुई इसलिए प्रारम्भिक राजस्थानी में गद्य बहुत ही कम मिलता है। राजस्थानी मे काव्यो की परम्परा तो 11वी से 14वी तक मे खूब विकसित हो चुकी पर इस समय का राजस्थानी गद्य प्राय नही मिलता। यद्यपि कुछ रचनाये लिखी अवश्य गई पर वे सुरक्षित नही रह सकी। कारण स्पष्ट है कि पद्य मे जो लय-बद्धता और काव्य-सौष्ठव पाया जाता है उसी के कारण उसको याद रखने मे अधिक सुविधा होती है। गद्य को लम्बे समय तक मौखिक रूप मे याद रखना सम्भव नही होता।

गद्य मे अपने भावो को प्रकट करने की सुविधा अवश्य रहती है इसलिए बोलचाल मे तो उसकी प्रधानता रहती है पर साहित्य गद्य मे प्राय इसीलिए लिखा जाता रहा है कि प्राकृत, सस्कृत आदि भाषाओ की रचनाओ को जन साधारण समझ नही पाते इसलिये टीका, टव्वा और बालावबोध के रूप मे गद्य का व्यवहार अधिक हुआ है। मौलिक रचनाये बहुत ही कम लिखी गई। इसीलिये राजस्थानी के प्राचीन गद्य को भी हम अधिकाश बालावबोध टीकाओ के रूप मे प्रयुक्त पाते हैं। अभी तक 14वी शती के पूर्व का गद्य प्राय नही मिलता, गद्य का कुछ अश शिला-लेखो आदि मे मिलता है पर उससे भाषा का स्वरूप स्पष्ट नही हो पाता।

प्राचीन राजस्थानी गद्य की मैंने खोज की तो मुझे मुनि जिन विजय जी के पास एक प्राचीन प्रति ऐसी देखने को मिली जिसमे 12वी शती के सुप्रसिद्ध विद्वान् जैनाचार्य जिनवल्लभसूरि जी की प्राकृत भापा की रचना का सक्षिप्त अर्थ लिखा हुआ था। मेरे खयाल से वह 13वी शती में किसी ने आचार्यश्री के उक्त ग्रन्थ को जनसाधारण क बोधगम्य बनाने के लिये सक्षिप्त अर्थ लिख दिया होगा। जैसे प दामोदर रचित कौशली बोली का 'उक्ति-व्यक्ति प्रकरण' पाटण के जैन ज्ञान भण्डार से प्राप्त करके मुनी जिनविजय जी ने सपादित और प्रकाशित किया है—वैसे ग्रन्थो की परम्परा राजस्थानी में भी रही है जिससे सस्कृत को सीखने में सुगमता हो। इस तरह की एक रचना 'बाल-शिक्षा' स. 1336 मे रचित प्राप्त है और वह राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान जोधपुर से प्रकाशित हो चुकी है। 'प्राचीन गुर्जर काव्य सग्रह' और 'प्राचीन गुजराती 'गद्य सदर्भ' ग्रन्थ में स. 1330 की लिखी हुई आराधना, स. 1358 का नवकार व्याख्यान, स. 1359 का सर्वतीर्थ नमस्कार स्तवन और स. 1340 और 1369 का लिखा हुआ अतिचार ये कतिपय लघु रचनाये प्रकाशित हुई है। इनमे जैन पारिभापिक शब्दो का प्रयोग अधिक हुआ है। अत केवल गद्य को परम्परा का प्रकट करने के लिये ही उनका महत्व है। उस समय की भाषा की थोडी झाकी इससे मिल जाती है। स. 1330 की आराधना की प्रति ताडपत्रीय है। अतः वह इससे पुरानी प्रति की नकल होने पर 13वी शताब्दी की रचना मानी जा सकती है। इस रचना का अतिम अश नीचे दिया जा रहा है जिससे प्राचीनतम राजस्थानी गद्य से पाठक परिचित हो सकें —

"अतीतु निंदउ वर्तमानु सवरहु अनागतु पच्चखउ। पच परमेष्ठि नमस्कारु जिनसासनि सारु, चतुर्दशपूर्व समुद्धारु, सपादित सकल कल्याण सभारु, विहित दुरिता-पहारु, क्षुद्रोपद्रवपर्वतवज्र-प्रहारु, लीलादालतससारु, सु तुम्हि अनुसरहु, जिणिकारणी चतुर्दशपूर्वधर चतुर्दश पूर्वसम्बधिउ ध्यान परित्यजिउ पच परमेष्ठि नमस्कारु स्मरहि, तउ तुम्हि विशेषि स्मरवेउ, अनइ परमेश्वरि तीर्थकरदेवि इसउ अर्थु भणियउ अच्छइ, अनइ ससारतणऊ प्रतिभउ मकरिसउ, अनइ रुद्धि नमस्कार इहलोकि परलोकि सपादियइ ॥ आराधना समाप्तेति ॥"

प्राकृत के सूत्र या गाथा का विवेचन राजस्थानी गद्य में किया गया उसका प्राथमिक नमूना स. 1358 में लिखे हुये नवकार व्याख्यान से यहा उद्धृत किया जा रहा है —

"नमो अरिहंताण ।।1।। माहरउ नमस्कारु अरिहत हुउ । किसा जि अरिहंतु रागद्वेष-रूपिआ अरि-वयरी जेहि हणिया, अथवा चतुपष्ठि इद्र सबन्धिनी पूजा महिमा अरिहइ, जि उत्पन्न दिव्य विमल केवलज्ञान, चउत्रीस अतिशयि समन्वित, अष्ट महाप्रातिहार्य शोभायमान महाविदेहि खेत्रि विहरमान तीह अरिहत भगवत माहरउ नमस्कारु हुउ ।।1।।"

व्रतो में दूषण लगाने को अतिचार कहते हैं। श्रावक पाक्षिक प्रतिक्रमण आदि में लोक भाषा में अपने व्रतो मे लगे हुए दोषो की आलोचना करते है। उस अतिचार सज्ञक रचना में गद्य कुछ अधिक स्पष्ट हुआ है। इसलिए स. 1369 की लिखी हुई ताडपत्रीय प्रति का कुछ अश नीचे दिया जा रहा है —

"हिव दुकृत गरिहा करउ। जु अणादि ससार माहि हीडतई हृतई ईणि जीवि मिथ्यात्वु प्रवर्तविउ। कुतिर्थु सस्थापिउ, कुमार्ग प्ररूपिउ, सन्मार्गु अवलपिउ। हिवु ऊपार्जि मेल्हि सरीरु कुटुबुजु पापि प्रवर्तिउ, जि अघि गण हलऊ खल घरट घरटी खाडा कटारी अरहट्ट पावटा कुप तलाव कीधा कराव्या, अनुमोद्या ते सर्वे त्रिविधि त्रिविधि वोसिरावउ। देवस्थानि द्रवि वेवि पूजा महिमा प्रभावना की घी, तीर्थजात्रा रथजात्रा कीघी, पुस्तक लिखाव्या, सार्धमिक-वाछल्य कीधा, तप नीयम देववदन वादणाई सज्झाई अनेराइ धर्मानुष्ठान तणइ विषइ जु ऊजमु कीधउ सु अम्हारउ सफलु हुओ। इति भावनापूर्वक अनुमोदउ।"

14 वी शताब्दी के राजस्थानी गद्य के कुछ नमूने ऊपर दिये गये, वे सभी छोटी-छोटी रचनाओ के रूप मे हैं। वास्तव मे राजस्थानी गद्य का सही स्वरूप 15 वी शताब्दी से मिलने लगता है। खरतरगच्छ के आचार्य तरुणप्रभसूरि ने 'षडावश्यक बालावबोध' नामक बालावबोध सज्ञक पहली रचना सवत् 1411 मे पाटण मे बनाई। उसमे प्रासगिक कथाए बहुत सी पायी जाती हैं। जिनमे से कुछ 'प्राचीन गुजराती गद्य सदर्भ' मे प्रकाशित हो चुकी है। उन कथाओ मे प्रवाहबद्ध गद्य का स्वरूप स्पष्ट हुआ है—

"1 शका विषइ उदाहरणु यथा—नगरि एकि सेठि एक तणा वि पुत्र ले साल पढइं। तीहरहइ आरोग्य बुद्धि वृद्धि निमित्तु माता सप्रभाव ओसही पेया एकात स्थानि थिकी करावइ। तीह माहि एक रहइ मक्षिकादि शका लगी मनि सूग उपजइ। मानस दुक्खपूर्वक सरीर दुक्ख, इणि कारणि तेहरहइ वल्गुली रोगु ऊपनउ, मूयउ।

2 आकाक्षा विषइ उदाहरणु—राजा अनइ महामात्यु वे जणा अश्वापहारइतउ अटवी माहि गया। भूखिया हूया। वणफल खाधा। नगरि आविया। राजा सूपकार तेडी करी कहइ 'जि के भक्ष्य-भेद सभवइ ति सगलाइ करउ' सूपकारे कीधा।"

तरुणप्रभसूरि ने यद्यपि यह बालावबोध पाटण मे रचा है पर उनका विहार राजस्थान और सिन्ध प्रदेश तक मे होता रहा है। उस समय प्रातीय भाषाओ मे इतना अतर नही था। तरुणप्रभसूरि को आचार्य पद 1388 मे मिला था। अत उनकी रचना की भाषा गुजरात और राजस्थान मे तत्कालीन जन सामान्य की भाषा थी। इसके बाद तो बालावबोध शैली का खूब विकास हुआ और इससे राजस्थानी गद्य के नमूने भी प्रत्येक शताब्दी के प्रत्येक चरण के प्राप्त हैं।

15 वी शताब्दी से तुकात और साहित्यिक गद्य भी प्रचुर परिमाण मे प्राप्त है। सं. 1478 मे 'पृथ्वीचन्द्र चरित्र' माणिक्यचन्द्रसूरि ने गद्य मे बनाया। उसका नाम ही इसीलिए 'वाग्विलास' रखा गया है कि उसमे कथा तो बहुत थोडी है, वर्णन प्रचुर है। यहा वर्षाकाल का कुछ वर्णन नीचे दिया जा रहा है —

"हिव ते कुमार, चड्‌ी यौवनि भरि, परिवरी परिकरि, क्रीडा करइ नवनवी परि। इसिइ अवसरि आविउ आषाढ, इतर गुणि सबाड। काटइयइ लोह, घाम तणउ निरोह। छासि षाटी, पाणि वीयाइ माटी। विस्तरिउ वर्षाकाल, जे पथी तणउ काल, नाठउ दुकाल। जीणिइ वर्षाकालि मधुरध्वनि मेह गाजइ, दुर्भिक्ष तणा भय भाजइ, जाणे सुभिक्ष भूपति आवता जयढक्का वाजइ। चिहु दिसी बीज झलहलइ, पथी घर भणी पुलइ। विपरीत आकाश, चद्र सूर्य परियास। राति अधारी, लवइ तिमिरी। उत्तरनऊ ऊनयण, छायउ गयण। दिसि घोर, नाचइं मोर। सघर, वरसइ धाराघर, पाणी तणा प्रवाह षलहलइ, वाडि ऊपरि वेला वलइ। चीखलि चालता शकट स्खलइ, लोक तणा मन धर्म्म ऊपरि वलइ।"

ऐसे वर्णनात्मक और तुकात साहित्यिक गद्य रचनाओ की एक परम्परा रही है, जिनमे से कुछ रचनाओ का संग्रह मैंने अपने 'सभाशृगार' ग्रथ मे किया है जो नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित हो चुका है। इसी तरह मेरे मित्र डा भोगीलाल साडेसरा सपादित 'वर्णक समुच्चय' के दो भाग वडोदा से प्रकाशित हुए हैं। मेरी जानकारी मे इतना अलकारिक, साहित्यिक गद्य इतना प्राचीन अन्य किसी भी प्रान्तीय भाषा मे नही है।

15 वी शताब्दी के और भी कई बालावबोध प्राप्त है जिनमे सुदर कथाए भी मिलती हैं। उनमे से सोमसुन्दरसूरि के 'उपदेशमाला' और 'योगशास्त्र' बालावबोध की कुछ कथाए 'प्राचीन गुजराती गद्य सदर्भ' मे प्रकाशित हो चुकी है। अभी-अभी 'सीता राम चरित' नामक 15 वी शताब्दी की गद्य कथा डा. हरिवल्लभ मायाणी सपादित 'विद्या' नामक पत्रिका मे प्रकाशित हुई है जो गुजरात विश्वविद्यालय की शोध-पत्रिका है। इसी तरह की 'धनपाल कथा' और 'तत्वविचार प्रकरण' मे राजस्थान भारती आदि मैं प्रकाशित कर चुका हू। स 1485 की लिखी हुई 'कालिकाचार्य कथा' भी मेरे सग्रह मे है।

मेरुतुगसूरि ने व्याकरण चतुष्क बालावबोध, साधुरत्नसूरि ने नवतत्व बालावबोध, दयासिह ने सग्रहणी और क्षेत्रसमास बालावबोध की रचना की। सोमसुन्दरसूरि का षष्टिशतक बालावबोध स 1496 मे रचित डा. साडेसरा ने सपादित करके प्रकाशित किया है। हमारे सग्रह मे 'तपागच्छ गुर्वावली' की स 1497 की लिखी गई प्रति है जो 15 वी शती के ऐतिहासिक गद्य का अच्छा उदाहरण है।

जिनसागरसूरि ने षष्टिशतक बालावबोध स 1491 मे बनाया।

16 वी शताब्दी मे प्राकृत और संस्कृत के अनेक ग्रन्थो की बालावबोध भाषा टीका जैन विद्वानो ने बनायी, जिनमे हेमहसगणि का षडावश्यक बालावबोध स 1501 मे रचा गया। मेवाड के देवकुलपाटक मे माणिक्यसुन्दर गणि ने भवभावना बालावबोध स 1501 मे रचा। जिनसूरि रचित गौतमपृच्छा बालावबोध, सवेगदेव गणि रचित पिण्डविशुद्धि बालावबोध स. 1513, धर्मदेव गणि रचित षष्टि शतक बालावबोध सवत् 1515, आसचन्द्र रचित कल्पसूत्र बालावबोध स 1517, जयचन्द्रसूरि रचित चउसरण बालावबोध स 1518 से पूर्व, उदयवल्लभ-सूरि रचित क्षेत्रसमास बालावबोध, कमलसंयम उपाध्याय रचित सिद्धान्त सारोद्धार आदि प्राप्त हैं और नन्नसूरि रचित उपदेशमाला बालावबोध स. 1543 में रचित रॉयल एशियाटिक सोसायटी, लन्दन से प्रकाशित हो चुका है।

16वी शताब्दी के पूर्वार्ध के गद्य लेखक मेरुसुन्दर और उत्तरार्ध के पार्श्वचन्द्र ने तो अनेकों ग्रन्थो के बालावबोध बनाये जिनमें मेरुसुन्दर खरतरगच्छ के प्रसिद्ध विद्वान् थे। इनके कई बालावबोधो में बहुत सी कथाए पायी जाती हैं। इन्होने केवल जैन आगम और प्रकरणों की ही नही अपितु संस्कृत के अलकार ग्रन्थ 'विदग्धमुखमण्डन' और 'वाग्भट्टालकार' तथा छदग्रन्थ 'वृत्तरत्नाकर' की भी भाषाटीका बालावबोध रूप में बनायी। स. 1518 से 1535 के बीच में आपने 'शीलोपदेशमाला, पुष्पमाला, षडावश्यक, षष्टिशतक, कर्पूर प्रकर, योगशास्त्र, भक्तामर' आदि 20 ग्रथो के बालावबोध रचे। इनका एक स्वतन्त्र प्रश्नोत्तर ग्रंथ भी सं. 1535 में रचित प्राप्त है।

पार्श्वचन्द्र सूरि ने सर्वप्रथम आचाराग, सूत्रकृताग, दशवैकालिक, औपपातिक, प्रश्नव्याकरण, तदुलवैयालिय, चउसरण, साधुप्रतिक्रमण, नवतत्व आदि जैन आगमो पर बालावबोध, भाषा-टीकाए लिखी। इसका मुख्य केन्द्र नागौर, जोधपुर आदि राजस्थान ही था।

खरतरगच्छीय धर्मदेव ने षष्टिशतक बालावबोध (स. 1515), रत्नरगोपाध्याय ने रूपकमाला बालावबोध (स. 1582), राजशील ने सिंदूर प्रकर बालावबोध, अभयधर्म ने दश दृष्टात कथानक बालावबोध, राजहस ने दशवैकल्पिक बालावबोध और प्रवचन सार बनाया। शिवसुन्दर ने गौतमपृच्छा बालावबोध स. 1569 खीवसर मे बनाया।

17वी शताब्दी में भी बालावबोधो के अतिरिक्त कुछ मौलिक प्रश्नोत्तर आदि ग्रन्थ भी रचे गये। उनमे साधुकीर्ति रचित सप्तस्मरण बालावबोध की रचना स. 1611 की दीवाली को बीकानेर के मन्त्री सग्रामसिह के आदेश से की गई। हर्ष वल्लभ उपाध्याय ने 'अचलमत चर्चा' की रचना की जिसकी स. 1613 की प्रति प्राप्त है। सोमविमलसूरि ने दशवैकालिक और कल्पसूत्र बालावबोध, चन्द्रधर्म गणि ने युगादिदेवस्तोत बालावबोध, चारित्र-सिह गणि सम्यक्त्वस्तव बालावबोध स. 1633, जयसोम उपाध्याय ने दो प्रश्नोत्तर ग्रंथ और अष्टोतरी विधि स. 1650 के आसपास बनाये। स. 1651 मे पदमसुन्दर ने प्रवचनसार बालावबोध की रचना की।

उपाध्याय समयसुन्दर जी ने रूपकमाला बालावबोध, षडावश्यक बालावबोध और यति आराधना की रचना की। शिवनिधान उपाध्याय ने स 1652 से 1680 के बीच मे राजस्थान मे रहते हुए काफी गद्य की रचनाए की जिनमे शाश्वत स्तवन बालावबोध की रचना सं 1652 साभर मे, लघुसग्रहणी और कल्पसूत्री बालावबोध स 1680 अमृतसर में, गुणस्थान गर्भित जिनस्तवन नामक राजस्थानी रचना पर सं 1692 सागानेर मे बालावबोध लिखा। इसी तरह राजस्थानी के सुप्रसिद्ध काव्य 'कृष्णरुकमणी री वेलि' की भी बालावबोध भाषा टीका बनायी। आपने विधिप्रकाश नामक ग्रन्थ भी गद्य में रचा है। कृष्ण रुकमणी री वेलि पर समयसुन्दर जी के प्रशिष्य जयकीर्ति ने भी स. 1686 बीकानेर मे बालावबोध लिखा। इन्होंने षडावश्यक बालावबोध जैसलमेर के थाहरुशाह की अभ्यर्थना से स 1693 मे बनाया।

17वी शताब्दी के खरतरगच्छीय विद्वान् विमलकीर्ति ने आवश्यक बालावबोध सं. 1662, जीवविचार-नवतत्व-दण्डक बालावबोध, जयतिहुअण बालावबोध, दशवैकालिक टब्बा, षष्टिशतक बालावबोध, उपदेशमाला टब्बा, प्रतिक्रमण टब्बा, इक्कीमठाणा टब्बा आदि भाषा टीकाए बनायी। इनके गुरुभाई के शिष्य विमलरत्न ने वीरचरित्र बालावबोध स. 1702 साचौर मे बनाया। उदयसागर ने क्षेत्रसमास बालावबोध की रचना स 1657 मे उदयपुर मे की। श्रीपाल ऋषि ने दशवैकालिक बालावबोध स. 1664 मे और कनकसुन्दर गणि ने दशवैकालिक बालावबोध 1666 और ज्ञाताधर्मसूत्र बालावबोध 14000 श्लोक परिमित बनाया। रामचन्द्रसूरि ने कल्पसूत्र बालावबोध, मेघराज जो पार्श्वचन्द्रसूरि के प्रशिष्य थे, ने राजप्रश्नीय, समवायाग, उत्तराध्ययन, औपपातिक, क्षेत्रसमास बालावबोध और साधुसमाचारी की रचना की।

उदयसागर ने सं. 1676 उदयपुर में क्षेत्रसमास बलावबोध मन्त्री धनराज के पुत्र गंगा की अभ्यर्थना से बनाया। पार्श्वचन्द्र गच्छीय राजचन्द्रसूरि ने दशवैकालिक वालावबोध, हर्ष-वल्लभ उपाध्याय ने उपासकदशाग बालावबोध की रचना स. 1669 मे की। सूरचन्द्र ने चातुर्मासिक व्याख्यान स. 1694 मे, मतिकीर्ति ने प्रश्नोत्तर स. 1691 जैसलमेर मे, कमलालाभ ने उत्तराध्ययन बालावबोध स. 1674 और 1689 के बीच मे बनाया। कल्याण सागर ने दानशील-तप-भाव-तरगिणी की रचना स. 1694 मे उदयपुर मे की। नय-विलास रचित लोकनाल बालावबोध की प्रति मेरे सग्रह मे है।

खरतरगच्छीय उपाध्याय कुशलधीर ने पृथ्वीराजकृत कृष्णरुकमणी री वेलि बालावबोध की रचना स. 1696 मे की। इनने रसिकप्रिया बालावबोध स. 1724 जोधपुर मे बनाया।

18वी शताब्दी मे भी राजस्थानी मे गद्य रचना की परम्परा चलती रही। पर उसमे एक नया मोड़ भी आया। 18वी शताब्दी के प्रारम्भ से ही राजस्थान मे हिन्दी का प्रभाव पडना शुरू हुआ। क्योकि एक और मुगल बादशाहो से राजस्थान के राजाओ का सम्पर्क बढ़ा। ये बादशाहो के अधीन होकर अनेक हिन्दी प्रदेशो मे युद्ध करने गये। अत हिन्दी भाषा और साहित्य का प्रभाव उन पर पडा। फिर शाहजहा के बाद हिन्दी कवियो और लेखको तथा कलाकारो को जो प्रोत्साहन मिलता था वह औरगजेब के समय से मिलना बन्द हो गया। फलत अनेक कवि और कलाकार राजस्थान के राजाओ के आश्रित बन गये। उनके राज-दरबार मे प्रतिष्ठा और प्रभाव बढने के कारण भी 18वी शताब्दी से राजस्थानी के साथ-साथ हिन्दी मे भी रचनाए राजस्थान मे होने लगी। जैन कवियो का भी राजाओ से अच्छा सम्बन्ध रहा है। हिन्दी के कवियो और गुणीजनो से भी वे प्रभावित हुए। इसलिये राजस्थानी के जैन कवियो ने भी 18वी 19वी शताब्दी मे राजस्थानी के साथ-साथ हिन्दी मे भी काफी रचनाएं है। पद्य रचनाओ के साथ-साथ गद्य मे भी हिन्दी का प्रयोग होने लगा। दिगम्बर सम्प्रदाय मे तो हिन्दी के कवि और गद्य लेखक बहुत अधिक हो गये। क्योकि 17वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध के कवि बनारसीदास यद्यपि आगरा मे हुए पर उनकी रचनाओ का प्रचार राजस्थान और पजाब तक बढता गया। उनके प्रचलित दिगम्बर तेरापथ का भी प्रभाव पड़ा।

18वी शताब्दी के प्रारम्भ मे श्वेताम्बर खरतरगच्छीय कवि जसराज जिनका दीक्षा नाम 'जिनहर्ष' था ने बहुत बडा साहित्य निर्माण किया। उनका प्रारम्भिक जीवन काल राजस्थान मे तथा पिछला गुजरात के पाटण में बीता। लक्ष्याधिक पद्य रचनाओ के अतिरिक्त इन्होने गद्य मे दीवाली कल्प बालावबोध, स्नात्र पचासिका, ज्ञान पचमी और मौन एकादशी पर्व कथा बालबोध की रचना की।

यहा यह स्पष्ट कर देना आवश्यक है कि बहुत से जैन कवियो के गद्य मे राजस्थानी एव गुजराती का मिलाजुला रूप मिलता है। क्योकि उनका उद्देश्य था गुजरात और राजस्थान दोनो प्रातो के जैनी उनकी रचना को ठीक से समझ सकें। वैसे भी उनका विहार दोनो प्रान्तों मे समान रूप से होता था, अत भाषा मे मिश्रण होना स्वाभाविक ही है। राजस्थान के यति चाहे वे पजाब मे तथा चाहे वे बगाल की ओर गये हो और मालवे में तो राजस्थानी का प्रभाव था ही। अत इन सब प्रान्तो मे जो उन्होने रचनाये की वे अधिकाश राजस्थानी भाषा में ही है। क्योकि वहाँ के अधिकाश जैनी राजस्थान से ही गए हुए थे और उनकी घरेलू बोली राजस्थानी ही थी। इसलिये राजस्थानी में लिखी हुई रचना उनके लिये समझने मे सुगम थी।

18वी शताब्दी के कवि जयरग के शिष्य सुगुणचन्द ने ध्यानशतक बालावबोध की रचना सवत् 1736 फागुन सुदी 5 को जैसलमेर में की।

उपरोक्त कवि जिनहर्ष के गुरुभ्राता कवि लाभवर्द्धन ने चाणक्यनीति और सुभाषित ग्रथ पर राजस्थानी भाषा में टब्बा लिखा। टब्बा एक तरह से सक्षिप्त अर्थ को कहते है, पर बालावबोध मे विस्तृत विवेचन होता है टब्बे लिखने की शैली भी ऐसी होती है कि जिसमे प्राकृत या सस्कृत आदि के मूल ग्रथ की एक पक्ति बडे अक्षरो में लिखी जाती है और उसके ऊपर छोटे अक्षरों मे उसका अर्थ लिख दिया जाता है।

खरतरगच्छीय प रत्नराज के शिष्य रत्नजय जिनका गृहस्थावस्था का नाम सभवत नरसिह था, उन्होने छठे अगसूत्र ज्ञाता पर टब्बा बनाया जिसका परिमाण 13581 श्लोको का है। इसकी प्रति सवत् 1733 की लिखी हुई मिली है। उन्होने सप्तस्मरण टब्बा बनाया। सुप्रसिद्ध कल्पसूत्र और हर्षकीर्ति सूरि के सस्कृत वैद्य ग्रथ 'योग-चिन्तमणि' पर बालावबोध नामक भाषा टीकाये बनायी। इनमें से कल्पसूत्र बालावबोध का परिमाण 5229 श्लोको का है। यहा जो श्लोको का परिमाण बतलाया जाता है वह अनुष्ठूपूछ्द मे 32 अक्षर होते है अत. गद्य के भी 32 अक्षरो को एक श्लोक मानकर ग्रन्थो का परिमाण बतलाना चालू हो गया। जो लहइया लोग ग्रन्थो की प्रतिलिपि करते थे उनको भी लिखाई का पारिश्रमिक श्लोक परिमाण के हिसाब से दिया जाता था जैसे 100 या 1000 श्लोक की लिखाई की रेट (दर) तय हो जाती थी और ग्रन्थ की नकल कर लेने पर 32 अक्षरो के श्लोक के हिसाब से लिखाई के जितने श्लोक होते उससे पैसो का चुकारा कर दिया जाता।

18वी शताब्दी के विद्वान् उपाध्याय लक्ष्मीवल्लभ ने सस्कृत, हिन्दी, राजस्थानी तीनो भाषाओ मे राजस्थानी रचनाये की है। इन्होने गद्य मे भर्तृहरि के शतक त्रय और पृथ्वीराज वेलि का टब्बा या अर्थ लिखा, जिससे इन ग्रन्थो को सर्वसाधारण समझ सके। पृथ्वीराज वेलि राजस्थानी का सुप्रसिद्ध सर्वोत्तम काव्य बीकानेर के माहाराजा पृथ्वीराज ने बनाया है। डूगर भाषा की यह उत्कृष्ट कृति समझने मे कठिन पड़ती है इसलिये कई जैन विद्वानो ने इस काव्य के सस्कृत व राजस्थानी मे टीकाये लिखी है। उपाध्याय लक्ष्मीवल्लभ ने इसकी भाषा टीका विजयपुर के चतुर व्यक्तियो की अभ्यर्थना से बनायी। इसकी सवत् 1750 की लिखी हुई प्रति प्राप्त हुई है।

कवि कमलहर्ष के शिष्य विद्याविलास ने सवत् 1728 मे कल्पसूत्र बालावबोध की रचना की। जैन आगमो मे सबसे अधिक प्रचार कल्पसूत्र का है क्योकि प्रतिवर्ष पर्युषणो मे इसे बांचा जाता है। अत इस सूत्र पर सस्कृत व राजस्थानी मे सबसे अधिक टीकाये बनायी गई हैं।

18वी शताब्दी के खरतरगच्छीय जैन विद्वानो मे उपाध्याय धर्मवर्द्धन राजमान्य विद्वान् थे। इनको लघु रचनाओ का सग्रह मैंने सम्पादन करके 'धर्मवर्द्धन ग्रन्थावली' के नाम से प्रकाशित करवा दिया है। इन्होने खण्डेलवाल रेखा जी के पौत्र, जीवराज के पुत्र नैना के लिये दिगम्बर अपभ्रश आध्यात्मिक ग्रथ, परमात्म-प्रकाश की हिन्दी मे भाषा टीका संवत् 1762 मे बनायी, जिसको एक मात्र प्रति अजमेर के दिगम्बर भट्टारकीय शास्त्र भडार में प्राप्त है। इनके शिष्य कीर्तिसुन्दर ने एक 'नाग विलास कथा सग्रह' नामक कथाओ की सक्षिप्त सूचना करने वाले ग्रन्थ की रचना गद्य में की, जिसे मैंने वरदा में प्रकाशित करवा दिया है।

खरतरगच्छ की सागरचन्द्रसूरि शाखा के कवि लक्ष्मीविनय ने सस्कृत के ज्योतिष ग्रन्थ भुवनदीपक की बालवबोध भाषा टीका सवत् 1767 मे बनायी। इसके पहले पुण्यहर्ष के शिष्य अभयकुशल ने सिणली ग्राम के चतुर सोनी के आग्रह से भर्तृहरि शतक बालावबोध की रचना सन्त् 1755 में की। इनके गुरु पुण्यहर्ष ने इनके साथ रहते हुये दिगम्बर ग्रन्य पदमनन्दी पचविशिका की हिन्दी भाषा मे टीका सवत् 1722 मे आगरा के जगतराय के लिये बनायी।

ज्ञानचन्द्र के शिष्य कवि श्री देव ने जैन भूगोल सवंधी प्राकृत ग्रन्थ क्षेत्र समास बालावबोध की रचना की ।

महानतत्ववेत्ता उपाध्याय देवचन्द्र जी ने मरोठ की श्राविका के लिये जैन आगमों के सार रूप मे आगम सार ग्रन्थ गद्य रूप मे सवत् 1776 मे बनाया। इन्होंने नयचक्र सार बालावबोध, गुण-स्थान-शतक व कर्मग्रन्थ बालावबोध, विचार सार टब्बा, गुरु गुण पट्त्रिशिका टब्बा और विचार रत्नसार प्रश्नोत्तर ग्रन्थ गद्य में विवेचित किये। अपने बनाये हुए 24 तीर्थंकरो पर भी इन्होंने बालावबोध भाषा टीका बना के उन स्तवनो के विशुद्ध भावो को स्पष्ट किया। आपने सप्त स्मरण बालावबोध, दण्डक बालावबोध और शातरस आदि और भी गद्यात्मक रचनायें की।

18वी के उत्तरार्द्ध और 19वी के प्रारम्भ के जैन विद्वान् महोपाध्याय रामविजय ने कई गद्य रचनाये करके उन प्राकृत सस्कृत ग्रन्थो को सर्व साधारण के लिये सुगम बना दिया। इनमे से कल्पसूत्र बालावबोध का रचनाकाल तो 19वी के प्रारम्भ का है। इनकी सबसे पहली गद्य रचना 'जिनसुख सूरि मझलस' हिन्दी की छटादार तुकान्त गद्य रचना बडी सुन्दर है, जो सवत् 1772 मे रची गयी। इसके बाद उन्होने सवत् 1788 मे भर्तृहरि शतकत्रय बालावबोध सोजत के छाजेड मन्त्री जीवराज के पुत्र मनरूप के आग्रह से बनाया। उसी के आग्रह से अमरु शतक बालावबोध की रचना सवत् 1791 मे की।

इन्होने सुप्रसिद्ध कविवर बनारसीदास जी के समय-सार के हिन्दी आध्यात्मिक काव्य की बालावबोध भाषा टीका स्वर्णगिरि के गणधर गोत्रीय जगन्नाथ के लिये सवत् 1792 में की। सवत् 1792 मे लघु स्तव नामक देवी स्तुति की भाषा टीका बनायी। इनके अतिरिक्त भक्तामर टब्बा, नवतत्व टब्बा, दुरिश्वर स्तोत्र टब्बा, कल्याण-मन्दिर टब्बा, सन्निपात कलिका टब्बा और हेमीनाममाला भाषा टीका की रचना की। अर्थात् ये बहुत अच्छे व बड़े गद्य लेखक थे।

खरतरगच्छीय जसशील के शिष्य नैनसिंह ने बीकानेर के महाराजा आनन्दसिंह के कहने से भर्तृहरि नीतिशतक की हिन्दी भाषा टीका सवत् 1786 मे लिखी।

इस शताब्दी मे जयचन्द नाम के दो विद्वान् हुये हैं जिनमे से एक ने माताजी की वचनिका नामक राजस्थानी की एक सुन्दर गद्य रचना सवत् 1776 मे कुचेरा में रहते हुये बनायी। यह राजस्थानी शोध सस्थान चौपासनी से प्रकाशित परम्परा मे छप चुकी है।

दयातिलक के शिष्य दीपचन्द्र ने बालतत्र नामक सस्कृत वैद्यक ग्रन्थ की हिन्दी भाषा टीका सवत् 1792 जयपुर में बनायी जिसकी हस्तलिखित प्रति हमारे सग्रह में है।

18वी शताब्दी के प्रारम्भ मे खरतरगच्छीय विमलरत्न ने वीर चरित्र बालावबोध सवत् 1702 साचोर मे बनाया जिसका परिमाण 552 श्लोको का है। इसके बाद समयवसुन्दरजी की परम्परा के राजसोम ने श्रावकाराधना भाषा और इरिया-वही मिथ्यादुष्कृत बालाबोध की रचना की, जिसकी प्रति सवत् 1709 की प्राप्त है। सवत् 1719 मे ख ज्ञाननिधान ने विचार छत्तीसी गद्य ग्रन्थ बनाया।

पार्श्वचन्द्रगच्छीय रामचन्द्र ने द्रव्य सग्रह बालावबोध की रचना की है।

जैसा कि पहले कहा गया है कि राजस्थान के खरतरगच्छीय कवियो ने पजाब सिंघ में चातुर्मास करते हुये भी राजस्थानी गद्य में रचनाये की। जैसे ख पद्मचन्द्र शिष्य ने नवतत्व का

विस्तृत वालावबोध सवत् 1766 घटा मे बनाया, जिसका 3000 श्लोक परिमाण है। इसी घटा मे बैंगड शाखा के सभाचन्द्र ने ज्ञानसुखडी सवत् 1767 मे रचा । इनके अतिरिक्त भी बहुत सी गद्य रचनाये हैं पर उनमे रचना स्थान का उल्लेख नही है। खरतरगच्छीय लेखको के लिये तो प्राय राजस्थान में रचे जाने की सभावना की जा सकती है, क्योकि इस गच्छ का प्रचार व प्रभाव राजस्थान में ही अधिक रहा है। तपागच्छ का गुजरात मे। इसलिये इस निबन्ध मे खरतरगच्छ के साहित्य का ही अधिक उल्लेख हुआ है।

19वी शताब्दी मे साहित्य रचना पूर्वापेक्षा कम हुई। उल्लेखनीय श्वेताम्वर गद्य रचनाये तो और भी कम है।

ख रत्नधीर ने भुवनदीपक नामक प्रसिद्ध ज्योतिष ग्रन्थ का विस्तृत वालावबोध सवत् 1806 में बनाया। यह दिल्ली के नवाब के कहने से हिन्दी मे लिखा गया। इसके बाद चैनसुख ने वैद्यक ग्रन्थ शतश्लोकी, वैद्यजीवन और पथ्यापथ्य पर टब्बा अर्थात् शब्दार्थ लिखा। यह रचना सवत् 1820 के लगभग हुई। कवि रघुपति ने दुरिअर बालावबोध रचा जिसकी प्रति 1813 की प्राप्त है ।

इस शताब्दी के उल्लेखनीय विद्वानो मे उपाध्याय क्षमा कल्याण जी ने प्रश्नोत्तर साहित्य शतक भाषा संवत् 1853 बीकानेर में और अबड चरित्र संवत् 1854 में रचा। दूसरे ग्रन्थकार श्री ज्ञानसारजी जिन्होने आनन्दघनजी के चौबीसी और पदो पर विस्तृत विवेचन सवत् 1866 के आसपास किशनगढ में रचा। उन्होंने और भी कई बालावबोध और गद्य रचनायें की है जिनमे आध्यात्मगीता वालावबोध, जिनप्रतिमा स्थापित ग्रन्थ, पच समवाय अधिकार आदि उल्लेखनीय हैं।

खरतर आनन्दवल्लभ ने सवत् 1873 से 1882 के बीच कई रचनाये गद्य मे कीं जिनमे चौमासा व्याख्यान, अठाई व्याख्यान, ज्ञान पचमी, मौन ग्यारस, होली के व्याख्यान और दडक, सग्रहणी, विशेपशतक, श्राद्ध दिनकृत्य बालावबोध उल्लेखनीय हैं। प. कस्तूरचन्द ने षट्-दर्शन समुच्चय वालावबोध की रचना सवत् 1894 मे बीकानेर मे की।

20वी शताब्दी मे भी वैसे कई पुराने ग्रन्थो पर बालावबोध रचे गये जैसे देवमुनि ने श्रीपाल चरित्र भाषा संवत् 1907 मे रचा। सुगनजी ने मूर्तिमडन प्रकाश, रामलाल जी ने श्रीपाल चरित्र भाषा सवत् 1957, अठाई व्याख्यान 1949, सघपट्टक बालावबोध 1967 मे लिखे और स्वतन्त्र ग्रन्थ हिन्दी भाषा मे बहुत से बनाये। इसी तरह यति श्रीपाल जी ने जैन सम्प्रदाय शिक्षा नामक बहुत ही महत्वपूर्ण ग्रन्थ लिखा। इसी तरह यति पन्नालाल जी ने आत्मप्रबोध हिन्दी अनुवाद आदि अन्य अनेक लोगो ने प्राचीन ग्रन्थो के अनुवाद व कुछ मौलिक ग्रन्थ हिन्दी मे लिखे। 20वी शताब्दी के उत्तरार्द्ध से तो हिन्दी मे ही अधिक लिखा जाने लगा है।

तेरापन्थी सम्प्रदाय के प्रवर्तक भीखण जी ने राजस्थानी गद्य मे 19वी शताब्दी मे काफी लिखा पर वह गद्य सग्रह प्रकाशित नही हुआ। इस सम्प्रदाय के सबसे बडे गद्य लेखक आचार्य जीतमल जी जयाचार्य हुये जिन्होने कथाओ का एक बहुत बडा सग्रह 20वी शताब्दी के प्रारम्भ मे तैयार किया। जिसका परिमाण करीब 60 हजार श्लोक का बतलाया जाता है। इनकी और भी गद्य रचनाये है पर अभी तक प्राय वे सभी अप्रकाशित है। स्थानकवासी सम्प्रदाय के गद्य साहित्य की भी पूरी जानकारी प्राप्त नही हो सकी। 20वी शताब्दी से तो पद्य की अपेक्षा गद्य में अधिक लिखा जाने लगा। अत उन सबका विवरण देना यहा सभव नही है। सक्षेप मे श्वेताम्वर लेखको ने पद्य के साथ-साथ गद्य में भी निरन्तर साहित्य निर्माण किया है और वह लाखो श्लोक परिमित है ।

राजस्थानी गद्य साहित्यकार 8

—डा. देव कोठारी

जैन श्वेताम्बर तेरापन्थ के अस्तित्व का इतिहास वि स 1817 की आषाढ पूर्णिमा से आरम्भ होता है। इस प्रकार एक सम्प्रदाय के रूप मे तेरापन्थ यद्यपि अर्वाचीन धर्म-सघ है किन्तु साहित्यिक चेतना और उसकी सृजनात्मक अभिव्यक्ति के रूप मे उसकी प्रसिद्धि सर्व विदित है। नवीन सम्प्रदाय की कुशल सगठन व्यवस्था, स्वरूप-निर्माण एव उसके प्रचार-प्रसार के लिये आरम्भिक दिनो से ही राजस्थानी गद्य और पद्य के रूप मे विपुल साहित्य-निर्माण की परम्परा आरम्भ हो गई थी, जिसकी सुदृढ नीव आद्य आचार्य सत भीखण जी के कर-कमलो द्वारा रखी गई थी, परिणामस्वरूप परवर्ती काल मे भी विविध रूपात्मक एव विषयात्मक साहित्य सृजन की प्रक्रिया अनवरत रूप से चालू रही।

तेरापन्थ का राजस्थानी गद्य इसी परम्परा में विशाल परिमाण में प्रारम्भिक समय से ही प्राप्त होता है। अब तक किये गये अनुसधान से तेरापन्थ सम्प्रदाय के ग्यारह राजस्थानी गद्य साहित्यकार और उनकी कृतिया प्रकाश में आई है। समस्त कृतिकार आचार्य अथवा सत हैं। इनकी कुछ तात्विक-चर्चा-प्रधान रचनाये यत्र तत्र प्रकाशित भी हुई हैं किन्तु अधिकाश गद्य साहित्य हस्तलिखित गन्थो एव पत्रो के रूप मे ही उपलब्ध होता है। इनकी मूलप्रतियां तथा उनकी प्रतिलिपिया वर्तमान में युगप्रधान आचार्य श्री तुलसी एव उनके आज्ञानुवर्ती साधु-साध्वियो के पास है। कुछ प्रतिया लाडनू (जिला नागौर) स्थित सग्रहालय मे भी विद्यमान है।

यह सम्पूर्ण गद्य साहित्य मौलिक और अमौलिक दो प्रकार का है। मौलिक गद्य, कृतिकार की स्वय की उद्भावना से उद्भाषित है तथा अमौलिक गद्य अनुदित अथवा टीकायुक्त है। रूप-परम्परा की दृष्टि से भी यह गद्य काफी समृद्ध है। गद्य साहित्य के कुछ रूप तो राजस्थानी गद्य साहित्य के लिये अत्यन्त नवीन और विशिष्ट है, वस्तुत ये तेरापन्थ सम्प्रदाय की देन के रूप मे विख्यात है। लिखित, हाजरी, मर्यादावलि, हुण्डी, चरचा, टहुआ, दृष्टात (स्मरण) आदि ऐसे ही विशिष्ट गद्य रूप है। समस्त गद्य साहित्य निम्न रूपो में उपलब्ध होता है—

1 लिखित
2. मर्यादावलि
3 हाजरी
4 हुण्डी
5 ख्यात
6 बोल
7 चरचा
8 दृष्टात
9 द्वार
10 थोकडा
11 ध्यान
12 कथा
13. पत्र

14. टड्डका
15. टब्बा
16. अनुवाद
17 व्याकरण
18. प्रकीर्णक

विषय —वैविध्य की दृष्टि से भी यह गद्य साहित्य सुसम्पन्न है। तेरापन्थ धर्म-सघ को मर्यादित, अनुशासित एव सुव्यवस्थित स्वरूप प्रदान करने के लिये समय-समय पर छोटी से छोटी प्रवृत्ति व मर्यादा को भी साहित्यवद्ध करने की परम्परा रही है, फलस्वरूप राजस्थानी गद्य की विधान या मर्यादा-परक रचनाये प्रचुर परिमाण मे मिलती है। नवीन धर्म-सघ की मान्यताओ के प्रचार-प्रसार हेतु तात्विक या सैद्धातिक कृतियो का सृजन भी प्रारम्भिक काल में बहुत हुआ है। व्याख्यान के उद्देश्य से उपदेशात्मक व कथात्मक गद्य साहित्य भी विपुल मात्रा मे लिखा गया। अतीत की अनेक घटनाओ को लिपिबद्ध कर तेरापन्थ के इतिहास को विलुप्त होने से बचाने का कार्य भी क्रमश चलता रहा, फलत ऐतिहासिक गद्य का निर्माण भी बहुत हुआ। प्रथम वार सर्जित सस्मरणात्मक राजस्थानी गद्य भी इस सम्प्रदाय मे ही मिलता है। आगम ज्ञान की दुरुहता को कम कर उसे सहज सुलभ करने की दृष्टि से अनुवाद व टब्बो की रचना की गई। व्याकरण-बोध की प्रक्रिया मे तत्सबधी कृतिया भी उपलब्ध होती है। इस प्रकार तेरापन्थ सम्प्रदाय का राजस्थानी गद्य साहित्य विषय वस्तु की विविधता से परिपूर्ण और विशाल है। तत्कालीन धार्मिक एव सामाजिक चेतना के प्रस्फुटन और अध्ययन की दृष्टि से भी इसके अनन्य महत्व को नकारा नही जा सकता है। मोटे रूप मे इस गद्य साहित्य का नियमानुसार वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है—

1 विधान या मर्यादा प्रधान
2 तात्विक
3 उपदेशात्मक
4 सस्मरणात्मक
5 आख्यानात्मक
6 ऐतिहासिक
7 व्याकरण सबधी
8. अनुदित व टीकामूलक
9. अन्य

सम्पूर्ण गद्य साहित्य की राजस्थानी भाषा सहज व सरल है। स्थानीय शब्दो का प्राचुर्य भी यत्र–तत्र देखने को मिलता है। कही–कही गुजराती प्रभाव भी रचनाओ में पाया जाता है। जहा कही भी भाषा में अलकारिता आई है, उससे विषय वस्तु मे निखार ही आया है। भाषा के इन गुणो के कारण ही समाज में ये इतनी अधिक वोधगम्य और प्रिय रही है कि अधिकाश रचनायें लोगो में आज भी कण्ठस्थ है।

गद्यकार और उनकी कृतिया —

तेरापथ के राजस्थानी गद्यकार सख्या की दृष्टि से यद्यपि कम है किन्तु उनका राजस्थानी गद्य-साहित्य मे गुणात्मक योग किसी भी दृष्टि से कम नही है। यहा प्रत्येक गद्यकार, उसकी रचना का परिचय यथा सभव उदाहरण सहित सक्षेप मे प्रस्तुत किया जा रहा है —

1 आचार्य सत भीखणजी —

राजस्थान के तत्कालीन जोधपुर राज्य के अन्तर्गत कटालिया (वर्तमान में जिला पाली) म वि स 1783 की आषाढ शुक्ला त्रयोदशी को भीखणजी (भिक्षु) का जन्म हुआ। इनके

पिता ओसवाल जाति के संकलेचा गोत्र के शाह बलूजी थे। माता का नाम दीपाबाई था। इनके एक बडे भाई भी थे, जिनका नाम होलोजी था। बचपन से ही ये धर्मनिष्ठ, सत्यशोधक और सुधारवादी प्रवृत्ति के थे। विवाहोपरान्त असमय मे ही इनकी पत्नी का देहावसान हो जाने से इनमे वैराग्य की प्रवल भावना जागृत हुई। अन्तत वि स 1808 की मृगशिर कृष्णा द्वादशी को स्थानकवासी सम्प्रदाय के तत्कालीन आचार्य सत रुघनाथ जी के पास 25 वर्ष की उम्र में वगडी कस्वे मे ये दीक्षित हुये।

दीक्षा के पश्चात् इन्होने अपना सारा ध्यान आगम-मन्थन एव चिन्तन में लगा दिया। अपनी तीक्ष्ण और कुशाग्र बुद्धि के द्वारा सत्य से साक्षात्कार करने मे इन्हे अधिक समय न लगा। वि स 1815 के राजनगर (मेवाड) चातुर्मास के पश्चात् आचार-विचार सबधी मान्यताओं को लेकर अपने गुरु से इनका मतभेद हो गया। फलस्वरूप वि स 1817 की चैत्र शुक्ला नवमी को इन्होने चार अन्य साधुओ के साथ आचार्य रुघनाथ जी से अपना सबध विच्छेद कर लिया। तत्पश्चात् केलवा (मेवाड) के चातुर्मास के समय वि स 1817 की आषाढ पूर्णिमा को इन्होने भाव-सयम धारण किया। इसी दिन से तेरापन्थ की स्थापना हुई। एव नवीन धार्मिक क्रान्ति का श्रीगणेश हुआ। लगभग 44 वर्ष तक नवीन धर्म सघ का नेतृत्व करते हुये 77 वर्ष की अवस्था में वि स 1860 की भाद्रपद शुक्ला त्रयोदशी को आपका सिरियारी (मारवाड) मे स्वर्गवास हुआ।

क्रान्त दृष्टा आचार्य भीखणजी का एकमात्र उद्देश्य सम्यग् आचार और सम्यग् विचार की पुन सस्थापना करना था। इस दुर्द्धर मार्ग को महज व सरल बनाने के लिये आपने तत्कालीन राजस्थानी भाषा को अपने प्रवचन तथा नवीन साहित्य के निर्माण के लिये आधार बनाया। आगमो की गूढ बातो को सीधी सरल राजस्थानी मे अभिव्यक्त करने में भी भीखण जी सिद्धहस्त थे। अपने जीवनकाल में आपने लगभग अडतीस हजार श्लोक परिमाण साहित्य गद्य व पद्य मे लिखे। समस्त साहित्य तत्व-विश्लेषणात्मक, शिक्षात्मक, आचार-शोधक, आख्यानात्मक, स्तवन प्रधान एव अन्य विपयो से सबधित है। गद्य-साहित्य अभी तक अप्रकाशित है। गद्य मे आपकी रचनायें मुख्यत हुण्डी, चर्चा, थोकडा, सिखत, (मर्यादा पत्र) आदि के रूप मे उपलब्ध होती है। रचनाओ का सक्षिप्त परिचय इस प्रकार है—

(क) हुण्डिया—

हुण्डी शीर्पक से दो गद्य रचनाये मिलती है, यथा 306 बोला री हुण्डी तथा 181 बोलारी हुण्डी। दोनो हुण्डियो मे सैद्धान्तिक एव मान्यता सबधी विश्लेषण आगम-ग्रथो की साक्षी के आधार पर किया गया है। यह विश्लेषण मुख्यत दया, दान, वृत, अवृत, श्रद्धा, अश्रद्धा तथा आचार-विचार से सवधित है—

1 306 वोला री हुण्डी—यह एक बड़ी रचना है जो 55 पत्रो में समाप्त हुई है। इसका प्रधान विषय वीतराग द्वारा प्रतिपादित धर्म है। भीखणजी ने इसके द्वारा यह स्पष्ट किया है कि वीतराग का धर्म वीतराग की आज्ञा में चलने से ही होता है। वीतराग की आज्ञा के बाहर कोई धर्म नही है। रचना का प्रारम्भिक अश इस प्रकार है—

"श्री वीतराग नो धरम वीतराग री आग्या माहि छै। तिण धरम नी विगत। एक धरम साधु रो ते तो सरव धरम कहिये ये। बीजो धरम श्रावक रो ते देस धरम

कहिये ए दोनुई धरम भगवान री आग्य माहि छै। ए दोनूई धरम ग्यान दरसण अर चारित्र माहि छै।"

2 181 बोला री हुण्डी—यह अट्ठारह पत्रो की एक छोटी रचना है। साधुओ के आचार-व्यवहार को लेकर सूत्रो की साक्षिया उद्धृत करते हुये एव विभिन्न उदाहरणो को प्रस्तुत करते हुये इसकी रचना की गई है। साधुओ के आचार व्यवहार सबधी समस्त बाते इसमे समाहित है।

चरचायें—

चरचा (स चर्चा) सज्ञक कुल दस रचनाये मिलती है। सग्रहीत रूप मे कुल 25 पत्रो मे समाप्त हुई है। सैद्धान्तिक व मान्यता सबधी विभिन्न तथ्यो को सरल राजस्थानी में चर्चा रूप मे इन रचनाओ मे समझाया गया है। समस्त चरचाओ का सूचनात्मक परिचय निम्न है। इस लेख की कलेवरसीमा के कारण प्रत्येक चरचा का रचना उदाहरण नही देकर केवल एक का ही उदाहरण अन्त मे प्रस्तुत किया जा रहा है।

जोगा री चरचा—

इसमे मन, वचन और काया अर्थात् इन तीनो योगो की मुख्य रूप से चर्चा की गई है शुभ अशुभ योग की प्रवृत्ति कैसे होती है, इसका भी इस रचना मे सूक्ष्म विश्लेषण है।

जिनाग्या री चरचा—

जो व्यक्ति जिन आज्ञा के बाहर धर्म की स्थापना करते है, उन स्थापनाओ के बारे में विवेचन करते हुये जिन धर्म के सही स्वरूप की इसमे चर्चा की गई है।

खुली चरचा—

किस कर्म के क्षायोपशम से साधुत्व की प्राप्ति होती है, इसकी खुली चर्चा इसमे की गई है।

आस्रव सवर री चरचा—

आस्रव तथा सवर के बारे में व्याप्त भ्रान्तियो का इसमें स्पष्ट विवेचन किया गया है। आस्रव व सवर जीव होता है, यह सप्रमाण दर्शाया गया है।

कालवादी की चरचा—

जो व्यक्ति कार्य सिद्धि में केवल काल को ही प्रधानता देते हैं, वह प्रधानता जैनागम के अनुकूल नही है। इसका इसमे विवेचन है।

इन्द्रियवादी की चरचा—

इन्द्रियो को कुछ व्यक्ति सावध निरबध कहते हैं, वह सूत्र-सम्मत नहीं है। इसकी चर्चा इसमें की गई है।

द्रव्य जीव-भाव जीव री चरचा—

कुछ व्यक्ति द्रव्य जीव तथा भाव जीव को एक समझते हैं, लेकिन वे दो हैं। आठ आत्माओ का विश्लेषण करते हुये इसे इसमे समझाया गया है।

निक्षेपा री चरचा—

द्रव्य निक्षेप, नाम निक्षेप, स्थापना निक्षेप और भाव निक्षेप, इन चारो में से कौन सा निक्षेप निन्दनीय तथा अवन्दनीय है, इसकी इसमे चर्चा की गई है।

टीकम डोसी री चरचा—

कच्छ प्रान्त के टीकमजी डोसी नामक श्रावक की योग सबधी शकाओ का समाधान सूक्ष्म विश्लेषण के द्वारा इसमे किया गया है।

पाच भाव री चरचा—

इसमे उदय भाव, उपशम भाव, क्षायक भाव, क्षायोपशमिक भाव तथा परिणामिक भाव की विवेचना की गई है। इस रचना का प्रारम्भिक अश रचना उदाहरण की दृष्टि से निम्न है —

> "अथ पाच भाव री चरचा लिख्यते। उदैभाव मोह करम रा उदै सूं उदै भाव छै ते तो सावद्य छै। अर करम रा उदै सू उदैभाव छै ते सावद्य निरवद्य नही। उपशम भाव छै ते तो मोहनी करम उपशमें यै छै। दरसन मोहनी उपशमे या तो उपशम समकित छै।"

थोकडा —एक ही विषय के सक्षिप्त सग्रह को थोकडा (स. स्तोत) कहते है। कुल पाच थोकडे दस हस्तलिखित पत्रो में उपलब्ध हैं। परिचय निम्न है—

पाच भाव रो थोकडो, पैलो—

पाच भावो अर्थात् उदय, उपशम, क्षायक, क्षायोपशमिक और पारिणामिक भावों का विभिन्न यन्त्रो (चार्टो) के माध्यम से इसमे विश्लेषण किया गया है।

पाच भाव रो थोकडो, दूजो—

उदय निष्पन्नादिक बोलो पर उपर्युक्त पांच भावो का यन्त्रो द्वारा विवेचन किया गया है।

आठ आत्मा रो थोकडो—

इस थोकडे में आठ आत्माओ का विवरण यन्त्रो द्वारा प्रस्तुत किया गया है।

भिक्खु पिरिछा—

इसमे भीखणजी से समय-समय पर की गई विभिन्न प्रकार की चर्चायें सग्रहीत हैं।

तेरह द्वार :—

नौ तत्व और छः द्रव्यो का दृष्टान्तो द्वारा इसमे सरल विवेचन किया गया है।

लिखत (मर्यादा पत्र):—

आचार्य सन्त भीखण जी ने नवीन धर्म-सघ को मर्यादित एव सगठित रखने की दृष्टि से समय-समय पर जो लिखित मर्यादायें स्थापित की, उन्हे सामूहिक रूप से इस शीर्षक के अन्तर्गत रखा जा सकता है। ऐसे कुल 24 पत्र है। जिनमे नौ मर्यादायें सघ के सामूहिक स्वरूप को ध्यान मे रखते हुए है तथा अट्ठाइस मर्यादाए व्यक्तिगत पत्रों के रूप मे साधु विशेष के लिये है। इस प्रकार कुल 37 मर्यादायें लिखत रूप मे हैं। सामूहिक मर्यादाओ मे भीखणजी के हस्ताक्षरो के साथ-साथ अन्य साधुओ द्वारा साक्षिया भी दी गई है। आज भी इन मर्यादाओं के आधार पर ही तेरापन्थ धर्मसघ का सचालन होता है। इन मर्यादा पत्रो को शिक्षा व सघीय नियमों-पनियम भी कह सकते हैं। वि स 1832 मृगशिर कृष्णा 7 की प्रथम लिखत (मर्यादा) का एक अंश रचना उदाहरण की स्पष्टता के लिये प्रस्तुत है —

"रिप भीषम सर्वे साधा नैं पूछ नै सर्वे साध साधविया री मरजादा बाधी तै साधा नैं पूछ नैं साधा कना थी कहवाय नैं ते लिपीयें छैं। सर्व साध साधवी भारमल जी री आग्या माहे चालणों। विहार चौमासो करणा तै भारमल जी री आग्या सु करणो। दिख्या देणी ते भारमल जी रे नाम दिष्या देणी। चेला री कपडा री साताकारीआ पेतर री आदि देई नैं ममता करर नैं अनता जीव चारत गमाय नैं नरक निगोद या माहे गया छैं तिण सु सिपादिक री ममता मिटायवा रो नै चारित चोषौं पालणरो उपाय कीधो छै।"

2 कर्मचन्द जी स्वामी :—

देवगढ (मेवाड) के निवासी और अपने माता पिता के इकलौते पुत्र थे। वि. स 1876 में द्वितीय आचार्य भारमलजी के काल मे हेमराज जी स्वामी ने इन्हें दीक्षा दी। वि. स. 1926 मे इनका स्वर्गवास हुआ। इस प्रकार कुल 50 वर्ष तक साधु जीवन पाला।

इनकी ध्यान विषयक एक राजस्थानी गद्य कृति उपलब्ध होती है जो 'करमचन्द जी रो ध्यान' अथवा 'आतम चिन्तण रा ध्यान' के नाम से प्रसिद्ध है। इस कृति मे ध्यान करने की विधि सहज सरल रूप मे समझाई गई है। रचना के उदाहरण की दृष्टि से ध्यान का आरभ इस प्रकार हुआ है :—

"पहिला पद्म आसन थिर करि पछै मन थिर करि विषै कषाय थकी चितनी लहर मिटाय नैं अतेकरण माय इण तरे ध्यावणो। नमस्कार थावो श्री अरहतजी नैं। तै अरहतजी केहवा छै। सुरासुर सेवित चरण कमल सर्वज्ञ भगवत जगन्नाथ। जगजीवा ना तारक। कुगत मारग निवारण। निरवाण मारग पमाडण। निराह, निरहकार।"

3 ऋषिराम :—

तेरापथ के तीसरे आचार्य थे। इनका पूरा नाम रामचन्द्र जी था। वि. स. 1847 मे उदयपुर जिले की वडी रावलिया (गाव मे) इनका जन्म हुआ। पिता का नाम शाह चतरोजी

बम्ब एव माता का नाम कुशलाजी था। दस वर्ष की अल्प वय मे अपनी माता जी के साथ वि. स 1857 की चैत्र पूर्णिमा को उन्होने आचार्य भीखणजी से दीक्षा ग्रहण की। वि. स 1878 की वैशाख कृष्णा नवमी को युवाचार्य और इसी वर्ष माघ कृष्णा नवमी को आचार्य पद पर आसीन हुए। छोटी रावलिया मे वि स 1908 की माघ कृष्णा चतुर्दशी को 62 वर्ष की अवस्था मे स्वर्गवास हुआ।

इनकी 'अथ पाच व्हार ना बोल' शीर्षक एक राजस्थानी लघु गद्य रचना मिलती है जो केवल तीन पत्रो मे है। इसमे साधुओ के कल्पाकल्प की व्यवस्था का विवरण दिया गया है।

4. कालूजी स्वामी बडा :—

इनका जन्म रेलमगरा (मेवाड) मे वि स 1899 मे हुआ था। लगभग नौ वर्ष की उम्र मे वि स 1908 मे आचार्य ऋषिराम से इन्होंने दीक्षा ली। पचास वर्ष तक साधु जीवन व्यतीत करने के पश्चात् सप्तम आचार्य डालगणी के काल मे वि. स 1958 मे दिवंगत हुए। इनकी साहित्यिक रुचि प्रवल थी। लिपि शुद्ध व सुन्दर थी। अपने जीवन काल मे आपने तेरापन्थ के अनेक हस्तलिखित ग्रन्थो की सुन्दर व शुद्ध प्रतिलिपियां की। तेरापथ की ख्यात-का लेखन आपने ही आरभ किया।

तेरापन्थ की ख्यात :—

तेरापन्थ के चतुर्थ सघपति जयाचार्य के काल मे इस ख्यात का लेखन आपने आरभ किया। यह ख्यात सन्तो व साध्वियो की अलग-अलग है। आचार्य भिक्षु के समय मे इस ख्यात का आरभ होता है। इस ख्यात मे साधु साध्वियो का चुम्बकीय जीवन परिचय, दीक्षा, साधना, तपस्या, स्वाध्याय, धर्म-सघ का प्रचार-प्रसार, साहित्य-सर्जन, सेवा, कला तथा जीवन से सवधित विविध घटनाओ का विस्तृत विवरण दिया गया है। यह ख्यात तेरापन्थ के इतिहास का तथ्यात्मक दिग्दर्शन कालक्रम से कराती है। कालूजी स्वामी के स्वर्गवास के पश्चात् चौथमल जी स्वामी ने इसका लेखन आरभ किया। वर्तमान मे मुनि मधुकर जी इसे हिन्दी मे लिख रहे हैं। साधुओ की ख्यात का आरभिक अश इस प्रकार है —

> "श्री भिक्खु मुनि नो जनम गाम ठाम वर्णावीयै छै। मरुधर देस जोधपुर रा अमरराव कमधज राज ठाकर गामा का मोटा पटायत नयर कटाल्यै रा। तठै बहु-बस्ती ओसवाला रा घर घणा। जठै साह वलुजी वंसै उसवाल वडे साजन जाति सकलैचा दी पादे तसु भार्य्या रे उदरे उपना। माता गरभ मे आया थका सिंध रो सुपणो देख्यो।"

5. जयाचार्य :—

सर्वतोमुखी प्रतिभा के धनी तेरापन्थ के चतुर्थ आचार्य जीतमल जी या जयाचार्य का जन्म जोधपुर सभाग के रोमट गाव मे वि स 1860 की आश्विन शुक्ला चतुर्दशी को हुआ। आपके पिता ओसवाल जाति के गोलछा गोत्रीय श्री आईदानजी थे। माता का नाम कल्लूजी था। वि. स 1869 की माघ कृष्णा सप्तमी को नो वर्ष की अवस्था मे द्वितीय आचार्य श्री भारमल जी की आज्ञा से ऋषिराय ने जयपुर मे इन्हे दीक्षा दी। आचार्य पद वि स 1908 की माघ पूर्णिमा को वीदासर (चूरू) मे ग्रहण किया तथा जयपुर मे वि स 1938 की भाद्रपद कृष्णा द्वादशी को स्वर्गवास हुआ।

तेरापथ धर्मसघ में जयाचार्य उद्भट विद्वान, प्रतिभा सम्पन्न कवि और महान् गद्य लेखक के रूप मे विख्यात हैं। आपने गद्य व पद्य की छोटी-बडी 128 राजस्थानी रचनाएं सर्जित की। प्राकृत साहित्य का राजस्थानी मे अनुवाद भी किया। अनेक नई विधाओ का राजस्थानी साहित्य मे प्रचलन किया। आपका विविध रूपात्मक एव विषयात्मक समस्त साहित्य लगभग साढे तीन लाख अनुष्टुप छन्द परिमाण मे उपलब्ध होता है। गद्य रूप मे प्राप्त आपकी कृतियो का सक्षिप्त परिचय इस प्रकार है :—

भ्रम विध्वसनः—

इसमे तेरापंथ एवं स्थानकवासी सम्प्रदाय के मतभेदो एवं विवादास्पद विषयों को चवदह अधिकारो में विभक्त कर आगमों के परिप्रेक्ष्य मे स्पष्ट किया गया है। वि स 1980 मे गंगाशहर (बीकानेर) से इस ग्रन्थ का 462 पृष्ठो मे प्रकाशन हो चुका है।

संदेह विसोसधिः—

तत्कालीन विभिन्न प्रकार के सन्देहो का स्पष्टीकरण कर उन्हें दूर करने का इस ग्रन्थ में प्रयास किया गया है। यह लगभग 91 पत्रो की बडी प्रति है। जिसमे चवदह रत्नो मे समस्त विषयवस्तु समाहित है। प्रारम्भ मे सस्कृत का श्लोक है। उसके बाद रचना का आरभ इस प्रकार हुआ है —

> "पूरवै अनतकाल ससार समुदर नै विषै भ्रमण करतां जीवनै समकत्व रतन नी प्राप्ति थई नथी अनै किण ही समयै दरसण मोहनीय करम ना क्षयोपसम थी समकत्व हाथ आवै तो पिण असुभ करम न उदय पापडी आदि अनेक जिन-मतना उत्थापक छै त्यारी कुसगति करवा थी नाना प्रकार ना सदेह आत्मा ने विषै उतपन्न हुवे अनै ते सदेह उतपन्न हौवा थी जे समकत्व ना आचार निस्सकि—"

जिनाग्या मुख मण्डन.—

साधुओ के आचार व्यवहार सबधी कुछ अकल्पनीय लगने वाले प्रसगो को आगमो के आधार पर इसमे सैद्धान्तिक दृष्टि से समर्थित किया गया है एव सर्वज्ञो द्वारा विहित बताया है। रचना 17 पत्रो की है। रचना सवत् 1895 ज्येष्ठ कृष्णा सोमवती अमावस्या है। प्रारम्भ मे दो दोहे हैं।

कुमति विहडन —

इसमे साधुओ के आचार-विचार विषयक तत्कालीन समाज द्वारा उठाये गये कुतर्कों का आगमिक प्रमाणो के आधार पर स्पष्टीकरण किया गया है। कुल 14 पत्रो की रचना है। प्रारम्भ मे सस्कृत श्लोक है।

परचूनी बोल.—

इसमे कुल 308 बोल है। अन्तिम बोल को देखने से इगित होता है कि श्री जयाचार्य इसे और आगे लिखना चाहते थे किन्तु किन्ही कारणो से ऐसा न हो सका। इसमे आगमो के विभिन्न कठिन तथा विवादास्पद विषयो का स्पष्टीकरण एव संग्रह बोल रूप मे है।

झीणी चरचा रा बोल—

इसमे द्रव्य जीव और भाव जीव की सूक्ष्मता एवं गूढार्थ को सरल व स्पष्ट रूप मे समझाया गया है। बीच-बीच मे स्वामी जी के पद्यो तथा आगमो के उदाहरण भी प्रस्तुत किये गये है।

परम्परा बोल—

इस शीर्षक के अन्तर्गत दो गद्य कृतियां हैं। प्रथम कृति शय्यातर सबंधी परम्परा के बोल की है। इसकी भी छोटी व बडी दो तरह की कृतिया उपलब्ध होती है। इसमे उन परम्पराओ का उल्लेख मिलता है, जिनका आगमो द्वारा स्पष्ट सकेत प्राप्त नही होता किन्तु प्राचीन आचार्यों की परम्पराओ के अनुसार वर्तमान मे जिनके आधार पर साधुओ का व्यवहार चलता है। दूसरी कृति गोचरी सबधी परम्परा के बोल की है। इसमे आगमों के अलावा गोचरी सबधी परम्पराओ का वर्णन किया गया है।

चरचा रतनमाला—

समय समय पर चर्चा रूप मे पूछे गये बिभिन्न प्रश्न तथा आगम व अन्य प्रामाणिक ग्रंथों के प्रमाणो के आधार पर उनके उत्तर इस ग्रन्थ में संकलित हैं। दिल्ली के तत्कालीन श्रावक लाला कृष्णचन्द्र जौहरी द्वारा पूछे गये प्रश्न भी इसमें हैं। कृति अधूरी प्रतीत होती है।

भिक्खु पिरछा.—

इसमे श्रावको द्वारा समय-समय पर जयाचार्य से तत्व जिज्ञासा सबधी पूछे गये 138 प्रश्न और उनके उत्तर हैं।

ध्यान—

इससे सबधित दो कृतिया मिलती हैं ध्यान बडा और ध्यान छोटा। बडे ध्यान मे ध्यान कैसे करें? कैसे बैठें? आदि बातो का गद्य मे वर्णन है। छोटे ध्यान मे पच परमेष्टियो के गुणों का चिन्तन करते हुए आत्म-शुद्धि की ओर प्रेरित किया गया है। बडे ध्यान का आरम इस प्रकार हुआ है—

> "प्रथम तो पदमासनादिक आसन थिर करि काया नो चचलपणो मेटी नै मन नो पिण चचल पणो मेटणो। पछै मन बाहिर थकी अतर जमावणो। विषयादिक थकी मन मे मिटाय ने एकत्र आणणो। ते मन ठिकाणे आणवा निमित स्वासा सूरत लगावणी—"

प्रश्नोत्तर सारध सतक—

इसमे आचार-विचार एव मान्यता सबधी 151 सार्द्धशतक प्रश्न और उनके उत्तर दिये गये हैं। रचना वि स. 1895 से पूर्व हुई प्रतीत होती है।

वृहद् प्रश्नोत्तर तत्वबोध.—

मकसुदाबाद के श्रावक बाबू कालूराम जी ने प्रश्नोत्तर तत्वबोध काव्य कृति पढने के पश्चात् कुछ जिज्ञासाए और प्रकट की, उन्ही के निराकरण स्वरूप प्रस्तुत कृति गद्य मे बनानी आरभ की किन्तु वह समयाभाव के कारण पूर्ण न हो सकी।

उपदेश रत्न कथा कोष :—

यह उपदेशात्मक कथाओ का विशाल संग्रह है, जो करीब 108 विषयों से सबधित है। कथाएं अत्यन्त सुरुचिपूर्ण, साहित्यिक एवं आगम बुद्धि की परिचायक हैं। कही-कही दोहे व गीतिकाएं भी कथाओ मे दी गई हैं। कथाओ मे कथावस्तु प्रवाहपूर्ण है। इन कथाओं का सग्रह संकलन किसी एक समय अथवा एक स्थान पर नही हुआ, फलत इन पर मेवाडी, मारवाडी ढुढाडी और प्रारभिक हिन्दी की छाप दृष्टिगोचर होती है। राजस्थानी कथा साहित्य के लिये यह कथाकोष अत्यन्त महत्वपूर्ण और मूल्यवान है। कृति की प्रथम कथा इस प्रकार शुरू हुई है :—

> "बसतपुर गामे नयर। तिण सैहर में एक नगर सेठ। तिण के पाच पुत्र। छोटाई छोटा बेटा रो नांम मोतीलाल। मा बाप री आग्या मे तीखो पण प्रकृति करडी घणी। मा बाप विचारयो ओ आदमी करडो क्रोधी अहकारी। मा नी माया सू झगडो करे। भोजाया सू नित लडे। लोगा सू लडे। कलहगारो भणो पिण—"

दृष्टांत :—

राजस्थानी मे दृष्टान्त अथवा संस्मरण सर्व प्रथम लिखने का श्रेय जयाचार्य को ही है। इस तरह की आप की तीन गद्य रचनायें मिलती हैं। भिक्खु दृष्टान्त, श्रावक दृष्टान्त और हेम दृष्टान्त। प्रथम कृति मे आचार्य भीखणजी के 312 दृष्टान्त हैं। इन्हें मुनि हेमराज जी से सुनकर जयाचार्य ने लिखा। इसका रचना सवत् 1903 कार्तिक शुक्ला 13 रविवार और स्थान नाथद्वारा है। ये प्राय व्यग्यात्मक किन्तु कुशाग्र बुद्धि के परिचायक हैं। दूसरी कृति मे तत्वज्ञ एव श्रद्धा भक्ति रखने वाले श्रावको के 32 दृष्टात हैं और तीसरी मे मुनि हेमराज जी के 37 दृष्टान्त हैं। इसमे कुछ दृष्टान्त भारमल जी स्वामी के भी हैं।

गणविसुद्धिकरण हाजरी :—

आचार्य भीखणजी ने तेरापन्थ धर्म-संघ को संगठित व अनुशासित रखने के लिये जो मर्यादाएं बनाई, जयाचार्य ने उन्हें सकलित कर विभिन्न बर्गों मे वर्गीकृत कर दिया। इस बर्गीकृत रूप को ही 'गण विसुद्धिकरण हाजरी' अथवा सक्षेप मे हाजरी कहा जाता है। ये कुल 28 हैं। इनमे सघीय जीवन की अनेक मर्यादाए, शिक्षाए तथा आवश्यक सूचनाए है।

मर्यादाएं :—

ये विधान विषयक दो कृतियां हैं। प्रथम कृति बडी मर्यादा कहलाती हैं। इसमे साधुओं के गोचरी, विहार, वस्त्र-पात्र आदि की मर्यादाए हैं। द्वितीय छोटी मर्यादा है। इसमे साधुओ के आहार सबधी मर्यादाएं ही दी गई हैं।

आचारांग टब्बा :—

शीलांकाचार्य एवं पायचन्दसूरिकृत आचारांग सूत्र के टब्बे के आधार को ध्यान मे रखते हुए आचारांग सूत्र का राजस्थानी मे यह सरल किन्तु विस्तृत टब्बा जयाचार्य ने वि. स. 1919 की फाल्गुण शुक्ला 1 को बनाया है।

आगमाधिकार —

आगमो की सख्या के बारे मे जैन सम्प्रदाय मे पर्याप्त मतभेद है। इस कृति मे आगमो की सख्या को लेकर प्रामाणिक जानकारी देने का प्रयास किया गया है। आगमो के प्रक्षिप्त भाग को तर्क सगत ढग से अमान्य भी ठहराया गया है।

हुण्डियां —

जयाचार्य की चार हुण्डिया मिलती हैं। निशीथ री हुण्डी, बृहत्कल्प री हुण्डी, व्यवहारी री हुण्डी तथा भगवती री हुण्डी। इन हुण्डियो से सबधित चारो सूत्रो का मर्म समझने की दृष्टि से इनमे उनका विषयानुक्रम प्रस्तुत किया गया है। ये हुण्डिया वस्तुत इन सूत्रो की कुञ्जी सदृश उपयोगी हैं।

सिद्धान्तसार —

ये तुलनात्मक टिप्पणी-परक गद्य रचनाए हैं। भिक्षु स्वामी ने अपनी कृतियो मे जिन विवादास्पद विषयो को आगमो के सदर्भ मे लिया था, जयाचार्य ने उन कृतियो मे समाहित विषयो पर अनेक प्रमाण प्रस्तुत करते हुए तुलनात्मक टिप्पणीयुक्त सिद्धान्तसार लिखे थे। कुछ सिद्धान्तसार लघु व बडे दोनो प्रकार के हैं। कुछ केवल लघु और कुछ केवल बडे ही मिलते हैं।

साधनिका —

सारस्वत-चन्द्रिका व्याकरण ग्रन्थ को समझने के लिये इस गद्य कृति का राजस्थानी मे निर्माण किया गया है। इसमे कठिन स्थलो को सरलतम एव सूत्रबद्ध तरीके से समझाया गया हैं।

पत्रात्मक गद्य —

पत्र समकालीन इतिहास व परिस्थितियो के बारे मे काफी अलभ्य सामग्री उपलब्ध कराते हैं। वस्तुत ये व्यक्ति के मानस के प्रतिबिम्ब को समझने के अच्छे साधन हैं। जयाचार्य के ऐसे अनेको पत्र मिलते हैं, जिनका ग्रन्थाग्र 1501 है। ये पत्र विभिन्न समयो मे लिखे हुए हैं तथा ये शिक्षात्मक, समाधानात्मक एव घटना प्रधान सामग्री से परिपूर्ण है।

6 हरकचन्द जी स्वामी —

ये गाव अटाटिया जिला उदयपुर (मेवाड) के निवासी थे। वि. स. 1902 में जयाचार्य से दीक्षा ग्रहण की थी। तेव्वीस वर्ष साधु जीवन पालने के पश्चात् वि. सं. 1925 में इनका स्वर्गवास हुआ था। जयाचार्य से जब उनके उत्तराधिकारी का नाम पूछते थे तो वे तीन नाम छोग, हरक, मघराज बताते थे। उनमे इनका नाम भी था। इनकी राजस्थानी गद्य मे चरचा शीर्षक कृति मिलती है। इसमे व्रत-अव्रत, शुभ जोग, अशुभ जोग, साधु जीवन, संवर धर्म, कार्य का कर्ता आदि पर चर्चाए हैं।

7. आचार्य कालू गणी:—

अष्टमाचार्य कालू गणी का जन्म बीकानेर संभाग के छापर गाव मे वि. स. 1933 की फाल्गुण शुक्ला द्वितीया को हुआ। आपका जन्म नाम शोभचन्द और माता-पिता द्वारा प्रद

नाम कालूराम था। मूलचन्द जी कोठारी आपके पिता और छोगाजी माता थी। वि. सं. 1944 की आश्विन शुक्ला तृतीया को अपनी माता के साथ बीदासर (मारवाड) मे दीक्षा ग्रहण की। डालगणी के देवलोक के पश्चात् वि सं. 1966 की भाद्रपद पूर्णिमा को लाडनू मे आचार्य पद पर आसीन हुए। गगापुर मेवाड मे वि. स 1993 की भाद्रपद शुक्ला षष्ठी को आपका स्वर्गवास हुआ।

राजस्थानी गद्य मे आपका काल विषय पर एक लेख तथा पत्र साहित्य मिलता है। पत्र आपने अपने आज्ञानुवर्ती साधु-साध्वियो को समय-समय पर लिखे हैं। ऐसे पत्रो की सख्या लगभग बीस है। सघ सचालन तथा अनुशासन की दृष्टि से ये पत्र बहुत उपयोगी है। वि. सं. 1976 की चैत्र शुक्ला 3 को अपने शिष्य भीम जी को लिखे एक पत्र का कुछ अश दृष्टव्य है—

> "शिष्य भीमजी आदि सू सुखसाता बचे और चित घणो समाधि मे राखजे। कोई चित मे विचारणा राखजे मती, अनै सुजानगढ मे आछी तरें सु रहीजे सुजानगढ मे (सगला) सत काम तने पूछने करसी। आग्या मर्याद मे कहिणो सुणनो आछी तरे राखज्यो—"

8. चौथमल जी स्वामी—

आप जावद (मालवा) के निवासी थे। पन्द्रह वर्ष की उम्र मे सप्तमाचार्य डालू गणी के पास वि. स 1965 मे शिक्षा ली और वि स 2017 मे 48 वर्ष का साधु जीवन पालते हुए इनका देहावसान हुआ। ये सस्कृत, राजस्थानी एव व्याकरण के प्रकाण्ड विद्वान् थे। तत्सबधी इनकी रचनाए भी मिलती हैं। तेरापथ के समस्त हस्तलिखित ग्रन्थ इनकी देखरेख मे ही रहते थे। कालूजी स्वामी बडा के वि. स 1958 मे स्वर्गवास हो जाने के पश्चात् तेरापथ की ख्यात आप ही राजस्थानी गद्य मे लिखते थे। उस ख्यात का परिचय उदाहरण कालूजी स्वामी बडा के परिचय के साथ दे दिया गया है। ख्यात के अलावा राजस्थानी गद्य की कोई अन्य रचना आपकी उपलब्ध नही होती है।

9. हेमराज जी स्वामी—

मेवाड प्रदेशान्तर्गत आतमा गाव के निवासी थे। अष्टमाचार्य कालू गणी के समय मे वि. सं. 1969 मे दीक्षा ग्रहण की तथा वि. स. 1994 मे इनका स्वर्गवास हुआ। इनके पच्चीस बोल अर्थ सग्रह तथा बीस से अधिक थोकडे मिलते है।

10. आचार्य श्री तुलसी:—

युग प्रधान आचार्य श्री तुलसी तेरापन्थ धर्म संघ के नवम् आचार्य हैं। आपका जन्म वि. स. 1971 की कार्तिक शुक्ला द्वितीया को लाडनू (मारवाड) में हुआ। आपके पिता ओसवाल जाति के खटेड़ गोत्रीय झूमरमलजी थे। माता का नाम वदनाजी है। ग्यारह वर्ष की अल्प वय मे ही वि. स. 1982 की पौष कृष्णा पचमी को लाडनू मे ही आपकी दीक्षा हुई। युवाचार्य पद वि. स. 1993 की भाद्रपद शुक्ला तृतीया को एवं आचार्य पद इसके छः दिन बाद ही नवमी को प्राप्त किया।

आपने हिन्दी, सस्कृत व राजस्थानी में विपुल साहित्य लिखा है किन्तु राजस्थानी गद्य के रूप में आपका केवल पत्रात्मक साहित्य ही उपलब्ध होता है। ऐसे लगभग 150 पत्र मिलते

हैं। इन पत्रो मे मंत्री मुनि मगनलाल जी, साध्वी प्रमुखा लाडाजी तथा मातुश्री वन्ना जी को लिखे गये पत्र विशेष उल्लेखनीय हैं।

11 नथमल जी स्वामी —

आप टमकोर निवासी हैं। अपनी माता जी के साथ अष्टमाचार्य कालू गणी के समय मे वि. स 1987 के माघ मास मे आपने सरदार शहर मे दीक्षा ग्रहण की। आप प्राकृत, सस्कृत, अपभ्रश, हिन्दी, राजस्थानी व गुजराती आदि भाषाओ के विशिष्ट विद्वान् है। आपकी अनेक साहित्यिक व शोधपूरक कृतिया भी प्रकाशित हुई हैं। आप सस्कृत के आशु कवि के रूप मे भी विख्यात हैं। . वर्तमान मे आगमो का पाठ सम्पादन आपकी देखरेख मे ही हो रहा है। दर्शन, योग व साहित्य पर आपकी समान गति है। राजस्थानी मे आपके गद्य गीत तथा एक फूल लारे काटो शीर्षक गद्य रचनाए मिलती है। दोनो प्रकार की रचनाए साहित्यिक किन्तु दार्शनिक सकेत से युक्त हैं। गद्य गीत का उदाहरण इस प्रकार है—

> "मे बरस्यो। पाणी रा परपोटा उछल-उछल ऊचा जाण लाग्या। ज्यू उछल्या त्यू ही मिटग्या। नीचे नाखण ने आकास आपरी छाती खोल दी। ऊचा लेज्यायण ने हाथ कानी पसार्‌या—नाखणेवाला भणाई है। उठाणेवाला किताक मिले ?"

अन्य :—

तेरापन्थ के उपर्युक्त राजस्थानी गद्यकारो के अलाया बागोर वाले नथमल जी स्वामी ने भी राजस्थानी गद्य मे एक दो गद्य रचनाए की हैं, ऐसा बताया जाता है।

राजस्थानी गद्य साहित्यकार 9

—डा. हुकमचन्द भारिल्ल

राजस्थानी मे गद्य लेखन की परम्परा अपभ्रंश काल से लेकर वर्तमान काल तक अविच्छिन्न रूप से चली आ रही है। इस साहित्य की यह विशेषता रही है कि जहा हिन्दी साहित्य में गद्य का प्राचीन रूप नही के बराबर है वहा राजस्थानी मे गद्य साहित्य मध्यकाल से ही पूर्ण विकसित रूप मे मिलता है। वैसे तो राजस्थानी मे गद्य लिखने का आरम्भ 13-14 वी शताब्दि से ही हो गया था लेकिन 16 वी शताब्दि तक आते-आते वह पूर्ण विकसित हो चुका था। दिगम्बर जैन कवियो ने प्राकृत एव सस्कृत ग्रथों की बालावबोध टीकाये लिख कर राजस्थानी गद्य के विकास मे अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया था।

1 पाण्डे राजमल्ल—

राजस्थानी गद्य के विकास मे जिन विद्वानो ने अपना योगदान दिया था उनमे पाण्डे राजमल्ल का नाम विशेषत उल्लेखनीय है। ये 16 वी शताब्दि के विद्वान् थे और विराटनगर (बैराठ) इनका निवास स्थान था। प्राकृत एव सस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् होने के साथ अध्यात्म की ओर इनकी विशेष रुचि थी। इन्होंने प्रसिद्ध आध्यात्मिक ग्रन्थ समयसार कलश पर बालावबोधिनी टीका लिखी थी। टीका पुरानी शैली पर खण्डान्वयी है। शब्द पर्याय देते हुए भावार्थ लिखा गया है। यद्यपि उनकी भाषा सस्कृत परक शब्दो से युक्त है। वाक्यो मे बराबर प्रवाह पाया जाता है। पाण्डे राजमल्ल के गद्य का एक नमूना देखिये—

"यथा कोई जीव मदिरा पीवाइ करि अविकल कीजे छै, सर्वस्व छिनाइ लीजै छै। पदतै भ्रष्ट कीजे छै तथा अनादि ताई लेइ करि सर्वजीवराशि राग, द्वेष, मोह, अशुद्ध करि मतवालो हुओ छै तिहि तैं ज्ञानावरणादि कर्म को बंध होइ छै —"

उक्त उद्धरण से जाना जा सकता है कि भाषा जयपुरी है किन्तु सर्वनाम और क्रियाओ का अर्थ जान लेने पर वचनिका का अर्थ सुगमता से जाना जा सकता है।

2 अखयराज श्रीमाल —

अखयराज 17 वी शताब्दि के विद्वान् थे। इनके जन्म, स्थान एवं जीवन के संबध में कही भी उल्लेख नही मिलता। लेकिन भाषा एव शैली की दृष्टि से वे जयपुर प्रान्त के होने चाहिये। लेखक की अभी तक निम्न रचनायें उपलब्ध हो चुकी हैं —

1. चतुर्दश गुण स्थान चर्चा
2. विषापहार स्तोत्र वचनिका
3. कल्याणमन्दिर स्तोत्र भाषा वचनिका
4. भक्तामर स्तोत्र भाषा वचनिका
5. भूपाल चौबीसी भाषा वचनिका

प्रथम ग्रन्थ के अतिरिक्त शेष चार ग्रन्थो पर कवि ने भाषा वचनिका लिखी है। लेकिन चतुर्दश गुणस्थान चर्चा एक स्वतन्त्र ग्रन्थ है जिसमे चौदह गुणस्थानो की अच्छा विवेचन किया

1. वीरवाणी वर्ष 3 अंक 1 पृष्ठ 10।

गया है। भाषा न कठिन है और न दुरूह शब्दो का प्रयोग किया गया है। अखयराज के एक गद्य का नमूना देखिये—

"आगै अन्तराय कर्म पाच प्रकार तिसि की दोइ साखा। एक निहचै और एक व्यौहार। निहचै सो कहिये जहा परगन का त्याग न होइ सो दानान्तराय। आत्म तत्व का लाभ न हो इसो लाभान्तराय। आत्म स्वरूप का भोग न होइ सो भोगान्तराय। जहा वारवार उपभोग न जागै सो उपभोगान्तराय। अष्ट कर्म कहु जीव जिसके नही सो वीर्यान्तराय।"

3. पाण्डे हेमराज—

पाण्डे हेमराज यद्यपि आगरा के निवासी थे लेकिन राजस्थान से भी उनका विशेष सवंध था। महाकवि दौलतराम कासलीवाल जव आगरा गये थे तो हेमराज से उनकी भेंट हुई थी। उन्होंने निम्न शब्दो मे हेमराज की प्रशसा की है—

हेमराज साधर्मी भलै, जिन वच मानि असुभ दल मलै।
अध्यातम चरचा निति करै, प्रभु के चरन सदा उर धरै।

हेमराज ने निम्न ग्रन्थो की बालावबोध टीका लिखी थी—

प्रवचनसार भाषा (स 1709) पंचास्तिकाय, नयचक्र, गोमटसार कर्मकाण्ड।

इनकी गद्य शैली वहुत सुन्दर है। वाक्य सीधे और सुग्राह्य है। जो, सो, विषै, करि शब्दो का प्रयोग हुआ है। गद्य मे पडिताऊपन भी है। उनके गद्य का नमूना निम्न प्रकार है—

"धर्म द्रव्य सदा अविनासी टकोत्कीर्ण वस्तु है। यद्यपि अपणै अगुर लघु गुणनि करि षट् गुणी हानि वृद्धि रूप परिणवै है। परिणाम करि उत्पाद व्यय सयुक्त है तथापि अपनें ध्रौव्य स्वरूप सौ चलता नाही द्रव्य तिसही का नाम है जो उपजै विनसै थिर रहै।"

पाण्डे हेमराज गद्य साहित्य के अपने युग के लोकप्रिय विद्वान् थे। इनके प्रवचनसार और पचास्तिकाय भाषा टीका स्वाध्याय प्रेमियो मे वहुत प्रिय रहे है।

4 दीपचन्द कासलीवाल—

दीपचद शाह भी उन राजस्थानी विद्वानो मे से थे, जिन्होंने राजस्थानी गद्य-निर्माण मे महत्वपूर्ण योगदान किया है। वे खण्डेलवाल जाति के कासलीवाल गोत्र मे जन्मे थे। अतः कई स्थानो पर उनका नाम दीपचद कासलीवाल भी लिखा मिलता है। ये पहिले सागानेर में रहते थे किन्तु बाद मे आमेर आ गये थे। ये स्वभाव से सरल, सादगी प्रिय और अध्यात्म चर्चा के रसिक विद्वान् थे।

आपके द्वारा रचित अनुभव प्रकाश (स 1781), चिद्विलास (स. 1779), आत्मावलोकन (स. 1774), परमात्म प्रकाश, ज्ञान दर्पण, उपदेश रत्नमाला और स्वरूपानन्द नामक ग्रन्थ हैं।

ढूढाहड प्रदेश के अन्य दिगम्बर जैन लेखको की भाति इनकी भाषा मे ब्रज और राजस्थानी के रूपो के साथ खडी वोली के शब्द-रूप है।[1] भाषा स्वच्छ है एव लाधु-वाक्यो मे गम्भीर अर्थाभिव्यक्ति इसकी विशेषता है।

---

1 हिन्दी गद्य का विकास डा प्रेमप्रकाश गौतम, अनुसधान प्रकाशन, आचार्य नगर, कानपुर, पृ. 187।

साहित्यिक मूल्यो की दृष्टि से इनकी रचनाओ का महत्व चाहे उतना न हो किन्तु तत्वचिंतन एव हिन्दी गद्य के निर्माण व प्रचार की दृष्टि से इनका कार्य अभिनन्दनीय है। हिन्दी गद्य की बाल्यावस्था मे बहुत रचनाओ का गद्य मे निर्माण कर इन्होने उसकी रिक्तता को भरने का प्रयास किया और इस दिशा मे महत्वपूर्ण योग दिया है। इनकी भाषा का नमूना निम्नानुसार है :

"जैसे वानर एक काकरा के पडे रोवै तैसे याके देह का एक अग भी छीजै तो वहुतेरा रोवै। ये मेरे और मैं इनका झूठ ही ऐसे जडन के सेवन तै सुख मानै। अपनी शिवनगरी का राज्य भूल्या. जो श्री गुरु के कहे शिवपुरी कौं सभालै, तो वहा का आप चेतन राजा अविनाशी राज्य करै।"

5. महाकवि दौलतराम कासलीवाल:—

दौलतराम कासलीवाल ने जिस प्रकार काव्य ग्रन्थो का निर्माण किया उसी प्रकार गद्य मे भी कितने ही ग्रन्थो का निर्माण करके राजस्थानी एव हिन्दी के विकास मे महत्वपूर्ण योगदान दिया। कवि की प्रथम रचना पुण्यास्रवकथाकोश है और वह गद्य मे है। इसका रचना काल सवत् 1777 (सन् 1720) है। कवि उस समय आगरे मे थे और वही पर विद्वानो के ससर्ग से इनमे लिखने की रुचि जाग्रत हुई। अब तक इनकी निम्न रचनाये प्रकाश मे आ चुकी है।

1. पुण्यास्रवकथाकोश (स. 1777)
2. पद्मपुराण (स. 1823)
3. आदि पुराण (स. 1823)
4. पुरुषार्थसिद्ध्युपाय (स. 1827) (अपूर्ण छोड दिया)
5. हरिवश पुराण (स. 1829)
6. परमात्म प्रकाश
7. सारसमुच्चय

पुण्यास्रवकथाकोश, पद्मपुराण, आदिपुराण एव हरिवशपुराण विशालकाय ग्रन्थ हैं यद्यपि ये सभी सस्कृत भाषा से अनुदित कृतिया है। लकिन कवि ने अपनी ओर से भी जो सामग्री जोडी है उससे ये सभी ग्रन्थ मौलिक ग्रन्थ हो गये है। कवि के समय तक अनुवाद मे जो सूना-सूना सा नजर आता था उसे अपनी कृतियो मे जड से उखाड़ फेंका। यही कारण है कि उनके पद्मपुराण, हरिवशपुराण, आदि पुराण एव पुण्यास्रवकथाकोश का स्वाध्याय गत 200 वर्षों मे जितना हुआ उतना स्वाध्याय सभवत अन्य किसी रचना का नही हुआ होगा। आज भी ये सभी रचनाये अत्यधिक लोकप्रिय है। डा. जयकिशन के शब्दो मे दौलतराम का हिन्दी गद्य सस्कृत परिनिष्ठ है। वह अपभ्रश प्राकृत तथा देशी शब्दो से मुक्त है। वह व्रज भाषा का गद्य है लेकिन फिर भी उसमे खडी बोली का पूर्व रूप देखा जा सकता है।

दौलतराम के गद्य का नमूना देखिये:—

"मालव देस उजेणी नगरी विषै राजा अपराजित राणी विजया त्याकै विनयश्री नाम पुत्री हुई। हस्तिशीर्षपुर कै राजा हरिषेण परणी। एक दिन दपति वरदत्त मुनि नै आहार दान देता हुआ। पाछै वहुत कालताइ राज्य कीयो। एक रात सज्याग्रह विषै विनयश्री पति सहित सूती थी। अगर का धूप का धूम करि राजा राणी मृत्यु प्राप्ति हुआ। मध्य भोग भूमि विषै उपज्या।"—पुण्यास्रवकथाकोष

दौलतराम का जन्म जयपुर प्रदेश के कसवा ग्राम मे सवत् 1749 मे हुआ था। उनका जन्म नाम बेगराज था। आगरा, उदयपुर एव जयपुर उनका साहित्यिक क्षेत्र रहा। ये जीवन

भर जयपुर महाराजा की सेवा मे रहे तथा साथ ही मे उनके कृपा पात्र भी रहे। इनका स्वर्गवास भादवा सुदी 2 सवत् 1829 को जयपुर मे हुआ। इनकी कृतियो का सामान्य परिचय निम्न प्रकार है—

पुण्यास्रव कथाकोष :—

पुण्यास्त्रव कथाकोष मे 59 कथाओ का सग्रह है। इनके अतिरिक्त 9 लघु कथाएं प्रमुख कथाओ मे आ गयी हैं जिससे उनकी सख्या 65 हो गई है। प्रत्येक कथा कहने का मुख्य उद्देश्य कथा नायक के जीवन का वर्णन करने के अतिरिक्त, नैतिकता, सदाचार और अच्छे कार्यो की परम्परा को जन्म देना है। सभी कथाये सरल एव रोचक शैली मे लिखी गयी हैं। कथा-कोश मे निम्न कथाओ का सग्रह है —

1. जिनपूजा व्रत कथा, 2 महाराक्षस विद्याधर कथा, 3 मैढक की कथा, 4. भरतकथा, 5 रत्नशेखर चक्रवर्ती कथा, 6. करकण्डु कथा, 7 वज्रदन्त चक्रवर्ती कथा, 8 श्रेणिक कथा, 9 पच नमस्कार मत्र कथा, 10 महाबली कथा, 11 भामण्डल कथा, 12 यमराज कथा, 13 भीम केवली कथा 14. चाण्डाल कूकरी कथा, 15 सुकोशल मुनि कथा, 16 कुवेरु मित्राश्रेष्ठि कथा, 17. मेघ कुमार कथा, 18 सीताजी की कथा, 19. रानी प्रभावती कथा 20 राजा व्रजकरण कथा, 21. बाई नीली कथा, 22 चाण्डाल कथा, 23 नाग कुमार कथा, 24. भविष्यदन्त कथा, 25. अशोक रोहिणी कथा 26. नन्दिमित्र कथा, 27 जामवन्ती कथा, 28. ललित घण्टा कथा, 29. अर्जुन चाण्डाल कथा, 30. दानकथा, 31. जयकुमार सुलोचना कथा, 32 वज्रगध कथा, 33 सुकेत श्रेष्ठि कथा, 34 सागर चक्रवर्ती कथा, 35 नलनील कथा, 36. लवकुश कथा, 37 दशरथ कथा, 38 भामण्डल कथा, 39 सुषीमा कथा, 40. गधारी कथा, 41 गौरी कथा, 42 पद्मावती कथा, 43. धन्यकुमार कथा, 44 अगनीला ब्राह्मणी कथा, 45 पाच केसरी कथा, 46 अकलकदेव कथा, 47 समतभद्र कथा, 48. सनत्कुमार चक्रवर्ती कथा, 49. सजय मुनि कथा, 50 मधु पिंगल कथा, 51. नागव्रत कथा, 52 ब्राह्मण चक्रवर्ती कथा, 53. अजन चोर कथा, 54. अनन्तमती कथा, 55 उदयन कथा, 56 रेवती रानी कथा, 57. सेठ सुदर्शन कथा, 58. वारिषेण मुनि कथा, 59 विष्णुकुमार मुनि कथा, 60. वज्रकुमार कथा, 61 प्रीतिकर कथा, 62. सत्यभामा पूर्वभव कथा, 63. श्रीपाल चरित्र कथा, 64. जम्बूस्वामी कथा।

पद्मपुराण :—

पद्मपुराण कवि की मूल कृति नही है किन्तु 10-11 वी शताब्दी के महाकवि रविषेणाचार्य की सस्कृत कृति का गद्यानुवाद है। लेकिन कवि की लेखन शैली एव भाषा पर पूर्ण अधिकार होने से यह मानो स्वय की मूल रचना के समान लगती है। इसमे 123 पर्व है जिनमे जैन धर्म के अनुसार रामकथा का विस्तार से वर्णन हुआ है।

पद्मपुराण की भाषा खडी बोली के रूप मे है किन्तु कुछ विद्वानो ने इसे ढूढारी भाषा के रूप मे स्वीकार किया है। पुराण की भाषा अत्यधिक मनोरम एव हृदयग्राही है।

आदि पुराण :—

आदि पुराण विशाल काय ग्रन्थ है। लेकिन कवि ने भाषा टीका की एक ही शैली को अपनाया है। आचार्य जिनसेन के क्लिष्ट शब्दो का अर्थ जितने सरल एवं बोधगम्य शब्दो मे

किया है वह कवि के संस्कृत एवं हिन्दी के अगाध ज्ञान का द्योतक है। यह भी संवत् 1824 की कृति है।

हरिवंश पुराण :—

इस कृति का रचना काल स. 1829 है। इसकी रचना जयपुर मे ही सम्पन्न हुई थी। यह कवि की अन्तिम कृति है। 19 हजार श्लोक प्रमाण गद्य कृति लिखना दौलतराम के लिये महान् साहित्यिक उपलब्धि है। इसमे हरिवश की कथा विस्तार से दी हुई है। पुराण के कितने ही प्रसंग ऐसे लगते हैं जैसे उन्होंने अपनी सारी शक्ति ही उलेटकर रखदी हो।

6 महापंडित टोडरमल :—

राजस्थानी गद्यकारो मे महापंडित टोडरमल का विशेप स्थान है। उन्होंने टीकाओं एवं स्वतन्त्र ग्रन्थो के माध्यम से राजस्थानी गद्य के विकास मे अपना महत्वपूर्ण योगदान दिया है। इनकी रचनाओ से पता चलता है कि पडित जी की भाषा ढूंढारी थी जो राजस्थानी भाषा की ही एक शाखा है। टोडरमल जी की भाषा मे प्रवाह एवं लालित्य दोनों हैं।

टोडरमल जी का समय ईसा की अठारहवी शती का मध्यकाल है। उनके पिता का नाम जोगीदास एवं माता का नाम रम्भादेवी था। पडित जी के दो पुत्र हरिचन्द एव गुमानीराम थे। पंडितजी व्युत्पन्नमति थे, इसलिये थोडे ही समय मे उन्होने प्राकृत एवं सस्कृत पर पूर्ण अधिकार कर लिया। कन्नड भाषा का भी उन्हें अच्छा ज्ञान था। अधिकाश विद्वान् उनकी आयु 27 वर्ष की मानते है लेकिन नवीन खोज के आधार पर वे 47 वर्ष तक जीवित रहे थे।

पडित जी के प्रमुख गद्य ग्रन्थो में गोम्मटसार जीवकाड, गोम्मट सार कर्मकाड, लब्धिसार, क्षपणासार, त्रिलोकसार, मोक्षमार्ग प्रकाशक, आत्मानुशासन, पुरुषार्थसिद्धयुपाय एवं रहस्यपूर्ण चिट्ठी के नाम उल्लेखनीय है। इनमे मोक्षमार्ग प्रकाशक एवं रहस्य पूर्ण चिट्ठी उनकी स्वतत्र कृतियां हैं तथा शेष सब प्राकृत एव सस्कृत ग्रन्थो पर राजस्थानी टीकायें हैं। गोम्मटसार जीवकाड, गोम्मटसार कर्मकाड, लब्धिसार एव क्षपणासार पर चारो टीकाओ को मिला कर उनका नाम 'सम्यग्ज्ञान चन्द्रिका' रखा गया है। सम्यग्ज्ञान चन्द्रिका विवेचनात्मक गद्य शैली में लिखी गई है। प्रारम्भ में 71 पृष्ठो की पीठिका है जिसे हम आधुनिक भाषा में भमिका कह सकते हैं। इसे पढने के पश्चात् ग्रंथ का पूरा हार्द खुल जाता है।

'मोक्षमार्ग प्रकाशक' पंडित जी का स्वतन्त्र गन्थ है एवं वह बडी ही आकर्षक शैली में लिखा हुआ है। इसमें सभी जैन सिद्धान्त के ग्रन्थो का मानो निचोड है। पडितजी का यह अत्यधिक लोकप्रिय ग्रन्थ है जिसकी अब तक कितने ही आवृत्तिया प्रकाशित हो चुकी हैं। विवेचनात्मक गद्य शैली में लिखे जाने पर भी प्रश्नोत्तर के रूप में विषय का अच्छा प्रतिपादन किया गया है।

पंडितजी के गद्य का एक नमूना देखिये —

"तातै बहुत कहा कहिए, जैसे रागादि मिटावने का श्रद्धान होय सो ही श्रद्धान सम्यग्दर्शन है। बहुरि जैसे रागादि मिटावने का जानना होय सो ही सम्यग्ज्ञान है। बहुरि जैसे रागादि मिटें सो ही आचरण सम्यक् चरित्र है। ऐसा ही मोक्षमार्ग मानना योग्य है।"

प टोडरमल जी की वाक्य रचना संक्षिप्त और विपय-प्रतिपादन शैली तार्किक एव गम्भीर है। व्यर्थ का विस्तार उसमें नहीं है पर विस्तार के संकोच में कोई विषय अस्पष्ट नही रहा है। लेखक

विषय का यथोचित विवेचन करता हुआ आगे बढने के लिये सर्वत्र ही आतुर रहा है। जहां कहीं भी विषय का विस्तार हुआ है वहां उत्तरोत्तर नवीनता आती गई है। वह विषय विस्तार सांगोपांग विषय-विवेचना ही की प्रेरणा से ही हुआ है। जिस विषय को उन्होंने छुआ उसमें 'क्यों' का प्रश्नवाचक समाप्त हो गया है शैली ऐसी अद्‌भुत है कि एक अपरिचित विषय भी सहज हृदयंगम हो जाता है।

पंडित जी का सबसे बडा प्रदेय यह है कि उन्होंने संस्कृत, प्राकृत मे निबद्ध आध्यात्मिक तत्वज्ञान को भाषा-गद्य के माध्यम से व्यक्त किया और तत्व विवेचन में एक नई दृष्टि दी। यह नवीनता उनकी क्रान्तिकारी दृष्टि मे है।

टीकाकार होते हुए भी पडित जी ने गद्यशैली का निर्माण किया। डा गौतम ने उन्हें गद्य निर्माता स्वीकार किया है।[1] उनकी शैली दृष्टान्तयुक्त प्रश्नोत्तरमयी तथा सुगम है। वे ऐसी शैली अपनाते है जो न तो एकदम शास्त्रीय है और न आध्यामिक सिद्धियों और चमत्कारो से बोझिल। उनकी इस शैली का सर्वोत्तम निर्वाह मोक्षमार्ग प्रकाशक में है। तत्तकालीन स्थिति मे गद्य को आध्यात्मिक चिन्तन का माध्यम बनाना बहुत ही सूझ-बूझ और श्रम का कार्य था। उनकी शैली मे उनके चिन्तक का चरित्र और तर्क का स्वभाव स्पष्ट झलकता है। एक आध्यात्मिक लेखक होते हुए भी उनकी गद्यशैली मे व्यक्तित्व का प्रक्षेप उनकी मौलिक विशेषता है।

7. पडित जयचन्द जी छावडा:—

पंडित टोडरमल के पश्चात् राजस्थानी गद्य के प्रमुख निर्माता के रूप में पं जयचन्द छावडा का नाम प्रमुख रूप से लिया जा सकता है। जब ये 11 वर्ष के थे तभी से इन्होंने अपने आपको विद्वानो को समर्पित कर दिया। सवत् 1859 (सन् 1802) से इन्होंने लिखना प्रारम्भ किया और सर्व प्रथम तत्वार्थ सूत्र वचनिका लिखी। अब तक उनकी निम्न कृतिया प्राप्त हो चुकी है —

1. तत्वार्थसूत्र वचनिका (स 1859)
2 सर्वार्थसिद्धि वचनिका (स 1862)
3 प्रमेयरत्नमाला वचनिका (स 1863)
4 स्वामी कार्तिकेयानुप्रेक्षा भाषा (सं 1863)
5 द्रव्य सग्रह वचनिका (स 1863)
6 समयसार वचनिका (स 1864)
7 देवागमस्तोत्र (आप्त मीमासा) (स 1866)
8 अष्ट पाहुड वचनिका (स 1867)
9 ज्ञानार्णव वचनिका (स 1869)
10 भक्तामर स्तोत्र वचनिका (सं 1870)
11 . पदसग्रह
12 सामायिक पाठ वचनिका
13 पत्र परीक्षा वचनिका
14 चन्द्रप्रभ चरित द्वि सर्ग
15 धन्यकुमार चरित वचनिका

इनके ग्रन्थो की भाषा सरल सुबोध एवं परिमार्जित है, भाषा में जहा भी दुरूहता आई है, उसका कारण गम्भीर भाव और तात्विक गहराइया रही है। इनके गद्य का नमूना इस प्रकार है

---

1. हिन्दी गद्य का विकास डा प्रेम प्रकाश गौतम, अनुसधान प्रकाशन, आचार्य नगर, कानपुर, पृ 185 व 188

"जैसे इस लोक विषै सुवर्ण अर रूपा कू गालि एक किए एक पिण्ड का व्यवहार होय है तैसें आत्मा के अर शरीर के परस्पर एक क्षेत्र की अवस्था ही तें एकपणा का व्यवहार है ऐसे व्यवहार मात्र ही करि आत्मा अर शरीर का एकपणा है। वहुरि निश्चय तै एकपणा नाही हैं जातै पीला अर पाडुर है स्वभाव जिनिका ऐसा सुवर्ण अर रूपा है तिनके जैसे निश्चय विचारिए तब अत्यन्त भिन्नपणा करि एक एक पदार्थपणा की अनुपपत्ति है, तातै नानापना ही है।"[1]

8. पंडित सदासुख :—

पंडितप्रवर जयचन्दजी छाबडा के बाद राजस्थानी भाषा के गद्य-भंडार को समृद्ध करने वालों में पंडित सदासुख कासलीवाल का नाम प्रमुख रूप से लिया जा सकता है। इनका जन्म जयपुर मे विक्रम संवत 1852 तदनुसार ईस्वी सन् 1795 के लगभग हुआ था।[2]

आपके द्वारा लिखित ग्रन्थ निम्नानुसार है:

1 भगवती आराधना भाषा वचनिका (सं 1906)
2 तत्वार्थसूत्र (लघु भाषाटीका) (सं 1910)
3 तत्वार्थ सूत्र (बृहद भाषा टीका अर्थ प्रकाशिका) (सं 1914)
4 समयसार नाटक भाषा वचनिका (स 1914)
5 अकलंकाष्टक भाषा वचनिका (सं 1915)
6 मृत्यु महोत्सव (स 1918)
7 रत्नकरण्ड श्रावकाचार भाषा टीका (सं 1920)
8 नित्य नियम पूजा (स 1921)

इनकी भाषा का नमूना इस प्रकार है:

"संसार में धर्म ऐसा नाम तो समस्त लोक कहैं है परन्तु शब्द का अर्थ तो ऐसा जो नरक तिर्यंचादिक गति मे परिभ्रमणरूप दुखतें आत्माकू छुडाय उत्तम आत्मीक, अविनाशी अतीन्द्रिय मोक्षसुख मे धारण करै सो धर्म है। सो ऐसा धर्म मोल नाही आवै, जो धन खरचि दान-सन्मानादिकतै ग्रहण करिये तथा किसी का दिया नाही आवै, जो सेवा उपासनातै राजी कर लिया जाय। तथा मंदिर, पर्वत, जल, अग्नि देवमूर्ति, तीर्थादिक मे नाही धर्या है जो वहा जाय ल्याइये।"

9. ऋषभदास निगोत्या :—

ऋषभदास निगोत्या पं जयचन्द्र छावडा के समकालीन विद्वान थे। सवत 1840 के लगभग इनका जन्म जयपुर मे हुआ। ये शोभाचन्द के सुपुत्र थे। सवत् 1888 मे इन्होंने प्राकृत भाषा मे निबद्ध मूलाचार पर भाषा वचनिका लिखी थी। ग्रन्थ की भाषा ढढारी है तथा

---

1 हिन्दी साहित्य द्वितीय खड, पृ 504।

2 रत्नकरण्ड श्रावकाचार भाषा टीका, पृष्ठ 2।

जिस पर पं टोडरमल एवं जयचन्द की शैली का प्रभाव है। इनकी भाषा का एक उदाहरण देखिये—

"वसुनंदि सिद्धान्त चक्रवर्ति कवि रची टीका है सो चिरकाल पर्यन्त पृथ्वी विषै तिष्ठहु। कैसी है टीका सर्व अर्थनि की है सिद्धि जातैं। बहुरि कैसी है समस्त गुणनि की निधि। बहुरि ग्रहण करि है नीति जाने ऐसो जो आचारच कहिये मुनिनि का आचरण ताके सूक्ष्म भावनि की है। अनुवृत्ति कहिये प्रवृत्ति जाते। बहुरि विख्यात है अठारह दोष रहित प्रवृत्ति जाकी ऐसा जो जिनपति कहिये जिनेश्वर देव ताके निर्दोष वचनि करि प्रसिद्ध। बहुरि पाप रूप मल की दूर करण हारी।"

10. कनककीर्ति :—

कनककीर्ति 17 वी शताब्दी के विद्वान थे। ये भट्टारकवर्गीय परम्परा के साधु थे तथा संभवतः आमेर के भट्टारको से इनका सबध था। इनकी अब तक निम्न रचनाएं उपलब्ध हो चुकी हैं —

कर्मघटावली (पद्य) जिनराज स्तुति (पद्य), तत्वार्थ सूत्र भाषा टीका (गद्य), मेघकुमार गीत (पद्य), श्रीपाल स्तुति (पद्य), पद बारहखडी (पद्य) उक्त राजस्थानी रचनाओं के अतिरिक्त, प्राकृत भाषा मे निबद्ध इनकी कुछ पूजाए भी मिलती हैं। तत्वार्थसूत्र भाषा टीका इनकी एक मात्र गद्य कृति है जो अपने समय मे अत्यधिक लोकप्रिय कृति मानी जाती रही। राजस्थान के जैन ग्रन्थागारो मे इसकी कितनी ही पाण्डुलिपिया सग्रहीत हैं। इसमे उमास्वामी के तत्वार्थसूत्र पर श्रुतसागरी टीका की भाषा वचनिका की गयी है। इनके गद्य का एक उदाहरण निम्न प्रकार है —

अह उमास्वामी मुनीश्वर मूल ग्रंथ कारक। श्री सर्वज्ञ वीतराग वदे कहतां श्री सर्वज्ञ वीतराग ने नमस्कार करू छू। किसाइक छै श्री वीतराग सर्वज्ञ देव, मोक्ष मार्गस्य नेतारं कहता मोक्षमार्ग का प्रकास का करवा वाला छै। और किया इक छै सर्वज्ञ देव कर्मभूभृता भेत्तारं कहता ज्ञानावरणादिक आठ कर्म त्याह रूप पर्वत त्याह का भेदिवा वाला छै।"

11. पं शिवजीलाल —

19 वी शताब्दी मे होने वाले विद्वानो मे पडित शिवजीलाल का नाम उल्लेखनीय है। इनके वंश, कुल, गुरु एव शिष्य परम्परा के सबध मे अभी तक कोई विशेष जानकारी उपलब्ध नही हो सकी है। अब तक इनके द्वारा रचित तीन ग्रन्थ प्राप्त हुये हैं जिनके नाम निम्न प्रकार हैं :—

दर्शनसार भाषा, चर्चासार भाषा, प्रतिष्ठासार भाषा/दर्शनसार को इन्होंने जयपुर में स 1923 मे समाप्त किया था। यह राजस्थानी गद्य मे निबद्ध है। इनके गद्य का एक उदाहरण निम्न प्रकार है—

"साच कहता जीव के उपरि लोक दुखो व तूषो। साच कहने वाला तो कहे ही कहा जग का भय करि राजदण्ड छोडि देता है वा जूवा का भय करि राज मनुष्य कपडा पटकि देय है। तैसे निंदने वाले निंदा, स्तुति करने वाले स्तुति करो, साच बोला तो सांच कहे।"

12. ऋषभदास :—

ऋषभदास झालरापाटन के रहने वाले थे। ये हूबड जाति के श्रावक थे। इनके पिता का नाम नाभिराय था। वसुनन्दि श्रावकाचार की भाषा टीका इन्होने आमेर के भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति की प्रेरणा से लिखी थी। भाषा टीका विस्तृत है जो 347 पृष्ठो मे पूर्ण होती है। भाषा टीका सवत् 1907 की है। जिसका उल्लेख निम्न प्रकार हुआ है:—

ऋषिपूरण नव पुनि, माघ पुनि शुभ श्वेत।
जया प्रथा प्रथम कुजवार, मम मगल होय निकेत ॥

वसुनन्दिश्रावकाचार की पाण्डुलिपिया डीग एव डूगरपुर के शास्त्र भण्डार मे सग्रहीत है।

13. ज्ञानचन्द :—

आचार्य शुभचन्द्र के ज्ञानार्णव पर सस्कृत एव हिन्दी की कितनी ही टीकायें उपलब्ध होती हैं इनमे ज्ञानचन्द द्वारा रचित हिन्दी गद्य टीका उल्लेखनीय है। टीका का रचनाकाल संवत् 1860 माघ सुदि 2 है। टीका की भापा पर राजस्थानी का पूर्ण प्रभाव है। इसकी एक पाण्डुलिपि दि जैन मन्दिर कोटडियाल डूगरपुर मे सग्रहीत है।

14. केशरीसिह :—

प केशरीसिह जयपुर के रहने वाले थे। ये भट्टारकीय परम्परा के विद्वान थे। जयपुर राज्य के दीवान बालचन्द छाबडा के पुत्र दीवान जयचन्द के अनुरोध पर प केशरीसिह ने सवत् 1873 मे वर्धमान पुराण की भाषा टीका निबद्ध की। ये यहा के लश्कर के दिगम्बर जैन मन्दिर मे रहते हुये साहित्य निर्माण का कार्य करते थे। इनके गद्य का एक उदाहरण निम्न प्रकार है—

"अहो या लोक विषे ते पुरुष धन्य है ज्या पुखन का ध्यान विषै तिष्ठता चित्त उपसर्ग के सैकण्डेन करिहु किञ्चित् मात्र ही विक्रिया क नही प्राप्ति होय है।"

15. चम्पाराम भावसा :—

ये खण्डेलवाल जाति मे उत्पन्न हुये थे। इनके पिता का नाम हीरालाल था जो माधोपुर (जयपुर) के रहने वाले थे। इन्होंने अपनी ज्ञान-वृद्धि के लिये 'धर्म प्रश्नोत्तर श्रावकाचार' एव 'भद्रबाहु चरित्र' की रचना की थी। ये दोनो ही कृतिया राजस्थानी भाषा की अच्छी रचनायें मानी जाती है।

हिन्दी जैन साहित्य

हिन्दी जैन साहित्य की प्रवृत्तियां-1.

डॉ. नरेन्द्र भानावत

प्राकृत, सस्कृत, अपभ्रश और राजस्थानी के समान हिन्दी (खड़ी बोली) भाषा मे भी राजस्थान के जैन साहित्यकार अविच्छिन्न रूप से साहित्य-सर्जना करते रहे है। हिन्दी के विकास के साथ समाज-सुधार, राष्ट्रीयता, आधुनिकीकरण आदि की भावना विशेष रूप से जुडी होने के कारण हिन्दी जैन साहित्य का कथ्य और शिल्प भी उससे प्रभावित हुआ। जैन साहित्य मुख्यत धार्मिक विचारधारा से प्रभावित रहा है और पुरानी हिन्दी मे लगभग 12वी शताब्दी से अद्यावधि जो रचनाये मिलती हैं उनमे धार्मिक मान्यताओ का यह रूप स्पष्ट देखा जा सकता है। आधुनिक हिन्दी मे रचित जैन साहित्य इस धार्मिकता से अछूता नही है पर यह अवश्य है कि वह साहित्यिक तत्त्वो से अधिकाधिक सपन्न होता जा रहा है। आधुनिक जैन साहित्यकार अपने कथावीज प्राचीन धार्मिक ग्रन्थो से अवश्य लेता है पर उनका पल्लवन और पुष्पन करने मे वह अधुनातन विचार-दर्शन और साहित्यिक प्रवृत्तियो को अपनाने मे पीछे नही रहा है। साहित्य-सृजन की मूल प्रेरणा धार्मिक होते हुए भी वह सकुचित धार्मिक सीमा से आवद्ध नहीं है। उसका पठन-पाठन का क्षेत्र भी अब जैन मन्दिरो, उपाश्रयो और स्थानको से आगे वढ कर जैनेतर समाज तक विस्तृत हुआ है और इस प्रकार समसामयिक साहित्य के समानान्तर उठ खडे होने मे उसकी क्षमता उजागर हुई है।

राजस्थान मे आधुनिक हिन्दी साहित्य सर्जना मे सत-सतियो और श्रावको दोनो का समान रूप से महत्वपूर्ण योगदान रहा है। हिन्दी के राष्ट्र भाषा पद पर प्रतिष्ठित होने व सपर्क भाषा के रूप मे उसका महत्त्व वढने से सत-सतियो मे प्राकृत और सस्कृत भाषा के अध्ययन-अध्यापन की प्रवृत्ति के साथ हिन्दी-भाषा और साहित्य के अध्ययन की प्रवृत्ति ने विशेष जोर पकडा। धार्मिक शिक्षण के साथ-साथ व्यावहारिक शिक्षण का लाभ भी वे लेने लगे। यद्यपि धर्म और दर्शन ही अध्ययन का मुख्य क्षेत्र वना रहा तथापि इतिहास, राजनीति शास्त्र, समाज शास्त्र, अर्थ शास्त्र, मनोविज्ञान, भूगोल जैसे समाज-विज्ञान क्षेत्र के विषयो के भी वे सम्पर्क मे आए। विश्व-विद्यालयी पद्धति से अध्ययन करने का क्रम चालू होने व तथाकथित परीक्षाए देने मे सत-सतियो के चिन्तन-फलक का विस्तार हुआ तथा व्याख्यान एव विवेचना शैली वस्तुनिष्ठ, तर्कसम्मत और परिष्कृत वनी। इधर मुद्रण और प्रकाशन की सुविधाए भी विशेष रूप से वढी। राजस्थान से ही कई मासिक एव पाक्षिक जैन पत्र-पत्रिकाए प्रकाशित होने लगी। इन सवका सम्मिलित प्रभाव साहित्य-सर्जना पर भी पडा।

राजस्थान मे रचित आधुनिक हिन्दी जैन साहित्य को अभिव्यक्ति के माध्यम की दृष्टि से मुख्यत दो भागो मे विभक्त किया जा सकता है—पद्य और गद्य। यद्यपि मानव जीवन के दैनिक व्यवहार मे गद्य का ही विशेष महत्त्व है तथापि साहित्य मे गद्य का विकास पद्य के वाद ही हुआ परिलक्षित होता है। इसके मूल मानव की भावनात्मक प्रवृत्ति ही प्रधान कारण रही है। सामान्यत पद्य को ही काव्य या कविता कहा जाता है। वन्ध की दृष्टि से कविता के दो भेद किए जाते है—प्रवध और मुक्तक। प्रवध मे पूर्वापर का तारतम्य होता है, मुक्तक मे यह तारतम्य नही पाया जाता। प्रवध मे छन्द एक दूसरे से कथानक की शृखला मे वधे रहते है। उनका क्रम उलटा-पलटा नही जा सकता। वे एक दूसरे पर निर्भर रहते हैं। मुक्तक स्वत पूर्ण होते है, वे क्रम से रखे जा सकते है पर एक छद दूसरे छद की क्रमवद्धता की

अपेक्षा नही करता। प्रबध मे सपूर्ण काव्य के सामूहिक प्रभाव पर अधिक ध्यान दिया जाता है जब कि मुक्तक मे एक-एक छद की अलग-अलग साज-सभाल की जाती है।

पद्य की भाति गद्य की भी अपनी विशेष विधाए है। प्रमुख विधाओ मे नाटक, एकाकी, उपन्यास, कहानी, जीवनी, निबन्ध, प्रवचन, सस्मरण, यात्रावृत्त, गद्य-काव्य आदि सम्मिलित किए जा सकते है। कहना न होगा कि आधुनिक हिन्दी जैन साहित्यकारो ने इन सभी विधाओ मे साहित्य रचा है।

अध्ययन की दृष्टि से आधुनिक हिन्दी जैन साहित्य को विधागत प्रवृत्ति की दृष्टि से इस प्रकार विभाजित किया जा सकता है—

(1) पद्य साहित्य

(क) प्रबन्ध काव्य
(ख) मुक्तक-काव्य

(2) गद्य साहित्य
(क) नाटक, एकाकी
(ख) उपन्यास, चरिताख्यान
(ग) कहानी, लघु कथा, प्रेरक प्रसग, गद्यकाव्य
(घ) जीवनी
(ड) निबन्ध, प्रवचन
(च) शोध-समालोचना

(1) पद्य साहित्य

(क) प्रबन्ध काव्य—आचार्यो ने प्रबन्ध काव्य के दो भेद किए हैं— महाकाव्य और खण्डकाव्य। महाकाव्य का क्षेत्र विस्तृत होता है। उसमे सपूर्ण जीवन के विविध रूप चित्रित किए जाते है। खण्डकाव्य मे किसी एक ही घटना को प्रधानता दी जाती है। प्राकृत, सस्कृत, अपभ्रश और राजस्थानी मे प्रबन्ध काव्य के रूप मे विपुल परिमाण मे साहित्य रचा गया है। महाकाव्य के रूप मे पुराण तथा चरित-सज्ञक अनेक रचनाए लिखी गयी है। छोटी प्रबन्ध रचनाओ मे रास, फागु, वेलि, चोपई आदि नामो से अभिहित रचनाये विपुल परिमाण मे मिलती है।

इसी परम्परा मे आधुनिक हिन्दी प्रबन्ध काव्य लिखे गए है। वर्ण्य-विषय और पात्र-सृष्टि की दृष्टि से आधुनिक कवियो ने भी जैन परम्परा मे मान्य शलाकापुरुषो, गणधरो, युग-प्रधान आचार्यो तथा अन्य महापुरुषो को ही मूल आधार बनाया है पर कथावस्तु का गठन, उसका उठाव, विकास आदि मे नई तकनीक का समावेश किया गया है। अब वे ढालबद्ध न होकर सर्गबद्ध है। इनमे नया छन्द विधान और नई राग-रागनियो का समावेश है। प्रकृति चित्रण, सौन्दर्य बोध, युग-चिन्तन आदि की दृष्टि से वे अधिक युगीन और सम-सामयिक सन्दर्भो से सम्पृक्त है।

(ख) मुक्तक काव्य—मुक्तक के भी स्थूल रूप से दो भेद किए जा सकते हैं—गेय मुक्तक और पाठ्य मुक्तक। गेय मुक्तको मे गायन तत्त्व की प्रधानता रहती है। सामान्यत.

इनका आनन्द गाकर लिया जाता है। राजस्थान के आधुनिक जैन कवियो मे जैन-सतो की विशेष भूमिका रही है। भक्त श्रद्धालुओं को प्रतिदिन नियमित रूप से प्रवचन या व्याख्यान सुनाना इन सतो का दैनन्दिन कार्यक्रम है। व्याख्यान मे सरसता बनाए रखने के लिए सामान्यत कविता का सहारा लिया जाता है। परम्परा रूप से ढाल और भजन गाने की परिपाटी रही है पर धीरे-धीरे उसका स्थान गेय मुक्तक लेते रहे है। इस दृष्टि से इन मुक्तको की रचना विपुल परिमाण मे हुई है। इनका मुख्य उद्देश्य सदाचारमय नैतिक जीवन जीने की प्रेरणा देना है। ये शुद्ध सवेदनात्मक गीतो के रूप मे भी लिखे गए है और कथा को आधार बनाकर भी। शुद्ध सवेदनात्मक गीतो मे कवि स्वय ही अपना आत्म निवेदन करता है जब कि कथाधारित गीतो में कवि आत्म-निवेदन तो करता है पर किसी दूसरे पात्र द्वारा कथा को आधार बना कर।

अध्ययन की दृष्टि से गेय मुक्तको को तीन भागो मे विभक्त किया जा सकता है—स्तवन मूलक, प्रेरणा मूलक और वैराग्य मूलक। स्तवन मूलक गीत विशेषत प्रार्थनापरक और अपने आराध्य की गरिमा-महिमा के सूचक हैं। पूजा-गीत इसी श्रेणी मे आते है। प्रेरणा मूलक गीतो का मूल स्वर सुषुप्त पुरुषार्थ को जगा कर मनुष्यत्व से देवत्व की ओर बढने तथा आत्मविजेता, शुद्ध बुद्ध परमात्म बनने का है। सामाजिक धरातल से प्रेरित होकर लिखे गए प्रेरणा गीतो मे प्रगतिशील मानववादी स्वर मुखरित हुआ है। इसमे आधुनिक जीवन की विसगतियो, भौतिक सभ्यता के कृत्रिम आवरणो, शोषणपरक प्रवृत्तियो, अधविश्वासो और थोथे आदर्शो पर कटु व्यग्य किया गया है। अणुव्रत आन्दोलन, विभिन्न पर्व-तिथियो और जयन्तियो को आधार बना कर लिखे गए प्रेरणा-गीत हृदय मे उत्साह और उमग, शक्ति और स्फूर्ति सचरित करने मे सक्षम बने है। वैराग्यमूलक गीतो मे जीव को ससार से विरत होकर आत्मकल्याण की ओर उन्मुख होने की उद्बोधना दी गई है। मन की चचल वृत्तियो, विषय-वासना और सप्त-कुव्यसनो के दुष्परिणामो व जीवन की क्षण भगुरता और ससार की असारता के आत्मस्पर्शी चित्रण के साथ-साथ आध्यात्मिक रहस्यात्मकता और परम आनन्दानुभूति का मार्मिक चित्रण यहा प्रस्तुत किया गया है।

पाठ्य मुक्तको मे गेय मुक्तको की तरह गायन तत्त्व की प्रधानता नही है। ये सामान्य रूप से मात्रिक एव वर्णिक छन्दो मे लिखे गए है। विषय की दृष्टि से इन्हे दो भेदो मे रखा जा सकता है—तत्त्व प्रधान और उपदेश प्रधान। तत्त्व-प्रधान मुक्तको मे आत्म-स्वातन्त्र्य, कर्मफल, पुनर्जन्म, अहिंसा, अनेकान्त, ब्रह्मचर्य, क्षमा जैसे उदात्त सिद्धान्तो का प्रतिपादन किया गया है। उपदेश प्रधान मुक्तको मे जीव को लोक व्यवहार एव अध्यात्म भाव की शिक्षा दी गई है। इन उपदेशो मे यो तो सामान्य स्तर पर नीति की बातें कही गयी हैं पर कही—कही चुटीले-चुभते हुए व्यग्य के भी दर्शन होते है।

इन मुक्तको मे प्रकृति का शीलनिरूपक रूप ही विशेषत उभर कर सामने आया है। मानव जीवन की पृष्ठभूमि एव सहानुभूति के रूप से प्रकृति के विभिन्न रग मर्मस्पर्शी बन पडे हैं। विराट-प्रकृति के विविध उपादानो को माध्यम बना कर शाश्वत जीवन सत्य की सटीक व्यजना की गई है।

इन मुक्तको की भाषा सहज, सरल और प्रवाहपूर्ण है। भावो को विशेष प्रेषणीय बनाने के लिए प्रश्नोत्तर, आत्मकथात्मक, सम्बोधन आदि विविध शैलियो का प्रयोग किया गया है। अलकारो मे सादृश्यमूलक अलकारो का विशेष प्रयोग किया गया है, पर मानवीकरण, बिम्ब-विधान, विशेषण विपर्यय, प्रतीकात्मकता आदि से ये अछूते नहीं है।

छन्दविधान की दृष्टि से ये मुक्तक वैविध्यपूर्ण हैं। जहा इनमे परम्परागत, दोहा, सोरठा, कुण्डलिया, सवैया जैसे छन्द प्रयुक्त हुए है वहा नवगीत, फिल्मी धुनो और लोक गीतो की पद्धति पर भी अच्छे गीत लिखे गए है। गजल और रुबाइया लिखने मे भी ये कवि पीछे नही रहे। मुक्त छदो मे भिन्न तुकान्त ढग की यथार्थवादी कविताए लिखने मे भी इन्हे विशेष सफलता मिली है।

(2) गद्य साहित्य

(क) नाटक-एकाकी—ये दोनो दृश्य काव्य की श्रेणी मे आते है। इनमे रगमच पर पात्रो के द्वारा किसी कथा या घटना का प्रदर्शन होता है। यह प्रदर्शन अभिनय, रग सज्जा, सवाद, नृत्य-गीत, ध्वनि आदि के माध्यम से प्रस्तुत किया जाता है। नाटक का फलक उपन्यास की भाति विस्तृत होता है। इसमे कई अक, घटनाओ, दृश्यो और समस्याओ का आयोजन होता है। एकाकी मे एक अक, एक घटना, एक काय और एक समस्या मुख्य होती है। इसका आरम्भ सामान्यत सघर्ष से होता है जो शीघ्र ही गति पकड कर चरम सीमा की ओर अग्रसर हो जाता है। आकाशवाणी के विकास के साथ अब रेडियो नाटक अधिक लोकप्रिय बनते जा रहे है। जैन-परम्परा मे नाट्य रूपो का विशेष महत्त्व रहा है। विभिन्न पर्वो और कल्याणक महोत्सवो पर नाट्य प्रदर्शित करने की यहा सुदीर्घ परम्परा रही है। आज नाटक और एकाकी जिस रूप मे है उनका मूल प्राचीन दीर्घ और लघु रास काव्यो मे देखा जा सकता है। प्रारम्भिक रास नृत्य, सगीत और अभिनय प्रधान होते थे। बाद मे चलकर वे आख्यान प्रधान बन गए।

आधुनिक युग मे नाट्य विधा की ओर जैन साहित्यकार विशेष आकर्षित नही हुए। इसके कई धार्मिक और सामाजिक कारण है। इनमे एक प्रमुख कारण वीतरागी पात्रो को मच पर उपस्थित न करने की प्रवृत्ति है।

राजस्थान के साहित्यकार भी कथा साहित्य की अपेक्षा नाट्य साहित्य की ओर कम आकर्षित हुए है। पूरे नाटक के रूप मे श्री महेन्द्र जैन द्वारा लिखित "महासती चन्दन बाला" नाटक ही उल्लेख योग्य है। साहित्यिक और रगमचीय दोनो तत्त्वो की दृष्टि से यह एक सफल नाट्य कृति है।

भगवान महावीर के 2500वे परिनिर्वाण वर्ष के अवसर पर लोक नाट्य शैली पर आधारित दो विशेष नाट्य तैयार किए गए है जिनकी भगवान महावीर के जीवनादर्शो को लोकमानस तक लोकोनुरजन परक शैली मे प्रेषित करने मे विशेष भूमिका रही है। ये हैं—"भगवान महावीर स्वामी की पड" और "वैशाली का अभिषेक"।

"महावीर स्वामी की पड", राजस्थानी पड परम्परा मे एक विशेष उपलब्धि है। पडो मे पाबूजी तथा देवनारायण की पडे तो लोकप्रिय है ही पर भीलवाडा के श्री निहाल अजमेरा ने जिनेन्द्र कला भारती की ओर से इस पड नाट्य को प्रस्तुत कर निश्चय ही एक अभिनव प्रयोग किया है। पड के चारो ओर बाउण्ड्री मे जैन प्रतीको (यथा—अष्टमगल, धर्मचक्र, स्वस्तिक आदि) व पट्टियो का सुन्दर सयोजन किया गया है। पड मे भगवान महावीर की प्रभाव पूर्ण जीवन गाथा चित्रित है। इसका प्रदर्शन करते समय यह मच पर दर्शको के सम्मुख लगा दी जाती है। तत्पश्चात् इसका वाचन प्रारम्भ होता है। एक व्यक्ति चित्रो के सम्बन्ध मे पूछता है और दूसरा उनके सम्बन्ध मे नाटकीय लहजे मे उत्तर देता चलता है। इसका चित्राकन श्री राजेन्द्रकुमार जोशी ने बडे मनोयोग पूर्वक किया है। इसकी प्रदर्शन-अवधि डेढ घण्टे की है।

"वैशाली का अभिषेक" कठपुतली नाट्य की रचना, भारतीय लोक कला मण्डल, उदयपुर के सचालक श्री देवीलाल सामर की पुतली नाट्य क्षेत्र मे मौलिक देन है। कठपुतलियो की छड़ दस्ताना शैली मे इसका निर्माण किया गया है। इसके लिए मच पर पूरा अन्धेरा कर दिया जाता है। दर्शक हाल भी इसके मंचन के समय पूर्ण अंधेरे मे रहता है। इसमे पुतलिया विशेष रग फ्लोरोसेण्ट और विशेष रोशनी अल्ट्रावायलेट मे मच पर प्रदर्शित की जाती है। लगभग एक घण्टे की इस नाटिका को देखते समय दर्शक माता त्रिशला के रगीन आकर्षक स्वप्न लोक, शूलपाणि यक्ष के लोमहर्षक उपसर्ग और उससे अविचल बने भगवान महावीर के प्रशात ज्योतिर्मय भव्य व्यक्तित्व से अभिभूत हो एक अनोखी विस्मय विमुग्धकारी रसानुभूति मे डूबते-तैरते रहते है। ब्लैक थियेटर की तकनीक के प्रयोग से रग-योजना मे विशेष चमत्कृति आ गई है। पूरी नाटिका भगवान महावीर के लोकोपकारी व्यक्तित्व और आत्मोपम्य मैत्री भाव के आलोक से विमण्डित है।

एकाकी के क्षेत्र मे जैन सास्कृतिक धरातल से लिखे गए डा नरेन्द्र भानावत के नौ एकाकी 'विष से अमृत की ओर' सग्रह मे सकलित हैं। इनमे 'आत्मा का पर्व' अन्तरावलोकन पर बल देकर जीवन मे सयम, नैतिकता और मर्यादा की प्रतिष्ठा करता है। 'एटम, अहिंसा और शाति' मे युद्ध और शाति की समस्या को उठा कर एटम के सृजनात्मक पक्ष को उभारने पर बल दिया गया है। 'इन्सान की पूजा का दिन' दीपावली की रूढिगत पूजन विधि पर करारी चोट है। 'सच्चा यज्ञ' यज्ञ के लोक-कल्याणकारी रूप पर छाए हुए क्षुद्र स्वार्थो, विकारो और कर्म-काण्डो को धुनने का सबल माध्यम है। 'अनाथी मुनि' मे सनाथ-अनाथ विषयक तात्त्विक चर्चा के माध्यम से आत्मशक्ति और आत्म विश्वास जागृत करने पर बल दिया गया है। 'तीर्थंकर' मे तीर्थंकर के धर्मचक्र प्रवर्तन, उपदेश और लोककल्याणकारी स्वरूप की भव्य झाकी प्रस्तुत की गयी है। 'नमिराज और इन्द्र' मे आत्म-साधना का माहात्म्य प्रकट किया गया है। ये सभी एकाकी जैन विचारधारा से सम्बन्धित होते हुए भी अपने मूल रूप मे मानव सस्कृति के प्रतिपादक हैं।

श्री चन्दनमल 'चाद' ने अणुव्रत आन्दोलन की चेतना से प्रेरित होकर प्रवेशक अणुव्रत के ग्यारह नियमो पर आधारित ग्यारह एकाकी लिखे हैं जिनका सकलन 'कचन और कसौटी' नाम से हुआ है। इन एकाकियो की भावभूमि लोकजीवन से सम्बन्धित है और ये बडे प्रभावक बन पडे है।

(ख) उपन्यास-चरिताख्यान—उपन्यास अपेक्षाकृत नवीन विधा है। इसमे चरित्र-परिवर्तन व चरित्र-विकास के लिए पर्याप्त अवसर होता है। मुख्य कथा के साथ यहा कई प्रासगिक कथाए जुडी रहती हैं। युग विशेष के सास्कृतिक चित्रण के लिए यहा पर्याप्त गुजाइश होती हैं। मनोरजन के साथ लोक-शिक्षण का आज उपन्यास सशक्त माध्यम बना हुआ है। जैन पृष्ठभूमि को लेकर राजस्थान के साहित्यकारो ने बहुत अधिक उपन्यास नही लिखे हैं। जो उपन्यास लिखे गए है उनकी कथा के मूल प्रेरणास्रोत जैन आगम, पुराण या चरित ग्रन्थ रहे हैं। श्री ज्ञान भारिल्ल का 'तरगवती' आचार्य पादलिप्त की प्राकृत रचना 'तरगवई' का हिन्दी रूपान्तरण है। आचार्य अमृतकुमार का 'कपिल' उत्तराध्ययन सूत्र के आठवें अध्ययन पर आधारित है। ज्ञान भारिल्ल के ही अन्य उपन्यास 'भटकते-भटकते' की कथा उद्योतनसूरि कृत प्राकृत रचना कुवलयमाला' से ली गई है। महावीर काटिया के 'आत्मजयी' और 'कूणिक' लघु उपन्यास तथा डा प्रेम सुमन जैन के 'चितेरो के महावीर' भी परम्परागत जैन आख्यानो से सबद्ध हैं, पर इससे इनका महत्त्व कम नही होता। इन उपन्यासकारो की मौलिकता कथा मे निहित न होकर उसके प्रस्तुतीकरण और समसामयिक जीवन सदर्भ के सन्निवेश मे है। प्रवाहपूर्ण भाषा, वर्णन-कौशल, चित्रोपम क्षमता, सवादयोजना, नूतन शैली और नये रचनातन्त्र के कारण ये उपन्यास रोचक और मार्मिक बन पड़े है। परम्परागत कथाचयन

की लीक से हटकर कमला जैन 'जीजी' ने 'अग्निपथ' मे अपने ही बीच घूमती-फिरती सती साध्वी उमरावकुवर जी 'अर्चना' को प्रकारान्तर से नायिका के रूप मे खडा किया है और जानकी के रूप मे लेखिका स्वय प्रकट हुई है। यह उपन्यास वात्सल्य, करुणा और अध्यात्म भावो से लबालब भरा है। जीवनचरित को उपन्यास के रूप मे प्रस्तुत करने का यह प्रयत्न बडा सफल बन पडा है।

नवीन औपन्यासिक शैली मे न सही, पर कथा की मनोरजकता और औत्सुक्य-वृत्ति का निर्वाह करते हुए राजस्थान के कथाकारो ने कई सुन्दर चरिताख्यान प्रस्तुत किए है। इन कथाकारो मे बम्बोरा के श्री काशीनाथ जैन का नाम विशेष उल्लेखनीय है। इनके पचास के लगभग चरिताख्यान प्रकाशित हुए है। जैन सत अपने प्रतिदिन के चातुर्मास कालीन प्रवचनों के अन्त मे सामान्यत धारावाही रूप मे कोई न कोई चरिताख्यान प्रस्तुत करते है। ये चरिताख्यान यो तो परम्परागत ही होते है पर समसामयिक जीवन-प्रसगो और समस्याओ का उनसे सबध जोडकर वे उसे अधिक रोचक, प्रेरक और मार्मिक बना देते है। धारावाही रूप से कहे गए ऐसे चरिताख्यानो के कई सकलन प्रकाशित हुए है, उनमे आचार्य श्री जवाहरलालजी म सा तथा जैन दिवाकर श्री चौथमल जी म सा के आख्यान विशेष महत्त्वपूर्ण हैं। श्री जवाहरलाल जी म सा के चरिताख्यानो मे सुबाहुकुमार, सती राजमती, सती मदनरेखा, रुक्मणि विवाह, अजना, शालिभद्र चरित, सुदर्शन चरित, सेठ धन्ना चरित, पाण्डव चरित, राम वन गमन, हरिश्चन्द्र-तारा आदि उल्लेखनीय है।

(ग) कहानी, लघुकथा, प्रेरक प्रसग, गद्य काव्य —कहानी आज गद्य की सबसे लोकप्रिय विधा है। वह सतत विकासोन्मुख और प्रयोगशील रही है। आधुनिक हिन्दी कहानी के आविर्भाव से पूर्व हमारे यहा कहानी की एक सुदीर्घ परम्परा रही है। दार्शनिक और तात्विक सिद्धान्तो की विवेचना के लिए कथाओ का आधार लिया जाता रहा है। ये कथाए रूपकात्मक, ऐतिहासिक, पौराणिक, लौकिक आदि रूपो मे आज भी मनोरजन और उपदेश का माध्यम बनी हुई है। आगम ग्रन्थो की टीका, निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि, अवचूर्णि आदि मे इनके दर्शन होते है। जैन कथा साहित्य का यह विशाल भण्डार आधुनिक कथाकारो के लिए विशेष प्रेरणास्रोत बना हुआ है। यह अवश्य है कि आधुनिक जैन कथाकारो ने प्राचीन कथा को मूलाधार बनाते हुए भी उसके शिल्प तन्त्र मे परिवर्तन किया है। काल्पनिक और अलौकिक घटनाओ को जीवन की यथार्थ परिस्थितियो का धरातल और बौद्धिक, मनोवैज्ञानिक आधार दिया है। घटनाओ को चरित्र-विश्लेषण और मानसिक द्वन्द्व से सम्पृक्त किया है। सक्षेप मे दैववाद एव आकस्मिक सयोग के प्रति आग्रह कम करते हुए स्वाभाविकता, यथार्थवादिता, विचारात्मकता, पुरुषार्थवाद और कार्य-कारण शृखला पर अधिक बल देने का प्रयत्न किया है।

मोटे तौर से कहानी साहित्य की प्रवृत्तियो को इस प्रकार विश्लेषित किया जा सकता है—

(1) सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रश परम्परा से प्राप्त कथाओ को सरल सुबोध भाषा और रोचक शैली मे आधुनिक ढग से प्रस्तुत करने की एक मुख्य प्रवृत्ति उभर कर सामने आयी है। मुनि महेन्द्रकुमार जी 'प्रथम' की जैन कहानिया भाग 1 से 25, श्री मधुकर मुनि की "जैन कथामाला" भाग 1 से 12, श्री रमेश मुनि का 'प्रताप कथा कौमुदी' भाग 1 से 5, श्री भगवती मुनि 'निर्मल' की 'आगम युग की कहानिया' भाग 1—2, श्री देवेन्द्र मुनि की 'महावीर युग की प्रतिनिधि कथाए', पुष्कर मुनि की 'जैन कथाए', भाग 1 से 5 इस दृष्टि से उल्लेखनीय है।

(ii) वर्तमान जीवन की सामाजिक और आर्थिक समस्याओ को, प्राचीन कथ्य को आधार बना कर प्रस्तुत करने की प्रवृत्ति भी कुछ कहानीकारो मे परिलक्षित होती है। ये कहानीकार परम्परागत धार्मिक कथानक को आधार अवश्य बनाते हैं पर उसके माध्यम से आधुनिक जीवन-सवेदन को व्यजित करना चाहते हैं। डा नरेन्द्र भानावत के 'कुछ मणिया कुछ पत्थर', श्री महावीर कोटिया के 'बदलते क्षण', श्री शातिचन्द्र मेहता के 'सौन्दर्य-दर्शन' और श्री केसरीचन्द सेठिया के 'मुक्ति के पथ पर' कहानी सग्रहो मे यह प्रवृत्ति देखी जा सकती है। इन कहानीकारो ने कतिपय ऐसी-कहानिया भी लिखी हैं जिनका कथ्य परम्परागत न होकर आधुनिक जीवन स्थितियो से लिया गया है और उसमे जैन-सस्कृति के आदर्शो को प्रतिष्ठित करने की प्रवृत्ति रही है।

(iii) जैन आगम और पुराण ग्रन्थो मे इतिहास और धर्म-शास्त्रो में तथा लोक जीवन और लोक-साहित्य मे ऐसे कई प्रेरणादायी प्रसग, रूपक, दृष्टान्त भरे पडे हैं जिन्हे पढ कर जीवन मे हारा–थका निराश व्यक्ति आस्था और विश्वास का सम्बल पाकर अपने जीवन को सतज और सार्थक बना सकता है। ऐसे मार्मिक, ज्ञानवर्धक, प्रेरणादायी और वृत्तिपरिष्कारक प्रसगो का चयन कर, लघुकथा, बोध कथा, और सस्मरणो के रूप मे कई सुन्दर सकलन प्रकाशित किए गए है। व्याख्यान देते समय जैन सत ऐसे दृष्टान्तो, सस्मरणो और रूपको का विशेष रूप से प्रयोग करते है। आचार्य श्री जवाहरलालजी म सा के प्रवचनो से सकलित ऐसी कथाए 'उदाहरणमाला' भाग 1,2, 3 मे प्रकाशित की गई हैं। इसी प्रकार के अन्य प्रमुख सकलन हैं—श्री देवेन्द्र मुनि कृत 'प्रतिध्वनि', श्री गणेश मुनि कृत 'प्रेरणा के बिन्दु', श्री भगवति मुनि 'निर्मल कृत-'लो कहानी सुनो' 'लो कथा कहदू', मुनि श्री छत्रमलजी कृत 'कथा कल्पतरु, श्री अशोक मुनि कृत 'इनसे सीखे', श्री उदय मुनि कृत 'प्रिय दृष्टान्तोदय', आदि।

(iv) दैनन्दिन जीवन मे व्यवहृत विभिन्न वस्तुओ, जीवन की साधारण घटनाओ और प्रकृति के विविध उपादानो को माध्यम बनाकर भी कथात्मक ढग से मार्मिक सस्मरण और भाव-भीने गद्य काव्य लिखे गये हैं। इनमे अनुभूति की प्रधानता और भावो की गहराई रहती है। साधारण बातो को पकड कर सार्वभौमिक जीवन सत्यो को उद्घाटित करने मे ये विशेष सफल होते हैं। आज के आस्थाहीन युग मे ये छोटे-छोटे जीवन-प्रसग महान् शक्ति और स्फूर्ति का अहसास कराते है। दार्शनिक सवेदना के धरातल से लिखे जाने के कारण कही–कही ये विचार बोझिल अवश्य हो गये हैं। श्री चन्दनमुनि कृत "अतर्ध्वनि", साध्वी राजीमती कृत "पथ और पथिक", श्री देवेन्द्र मुनि कृत "चिन्तन की चादनी", "अनुभूति के आलोक मे", श्री भगवती मुनि "निर्मल" कृत "अनुभूति के शब्द–शिल्प" इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय हैं।

(घ) जीवनी —कथा साहित्य की घटनाए या पात्र काल्पनिक हो सकते हैं परन्तु जीवनी मे वर्णित घटनायें या पात्र सच्चे होते है। जीवनी, इतिहास और उपन्यास के बीच की चीज है जिसका नायक वास्तविक होने के कारण अधिक व्यक्तित्वपूर्ण होता है। जीवनी का उद्देश्य किसी ऐसे चरित्र को प्रकाश मे लाना होता है जिसका समाज की प्रगति और राष्ट्र की उन्नति मे विशेष सहयोग रहा हो। सफल जीवनी लेखक के लिये आवश्यक है कि वह चरित्रनायक के भावो, विचारो तथा जीवन-दर्शन से पूर्णतया परिचित होकर भी उससे निर्लिप्त

हो, व्यक्तिगत द्वेष और राग के भाव से ऊपर उठा हो और साथ ही अपने वर्णन मे सच्चा और प्रामाणिक हो। इन गुणो के अभाव मे लिखी हुई जीवनी या तो स्तुति मात्र होगी या निन्दा।

आधुनिक ढग से जीवनिया लिखा जाना इस युग की विशेष प्रवृत्ति है। प्राचीन युग में जो महापुरुष हुए है, वे आत्म-विज्ञापन से प्राय दूर रहते थे। अत अन्तर्साक्ष्य के रूप मे उनके सम्बन्ध मे बहुत कम ज्ञातव्य प्राप्त होता है। जैन परम्परा मे गुर्वावली, पट्टावली आदि के रूप मे धर्माचार्यो और मुनियो के महत्त्वपूर्ण जीवन-प्रसग लिखित मिलते है। समसामयिक शिष्य मुनियो और भक्त श्रावको द्वारा लिखित छोटे-छोटे पद्यबद्ध आख्यान चरित आदि मिलते है। ग्रन्थो की हस्तलिखित पाडुलिपियो के अन्त मे प्रशस्ति रूप मे रचनाकार, लिपिकार अपनी गुरु-परम्परा का निर्देश भी करते रहे है। इन सब स्रोतो से जीवनी लेखक सामग्री सकलित करता है।

यह सही है कि चरितनायक के महत्त्वपूर्ण प्रसगो को सुरक्षित रखने के प्रयत्न तो यहा अवश्य होते रहे पर जीवनी लेखन का व्यवस्थित कार्य आधुनिक युग की ही देन है। राजस्थान मे जैन धर्माचार्यों का आध्यात्मिक जीवन और सामाजिक चरित्र के उन्नयन मे महत्वपूर्ण योगदान रहा है। जैन श्रमण ग्रामानुग्राम पद विहार करते हुए जन-मानस को सदाचार-निष्ठ साहित्यिक जीवन जीने की प्रेरणा देते रहे है। पादविहारी होने से वे जन-जीवन के निकट सपर्क मे तो आते ही है, विविध प्रकार की अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियो से गुजरने के कारण उनका स्वय का जीवन भी नानाविध अनुभवो का सगम बन जाता है। अनेक व्यसनग्रस्त दिग्भ्रमित लोग उनसे प्रेरणा पाकर सन्मार्ग की ओर बढते है। ऐसे महान् प्रभावक आचार्यो और मुनियो की जीवनिया लिखने की ओर राजस्थान के जीवनी लेखको का ध्यान गया है और कतिपय प्रामाणिक जीवन ग्रन्थ प्रकाशित हुए है। इनमे उल्लेखनीय ग्रन्थो के नाम है—पूज्य श्री जवाहरलालजी म सा की जीवनी (प शोभाचन्द्र भारिल्ल, डा इन्द्रचन्द शास्त्री), पूज्य गणेशाचार्य जीवन चरित (श्री देवकुमार जैन), मुक्ति के पथ पर—श्री सुजानमल जी म सा की जीवनी (मुनि श्री लक्ष्मीचन्द्रजी म) अमरता का पुजारी-आचार्य श्री शोभाचन्द जी म की जीवनी (प दुख-मोचन झा), राजस्थान केसरी—पुष्कर मुनिजी म जीवनी और विचार (श्री राजेन्द्र मुनि), युग प्रधान श्री जिनचन्द्रसूरि (श्री अगरचन्द भवरलाल नाहटा), आचार्य तुलसी जीवन दर्शन (मुनि श्री बुद्धमल जी), दिव्यतपोधन—तपस्वी श्री वेणीचन्दजी म की जीवनी (मुनि श्री महेन्द्र कुमारजी "कमल"), दिव्य जीवन—श्री विजय वल्लभ सूरि जी म की जीवनी (श्री जवाहरचन्द पटनी), जय ध्वज—आचार्य श्री जयमल्ल जी म का जीवन वृत्त, (गुलाबचन्द जैन) जैन कोकिला साध्वी श्री विचक्षणश्री जी म की जीवनी (भवरी देवी रामपुरिया), साधना पथ की अमर साधिका—महासती श्री पन्ना देवी जी म की जीवनी (साध्वी सरला, साध्वी चन्दना), महासती श्री जसकवर—एक विराट व्यक्तित्व (आर्या प्रेमकुवर), विश्व चेतना के मनस्वी सत मुनि श्री सुशील कुमार जी की जीवनी (मुनि श्री समन्त भद्र), उपाध्याय श्री प्यारचन्दजी म का जीवन-चरित्र (रतनलाल सघवी)।

स्वतन्त्र जीवनी ग्रन्थो के अतिरिक्त सम्बद्ध महापुरुषो और साहित्यकारो के कृतित्व और व्यक्तित्व की विवेचना करने वाले समीक्षा ग्रन्थो मे भी जीवनी अश दिया जाता रहा है। इसी तरह महापुरुषो की स्मृति या उनके अभिनन्दन मे प्रकाशित किये जाने वाले स्मृति ग्रन्थो व अभिनन्दन ग्रन्थो मे भी जीवनी का प्रामाणिक अश जुडा रहता है। ऐसे समीक्षा ग्रन्थ एव अभिनन्दन ग्रन्थ भी कई प्रकाशित हुए है।

इन जीवनी ग्रन्थो मे जीवनी नायक के व्यक्तित्व के बहिरग पक्ष मे उन के जन्म, बाल्यकाल, वैराग्य, साधना, सयम, विहार, जन-सम्पर्क, धर्मप्रचार, धर्म परिवार आदि का तथा अन्तरग पक्ष मे उनके आतरिक गुणो और महत्त्वपूर्ण विचारो का सुन्दर विवेचन-सकलन किया जाता है।

(ड) निबन्ध-प्रवचन :—गद्य विधाओ मे सर्वाधिक शक्तिपूर्ण और प्रसरणशील विधा निबन्ध है। साहित्य की अन्य विधाओ मे तो गद्य की भाषा एक माध्यम मात्र का काम करती है किन्तु निबन्ध मे वह अपनी पूर्ण शक्ति व सामर्थ्य के साथ प्रकट होती है, इसीलिये निबन्ध को गद्य की कसौटी कहा गया है। यो निबन्ध का निश्चित विषय नही होता। सभी प्रकार के विषय निबन्ध के लिये उपयोगी हो सकते है किन्तु शैली की रमणीयता और सरसता निबन्ध का अनिवार्य अग है।

विषय की दृष्टि से निबन्ध सामाजिक, सास्कृतिक, राजनीतिक, ऐतिहासिक, वैज्ञानिक, आर्थिक, धार्मिक, साहित्यिक आदि अनेक प्रकार के हो सकते है फिर भी विद्वानो ने स्थूल रूप से निवन्धो के पाच प्रकार वताये है—वर्णनात्मक, विवरणात्मक, भावात्मक, विचारात्मक और हास्य-व्यग्यात्मक/वर्णनात्मक निवन्धो मे दृश्य जगत की किसी वस्तु या स्थल का सजीव वर्णन किया जाता है। विवरणात्मक निबन्ध मे विचारो को प्रस्तुत करने का ढग सूच्यात्मक होता है। इनमे इतिवृत्तात्मकता एवं कथात्मकता के तत्व भी समाविष्ट रहते है। भावात्मक निबन्धो मे बौद्धिकता की अपेक्षा अनुभूति तत्व की प्रधानता रहती है। यहा लेखक के हृदय से निसृत भावधारा ही विचार सूत्र का नियन्त्रण करती है। विचारात्मक निबन्धो मे हृदय के स्थान पर बुद्धि की प्रधानता होती है। इनमे अध्ययन की व्यापकता, गम्भीरता और भाषा की समाहार-शक्ति अपेक्षित होती है। हास्य-व्यग्यात्मक निबन्धो मे विषय हल्के और शैली सरस किन्तु तीखी होती है। ऐसे निबन्ध एक ओर जीवन की ऊब और थकान को दूर कर स्वस्थ मनोरजन की पूर्ति करते है तथा दूसरी ओर समाज, धर्म, प्रशासन आदि मे व्याप्त कुरीतियो, रूढियो और दुरवस्था पर तीव्र चोट करते है।

उपर्युक्त विवेचन के परिप्रेक्ष्य मे जब हम राजस्थान के जैन निबन्धकारो पर दृष्टिपात करते है तो निबन्ध कला पर खरे उतरने वाले निबन्धो की सख्या विरल है। यो जैन पत्र-पत्रिकाओ के माध्यम से प्रति माह सपादकीय टिप्पणियो और धार्मिक, सामाजिक, दार्शनिक, सास्कृतिक निबन्धो के रूप मे काफी सामग्री छपती रहती है पर इनमे से अधिकाश सामान्य कोटि के लेख होते है। भावात्मक और हास्य- व्यंग्यात्मक निबन्ध तो बहुत ही कम है। अधिकाश निवन्ध जैन तत्व ज्ञान से सम्बन्धित होते है। सामाजिक भावभूमि को लेकर लिखे जाने वाले निवन्धो की संख्या भी पर्याप्त है। निबन्ध-लेखन मे गृहस्थो का ही विशेष योगदान रहा है। जैन-सत अपनी मर्यादा मे बधे रहने के कारण सामान्यत सीधे निबन्ध नही लिखते।

निबन्ध साहित्य की इस कमी को पूरा किया है प्रवचन साहित्य ने। निबन्ध और प्रवचन का मूल अन्तर इसकी रचना प्रक्रिया मे है। निबन्ध सामान्यत. लेखक स्वय लिखता है या बोलकर दूसरे से लिखवाता है पर प्रवचन—एक प्रकार का आध्यात्मिक भाषण है जो श्रोता मण्डली मे दिया जाता है। यह सामान्य व्यक्ति द्वारा दिया गया सामान्य भाषण नही है। किसी ज्ञानी, साधक एव अन्तर्मुखी चिन्तनशील व्यक्ति की वाणी ही प्रवचन कहलाती है। इसमे एक अद्भुत बल, विशिष्ट प्रेरणा और आन्तरिक साधना का चमत्कार छिपा रहता है। श्रोता के हृदय को सीधा स्पर्श कर उसे आन्दोलित-विलोडित करने की क्षमता उसमे निहित होती है। जैन सत-सतिया आध्यात्मिक-पथ पर बढने वाली जागरूक आत्माए है। उनकी अनुभूत वाणी प्रवचन की सच्ची अधिकारिणी है।

जैन धर्म लोक-धर्म है व लोक—भूमि पर प्रतिष्ठित है। लोक—मानस तक अपनी बात पहुचाने के लिये जैनाचार्य और जैन सत लोक भाषा मे ही अपना प्रवचन देते रहे है। स्वतन्त्रता के पूर्व तक राजस्थान के अधिकाश जैन साधु राजस्थानी मे ही प्रवचन दिया करते थे पर ज्यो ज्यो हिन्दी का प्रचार—प्रसार बढता गया, उन्होने हिन्दी को अभिव्यक्ति का माध्यम बनाया। चातुर्मास काल मे तो प्रतिदिन नियमित रूप से व्याख्यान होते ही है, उस के बाद भी शेषकाल

मे ग्रामानुग्राम विचरण करते हुए भी व्याख्यान देने का क्रम जारी रहता है। राजस्थान मे सैकडो व्याख्यानी साधु है अत. यदि लिपिबद्ध किया जाए तो प्रवचन–साहित्य प्रति वर्ष विपुल परिमाण मे सामने आ सकता है। पर वर्तमान मे सर्वत्र ऐसी व्यवस्था नही है। जो प्रभाव-शाली आचार्य और सत है, उनके चातुर्मास कालीन प्रवचनो को लिपिबद्ध करने की कही–कही व्यवस्था है। परिणामस्वरूप सपादित होकर कई प्रवचन-सग्रह प्रकाशित हुए है, लेकिन अप्रकाशित प्रवचन–साहित्य बडी मात्रा मे सरक्षित है। जो प्रवचन-सकलन प्रकाशित हुए है उनमे प्रमुख है–जवाहर किरणावली भाग 1-35 (आचार्य श्री जवाहरलालजी), सस्कृति का राज मार्ग, आत्म दर्शन (आचार्य श्री गणेशीलालजी म), दिवाकर दिव्य ज्योति भाग 1-21 (जैन दिवाकर श्री चौथमलजी म), हीरक प्रवचन भाग 1-10 (श्री हीरालालजी म), प्रवचन डायरी भाग 1-4 (आचार्य श्री तुलसी), आध्यात्मिक आलोक भाग 1-4, आध्यात्मिक-साधना भाग 1-2, प्रार्थना-प्रवचन, गजेन्द्र व्याख्यान माला भाग 1-3 (आचार्य श्री हस्तीमलजी म), साधना के सूत्र, अन्तर की ओर भाग-1-2 (श्री मधुकर मुनि) प्रवचन प्रभा, प्रवचन सुधा, धवल ज्ञान धारा साधना के पथ पर, जीवन ज्योति (मरुधर केसरी श्री मिश्रीमलजी म), पावस प्रवचन भाग 1-5, ताप और तप, समता दर्शन और व्यवहार, शान्ति के सोपान (आचार्य श्री नानालालजी म). जिन्दगी की मुस्कान, साधना का राज मार्ग (श्री पुष्कर मुनि), अर्चना और आलोक (साध्वी श्री उमराव कुवरजी), पर्युषण पर्वाराधना, दुर्लभ अग चतुष्टय, (साध्वी श्री मैनासुन्दरीजी)।

सक्षेप मे प्रवचन साहित्य की विशेषताओ को इस प्रकार रखा जा सकता है —

(1) इनमे किसी शास्त्रीय विषय को बडी गहराई के साथ उठाकर किसी प्रसिद्ध कथानक या प्रसग के माध्यम से इस प्रकार आगे बढाया जाता है कि वह कथा या प्रसग अपने मूल आगमिक भाव को स्पष्ट करता हुआ हमारे वर्तमान जीवन की समस्याओ एव उलझनो का भी समाधान देता चलता है।

(2) इनके विषय उन प्रवृत्तियो और विचारो से सम्बन्ध होते है जिनसे व्यक्ति को अपना आन्तरिक जीवन शुद्ध, समाज को स्वस्थ्य और प्रगतिशील तथा सर्वजाति समभाव, सर्व धर्म समभाव और विश्वमैत्री भाव जागृत करने की प्रेरणा मिलती है।

(3) ये प्रवचन मूलत आध्यात्मिक होने पर भी समसामयिक जीवन सदर्भो और विश्व समस्याओ से जुडे होते हैं। इनमे आत्मानुशासन, विश्वबन्धुत्व, एकता, सेवा सहयोग, सहअस्तित्व जैसी जीवन निर्माणकारी और विश्व हितकारी भावनाओ पर विशेष बल होने से इनकी अपील सर्व जन–हितकारी और सदिमुक्त होती है।

(4) ये प्रवचन प्रवचनकार की पदयात्रा के अनुभवो की ताजगी, वातावरण की पवित्रता, प्रसगानुकूल असरकारक कथाओ, दृष्टान्तो और रूपको से युक्त होते है।

(5) ये प्रवचन आलकारिक बनाव शृगार से परे अनुभूति की गहराई, अतस्पर्शी मार्मिकता, ज्ञात-अज्ञात कवियो की पदावली, लोकधुनो, विविध-राग-रागिनियो, सस्कृत श्लोको, प्राकृत गाथाओ और मर्मस्पर्शी सूक्तियो से युक्त होते है। साधारण कथ्य और घटना मे भी ये प्राण फूक देते है जो जीवन मोड़ का कारण बनती है।

(च) शोध-समालोचना :—यो तो जैन आगमों, दार्शनिक और तात्विक ग्रन्थो की व्याख्या-विवेचना (टीका-भाष्य) के रूप मे शोध की प्रवृत्ति प्राचीन काल से चली आरही है। पर उस प्रवृत्ति का क्षेत्र मुख्यत. धार्मिक और दार्शनिक जगत तक ही सीमित रहा है। लम्बे समय तक जैन साहित्य को केवल धार्मिक साहित्य कहकर उपेक्षा की जाती रही पर जब पाश्चात्य विद्वानो का ध्यान आगम ग्रन्थो और उनके समीक्षात्मक अध्ययन तथा हस्तलिखित जैन ग्रन्थो के सूचीकरण की ओर गया तो जैन साहित्य का दायरा व्यापक हुआ और शोध की दिशाए विस्तृत हुई। इधर हिन्दी साहित्य के आदिकाल की अधिकाश आधारभूत सामग्री जैन साहित्यकारो द्वारा ही रचित मिली है। जैन अपभ्रश साहित्य धारा के अध्ययन से यह स्पष्ट होने लगा कि हिन्दी के सत काव्य, प्रेमाख्यानक काव्य और भक्ति काव्य के रचना तन्त्र और शिल्पविधान पर जैन साहित्य का व्यापक प्रभाव है। प्राचीन इतिहास, सस्कृति और पुरातत्व तथा भारतीय दर्शन के तुलनात्मक अध्ययन मे भी जैन आगम और पुराण ग्रन्थो का उपयोग करने की प्रवृत्ति विशेष बढी है। इन सब का परिणाम यह हुआ कि अब जैन वाङ्मय अन्तर अनुशासनीय शोध-क्षेत्र का मुख्य आधार बन गया है।

जैन साहित्य का अधिकाश भाग अब भी अज्ञात और अप्रकाशित है। राजस्थान मे सैकडो मन्दिर, उपाश्रय और स्थानक है जहा हस्तलिखित पाडुलिपियो के रूप मे यह मूल्यवान साहित्य सगृहीत-सरक्षित है। यह साहित्य केवल धार्मिक नही है और न केवल जैन धर्म से ही सम्बन्धित है। इनमे साहित्य के अतिरिक्त इतिहास, दर्शन, भूगोल, आयुर्वेद, ज्योतिष आदि की अलभ्य सामग्री छिपी पड़ी है। इनका समुद्धार किया जाना आवश्यक है।

विश्वविद्यालय स्तर पर अब तक जैन विद्या के अध्ययन-अध्यापन की स्वतन्त्र व्यवस्था न होने से जैन शोध की प्रवृत्ति वैज्ञानिक रूप धारण न कर सकी। प्रसन्नता का विषय है कि भगवान् महावीर के 2500 वें परिनिर्वाण वर्ष के उपलक्ष्य मे राजस्थान सरकार के सहयोग से राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर तथा उदयपुर विश्वविद्यालय, उदयपुर मे जैन अनुशीलन केन्द्र की स्थापना की गई है। इससे निश्चय ही जैन शोध की सम्भावनाओ के नये द्वार खुलेगे।

जैन विद्या का व्यवस्थित अध्ययन-अध्यापन न होने पर भी शोध क्षेत्र मे राजस्थान अग्रणी है। इसका मुख्य कारण यहा पर्याप्त सख्या मे हस्तलिखित ग्रन्थ भडारो का होना है। कई सस्थाए और व्यक्ति शोध कार्य मे मनोयोग पूर्वक लगे हुए है। शोधरत सस्थाओ मे प्रमुख हैं—श्री दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र श्री महावीरजी द्वारा सचालित साहित्य शोध विभाग, महावीर भवन, जयपुर, आचार्य श्री विनयचन्द्र ज्ञान भण्डार शोध प्रतिष्ठान, लाल भवन जयपुर, जैन इतिहास समिति, जयपुर, जैन विश्व भारती लाडनू, अभय जैन ग्रन्थालय, बीकानेर।

शोधरत विद्वानो मे महत्वपूर्ण नाम है—मुनि श्री जिनविजयजी, मुनि श्री कल्याण विजयजी, मुनि श्री कान्ति सागरजी, प. घासीलालजी म, आचार्य श्री हस्तीमलजी म, आचार्य श्री तुलसी, मुनि श्री नथमलजी, मुनि श्री नगराजजी, मुनि श्री बुद्धमलजी, मुनि श्री लक्ष्मीचन्दजी म, श्री देवेन्द्र मुनि जी, श्री अगरचन्द नाहटा, श्री भवरलाल नाहटा, डा कस्तूरचन्द कासलीवाल, श्री श्रीचन्द रामपुरिया, डा नरेन्द्र भानावत, महोपाध्याय विनयसागर, डा. प्रेम सुमन जैन आदि।

सक्षेप में जैन शोध-प्रवृत्तियो को इस प्रकार रखा जा सकता है—

(1) राजस्थान के ज्ञान भण्डारो मे उपलब्ध हस्तलिखित पाडुलिपियो का विस्तृत सूचीकरण और प्रकाशन।

(2) हस्तलिखित प्रतियो के आधार पर महत्वपूर्ण कवियो की रचनाओ का व्यवस्थित सकलन, सम्पादन और विस्तृत भूमिका के साथ कवि के कृतित्व का समीक्षात्मक मूल्याकन।

(3) जैन आगमो का वैज्ञानिक पद्धति से प्रामाणिक सम्पादन, टिप्पण, समीक्षण और हिन्दी मे अनुवादन ।

(4) जैन धर्म का प्रामाणिक इतिहास लेखन और इतिहास की आधार भूत सामग्री के रूप मे पट्टावलियो, अभिलेखो आदि का सकलन-सम्पादन ।

(5) जैन दर्शन, साहित्य, तत्वज्ञान आदि से सम्बद्ध समीक्षात्मक, तुलनात्मक और आधुनिक विज्ञान के परिपेक्ष्य मे पुस्तक-निबन्ध लेखन ।

(6) जैन पारिभाषिक शब्दो और तत्व विशेष को लेकर कोश-निर्माण ।

उपर्युक्त विवेचन के आधार पर कहा जा सकता है कि राजस्थान मे जैन साहित्य की पद्य और गद्य विषयक प्रवृत्तिया मात्रात्मक और गुणात्मक दोनो दृष्टियो से मानवतावादी साहित्य निर्माण की ओर सतत अग्रसर है। उनमे निरी धार्मिकता के स्थान पर उदात्त साहित्यिक तत्वो का समावेश हो रहा है और वे वैयक्तिकता के आत्मलक्षी दायरे से निकल कर सामूहिकता के व्यापक क्षेत्र मे प्रवेश कर रही है ।

हिन्दी जैन साहित्य और साहित्यकार—2

अगरचन्द नाहटा
एवं
महोपाध्याय विनयसागर

राजस्थान प्रान्त जब कई विभागो मे विभक्त था तब जो प्रदेश ब्रज व पजाब के आसपास का था उसमे हिन्दी का प्रभाव व प्रचार अधिक रहा, जो प्रदेश गुजरात से सलग्न था वहा पर गुजराती भाषा का प्रभाव अधिक रहा जो स्वाभाविक ही है। बाकी सारे प्रदेश की भाषा को राजस्थानी कहा जाता है, जिसकी कई शाखाये व बोलिया है। राजस्थानी भाषा का प्राचीन नाम मरु या मारवाड़ी भाषा था।

हिन्दी मूलत. जिसे खड़ी बोली कहा जाता है, वह तो मुसलमानी साम्राज्य के समय विकसित हुई। व्रज हिन्दी का दूसरा साहित्यिक रूप है। प्राचीन हिन्दी साहित्य सर्वाधिक ब्रज भाषा का है जिसे कई ग्रन्थों मे "ग्वालेरी" नाम भी दिया गया है, क्योकि ग्वालियर के आसपास के क्षेत्र मे इस भाषा का अधिक प्रचार व प्रसार रहा है। राजस्थान के भी कई साहित्यकारो ने "ग्वालेरी भाषा" का उल्लेख किया है। हिन्दी साहित्य वैसे अवधी आदि मे भी मिलता है, पर राजस्थान मे ब्रज भाषा और खड़ी बोली, हिन्दी की इन दोनो उप-भाषाओ का ही अधिक प्रसार रहा है।

मुगल साम्राज्य के समय से राजस्थान मे हिन्दी का प्रचार बढ़ता रहा। इसलिये हिन्दी जैन कवि स 1600 के बाद के ही अधिक मिलते है। इससे पहले की सारी रचनाये राजस्थानी मे है। अभी तक जो श्वेताम्बर हिन्दी कवियो के सम्बन्ध मे खोज हुई है, उनमे सर्वप्रथम कवि मालदेव है। ये अपने समय के बहुत समर्थ कवि थे। उनका और उनकी रचनाओ का समुचित विवरण नीचे दिया जा रहा है.—

1. कवि मालदेव

बडगच्छ की भटनेर शाखा के प्रभावशाली आचार्य भावदेवसूरि के शिष्य थे। इन्होने अपनी रचनाओ में अपना सक्षिप्त नाम "माल" का उपयोग किया है। भटनेर, सरसा के आसपास इस गच्छ का और इस कवि का अधिक विचरण तथा अधिक प्रभाव रहा है। यद्यपि सरसा अभी हरियाणा प्रदेश मे है किन्तु पहले राजस्थान विशेषत बीकानेर के राजाओ से ही शासित था। कवि ने अपने गच्छ और गुरु के सिवाय अपना विशेष परिचय रचनाओ मे नही दिया है। रचना काल का उल्लेख भी केवल दो रचनाओ मे किया है। स. 1612-1668 अर्थात् 56 वर्ष तक कवि रचना करता रहा है। इस लम्बे काल को देखते हुए तो उनकी रचनाये बहुत अधिक मिलनी चाहिये, परन्तु भटनेरी बडगच्छ शाखा का भण्डार सुरक्षित नही रहने से कवि की छोटी-बडी 30-40 रचनायें ही अब तक उपलब्ध हुई हैं। प्राकृत, सस्कृत और हिन्दी राजस्थानी मे गद्य और पद्य मे कवि लिखता रहा है। यहा तो उनमे से हिन्दी रचनाओं का विवरण देना ही अभीष्ट है। यद्यपि कवि राजस्थान का होने के कारण इसकी हिन्दी राजस्थानी मिश्रित है, फिर भी अन्य राजस्थानी कवियों की अपेक्षा कवि की रचनाओ मे हिन्दी की ही प्रधानता है। कवि की अधिकाश रचनायें अप्रकाशित हैं। उसकी

रचनाओ मे सर्वाधिक प्रसिद्ध पुरन्दर चौपई है। ... ने भी ... के रूप मे इनका उल्लेख किया है।

रचनाओ की सूची इस प्रकार है —

(1) शीलागद चौपई, पद्य स 758, र स 1612,

(2) भविष्य-भविष्या चौपई, पद्य स 617, स 1666 । इस

रचना काल के उल्लेख वाली पहली रचना शीलागद चौपई और अतिम रचना भविष्य भविष्या चौपई है। इसकी उसी समय की लिखित प्रति ... मे है।

(3) विक्रम चौपई, 7 प्रस्तावो और 1725 पद्यो मे है।

(4) भोज चौपई, यह भी ... खण्डो मे एव 1700 पद्यो मे है और ... मे रची गई है।

(5) अमरसेन वयरसेन चौपई, 110 पद्यो मे रचित है। यह रचना ... की आज्ञा से रची गई है प्रत स. 1621 के बाद की है।

(6) कीर्तिधर सुकोशल मुनि सम्बन्ध, पद्य 127 है।

(7) स्थूलभद्र धमाल, पद्य 101, यह प्राचीन फागु सग्रह मे प्रकाशित हो चुका है।

(8) राजुल नेमि धमाल, पद्य 63 ।

(9) नेमिनाथ नवभव रास, पद्य 230 ।

(10) देवदत्त चौपई, पद्य 530 ।

(11) धनदत्त ... चौपई ।

(12) अजनासुन्दरी चौपई, प 158 ।

(13) नर्मदा सुन्दरी चौपई ।

(14) पुरन्दर चौपई, पद्य 375 ।

(15) पद्मावती पद्मश्री रास, पद्य 815 ।

(16) मृगाक-पद्मावती रास, पद्य 487 ।

(17) मात शिक्षा चौपई, पद्य 67 ।

(18) शील बावनी ।

(19) सत्य की चौपई, पद्य 446 ।

(20) सुरसुन्दर राजर्षि चौपई, पद्य 669 ।

(21) महावीर पारणा और स्तवन सज्झाय-पद आदि आपके रचित प्राप्त है।

2. समयसुन्दर

राजस्थान के महाकवियो मे महोपाध्याय समयसुन्दर बहुत बड़े ग्रन्थकार हुए है, जिनकी 563 लघु रचनाओ का सग्रह इनकी विस्तृत जीवनी और रचनाओ की सूची के साथ "समय-सुन्दर कृति कुसुमाञ्जली" नामक पुस्तक मे प्रकाशित हो चुका है। स 1649 मे अपने प्रगुरु युगप्रधान जिनचन्द्रसूरि जी के साथ लाहोर मे सम्राट अकबर से कवि का परिचय हुआ था और वहा सम्राट के काश्मीर प्रयाण के समय "राजानो ददते सौख्यम्" के 10 लाख अर्थ किये थे। तभी से कवि की रचनाओ मे कई तो हिन्दी की ही है और कई राजस्थानी मे होने पर भी हिन्दी का प्रभाव पाया जाता है। जिनचन्द्रसूरि और अकबर के मिलन सम्बन्धी अष्टक मे सर्वप्रथम हिन्दी भाषा का प्रयोग हुआ है। अत एक पद्य नमूने के तौर पर नीचे दिया जा रहा है —

ए जी सतन के मुख वाणी सुणी, जिणचन्द सूरिंद महत यति,
तप जाप करइ गुरु गुज्जर मै, प्रतिबोधत है भविकु सुमति ।
तब ही चित चाहन चूप भई, समयसुन्दर के प्रभु गच्छापति,
पठइ पतिसाहि अजब्ब की छाप, बोलाए गुरु गजराज गति ।। 1।।

स. 1658 मे अहमदाबाद मे रचित होने पर भी कवि ने चौबीसी की रचना हिन्दी मे की है। "ध्रुपद छत्तीसी" और कई भक्ति पद कवि के रचे हुए बहुत ही भव्य एव आकर्षक है। उदाहरण के तौर पर एक पद यहा दिया जा रहा है:—

मेरी जीयु आरति काइ धरइ।
जइसा वखत मइं लिखति विधाता, तिण मइ कछु न टरई । मे 1।
केई चक्रवर्ती सिर छत्र धरावत, केइ कण मागत फिरइ ।
केइ सुखिए केइ दुखिए देखत, तें सव करम करइ ।मे. 2।
आरती अंदोह छोरि दे जीयुरा, रोवत न राज चरइ।
समयसुन्दर कहइ जो सुख वंछत, तउ करि ध्रम चित खरइ। मे 3।

कवि समयसुन्दर का जन्म साचोर में हुआ था। राजस्थान मे विचरण करते हुए आपने बहुत सी महत्वपूर्ण रचनाये की है। इनका विशेष परिचय सस्कृत और राजस्थानी विभाग मे दिया जा चुका है।

3. जिनराजसूरि

अकबर प्रतिवोधक युगप्रधान जिनचन्द्रसूरि के ये प्रशिष्य थे। स. 1647 मे बीकानेर के बोथरा धर्मसी की पत्नी धारलदेवी की कुक्षि से आपका जन्म हुआ था। 10 वर्ष की अल्पायु मे जैन मुनि दीक्षा ग्रहण की थी। इनका दीक्षानाम राजसमुद्र रखा गया था। ये अपने समय के बहुत बड़े विद्वान् और सुकवि थे। स. 1674 मे मेडता मे आपको आचार्य पद मिला था। इन्होंने नैषधकाव्य पर 36000 श्लोक प्रमाण की सस्कृत टीका वनाई और गागाणी के प्राचीन लेखों को पढा था। सं. 1686 आगरा मे ये सम्राट शाहजहा से मिले थे। इनकी "शालिभद्र चौपई" सर्वाधिक प्रसिद्ध रचना है। उसके साथ बाकी रचनाओ का सग्रह भी "जिनराजसूरि कृति सग्रह" मे प्रकाशित किया जा चुका है। राजस्थानी के साथ-साथ आपने हिन्दी मे भी बहुत से सुन्दर पदो की रचना की है, उनमें से रामायण संवन्धी एक पद नीचे दिया जा रहा है—

मदोदरी बार बार इम भाखइ।
दस सिरि अरु गढ लका चाहइ, तउ पर स्त्री जन राखइ (म 1)
पलट्यउ दिवस विभीषण पलटयउ, पाज जलधि परि झाखइ।
बोवइ पेड आक के आगण, अब किहां थइ चाखइ। म 2।
जीती जाई सकइ नही कोऊ, वलि एहि जगि आखई।
'राज' वदत रावण क्यु समझइ, होणहार लकाखइ ॥म 3।

4 कवि दामो

ये अचलगच्छ के वाचक उदयसागर के शिष्य थे। इनका दीक्षा नाम दयासागर था। सं. 1669 जालौर में इन्होंने 'मदन नरिंद चौपई" की रचना की जिसके अन्त मे इन्होने अपने पूर्व रचित "मदन-शतक" का उल्लेख इस प्रकार किया है—

"मदन शतक" ना दूहडा, एकोत्तर सौ सार।
मदन नरिंद तणु चरित, मइ विरच्यु विस्तारि ॥65॥

मदनशतक हिन्दी भाषा का एक सुन्दर प्रेम काव्य है। यह वहुत लोकप्रिय रहा है। इसकी अनेको हस्तलिखित प्रतियां बीकानेर की अनूप संस्कृत लायब्रेरी, अभयजैन ग्रथालय आदि मे प्राप्त है। जिनमे से एक प्रति मे आठ चित्र भी है। जैसाकि उपरोक्त उद्धरण मे लिखा गया है कि इसमे 101 दोहे थे, किन्तु आगे चलकर इसकी पद्य सख्या में भी वृद्धि हुई और गद्य वार्ता का भी इसमें समावेश हो गया। आगरा विश्वविद्यालय के "भारतीय साहित्य" जुलाई-अक्टूबर, 1962 के अंक में मदनशतक प्रकाशित हो चुका है, जिसमें 132 पद्य और वार्ता भी है। इस रचना के बीच में गुप्तलेख जो रतिसुन्दरी ने अपने प्रियतम को भेजा था, वह विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इस शतक की हिन्दी भाषा के नमूने के रूप में एक पद्य और वार्ता उद्धृत की जा रही है—

"विरह आगि उपजी अधिक, अहनिस दहै सरीर ।
साहिब देहु पसाऊ करि, दरसन रूपी नीर ॥93॥

वार्ता—कागद वाच्या । राजा हर्षित भया । शुभ मूहूर्त पच कन्या सेती मदन को व्याह किया । करमोचन अर्द्ध राज्य दिया । मदन पच स्त्री के सग सुख भोग ।"

5 कवि कुशललाभ

ये खरतरगच्छ के वाचक अभयधर्म के शिष्य थे । "ढोलामारू चौपई" आपकी बहुत ही प्रसिद्ध रचना है । राजस्थान मे तो ये उल्लेखनीय कवि थे ही , पर इनकी एक हिन्दी रचना "स्थूलिभद्र छत्तीसी" भी प्राप्त है जो अभय जैन ग्रंथालय, बीकानेर मे सगृहीत है । उदाहरण के तौर पर प्रथम पद्य देखिये —

"सारद शरद चन्द्र कर निर्मल ताके चरण कमल चित लायकइ ।
सुणत सतोप हुइ श्रवण कु नागर चतुर सुनहु चित चायकइ ।
कुशललाभ बुल्लति आनन्द भरि सुगुरु पसादि परम सुख पायकइ ।
करिहु थूलभद्र छत्तीसी अति सुन्दर पद बध बनाय कइ ।1।

6 भद्रसेन

खरतरगच्छ के इस कवि का नामोल्लेख स 1675 के शत्रुजय शिलालेख मे पाया जाता है । इनकी प्रसिद्ध रचना "चन्दन मलयागिरि चौपई" बीकानेर मे रची गई, क्योकि इसके प्रारम्भ मे कवि ने विक्रमपुर का उल्लेख किया है । यह रचना बहुत लोकप्रिय रही है और इसकी कई सचित्र प्रतिया भी प्राप्त है । इसकी एक सचित्र प्रति अभय जैन ग्रथालय मे भी प्राप्त है । श्री साराभाई नवाब ने इसका सचित्र सस्करण "आचार्य आनन्दशकर ध्रुव स्मारक ग्रन्थ" मे सन् 1944 मे प्रकाशित किया था । रचना दोहा छन्द में है, बीच-बीच मे कुछ गाथाये भी पाई जाती है । प्रारम्भ के 4 दोहे उद्धृत किये जा रहे है —

स्वस्ति श्री विक्रमपुरे, प्रणमी श्री जगदीश ।
तन मन जीवन सुखकरण, पूरण जगत जगीस ।1।
वरदायक वर सरसती, मति विस्तारण मात ।
प्रणमी मनि धर मोद सु, हरण विघन सघात ।2।
मम उपगारी परम गुरु, गुण अक्षर दातार ।
वादी ताके चरण युग, भद्रसेन मुनि सार ।3।
कहा चन्दन कहा मलयागिरि, कहा सायर कहा नीर ।
कहि हइ ताकी वारता, सुणउ सवे वरवीर ।4।

7 मानसिंह 'मान'

ये खरतरगच्छ के उपाध्याय शिवनिधान के शिष्य और सुकवि थे । कवि का दीक्षानाम महिमासमुद्र था । स 1670 से 1693 तक की इनकी बहुत सी रचनाये प्राप्त है, जिनमे राजस्थानी काव्य ही अधिक है । हिन्दी की भी आपकी तीन रचनायें मिली है —1 योग बावनी, 2 उत्पत्तिनामा, और 3 भाषा कवि रस मजरी । इनमे से 'भाषा कवि रस मजरी' की एक प्रति अभय जैन ग्रन्थालय मे है । नायक-नायिका वर्णन सम्बन्धी इसमे 107 पद्य है । शृगार रस वाली जैन कविता की ऐसी रचनाये बहुत कम मिलती है । रचना के आद्यन्त के पद्य नीचे दिये जा रहे है—

सकल कलानिधि वादि गज, पचानन परधान ।
श्री शिवनिधान पाठक चरण, प्रणमी वदे मुनि मान ।1।
नव अंकुर जोवन भई, लाल मनोहर होइ ।
कोपि सरल भूषण ग्रहै, चेप्टा मुग्धा सोइ ।2।

× × × ×

नारि नारि सब को कहै, किऊ नाइकासु होइ ।
निज गुण मनि मति रीति धरी, मान ग्रन्थ अवलोइ । 107।

8 उदयराज

खरतरगच्छीय भद्रसार के शिष्य उदयराज 17वी के उत्तरार्ध के अच्छे कवि थे । इनकी राजस्थानी रचनायें स 1667 से 1676 तक की प्राप्त हैं । इस कवि ने करीब 500 दोहे भी बनाये है । हिन्दी रचनाओं में "वैद्य विरहिणी प्रबन्ध" 78 पद्यो में हैं । इसकी एकमात्र प्रति अभय जैन ग्रन्थालय मे प्राप्त है ।

9. श्रीसार

ये खरतरगच्छीय क्षेमकीर्तिशाखा के श्री रत्नहर्षजी के शिष्य थे । इनकी रचनाओं का रचनाकाल 17वी शताब्दी का अतिम चरण है। आप अच्छे कवि और गद्यकार थे। आपकी राजस्थानी मे छोटी-मोटी तीसो कृतिया प्राप्त हैं । हिन्दी मे आपका केवल "रघुनाथ विनोद" नामक ग्रन्थ, अपूर्ण ही प्राप्त है । उदाहरण के तौर पर एक पद्य देखिये —

या कू शिव शिव करि ध्यावत है शैवमती, ब्रह्म ब्रह्म नामकरि वेद माहि ध्याइये ।
बुद्ध बुद्ध नाम लै लै ध्यावत है बौधमती, कृष्ण कृष्ण राम राम ऐसे लिव लाइये ।
एकाएकु वीतराग ध्यावे जिन सासनी, यु अल्ला अकबर कहि किसहि बताइये ।
कहै कवि सार तीन लोक के है नाथु एकु, कथनी में भेद तापें नाम न्यारे पाइये । 5 ।

गोस्वामी तुलसीदास रचित कवितावली के पद्य के साथ सीतागमन वर्णनात्मक इस पद्य की तुलना कीजिये —

खेद भयौ परस्वेद चल्यो कहि सार कहावत अच्छी कहानी ।
हाथ कटी डग ध्यारि चलै फिर बैठ रहे रघुनाथ की रानी ।
पूछे अजू जाईवो कितनो अब दूरि रही अपनी रजधानी ।
नैन सरोवर नीर भरे छिलके निकसै असुवा मिसी पानी ॥ 19 ॥

10 कवि केशव

ये खरतरगच्छीय दयारत्न के शिष्य थे । इनका जन्म नाम केशव और दीक्षानाम कीर्तिवर्धन था । इन्होने "सदैवच्छ सार्वलिगा चौपई" स 1697 में रची, जो "सदयवत्स प्रबन्ध" के परिशिष्ट में प्रकाशित हो चुकी है । इस कवि ने हिन्दी में भी कई उल्लेखनीय रचनायें की हैं जिनमे से "चतुरप्रिया" नायक-नायिका भेद सम्बन्धी रचना दो उल्लासो में प्राप्त है । इसकी पद्य सख्या 86 और 48 है । स 1704 मे इसकी रचना पूर्ण हुई है । इसी कवि ने "जन्म प्रकाशिका" नामक ज्योतिषग्रन्थ मेडता के सघपति राजसिंह, अमीपाल, वीरपाल के लिये 278 दोहो में रची है । इसी तरह कवि की तीन अन्य रचनाये दोहा छद में रचित प्राप्त है — 1 भ्रमर बत्तीसी 2. दीपक बत्तीसी और 3 प्रीत छत्तीसी । इन तीनो रचनाओं में पीछे से स्वय कवि ने कई दोहे बनाकर बढा दिये है । इसीलिये भ्रमरबत्तीसी में 48 और प्रीति छत्तीसी में 52 दोहे मिलते हैं ।

11. कवि जसराज (जिनहर्ष)

ये खरतरगच्छीय शान्तिहर्ष के शिष्य थे। इनका प्रसिद्ध नाम जसराज और दीक्षा नाम जिनहर्ष था। प्रारम्भिक जीवन तो राजस्थान मे घूमते ही वीता और पिछले कई वर्ष गुजरात-पाटन मे रहे। राजस्थानी भाषा के तो ये बहुत बडे कवि थे। इनकी रचनाओ का परिमाण लगभग एक लाख श्लोक का है। छोटी-मोटी करीव 500 रचनाये इनकी प्राप्त है। स. 1704 से 1763 तक की इनकी रचनायें मिलती है, अर्थात् 60 वर्ष तक ये निरन्तर साहित्य सर्जन करते रहे है। इस महाकवि के सम्बन्ध मे डा. ईश्वरानन्द शर्मा ने शोध प्रवन्ध लिखकर पी-एच-डी प्राप्त की है। राजस्थानी के अतिरिक्त हिन्दी में भी इन्होने कई उल्लेखनीय रचनायें की है। इनमें से "नन्द बहोत्तरी' स 1714 वील्हावास में रची गई है। इसमे नदवश के महाराजा नन्द और उसके मन्त्री विरोचन की रोचक कथा 72 दोहो मे है। इनकी दूसरी रचना 'जसराज वावनी' 57 सवैया छदो मे स 1738 मे रची गई है। तीसरी रचना 'दोहा वावनी' स 1730 मे रची गई है। चौथी रचना 'उपदेश छत्तीसी' 36 सवैया छदो मे स. 1713 में रची गई है। इनके अतिरिक्त चौवीस तीर्थकरो के चौवीस पद, बारहमासा द्वय, पनरह तिथि का सवैया आदि कई हिन्दी रचनाये 'जिनहर्ष ग्रन्थावली' मे प्रकाशित हो चुकी है। इनमे से उपदेश छत्तीसी का एक छद उदाहरण के तौर पर दिया जा रहा है—

जैसे अजुरी को नीर कोऊ गहै नरधीर,
छिन छिन जाइ वीर राख्यो न रहात है।
तैसे घटि जै हैं आऊ कोटिक करो उपाऊ,
थिर रहै नही सही बातन की बात है।
ऐसे जीव जाणि के सुकृत करि धरि मन,
समता मै रमता रहै तो नीकि घात है।
अथिर देही सु उपगार यौ हो सार जिन-
हरख सुथिर जस भौन मै लहातु है ॥ 25 ॥

12. आनन्दघन

इनका मूलनाम लाभानन्द था। स 1730 के आसपास मेड़ता में इनका स्वर्गवास हुआ था। वडे अध्यात्मयोगी पुरुष थे। इनकी चौवीसी और पद बहुतरी वहुत ही प्रसिद्ध है। वैसे पदो की सख्या करीवन 150 तक पहुच चुकी है। इनमे से कई पद अन्य कवियो के रचित होने पर भी इनके नाम से प्रसिद्ध हो गए है। इनके पदो में से एक प्रसिद्ध पद नीचे दिया जा रहा है—

राम कहो रहिमान कहो, कोउ कान्ह कहो महादेव री।
पारसनाथ कहो कोऊ ब्रह्मा, सकल ब्रह्म स्वमेव री ॥ राम .1 ॥
भाजन भेद कहावत नाना, एक मृत्तिका रूप री।
तैसे खण्ड कलपना रोपित, आप अखण्ड सरूप री ॥ राम. 2॥
निज पद रमै राम सो कहियै, रहम करै रहमान री।
करषै करम कान्ह सो कहियै, महादेव निरवाण री ॥राम. 3॥
परसै रूप सो पारस कहियै, ब्रह्म चिन्है सो ब्रह्म री।
इहविध साध्यो आप आनन्दघन, चेतनमय नि कर्मरी ॥राम 4॥

जैन दर्शन शास्त्र के महाविद्वान् उपाध्याय यशोविजयजी ने आनन्दघनजी की जो भावपूर्ण अष्टपदी की रचना की है, उससे आनन्दघनजी की महानता और विशिष्टता का सहज ही पता चल जाता है।

13. आनन्दवर्धन

ये खरतरगच्छीय महिमासागर के शिष्य थे। इनकी स. 1702 से 1726 तक की रचनायें प्राप्त हैं। इनमें से कुछ हिन्दी रचनायें उल्लेखनीय हैं। जैन समाज में भक्तामर और कल्याणमन्दिर दो स्तोत्र अत्यन्त प्रसिद्ध है, इनका आपने हिन्दी पद्यानुवाद किया है। भक्तामर पद्य का एक उदाहरण प्रस्तुत है:—

प्रणमत भगत अमर वर सिर पुर, अमित मुकुट मनि ज्योति के जगावनां,
हरत सकल पाप रूप अधकार दल, करत उद्योत जगि त्रिभुवन पावनां।
इसे आदिनाथ जू के चरन कमल जुग, सुवधि प्रणमि करि कछु भावना,
भवजल परत लरत जन उधरत, जुगादि आनन्द कर सुन्दर सुहावना। 1।

14. महिमसमुद्र (जिन-समुद्रसूरि)

ये खरतरगच्छ की वेगड़ शाखा के आचार्य जिनचन्द्रसूरि के शिष्य थे। ये भी राजस्थानी के वहुत वडे और अच्छे कवि थे। इनके सम्बन्ध मे राजस्थानी (निवन्ध-माला) भाग 2 में लेख प्रकाशित हो चुका हैं। हिन्दी भाषा मे भी आपने कई उल्लेखनीय रचनाये की है जिनमें से भर्तृहरि "वैराग्य शतक" पर 'सर्वार्थसिद्धि मणिमाला" नामक विस्तृत टीका है। इसकी रचना स 1740 मे हुई हैं। स्वतन्त्र उल्लेखनीय कृतियो मे 'तत्वप्रवोध नाटक स 1730 जैसलमेर में रचित है। इसकी तत्कालीन लिखित प्रति प्राप्त है। अन्य रचनाओ मे "नेमिनाथ बारहमासा" "नारी गजल" "वैद्यचिन्तामणि" (समुद्रप्रकाश सिद्धान्त) आदि स्फुट कृतियें भी प्राप्त है। वैद्य चिन्तामणि की अभी तक पूर्ण प्रति प्राप्त नही हुई है। 18वी शताब्दी के गद्य के नमूने के रूप में वैराग्य शतक टीका का अ श उद्धृत है—

"अव श्री वैराग्यशतक कै विषै तृतीय प्रकाश वखान्यो तो अव अनतरि चौथा प्रकाश गुवालेरी भाषा करि वखानता हू। प्रथम शास्त्रोक्त षड्भाषा छोडि करि या अपभ्र श भाषा वीचि ऐसा ग्रथ की टीका करणी परी सु कौन वास्ता ताका भेद वतावता हैं जु उर भाषा पट हैं ताका नाम कहता हैं।"

15. लक्ष्मीवल्लभ

ये खरतरगच्छीय क्षेमकीर्ति शाखा के लक्ष्मीकीर्ति के शिष्य थे। इनका मूल नाम "हेमराज" और उपनाम "राजकवि" था। सस्कृत, राजस्थानी और हिन्दी तीनो भाषाओ में इन्होंने काफी रचनायें की है। हिन्दी रचनाओ मे वैद्यक सम्बन्धी दो रचनाये है—1 मूत्र परीक्षा, पद्य 36 और 2. काल ज्ञान, पद्य 178, स 1741 मे रचित। इनकी दूहा बावनी, दूहा 58, हेमराज बावनी, सवैया 57, चौवीसी स्तवन, नवतत्व भाषा वन्ध, पद्य 82, स. 1747, भावना विलास, पद्य 52, स. 1727, नेमि राजुल वारहमासा आदि हिन्दी की अन्य रचनायें भी प्राप्त हैं। इनमे से भावना विलास का प्रथम पद्य उदाहरण के रूप मे प्रस्तुत है—

प्रणमी चरण युग पास जिनराज जू के,
विघ्न के चूरण है पूरण है आस के।
दृढ दिल माझि ध्यान धरि श्रुतदेवता को,
सेवत सपूरन हो मनोरथ दास के।
ज्ञान दृग दाता गुरु बड़ो उपगारी मेरे,
दिनकर जैसे दीपे ज्ञान प्रकाश के।
इनके प्रसाद कविराज सदा सुख काज,
सवीये बनावति भावना विलास के।1।

१६. धर्मसी (धर्मवर्धन)

ये खरतरगच्छ के उ विजयहर्ष के शिष्य थे। संस्कृत, हिन्दी और राजस्थानी तीनों भाषाओं में इन्होंने उत्कृष्ट रचनायें की। ये बीकानेर के राजमान्य कवि थे। आपकी हिन्दी रचनाओं में "धर्मबावनी" सं. 1725 रणी में रची गई है। इसमें औपदेशिक 57 सवैये हैं। दूसरी रचना दम्भक्रिया चौपई स 1740 की है। तथा चौबीस जिन पद, चौबीस जिन सवैये, नेमिराजुल बारहमासा और कुछ प्रबोधक पद भी प्राप्त हैं। इनमें से बारहमासा का एक पद्य नीचे उद्धृत किया जा रहा है—

अपने गुण दूध दीये जल कु, तिनकी जल नै पुनि प्रीति फैलाई।
दूध के दाह कु दूर कराइ, तहां जल आपनी देह जलाई।
नीर विछोह भी खीर सहै नहीं, ऊफणि आवत है अकुलाई।
सैन मिल्यै फुनि चैन लह्यो तिण, ऐसी धर्म्मर्स प्रीति भलाई ।१।

इनकी रचनाओं का संग्रह "धर्मवर्द्धन ग्रन्थावली" के नाम से प्रकाशित हो चुका है।

17. विनयचन्द

ये खरतरगच्छीय उपाध्याय ज्ञानतिलक के शिष्य थे। राजस्थान के उत्तम कवियों में इनका स्थान है। इनकी प्राप्त रचनाओं का संग्रह 'विनयचन्द्र कृति कुसुमांजली' के नाम से प्रकाशित हो चुका है। नेमि राजीमती बारहमासा और 'रहनेमि राजुल सज्झाय' ये दोनों हिन्दी की बहुत सुन्दर रचनायें हैं। इन दोनों रचनाओं के एक-एक उदाहरण प्रस्तुत हैं—

दिहु दिसइ जलधर धार दीसत हार कै आकार।
ता वीचि पहुवै नही कबही सूई कौ सचार।
सा लगत है झरराट करती मध्यवरती बान।
भर मास भाद्रव द्रवत अवर सरस रस की खान ।3।

\+ + + + +

सजि बून्द सारी हर्षकारी भूमि नारी हेत।
झरलाय निर्झर झरत झरझर सजल जलद असेत।
घन घटा गर्जित घटा तर्जित भयै जर्जित गेह।
टव टबकि टबकत झबकि झबकत विचि विचि बीज की रेह ।2।

कवि की संवतोल्लेख वाली रचनायें सं 1752 से 1755 तक की मिलती हैं। थोड़े ही वर्षों में कवि ने जो उत्कृष्ट रचनायें दी हैं वे अनुपम और बेजोड़ हैं। काश! कवि लम्बे समय तक रहता और रचनायें करता तो, राजस्थान के लिये बहुत ही गौरव की बात होती।

18. उदयचन्द मथेण

खरतरगच्छीय जो जैन यति साध्वाचार को पूर्णतया पालन न कर सके, उनकी एक अलग से मथेण जाति बन गई। इस जाति के राज्याश्रित सुकवियों में उदयचन्द विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं। इनका संस्कृत में 'पाण्डित्य-दर्पण' ग्रन्थ प्राप्त है। बीकानेर के महाराजा अनूपसिंह जी के लिये नायक-नायिका और अलंकार वर्णन वाला "अनूप रसाल" नामक काव्य सं 1728 में इन्होंने बनाया। इसकी एकमात्र प्रति अनूप संस्कृत लायब्रेरी बीकानेर में प्राप्त है। वैसे तो इस पुस्तिका की पुष्पिका में इसे महाराजा अनूपसिंह विरचित लिखा है किन्तु प्रति की प्रारम्भिक सूची में 'मथेण उदयचन्द कृत" लिखा है। कवि उदयचन्द ने "बीकानेर की गजल" स. 1765 में महाराजा सुजानसिंह जी के समय में बनाई है। इसमें बीकानेर का बहुत सुन्दर वर्णन है। यह गजल "वैचारिकी" पत्रिका बीकानेर के विशेषांक में प्रकाशित हो चुकी है।

19. जिनरंगसूरि

ये खरतरगच्छीय जिनराजसूरि के पट्टधर थे। सं. 1700 में इनसे स्वतन्त्र खरतर-गच्छ की शाखा पृथक हो गई। इन्होंने राजस्थानी रचनाओ के साथ-साथ हिन्दी में भी "जिनरग बहोतरी" और "आत्म प्रवोध वावनी" (रचना स 1731) रची है। जिनरंग बहोतरी में 72 दोहे है और आत्म प्रवोध बावनी एक सुन्दर प्रवोधक रचना है। जिन रग वहोतरी का एक दोहा प्रस्तुत है :—

साख रह्या लाखा गया फिर कर लाखा होय।
लाख रह्या साखा गया लाख न लख्खै कोय। 40 ।

20. विनयलाभ

ये खरतरगच्छीय, विनयप्रमोद के शिष्य थे। सस्कृत और राजस्थानी रचनाओ के अतिरिक्त इन्होने भर्तृहरि शतकत्रय का पद्यानुवाद 'भाषाभूषण' के नाम से किया है। इसकी एक प्रति अभय जैन ग्रन्थालय मे है। इसकी एक प्राचीन प्रति स 1727 की लिखित नागौर के भट्टारकीय भण्डार में है। उदाहरण के तौर पर प्रथम पद्य का अनुवाद प्रस्तुत है —

जाही कु राखत हौं मन मै तितसौं तिय मोसौं रहे विरची,
वा जिनको नित ध्यान धरे तिन तौ फुनि औरसौं रास रची।
हमसौं नित चाह अरे काई औरसु तौ विरहानल मै जु नची,
धिग ताही कु ताकु मदन्न कु मोकु इते पर बात कछू न बची। 1।

इनकी हिन्दी में वावनी भी प्राप्त है। रचनाओ में 'वालचन्द' नाम भी प्राप्त होता है। इनका मूल नाम वालचन्द था और दीक्षा नाम विनयलाभ था।

21. केसवदास

ये खरतरगच्छीय कवि लावण्यरत्न के शिष्य थे। राजस्थानी रचनाओ के अतिरिक्त इन्होने हिन्दी में केसव वावनी स 1736 में वनाई है और नेमि राजुल बारहमासा स 1734 मे बनाया है। केसवदास का एक और भी वारहमासा मिलता है परन्तु इसमे गुरु का नाम प्राप्त नही है। केसव नाम के कई कवि होने से इसके कर्ता का निर्णय करना सभव नही है।

22 खेतल

ये खरतरगच्छीय दयावल्लभ के शिष्य थे। इनका दीक्षा नाम दयासुन्दर था। स. 1743 से 1757 तक इनकी कई राजस्थानी रचनायें प्राप्त है। कवि की हिन्दी रचनाओ में "चित्तौड़ की गजल" स 1748 और "उदयपुर की गजल" स 1757 की प्राप्त है। ये गजलें प्रकाशित हो चुकी है। साहित्य और इतिहास की दृष्टि से ये दोनो रचनायें महत्वपूर्ण हैं।

23. मानकवि

विजयगच्छ के मान कवि ने उदयपुर के महाराणा राजसिंह सम्बन्धी "राजविलास" नामक ऐतिहासिक काव्य बनाया जो नागरी प्रचारिणी सभा से प्रकाशित हो चुका है। 18 विलास मे विभक्त यह ऐतिहासिक महाकाव्य है। स 1737 तक की ऐतिहासिक घटनाओ का इसमे वर्णन है। इसकी हस्तलिखित प्रति स 1746 की उदयपुर मे प्राप्त है। कवि की अन्य रचनाओ मे "विहारी सतसई" टीका उल्लेखनीय है। यद्यपि डा मोतीलाल मेनारिया ने इन दोनो रचनाओ के कर्ता भिन्न-भिन्न वतलाये है, परन्तु विजयगच्छ मे उस समय मे इस नाम के एक ही विद्वान् हुए है।

24. मानकवि II

ये खरतरगच्छ के वाचक सुमतिमेरु के शिष्य थे। इन्होंने "संयोग द्वात्रिंशिका" नामक 73 पद्यो की श्रृंगारिक रचना अमरचन्द मुनि के लिये स. 1773 मे वनाई है। कवि की अन्य दो रचनायें वैद्यक सम्वन्धी हैं, पर हैं बडे महत्व की। पहली रचना 'कवि विनोद' 7 खण्ड मे सं 1745 मे लाहोर मे रची गई, किन्तु इसमे कवि नें स्वय को वीकानेर वासी स्पष्ट रूप से लिखा है। दूसरी रचना "कवि प्रमोद" 9 उल्लास मे पूर्ण हुई है, पद्य सख्या 2944 है। स. 1746 मे इसकी रचना हुई है। कवि ने इसमे भी अपने को वीकानेर वासी वतलाया है।

सुमतिमेरु वाचक प्रकट पाठक श्री विनैमेरु।
ताको शिष्य मुनि मानजी, वासी वीकानेर ।11।
सवत सतर छयाल सुभ, कातिक सुदि तिथि दोज।
'कवि-प्रमोद' रस नाम यह, सर्व ग्रंथनि को खोज ।12 ।

25. कवि लालचन्द

इनका दीक्षानाम लाभवर्द्धन था। इनके गुरु शान्तिहर्ष थे और जिनहर्ष गुरुभ्राता थे। ये अपने गुरुभाई जिनहर्ष की तरह राजस्थानी के सुकवियो मे से हैं। इनकी हिन्दी रचनाओ मे "लीलावती गणित" स 1736 वीकानेर मे, 'अक प्रस्तार' स 1761 मे रचित गणित विषयक रचनायें प्राप्त व प्रकाशित हो चुकी है। आपकी, 'स्वरोदय भाषा' और 'शकुन दीपिका चौपाई' भी अपने विषय की अच्छी रचनाये हैं।

26. जोशीराय मथेण

ये वीकानेर के महाराजा अनूपसिंहजी से सम्मानित थे। जोशीराय ने राजस्थानी मे वडी सुन्दर रचनाये की है। साथ ही इन्होंने हिन्दी मे "महाराजा सुजाणसिंह सम्वन्धी वरसलपुर गढ विजय" इसका दूसरा नाम 'सुजाणसिंह रासो' स 1767 और 1769 के मध्य मे बनाया है। यह रचना स 1769 की लिखित प्रति से सपादित होकर 'वरदा' के जून 1973 के अक मे प्रकाशित हो चुकी है।

27. जोगीदास मथेण

ये जोशीराय मथेन के पुत्र थे। इन्होंने वैद्यकसार नामक हिन्दी पद्य ग्रन्थ स 1792 मे वीकानेर महाराजकुमार जोरावर सिंह के नाम से बनाया है। इसमे जोशीराय को सम्मानित करने का उल्लेख इस प्रकार है —

वीकानेर वासी विशद, धर्मकथा जिह धाम ।
स्वेताम्वर लेखक सरस, जोशी जिनको नाम ।72।
अधिपति भूप अनूप जिहि, तिनसो करि सुभभाय ।
दीय दुसालौ करि करै, कह्यौ जु जोसीराय ।73।
जिनि वह जोसीराय सुत, जान हु जोगीदास।
सस्कृत भाषा भनि सुनत, मौ भारती प्रकाश ।74।
जहा महाराज सुजान जय, वरसलपुर लिय आन ।
छद प्रवन्ध कवित्त करि, रासो कह्यौ बखान ।75।

28 नयनसिंह

ये खरतरगच्छ के पाठक जसशील के शिष्य थे। स 1786 मे इन्होने भर्तृहरि शतक-त्रय भाषा की रचना वीकानेर राजवंश के महाराज आनन्दसिंह के लिये की थी। इस-

लिये इस रचना का नाम 'आनन्दभूषण' या 'आनन्द-प्रमोद' रखा गया है। इस रचना के गद्य वार्ता का कुछ अंश नीचे दिया जा रहा है —

"उज्जैणी नगरी के विषै राजा भर्तृहरिजी राज करतु है, ताहि एक समै एक महापुरुष योगीश्वरैं एक महागुणवत फल भेंट कीनी। फल की महिमा कही जो यह खाय सो अजर अमर होई। तब राजा यें स्वकीय राणी पिंगला कु भेज्या। तब राणी अत्यन्त कामातुर अन्य पर-पुरुषतें रक्त है, ताहि पुरुष को, फल-दे भेजो अरु महिमा कही।"

29. देवचन्द्र

ये खरतरगच्छीय दीपचन्दजी के शिष्य थे। बीकानेर के निकटवर्ती ग्राम मे ही आपका जन्म हुआ था। छोटी उम्र मे ही स. 1759 मे ये दीक्षित हुए थे। इनका दीक्षा नाम 'राजविमल' था। जैन तत्ववेत्ता के रूप मे आप बहुत प्रसिद्ध है। प्राकृत, सस्कृत, राजस्थानी, गुजराती के अतिरिक्त हिन्दी मे आपने कुछ पद और "द्रव्यप्रकाश" नामक महत्वपूर्ण ग्रन्थ बनाया हैं। जैन धर्म मान्य जीव अजीवादि द्रव्यो के सम्बन्ध मे यह ग्रन्थ प्रकाश डालता है। स 1763 मे बीकानेर मे इसकी रचना हुई है। द्रव्यप्रकाश का एक पद्य प्रस्तुत है.—

सहज सुभाव अथ गुरु कै वचन सेती,
जान्यौ निज तत्व तब जाग्यो जीव राय है।
मैं तो परद्रव्य नांहि परद्रव्य मेरो नाहि,
ऐसी बुद्धि भासी तब बध कैसे थाय है।
देखि जानि गहो तुम परम अनत पद,
जाकै पद आगै और पद न सुहाय है।
प्रमाण निखेप नय जाकै तेज आगै अस्त,
ऐसौ निज देव शुद्ध मोख को उपाय है।30।

30. रूपचन्द (रामविजय)

ये खरतरगच्छीय उपाध्याय दयासिंह के शिष्य थे। इनका दीक्षा नाम रामविजय था। इन्होंने 101 वर्ष की दीर्घायु पाई और कई रचनायें की हैं। सवतोल्लेख वाली इनकी पहली रचना स. 1772 की 'जिनसुखसूरि मजलस' खड़ी बोली की है। दूसरी रचना लघुस्तव टब्बा स 1798 की है। राजस्थानी की तो कई रचनाये है पर हिन्दी की दृष्टि से अन्य रचनाओ का अवलोकन आवश्यक है। जिनसुखसूरि मजलस बड़ी अनूठी एव मजेदार रचना है। उदाहरण प्रस्तुत है.—

"अहो आवो वे यार, बैठो दरबार, ए चादरणी रात, कहो मजलस की बात। कहो कुन कुन मुलक कुन कुन राजा देखैं, कुन कुन बादसाह देखैं, कुन कुन दीवान देखैं, कुन कुन महिर्वान देखैं ? तो कहेक—दिल्ली दईवान फररक साह सुलतान देखैं, चितोड सग्रामसिंह दीवान देखैं, जोधाण राठोड राजा अजीतसिंह देखैं, बीकाण राजा सुजाणसिंह देखैं, आवेर कछवाहू राजा जैसिंघ देखै।"

31. दीपचन्द

ये खरतरगच्छीय थे। इनका प्रणीत "लघनपथ्यनिर्णय" नामक सस्कृत वैद्यक ग्रन्थ सं. 1792 जयपुर मे रचित प्राप्त है। हिन्दी भाषा मे इन्होने "बालतन्त्र की भाषा वचनिका" बनाई। इसका कुछ उद्धरण प्रस्तुत है.—

"तिसके पुत्र कल्याणदास नामा होत भये। महा पण्डित सर्वशास्त्र के वक्ता जाणणहार वैद्यक चिकित्सा विषे महाप्रवीण सर्वशास्त्र वैद्यक का देखकर परोपकार के निमित्त पण्डिता का ग्यान के वासत यह बाल चिकित्सा ग्रन्थ करण वास्ते कल्याणदास नामा पडित होत

नये। तिसनै करी सलोक वध। तिसकी भापा खरतरगच्छ माही जनि गनद पदवी धारक दीप इसे नामे ।

32. अमरविजय

ये खरतरगच्छीय उदयतिलक के शिष्य थे। इनकी 'अक्षर-बत्तीसी' हिन्दी रचना प्राप्त है। राजस्थानी मे तो इनकी अनेको रचनायें प्राप्त है।

33. रघुपति

ये खरतरगच्छीय विद्यानिधान के शिष्य थे। सुकवि थे। स. 1787 से 1839 तक की इनकी रचनायें मिलती है। इनकी अधिकाश रचनाये राजस्थानी मे है। हिन्दी मे "जैनसार वावनी" और "भोजन विधि" नाम की रचनाये प्राप्त है। भोजन विधि मे तो भगवान् महावीर के जन्म समय के दशोटन का वर्णन है। जैनसार वावनी औपदेशिक मातृकाक्षरो पर रचित सुन्दर रचना है। इसमे 58 पद्य है। स 1802 नापासर मे इसकी रचना हुई है। इसका प्रारम्भिक पद्य इस प्रकार है —

ऊकार वडो सव अक्षर मे, इण अक्षर ओपम और नही।
ऊकारनि के गुण आदरि कै, दिल उज्ज्वल राखत जाण दही।
ऊकार उचार वडे वडे पडित, होति है मानित लोक यही।
ऊकार सदामद ध्यावत है, सुख पावत है रुघनाथ सही।।1।।

34. विनयभक्ति

ये खरतर गच्छीय वाचक भक्तिभद्र के शिष्य थे। इनका प्रसिद्ध नाम वस्ता था। इनकी पहली हिन्दी रचना "जिनलाभसूरि दवावैत" है। जिनलाभसूरि का आचार्यकाल स. 1804 से 1834 तक का है, अत इसी वीच इसकी रचना हुई है। इसकी गद्य वचनिका का कुछ अश उदाहरणार्थ प्रस्तुत है —

"ऐसी पद्मावती माई वडे वडे सिद्ध साधकुं नै ध्याई। तारा कै रूप वौद्ध सासन समाई। गौरी के रूप सिव मत वालु नै गाई। जगत मैं कहानी हिमाचल की जाई। जाकी सगती काहू सो लखी न जाई। कौसिक मत मे वज्रा कहानी। सिवजू की पटरानी। सिव ही के देह मे समानी। गाइत्री के रूप चतुरानन मुखपकज वसी। अच्छर कै रूप चंद दिद्या मे विकसी।"

इनकी दूसरी रचना 'अन्योक्ति-बावनी' महत्वपूर्ण है। इसमे 62 पद्य है। जैसलमेर के रावल मूलराज के कथन से स 1822 मे इसका प्रारम्भ हुआ था। अभय जैन ग्रन्थालय मे इसकी प्रति सुरक्षित है।

35. क्षमाकल्याण

ये खरतरगच्छीय वाचक अमृतधर्म के शिष्य थे। अपने समय के वहुत वडे विद्वान् और ग्रन्थकार थे। स. 1826 से 1873 तक की इनकी अनेको रचनाये प्राप्त है। इन्होने सुदूर वगाल मुर्शिदावाद आदि मे भी विहार किया था। अत इनकी कई रचनाओ मे हिन्दी का प्रभाव है ही। वैसे "हितशिक्षा द्वात्रिंशिका" आपकी सुन्दर व औपदेशिक रचना है। इसका प्रारंभिक पद्य इस प्रकार है —

सकल विमल गुन कलित ललित मन, मदन महिम वन दहन दहन सम।
अमित सुमति पति दलित दुरित मति, निशित विरति रति रमन दमन दम।
सघन विघन गन हरन मधुर धुनि, धरन धरनि नल अमल असम सम।
जयतु जगति पति ऋषभ ऋषभ गति, कनक वरन द्युति परम परम गम।।1।।

अपभ्रंश भाषा के सुप्रसिद्ध जयतिहुअण स्तोत्र का हिन्दी पद्यानुवाद मुर्शिदाबाद के कातेला गूजरमल और तनसुखराय के लिये बनाया था। इसकी प्रति अभय जैन ग्रन्थालय मे प्राप्त है। इनका 'अवड चरित्र' स. 1853 मे रचित महिमाभक्ति भण्डार मे प्राप्त है।

36. शिवचन्द्र

इनका पूर्वनाम शभुराम था। ये खरतरगच्छ के पुण्यशील के प्रशिष्य और समयसुन्दर के शिष्य थे। सस्कृत और राजस्थानी रचनाओ के अतिरिक्त इन्होने हिन्दी म जैसलमेर के रावल मूलराज की प्रशसा मे "समुद्रवद्ध काव्य वचनिका" की स. 1851 जैसलमेर मे रचना की है। इसके एक दोहा और वचनिका का उदाहरण प्रस्तुत है —

"शुभाकार कौशिक त्रिदिव, अतरिच्छ दिनकार।
महाराज इन धर तपौ, मूलराज छत्रधार।

अरुण अर्थलेश—जैसे शुभाकार कहि है भलो है आकार जिनको ऐसे, कौशिक कहिये इन्द्र सो त्रिदिव कहिये स्वर्ग मे प्रतपै। पुन. दिनकार अतरिच्छ कहता जितने ताई सूर्य आकाश मे तपै। महाराज कहता इन रीतै छत्र के धरनहार महाराज श्री मूलराज। धर तपौ कहिये पृथ्वी विषै प्रतापी।"

शिवचन्द्रजी की हिन्दी कृतियो मे दो पूजाये भी प्राप्त हैं—1. ऋषि मण्डल पूजा सं 1879 और 2 नंदीश्वर द्वीप पूजा।

37. कल्याण कवि

इन्होने स 1822 मे "जैसलमेर गजल" स 1838 मे "गिरनार गजल" और 1864 मे "सिद्धाचल गजल" ये तीनो नगर वर्णनात्मक गजले बनाई है। ये भी खरतरगच्छ के थे।

38. ज्ञानसार

ये खरतरगच्छीय रत्नराज गणि के शिष्य एव मस्तयोगी तथा राजमान्य विद्वान् थे। कवि होने के साथ-साथ ये सफल आलोचक भी थे। इनकी समस्त लघुकृतिया "ज्ञानसार ग्रन्थावली" के नाम से प्रकाशित हो चुकी हैं। राजस्थानी के अतिरिक्त इनकी निम्नाँकित हिन्दी रचनायें प्राप्त है —

1 पूर्वदेश वर्णन,
2 कामोद्दीपन, स. 1856 जयपुर के महाराजा प्रतापसिंहजी की प्रशसा मे रचित
3 मालापिंगल (छदशास्त्र) स 1876,
4 चन्द चौपाई समालोचना दोहा,
5. प्रास्ताविक अष्टोत्तरी,
6 निहाल वावनी स. 1881,
7. भावछत्तीसी स. 1865,
8 चारित्र छत्तीसी,
9 आत्म प्रवोध छत्तीसी,
10 मति प्रवोध छत्तीसी
11. वहुतरी आदि के पद।

इन्होने 98 वर्ष की दीर्घायु पाई और श्मशानो मे रहते हुए योग और अध्यात्म की साधना की। 'पूर्वदेश वर्णन' मे जव ये मुर्शिदाबाद चौमासा करने के लिये गये थे, तव वहा वगाल की उस समय जो स्थिति देखी थी उसका चित्रात्मक वर्णन किया है। पूर्वदेश से वापिस आने पर ये जयपुर मे कई वर्ष रहे और वहा के महाराजा प्रतापसिंह की प्रशसा मे "कामोददीपन" ग्रन्थ वनाया। "माला पिंगल" इनकी छदशास्त्र की महत्वपूर्ण रचना है। श्रीमद् आनन्दधनजी की रचनाओ का इन्होने 30 वर्षो तक चिन्तन करके उनके चौवीसी और पदो पर विवेचन लिखा।

ये बहुत वडे ममालोचक भी थे। इन्होंने मोहनविजय की सुप्रसिद्ध "चन्द चौपाई" की समालोचना दोहो मे की है। उसमे छद शास्त्रादि की दृष्टि से गम्भीर आलोचना की है। वस्तुत अपने ढग की यह एक ही रचना है। आनन्दघनजी के आध्यात्मिक पदो का अनुसरण करते हुए आपने वहुतरी पद भी बनाये हैं जो बहुत ही प्रवोधक है। पद वहुतरी का एक पद उद्धृत दिया जाता है —

भोर भयो अब जाग बावरे।

कौन पुण्य ते नर भव पायो, क्यू सूता अब पाय दाव रे। मो 1।
धन वनिता सुत भ्रात तात को, मोह मगन इह विकल भाव रे।
कोई न तेरो तू नहीं काकउ, इम सयोग अनादि सुभाव रे।मो 2।
आरज देश उत्तम गुरु सगत, पाई पूरव पुण्य प्रभाव रे।
ज्ञानसार जिन मारग लाधो, क्यो डूबे अब पाव नाव रे।मो 3।

चन्द चौपाई समालोचना का एक उदाहरण देखिये —

ए निच्चै निच्चै करो, लखि रचना को माझ।
छद अलकार निपुण, नहि मोहन कविराज।

× × × ×

ना कवि की निन्दा करी, ना कछु राखी कान।
कवि कृत कविता शास्त्र के, सम्मत लिखी सयान।2।
दोहा त्रिक दश च्यार सै, प्रास्ताविक नवीन।
खरतर भट्टारक गछै, ज्ञानसार लिख दीन।3।

39 उत्तमचन्द भण्डारी

ये जोधपुर के महाराजा मानसिंह जी के मन्त्री थे। अलकार और साहित्य के आप उच्च कोटि के विद्वान् थे। "अलकार आशय" अपने विषय का बहुत ही महत्वपूर्ण ग्रथ है। इसकी रचना स 1857 मे हुई है। आपकी अन्य रचनाओ मे "नाथ चन्द्रिका" स 1861 और तारक तत्व आदि प्राप्त हैं।

40 उदयचन्द भण्डारी

ये भी जोधपुर के महाराजा मानसिंहजी के मन्त्री और उत्तमचन्द भण्डारी के भाई थे। आप काव्य, साहित्य, छद, अलकार और दर्शन के भी अच्छे विद्वान् थे। इनका रचना काल 1864 से 1900 तक का है। आपके सम्बन्ध मे डा कृष्णा मुहणोत ने शोध प्रवन्ध लिखा है। प्राप्त रचनाओ की सूची इस प्रकार है —

1 छद प्रवन्ध
2 छन्द विभूषण
3 दूषण दर्पण
4 रस निवासु
5 शब्दार्थ चन्द्रिका
6 ज्ञान प्रदीपिका
7 जलन्धरनाथ भक्ति प्रवोध
8 शनिश्चर की कथा
9 आनुपूर्वी प्रस्तारवन्ध भाषा
10 ज्ञान सत्तावनी
11 ब्रह्मविनोद
12 ब्रह्मविलास
13 विज्ञ विनोद
14 विज्ञ विलास
15 वीतराग वन्दना
16 करुणा बत्तीसी
17 साधु वन्दना
18 जुलप्रकाश
19. वीनती
20 प्रश्नोत्तर वार्त्ता
21 विवेक पच्चीसी
22 विचार चन्द्रोदय
23 आत्मरत्नमाला
24. ज्ञानप्रभाकर

25. आत्म ज्ञान पंचाशिका
26. विचारसार
27 षट्मतसार सिद्धात
28 आत्म प्रवोधभाषा
29 आत्मसार मनोपदेश भाषा
30. वृहच्चाणक्य भाषा
31 लघु चाणक्य भाषा
32. समासार
33 सिखनख
34 कोकपद्य
35 स्वरोदय
36 शृगारकवित्त
37. सौभाग्यलक्ष्मी स्तोत्र

इनकी समस्त रचनाये महो. श्री विनयसागरजी के सग्रह मे उपलब्ध है।

41. गजल साहित्य

हिन्दी साहित्य मे नगर वर्णनात्मक गजलो की एक लम्बी परम्परा जैन कवियो की रचनाओ के रूप मे प्राप्त है। राजस्थान के श्वेताम्बर जैन कवियो ने राजस्थान के अनेक ग्राम, नगरो और वाहर के भी स्थानो-तीर्थों आदि की अनेक गजले वनाई है। उनमे से कुछ गजलो की सूची इस प्रकार है —

जोधपुर वर्णन गजल	हेम कवि	सं 1866
जोधपुर वर्णन गजल	मुनि गुलावविजय	स 1901
जोधपुर वर्णन गजल		महाराजा मानसिंह के समय मे
नागर वर्णन गजल	मनरूप, पद्य 83	स 1862
मेडता वर्णन गजल	मनरूप, पद्य 48	सं 1865
सोजत वर्णन गजल	मनरूप, पद्य 67	स. 1863
वीकानेर वर्णन गजल	लालचन्द (लावण्य कमल)	स. 1838

सचित्र विज्ञप्ति पत्र जो जैनाचार्यो को अपने नगर मे पधारने व चातुर्मास करने के लिये लिखकर और चित्रित करके भिजवाये जाते थे, उनमे जिस नगर मे और जिस स्थान को वह पत्र भेजा जाता था, उनमें उन नगरो का वर्णन गजल के रूप मे प्राय पाया जाता है। इनमे राजस्थान के अनेक नगरो का वर्णन तत्कालीन इतिहास और सस्कृति की दृष्टि से वहुत ही महत्वपूर्ण पाया जाता है। 17वी शताव्दी से ऐसे नगर वर्णनो की परम्परा खडी बोली मे 'गजल' के नाम से प्रारम्भ हुई, जो 20वी शताव्दी के प्रारम्भ तक चलती रही।

20 वी शताब्दी

राजस्थान मे हिन्दी का प्रभाव अंग्रेजो के शासन और मुद्रण युग मे अधिक वढा। राज दरबार मे और शिक्षा-प्रचार में हिन्दी को प्रमुख स्थान मिलने से जिन्होने राजस्थानी में रचना की है, उनकी भाषा मे भी हिन्दी का प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। जैन लेखक सदा से जनभाषा का आदर करते रहे, इसलिए 20 वी शताव्दी में अनेक विषयो के ग्रथ हिन्दी मे लिखे गये। जैन मन्दिरो में 'पूजा' गाने का प्रचार 19 वी शताव्दी के उतरार्द्ध या अतिमकाल से राजस्थान मे अधिक वढा। अतएव खरतरगच्छ, तपागच्छ के आचार्यों, मुनियो और यतियो ने पूजा साहित्य काफी मात्रा में लिखा। उनमे से वहुत सा साहित्य प्रकाशित भी हो चुका है और आज भी उसका अच्छा प्रचार है। गेय होने से सगीतात्मकता ने भी इसके प्रचार को विशेष प्रोत्साहन दिया। खरतरगच्छ के यतियो मे सुगनजी (सुमति मण्डन) आदि ने काफी पूजाए वनाईं। इनसे पहिले यति बालचन्द जी ने 1913 बीकानेर मे 'पचकल्याणक पूजा' वनाई। इससे पहले उन्होने 1909 में मुर्शिदाबाद में रहते हुए 'सम्मेतशिखर पूजा' की रचना की थी। पूजाये सुगन जी रचित अधिक प्राप्त होती है, अत सुगनजी का परिचय यहा दिया जा रहा है —

42. सुगनजी (सुमतिमण्डन)

ये खरतरगच्छीय महोपाध्याय क्षमाकल्याण की परम्परा मे धर्मविशाल के शिष्य थे। इनका दीक्षानाम सुमतिमण्डन था परन्तु जन्म नाम ही अधिक प्रसिद्ध रहा है। इनका उपाश्रय आज भी रागडी चौक बीकानेर मे मौजूद है। स 1930 से 1961 तक आप पूजायें बनाते रहे। सवतानुसार पूजा सूची निम्न प्रकार है—

1 सिद्धाचल पूजा, स 1930 बीकानेर
2 अष्ट प्रवचन माता पूजा, स. 1940 बीकानेर
3 पच ज्ञान पूजा, स. 1940 बीकानेर
4 सहस्रकूट पूजा, स. 1940 बीकानेर
5 आबू पूजा, स 1940 बीकानेर
6 चौदह राजलोक पूजा, स 1953 बीकानेर
7 पच परमेष्ठि पूजा, स 1953 बीकानेर
8 एकादश गणधर पूजा, स 1955 बीकानेर
9 जम्बूद्वीप पूजा, स 1958 बीकानेर
10 सघ पूजा, स 1961 बीकानेर

इनके अतिरिक्त इनकी चौवीसी और मूर्तिमण्डन प्रकाश नामक रचनायें भी प्राप्त हैं।

43 वैद्य शिरोमणि रामलालजी (राम ऋद्धिसार)

आप खरतरगच्छीय क्षेमकीर्ति शाखा के कुशलनिधान के शिष्य थे। अपने समय के आप बहुत प्रसिद्ध वैद्य थे। आपकी रचित 'दादाजी की पूजा' अत्यधिक प्रसिद्ध है। आपने दीर्घायु पाई और अनेक विषयो मे बहुत से ग्र थ बनाये। ग्रथो का प्रकाशन भी स्वय ने ही किया। ज्ञात ग्रन्थो की नामावली इस प्रकार है—

1 पैंतालीस आगम पूजा, स 1930 बीकानेर,
2 बीस विहरमान पूजा, स. 1944 भागनगर,
3 दादाजी की पूजा, स 1953 बीकानेर,
4 अष्टापद पूजा
5 अट्ठाई व्याख्यान भाषा, स. 1949
6 श्रीपाल चरित्र भाषा, स. 1957
7 सघपट्टक बालावबोध, स 1967
8 वैद्यदीपक
9 महाजन वश मुक्तावली
10 जैन दिग्विजय पताका
11 सन्तान चिन्तामणि
12 गुण विलास
13 सिद्धमूर्ति विवेक विलास
14 असत्याक्षेप निराकरण
15 सिद्ध प्रतिमा मुक्तावली
16 स्वप्न सामुद्रिक शास्त्र
17 शकुन शास्त्र
18 श्रावक व्यवहारालकार
19 कल्पसूत्र बालावबोध

44 कपूरचन्द (कुशलसार)

ये खरतरगच्छीय रूपचन्द गणि के शिष्य थे। इनकी बारहव्रत पूजा स 1936 बीकानेर में रचित, प्रकाशित है।

45. यति श्रीपालचन्द्र

ये खरतरगच्छीय श्री विवेकलब्धि के शिष्य थे। इनका दीक्षानाम शीलसौभाग्य था। ये विविध विषयो के अच्छे विद्वान् थे। इनका एक मात्र हिन्दी का ग्र थ "जैन सम्प्रदाय शिक्षा" अथवा 'गृहस्थाश्रम शील सौभाग्य भूषण माला' नामक सवत् 1967 मे आपका अकस्मात् निधन

हो जाने से निर्णयसागर प्रेस वम्बई द्वारा प्रकाशित हुई थी। इस विशालकाय पुस्तक में लेखक ने वर्ण विचार, व्याकरण, नीति, गृहस्थ धर्म, वैद्यकशास्त्र, रोग परीक्षा, ओसवश और गोत्रों की उत्पत्ति, सामान्य ज्योतिष, स्वरोदय, शकुन विचार आदि अनेक विषयो का विस्तार से आलेखन किया है। गृहोपयोगी इतने विषयो का एक ही ग्र थ मे समावेश अन्यत्र दुर्लभ है।

46. आत्मारामजी (विजयानन्दसूरि)

ये तपागच्छीय श्री बूटेराय जी के शिष्य थे। इनका जन्म तो पजाब मे स. 1893 में हुआ था। मूलत स्थानकवासी सम्प्रदाय में दीक्षित हुए थे। वाद मे मूर्तिपूजक सम्प्रदाय मे पुन दीक्षा ग्रहण करली थी। इन्होने पजाब, राजस्थान और गुजरात मे अधिक विचरते हुए जैन धर्म का अच्छा प्रचार किया था। इनके रचित "जैन तत्वादर्श, अज्ञान तिमिर भास्कर, तत्व निर्णय प्रसाद, सम्यक्त्व शल्योद्धार" आदि वडे-बड़े ग्र थ है। स. 1940 वीकानर मे रचित इनकी केवल 'वीस स्थानक पूजा' ही प्राप्त है।

इन्ही के पट्टधर आचार्य विजयवल्लभसूरि प्रसिद्ध आचार्य हुए। इन्होने राजस्थान में रहते हुए चौदह राजलोक पूजा 1977 खुडाला, पच ज्ञान पूजा 1978 वीकानेर और सम्यग् दर्शन पूजा स 1978 वीकानेर, रचनाये की है।

47. विजयराजेन्द्रसूरि

इनका जन्म सं. 1833 मे भरतपुर में हुआ था। पहले आप यति थे, वाद मे स. 1925 में क्रियोद्धार करके सविग्न साधु वने। आपसे त्रि-स्तुतिक सम्प्रदाय का प्रादुर्भाव हुआ। इनका सव से बडा काम "अभिधान राजेन्द्र कोष' प्राकृतशब्दो का कोष सात भागो मे है। राजस्थान और मालवा में आप अधिक विचरे। आपकी हिन्दी रचनाये निम्न है —

1. कल्पसूत्र वालाववोध, स 1940,
2. पर्युषणाष्टाहृनिका व्याख्यान, स. 1927,
3. धनसार अघट कुमार चौपाई, सं. 1932,
4. तत्व विवेक स 1945,
5. पच सप्तति शतस्थान चतुष्पदी, स 1946,
6. जिनोपदेश मजरी,
7. प्रश्नोत्तर पुष्पवाटिका, स 1936,
8. प्रभु स्तवन सुधाकर,
9. महावीर पच कल्याणक पूजा,
10. कमलप्रभा,
11. देववदन माला,
12. सिद्धचक्र पूजा
13. 108 बोल का थोकडा,
14. शुद्धरहस्य, आदि।

48. चिदानन्दजी

ये खरतरगच्छ में श्री शिवजीराम जी और सुखसागर जी से प्रभावित होकर दीक्षित हुए और गहन अध्ययन कर इन्होने कई ग्रन्थो की रचनायें की। इनकी दीक्षा स. 1935 मे हुई थी

और स्वर्गवास स. 1965 मे हुआ था। इनकी निम्नलिखित रचनाये प्राप्त है —

स्याद्वादानुभव रत्नाकर, स 1950 अजमेर,
दयानन्द मत निर्णय (नवीन आर्य समाज भ्रमोच्छेदन कुठार),
द्रव्यानुभवरत्नाकर, स 1952 मेडतारोड,
आत्म भ्रमोच्छेदन भानु,
अध्यात्म अनुभव योग प्रकाश, स. 1955,
श्रुत अनुभव विचार, स 1952,
शुद्ध देव अनुभव विचार, स 1952,
जिनाज्ञा विधि प्रकाश,
कुमत कुलिगोच्छेदन भास्कर, स. 1955,
आगमसार अनुवाद,
शुद्ध समाचारी मण्डन।

उस समय का युग खण्डन-मण्डन का था। अतएव आपको कई ग्रन्थ खण्डन-मण्डनात्मक लिखने पडे। वैसे आप अष्टाग योग के बडे जानकार व अनुभवी थे। 'अध्यात्म अनुभव योग प्रकाश' मे इस विषय पर अच्छा प्रकाश डाला है। द्रव्यानुभव रत्नाकर, शुद्धदेव अनुभव विचार आदि दार्शनिक व आध्यात्मिक ग्रन्थ है।

49. जिनकृपाचन्द्रसूरि

स 1913 में जोधपुर राज्य के चामू गाव में आपका जन्म हुआ था। खरतरगच्छीय जिनकीर्तिरत्नसूरि शाखा के युक्तिअमृत मुनि के शिष्य आप स 1936 मे वने। पश्चात् क्रियोद्धार किया। स 1973 मे आपको आचार्य पद प्राप्त हुआ और स्वर्गवास म 1994 मे हुआ। आप आगम साहित्य के विशिष्ट विद्वान् थे। बीकानेर में श्री जिन कृपाचन्द्रसूरि उपाश्रय आज भी रागडी चौक में विद्यमान है। आपके विद्वान् शिष्य सुखसागर जी ने पचासो ग्रन्थो का सम्पादन व प्रकाशन किया था। आपके पट्टधर श्री जयसागर सूरि वहुत अच्छे विद्वान् थे। उ. सुखसागर जी के शिष्य मुनि कान्तिसागर जी बडे प्रतिभाशाली विद्वान् और प्रसिद्ध वक्ता थे।

श्री जिनकृपाचन्द्रसूरि जी ने साधारण जनोपयोगी स्तवन, स्तुतिया आदि बनाकर एक वहुत वडे अभाव की पूर्ति की। इनकी पद्यात्मक कृतियो का सकलन "कृपाविनोद' के नाम से प्रकाशित हो चुका है। आपने कल्पसूत्र की टीका का भावानुवाद, श्रीपाल चरित्र प्राकृत काव्य का हिन्दी अनुवाद, द्वादशपर्व व्याख्यान अनुवाद, जीव विचारादि प्रकरण सग्रह अनुवाद और गिरनार पूजा की रचनाये की है। ये सब ग्रन्थ प्रकाशित हो चुके है।

इनके प्रशिष्य मुनि कान्तिसागर जी की निम्नोक्त रचनाये प्रकाशित है —

1 खण्डहरो का वैभव,
2 खोज की पगडडियां,
8 जैन धातु प्रतिमा लेख,
4 श्रमण सस्कृति और कला,
5 नगर वर्णनात्मक हिन्दी पद्य सग्रह,
6 सईकी,
7. जिनदत्तसूरि चरित्र आदि।

आपके अनेक शोधपूर्ण लेख कई पत्र-पत्रिकाओ में प्रकाशित हो चुके है। उदयपुर महाराणा की प्रेरणा से आपने "एकलिंग जी का इतिहास" वर्षो तक परिश्रम करके तैयार किया था किन्तु वह अभी तक प्रकाशित नही हुआ है।

50. ज्ञानसुन्दर (देवगुप्तसूरि)

इनका जन्म 1937 वीसलपुर (मारवाड) मे हुआ था। इन्होने स 1963 मे स्थानकवासी दीक्षा ग्रहण की और स. 1972 मे स्थानकवासी सप्रदाय छोड कर तपागच्छीय

श्री रत्नविजय जी के पास पुन दीक्षा ग्रहण की तथा रत्नविजय जी की सूचनानुसार उपकेशगच्छ के अनुयायी वने। आचार्य पद के समय इनका नाम देवगुप्तसूरि रखा गया। आपकी छोटी-मोटी शताधिक रचनाये रत्नप्रभाकर ज्ञान पुष्पमाला से प्रकाशित हुई है। जैनागमो का सक्षिप्त सार 'शीघ्र बोध' के नाम से कई भागो मे प्रकाशित हुआ है। छोटी-छोटी कथाओ के 51 भाग भी उल्लेखनीय है। आपका सब से बडा ग्रन्थ "पार्श्वनाथ की परम्परा का इतिहास" है। वैसे मूर्तिपूजा का प्राचीन इतिहास, श्रीमान् लोकाशाह, जैन जाति महोदय प्रमुख रचनायें हैं। प्रकाशित विशिष्ट कृतिया निम्नलिखित है—

भगवान् पार्श्वनाथ की परम्परा का इतिहास	पार्श्व पट्टावली
मूर्तिपूजा का प्राचीन इतिहास	श्रीमान् लोकाशाह
जैन जातियो का प्राचीन इतिहास	प्राचीन जैन इतिहास सग्रह मा 1-16
कापरडा तीर्थ का इतिहास	जैन जाति महोदय
ओसवाल जाति का इतिहास	जैन जाति निर्णय
ओसवाल जाति का समय निर्णय	आगम निर्णय
बत्तीस सूत्र दर्पण	मुखपट्टी मीमासा
शीघ्रबोध	कथा सग्रह मा 1-51 आदि।

51. जिनमणिसागरसूरि

आप खरतरगच्छ के महोपाध्याय सुमतिसागर जी के शिष्य थे। आपका जन्म स 1944 बार्कडिया वडगाम और दीक्षा स. 1960 मे, आचार्य पद स 2000 और स्वर्गवास 2008 मालवाडा में हुआ था। जैनागमादि ग्रन्थो का आपने विशिष्ट अध्ययन किया और उस समय के विवादास्पद प्रश्नो पर विस्तार से प्रकाश डाला। वैसे आप सरल प्रकृति और मध्यस्थ प्रकृति के थे। आपकी बहुत वडी भावना रही थी कि समस्त जैनागम हिन्दी मे सानुवाद प्रकाशित करवाये जावे, किन्तु आपके गुरु श्री के नाम से स्थापित सुमति सदन, कोटा से कुछ ही ग्रन्थ प्रकाशित किये जा सके। कोटा जैन प्रिन्टिग प्रेस की स्थापना भी इसी उद्देश्य से की गई थी। आपकी निम्नलिखित रचनाये प्रकाशित है.—

वृहत्पर्युषणा निर्णय,	षट् कल्याणक निर्णय
देव द्रव्य निर्णय,	आगमानुसार मुहपति का निर्णय,
साध्वी व्याख्यान निर्णय,	देवार्चन एक दृष्टि,
क्या पृथ्वी स्थिर है ?,	कल्पसूत्र अनुवाद,
दशवैकालिक सूत्र अनुवाद,	अन्तकृद्दशा सूत्र अनुवाद
अनुत्तरोपपातिकदशा सूत्र भावानुवाद,	साधु पचप्रतिक्रमण सूत्र अनुवाद।

52. जिनहरिसागरसूरि

आप खरतरगच्छीय श्री भगवानसागर जी के शिष्य थे। आपका जन्म स 1949 रोहिणा ग्राम, दीक्षा 1957, आचार्य पद स. 1992 और स्वर्गवास स 2006 मेडता रोड मे हुआ था। आप बहुत सरल प्रकृति के थे और अच्छे कवि थे। इनकी स्तवनादि की रचनाये "हरिविलास' 'जिन स्तुति चौवीसी' मे प्रकाशित हो चुकी है। इनके अतिरिक्त 'दादा गुरुदेवो की 4 पूजाये' और "महातपस्वी चरित्र' भी प्रकाशित हो चुके है।

सुदूर कलकत्ते तक विचरते हुए इन्होने अच्छा धर्म प्रचार किया था। जैसलमेर ज्ञान भण्डार के जीर्णोद्धार और सुव्यवस्था मे भी आपका योग रहा है। वहुत सी हस्तलिखित प्रतियो की भी आपने नकलें करवाई और स्वर्णाक्षरी कल्पसूत्रादि खरीद कर अपने ज्ञान भण्डार लोहावट में स्थापित करवायी। मेडता रोड (फलोदी) में आपके नाम से एक विद्यालय भी चालू हुआ था। अनेको स्थानो मे विचरते हुए आपने सैकडो प्रतिमाओ के लेखो का सग्रह भी किया था जो अभी तक अप्रकाशित है। आपके सुयोग्य शिष्य कविवर कवीन्द्रसागर जी का आपकी साहित्य सेवा और धर्म प्रचार कार्य मे बडा सहयोग रहा।

53 वीरपुत्र आनन्दसागरसूरि

ये खरतरगच्छीय श्री त्रैलोक्यसागर जी के शिष्य थे। इनका जन्म 1946, दीक्षा स 1968, आचार्य पद 2006 प्रतापगढ (राजस्थान) और स्वर्गवास 2016 मे हुआ था। इनका ज्ञान भण्डार सैलाना मे सुरक्षित है। इनकी निम्नोक्त रचनाये प्रकाशित हो चुकी है —

- विपाक सूत्र अनुवाद
- श्रीपाल चरित्र अनुवाद
- सुख चरित्र
- महावीर जीवन प्रभा
- आनन्द विनोद
- स्वरोदय सार
- कल्पसूत्र अनुवाद,
- द्वादश पर्व व्याख्यान अनुवाद
- त्रैलोक्य चरित्र
- सप्तव्यसन परिहार
- आगमसार
- गहूली सरिता

अहिसा, सत्य, अस्तेय, ब्रह्मचर्य आदि कई छोटी-छोटी पुस्तिकाये। ये बहुत अच्छे वक्ता भी थे।

54. जिन कवीन्द्रसागरसूरि

ये खरतरगच्छीय श्री जिनहरिसागरसूरि जी के शिष्य थे। इनका जन्म स 1964, दीक्षा स 1976 जयपुर, आचार्य पद स 2017 और स्वर्गवास स 2018 मे हुआ। आप प्रतिभाशाली विद्वान् एव आशुकवि थे। आपका असामयिक स्वर्गवास हो गया अन्यथा साहित्य जगत को आपसे बहुत कुछ आशाये थी। आपकी निम्नोक्त रचनाये प्राप्त है —

- कवीन्द्र केलि
- जिन स्तवन सदोह
- नवपद आराधन विधि
- आवश्यक विधि सग्रह
- रत्नत्रय आराधन पूजा, स 2012 वीकानेर,
- पार्श्वनाथ पूजा, स 2013,
- महावीर स्वामी पूजा, स 2012 वीकानेर,
- प्रोत्साहन पच्चीसी
- चैत्री पूर्णिमा देववन्दन विधि
- तपोविधि सग्रह
- उपधान तप देववन्दन
- चौसठ प्रकारी पूजा, स 2013 मेडता रोड।

55. यतीन्द्रसूरि

ये त्रिस्तुतिक प्रसिद्ध आचार्य श्री विजय-राजेन्द्रसूरि के शिष्य थे। इनका जन्म स 1940 और दीक्षा स 1954, आचार्य पद स 1995 आहोर मे हुआ था। विजय राजेन्द्रसूरि के कोष को अन्तिम रूप देने और प्रकाशित करने में इनका बड़ा योग रहा है। राजस्थान, गुजरात, मालवा आदि मे विहार करते हुए आपने उन स्थानो और विहार के सम्बन्ध मे कई पुस्तकें लिखी है जिनमें 'यतीन्द्र विहार दिग्दर्शन भाग 1-4,' "मेरी गोडवाल यात्रा", 'मेरी मेवाड़ यात्रा', और 'कोरटाजी का इतिहास' उल्लेखनीय है। आपने राजेन्द्रसूरि और मोहनविजय जी के जीवन चरित्र और पौराणिक अघटकुमार, कयवन्ना, चम्पक माला, रत्नसार, जगडूशाह, हरिबल आदि के जीवन चरित्र लिखे हैं। आपके व्याख्यानो के भी कई सग्रह निकले हैं और प्रकरणो आदि के अनुवाद भी आपने किये हैं। आपके सम्बन्ध मे "यतीन्द्रसूरि अभिनन्दन ग्रन्थ" द्रष्टव्य है।

आपके सुशिष्य व पट्टधर विद्याचन्द्रसूरि अच्छे कवि व लेखक है। आपने भगवान् नेमिनाथ, पार्श्वनाथ, महावीर पर हिन्दी मे महाकाव्य लिखे है।

56. जीतमुनि

ये तपागच्छीय थे और स्वय को आनन्दघन जी का चरणोपासक मानते थे। योग में आपकी बड़ी रुचि थी। आपने कई प्राचीन ग्रन्थो का अनुवाद व सग्रह किया तथा कई स्वतत्र रचनायें भी बनाई। प्रकाशित साहित्य इस प्रकार है—

योगसार हिन्दी अनुवाद सह, लघु प्रकरण माला हिन्दी अनुवाद सह, अध्यात्म विचार जीत सग्रह, स्तवनादि सग्रह, भीले मूल अर्थ सहित, अनुभव पच्चीसी आदि। आपकी रचनाओ का काल 1970 से 1994 के आसपास का है।

57. मुनि जयन्तविजय

ये तपागच्छीय श्री विजयधर्मसूरि के शिष्य थे। इनका जन्म स 1940, दीक्षा स. 1971 है। इन्होंने आबू और उसके निकटवर्ती जैन तीर्थो के प्रतिमा लेख सग्रह का काम कई वर्षों तक बड़े परिश्रम से किया। वैसे 'अर्वुद प्राचीन जैन लेख सदोह', 'अर्वुदाचल प्रदक्षिणा' ऐतिहासिक दृष्टि से बड़े महत्वपूर्ण है। गुजराती में तो 'शखेश्वर महातीर्थ, ब्राह्मणवाडा' आदि अनेको ग्रन्थ भी लिखे हैं। हिन्दी मे तो केवल एक ग्रन्थ "आबू" सचित्र प्रथम भाग प्रकाशित है। इसमें आबू के विश्व प्रसिद्ध मदिरो का ऐतिहासिक परिचय व वैशिष्ट्य का चित्रो के साथ आलेखन किया है।

58. मुनि मगनसागर

ये उणियारा (टोंक) निवासी थे। इन्होने खरतरगच्छ में मुनि दीक्षा ग्रहण की थी। इनके समय मे खण्डन-मण्डन का प्राबल्य था, अत कई पुस्तकें 'मुनि मगनसागर के प्रश्न और शास्त्रार्थ' आदि आपने लिखी। इनके अतिरिक्त 'मीन पुराण भूमिका और सिद्धान्त सागर प्राथमिक शिक्षा तथा हमीररासो सार' ग्रन्थ प्रकाशित है।

59. पंन्यास कल्याणविजय गणि

इनका जन्म वि स. 1944 में लास ग्राम (सिरोही) में ब्राह्मणकिशन के राम-कदीबाई घर में हुआ था। इनका जन्म नाम तोलाराम था। वि स. 1964 मे जालो रतपागच्छीय

मुनि श्री केसरविजय जी के पास इन्होने दीक्षा ग्रहण की थी। दीक्षा के समय इनका नाम कल्याण-विजय रखा गया था। इन्हें स. 1944 मे पन्यास पद प्राप्त हुआ था और स. 2032 में जालोर में इनका स्वर्गवास हुआ।

कल्याणविजय जी जैन साहित्य, इतिहास, विधिशास्त्र (प्रतिष्ठा) आदि के प्रकाण्ड पण्डित थे। इनकी लिखित निम्न पुस्तके प्रकाशित हो चुकी है --

वीर निर्वाण सवत् और जैन काल गणना
श्रमण भगवान् महावीर
कल्याण कलिका
पट्टावली प्रवन्ध
प्रबन्ध पराग

तित्थोगालियपइण्णा (श्री गजसिंह राठोड के साथ सम्पादन एव अनुवाद) आदि।

60. पुरातत्वाचार्य मुनि जिनविजय

पद्मश्री मुनि जिनविजय रूपाहेली (मेवाड) निवासी परमारवशी वृद्धिसिंह के पुत्र थे। इनकी माता का नाम राजकुमारी था। इनका जन्म सन् 1888 मे हुआ था। इनका जन्म नाम किशनसिंह था। बाल्यावस्था मे ही ये यति देवीसिंह के शिष्य बने। यतिजी के देहावसान के पश्चात् स्थानकवासी सम्प्रदाय मे दीक्षित हुए। 6 वर्ष पश्चात् इस सम्प्रदाय को त्याग कर मूर्तिपूजक समुदाय में तपागच्छ मे दीक्षा ग्रहण की, जहा इनका नाम मुनि जिनविजय रखा गया। रूढिवादी परम्परा के प्रति आक्रोश एव वैचारिक क्राति के कारण इन्होने इस वेष को भी त्याग दिया। कुछ वर्षो तक महात्मा गाधी के निर्देश पर इन्होने गुजरात विद्यापीठ के आचार्य पद का भार वहन किया। सशोधन-सम्पादन शैली का वैज्ञानिक अध्ययन करने के लिए जर्मनी आदि यूरोपीय देशो में इन्होने भ्रमण किया। भारत स्वतन्त्रता आन्दोलन में ये जेल भी गये। शान्ति निकेतन में रहते हुए इन्होंने श्री बहादुरसिंह जी सिंघी को प्रेरित कर 'सिंघी जैन ग्रन्थमाला' की स्थापना की, जो आज भी भारतीय विद्या भवन, बम्बई के अन्तर्गत प्रकाशन कार्य कर रही है। मुनि जी भारतीय विद्या भवन, बम्बई तथा राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर के सस्थापक और वर्षों तक निदेशक भी रहे।

सिंघी जैन ग्रन्थमाला और राजस्थान पुरातन ग्रन्थमाला के प्रधान सपादक पद पर रहते हुए इनके कार्यकाल में क्रमश विविध विषयात्मक प्राचीन एव दुर्लभ 55 तथा 83 ग्रन्थो का प्रकाशन हुआ है। मुनिजी भारतीय सविधान के सस्कृत भाषा के अनुवादकर्ताओ में भी थे। भाण्डारकर ओरियन्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना तथा जर्मन ओरियन्टल सोसायटी के सम्मान्य सदस्य भी रहे। भारत सरकार ने पद्मश्री अलकरण प्रदान कर और राजस्थान साहित्य अकादमी, उदयपुर ने मनीषी उपाधि प्रदान कर मुनिजी को सम्मानित किया था। मुनिजी ने हरिभद्रसूरि स्मारक चित्तौड, भामाशाह वाल विद्यालय चित्तौड, सर्वोदय साधना आश्रम चदेरिया तथा कई बाल विद्यालय आदि अनेक स्मारक अपने निजी द्रव्य से स्थापित किये। इसी वर्ष 2 जून, 1976 मे मुनिजी का अहमदाबाद में स्वर्गवास हुआ और दाह सस्कार सर्वदेवायतन चदेरिया मे हुआ।

मुनि जिनविजय जी न केवल सस्कृत, प्राकृत, अपभ्र श, राजस्थानी तथा गुजराती भाषाओ के प्रकाण्ड विद्वान् ही थे, अपितु प्राचीन लिपि, पुरातत्व और इतिहास के भी धुरधर विद्वान् थे। जैन साहित्य के तो मूर्धन्य विद्वान् थे ही। 'हरिभद्राचार्यस्य समयनिर्णय.' (सस्कृत) और आत्मकथा के अतिरिक्त इनकी स्वतन्त्र रूप से लिखित पुस्तके प्राप्त नही है किन्तु इनके प्रधान-सम्पादकत्व में और सम्पादकत्व में प्रकाशित पुस्तको के प्रधान सपादकीय प्राक्कथनो में तथा विश्लेषणात्मक एव शोधपूर्ण विस्तृत भूमिकाओ मे इन्होने इतना अधिक लिखा है कि इन समस्त

प्रस्तावनाओ का सकलन कर अलग से प्रकाशित किया जाय तो उसके कई खण्ड निकल सकते है।

जिनविजय जी द्वारा सम्पादित साहित्य की तालिका निम्नाकित है—

विज्ञप्ति त्रिवेणी
खरतरगच्छ पट्टावली सग्रह
जैन लेख सग्रह भाग 1 व 2
गुजराती गद्य सन्दर्भ
पुरातन प्रबन्ध सग्रह
प्रवन्ध कोष
कथाकोष प्रकरण
जैन पुस्तक प्रशस्ति सग्रह
सदेश रासक
कुमारपाल चरित्र सग्रह
जय पायड निमित्त शास्त्र
विज्ञप्ति लेख सग्रह
कर्णामृत प्रपा
प्राकृतानन्द
पदार्थ रत्न मजूषा
कृपारस कोष
आचाराग सूत्र
प्राचीन गुर्जर काव्य सग्रह
प्रबन्ध चिन्तामणि
सुकृत कीर्ति कल्लोलिनी
विविध तीर्थ कल्प
प्रभावक चरित्र
धूर्ताख्यान
कीर्तिकौमुदी महाकाव्य
खरतरगच्छ बृहद् गुर्वावली
जम्बू चरिय,
त्रिपुरा भारती लघु-स्तव
बाल शिक्षा व्याकरण
उक्ति रत्नाकर
गोरा बादल चरित्र

हम्मीर महाकाव्य

ए केटलाग आफ सस्कृत एण्ड प्राकृत मैन्युस्क्रप्ट्स–पार्ट–1, पार्ट-2 ए, बी, सी; पार्ट–3 ए, बी, इत्यादि।

मुनि जी ने भारतीय विद्या, जैन सशोधक, आदि कई शोधपूर्ण त्रैमासिक पत्रिकाओ का सपादन किया था और अनेको पत्रिकाओ में आपके गवेषणा पूर्ण लेख प्रकाशित हो चुके हैं।

61. यति नेमिचन्द्र

खरतरगच्छीय यति बख्तावर चन्द जी के शिष्य थे। इनका जन्म 1948 कुकणिया वेणासर (बीकानेर) रियासत और स्वर्गकाल स. 2009 बाडमेर में हुआ था। ये विधि-विधान के अच्छे जानकार थे। आपकी निम्न रचनायें प्रकाशित है –

नेमिविनोद स्तवन माला
जिनदत्तसूरि चरित्र
गुरुदेव गुण छदावली
जैन शकुनावली
हरिश्चन्द्र नाटक
लेखा लीलावती
पत्र पद्धति आदि।
कुलपाक मडल पूजा
स्तवन रत्न मजूषा
अग्रवती सुकुमार
हसवच्छ नाटक
स्थूलिभद्र नाटक
जैन ज्योतिष दिवाकर

62. माणिक्यरुचि

ये तपागच्छीय यति थे। भीडर (मेवाड) इनका निवास स्थान था। इनकी दो पुस्तकें माणिक्य मजरी और माणिक्य मनन प्रकाशित है। ये अच्छे कवि व उपदेशक थे। मेवाड़ के भीलो में भी उपदेश देकर मास-मदिरा छुडाने का विशेष प्रयास किया था।

63 साध्वीवर्ग

जैन परम्परा में प्रारम्भ से ही स्त्रियो को समान धार्मिक अधिकार दिये गये और चतुर्विध सघ मे साधु के साथ साध्वी और श्रावक के साथ श्राविका भी सम्मिलित है। राजस्थान मे खरतरगच्छ का अधिक प्रभाव व प्रसार रहा और इस गच्छ की अधिकाश साध्विया राजस्थान मे ही जन्मी हुई है। वैसे इनका विहार वहुत दूर-दूर तक भी होता रहा, परन्तु राजस्थान में इन्होने सर्वाधिक धर्म प्रचार किया। इनमे से कुछ साध्विया वहुत अच्छी लेखिकायें और कवयित्री भी रही है। कइयो ने प्राचीन प्रकरणादि ग्रन्थो का अनुवाद किया और कइयों ने मौलिक रचनाये भी की हैं। ज्ञात रचनाओ की सूची इस प्रकार है—

प्रेमश्रीजी—जैन प्रेम स्तवन माला, गहूली सग्रह
वल्लभश्रीजी—पेंतीस वोल का थोकडा, वैराग्य शतक अनुवाद, सवोध सत्तरी अनुवाद
प्रमोदश्रीजी—प्रमोद विलास, रत्नत्रय
विनयश्रीजी—युगादिदेशना, उपासक-दशा सूत्र अनुवाद
वृद्धिश्रीजी—चैत्यवन्दन चतुर्विंशतिका सानुवाद, श्रीचन्द्र चरित्र
हीराश्रीजी—जैन कथा सग्रह

64. पं. काशीनाथ जैन

श्वेताम्बर समुदाय मे साधु-साध्वियो के अधिक होने से श्रावक समाज मे विद्वान् और लेखक कम हुए हैं। इनमे से काशीनाथ जैन महापुरुषो के सचित्र जीवन-चरित्र प्रकाशित करने मे विशेष रूप से उल्लेखनीय है। ये वैसे तो यति शिष्य रहे है परन्तु इन्होने स्वय को यति शिष्य न लिख कर पडित रूप में प्रसिद्ध किया। इनकी पुस्तको का प्रचार भी वहुत अच्छा रहा। वर्षों तक यह एक ही काम में जुटे रहे और इसे अपनी आजीविका का साधन वना लेने के कारण ही इतना साहित्य लिख सके। इनका मूल निवास स्थान बमोरा (मेवाड़) था। इनकी प्रकाशित पुस्तको की सूची इस प्रकार है—

अभय कुमार	अरणिक मुनि
आनन्द श्रावक	आदिनाथ चरित्र
उत्तम कुमार	कयवन्ना सेठ
कामदेव श्रावक	काम कुम्भ माहात्म्य
चन्दन वाला	जम्वूस्वामी
चन्दराजा	चम्पक सेठ
जय विजय	तेरह काठिये
नल दमयन्ती	नेमिनाथ चरित्र
पार्श्वनाथ चरित्र	ब्राहमी सुन्दरी
महाशतक श्रावक	मृगावती
रत्नसार कुमार	रत्न शेखर
राजीमती	राजा यशोधर
राजा हरिश्चन्द्र	लकडहारा
ललिताग कुमार	विजय सेठ विजया सेठानी
शीलवती	शुकराज कुमार
सुर सन्दरी	सुदर्शन सेठ
सती सीता	सुरादेव श्रावक
हरिवल मच्छी आदि	

65. सुख संपतराय भंडारी

ये अजमेर निवासी है। इनका जन्म स 1895 में हुआ था। आपकी 'हिन्दी इंग्लिश डिक्सनेरी भाग-7, भारत दर्शन, तिलक दर्शन, भारत के देशी राज्य, राजनीति विज्ञान' आदि

पुस्तके प्रकाशित हो चुकी हैं। आप 'वेंकटेश्वर समाचार' आदि कई पत्रो के सपादक भी रह चुके हैं। इस प्रकार आपने अपना अधिकाश जीवन साहित्य निर्माण में ही लगाया था।

66. कस्तूरमल बांठिया

श्री बाठिया जी अजमेर मे रहते थे। 'हिन्दी बहीखाता, इन्कम टैक्स के हिसाब, रूई और उसका मिश्रण' आदि पुस्तके लिखी। प्रौढावस्था में आपने जैन साहित्य का विशेष अध्ययन किया और हेमचन्द्राचार्य जीवन चरित्र का अग्रेजी से अनुवाद किया। समय-समय पर आपके अनेको लेख भी सामयिक पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित हुये हैं। आपने कई जैनागमो के गुजराती और अग्रेजी ग्रन्थो के हिन्दी मे अनुवाद किये है। इनमे से 'जैनिज्म इन विहार' का जैन-भारती मे अनुवाद प्रकाशित हुआ। 'जैनिज्म इन गुजरात' और 'जैन आर्ट' का भी आपने अनुवाद किया था। गोपालदास पटेल आदि के गुजराती भाषा मे लिखित कई आगमो के अनुवाद भी आपने हिन्दी मे किये थे, किन्तु वे अभी तक अप्रकाशित हैं। श्री भोगीलाल साडेसरा की गुजराती पुस्तक 'वस्तु-पालनु विद्यामण्डल' का हिन्दी मे 'वस्तुपाल महामात्य का साहित्य-मण्डल और उसकी सस्कृत साहित्य को देन' नाम से अनुवाद भी किया था जो प्रकाशित हो चुका है।

67. दौलतसिंह लोढा 'अरविन्द'

स. 1914 धामणिया ग्राम (मेवाड) में इनका जन्म हुआ था। बी ए तक अध्ययन करके राजेन्द्र गुरुकुल बागरा मे प्रधानाध्यापक का कार्य किया। श्री विजय यतीन्द्रसूरि की प्रेरणा से काव्य और गद्य रचनायें लिखनी प्रारम्भ करदी। इनका उपनाम 'अरविन्द' था। सर्व प्रथम, 'श्री मनोहर विजय', तदनन्तर 'जैन-जगती' हरिगीतिका छदो मे बनाई। जैन-जगती जैन समाज का सचित्र चित्रण करने वाला अच्छा काव्य है। इसके बाद वे भोपाल-गढ, सुमेरपुर आदि मे बोर्डिग सुपरिन्टेन्डेन्ट के रूप मे रहे। अन्त मे भीलवाडा मे रहने लगे। छोटी-मोटी 33 पुस्तकें आपकी प्रकाशित हो चुकी हैं। जिसमे इतिहास सम्बन्धी 'प्राग्वाट इतिहास, पल्लीवाल जैन इतिहास, राणकपुर जैन इतिहास, श्री प्रतिमा लेख सग्रह' आदि उल्लेखनीय है। काव्यो मे जैन-जगती के अतिरिक्त 'राजीमति, दस निकुज, छत्र प्रताप, रसलता और वसुमती' आदि उल्लेखनीय है। आपके सपादित 'राजेन्द्रसूरि स्मारक ग्रन्थ' और 'यतीन्द्रसूरि अभिनन्दन ग्रन्थ' महत्वपूर्ण हैं। आप बहुत कर्मठ एव सुकवि थे। आपसे समाज को बहुत कुछ आशायें थी किन्तु आपका असमय में 49 वर्ष में ही निधन हो गया।

68. उमरावचन्द जरगड

इनका जन्म वि स 1959 में जयपुर मे हुआ। इनके पिता का नाम श्री मालवशी नेमिचन्दजी जरगड था। इनका जैन-दर्शन और अध्यात्म की तरफ विशेष आकर्षण था। जवाहरात का व्यापार था। वि स 2028 मे इनका स्वर्गवास हुआ। इनकी लिखित एव सम्पादित पुस्तकें निम्न प्रकार हैं –

देवचन्द्र जी कृत चतुर्विशति जिन स्तवन (सानुवाद)   प्रार्थना और तत्वज्ञान
देव चन्द्र जी कृत स्नानपूजा (सानुवाद)   आनन्दघन ग्रंन्थावली (सानुवाद)

69. पं. भगवानदास जैन

इनका जन्म स 1945 मे पालीताणा मे हुआ। इनके माता-पिता का नाम कल्याण-चन्द्र भाई और गगाबाई है। आचार्य विजय धर्मसूरि स्थापित यशोविजय जैन पाठशाला,

बनारस मे इन्होने शिक्षा प्राप्त की। लगभग 45 वर्षों से इनका कार्य क्षेत्र जयपुर ही है। पडित जी वास्तुशास्त्र, मूर्तिशास्त्र और ज्योतिष शास्त्र के अद्वितीय विद्वान् है। इनके द्वारा अनुदित निम्न पुस्तके प्रकाशित हो चुकी हैं –

वास्तुसार प्रकरण
मेघ महोदय वर्ष प्रवोघ
प्रसादमण्डन
ज्योतिपसार
बेडाजातक

पडितजी द्वारा कई अनुदित ग्रन्थ अभी तक अप्रकाशित पड़े हुए है, यथा—

रूपमण्डन
हीरकलश
देवतामूर्ति प्रकरण
भुवनदीपक
त्रैलोक्य प्रकाश, आदि।

70. चन्दनमल नागौरी

नागौरी जी छोटी सादडी (मेवाड) के निवासी श्री मोतीराम जी के पुत्र हैं। छोटी सादडी में ही रहते है। इनकी अभी उम्र 91 वर्ष की है। ये प्रतिष्ठा विधि और मन्त्र साहित्य के विशिष्ट विद्वान् हैं। इन्होने अभी तक विभिन्न स्थानो पर 135 मन्दिरो की प्रतिष्ठाये करवाई हैं। इनका निजी पुस्तकालय भी है जिसमे 5000 से अधिक पुस्तके सग्रहीत हैं। इनके द्वारा लिखित 75 के लगभग पुस्तके प्रकाशित हो चुकी है जिसमें से कुछ पुस्तको के नाम इस प्रकार हैं –

नमस्कार महामन्त्र कल्प
नमस्कार महात्म्य
ऋषिमण्डल स्तोत्र विधि विधान सह
ह्रीकार कल्प
घण्टाकर्ण कल्प
यन्त्र मन्त्र सग्रह
केसरियाजी का इतिहास
जाति गगा
महाराणा प्रताप, आदि।

71. अगरचन्द्र नाहटा

श्री शकरदानजी नाहटा के यहा वि स. 1967 मे बीकानेर मे इनका जन्म हुआ। पाठशाला की शिक्षा ये पाचवी कक्षा तक ही प्राप्त कर सके। आचार्य श्री जिन कृपाचन्द्रसूरि जी की प्रेरणा से स 1984 से इनकी और इनके भतीजे श्री भवरलाल नाहटा की साहित्य की ओर रुचि जागृत हुई। स 1984 से लेकर आज तक निरन्तर अध्ययनशीलता और कर्मशीलता के कारण इन नाहटा-बन्धुओ (चाचा-भतीजो ने) सामान्य शिक्षा प्राप्त होते हुए भी साहित्य जगत में जो कार्य किया है वह वस्तुत अद्वितीय ही कहा जा सकता है। इन दोनो के प्रयत्नो से सस्थापित अभय जैन ग्रन्थालय में लगभग 60 हजार हस्तलिखित ग्रन्थो और 15 हजार के लगभग मुद्रित पुस्तको का सग्रह, कलाभवन में मूर्तिया, सिक्के, चित्र, चित्रपट्ट, सचित्र प्रतिया, आदि हजारो की सख्या मे सग्रहीत है। यह ग्रन्थालय शोध-छात्रो के लिये शोध-केन्द्र बना हुआ है।

दृढ अध्यवसाय और अजस्र स्वाध्याय परायणता के कारण श्री अगरचन्द जी आज जैन साहित्य के ही नही, अपितु राजस्थानी भापा के भी श्रेष्ठ विद्वान् माने जाते है। यही नही, ग्रन्थो, ग्रन्थकारो, सग्रहालयो के सम्वन्ध मे तो इन्हें साहित्य का कोष भी कह सकते है। इनके सहयोग से पचासो छात्र शोध-प्रवन्ध पूर्ण कर पीएच. डी की उपाधि प्राप्त कर चुके है। पचासो,

पत्र-पत्रिकाओ में इनके 3,500 के लगभग लेख प्रकाशित हो चुके हैं। पच्चीसों पुस्तकों की इन्होने भूमिकाये लिखी हैं और शोधपूर्ण अनेको पत्रिकाओ के सपादक एव परामर्शदाता-मण्डल मे रह चुके है। अर्थाभिलाषी होते हुए भी साहित्य की प्रेरणा और, सहयोग देने में सर्वदा अग्रसर रहते है।

अगरचन्द्र जी द्वारा लिखित एव सपादित पुस्तकें निम्नाकित है -

विधवा कर्त्तव्य
जसवत उद्योत
दानवीर सेठ श्री भैरूदान जी कोठारी का सक्षिप्त जीवन चरित्र
राजस्थान मे हिन्दी के हस्तलिखित ग्रन्थो की खोज, द्वितीय भाग,
बीकानेर के दर्शनीय जैन मन्दिर
श्रीमद् देवचन्द्र स्तवनावली
छिताई चरित्र
पीरदान लालस ग्रन्थावली
जिनहर्ष ग्रन्थावली
जिनराजसूरि कृति कुसुमाजली
धर्मवर्द्धन ग्रन्थावली
प्राचीन काव्यो की रूप परम्परा
सभा शृगार
भक्तमाल सटीक
राजस्थानी साहित्य की गौरवपूर्ण परम्परा
अष्ट प्रवचनमाता सज्झाय सार्थ
ऐतिहासिक काव्य सग्रह
शिक्षा सागर
वी वी बादी का झगडा
रुक्मणी मगल, इत्यादि

श्री अगरचन्द्र जी और श्री भवरलाल जी इन दोनो बन्धुओ द्वारा सयुक्त रूप मे लिखित और सपादित पुस्तकें निम्नलिखित हैं -

युगप्रधान जिनचन्द्रसूरि
ऐतिहासिक जैन काव्य सग्रह
समयसुन्दर कृति कुसुमाजली
युगप्रधान जिनदत्त सूरि
बीकानेर जैन लेख सग्रह
क्याम खा रासा
ज्ञानसार ग्रन्थावली
पच भावनादि सज्झाय सार्थ
सीताराम चोपाई
मणिधारी जिनचन्द्र सूरि
दादा जिनकुशल सूरि
रत्नपरीक्षा
बम्बई चिन्तामणि पार्श्वनाथादि स्तवन पद सग्रह

श्री नाहटाजी कई सस्थाओ से सम्मानित हो चुके है और इसी वर्ष 11 अप्रेल, 1976 को इन्हें अभिनन्दन ग्रन्थ भी भेट किया जा चुका है।

72. भंवरलाल नाहटा

श्री अगरचन्द जी नाहटा के भतीजे हैं। श्री भैरोदान जी नाहटा के पुत्र हैं किन्तु श्री भैरोदानजी के अनुज श्री अभयराज जी के दत्तक पुत्र हैं। वि स 1968 में इनका जन्म हुआ। इनकी भी स्कूली शिक्षा कक्षा 5 तक की है। श्री अगरचन्द जी और भवरलाल जी दोनो न केवल सहपाठी मात्र ही रहे अपितु साहित्य के क्षेत्र में भी सर्वदा से एक-एक के पूरक रहे हैं। सग्रह, सपादन और लेखन आदि समस्त कार्यों मे दोनो सयुक्त एव सहयोगी के रूप में कार्य करते रहे हैं।

श्री भवरलाल जी सस्कृत, पाली, प्राकृत, अपभ्रश, अवधि, बगला, गुजराती, राजस्थानी, हिन्दी आदि भाषाओ में पारगत, प्राचीन ब्राह्मी, कुटिल आदि युग की भाषाओ की सतत परिवर्तित लिपियो की वैज्ञानिक वर्णमाला के अभ्यासी, मूर्तिकला, चित्रकला एव ललित कलाओ के पारखी है। इनकी अभिरुचि प्राय भाषा-शास्त्र और लिपि-विज्ञान में है। प्राकृत एवं संस्कृत भाषा में पद्यात्मक स्फुट रचनायें भी करते हैं।

इनके द्वारा स्वतन्त्र रूप से सपादित व विरचित पुस्तको की तालिका इस प्रकार है :—

सती मृगावती
समयसुन्दर रास पचक
उदारता अपनाइये
सीताराम चरित्र
जीवदया प्रकरण काव्यत्रयी
वानगी
राजगृह
हम्मीरायण,
पद्मिनी चरित चौपई
विनयचन्द्र कृति कुसुमाजली
सहजानन्द सकीर्तन
पावापुरी
श्री जैन श्वेताम्वर पचायती मन्दिर, कलकत्ता का सार्द्ध शताव्दी स्मृति ग्रन्थ,
नाहटावश प्रशस्ति (सस्कृत)

अप्रकाशित साहित्य निम्नलिखित है —

चन्द्रदूत
द्रव्य परीक्षा (अनुवाद)
अलकार दप्पण (अनुवाद)
कीर्तिकला (अनुवाद)
नगरकोट प्रशस्ति (अनुवाद)
सागरसेठ चौपई ।

इनके अतिरिक्त इनकी शताधिक कहानिया, सस्मरण तथा फुटकर आलोचनात्मक लेख अनेको पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित हो चुके है । आजकल आप 'कुशल निर्देश' मासिक पत्रिका का सपादन कर रहे हैं ।

73. महोपाध्याय विनयसागर

फलौदी (जोधपुर) निवासी श्री सुखलाल जी झावक के घर सन् 1929 मे इनका जन्म हुआ। वाल्यावस्था मे ही इन्होने खरतरगच्छीय श्री जिनमणिसागरसूरि जी के पास दीक्षा ग्रहण की। वैचारिक क्राति के कारण सन् 1956 मे साधुवेष का त्याग कर गृहस्थ वने। शिक्षा के क्षेत्र मे इन्होने साहित्य महोपाध्याय, साहित्याचार्य, जैन दर्शन-शास्त्री, साहित्यरत्न (सस्कृत) और शास्त्र विशारद आदि उपाधिया प्राप्त की हैं। ये प्राकृत, सस्कृत, अपभ्रश, राजस्थानी और गुजराती भाषा के विद्वान्, प्राचीन लिपि पढने मे निपुण, जन साहित्य के अच्छे निष्णात और पत्रकार हैं। इनके गवेषणा पूर्ण अनेको लेख पत्रिकाओ में प्रकाशित हो चुके हैं। इनके द्वारा सम्पादित व लिखित निम्न पुस्तके प्रकाशित हो चुकी हैं—

सनत्कुमारचक्रि चरित्र महाकाव्य
सघपति रूपजी वश प्रशस्ति
नेमिदूत
खरतरगच्छ का इतिहास
हैमनाममालाशिलोचछ सटीक
चतुर्विशति जिन स्तवनानि
महावीर षट् कल्याणक पूजा
शासन प्रभावक आचार्य जिनप्रभ और उनका साहित्य
वल्लभ भारती
वृत्तमौक्तिक,
अरजिनस्तव,
प्रतिष्ठा लेख सग्रह प्रथम भाग,
महोपाध्याय समयसुन्दर,
चतुर्विशति, जिनस्तुतय
भावारिवारण पादपूर्त्यादि स्तोत्र सग्रह
खड प्रशस्ति टीका द्वय सहित,
खरतरगच्छ साहित्य सूची
सौभाग्य पंचम्यादि संस्कृत पर्वकथा संग्रह

74. महताव चन्द खारेड

इनका जन्म वि स. 1960 मे जयपुर मे हुआ। इनके पिता का नाम जौहरी सुजानमल जी खारेड श्रीमाल था। ये सस्कृत, हिन्दी और डिंगली (राजस्थानी)

भाषा के अच्छे जानकार है। इनका 'जयपुर राज्य के हिन्दी कवि और लेखक,' नामक वृहत निबन्ध 'हिदी साहित्यकार परिचय' मे प्रकाशित हुआ था। स्वर्गीय कविया बारहठ श्री मुरारिदान जी के साथ इन्होने 'बाकीदास ग्रन्थावली भाग 2-3, रघुनाथ रूपक गीता रो' और श्री उमरावचन्द जी जरगड के साथ 'आनन्दघन ग्रन्थावली' का सम्पादन किया है। स्वतन्त्र रूप से इन्होने 'लावा रासा' का सम्पादन किया है। इस ग्रन्थ पर इन्हे नागरी प्रचारिणी सभा, काशी द्वारा 'रत्नाकर पुरस्कार, एव 'बलदेवदास पदक' प्रदान किया गया। इन्होने स्फुट पद्य भी प्रचुर परिमाण में बनाये है। आजकल आप श्रीमाल सघ, जयपुर से सम्बन्धित इतिवृत्त के सग्रह मे लगे हुए है।

इनके अतिरिक्त वर्तमान समय मे अनेको विद्वान् व लेखक हुए है तथा विद्यमान है जिन्होने बहुत कुछ लिखा है किन्तु उनका साहित्य सन्मुख न होने के कारण लिखने मे असमर्थता है फिर भी कतिपय विद्वानो के नामोल्लेख किये जा रहे है।

साधु वर्ग मे विजय ललितसूरि, विजय सुशीलसूरि, विजय दक्षसूरि, विजय कलापूर्ण सूरि, माणकमुनि (कल्पसूत्र), मुनि महेन्द्रसागर (महेन्द्र विलास), मुनि कान्तिसागर (कान्ति विनोद) आदि की कई पुस्तके प्रकाशित हो चुकी है।

साध्वी वर्ग में विचक्षणश्री अच्छी विदुपी साध्वी है। इनके गुणकीर्त्तनात्मक स्तवनादि प्राप्त है। इसी प्रकार साध्वी सज्जनश्री ने कतिपय स्तवनादि तथा कल्पसूत्र आदि 3-4 ग्रन्थो के अनुवाद किये है।

इसी प्रकार उपासक वर्ग मे जवाहरलाल नाहटा (भरतपुर) के कई समाज सुधार सम्बन्धी लेख, शुभकरणसिह बोथरा (जयपुर) के दार्शनिक लेख, जीतमल लूणिया (अजमेर), सिद्धराज ढड्ढा (जयपुर), पूर्णचन्द्र जन (जयपुर), भूरेलाल बया (उदयपुर), फूलचन्द बाफना (फालना) आदि के मानवता और गाधीवाद से प्रभावित लेख, केसरीचन्द भाण्डावत (अजमेर) के जीव-हिसा विरोधी लेख, बलवन्तसिह मेहता (उदयपुर) के खोजपूर्ण लेख, ताजमल बोथरा (बीकानेर), पानमल कोठारी (नागौर), पारसमल कटारिया (जयपुर), हीराचन्द वैद (जयपुर), गोपीचन्द धाडीवाल (अजमेर), हस्तिमल धाडीवाल (अजमेर), चादमल सीपाणी (अजमेर) के धर्मसम्बन्धी लेख एव पुस्तके, राजरूप टाक (जयपुर), के जवाहरात पर लेख, देवीलाल साभर (उदयपुर) और श्री कोमल कोठारी के राजस्थानी लोक कला और साहित्य सम्बन्धी लेख प्रकाशित हो चुके है। वुद्धसिह बाफना (कोटा) ने अग्रेजी भाषा मे अनेको दर्शनिक कविताओं की रचना की है।

प्रसिद्ध इतिहासविद् डा दशरथ शर्मा ने अनेको जैन पुस्तको की भूमिकाये लिखी है तथा जैन साहित्य एव शिलालेखो पर कई शोधपूर्ण लेख लिखे है। जैन शिलालेख और मूर्तिलेखो पर श्री रत्नचन्द्र अग्रवाल और श्री रामवल्लभ सोमानी ने भी अनेको खोजपूर्ण लेख लिखे है। स्वर्गीय प श्री जयदयालजी शर्मा (बीकानेर) ने 'मन्त्रराज गुण कल्प महोदधि' आदि पुस्तको का हिन्दी मे अनुवाद किया था।

उपसहार

17 वी शताब्दी से 20 वी शताब्दी तक जिन श्वेताम्बर लेखको द्वारा हिन्दी साहित्य लिखा गया वह हिन्दी के बढते हुए विस्तार का सूचक है, क्योकि उस समय तक राजस्थान के कुछ हिस्से को छोड कर अधिकाश भाग मे बोलचाल की भाषा राजस्थानी ही थी। वैसे जैन कवियो ने प्राय सभी भाषाओ और विषयो पर सर्व-जनोपयोगी साहित्य विपुल परिमाण मे लिखा है और जहा तक श्वेताम्बर हिन्दी साहित्य का प्रश्न है उसमें भी काफी विविधता पाई जाती है। कुछ हिन्दी रचनाओ मे रचना-स्थान का उल्लेख न होने से वे राजस्थान मे ही रची गई है ऐसा निर्णय नही हो सका, अत उन रचनाओ को इसमे सम्मिलित नही किया जा सका है।

कई जैन लेखको की रचनाओ मे खड़ी बोली की प्रधानता है तो कइयों में व्रजभाषा की। कुछ रचनाओ की भाषा ऐसी भी है जिसे राजस्थानी प्रभावित हिन्दी या हिन्दी प्रभावित राजस्थानी कह सकते हैं। वहुत से जैन लेखको ने प्राकृत, सस्कृत और राजस्थानी मे रचना करने के साथ-साथ थोडी वहुत रचनाए हिन्दी में भी की है। भक्ति और अध्यात्म के पद अधिकाशत. हिन्दी मे रचे गये, क्योकि ध्रुपद शैली का काफी प्रभाव व प्रचार वढ चुका था। इसी तरह नगर वर्णनात्मक गज़ले प्राय सभी एक ही शैली मे खड़ी वोली मे रची गई है। वावनी, वारहमासा आदि भी एक ही कवि ने राजस्थानी मे बनाये है तो साथ-साथ हिन्दी मे भी बनाये है।

जैन साहित्य रचना का प्रधान लक्ष्य जनता के नैतिक स्तर को ऊचा उठाने का रहा है इसलिये काव्यात्मकता को प्रधानता न देकर सहज और सरल शैली में अधिक लिखा गया है।

जैन साहित्य के निर्माताओ मे सब से वडा योग जैनाचार्यो और मुनियो का रहा है। वे अपने मुनिधर्म के नियमानुसार एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश में विचरते रहते है। इसलिए वहुत से आचार्य और मुनि राजस्थान प्रदेश में जन्में अवश्य किन्तु गुजरात मे अधिक विचरे।

इस प्रदेश की जनभाषा राजस्थानी रही। पहिले राजस्थानी और गुजराती दोनो एक ही भाषायें थी। जब हिन्दी भाषा का प्रचार राजस्थान मे अधिक होने लगा तब से प्राकृत, सस्कृत और गुजराती ग्रन्थो का अनुवाद हिन्दी में होना प्रारम्भ हुआ किन्तु जितना श्वेताम्वर साहित्य गुजराती में लिखा गया, उतना हिन्दी मे नही लिखा गया। कुछ हिन्दी रचनायें अन्य प्रान्तो में विचरते हुए रची गई है और उधर से ही प्रकाशित हुई है, इसलिये ऐसी बहुत सी हिन्दी रचनायें इस निवन्ध में सम्मिलित नही की जा सकी।

हिन्दी जैन कवि--3

—डा. इन्दरराज बैद

काव्य की रमणीयता का आधार पाकर अध्यात्म सहज ग्राह्य हो जाता है। चितन और प्रवचन साहित्य की ललित शैलियो में प्रवाहित होकर अपनी प्रेषणीयता को कई गुना बढ़ा देते है। यही कारण है कि भारतवर्ष के मनीषी सत-महात्माओ ने जन-जन तक अपना सदेश पहुचाने के लिए काव्य का सहारा लिया। भक्ति काल का साहित्य अपने अमूल्य सदेश और अप्रतिम प्रभाव के कारण ही आज तक स्वर्णिम साहित्य कहलाता है। सत और भक्त कवियो ने कविता के माध्यम से आत्मा-परमात्मा की और लोक-परलोक की गभीर से गभीर गुत्थियो को सुलझाने में ही अद्भुत सफलता प्राप्त नही की, सुललित सूक्तियो और मनोरम शब्द-चित्रो से नैतिकता और मानवीयता की महत् प्रतिष्ठा भी की हैं। यही नही, अपने काव्य के सुरम्य प्रसूनो को वाग्देवी के चरणो मे समर्पित करके अपने सृजन-धर्म की मर्यादा का पालन भी किया है।

साहित्य की आराधना आदिकाल से ही जैन सतो और विचारको के साधक जीवन का अटूट अग रही है। जैन अनुशासन की स्थानकवासी परपरा ने भी अन्य परपराओ की तरह सदेश-प्रेषण के लिए काव्य की शैली का समुचित उपयोग किया है। मूर्ति-पूजा और धार्मिक क्रिया-काडो के विरोध में उत्पन्न हुई स्थानकवासी परपरा ने अनेक कवि-रत्नो को जन्म दिया है। स्थानकवासी मान्यता के सत कवि और श्रावक-साहित्यकार भक्तिकाल की उस सत-परपरा के अधिक निकट पडते हैं, जिसने साकार ब्रह्म की अपेक्षा निराकार ब्रह्म का, भक्ति की अपेक्षा ज्ञान का और प्रतिमा-पूजार्चना की अपेक्षा मानवीय नैतिकता की प्रतिष्ठा का अधिक समर्थन और प्रतिपादन किया हैं। स्थानकवासी सप्रदाय के मूल प्रेरक थे श्री लोकाशाह, जिन्होने 1451 ई में मूर्ति पूजा और अन्य वाह्य आडबरो के विरोध में आवाज उठाई थी। राजस्थान में इस परपरा को सुदृढ किया श्री जीवराज जी, हरजी, धन्नाजी, पृथ्वीचन्द जी, और मनोहरजी जैसे धर्मनिष्ठ आचार्यो ने। आज भी इन आचार्यो की अनुयायी शिष्य-परपरा उन्ही के पद-चिह्नो पर चलती हुई स्वर और लेखनी से मानवता के उद्धार का महामन्त्र फूकती जा रही है। जैन शासन की इस अद्भुत क्रातिकारी मानवतावादी परम्परा ने विपुल मात्रा में साहित्य का निर्माण करके अध्यात्म की सारस्वत सेवा की है।

राजस्थान के आधुनिक स्थानकवासी जैन कवियो की पक्ति मे गौरवपूर्ण स्थान है जैन दिवाकर मुनि श्री चौथमलजी का, जिन्होंने जैन धर्म के सिद्धातो का प्रचार अपने ओजस्वी व्याख्यानो द्वारा तो किया ही, सुरम्य काव्य-रचना द्वारा भी उसे सभव कर दिखाया। अपने समय के इन तेजस्वी सत ने अपने समस्त ओज और माधुर्य के साथ धर्म की साधु व्याख्या की। धर्म, ईश्वर, कर्म, मन, आत्मा, ज्ञान, प्रार्थना, सद्गुरु, सत्सग, पुनर्जन्म, भक्ति, दान, शील, तप, भाव आदि तत्वो का सुन्दर और तात्विक विश्लेषण उनके 'मुक्ति-पथ' नामक काव्य-रचना मे मिलता है। 'धर्म' और 'तीर्थ' के सम्बन्ध में ये काव्योक्तिया कितनी सही हैं:—

"(अ) खा-पीकर के हम पड़े रहे, यह जीवन का है सार नही,
वस जीवदया के तुल्य जगत में, अन्य धर्म व्यापार नही।

(आ) है माता पिता तीर्थ उत्तम, और तीर्थ ज्येष्ठ जो भ्राता है,
सद्गुरु तीर्थ है पदे-पदे, वस यही तीर्थ सुखदाता है।"

—(मुक्ति पथ, पृ 8-9)

धर्म की यह वास्तविक परिभाषा कवि गोस्वामी तुलसीदास जी ने भी की थी। उन्होने भी कहा था-"परहित सरिस धर्म नहि भाई, पर पीडा मम नहिं अधमाई।" 'गजल गुल चमन बहार' और 'जैन सुबोध गुटका' जैसे रमणीय मुक्तक सग्रहो से लेकर तीर्थ कर चरित्रो तक का प्रणयन दिवाकर मुनि की मर्मस्पर्शी लेखनी ने किया है। क्षेत्रीय भाषा राजस्थानी का स्पष्ट प्रभाव इनकी रचनाओ की भाषा और शैली पर दिखाई पडता है। 'गजल गुल चमन बहार' मे छोटी-छोटी गजलो के द्वारा उन्होने जैन युवा समाज का उद्बोधन किया और शास्त्रो के सदेश को मरल और मधुर भाषा मे उन तक पहुँचाया। विभिन्न सामाजिक कुरीतियो और पतन की भूमिका तैयार करने वाली व्यक्तिगत कुप्रवृत्तियो पर भी उन्होने भीषण प्रहार किया। अपने आह्वान पूर्ण शब्दो मे उन्होने समाज को कहा—

"सतान का जो चाहो भला रडी नचाना छोड दो,
वृद्ध-बाल विवाह बन्द करो, करके कुछ दिखलाइयो।
फिजूलखर्ची दो मिटा, मुह फूट का काला करो,
धर्म जाति की उन्नति करके कुछ दिखलाइयो।"

—(गजल गुल चमन बहार- पृ 14)

आचार्य श्री हस्तीमल जी म जैन सस्कृति, साहित्य और इतिहास के प्रकाड पडित, अनुसधायक और विश्लेषक के साथ-साथ मधुर कवि भी हैं, जिनकी कविता मे आत्म जागृति का सदेश है, सामयिक-स्वाध्याय की प्रेरणा है और जीवन-सुधार का निर्देश है। राजस्थानी मिश्रित हिन्दी मे की गई उनकी काव्य सर्जना उद्बोधन के अनेक जीवत प्रकरणो से समृद्ध है।

"जग प्रसिद्ध भामाशाह हो गये लोक चन्द इस बार,
देश धर्म अरु आत्म धर्म के हुए कई आधार।
तुम भी हो उनके ही वशज कैसे भूले आन ?
कहा गया वह शौर्य तुम्हारा, रक्खो अपनी शान।

—(गजेंद्र पद मुक्तावली, पृ 4)

गभीर एव उच्च कोटि के धर्म ग्रथो के प्रणेता आचार्य हस्तीमलजी ने जैन समाज मे स्वाध्याय का विलक्षण मत्र फूका है जो घर-घर मे घट-घट के लौकिक अधकार को ध्वस्त करके अध्यात्म का अलौकिक आलोक बिखेर रहा है। 'स्वाध्याय सद्गुरु की वाणी है, स्वाध्याय ही आत्म कहानी है, स्वाध्याय से दूर प्रमाद करो स्वाध्याय करो, स्वाध्याय करो' जैसे सीधी मरल और प्रभावी वाणी से ओत प्रोत गीत आज उनके सहस्रो अनुयायियो के अधरो पर ही नही थिरक रहे है, बल्कि स्वाध्याय की कर्म प्रेरणा देकर उनके उद्धार का मार्ग भी प्रशस्त कर रहे हैं। आपने "जैन आचार्य चरितावली" मे ढाई हजार वर्ष की जैन आचार्य परम्परा के सक्षिप्त इतिहास को राग-रागिनियो मे बाँधकर, उसे सरल बनाकर प्रस्तुत किया है।

स्थानकवासी समाज मे 'कविजी' के नाम से विख्यात उपाध्याय श्री अमर मुनि का राजस्थान मे काफी पुराना और निकट का सबध रहा है। यहा के सत और श्रावक समाज को आप सदैव प्रिय रहे है। अपनी वाणी के जादू और लेखन की चातुरी से कवि-कुल मे श्री अमर मुनि ने अमिट यश अर्जित किया है। वे एक सहृदय सरस गीतकार, भावुक मुक्तककार और सिद्ध-हस्त प्रबन्धकार के रूप मे हमारे सामने आते है। उनकी प्रमुख काव्य-कृतिया है—अमर पद्य मुक्तावली, अमर पुष्पाजलि, अमर कुसुमाजलि, अमर गीताजलि, सगीतिका, कविता-कुज, अमर-माधुरी, श्रद्धाजलि, धर्मवीर सुदर्शन और सत्य हरिश्चन्द्र। अंतिम दो प्रबन्धात्मक रचनाए है।

कविजी ने अपने काव्य की अभिधा में ओज, माधुर्य और प्रसाद का अद्भुत मिश्रण घोलकर उसे इतना सरस और रमणीय बना दिया है कि आज वह हजारों श्रोताओं और पाठकों के मानस में घुल चुका है। इनकी कविता मुक्ति-पथ की ओर अग्रसर होने की प्रेरणा तो देती ही है, जीवन जगत के वैविध्यपूर्ण वातावरण को उसकी सपूर्णता के साथ चित्रित कर मनुष्य को उसमे जीने की कला भी सिखाती है। कविजी मूलत मानववादी चेतना के कवि हैं। आत्म विश्वास, आत्माभिमान, पुरुषार्थ और मानवीय गरिमा का स्वर उनकी कविताओं मे अनेक स्थलो पर मुखरित हुआ है। यथा–

आत्म लक्ष्य से मुझे डिगाते हो अरबों आघात,
वज्र-प्रकृति का बना हुआ हू क्या डिगने की बात ?
स्वप्न में भी न बनूगा हीन।
—(सगीतिका, पृ 168)

अपनी प्रबन्धात्मक कृतियो मे वे एक कुशल कथाकार और नाटककार के रूप मे भी सामने आते हैं। उनके वर्णन की शैली इतनी विलक्षण है कि पाठक को यह पता नही चलता कि वह काव्य पढ रहा है या देख रहा है। यही कारण है कि आज उनका 'सत्य-हरिश्चन्द्र' काव्य व्याख्यानो का गौरवमय विषय बना हुआ है। यो यह काव्य सत्य की महिमा-प्रतिपादन हेतु राजा हरिश्चन्द्र के चरित्र पर लिखा गया है, पर कवि ने इसमें तारा के चरित्र को उजागर करने में जो प्रयास किया है वह अद्भुत और स्तुत्य है। राज्य-त्याग के बाद अपने पति हरिश्चन्द्र के साथ चलने का आग्रह करती हुई तारा का भव्य चरित्र श्रद्धापूर्वक द्रष्टव्य है —

कष्ट आपके सग जो होगा, कष्ट नही वह सुख होगा,
और आपके पृथक् रहे पर सुख भी मुझ को दुख होगा।
बिना आपके स्वर्ग लोक को नरक लोक ही जानूगी,
किंतु आपके साथ नरक को स्वर्ग बराबर मानूगी।
सौ बातो की एक बात, चरणो के साथ चलूगी मैं,
आप नही टलते निज प्रण से कैसे नाथ टलूगी मैं ?
—(सत्य हरिश्चन्द्र, पृ 89)

भारतीय सहधर्मिणी अर्धांगिनी नारी का कितना तेजस्वी और पावन रूप उभरकर आया है इन सीधी सरल पक्तियो मे। ऐसे भव्य, प्रेरक और पूज्य स्वरूपो को उभारने में सिद्धहस्त है कवि अमर मुनि।

पूज्य धन्नाजी की परम्परा को गौरवान्वित करने वाले सत मरुधर केसरी श्री मिश्रीमल जी ने काव्य को मानो अपना अन्तरंग मित्र ही बना लिया है। वे जितने प्रखर सत हैं उतने ही प्रखर कवि भी हैं। जैन दर्शन के सिद्धातो की सरल से सरल शब्दावली में उदाहरणपरक व्याख्या इनके काव्य की विशेषता है। जीवन की क्षणभगुरता को कितने सहज ढग से विश्लेपित करते है मरुधर केसरी ! यथा —

तन धन परिजन मस्त जवानी
बिजुरी के झबकार समानी
मिट जासी मझधार, करै क्यो तौफानी ?
ओस बिंदु मम काया माया
मान मान रे बादल छाया
ज्यो पप्पल का पान, नमक जैसे पानी।
—(मधुर स्तवन बत्तीसी, पृ. 4)

मरुधर केसरी ने विविध छंदो में अनेक काव्य रचनाएं की है। उनकी प्रमुख कृतिया है—बुध विलास, यशवन्त चरित्र, साध्वी रत्नकुवर, कविता-कुंज, मधुर स्तवन-बत्तीसी, मनोहर मगल प्रार्थना, भक्ति के पुष्प, मनोहर फूल, मधुर शिक्षा, सकल्प विजय, मधुर दृष्टान्त मजूषा आदि। 'सकल्प विजय' मे उनके पाच स्फुट काव्य सगृहीत हैं, जिनमे चेलना, समरसिंह, नदशाह, स्थूलिभद्र और शीलसिंह के चरित्रो को उजागर किया गया है। काव्य-सौष्ठव की दृष्टि से 'स्थूलिभद्र' काफी सशक्त और रमणीय रचना है जिसमे स्थान-स्थान पर उनका कला-प्रिय, कवि-रूप उभर कर आया है। अनुप्रास मरुधर-केसरी का प्रिय अलंकार है। इसकी एक छटा देखिए—

भव जल तरणी करणी वरणी शात सुधा रस झरनी है।
वेतरणी हरणी अग जरनी गुरु भक्ति चित्त भरनी है।।

—(वही, पृ 8)

मरुधर केसरी जी ने अनेक छदो का प्रयोग किया है—जैसे दोहा, चौपाई, छप्पय, कुडलिया आदि। मुख्य रूप मे इनकी भाषा राजस्थानी है। बिहारी के दोहो की भाति इनके दोहे भी गभीर भावो से भरे है। दृष्टान्त. उनके 'वचन महिमा' से सबधित दोहे देखे जा सकते है। एक दोहे मे वे वचन की तुलना सधवा के सिन्दूर से करते है। जिस प्रकार सिंदूर सधवा के ललाट की अक्षर शोभा है, उसी प्रकार वचन दृढ-प्रतिज्ञ लोगो की अक्षर शोभा है। सधवा सिंदूर नही त्यागती, उसी प्रकार वचन का परित्याग भी सत्पुरुष नही करते। यथा—

गुनिजन, मुनिजन, वीरजन, वचन विसारे नाय।
जिमि सधवा सिंदूर की, टीकी भाल सुहाय।।

—(मधुर शिक्षा, पृ 16)

श्री गणेश मुनि शास्त्री स्थानकवासी कवि-समाज के एक सम्माननीय हस्ताक्षर हैं जिन्होने प्राचीन और अधुनातन काव्य-शैलियो का सफल प्रयोग करके अपने कौशल का सुन्दर परिचय दिया है। जैन-जगत् मे वे एक गूढ चिन्तक, मधुर व्याख्यानी और सहृदय कवि के रूप मे विख्यात हैं। वे सन्त पहले है, कवि बाद मे। उनका सत-रूप जितना दिव्य है, कवि रूप भी उतना ही भव्य है। उनकी अपनी मान्यता है कि सत हुए बिना कोई कवि नहीं हो सकता। सत हृदय अर्थात् सदाशयता, शालीनता, सच्चरित्रता और मानवता से युक्त हृदय। सत्साहित्य का सृजन सत-कवि ही कर सकते है। अभद्र साहित्य का निर्माण करने वाले सत हो ही नही सकते। (दे डा रामप्रसाद द्विवेदी कृत श्री गणेश मुनि शास्त्री साधक और सर्जक, पृ 111)

इनकी प्रमुख काव्य रचनाए है—गणेश गीताजलि, सगीत-रश्मि, गीत-झकार, गीतो का मधुवन, महक उठा कवि-सम्मेलन, वाणी-वीणा, सुबह के भूले और विश्व ज्योति महावीर (प्रबध)। सीधी और सरल भाषा का उन्होंने सदैव प्रयोग किया है, क्योकि उनकी मान्यता है कि इससे जन-मानस भाषा के जटिल शब्द-जाल मे न उलझ कर कविता की आत्मा से सीधा सबध स्थापित कर सकेगा। जीवन और जगत् की निस्सारता के बारे मे उनके ये सूक्त्यात्मक विचार कितने जीवन्त हैं—

(अ) "भाग्यवान इतरा मत इतना, नही समय रहता इक सा।
देख सूर्य के तेजस्वी की होती दिन मे तीन दशा।।"

—(वाणी-वीणा, पृ 43)

(आ) "पल-पल मे यहा मधुर मिलन, पल-पल मे यहा विछुड़ना है।
जग आख मिचौनी की क्रीडा, खिलना और सिकुड़ना है।"

—(वही, पृ. 46)

ससार को असार मानने वाले जैन कवियो की रचनाओ मे स्वाभाविक रूप से ऐसे स्थल कम मिलेंगे, जिसमे कल्पना और रमणीयता अपेक्षाकृत अधिक पायी जाती हो। धर्म की मर्यादा मे बधा जैन कवि मुक्तक रचनाओ मे हरी भरी प्रकृति की रमणीयता का वर्णन यदा-कदा ही कर पाता है। श्री गणेश मुनि इसके अपवाद है। कवि की लेखनी ने प्रकृति के मनोहारी बिंब उभारे हैं। एक छटा द्रष्टव्य है—

"चाद सितारे नभ प्रागण मे पुलक पुलक रस नाच रहे,
फलित पादपो की डाली पर लचक लचक खग नाच रहे।
सागर के वक्षस्थल पर यह मादक लहरो का अभिनर्तन,
किस अप्रत्याशित अतिथि के आने का है मौन निमत्रण।"

—(वही, पृ. 165)

गणेश मुनि ने नयी शैली मे भी रचनाए की है। नयी कथात्मक शैली मे लिखी गई इनकी रचनाए 'सुबह के भूले" नामक सग्रह मे सकलित हैं। इन कविताओ मे उन्होने अरणक, रथनेमि, आषाढभूति,, बाहुबलि, गौतम, कपिल, त्याग-भद्र, अर्जुनमाली, चन्दनबाला, आदि के उदात्तजीवन-प्रसगो को प्रभावकारी ढग से उजागर किया है। सम्राट दशार्णभद्र को श्रमण के वेश मे देख कर दर्पोद्धत देवराज इन्द्र भी पानी-पानी हो गए और कहने लगे—

"ससार के वैभव को
दे सकता है चुनौती इद्र
पर त्याग के ऐश्वर्य से टकराने का
नही है सामर्थ्य उसमे,
आध्यात्मिक बल समक्ष
टिक नहीं सकती
देव शक्ति एक पल भी,' " —(सुबह के भूले, पृ. 62–63)

राजस्थान की स्थानकवासी जैन परम्परा के पोषक आधुनिक हिन्दी कवियो मे मुनि श्री महेन्द्रकुमार 'कमल' का नाम बड़े आदर और गौरव के साथ लिया, जाता है। 'विधि के खेल, भगवान् महावीर के प्रेरक सस्मरण, मन की वीणा, मन के मोती, प्यासे स्वर, आदर्श महासती राजुल, फूल और अगारे, प्रकाश के पथ पर' आदि अनेक काव्य-कृतियो के माध्यम से आध्यात्मिकता, नैतिकता और मानवीयता की त्रिवेणी प्रवाहित करने वाले इस ओजस्वी सत कवि ने हिन्दी का अलख जगाने का साधु प्रयास भी किया है। इनकी कविताओ मे जहा एक ओर अध्यात्म-सुरभि से परिपूर्ण सुमनावलियो के दर्शन होते हैं वहा उद्बोधन के ओज से ओतप्रोत शब्दो के अगारे भी दमकते हुए दिखाई पडते हैं। यह है चुनौतीपूर्ण शब्दो मे उनका आह्वान—

जड सिद्धांतो की लाशो का कब तक भार उठाओगे,
परित्याग ही श्रेष्ठ अन्यथा मिट्टी में मिल जाओगे।
ओ अतीत में रमने वालो, वर्तमान भी पहचानो,
सोचो, समझो, आखें खोलो, केवल अपनी मत तानो।

उठो साथियो, गलत रूढिया कब तक कहो, करोगे सहन,
एक नया परिवतन ला दो या फिर लो चूडियां पहन।"

—(मन के मोती, पृ. 96)

सामाजिक कुरीतियो और शोपण के आधारभूत कारणो पर इस सत-कवि की लेखनी ने कठोर प्रहार किए है। दहेज, बाल-विवाह, छुआछूत, जाति-भेद, शोपण, काला-व्यवसाय, परिग्रह जैसी रूढियो और प्रवृत्तियो पर कवि ने सैकडो रचनाए की है। इन रचनाओ ने समाज की विचारधारा को ही प्रभावित नही किया, उसे बहुत कुछ मोडा भी है। 'जीवन मे यदि आचार न हो तो विचार किस काम का ? कर्म की प्रवृत्ति न हो तो ज्ञान के सग्रह का क्या लाभ ?' (मन के मोती, पृ 93) कर्त्तव्यो के प्रति जागरूक रहने का भाव तो उनकी रचनाओ मे सर्वत्र ही देखा जा सकता है।

आधुनिक युग विज्ञान का युग है, भौतिक उन्नति और उपलब्धियो का युग है। इसे नकारा नही जा सकता। जैन साधु भी वर्तमान जीवन की इस वस्तुस्थिति की उपेक्षा नही करते, परन्तु वे ऐसे विज्ञान का कभी समादर या समर्थन नही कर सकते, जिसमे धर्म की प्रेरणा के लिए किंचित् भी अवकाश न हो। ऐसे विज्ञान से मनुष्यता के कल्याण की कामना नही की जा सकती। कवि ने कितने प्रभावी ढग से अपने इस दृष्टिकोण को अभिव्यक्त किया है —

"धर्म शून्य विज्ञान प्रेम के पुष्प न कभी खिला सकता,
विद्युत दे सकता किन्तु मैत्री के दीप न कभी जला सकता।"

—(मन के मोती, पृ 66)

कर्मवाद जैन दर्शन का एक महत्वपूर्ण अध्याय है। मानव-जीवन की नियति कर्माधीन है। कर्म ही सुख के आधार हैं और कर्म ही दु ख के कारण होते हैं। शुभ और अशुभ कर्म ही जीवन मे उजियाली और कालिमा लाते रहते है। मानव का उद्धार या जीवात्मा की मुक्ति तब तक सभव नही होती जब तक कि उसके सब कर्म, शुभ-अशुभ, क्षय नही हो जाते। जिस क्षण ऐसा होता है, व्यक्ति व्यक्तित्व बन जाता है व आत्मा परमात्मा मे बदल जाती है। परन्तु जब तक ऐसा नही होता, तब तक तो मनुष्यो को अपने कर्मानुसार सुख-दु ख के साथ आखमिचौनी करनी ही होती है। मानव जीवन के इस सत्य को व्यक्त करते है मुनि महेन्द्र 'कमल' इन शब्दो मे —

"पूर्व जन्म के शुभ कर्मो से कोई मार नही सकता,
अशुभ कर्म हो यदि प्राणी के, कोई तार नही सकता।
भोग बिना कर्म फल, सुनिए होता नही भव-भ्रमण विनाश,
यहा कर्म ही सुख पहुचाते और कर्म देते सत्रास।"

—(भगवान महावीर के प्रेरक सस्मरण, पृ 14)

समाजोद्धारक जै रत्न दिवाकर मुनि श्री चौथमलजी की शिष्य-परम्परा मे अनेक कवि-रत्न हैं। उनमे उल्लेखनीय हैं श्री केवल मुनि। अपने गुरु की भाति ही इन्होंने भी समाज के हर अग के सपूर्ण विकास के लिए उद्बोधन दिया है, साहित्य-सृजन किया है। इनके कवि-रूप मे इनका गायक-रूप पूरी तरह घुला हुआ है। इनकी माधुर्य-युक्त वाणी समाज के लोगो पर जादू सा असर डालती रही है। इनकी रचनाए गेय होने के कारण अधिक लोकप्रिय और ग्राह्य सिद्ध हुई हैं। इनकी मुख्य रचनाए है—मेरे गीत, कुछ गीत, मधुरगीत, सुन्दरगीत, सरस गीत, गीत लहरिया, गीत सौरभ, महकते फूल, मेरी बगिया के फूल, वीरागद सुमित्र-चरित्र, गीत-गुजार आदि। इनकी कविताओ की भाषा सीधी सरल हिन्दी है। जैन धर्म के सिद्धान्तो के प्रचार के साथ-साथ इनकी रचनाओ मे समाजोद्धार और राष्ट्रोत्थान का स्वर भी मुखरित हुआ है। राष्ट्र की महत्ता स्वीकारते हुए वे कहते है—

"कुटुम्ब व्यक्ति से ऊचा है और जाति कुटुम्ब से बढ कर।
प्रान्त जाति से ऊपर लेकिन राष्ट्र पर सब न्योछावर।"

—(गीत-गुजार, पृ 212)

केवल मुनि की गीतात्मक पक्तियो मे पर्याप्त भाव निहित रहता है। अपनी बात को समझाने का उनका अपना विशिष्ट ढग है। वे ऐसे दृष्टान्त या उपमान चुनते हैं जिनका प्रभाव सीधा और गहरा पडता है। प्रस्तुत उद्धरणो मे से एक मे उन्होने चिन्ता को ऐसा बोझा माना है, जिसे ढोने पर कोई मजदूरी मिलने की सभावना नही है और दूसरे मे वे काले धन को ऐसी कागज की नाव मानते है, जिसके गलने मे कोई आशका नही की जा सकती। कितने स्पष्ट पर गहन अर्थ से पूर्ण है ये काव्याश —

(अ) सिर पै लगालो आनन्द की रोली, फेंक दो साथी चिन्ता की झोली,
जिसकी मज़दूरी भी मिले नही, ऐसे भार को ढोना क्या ?
—(कुछ गीत, पृ 15)

(आ) पापो की पूजी प्यारे, पचती नही कभी भी,
कागज़ की नाव पल मे डूबेगी, जब गलेगा।"
—(गीत-गुजार, पृ 56)

स्थानकवासी जैन परम्परा के कवियो की पक्ति मे कुछ और भी उल्लेखनीय हस्ताक्षर है, जैसे **रमेश मुनि, सुभाष मुनि, अशोक मुनि और मूल मुनि**। मेवाड़ भूषण श्री प्रतापमलजी के शिष्य रत्न श्री **रमेश मुनि** एक उदीयमान कवि हैं। "विखरे मोती, निखरे हीरे" उनकी महत्वपूर्ण काव्य कृति है, जिसमे उनकी काव्य सृजन प्रतिभा के सकेत मिलते हैं। उन्होने अपने ढग से अत्यन्त सरल भाषा मे वैराग्य शतक, सतयुग शतक, और कलयुग शतक की रचना की है। सौ-सौ छदो मे उन्होंने सतयुग और कलयुग की प्रवृत्तियो का सुन्दर चित्र समुपस्थित किया है। इसी प्रकार वीर-गुण इक्कीसी, पर्व इक्कीसी और प्रार्थना पच्चीसी उनके आध्यात्मिक भावो से ओत-प्रोत सुन्दर रचनाए है। जैन दिवाकर मुनि श्री चौथमलजी की शिष्य परम्परा मे **श्री सुभाष मुनि** और **श्री अशोक मुनि** ने भी अनेक रचनाए लिखी है। इन कवि-द्वय ने सगीत का अधिक सहारा लिया है। इनके गीतो मे जहा आध्यात्मिक प्रकाश की झलक है, वही सामाजिक उद्धार के स्वर भी विद्यमान है। नवकार चालीसा, जिन-स्तुति और सगीत सचय के रचयिता श्री अशोक मुनि की ये मानवतावादी पक्तिया द्रष्टव्य हैं —

"सूरज सब के घर जाता, पानी सब की प्यास बुझाता,
पवन जगत के प्राण बचाता, धरती तो है सबकी माता,
इसपै कोई अधिकार जताए कैसा है अज्ञान !
मानव मानव एक समान।
(—सगीत सचय, पृ 15)

श्री मूल मुनि ने "समरादित्य चरित्र, कुवलयमाला-चरित्र, अजापुत्र चरित्र, अम्बड चरित्र" आदि प्राचीन कथाओ को लेकर लघु चरित काव्य लिखे हैं। "अपना खेल . अपनी मुक्ति" गौतम पृच्छा के ढग पर लिखी गई कृति है जिसमे अच्छे-बुरे कर्म के पुण्यफल-पापफल की प्रश्नोत्तर शैली मे विवेचना की गई है।

श्रमणो की भाति काव्य के क्षेत्र मे जैन श्रावक कवियो का भी अमूल्य योगदान रहा है। वर्तमान काल मे सैकड़ो ऐसे काव्यधर्मी साहित्यिक हैं जिन्होने अपनी शब्द साधना से धर्म और समाज की महनीय सेवा की है। ऐसे श्रमणेतर श्रावक कवियो मे **श्री नैनमल जैन** का नाम आदर के साथ लिया जा सकता है। जालोर जिले मे साहित्य की दिव्य ज्योति को अपनी मूक गम्भीर साधना से प्रदीप्त रखने वाले नैनमल जैन ने करुणा सिंधु नेमिनाथ और

पतिव्रता राजुल, पचवर्णा, पवनाजना, विधुवन और नैन-काव्य-सग्रह जैसी अभिराम काव्य कृतियो के माध्यम से स्वधर्म और स्वभाषा के प्रति जो श्रद्धा-सेवा अर्पित की है, वह स्तुत्य है। कवि ने द्विवेदीकालीन इतिवृत्तात्मकता को उसकी समस्त सरसता और रोचकता के साथ जीवित रखा है। इस सदर्भ मे उनका खण्ड-काव्य 'पवनाजना' विशेष रूप से उल्लेख्य है। सती अजना के महिमामय चरित्र को उजागर करने वाली यह छोटी सी प्रवधात्मक काव्य रचना हिन्दी साहित्य की एक सरस और प्रभावी कविता है। यद्यपि कवि ने यत्र-तत्र वर्णनो में पारम्परिक प्रतीको और शैली को अपनाया है, पर प्रस्तुति इतनी सुगठित और ललित है कि वह नवता का रमणीय आनन्द भी प्रदान करती चलती है। काव्य में अजना का सौंदर्य-वर्णन हो अथवा विरह-वर्णन, दोनो ही स्थितियो मे कवि ने पारम्परिक शैली का निर्वाह किया है। प्रकृति के वे सारे उपादान जो सयोग मे सुख कर लगते है, विरह काल मे असीम दु ख के कारण बन जाते है। विरहिणी अजना की दशा भी वैसी ही है जैसी सूर, जायसी और विहारी की नायिकाओ की रही है। यथा—

"कोकिल का स्वर कटु लगता था जला रहे थे पुष्प पलाश,
मुकुलित आम्र टीसता मन को, विष-सा दाहक था मधुमास।
ज्येष्ठ मास की लू सम उसको तपा रही थी शीत बयार,
कर्णपुटो को कटु लगती थी मधुर मधुकरो की गुजार।"
—(पवनाजना, पृ 57)

'पवनाजना' कर्मवाद पर आधारित काव्य-रचना है। प्रथम रात्रि को पति की स्नेहानुकम्पा से वचित रह जाना, बारह वर्षों तक वियोग की अग्नि मे जलते रहना, फिर प्रिय-समागम का सुख उपलब्ध होना, गर्भवती होने के पश्चात् सास-ससुर और माता-पिता के घर से लाछित होकर निकाला जाना, अन्त मे प्रियतम का स्थायी रूप से मिल जाना—ये सब अजना के लिए कर्म के ही खेल थे। यथा—

कर्म सूत्र से बधे हुए सब कठपुतली से करते खेल,
किसके लिए रुदन व्याकुलता किसके लिए शत्रुता मेल ?
रे मन निस्पृह होकर झेलो, जो कुछ है कर्मो का खेल,
है प्रतिरोध अशक्त, अत मन कैसा मीन और क्या मेष।"
—(वही, पृ 51)

<u>डा नरेन्द्र भानावत</u> मानवतावादी विचारधारा के कवि है, जिनकी रचनाओ मे आशा, विश्वास, कर्म, पुरुषार्थ और मानवादर्श के तत्वो का जीवन्त समुच्चय मिलता है। अनेक साहित्यिक और धार्मिक ग्रथो के लेखक-सपादक डा भानावत की दो काव्य पुस्तके उल्लेखनीय है —"एक-आदमी, मोहर और कुर्सी" तथा दूसरी "माटी-कुकुम"। "आदमी, मोहर-और कुर्सी", मे उनकी नयी काव्य शैली मे लिखी गई यथार्थपरक रचनाए सगृहीत है और "माटी कुकुम" मे उनकी मानवतावादी रस-प्रधान रचनाए सकलित है। प्रस्तुत पक्तियो मे कवि ने करुणा, प्रेम, श्रम, मानवीय गरिमा और धार्मिक रूढियो की निरर्थकता को सुन्दर ढग से रूपायित किया है —

यदि नही पाव की धूलि भाल पर चढा सके,
यदि नही किसी की पीड़ा को उर बसा सके,
श्मशानो मे जलने वाली चीत्कारो को,

यदि नही प्रेमकी जलधारा मे बहा सके,
तो गगा मे डुबकी लेने से क्या होगा ?
तुम श्रम की पावन बून्दो मे गोते खाओ ।
क्या होगा पाषाणो के पूजन-अर्चन से,
मानव मूरत जब तक मन मे नही बसाओ ।

—(माटी कुकुम, पृ 17)

श्री शोभाचन्द्र भारिल्ल का भी कविता के क्षेत्र मे प्रशसनीय योगदान है । अपने "भावना" नामक काव्य सग्रह मे वे एक सशक्त और प्रभावशील कवि के रूप मे समक्ष आते है । आस्रव, सवर, निर्जरा, लोक आदि तत्वो का उन्होंने सुन्दर ढग से काव्यात्मक विश्लेषण किया है । इनकी कविताओ मे कर्मचालित नियति की चर्चा अनेक स्थानो पर देखी जा सकती है । अपने एक छन्द मे उन्होंने कर्म को मदारी और जीवो को बन्दरो का प्रतीक बना कर कर्मवाद की स्थापना को रूपकात्मक ढग से चित्रित किया है—

"कर्म और कषायो के वश होकर प्राणी नाना,
कायो को धारण करता है तजता है जग नाना,
है ससार यही, अनादि मे जीव यही दुख पाते,
कर्म मदारी जीव वानरो को हा, नाच नचाते ।" —(भावना, पृ 7)

उपर्युक्त कवियो के अतिरिक्त श्रमणवर्ग और गृहस्थवर्ग मे अनेक कवि है जो समय-समय पर अपनी काव्याराधना से मा भारती का भण्डार समृद्ध कर रहे है । श्रमण वर्ग के कवियो मे सर्वश्री सूर्य मुनि, मधुकर मुनि सौभाग्य मुनि 'कुमुद', उमेश मुनि 'अणु', सुमेर मुनि, मदन मुनि 'पथिक', भगवती मुनि 'निर्मल', मगन मुनि-'रसिक', रजत मुनि, सुकन मुनि, रमेश मुनि, अजित मुनि 'निर्मल', रग मुनि, अभय मुनि, विनोद मुनि, जिनेन्द्र मुनि, हीरा मुनि 'हिमकर', वीरेन्द्र मुनि, राजेन्द्र मुनि, शाति मुनि, पारस मुनि आदि तथा गृहस्थ वर्ग के कवियो मे सर्व श्री डा इन्दरराज बैद'[1], सूरजचन्द सत्यप्रेमी (डागीजी), प उदय जैन, रत्नकुमार जैन 'रत्नेश,' दौलतरूपचन्द भण्डारी, जीतमल चौपडा, ताराचन्द मेहता, डा महेन्द्र भानावत, चम्पालाल चोरडिया, विपिन जारोली, हनुमानमल बोथरा, मदनमोहन जैन 'पवि', जितेन्द्र धीग आदि के नाम उल्लेखनीय है ।

इस प्रकार हम देखते है कि राजस्थान की स्थानकवासी जैन परम्परा ने हिन्दी साहित्य के क्षितिज पर ऐसे अनेक नक्षत्रो को प्रस्तुत किया है जिन्होने अपनी शब्द-साधना के आलोक से धर्म और समाज के अभ्युदय का मार्ग प्रशस्त किया है । इन कवियो की काव्य-साधना के मुख्यत दो लक्ष्य रहे है—एक, अपनी विचारधारा का पोषण और दूसरा हिन्दी की सेवा । प्रस्तुत लेख मे विवेचित कवि इन दोनो ही लक्ष्यो की पूर्ति मे लगे हुए शताधिक कवियो का प्रतिनिधित्व करते है । ये केवल स्थानकवासी चिन्तन को ही व्याख्यायित-प्रतिपादित नही करते, हिन्दी कविता की विविध शैलियो, प्रयोगो और आयामो का भी स्वरूप दर्शन कराते है ।

---

1 इस लेख के लेखक डा इन्दरराज बैद ओजस्वी कवि होने के साथ-साथ सुधी समीक्षक और प्रबुद्ध विचारक भी हैं । "राष्ट्र मगल" नाम से इनका एक कविता सग्रह प्रकाशित हुआ है । इसमे कवि की मानवतावादी राष्ट्रीय भावना की सपोषक, लोकमगलवाही 41 कविताए सग्रहीत है । आवेगमयी भाषा और उद्बोधनभरा जागृति स्वर इन कविताओ की मुख्य विशेषता है । —सपादक ।

हिन्दी जैन काव्य-4

—डॉ. मूलचन्द सेठिया

आचार्य भीखणजी द्वारा प्रवर्तित तेरापथ की साहित्य साधना के अनेक आयाम है, जिनमे हिन्दी काव्य-रचना नवीनतम और अन्यतम है। प्रथमाचार्य भीखणजी और चतुर्थ आचार्य जीतमलजी राजस्थानी भाषा के महान् कवि थे, जिन्होने दर्शन और अध्यात्म के निगूढ तत्वो को काव्य के कलात्मक परिधान मे जन-मन के सम्मुख उपस्थित किया था। उनके काव्य मे प्रबोधन के स्वर है, जो व्यक्ति को प्रमाद से मुक्त कर आध्यात्मिक जागरण के नव-प्रभात मे आखे खोलने के लिए प्रेरित करते है। सस्कृत काव्य-रचना का श्रीगणेश जयाचार्य के युग मे हो गया था, यद्यपि इस धारा का वेगमय प्रवाह अष्टमाचार्य कालू गणी के युग मे दृष्टिगोचर होता है। परन्तु, हिन्दी काव्य-रचना का आरम्भ तो वर्तमान आचार्य तुलसी गणी की प्रेरणा से विक्रम की इक्कीसवी शताब्दी के साथ ही हुआ है। आचार्य श्री तुलसी की प्रेरणा और प्रोत्साहन से ही तेरापथ के साधु और साध्वी या समाज में अनेकानेक लब्धप्रतिष्ठ कवियो का साहित्य सृजन उपलब्ध होता है। आचार्यप्रवर ने हिन्दी को कई महत्वपूर्ण काव्य ही नही दिए है, अनेक प्रतिभाशाली कवि भी प्रदान किए है।

आचार्य श्री तुलसी के काव्य-सृजन को दो वर्गों मे विभक्त किया जा सकता है। प्रथम प्रबन्ध-काव्य (जिनमे 'भरतमुक्ति' और 'आषाढभूति' प्रधान है) और द्वितीय मुक्तक रचनाए जो 'अणुव्रत गीत' मे सकलित है। 'भरत मुक्ति' आचार्य श्री तुलसी का प्रथम प्रबन्ध काव्य है। आपके ही शब्दो मे 'प्रस्तुत काव्य-निर्माण के मुख्यतया दो उद्देश्य थे-1 साधु-सघ मे हिन्दी काव्य की धारा को प्रवाहित करना, 2 ऋषभपुत्र भरत चक्रवर्ति को काव्य-शैली मे प्रस्तुत करना।' भरत और बाहुबली का युद्ध एक ऐसा कथावृत्त है, जो पूर्णतया इतिहाससिद्ध नही होते हुए भी अपने आप मे भारतीय समाज-विकास के अनेक सूत्रो को समेटे हुए है। यह प्रबन्ध-काव्य तेरह सर्गों में विभक्त है और इसमें शान्त, वीर, रौद्र और बीभत्स आदि अनेक रसो का पुष्ट परिपाक हुआ है। इसमे जहा एक ओर राजप्रासादो मे चलने वाले छल-छन्दो का चित्रण किया गया है, वहा दूसरी ओर वन्य जीवन की शान्त मधुरिमा भी शब्दो मे साकार हो गई है। तेरहवे सर्ग मे भरत का चरित्र शरदाकाश की भाति नितान्त निर्मल होकर निखर उठा है, परन्तु पूर्ववर्ती सर्गों मे जीवन के अनेक आरोहो और अवरोहो का सविस्तार वर्णन किया गया है। इस काव्य मे जीवन की विविधता, विपुलता और विराट्ता का अद्भुत सगम हुआ है। युद्ध-वर्णन मे कवि की लेखनी ने कही-कही काव्योत्कर्ष के उत्कृष्ट उदाहरण उपस्थित किये है। क्रोधोद्धत बाहुबली का यह चित्र अपने आप में अपूर्व है—

> मदराद्रि विचलित हुआ अविचल धृति को छोड
> मानो अम्बुधि अवनि पर झपटा सीमा तोड।
> महा भयकर रूप से प्रकुपित हुआ कृतान्त
> लगता ऐसा सन्निकट है अब तो कल्पान्त।

'आषाढभूति' एक चरितात्मक प्रबन्ध-काव्य है। आचार्य आषाढभूति, जिनकी वक्तृता के प्रभाव से उज्जयनी नगरी झूम उठी थी, परिस्थितियो की विडम्बनावश छह सुकुमार बालको का वध कर डालते है। अन्तत उनका प्रिय शिष्य विनोद देवयोनि से आकर अपने पथभ्रष्ट गुरु को

प्रबोधित करता है और उनकी विचलित आस्तिकता को पुन' प्रतिष्ठित करता है। 'आषाढभूति' के सम्पादकों ने इसे 'नास्तिकता पर आस्तिकता की विजय का अभिव्यजक प्रवन्ध काव्य' कहा है, जो उचित ही है। तात्विक विषयों के प्रतिपादन मे कवि ने कही-कही दार्शनिक की मुद्रा धारण कर ली है।

आचार्य श्री तुलसी के ये दोनो प्रवन्ध-काव्य सामान्य प्रबन्ध काव्यो से भिन्न कोटि के हैं। इनमे साहित्यिकता की अपेक्षा लोकतात्विकता का प्राधान्य है। इनकी रचना नाना रागोपेत गीतिकाओ के सकलन के रूप में की गई है। ये काव्य पाठ्य से अधिक गेय हैं और इनमे वैयक्तिकता की अपेक्षा सामूहिकता का स्वर अधिक प्रवल है।

'अणुव्रत गीत' मे अनेक शैलियो और रागिनियो मे लिखी हुई बहुविध गीतिकाए सकलित हैं। केवल साहित्यिक दृष्टि से इनका मूल्याकन करना असमीचीन होगा क्योकि ये स्पष्टत जन-जागरण एव नैतिक प्रबोधन के प्रचारात्मक उद्देश्य से लिखी गई है। फिर भी, कतिपय गीतिकाओ में भावना और अभिव्यजना का स्वाभाविक सौन्दर्य दृष्टिगत होता है। यथा --

छोटी-सी भी बात डाल देती है बडी दरारें,
गलतफहमियो से खिच जाती आगन में दीवारे।
इसका हो समुचित समाधान तो मिट जाए व्यवधान रे।
बडे प्रेम से मिल जुल सीखे मैत्री मत्र महान् रे॥

आचार्य प्रवर ने अनेक गीतिकाओ मे अपने आराध्य देवो के प्रति भावभरी श्रद्धाजलिया अर्पित की है। वस्तुत आचार्य श्री तुलसी कवि होने के पूर्व एक युगप्रधान धर्माचार्य, महान् अध्यात्म-साधक और नैतिक जागरण के अग्रदूत हैं। भरतमुक्ति की भूमिका मे आपने लिखा भी है 'कविता की प्रसन्नता का प्रसाद पाने के लिए मैंने कभी प्रयत्न नही किया, उसका सहवर्तित्व ही मुझे हितकर लगा।'

'आर पार' मे सकलित सेवाभावी मुनि श्री चम्पालालजी की अधिकांश रचनाए राजस्थानी भाषा में हैं। परन्तु, इस संकलन मे कतिपय हिन्दी रचनाए भी हैं। चम्पक मुनि की रचनाओ मे उनका सरल-निश्छल व्यक्तित्व प्रतिविम्बित हुआ हैं। अभिव्यक्ति की सरलता मे भी एक स्वाभाविक सुन्दरता है—

उच्च शिखर से गल-गल कर, कल-कल कर निर्झर वहता
वुरा-भला यश-अपयश सुनता, विविध ठोकरे सहता।
तुम करो न मन को म्लान, मिलेंगे प्यासो को प्रिय प्राण
नीर ! तुम ढलते ही जाओ॥

मुनि श्री नथमलजी जैन दर्शन के एक दिग्गज विद्वान् और महान् अध्यात्म-साधक हैं। उन्होंने धर्म, दर्शन, अध्यात्म और न्याय विपयक अनेक ग्रन्थो का प्रणयन किया है। परन्तु, वे जीवन के अनतिगभीर क्षणों में अपनी मर्मानुभूतियो को काव्य के माध्यम से भी अभिव्यक्त करते रहे हैं। उन्होने स्वय लिखा है "कविता मेरे जीवन का प्रधान विषय नही है। मैंने इसे सहचरी का गौरव नही दिया। मुझे इससे अनुचरी का-सा समर्पण मिला है।" 'फूल और अगारे' तथा 'गूजते स्वर वहरे कान' मे मुनि श्री की कविताए सकलित हैं। मुनिश्री ने अपने काव्य के द्वारा उस सहजानन्द को अभिव्यक्त करने का प्रयास किया है, जो मानस की परतो के नीचे सोया हुआ रहता है। इस सहजानन्द के मूल में जीवन के प्रति समता का दृष्टिकोण है। इस समत्व वुद्धि से प्रेरित होकर ही आप यह कह सके हैं—

कोपल और कुल्हाडी को भी
साथ लिए तुम चल सकते हो।

जो कोपल और कुल्हाडी को साथ लेकर चल मकता है, उसे ही रजकण और हीरकहार तुल्य मूल्य के प्रतीत हो सकते हैं। मनीपी कवि की दृष्टि 'मैं' और 'तुम' की सकीर्ण सीमाओं का अतिक्रमण कर मानवीय अस्तित्व की चरम सार्थकता पर केन्द्रित है। परन्तु, इस चरमानुभूति के अन्तराल से यदा-कदा विचार के अनेक छोटे-बडे कण झाकते हुए प्रतीत होते हैं, जो जीवन की एक नई मूल्य-मीमासा प्रस्तुत करते हैं—

फूल को चाहिए कि
वह कली को
स्थान दे
कली को चाहिए कि
वह फूल को सम्मान दे
पतझड को रोका नही जा सकता
कोपल को टोका नही जा सकता।

मुनिश्री बुद्धमलजी दीर्घकाल से काव्य की सफल साधना करते रहे हैं। वे भावुक हैं, परन्तु उनकी भावुकता मे भी चिंतन का उन्मेष है। उनके स्वर की कोमलता जीवन की कठोरता के 'चैलेन्ज' को स्वीकार करने मे नही हिचकिचाती। भावाभिव्यक्त की चारुता के लिए उन्होंने सजग प्रयास नही किया है, परन्तु उनकी कविताओं का कला-पक्ष भी पर्याप्त परिपुष्ट है। मुनिश्री की कविताओं का प्रथम सकलन 'मन्थन' नाम से प्रकाशित हुआ था, जिसकी भूमिका यशस्वी कवि स्व रामधारीसिंह 'दिनकर' ने लिखी थी। द्वितीय सकलन 'आवर्त' है, जिसमे आपके भावचक्र की अनेक गति-भगिमाओं को लक्षित किया जा सकता है। आपकी जीवन-दृष्टि व्यष्टि और समष्टि के समन्वय पर आधारित है। अपनी काव्य-साधना के सम्बन्ध मे आपने लिखा है 'मुझे न केवल अपना ही सुख-दु ख इस ओर प्रेरित करता रहा है, अपितु, दूसरो का सुख-दु ख भी मेरी अनुभूति के क्षेत्र में आता रहा है, आपकी रचनाओं मे अद्वैतमूलक दार्शनिक चिन्तन भी है, परन्तु मूलत आप पौरुष के कवि हैं। सकल्प का सबल स्वर आपकी कविताओं को विशिष्टता प्रदान करता है—

मैं रुकू प्रतीक्षा को, इससे तो अच्छा है
तुम अपनी ही गति के क्रम मे त्वरता भरलो।
मैं तो बीहड मे भी एकाकी चल लूगा
तुम साथ चलो, न चलो, अपना निर्णय करलो॥

मुनिश्री नगराजजी का योगदान गद्य साहित्य को अधिक है। परन्तु आपने कतिपय मार्मिक कविताओं का भी सर्जन किया है। आपकी कविताओं मे साधक के लिए उद्बोधन है, प्रतिकूलताओं के साथ सघर्ष करते हुए निरतर आगे बढते रहने की प्रबल प्रेरणा है। परन्तु, मुनिश्री की कुछ ऐसी भी रचनाए हैं, जिनमे युग-भावना के अनुरूप न्याय की पुकार को प्रतिध्वनित किया गया है। इन पक्तियो मे युग-मानव का आहत अभिमान ही नही, उसकी न्याय की माग भी गूजती हुई सुनाई पडती है

रहने दो बस दान तुम्हारा
रहने दो सम्मान तुम्हारा।
आज मुझे तो न्याय चाहिए
अपने श्रम की आय चाहिए।

मुनिश्री चन्दनमलजी एक प्रभावशाली व्याख्याता हैं। उनकी वाणी का वैभव उनकी वक्तृता में ही प्रगट होता है। उनके द्वारा रचित 'शतदल की पखुडिया' मे पाच चरित है, जो व्याख्यान मे उपयोग करने के उद्देश्य से छन्दोवद्ध किए गए हैं। आपने अनेक लोकधुनो का प्रयोग करते हुए कविता मे विभिन्न रागिनियो का समावेश किया है। ये कविताए प्रबन्धात्मक होते हुए भी इनमे प्रबन्ध काव्य का वैविध्य और विस्तार नही है। घटना-प्रसार को सूक्त साकेतिकता के साथ प्रस्तुत करने का प्रयास किया गया है।

'कुछ कलिया कुछ फूल' मे मुनिश्री सागरमलजी 'श्रमण' की कविताए सकलित की गई है। 'श्रमण' मे सहज काव्य-प्रतिमा है और उन्होने अपनी काव्यानुभूतियो को रसमय अभिव्यक्ति प्रदान की है, जो अनायास ही हृदय को स्पर्श करती है। आपके काव्य मे जहा समर्पण के स्वरो का गुजार है, वहा जीवन के सघर्षो की चुनौती का सहज स्वीकार भी है। यह सघर्ष किसी वाह्य शक्ति के साथ नही, अपने ही मन के आवर्त-विवर्त के साथ है। कवि ने अपनी अन्तर्दृष्टि के द्वारा जीवन का एक समन्वित चित्र अकित किया है—

किन्तु, अभी तक जितना भी पढ ,सुन पाया हू,
मित्र, मिलन से घाव हृदय का खुलता भी है, मिलता भी है।
तेज पवन से रग मेघ का उड़ता भी है, घुलता भी है
आड़ बडे की लेकर छोटा पलता भी है, गलता भी है।

मुनि रूपचन्द्रजी एक लब्धप्रतिष्ठ कवि है, जिनके प्रथम काव्य-सकलन 'अन्धा चाद' ने ही उन्हे एक नए कवि के रूप में मान्यता प्रदान कर दी थी। 'अन्धा चाद' और 'कला अकला' की रचनाए अपने भाव-बोध और भाव-सप्रेषण की उभय दृष्टियो से नई कविता की समीपवर्तिनी हैं। परन्तु, मुनिश्री कविता के किसी वर्ग विशेष से परिवद्ध नही रहे हैं। उन्होने नई कविताओ के साथ ही रुबाइया भी लिखी है, जो 'खुले आकाश'' 'इन्द्र धनुप' और 'गुलदस्ता' मे सकलित हैं। मुनिश्री रूपचन्द्रजी काव्य मे सहज के उपासक हैं। उन्होने स्वय लिखा है—'लय-गीत, तुकान्त-अतुकान्त आदि को समान रूप मैंने सम्मान दिया है।' उनकी अनुभूतियो की सहजता उनकी अभिव्यक्ति में भी प्रतिविम्वित हुई है

आस्था की इन गायो को
जड़ता के खूटे से मत वाधो तुम
किन्तु भटकने दो इन्हें
बीहड की इन टेढी-मेढी पगडडियो में
और चरने दो इन्हें खुले आकाश मे
साझ होते-होते
ये स्वय घर का रास्ता ले लेंगी।

आपकी रुबाइयो मे रागात्मक सवेदन विशेष रूप से पाया जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि कवि ने लोक-जीवन के जिस कटु यथार्थ का साक्षात्कार किया है, उसने उसे काफी झकझोरा है। कही-कही कवि की अभिव्यक्ति काफी तीखी हो गई है

अव जरूरत नही सलीव पर लटकने की
खुद क्रॉस बन कर रह गई यह ज़िन्दगी।

मुनिश्री मोहनलालजी 'शार्दूल' के कई कविता-सग्रह प्रकाशित हुए है। 'पथ के गीत,' 'बहता निर्झर', 'मुक्त मुक्ता' और 'मुक्तधारा' मे श्री 'शार्दूल' की रचनाए सग्रहीत हैं। आपके

मुक्तक अपने रागात्मक संवेदन और सहजभाव-सम्प्रेषण के कारण हृदय को स्पर्श करते हैं। उनके व्यष्टि जीवन के सत्य के साथ ही समष्टि जीवन का यथार्थ भी अभिव्यंजित हुआ है

आदमी अभाव से ही नहीं, भाव से भी आक्रान्त हो जाता है
और कोरे दुःख से ही नहीं, सुख से भी आक्लान्त हो जाता है।
दुनिया का अजीब रहस्य बिल्कुल ही समझ नहीं आता,
आदमी तम से ही नहीं, उजालों से भी उद्भ्रान्त हो जाता है।

'अनायास' मुनिश्री सुखलालजी की कविताओं का संग्रह है। मुनि रूपचन्द्रजी ने इस संग्रह की रचनाओं का परिचय देते हुए जो कुछ लिखा है, वह सत्य के बहुत निकट है। 'अनायास की कविताएं अनायास ही लिखी हुई हैं। अत्यन्त सहज और अत्यन्त सादगीपूर्ण सज्जा अपने में लिए हुए हैं। स्पष्ट भाव और स्पष्ट भाषा, कहीं कोई घुमाव और उतार-चढ़ाव नहीं। जैसा सामने आया, उसे अत्यन्त अकृत्रिम भाव से शब्दों का परिधान दे दिया।' इस वक्तव्य की सार्थकता प्रमाणित करने को यह एक उद्धरण पर्याप्त होगा –

मील के पत्थर
नहीं करते मंजिल की दूरी को कम।
पर एक भ्रम
बनाए रखता है अपना क्रम।

मुनिश्री दुलहराजजी काव्य के मूक साधक हैं। उनकी कविताओं में अन्तर्वृत्तियों की सूक्ष्म गतिविधियों का आलेखन हुआ है। भाषा पर भी उनका अबाध अधिकार है, परन्तु न जाने क्यों उन्होंने अपनी रचनाओं को अद्यावधि अप्रकाशित ही रखा है।

'कालजयी' और 'परतों का दर्द' मुनिश्री विनयकुमारजी 'आलोक' की दो कृतियां हैं, जिनमें कुछ कविताएं और कुछ क्षणिकाएं संकलित की गई हैं। इन रचनाओं के सम्बन्ध में प्रख्यात आलोचक डा. विजेन्द्र स्नातक का मत उल्लेख्य है 'अनुभव और चिंतन से संग्रथित होकर जो विचार-कण मुनिश्री के मन में उभरा है, वही कविता बना है। मुनिश्री अन्तःस्फूर्त कवि हैं।' 'परतों का दर्द' में कवि अभिव्यक्ति की नई भंगिमा को ग्रहण करता प्रतीत होता है –

जीवन बज-बज कर
घिस जाने वाला रिकार्ड
खरखराता स्वर ही
इसकी नियति है।

मुनिश्री मणिलालजी ने कुछ क्षणिकाएं लिखी हैं जो अपनी सूक्त सांकेतिक अभिव्यक्ति के कारण काफी प्रभावशाली बन पड़ी हैं :—

महानता
समुद्र के रूप में
बूंद का अस्तित्व
हीनता
बीज के बदले में
वृक्ष का अहम्।

मुनिश्री वत्सराजजी की कविताओं के दो संग्रह 'उजली आखें' और 'आख और पाख' के नाम से प्रकाशित हुए हैं। आपकी दृष्टि में 'सहज अनुभूति की सहज अभिव्यक्ति ही काव्य की परिभाषा है।' वत्स मुनि की कविताए अपनी इस कसौटी पर खरी उतरती हैं, परन्तु उनकी अनुभूति मे जिज्ञासामूलक चितन भी सम्मिलित हैं। जीवन के प्रति एक उद्दाम आस्था ने आपको प्रतिकूलताओ के साथ सघर्प करने की शक्ति प्रदान की है .—

गरल की प्यालिया
कितनी ही विकराल क्यो न हो ?
मधुरता की मीरा
जव उन्हें पीएगी
मधुधार वना लेगी ।

मुनिश्री मानमलजी चिरकाल से कविताए और चतुष्पदिया लिखते रहे हैं। उनकी रचनाए विषय-वैविध्य की दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं। राजस्थानी के कई सिद्धहस्त कवि भी हिन्दी मे यदा-कदा लिखते रहते हैं। मुनि मधुकरजी ने मधुरस्वर ही नही पाया है, उनके 'गुजन' के गीत भाव और भाषा के माधुर्य से ओत-प्रोत हैं।

तेरापंथ के साधु-समाज मे ही नही, साध्वी-समाज मे भी काव्य-साधना का क्रम वर्षो से चल रहा है। 'सरगम' की भूमिका मे स्वय आचार्यश्री तुलसी ने लिखा है, 'भावना नारी का सहज धर्म है। अत. नारी ही वास्तविक कवि हो सकती है।' तेरापथ के साध्वी समाज ने आचार्य प्रवर इस उक्ति को अपनी प्रखर साहित्य-साधना के द्वारा सत्य सिद्ध कर दिया है। अनेकानेक साध्विया काव्य-क्षेत्र मे अपनी प्रतिभा का परिचय दे रही हैं। साध्वी प्रमुखा श्री कनकप्रभाजी स्वय एक रससिद्ध कवयित्री है, जिनकी कविताओ का प्रथम सकलन 'सरगम' के नाम से प्रकाशित हुआ है। वस्तुत कनकप्रभाजी की कविताए उनके 'भावो का इतिहास' है। उन्होने भाषा की सप्रेषण-शक्ति पर प्रश्नचिन्ह लगाते हुए लिखा है .—

आज स्वय मे भावो का लिखने बैठी इतिहास,
पर भापा पहुचाएगी क्या उन भावो के पास ?

परन्तु, भापा ने वहुत दूर तक साध्वीप्रमुखाश्री का साथ निभाया है। उनकी भाषा प्रासादिक होते हुए भी सूक्ष्म भाव-छायाओ को ग्रहण करने मे सर्वथा समर्थ है। सहज सरल शब्दावली मे उन्होंने जीवन के गहरे रहस्यो को उद्घाटित करने मे सफलता पाई है.—

सत्य एक है लेकिन कितनी हुई आज व्याख्याएं
मूल एक पादप की फिर भी है अनगिन शाखाए ।

साध्वीश्री मजुलाजी के तीन कविता सग्रह प्रकाशित हुए है—'अधखुली पलके', 'जलती मशाल' और 'चहरा एक हजारो दर्पण'। मजुलाजी ने अपने काव्यदर्पण में मानव-मन की अनेक स्थितियो को प्रतिविम्बित किया है। कवयित्री में अपने आप के प्रति अटूट विश्वास है, जो उसे सघर्षो मे शक्ति और सम्वल प्रदान करता है—

जानते हो स्वय का विश्वास ही जय तब जिलाता मारता है।
समझ लो विष का सुधा फिर तो वही सब एक बार उवारता है ॥

मंजुलाजी के काव्य में कहीं-कहीं वे रहस्यात्मक संकेत भी प्राप्त होते हैं जिनके मूल में मानव की अपने आपको जानने की जिज्ञासा होती है। आत्मोपलब्धि के चरणों में कवयित्री ने इस चिर पुरातन सत्य का नवान्वेष किया है—

हम भी भोले हिरणों की ज्यों बहुत बार धोखा खाते हैं
जिनको पाना बहुत सरल है उनके लिए उलझ जाते हैं।
सूई जो खो गई सदन में बाहर कैसे मिल पाएगी ?
जिसको हम ढूंढते युगों से वह अपने में ही अन्तर्हित।।

'साक्षी है शब्दों की' साध्वी संघमित्राजी की कविताओं का संकलन है। कवयित्री के ही शब्दों में 'अपने भावों और कल्पनाओं को शब्दों के सांचे में ढाल कर कविताओं की काया को गढ़ा गया है।' इसमें कुछ गीतिकायें हैं और कुछ मुक्त छन्द में लिखी हुई कविताएं। साध्वी संघमित्राजी न किसी वाद से प्रतिबद्ध हैं और न उनका कोई वैचारिक आग्रह है। साधना-पथ की अनुभूतियों को अकृत्रिम अभिव्यक्ति प्रदान करने के अतिरिक्त कवयित्री ने युग-जीवन की यथार्थता को भी चित्रित करने का प्रयास किया है। निकट के यथार्थ को छोडकर आज का मानव सुदूर स्वप्नों के पीछे दौड़ रहा है—

वसुधा का विस्तार बहुत कोई बसना भी जाने
लगा रहा इन्सान किन्तु चन्दा पर नए निशाने
मोर पपीहे आकाशी बूंदों पर प्राण गंवाते।

साध्वी सुमनश्री जी के 'सांसों का अनुवाद' में जीवन और जगत के रहस्यों को अनुभूति के धरातल पर लिपिबद्ध किया गया है। आपकी काव्य-दृष्टि अन्तर्मुखी है और आप बाह्य-जीवन का चित्रांकन भी अपने अन्तर की ही रंग-रेखाओं से करती हैं। इस संग्रह की सभी कविताओं का एक ही रूपाकरण है और अपनी भाषा को एक परिष्कृत सौन्दर्य प्रदान करने की दिशा में सुमनश्रीजी विशेष सक्रिय रही हैं—

धूल भरा आकाश
हो जाता है धूप छांह का कभी-कभी आभास
दिन घटना चक्रों के रथ हैं
थामे हाथ क्षणों को श्लथ हैं
दौड़ रहा है अश्व समय का
ले जीवन का श्वास।

आचार्य श्री तुलसी के धवल समारोह के अवसर पर सोलह साध्वियों की कविताओं का एक प्रतिनिधि संकलन 'सीप और मोती' के नाम से प्रकाशित हुआ था। इस संग्रह की रचनाओं को पढ़कर ही यह प्रतीति होती है कि ये कवयित्रियां अगर वाग्देवता की आराधना करती रही तो एक दिन साहित्य-जगत् को अपनी अमूल्य भेंट अर्पित कर सकेंगी। इन कविताओं में सुख-दुःख के प्रति समभावना, लक्ष्य के प्रति अटूट विश्वास, साधना—मार्ग की प्रतिकूलताओं को हंसते हंसते सहन करने का संकल्प और जीवन के प्रति एक उदात्त दृष्टिकोण की अभिव्यक्ति हुई है। कुछ कविताओं के उद्धरण अप्रासंगिक नहीं होंगे—

मेरा प्रेय मिले मुझको यह जब जब सोचा
तब तब बाधाओं ने आकर उसको नोचा

किन्तु प्राण का मोह त्याग जो निकल पड़ा है
उस जन को बाधाओं ने है कब कब रोका ?
—साध्वी श्री नगश्री

मुझे न ज्ञात सहजतया क्यों प्रिय लगता संघर्ष ?
और उसी में पाका करती मैं अपना चिरहर्ष ।
—साध्वीश्री कमलश्री

युग-युग चलती रहूं इसी पथ, ले संयम का भार ।
थकने का क्या प्रश्न ? अगर कुछ है चलने में सार ।।
—साध्वीश्री राजीमती

हिन्दी कविता को तेरापथ की देन व्यापक और बहुमुखी है । तेरापथी साधु और साध्वियो के काव्य का अध्ययन किया जाए तो हिन्दी कविता की प्राय सभी शैलियो और प्रवृत्तियो को इसमे खोजा और पाया जा सकता है । एक ओर आचार्यश्री तुलसी के प्रबन्ध काव्य है तो तो दूसरी ओर मुनिश्री नथमलजी, मुनिश्री रूपचन्द्रजी की नई कविताए हैं, जो अपनी भावाभिव्यक्ति की नई भगिमा के कारण ही नही, अपने नए भावबोध के कारण भी अधुनातन कविताओ मे सम्मिलित की जा सकती हैं । गीत और मुक्तक लिखने वाले कवियो की सख्या सबसे अधिक है । परन्तु मुनि विनयकुमार 'आलोक' और मुनि मणिलाल ने लघु कविताओ के क्षेत्र मे भी नए प्रयोग किए हैं । सभवत कुछ कवि अकविता के आन्दोलन मे भी प्रभावित हुए हो । परन्तु, इस सम्पूर्ण वैविध्य मे एक समानसूत्रता भी पाई जाती है । कथ्य की दृष्टि मे इस सपूर्ण काव्य-साहित्य में नैतिक मूल्यो की प्रतिष्ठा है और व्यक्ति को 'असयम' से 'सयम' की ओर ले जाने की प्रवृत्ति का प्राधान्य है । किसी भी कवि ने मानव की क्षुद्र कामनाओ और वासनाओ को नही उभारा है और नही जीवन के प्रति कोई अनुदात्त दृष्टिकोण ही उपस्थित किया है । इस काव्य-सृजन का लक्ष्य राग-रजन नही, मनुष्य का नैतिक उन्नयन और आध्यात्मिक उन्मेष है । इस काव्य का महत्व इस बात मे है कि इस महत् उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए उपदेश और प्रवचन की मुद्रा को अपना कर केवल जीवन की सतह पर उतारने का प्रयास नही किया गया है । कवियो ने जीवन के अन्तस्तल में अवगाहन कर गहन भावानुभूतियो का स्वय साक्षात्कार ही नही किया है, उन्हे सहृदयो के लिए शब्द के माध्यम से सप्रेषित भी किया है । अनेक कवियो और कवयित्रियो का उल्लेख नही किया जा सका है, क्योकि लेखक के परिचय की अपनी सीमाए हैं । इसे किसी के प्रति उपेक्षा और अवज्ञा का सूचक नही माना जाना चाहिए ।

डा मूलचन्द सेठिया
के 7, मालवीया मार्ग
सी–स्कीम,
जयपुर (राजस्थान)

हिन्दी पद्य साहित्य एवं साहित्यकार—5

पं. भंवरलाल न्यायतीर्थ

राजस्थान में हिन्दी पद्य साहित्य का निर्माणकाल 100-150 वर्ष पूर्व मे प्रारम्भ होता है। इसके पूर्व राजस्थानी की विभिन्न शाखाओ मे जैसे राजस्थानी, ढूंटारी, मेवाती आदि भाषाओ मे लिखा जाता रहा था। यद्यपि सवत् 1900 के पूर्व निवद्ध कृतियो, काव्यो एव मुक्तक रचनाओ मे हिन्दी का पुट मिलता है लेकिन हम उन्हे पूर्ण हिन्दी की कृतिया नही कह सकते। ज्यो-ज्यो खडी बोली का प्रचार-प्रसार होता गया और गद्य-पद्य मे रचनाए होने लगी तो जैन कवियो ने भी विभिन्न विषयो मे लिखना प्रारम्भ कर दिया। दिगम्बर जैन कवियो ने आत्मा-परमात्मा के अतिरिक्त सामाजिक, राष्ट्रीय एव साहित्य के अन्य अगो पर भी बहुत लिखा है। हिन्दी पद्य साहित्य के विकास मे उन्होने अपना अच्छा योगदान दिया है। सारे राजस्थान मे विशेषत जयपुर, कोटा, बूदी, अलवर, भरतपुर, सीकर व उदयपुर जैसे प्रदेशो में अनेक कवि हुए जिन्होने हिन्दी भाषा मे छोटी-बडी अनेक रचनाए की। लेकिन साहित्य निर्माण के इस काल का इतिहास मे कोई उल्लेख न होने के कारण अभी तक न किसी कवि का और न उसकी कृति का कोई मूल्याकन हो सका है। इसलिये ऐसे कवियो का आज भी पूरा परिचय उपलब्ध नहीं हो सका है। प्रस्तुत लेख मे ऐसे ही कुछ कवियो का परिचय प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है

1. पं. महाचन्द

सीकर निवासी प महाचन्दजी हिन्दी गद्य व पद्य के अच्छे लेखक थे। सम्वत् 1915 मे इन्होने त्रिलोकसार पूजा लिखी जो अत्यधिक लोकप्रिय है। तत्वार्थ सूत्र की हिन्दी टीका इन्होने की तथा अनेक भक्ति परक पद लिखे। आपके पदो की भाषा हिन्दी है परन्तु इस पर राजस्थानी का भी प्रभाव है। इन्होने प्रत्येक पद मे नाम के साथ "वुध" शब्द का प्रयोग किया है।

ईश्वर के दर्शन बिना कवि का एक क्षण भी कटना कठिन लगता है —

कैसे कटे दिन रैन, दरश विन
जो पल घटिका तुम विन वीतत
सो ही लगे दुख देन दरश बिन

कवि मुक्ति जाना चाहता है, पर कैसे जाय-मार्ग तो भूल रहा है —

मैं कैसे शिव जाऊ रे डगर भुलावनी,
बालपने लरकन सग खोयौ, त्रिया सग जवानी।
वृद्ध भयो सब सुधि गयी भजी जिनवर नाम न जानी

अत जिनवाणी का अध्ययन करो—

जिनवाणी सदा सुखकारी जानि तुम सेवो भविक जिनवानी।

2. थानसिंह अजमेरा

अजमेरा जयपुर मे 20 सदी के पूर्वार्द्ध मे हुए थे। थानविलास इनकी प्रमुख कृति है जिसमे इनकी विविध रचनाओ का सग्रह है। कवि की भाषा और शैली दोनो ही अच्छे स्तर की है।

संवत् 1934 में इन्होंने बीस तीर्थंकर पूजा लिखी। चेतन आत्मा को भ्रमर की उपमा देते हुये कवि ने एक भावपूर्ण पद लिखा है—

चेतन भोग पर मे उलझि रहा रे
छक मद मोह मे अयानो भयो डोले।

3. जवाहरलाल शाह

ये भी जयपुर के निवासी थे तथा 20वी सदी मे हुए थे। वि. सं 1952 मे इनका स्वर्गवास हुआ। इनके द्वारा रचित चेतनविलास, आलोचना पाठ, वीस तीर्थंकर पूजा, समुच्चय पूजा आदि पद्यमय रचनाए मिलती हैं। हिन्दी मे अनेक पद भी लिखे हुये मिलते हैं —

ऐसा जग मोहि नजर नहि आवे, पर तज अपनी अपनावे।
जड पुद्गल मे आप भिन्न लखि, चेतन गुण कर भावे॥

4. चैनसुख लुहाडिया

इनका जन्म जयपुर मे संवत् 1887 में और स्वर्गवास स. 1949 मे हुआ था। ये हिन्दी के अच्छे कवि थे। आत्मवोध मे दर्शन दशक, श्रीपति स्तोत्र, कई पूजाए तथा फुटकर रचनाएं पर्याप्त सख्या मे उपलब्ध होती है। लुहाडिया जी को समस्या पूर्ति का शौक था।

मगमरदाने की शीर्षक समस्या पूर्ति देखिये —
राची जिनवच प्रतीत वांची सब तत्वरीत
स्वातम अभीत जिन चाहे चिद बाने की,
चाह पाकशासन, सुरासन की रही नाहि,
कौन गिनती है मुकरेश राव राने की।
उखरि गये मदन कुभाव के झाडा सब
फहरे है जिनन्द की पताका जीत पाने की,
ठोकि भुजदण्ड रण भूमि मे पछारचो मोह
शुक्ल ध्यान चण्डा ये तग मरदाने की।

5. पं. चिमनलाल

ये वीसवी शती के प्रारम्भ के कवि थे। स 1969 तक मौजूद रहने की वात कई लोगो से सुनी है। अर्हन्नीति और प्रायश्चित ग्रन्थो का इन्होंने हिन्दी अनुवाद किया है। इनके अनेक फुटकर पद्य भी मिलते हैं। ससार की दशा का वर्णन करते हुए कवि कहता है —

जगत मे कोई न दम की वात।
मूठी बाधे आया बन्दे, हाथ झुलाये जात।
धन यौवन का गर्व न करना, यह नहि जावत साथ।
देख संभल प्रवल रिपु सिर पर काल लगावे घात।
कोई बचाय सके नहि उसमे पिता मित्र अरु भ्रात।
छोड़ असत्य चोट पर - वनिता ये नित ठग ठग खात।

6. आनन्दोपाध्याय

पूरा नाम श्री आनन्दीलाल जैन है। जन्म जयपुर मे वि स 1970 तथा स्वर्गवास वि. स. 2000 मे हुआ था। यद्यपि इन्होंने शास्त्री की परीक्षा उत्तीर्ण की थी लेकिन उपाध्याय

परीक्षा पास करने के बाद ही ये कविताएं करने लग गये थे और अन्त तक अपना नाम आनन्दोपाध्याय ही लिखते रहे। अनेक पत्रों मे आपकी कविताएं छपी हैं।

विपदाओं मे सदा क्लान्त हो, लगता जीवन भार अभो।
कभी रहसि में रो लेता तू, मन भावन को मार दियो।
नाथ! उबारो द्रुततर मुझको, देख रहा सुख का सपना।
अन्तस्तल मे शान्ति प्राप्तकर आखिर विश्व समझे अपना।

7. पार्श्वदास निगोत्या

20वीं शती के पूर्वार्द्ध के इस कवि ने अनेक पद लिखे है। जो हाल ही मे पार्श्वदास पदावलि के नाम मे प्रकाशित हुए है। इसमे विभिन्न रागो मे 423 पद है हिन्दी के भी और ढूढारी के भी।

मन प्राणिधि की वा सगुण तुम दृष्टि हो,
हो द्रवित आसू बहाते तुरन्त ही, दूसरो के दर्द दुख को देखकर,
पर रहा तुमसे जाता नही, घोर अत्याचार को अवलोक कर।

8. श्री अर्जुनलाल सेठी

जन्म जयपुर मे 9 सितम्बर 1888। स्वर्गवास 22 सितम्बर 1941। शिक्षा बी.ए. 1902 मे। होश सभालने के साथ ही देश प्रेम के दीवाने हो गये। राजनैतिक अपराध मे जेल के सीकचो मे बहुत समय गुजरा। ये पक्के समाज सुधारक, अद्भुत विद्वान् तथा प्रसिद्ध क्रातिकारी थे। राजस्थान मे कांग्रेस के चोटी के नेता बने। उन्होंने वर्धमान विद्यालय की स्थापना की। ये पूज्य गाधी जी के सहयोगी रहे। हिन्दी के अनन्य भक्त थे। आपने महेन्द्रकुमार नाटक, मदन पराजय नाटक और पारसयज्ञ पूजा लिखी तथा इनके अतिरिक्त और भी कितनी ही रचनाए लिखी। देश की दुर्दशा पर दो आसू बहाते हुए कवि ने अपने निम्न विचार व्यक्त किये —

पडे है घोर दुखो मे सभी क्या रक और राजा,
हुई भारत की यह हालत नही है आब अरु दाना।
धर्म के नाम पर झगडे यहा पर खूब होते है,
बढाके फूट आपस मे दुखो का बीज बोते है।
निरुद्यमी आलसी हो, द्रव्य अपने आप खोते है,
हुआ है भोर उन्नति का यह भारतवासी सोते है।

और फिर देशवासियो मे जोश भरते हुए कवि प्रेरणा देता है —

सभालो अपने घर को अब जगादो बूढ़े भारत को,
यह गुरु है सर्व देशो का, उठो प्यारो उठो प्यारो।
जहा के अन्न पानी से बनी यह देह हमारी है,
करो सब उसपै न्यौछावर, उठो प्यारो उठो प्यारो।

9. पं. चैनसुखदास न्यायतीर्थ

प्राकृत एव सस्कृत साहित्य के समान पडित जी हिन्दी के भी उच्च कोटि के विद्वान् थे। पडित जी कवि हृदय थे। दार्शनिक, भक्तिपरक व आध्यात्मिक कविताये लिखने मे आपकी

विशेष रुचि थी। आपकी सैकडो कवितायें जैन पत्रों के अतिरिक्त सुधा, माधुरी, अर्जुन, विश्ववाणी, कल्याण, विश्वामित्र, रत्नाकर जैसे अनेक हिन्दी के चोटी के पत्रो मे प्रकाशित हुई। पडित जी की कविताओ का सग्रह 'दार्शनिक के गीत' नाम से प्रकाशित हो चुका है। कवि की भवित मे भी दार्शनिकता हैं। एक कविता मे उनसे सनातन सत्य मे मिलाने की प्रार्थना निम्न शब्दो मे की है—

ज्ञान के आलोक मे जहा वासताए भाग जाती,
जो निरापद चिन्तनाए जहा सदा विश्राम पाती।
वह निरामय धाम भगवान् है कहा मुझको वतादो,
उस सनातन सत्य मे है नाथ तू मुझको मिलादो।

एक अन्य कविता मे कवि ने दार्शनिकता के द्वार की ओर सकेत करते हुए लिखा है कि—

दु खमय क्षण भगुर ससार, कौन साधन से होगा पार,
प्रतिक्षण जीवन का यह लक्ष्य, दार्शनिकता का उत्तम द्वार।

कवि एक ओर अध्यात्म और दर्शन की चर्चा करता है तो दूसरी ओर ससार की वस्तुस्थिति को ओझल नही करता। सारा ससार पैसे के पीछे क्यो दौडता है ? इसका उत्तर कवि ने निम्न शब्दो मे दिया है—

नर से नर के पेट पुजाता, विपुल राशि मे जब तू आता।
नाम धाम सब काम वदल जाते, तेरे आ जाने से, होती क्षमता ओ पैसे।

कवि ने किसी एक विषय पर बृहत काव्य ग्रन्थ लिखने के स्थान पर छोटी-छोटी कविताओ के माध्यम से वहुत उत्तम विचार प्रस्तुत करने का प्रयास किया है।

10. चादमल जैन 'शशि'

जन्म वगवाडा ग्राम (जयपुर) मे 13-6-1910 को, स्वर्गवास 7-2-74 को, शिक्षा साहित्यरत्न, एम ए हिन्दी व संस्कृत, वी टी। इनकी वचपन से ही कविता करने मे रुचि थी, शशि जी का पूरा जीवन अध्यापन के रूप मे वीता था। आपकी कवितायें जैन वन्धु, जैन दर्शन आदि अनेक पत्रो मे प्रकाशित हुई है। इन कविताओ मे प्रकृति वर्णन के साथ ही उद्बोधक-तत्व अच्छी सख्या मे मिलते है। निर्धन की यातना वताते हुए कवि लिखता है—

अहह ! निर्धनते ! तव पाश मे, फस न पा सकता नर शान्ति है।
मलिन है, रहता मन सर्व का, विकलता वढती दिन रात है।

11, मास्टर नानूलाल भांवसा

जयपुर में जन्म, चैत्र कृष्णा 4 विक्रम सवत् 1950, स्वर्गवास पौष कृष्णा 11 स. 2002 अध्ययन इटर तक। गणित के विशेषज्ञ। वडे सौम्य और शान्त प्रकृति के थे। खरताल हाथ मे लेकर भजन गाते तो आत्मविभोर हो जाते। भक्तिपरक आध्यात्मिक कई पद आपने लिखे हैं। आपके छोटे भ्राता भाई छोटेलाल जी पहले क्रातिकारी थे जो लार्ड हार्डिंग पर बम फेंकने के सिलसिले में गिरफ्तार हुए। पीछे गाधीजी के अनन्य भक्त बने और आजीवन गाधीजी के साथ रहे। मास्टर साहव के भजनो की एक पुस्तक 'नानू भजन सग्रह' प्रकाशित हो चुका है। इस सग्रह मे सभी भजन आध्यात्मिक और भक्तिपरक हैं।

है यह ससार असारा, भवसागर ऊंडी धारा,
इस भवर मे जो कोई रमता, वह लहे न क्षण भर क्षमता ।

12. पं. चौथमल शर्मा

जयपुर के रहने वाले थे । विक्रम की बीसवी शती के उत्तरार्द्ध में इनका जन्म हुआ । दिगम्बर जैन पाठशाला जयपुर (वर्तमान कालेज) में अध्यापक होने से ये जैनो के सम्पर्क में काफी आये । विभिन्न राग-रागिनियो मे आपने कई जैन कथानको को गूथा । चारुदत्त, महीपाल, सुखानन्द, मनोरमा, व्रजदन्त, नीली, धन्यकुमार, विष्णु कुमार, यमपाल चाण्डाल आदि कितने ही वर्णन इनके लिखे हैं । शातिनाथ भगवान की स्तुति करता हुआ कवि लिखता है—

श्री शातिनाथ त्रिभुवन आधार, गुण गुण अपार, सोहे निर्विकार,
कल्याणकार जग अति उदार, म्हे उन्ही को शिर नावो नावो नाथ ।

13. पं. इन्द्रलालजी शास्त्री

जयपुर में जन्म 21-9-1897 । स्वर्गवास सन् 1970 । शिक्षा साहित्य शास्त्री तक । शास्त्री जी सस्कृत व हिन्दी के अच्छे विद्वान् थे साथ ही अच्छे वक्ता, लेखक व कवि । धर्म सोपान, आत्म वैभव, तत्वालोक, 'पशु वध सबसे बडा देशद्रोह' आदि स्वतन्त्र पद्यमय रचनाए तथा भक्तामर स्तोत्र, एकीभाव स्तोत्र, कल्याण मन्दिर, विषापहार, भूपाल चतुर्विंशति, आत्मानुशासन, स्वयभू स्तोत्र, सामायिक पाठ आदि का हिन्दी अनुवाद किया । अनेक फुटकर कवितायें भी लिखी । कवि की कविता का एक उदाहरण इस प्रकार है—

जो आशा के दास हैं वे सब जग के दास है,
आशा जिनकी किकरी उनके पग जगवास ।
जो चाहो जिस देश का कल्याण अरु उत्थान,
करो धर्म का अनुसरण, समझो धर्म प्रधान ।

14. जवाहिरलाल जैन

इनका जन्म जयपुर मे दिसम्बर 1909 मे हुआ । इनके पिता श्री जीवनलाल थे । शिक्षा एम ए इतिहास व राजनीति शास्त्र में, हिन्दी में विशारद । श्री जैन गद्य और पद्य के अच्छे लेखक हैं । गद्य की अनेक रचनाये छप चुकी है । पद्य की देखने मे नही आयी । किन्तु फिर भी समय समय पर कई पत्रो मे इनकी कवितायें प्रकाशित हुई है । ससार को छलिया बताते हुए कवि लिखता है—

कैसा है छलिया ससार, किसने पाया इसका पार,
फूल फूल कर बल खाते हैं, हसते हैं वे प्यारे फूल,
मधुप गान करते आते है, जाते है मधु प्यालो मे झूल
वायु का झोका आता है, भ्रमर झटपट उड जाता है,
फल सोता मिट्टी की गोद टूट जाता सपनो का तार ।

15. श्री अनूपचन्द न्यायतीर्थ

इनका जन्म जयपुर में दिनाक 10-9-1922 को हुआ । ये पं. चैनसुखदास जी के प्रमुख शिष्यो में गिने जाते है । अनेक ग्रन्थो के सम्पादन में डा. कस्तूरचन्द कासलीवाल के

सहयोगी है। आप एक आशु कवि भी है। आपकी कविताओ की भाषा सरल व माधुर्य लिए हुए है। यद्यपि इनकी कविताओ का सग्रह रूप मे तो अभी तक प्रकाशन नही हुआ किन्तु 300 से अधिक कविताए आजतक जैन सदेश, अनेकान्त, वीरवाणी आदि पत्रो मे छप चुकी है। भारत वाहुवलि सवाद, वाहुवलि वैराग्य, (खण्डकाव्य) इनकी सुन्दर कृतिया है। रवीन्द्र नाथ टैगोर द्वारा लिखित गीताजली के करीव 60 गद्याशो का आपने पद्य मे सुन्दर अनुवाद किया है। इसके अतिरिक्त काजीवारस, चन्दन एव रोहिणी व्रत की पूजा लिखी है जो प्रकाशित हो चुकी है। गीताजली के एक गद्याश का एक अनुवादित पद्य इस प्रकार है—

दूर कर यह धूप खेना, और फूलो को चढाना,
तोड व्यर्थ समाधियो को क्योकि वह उनमे मिले ना।
क्या विगडता ! अगर तेरे वस्त्र मैले औ फटे है,
वह मिलेगा पूर्व श्रम के स्वेद कण मे चमचमाता।
वह नही यो नजर आती।

अकेले भगवान् महावीर और इसके सिद्धान्तो पर कवि ने 60 से भी अधिक कविताओ मे बडा सुन्दर भावार्थ डाला है। भगवान् महावीर के सदेश का निचोड कवि के शब्दो मे पढिये—

ये सत्य अहिसा ब्रह्मचर्य जीवन को उच्च वनाते हैं,
इच्छा निरोध ही उत्तम लय भावो मे जाग्रति लाते है।
वन राग द्वेश का भाव हटे कर्मो का बन्धन कटता है,
भगवान् वनाये न वनता भगवान् स्वय ही वनता है।

कवि के साथ ही प अनूप चन्द अच्छे लेखक, अन्वेषक तथा पुरातत्व विशेषज्ञ है। आपने राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो की ग्रन्थ सूची सम्पादन का अच्छा कार्य किया हैं।

16. प्रसन्न कुमार सेठी

कवि का जन्म 14 जुलाई 1935 मे जयपुर मे हुआ। शिक्षा एम काम व विशारद। ये युवा कवि, लगन शील सेवाभावी व्यक्ति है। इनका रहन-सहन सादा व शरीर पतला दुबला है। अध्यात्म में डूवा हुआ इनका व्यक्तित्व सहज मे ही देखा जा सकता है। ससार की असारता का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

किसका घोडा, किसका हाथी, किसकी मोटर रैल है,
वही निराकुल है जिसने समझा हो, जीवन खेल है।

कवि की हर रचना आध्यात्मिकता से ओत-प्रोत है। कवि ने सैकडो कवितायें लिखी है। प्रेरणा नामक प्रथम व द्वितीय पुष्प, सोलह कारण भावना, व दश लक्षण नामक पद्य रचनाये प्रकाशित हो चुकी है। कवि अलौकिक प्रतिभा का धनी है तथा ये अपनी कविताओ का सस्वर पाठ करते है।

17. डा. हुकमचन्द भारिल्ल

आप मध्यप्रदेश के रहने वाले है। कई वर्षों से आप जयपुर मे रह रहे है। आप आध्यात्मिक प्रवक्ता के रूप मे जाने जाते है। पडित टोडरमल व्यक्तित्व और कृतित्व पर आपको डाक्टरेट की उपाधि मिली। आप कवि भी है। वैराग्य महाकाव्य, पश्चाताप खण्ड काव्य,

कई पूजाये व कविताए आपने लिखी है। कवि ने एक कविता मे अपनी चाह निम्न प्रकार व्यक्त की है—

मै हू स्वभाव से समय-सार, परणति हो जावे समयसार,
है यही चाह, है यही राह, जीवन हो जावे समय-सार।

18. राजमल जैन बेगस्या

जन्म 17 मार्च, 1937 जयपुर मे। शिक्षा एम ए इतिहास व समाज शास्त्र। यह युवा कवि हिन्दी व राजस्थानी मे पर्याप्त कविताए लिखता है। अच्छे गायक है। आप व्यायात्मक तथा उपदेशात्मक पद्य बहुत लिखते है। इनकी कविता का एक उदाहरण निम्न है—

सुख ढूढ रहा बाहर मानव, वह अन्तर मे बसता,
जो स्व मे लीन सतोषी है, सुख का झरना वही बहता।
बाल्यकाल, यौवन आये और अन्त बुढापा है आता,
पर तृष्णा रहे सदैव षोडशी इसका नही यौवन जाता।

कवि राजस्थानी भाषा में भी काव्य रचना करते रहते है। आप जब गाकर अपनी कविताओ को सुनाते है तो उपस्थित जन समुदाय को भाव विभोर कर देते है।

19. मुशी हीरालाल छाबडा

जन्म सवत् 1920। उर्दू व फारसी के अच्छे विद्वान् थे। आपने चौवीस तीर्थकर पूजा की सरल पद्यो मे रचना की है जो वीर नि स 2446 मे छपी थी। पूजन की भाषा सरल और माधुर्य युक्त है। ढूढारी शब्दो का भी इसमे प्रयोग है। दश धर्म के सम्बन्ध मे कवि कहता है—

क्षमा आदि है धर्म जीव के, योगी इनमे रमते है,
ये ही है शिव मारग जग मे, भव्य इन्ही से तिरते है।

पूजा मे कवि ने अपनी अन्तिम भावना निम्न प्रकार व्यक्त की है—

सुख पावे सब जीव, रोग शोक सब दूर हो।
मगल होय सदीव, यह मेरी है भावना।

20 प. गुलाबचन्द जैन दर्शनाचार्य

9 नवम्बर 1921 का जन्म। शिक्षा आचार्य जैन दर्शन तथा एम ए हिन्दी व सस्कृत मे। साहित्यरत्न व प्रभाकर। अच्छे विद्वान् है। हिन्दी मे सुगन्ध दशमी आदि पूजाए लिखी है। प्रिय प्रवास की शैली मे इन्होने अजना काव्य लिखा है जिसका कुछ अश वीरवाणी मे प्रकाशित हो चुका है। इसी काव्य का एक अश निम्न प्रकार है—

अमित कोमल केश कलाप था, फणि सलज्जित का उपमान मे।
विधुसमान प्रफुल्लित कजसा, सुमुख था जिसका अति शोभना।
शुक समान समुन्नत नासिका, अधर रक्त पीयूष भरे लसै।
वर कपोल सुडोल ललाम थे, चिवुक की क्षमता कवि खोजते।

21. पं. गिरधर शर्मा (झालरापाटन)

इन्होने कुछ स्तोत्रो के अनुवाद एव कुछ स्वतन्त्र रचनायें भी लिखी है। जैन समाज में सर्वाधिक प्रचलित भक्तामर काव्य का इन्होने सरल सुबोध पद्यो में बड़ा सुन्दर अनुवाद किया। हिन्दी भाषी जैन इनके पद्यानुवाद को बडे चाव से पढते है। आपके पद भाव-परक है।

22. डा. सौभागमल दोसी (अजमेर)

गत 45 वर्षों से दोसी जी साहित्यिक क्षेत्र में बराबर कार्य कर रहे है। जैन समाज की प्रत्येक गतिविधियो में आपका योगदान रहता है। सगीत मण्डली के साथ आप विशेष धार्मिक उत्सवो मे भाग लेकर अपनी कविताओ व भजनो को सुनाते रहते है। इस असार ससार में छोटे से जीवन पर क्या इतराना इसी को लक्ष्य कर कवि कहता है—

नव विकसित कलियो से सचित करके अभय मधुकर मकरद,
फूल फूल को गूज रहे हो, लघु से जीवन पर मति मन्द।
पतझड के दिन भूल, फूल तो फूल रहा है अज्ञान,
तुम किस मद में गूज रहे हो, भूला आत्म का समकित ज्ञान।

23. युगलकिशोर (कोटा)

आध्यात्मिक प्रवक्ता, लेखक व कवि युगल जी के नाम से प्रख्यात है। आपने अनेक पद्य व कवितायें लिखी है। सर्वाधिक प्रसिद्ध पुस्तक देवशास्त्र गुरु पूजा है। पूजा समूचे भारत में बडी भक्ति से पढी जाती है। प्रत्येक मन्दिर मे प्रतिदिन पूजा करने वाला भक्त पुजारी अपनी पूजा मे युगल जी के साथ-साथ अपने मनोगत भावो को व्यक्त करता है—

इन्द्रिय के भोग मधुर विष सम, लावण्यमयी कचन काया,
यह सब कुछ जड की क्रीडा है मै अबतक जान नही पाया।
मै भूल स्वय के वैभव को पर ममता मे अटकाया हू,
अब सम्यक् निर्मल नीर लिए, मिथ्या मन धोने आया हू।

कवि आध्यात्म रस से ओत-प्रोत कविता करने में दक्ष है तथा अपने काव्य पाठो से जन-जन के हृदय मे सहज ही समा जाते है।

24 अनूपचन्द जैन (कोटा)

आपके कृतित्व की समुचित जानकारी जिन लोगो को है वे जानते है कि श्री जैन अत्यन्त भावुक तथा कल्पनाशील व्यक्ति है। कविता करने में आपको प्रारम्भ से ही रुचि है। तथा आपकी कवितायें लोकप्रिय रही है। 'वीरवाणी' शीर्षक कविता का एक अश देखिये—

मुखरित हुई किसकी गिरा वह शून्य के सकेत पट पर,
कौन जीवन मे जगा यह विवशता के मृत्यु घर पर।
किन्तु जिसने भी सुनी समझी भ्रमर यह वीरवाणी
हो गया गधा वही उन्मुक्त वसुधा के डगर पर।

उक्त कवियो के अतिरिक्त और भी कवि है जो समय-समय पर कविताए लिखते रहते है। श्रीमती सुशीला कासलीवाल गद्य गीत लिखती है। श्री नाथूलाल जैन लेखक एव कवि के रूप में राजस्थान में सुपरिचित व्यक्ति है। शरद जैन कोटा के उदीयमान कवि है।

हिन्दी जैन गद्य साहित्य-6

डॉ. शान्ता भानावत

राजस्थान में स्थानकवासी परम्परा की बड़ी समृद्ध परम्परा रही है। उसके उन्नयन-संगठन और अभिवर्धन के लिए यहां अनवरत प्रयत्न होते रहे हैं। आत्मोद्धार, लोक-शिक्षण और जन-कल्याणकारी प्रवृत्तियों में यह परम्परा और इसके अनुयायी सदैव उत्साही और अग्रणी रहे हैं। भारतीय राष्ट्रीयता और समाज सुधारात्मक आन्दोलनों के साथ-साथ इस परम्परा में संस्कृत और हिन्दी के अध्ययन की प्रवृत्ति पर विशेष बल दिया जाने लगा। फलस्वरूप समाज में नई चेतना और नव समाज निर्माण का वातावरण मुखरित हुआ।

स्थानकवासी परम्परा धार्मिक क्षेत्र में क्रांतिवाही परम्परा रही है। समय समय पर कुरूढ़ियों, बाह्य पूजा-विधानों और आडम्बरपूर्ण क्रियाकाण्डों की धूल को झाड़कर धर्म के दर्पण को यह साफ-सुथरा करती रही है, उसकी आन्तरिक तेजस्विता को चमकाती-दमकाती रही है। आत्मपरकता के साथ धर्म की समाजपरकता को यहां बराबर महत्त्व दिया जाता रहा है। यही कारण है कि इस परम्परा के साधु, साध्वी और श्रावक-श्राविका निरन्तर समाज सेवा में सक्रिय रहे हैं।

साहित्य के क्षेत्र में पद्य की तरह गद्य में भी इस परम्परा की महत्त्वपूर्ण देन रही है। हिन्दी के प्रचार-प्रसार के बढ़ने के साथ-साथ जैन सन्त-सतियों ने अपने व्याख्यान खड़ी बोली हिन्दी में देने प्रारम्भ किये। प्रारम्भिक अवस्था में यह हिन्दी राजस्थानी बोलियों के स्थानीय प्रभाव से युक्त थी। पर धीरे-धीरे यह प्रभाव कम होता गया और परिष्कृत हिन्दी का शिष्ट सामान्य रूप प्रतिष्ठित हुआ।

गद्य की लगभग सभी विधाओं में यथेष्ट साहित्य रचना की गई है। इस क्षेत्र में संत-सतियों के साथ-साथ गृहस्थ लेखक भी बराबर सक्रिय रहे हैं। इस दृष्टि से इन गद्य लेखकों को तीन वर्गों में रखा जा सकता है—(क) संतवर्ग (ख) साध्वी वर्ग और (ग) गृहस्थ वर्ग।

[क] संतवर्ग

यहां प्रमुख गद्य संत साहित्यकारों का परिचय देने का प्रयत्न किया जा रहा है।

1. आचार्य श्री जवाहरलालजी म. —

आप युग प्रवर्तक महान् क्रान्तिकारी आचार्य थे। आपने परम्परागत प्रवचन शैली और अध्ययन क्रम को नया मोड़ दिया। उसमें समसामयिकता और राष्ट्रीय भावधारा का रंग भरा। संकीर्ण अर्थों में बंद प्राचीन धर्म-ग्रन्थों को नया अर्थ-बोध देकर उनकी रूढ़ि-उच्छेद-मूलक समाजोद्धार और राष्ट्रोद्धार की प्रवृत्तियों को उजागर किया। आपकी वाणी वाग्विलास न होकर सत्य स्वर से निकली सच्ची युगवाणी थी। तत्कालीन राष्ट्रनायकों से आपका संपर्क था। राष्ट्रपिता महात्मा गांधी, लोकमान्य तिलक, सरदार पटेल आदि के साथ आपका विचार-विमर्श और संपर्क-सूत्र बना रहा। स्वाधीनता आन्दोलन के अहिंसात्मक प्रतिरोध, सत्याग्रह, खादी

धारण, विदेशी वस्त्रो का बहिष्कार, हरिजनोद्धार, नारी जागरण, व्यसनमुक्ति, सतति नियमन, दहेज़ निवारण जैसे सभी रचनात्मक कार्यक्रमो के आप समर्थक थे। आपके उपदेशो से प्रभावित होकर तत्कालीन कई श्रीमतो ने खादी धारण का व्रत लिया और राष्ट्रीय आन्दोलन मे सहयोगी बने।

आपके प्रवचनो की यह विशेषता थी कि वे युग की धडकन को सभाले हुए शाश्वत सत्यो के व्यजक, और उदात्त जीवनादर्शो के उद्घाटक होते थे। उनमे विचार शक्ति और व्याख्या शक्ति की अद्भुत क्षमता थी। उत्तराध्ययन सूत्र के 29 वे अध्ययन सम्यक्त्व पराक्रम, गृहस्थ धर्म, भक्तामर स्तोत्र आदि पर दिये गये आपके प्रवचनो मे एक प्रबुद्ध विचारक और शास्त्र-दोहक व्याख्याता के दर्शन होते है। प्रवचनो के बीच-बीच पौराणिक, ऐतिहासिक और लोक जीवन से सम्बद्ध छोटे-छोटे कथानक, दृष्टान्त और रूपक न केवल सरसता का सचार करते है वरन् श्रोता समुदाय के हृदय पर गहरा प्रभाव भी डालते है। आपकी आवेगमयी भाषा और चेतावनी परक उद्बोधन का एक नमूना देखिये—

"मित्रो! आप लोगो के पास जो द्रव्य है उसे अगर परोपकार मे, सार्वजनिक हित मे और दीन-दुखियो को सहायता पहुचाने मे न लगाया तो याद रखना, इसका व्याज चुकाना भी तुम्हे कठिन हो जायेगा। ऐसे द्रव्य के स्वामी बनकर आप फूले न समाते होगे कि चलो हमारा द्रव्य बढ़ा है, मगर शास्त्र कहता है और अनुभव उसका समर्थन करता है कि द्रव्य के साथ क्लेश बढा है। जब आप बैंक से ऋण रूप मे रुपया लेते है तो उसे चुकाने की कितनी चिन्ता रहती है। उतनी ही चिन्ता पुण्य रूपी बैंक से प्राप्त द्रव्य को चुकाने की क्यो नही करते? समझ रखो, यह सपत्ति तुम्हारी नही है। इसे परोपकार के अर्थ अर्पण करदो। याद रखो, यह जोखिम दूसरे की मेरे पास धरोहर है। अगर इसे अपने पास रख छोडूँगा तो यह यहीं रह जायेगी, लेकिन इसका बदला चुकाना मेरे लिये भारी पड जायेगा"।

(दिनाक 30-9-31 को दिया गया व्याख्यान, दिव्य जीवन से उद्धृत)

आपका विशाल गद्य साहित्य 'जवाहर किरणावली' के 35 भागो मे प्रकाशित हुआ है, जिनके नाम क्रमश इस प्रकार है —दिव्य दान, दिव्य जीवन, दिव्य सदेश, जीवन धर्म, सुबाहु कुमार, रुक्मणी विवाह, जवाहर स्मारक प्रथम पुष्प, सम्यक्त्व पराक्रम भाग 1 से 5, धर्म और धर्मनायक, रामवनगमन भाग 1 व 2, अजना, पाण्डव चरित्र भाग 1 व 2, बीकानेर के व्याख्यान, शालिभद्र चरित्र, मोरवी के व्याख्यान, सवत्सरी, जामनगर के व्याख्यान, प्रार्थना प्रबोध, उदाहरण माला भाग 1 से 3, नारी जीवन, अनाथ भगवान भाग 1 व 2, गृहस्थ धर्म भाग 1 से 3, सती राजमती और सती मदनरेखा। इसके अतिरिक्त तीन भागो मे राजकोट के व्याख्यान, छह भागो मे भगवती सूत्र पर व्याख्या और कथा साहित्य मे हरिश्चन्द्र तारा, सुदर्शन चरित्र, सेठ धन्ना चरित, शकडाल पुत्र व तीर्थंकर चरित दो भागो मे प्रकाशित हुए हैं।

2. जैन दिवाकर श्री चौथमल जी म.—

आप प्रभावशाली वक्ता होने के साथ-साथ सफल कवि भी थे। आपका शास्त्रीय ज्ञान गहरा था, पर व्याख्यान शैली इतनी सहज, सरल और सुबोध थी कि श्रोता आत्मविभोर हो जाते थे। सीधी सादी भाषा मे साधारण सी छोटी लगने वाली बात आप इस ढग से कह जाते थे कि उसका प्रभाव देर तक गूजता रहता था। आपके व्याख्यानो का मूल स्वर जीवन को शुद्ध, वातावरण को पवित्र और समाज को व्यसन-विकार मुक्त बनाना था। आपका राजस्थान के राजा-महाराजाओ, जमीदारो, जागीरदारो और रईसो पर बडा प्रभाव था। आपके उपदेशो से प्रभावित होकर कईयो ने मासाहार, मदिरापान, आखेट और जीवहिंसा का त्याग किया था।

आपके व्याख्यानो में सभी धर्मों के प्रति आदर भाव रहता था। जैन कथाओ के अतिरिक्त रामायण और महाभारत पर भी आपके आत्मस्पर्शी व्याख्यान होते थे। राजा से लेकर रक तक आपके उपदेशो की पहुच थी। आपके व्याख्यानो मे बडे-बडे सेठ साहूकारो से लेकर धोबी, कुम्हार, नाई, तेली, मोची, रंगर आदि सभी वर्गो के लोग सम्मान पूर्वक सम्मिलित होते थे। मुसलमान श्रोता भी आपके विचारो से प्रभावित थे। सस्कृत, प्राकृत, अरबी, फारसी, राजस्थानी, हिन्दी आदि भाषाओ के आप विद्वान् थे। आपके व्याख्यानो मे भाषागत पाण्डित्य का प्रदर्शन न होकर तद्‌भव शब्दावली का विशेष प्रयोग होता था। प्राकृत गाथाओ, सस्कृत श्लोको, हिन्दी दोहो, पदो और उर्दू शेर-शायरी का आप निसकोच प्रयोग करते थे। अधिकाश उद्‌धृत कविताए स्वरचित होती थी। आपका जीवन कल्पना-विहार मे विचरण करने वाले साहित्यिक कवि का जीवन न होकर कर्त्तव्य क्षेत्र मे दृढता से बढने की प्रेरणा देने वाले एक कर्मठ कवि का जीवन था। धर्म के नाम पर दी जाने वाली बलि की निस्सारता और भक्तो की अज्ञानता पर जो प्रहार आपने किया, उसका एक नमूना देखिये —

"माताजी के स्थान पर बकरो और भैसो का वध किया जाता है। लोग अज्ञानवश होकर समझते है कि ऐसा करके वे माताजी को प्रसन्न कर रहे है और उनको प्रसन्न करेंगे तो हमे भी प्रसन्नता प्राप्त होगी। ऐसा सोचना मूर्खता हे। लोग माताजी का स्वरूप भूल गये है और उनको प्रसन्न करने का तरीका भी भूल गये हे। इसी कारण वे नृशम और अनर्थ तरीके आज भी काम मे लाते हे—सर्व मनोरथो का पूरा करने वाली और सब सुख देने वाली उन माता का नाम है दया माता। दया माता की चार भुजाए है। दोनो तरफ दो-दो हाथ है। पहला दान का, दूसरा शील का, तोसरा तपस्या का और चौथा भावना का। जो आदमी दान नही देता, समझलो कि उसने दया माता का पहला हाथ तोड़ दिया है। जो ब्रह्मचर्य नही पालता उसने दूसरा हाथ तोड़ दिया है। तपस्या नही की तो तीसरा हाथ खडित कर दिया हे और जो भावना नही भाता उसने चोथा हाथ काट डाला है। ऐसा जीव मरकर वनस्पतिकाय आदि मे जन्म लेगा। जहा उसे हाथ पैर नही मिलेगे"।

(दिवाकर दिव्य ज्योति भाग-7 मे से उद्‌धृत, पृष्ठ 75 व 82)

आपका विशाल प्रवचन साहित्य 'दिवाकर दिव्य ज्योति' नाम से 21 भागो मे प्रकाशित हुआ है। इसके अतिरिक्त जम्बू कुमार, पार्श्वनाथ, रामायण, आदि कथा ग्रन्थ भी प्रकाशित हुए है।

3. आचार्य श्री गणेशीलालजी म.—

आप आचार्य श्री जवाहरलालजी म के पट्टधर शिष्य थे। आपके प्रवचनो के तीन सग्रह प्रकाशित हुए है—जैन सस्कृति का राजमार्ग, आत्म-दर्शन और नवीनता के अनुगामी। इनमे जैन सस्कृति के प्रमुख सिद्धान्त और जीवात्मा की परिणति का सरल सुबोध भाषा शैली मे विशद विवेचन किया गया है। आपकी व्याख्यान शैली तीर्थकर स्तुति से आरम्भ होकर शास्त्रीय विषय को पकडती है और नानाविध कथा-प्रसगो को स्पर्श करती हुई आगे बढती है। उसमे स्वानुभूत वाणी का तेजोदीप्त स्वर प्रमुख रहता है। एक उदाहरण देखिये—

"जैन दर्शन मे न तो व्यक्ति पूजा को महत्त्व दिया गया है न ही सकुचित घेरो मे सिद्धान्तो को कसने की कोशिश की गई है। आत्म विकास के सदेश को न सिर्फ समूचे विश्व को बल्कि समूचे जीव-जगत को सुनाया गया हे। जैन शब्द का मूल भी इसी भावना की नीव पर अकुरित हुआ हे। मूल सस्कृत धातु है 'जि' जिसका अर्थ होता है जीतना। जीतने का अभिप्राय कोई क्षेत्र या प्रदेश जीतना नही बल्कि आत्मा को जीतना, आत्मा की बुराइयो और कमजोरियो को जीतना है"।

(जैन सस्कृति के राजमार्ग से उद्‌धृत, पृष्ठ-9)

4. आचार्य श्री आनन्द ऋषि जी—

आप प्रखर चिन्तक, मधुर व्याख्याता और विशिष्ट साधनाशील संत हैं। अपने सुदीर्घ साधनामय जीवन मे जहा आप आत्म-कल्याण की ओर प्रवृत्त रहे वही जनकल्याण की ओर भी सदैव सचेष्ट रहे। सरलता के साथ भव्यता, विनम्रता के साथ दृढता और ज्ञान-ध्यान के साथ सघ-सचालन की क्षमता आपके व्यक्तित्व की विशेषताए हैं।

यो आपकी जन्मभूमि और कर्मभूमि महाराष्ट्र है पर सन्त किसी प्रदेश विशेष से बन्धे हुए नही रहते। देश के कई भू भाग आपकी देशना से लाभान्वित हुए है। राजस्थान भी उनमे से एक है। ब्यावर, उदयपुर, भीलवाडा, नाथद्वारा, जोधपुर, बडी सादडी, वदनौर, प्रतापगढ, जयपुर, कुशलपुरा आदि स्थानो पर चातुर्मास कर आपने राजस्थान-वासियो को आध्यात्मिक प्रेरणा और सामाजिक नव-चेतना प्रदान की है। श्री वर्धमान स्थानकवासी श्रमण सघ के आचार्य के रूप मे आपका व्यक्तित्व बहुमुखी एव महान् है।

आपकी प्रेरणा से देश के विभिन्न भागो मे कई सस्थाओ का जन्म हुआ। जिनमे मुख्य है— श्री त्रिलोकरत्न स्थानकवासी जैन धार्मिक परीक्षा बोर्ड, पाथर्डी, जैन धर्म प्रचारक सस्था, नागपुर, श्री प्राकृत भाषा प्रचार समिति आदि।

आचार्य श्री का प्राकृत, सस्कृत, मराठी, हिन्दी आदि भाषाओ पर पूर्ण अधिकार है। आपने कई ग्रन्थो का मराठी मे अनुवाद किया है जिनमे मुख्य हैं —आत्मोन्नति चा सरल उपाय, जैन धर्मा विषयी अजैन विद्वाना चे अभिप्राय (दो भाग), जैन धर्मा चे अहिसा तत्त्व, वैराग्य शतक, उपदेश रत्नकोष आदि। हिन्दी भाषा मे भी आपकी कई पुस्तके है। ऋषि सम्प्रदाय का इतिहास मे आपका इतिहासज्ञ और गवेषक का रूप सामने आया है। ज्ञान-कुजर दीपिका और अध्यात्म दशहरा (श्री त्रिलोक ऋषि प्रणीत) मे आपका विवेचक और व्याख्याकार का रूप प्रकट हुआ है। त्रिलोक ऋषि, रत्न ऋषि, देवजी ऋषि आदि के आपने जीवन चरित्र भी लिखे है। आप धीर, गम्भीर और मधुर व्याख्याता है। आपकी वाणी मे विचारो की स्थिरता, निर्मलता और भद्रता का रस है। आगम और आगमेतर साहित्य का आपका गूढ और व्यापक अध्ययन है। इसकी झाकी आपके प्रवचनो मे सर्वत्र देखी जाती है। आपके प्रवचनो के 'आनन्द-प्रवचन' नाम से छह भाग प्रकाशित हुए हैं। जीवन को सदाचारनिष्ठ बनाने मे ये प्रवचन बडे सहायक हैं। इनमे प्रयुक्त सूक्तिया हृदयस्पर्शी है तथा स्थान-स्थान पर आये हुए प्रासगिक दृष्टान्त और कथा-प्रसग प्रभावकारी हैं। एक उदाहरण देखिये —

"बीज छोटा सा होता है किन्तु उसी के द्वारा एक बडा भारी वृक्ष निर्मित हो जाता है। कहा बड का छोटा सा बीज केवल राई के समान और कहा विशालकाय तरुवर, जिस पर सैंकडो पक्षी बसेरा लेते है तथा सैंकडो थके हुए मुसाफिर जिसकी शीतल छाया मे रुक विश्राम लेकर अपने को तरोताजा बना जाते हैं। छोटे मे बीज का महत्त्व बडा भारी होता है क्योकि उसके अन्दर महान् फल छिपा हुआ होता है। एक सुन्दर पद्य मे कहा भी है—

बीज बीज ही नही, बीज मे तरुवर भी है।
मनुज मनुज ही नही, मनुज मे ईश्वर भी है।

कितनी यथार्थ बात है। एक बीज केवल बीज ही नही है, वह अपने मे एक विशाल वृक्ष समाये हुए है, जो सीचा जाने पर ससार के समक्ष आ जाता है। इसी प्रकार मनुष्य केवल नामधारी मनुष्य ही नही है, उसमे ईश्वर भी है जो आत्मा को उन्नति की ओर ले जाता हुआ अपने सदृश बना लेता है"।

(आनन्द-प्रवचन, भाग-2, पृष्ठ-371 से उद्धृत)

5. आचार्य श्री हस्तीमल जी म.—

आप जैन समाज के क्रियाशील संत, उत्कृष्ट साधक, प्रखर व्याख्याता और गंभीर गवेषक विद्वान् है। आपकी वाणी मे परम्परा और प्रगतिशीलता का हितवाही सामंजस्य है। गजेन्द्र मुक्तावली, आध्यात्मिक साधना, आध्यात्मिक आलोक, प्रार्थना प्रवचन, गजेन्द्र व्याख्यान माला भाग 1 से 3 मे आपके कतिपय चार्तुमास-कालीन प्रवचन संकलित किये गये है। आपके प्रवचन मे कथा भाग कम, स्वानुभूत साधना से प्रसूत वाणी का अंश अधिक रहता है। शास्त्र सम्मत यह वाणी समाज और राष्ट्र की व्यापक समस्याओं का समाधानात्मक स्वरूप प्रकट करती हुई जब श्रोताओं के हृदय का स्पर्श करती है तो वे आध्यात्मिक रस मे डूबने-तैरने लगते है। प्राकृत, संस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् होने के कारण आपकी भाषा परिष्कृत और प्राजल होती है। वाणी मे सहज ही सूक्तियां प्रस्फुटित होती रहती है। शास्त्र की किसी घटना या चरित्र को आधुनिक संदर्भ मे आप इस प्रकार प्रस्तुत करते है कि वह हमारे लिए अत्यन्त प्रेरणादायी और मार्गदर्शक बन जाता है।

आपके प्रवचन मूलत आध्यात्मिक होते हुए भी सामाजिक चेतना और राष्ट्रीय एकता के भाव व्यंजित करने मे विशेष सहायक रहते है। 'आध्यात्मिक साधना' और 'आध्यात्मिक आलोक' मे संग्रहीत प्रवचनो मे आत्म-जाग्रति का स्वर प्रमुख है। श्रमणोपासक आनन्द के जीवन का चित्रण करते हुए एक आदर्श सद्‌गृहस्थ के जीवन की भव्य झांकी प्रस्तुत की हुई है। आपकी ये पंक्तियां कितनी प्रेरणा दायक है—

'जिस प्रकार एक चतुर किसान पाक के समय विशाल धान्य राशि पाकर खूब खाता, देता और ऐच्छिक खर्च करते हुए भी बीज को बचाना नही भूलता वैसे ही सम्यक् दृष्टि गृहस्थ भी पुण्य का फल भोग करते हुए सत् कर्म साधना रूप धर्म बीज को नही भूलता।'

(आध्यात्मिक साधना से उद्‌धृत, पृष्ठ-3)

'प्रार्थना प्रवचन' मे प्रार्थना के स्वरूप, प्रार्थना के प्रकार, उसके प्रयोजन और उसकी सिद्धि पर अत्यन्त महत्त्वपूर्ण विवेचन उपलब्ध होता है। इसका अंग्रेजी अनुवाद भी प्रकाशित हो चुका है। 'गजेन्द्र व्याख्यानमाला' के पहले भाग मे पर्वाधिराज पर्युषण के आठ दिनो मे दिये गये आठ प्रवचन संकलित है। आचार्य श्री ने पर्युषण के आठ दिनो को क्रमश दर्शन दिवस, ज्ञान दिवस, चारित्र दिवस, तप दिवस, भक्ति दिवस, स्वाध्याय दिवस, दान दिवस और अहिंसा-प्रतिष्ठा दिवस नाम से सम्बोधित कर तत्-सम्बन्धी विषयो पर मार्मिक उद्‌बोधन दिया है।

आचार्य श्री प्रखर व्याख्याता होने के साथ-साथ इतिहासज्ञ और शोधकर्मी विद्वान् भी है। आप ही की प्रेरणा से जयपुर मे आचार्य श्री विनयचन्द्र ज्ञान भण्डार व जैन इतिहास समिति की स्थापना हुई है। इनके माध्यम से लगभग 30,000 हस्तलिखित प्रतियो का विशाल संग्रह अस्तित्व मे आया और 'पट्टावली प्रबन्ध संग्रह' तथा 'जैन धर्म का मौलिक इतिहास' के दो भाग प्रकाशित हुए। इन ग्रन्थो मे आचार्य श्री की श्रमशीलता, अध्ययन की व्यापकता, प्रमाण-पुरस्सरता, तथ्य भेदिनी सूक्ष्म दृष्टि और तुलनात्मक विवेचना पद्धति का परिचय मिलता है।

6. आचार्य श्री नानालाल जी म.—

आप आचार्य श्री गणेशीलाल जी म के पट्टधर शिष्य है। आपका व्यक्तित्व भव्य और प्रभावक है। वाणी मे ओज और आधुनिक जीवन संवेदन है। आपके उपदेश सर्वजनहितकारी और समता दर्शन पर आधारित समाज के नव निर्माण के लिए प्रेरक और मार्गदर्शक होते है।

आपके प्रवचनो मे आत्म साधना, सेवा, व्यसन मुक्ति और विकार-विजय पर विशेष बल रहता है। आपसे उद्‌बोधित होकर समाज मे अस्पृश्य समझे जाने वाले बलाई जाति के हजारो परिवारो ने व्यसनमुक्त, शुद्ध सात्विक सस्कारी जीवन जीने का व्रत लिया और ये 'धर्मपाल" नाम से सम्बोधित किए जाने लगे।

आपकी व्याख्यान शैली रोचक और बुद्धिजीवियो को प्रभावित करने वाली होती है। अपने व्याख्यान का प्रारम्भ आप भी तीर्थ करो की स्तुति से करते है और उसी को माध्यम बनाकर आत्मतत्त्व को छूते हुए परमात्म दर्शन की गहराइयो मे उतरते चलते है। व्याख्यान के अन्त मे कोई न कोई चरिताख्यान धारावाही रूप से अवश्य चलता है। ये चरिताख्यान घटनाओ की मात्र विवृत्ति न होकर आधुनिक जीवन समस्याओ के समाधान कारक आख्यान होते हैं। भाषा की प्राजलता, भावो की तीव्रता और शैली की प्रवाहमयता आपके व्याख्यानो की मुख्य विशेपता है।

आपके व्याख्यानो के अब तक कई सग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। 'पावस-प्रवचन' नाम से पाच भागो मे आपके जयपुर के चातुर्मास-कालीन व्याख्यान सग्रहीत है। 'ताप और तप' मे मदसौर के 'शान्ति के सोपान' मे व्यावर के तथा 'आध्यात्मिक वैभव', 'आध्यात्मिक आलोक' मे वीकानेर के व्याख्यान सग्रहीत है। 'समता दर्शन और व्यवहार' आपकी अन्य उल्लेखनीय कृति है जिसमे समता सिद्धान्त का दर्शन और व्यवहार के धरातल पर विवेचन प्रस्तुत करते हुए समतामय आचरण के 21 सूत्रो और साधक के तीन चरणो समतावादी, समताधारी और समतादर्शी का स्वरूप निरूपित किया गया है। अन्त मे समता समाज की रूपरेखा और उसके निर्माणो के लिए सक्रिय होने की प्रेरणा दी गई है। आपकी व्याख्यान-विवेचन शैली का एक उदाहरण इस प्रकार है —

'ताप से अगर मुक्ति पानी है तो उसका उपाय है तप। तप करोगे तो ताप से छुटकारा मिल जायेगा। पर-पदार्थो का मोह और विकारो की अग्नि अन्तर्चेतना को ताप से जलाती है क्योकि उनमे फसे रहने के कारण आत्मा की दशा लकडे की सी वनी रहती है, किन्तु तप उस दशा को वदलता है, उसमे फौलादी शक्ति भर कर उसे सोने की सी उज्ज्वल वनाता है। तप मे आत्मा जव तपती है तो उसका सोना तप कर अपना चरम रूप प्रकट करता है। ताप से आत्मा काली होती है और तप से वह निखरती है।'

(ताप और तप से उद्‌धृत, पृष्ठ–10)

7. उपाध्याय श्री अमर मुनि—

आपका व्यक्तित्व सर्वतोमुखी प्रतिभा का धनी है। आप ओजस्वी वक्ता, ख्याति प्राप्त लेखक, सफल कवि, गूढ विवेचक और विद्वान् सत है। आपका अध्ययन और अनुभव का क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। जैन, वौद्ध और वैदिक तीनो परम्पराओ का आपने गम्भीर अध्ययन किया है। आप व्यवहार में जितने विनम्र और मधुर है विचारो मे भी उतने ही उदार और सहिष्णु है।

कविजी का मुख्य कार्य क्षेत्र आगरा रहा है। सन्मति ज्ञान पीठ के माध्यम से आपने साहित्य की अमूल्य सेवा की है। अब वीरायतन योजना को साकार रूप देने के लिए आपने अपना क्षेत्र राजगृही वनाया है। राजस्थान से भी आपका निकट का सपर्क रहा है और आपने कई चातुर्मास इस क्षेत्र मे किये हैं।

कवि श्री मूलत साहित्यकार है। पद्य और गद्य दोनो क्षेत्रो मे आपकी लेखनी अविराम चलती रही है। कविरूप मे तो आप इतने प्रसिद्ध हैं कि कवि जी महाराज के रूप मे ही

आप जाने जाते हैं। प्रबन्ध काव्य के रूप मे 'धर्मवीर सुदर्शन' और 'सत्य हरिश्चन्द्र' आपकी लोकप्रिय कृतिया हैं। मुक्तक काव्य के क्षेत्र मे कविता-कुज, अमर माधुरी, अमर गीताजली, अमर पद्य मुक्तावली, सगीतिका आदि आपकी कई कृतिया प्रकाशित हो चुकी हैं। आपका गद्य साहित्य भी विपुल और वैविध्यपूर्ण हैं। आपने गद्य की सभी विधाओ मे लिखा है—क्या कहानी, क्या निवन्ध, क्या सस्मरण, क्या यात्रावृत्त, क्या गद्य काव्य। सन्मति ज्ञानपीठ, आगरा से आपके अनेक ग्रन्थ प्रकाशित हुए हे।

कविजी शास्त्रज्ञ, होते हुए भी प्राचीन शास्त्रीय परम्परा से बन्धे हुए नही हैं। आप युग चेतना और आधुनिक जीवन सवेदना के क्रातदर्शी कवि और व्याख्याता हैं। इस कारण आपके विचारो मे नया चिन्तन और विपय को नवीन परिप्रेक्ष्य मे प्रतिपादित और पुनर्व्याख्यायित करने की क्षमता है। आपकी भाषा मे प्रवाह और माधुर्य देखते ही बनता है। आपके विचारो मे स्पष्टता, निर्भीकता और समन्वयशीलता का गहरा पुट है। हृदय और बुद्धि, भावना और तर्क, नम्रता और दृढता के मेल से निसृत आपके विचार सबको प्रेरित-प्रभावित करते हैं। एक उदाहरण देखिए—

"सह अस्तित्व का नारा है—आओ हम सब मिलकर चले, मिलकर बैठे, मिलकर जीवित रहे और मिलकर मरे भी। परस्पर विचारो मे भेद है, कोई भय नही। कार्य करने की पद्धति विभिन्न है, कोई खतरा नही। क्योकि तन भले ही भिन्न हो, पर मन हमारा एक है। जीना साथ है, मरना साथ है, क्योकि हम सब मानव हैं और मानव एक साथ ही रह सकते है, बिखर कर नही, बिगड कर नही"।

(उपाध्याय अमरमुनि—एक अध्ययन, पृष्ठ 301 से उद्धृत)

8. मरुधर केसरी मुनि श्री मिश्रीमल जी म.—

आप राजस्थानी और हिन्दी के यशस्वी कवि होने के साथ-साथ प्रखर व्याख्याता और सबल सगठक भी हैं। अपने सुदीर्घकालीन सयम निष्ठ साधनामय जीवन मे आपने लोक मानस को आत्मोत्थान की ओर प्रेरित करते हुए समाज को सस्कारनिष्ठ और आत्म निर्भर बनाने की दृष्टि से विभिन्न जनकल्याणकारी सस्थाओ, शिक्षणालयो और छात्रावासो को स्थापित करने की प्रेरणा दी है।

आपकी प्रवचन शैली मे मिश्री सी मधुरता और समाज मे व्याप्त कुरीतियो पर प्रहार करने की कठोरता एक साथ देखी जाती है। किसी गभीर विषय को उठाकर भी आप छोटे-छोटे पौराणिक प्रसगो, प्रेरणादायी एतिहासिक घटनाओ और अपनी पदयात्रा तथा चातुर्मास काल से सम्बद्ध विविध सस्मरणो और सपर्क मे आये हुए विभिन्न व्यक्तियो की जीवन स्थितियो का पुट देकर उसे सहज, सरल और रोचक बना देते हैं। कवि होने के कारण आपके व्याख्यानो मे काव्यात्मक अश का विशेप पुट रहता है। आप अपनी स्वरचित राजस्थानी, हिन्दी कविताओ के अतिरिक्त अन्य साहित्यिक कवियो और उर्दू शायरो के उदाहरण भी देते चलते हैं।

आपका प्रवचन साहित्य विविध और विशाल है। अब तक जो प्रवचन सग्रह प्रकाशित हुए हैं, उनमे मुख्य हैं–जीवन ज्योति, साधना के पथ पर, प्रवचन प्रभा, धवल ज्ञान धारा और प्रवचन सुधा। 'जैन धर्म मे तप, स्वरूप और विश्लेपण' आपकी अन्य महत्वपूर्ण कृति हैं जिसमे तप का सागोपाग समीक्षात्मक विवेचन प्रस्तुत किया गया है। आपके द्वारा श्रीमद् देवेन्द्र सूरि विरचित 'कर्म ग्रन्थ' की छह भागो मे विस्तृत व्याख्या, विवेचन और समीक्षा की गई है। 'श्री मरुधर केसरी सुधर्म प्रवचन माला' के अन्तर्गत आपकी क्षमा, मुक्ति, आर्जव, मार्दव, लाघव,

सत्य, संयम, तप, त्याग और ब्रह्मचर्य, इन दस धर्मों पर दस लघु पुस्तिकाये प्रकाशित की गई है। आपकी प्रवचन शैली का एक उदाहरण देखिए—

'अब कचरे का ढेर कौनसा है ? हमारे भीतर जो ये क्रोध, मान, माया और लोभ कषाय है ये ही सारे कचरे के ढेर है। इसी कचरे के ढेर मे अपनी आत्मा के गुणरूपी अमूल्य रत्न दबे हुए है। इस ढेर में से जो आत्मार्थी पुरुष अन्वेपक बनकर, पक्का ढूढिया बनकर अपने आपको उसमे आत्मसात करके खोजता है तो वे अमूल्य रत्न उसे मिल जाते है। भाई, ढूढिया (अन्वेषक) बने बिना वे रत्न नही मिल सकते। ढूढिया बने बिना न आज तक किसी को मिले है और न आगे मिलेगे इसीलिए कहा है 'जिन खोजा तिन पाइया गहरे पानी पैठ।'

(प्रवचन प्रभा से उद्धृत, पृष्ठ–254)

9 श्री मधुकर मुनि—

सौम्य और मधुर व्यक्तित्व के धनी मुनि श्री मिश्रीमल जी 'मधुकर', मधुकर की तरह ही गुणग्राही और आध्यात्मिक भावो की गुंजार करने वाले हैं। मुनिश्री मधुर व्याख्याता होने के साथ-साथ सरस कथाकार भी है। जीवन के नैतिक और धार्मिक अभ्युत्थान मे आपकी रचनाये बडी प्रेरक और सहायक है। गहन विषयो को भी सरल ढग से समझाने की आपकी अनूठी कला है। व्याख्यानो के पीछे आपका गहन चिन्तन और आत्म साधना का तेजोदीप्त अनुभव है। आपके प्रकाशित प्रवचन सग्रहो मे 'अन्तर की ओर' दो भागो मे तथा 'साधना के सूत्र' मुख्य है। 'अन्तर की ओर' मे हृदय को शुद्ध, पवित्र और उज्ज्वल बनाने वाले प्रेरक तत्त्वो को लेकर दिये गये प्रवचन सकलित है। 'साधना के सूत्र' मे आत्मा को साधुत्व के मार्ग पर बढाने वाले मार्गानुसारी 35 दिव्य गुणो का पौराणिक एव नवीन उदाहरण देकर इस ढग से विवेचन किया गया है कि उनका कथन बडा ही स्पष्ट, रोचक, प्रभावक और मौलिक बन पडा है। साधना के ये सूत्र एक प्रकार से जीवन निर्माण के सूत्र कहे जा सकते है। एक नमूना देखिए—

"सद्गृहस्थ के जीवन को एक महावृक्ष की तरह माना गया है, जिसकी डालियो पर हजारो प्राणी अपना घोसला बनाए जीवन गुजारते है। सैकडो हजारों प्राणो का आधार होता है और उसकी छाया मे प्राणियो को जीवन मिलता है। वह वृक्ष यदि यह सोचे कि ये डालिया, शाखाये, पत्तिया और फूल निरे भार है, इनसे मुझे क्या करना है, मै तो अकेला नगा खडा रहूंगा तब भी अपना जीवन गुजार लूगा तो इससे न उन प्राणियो को आश्रय मिलेगा और न वृक्ष की शोभा बढेगी। वृक्ष का वृक्षत्व इसी मे है कि वह अपने फल, फूल, शाखा, प्रशाखाओ का विस्तार करके हजारो जीवो को आश्रय देता रहे। इसी प्रकार हमारा जीवन है, जो स्वय का विकास करता हुआ दूसरो के विकास में सहायक बने। निराश्रितो को आश्रय दे, शक्तिहीनो को शक्ति दे और जिन्हें पोषण की आवश्यकता है, दया की आवश्यकता है उन्हें सपोषण एव शीतल छाया से रक्षित करे।

(साधना के सूत्र से उद्धृत, पृष्ठ 337)।

सुगम साहित्यमाला के अन्तर्गत अनेकान्त, कर्म, अहिंसा, गृहस्थ धर्म, अपरिग्रह, तप, गुणस्थान, जैनतत्त्व, जैन सस्कृति, भगवान् महावीर और उनकी शिक्षाओ पर आपकी 12 लघु पुस्तिकाए भी प्रकाशित हुई है।

मुनि श्री का कथाकार रूप 'जैन कथामाला' के अद्यावधि प्रकाशित 12 भागो मे प्रकट हुआ है। जैन आगमो और उनसे सम्बद्ध टीका ग्रन्थो में हजारो कथाए बिखरी पडी है। उनका चयन कर आधुनिक शैली मे उन्हे लिखने की महती आवश्यकता थी। यह ऐतिहासिक उत्तरदायित्वपूर्ण कार्य इस शृखला द्वारा पूरा हो रहा है। प्रारम्भ के छ भागो मे सोलह सतियो और चौबीस तीर्थ करो की पावन जीवन कथायें दी गई है। सातवे और आठवें भाग मे मगध के

राजा श्रेणिक, नौवे भाग मे महामन्त्री अभय कुमार, दसवे भाग मे महावीर के सुप्रसिद्ध दस श्रावकों, ग्यारहवें भाग मे अन्य प्रसिद्ध श्रमणोपासकों तथा बारहवे भाग मे जम्बू कुमार की कथाये है। सभी कथाओ की शैली रोचक, प्रवाहपूर्ण और आकर्षक है।

10 पं. मुनि श्री हीरालाल जी म.—

आप समाज के ओजस्वी व्याख्याता और शास्त्र मर्मज्ञ विद्वान् सत है। आपके व्याख्यान अत्यन्त मनोहारी, सारगर्भित और हृदय को पिघला देने वाले होते है। आत्मोत्थान के साथ समाज मे नव चेतना जाग्रत करना आपका मुख्य उद्देश्य रहता है। शास्त्रीय दुरुह विषय को भी आप लोक-कथाओ, लोक गीतो, महापुरुषो की घटनाओ, चुटकलो आदि का पुट देकर लोकभोग्य बना देते हैं। 'हीरक प्रवचन' नाम से दस भागो मे आपके प्रवचन प्रकाशित हुए हैं। आपकी भाषा शैली देहाती सस्कार लिए हुए है। घरेलू वातावरण से युक्त होने के कारण वह अत्यन्त सरल और सहज बन गई है। एक उदाहरण देखिए—

'देखो! इस ससार मे ऐसे तो अनेक माताए है जो अनेको पुत्रो को जन्म देती है परन्तु उसी माता का पुत्र को जन्म देना सार्थक है और वही माता इस ससार मे धन्यवाद की पात्र है जिसका बेटा दूसरो की रक्षा के लिए अपने प्राणो की भी आहुति दे डालता है। परन्तु वही वीर पुत्र दूसरो की रक्षा के लिए अपने प्राणो की बाजी लगाता है जिसके हृदय मे कोमलता और सहृदयता होती है। एक कठोर हृदय मे दया का निवास नही रहता। ज्ञानी पुरुषो ने बताया है कि मानव वही है जिसके हृदय मे निम्न चार बाते पाई जाती है अर्थात् मानवता प्राप्त करने के लिए एक मानव के हृदय मे भद्रिकता, विनय सपन्नता, दयालुता और अमत्सरता का होना परमावश्यक है।'

(हीरक प्रवचन भाग 1 से उद्धृत, पृष्ठ—161)

11. श्री पुष्कर मुनि—

आप समाज के चिन्तनशील मनीषी सन्त है। साहित्य और शिक्षण के प्रचार-प्रसार मे आपका विशेष योगदान रहा है। आपके प्रवचनो के प्रमुख सकलन है 'साधना का राजमार्ग और जिन्दगी की मुसकान'/ 'साधना का राजमार्ग', मे सम्यक् दर्शन, सम्यक् ज्ञान, और सम्यक् चारित्र तथा उसके प्रमुख तत्त्वो का सरल ढग से शास्त्रसम्मत विवेचन प्रस्तुत किया गया है। 'जिन्दगी की मुस्कान' मे जीवन की जीवन्तता बनाये रखने वाले मूल तत्त्वो को लेकर भावात्मक शैली मे बहुत ही मर्मस्पर्शी विचार प्रकट किए गये है। भावो की गम्भीरता के साथ भाषा की सजीवता देखते ही बनती है। एक उदाहरण देखिए—

'हा, तो जीवन का सही विकास करना हो तो गति-प्रगति करिये। 'चर' धातु से ही आचार, विचार, सचार, प्रचार, उच्चार आदि शब्द बनते है। इन सबके मूल मे चलना है, 'चर' क्रिया है। आप भी अपने जीवन मे 'चर' को स्थान दीजिए, घबराइये नही, आपका व्यक्तित्व चमक उठेगा, आपका विकास सर्वतोमुखी हो सकेगा, आपकी प्रतिभा चहुमुखी खिल उठेगी, आपके मनमस्तिष्क का प्रवाह इसी ओर मोडिये। श्रमण सस्कृति का आकर्षण इसी ओर रहा है। चरैवेति, चरैवेति, चले चलो बढे चलो।

(जिन्दगी की मुस्कान से उद्धृत, पृष्ठ—149)

12. श्री देवेन्द्र मुनि—

आप सरस व्याख्याता, सफल लेखक और गूढ गवेषक विद्वान् सत है। आपने विद्वानो और सामान्य पाठको दोनो के लिए विपुल साहित्य का निर्माण किया है। भगवान् महावीर एक

नुशीलन, भगवान् अरिष्टनेमि और कर्मयोगी श्रीकृष्ण एक अनुशीलन, भगवान् पार्श्व एक मीक्षात्मक अध्ययन, ऋषभदेव एक परिशीलन, जैन दर्शन, स्वरूप और विश्लेषण आदि आपकी मीक्षात्मक ढग से लिखी गयी शोध कृतिया हैं। इनसे आपके गहन अध्येता, प्रवुद्ध चिन्तक, ौर मुधी समीक्षक रूप का पता चलता है। इन कृतियो मे आपकी शैली ऐतिहासिक और लनात्मक रही है।

आपका अन्य रूप सरस कथाकार और मधुर चिन्तक का है। आपकी हृदयहारिणी ावुकता, कल्पनाशीलता और साधना का स्वानुभव जिन कृतियो मे प्रतिफलित हुआ है, उनमे मुख हैं—चिन्तन की चादनि, अनुभूति के आलोक मे, विचार रश्मिया, विचार और नुभूतिया, विन्दु मे सिन्धु, प्रतिध्वनि, खिलती कलिया मुस्कराते फूल आदि। ये कृतिया जीवन थ पर वढने वाले लोगो के लिए दीप स्तम्भ के समान हैं। इनमे मुनि श्री ने अपने व्यापक ज्ञान ौर अनुभव से समय-समय पर जो कुछ चिन्तन किया, उसे विभिन्न दृष्टान्तो, कथाओ, रूपको और प्रसगो के माध्यम से प्रस्तुत किया है। इनमे प्रकट किए गये विचार मात्र अध्ययन के लिए न होकर मनन और आचरण की प्रेरणा देने वाले हैं।

मुनि श्री का प्रवचन और निवन्ध साहित्य भी विशाल है। सस्कृति के अचल में, साहित्य और सस्कृति, धर्म और दर्शन आदि कृतियो मे यह सगृहीत हैं। आपकी शैली सहज, सरल और प्रभावपूर्ण है। कही भी वह दुर्बोध नही वनती। एक विशेप प्रकार के आन्तरिक अनुशासन से वह अनुगुजित रहती है। एक उदाहरण देखिए—

"सस्कृतनिष्ठ व्यक्ति का जीवन कलात्मक होता है। वह जीवन अगरवत्ती की तरह सुगन्धित, गुलाव की तरह खिला हुआ, मिश्री की तरह मीठा, मखमल की तरह मुलायम, सूर्य की तरह तेजस्वी, दीपक की तरह निर्भीक और कमल की तरह निर्लिप्त होता है। उसके जीवन मे आचार की निर्मल गगा के साथ विचार की सरस्वती और कला की कालिन्दी का सुन्दर सगम होता है।"

(सस्कृति के अचल मे से उद्धृत, पृष्ठ-4)

13. श्री गणेश मुनि—

आप सरस कवि और ओजस्वी व्याख्याता होने के साथ-साथ प्रवुद्ध चिन्तक और शोध-कर्मी विद्वान सत हैं। गद्य और पद्य दोनो पर आपका समान अधिकार है। पद्य के क्षेत्र में जहा आपने कई नये प्रयोग किए वहा अनुसन्धान के क्षेत्र को भी आपने नई दिशा दी। 'इन्द्र भूति गौतम एक अनुशीलन' आपकी एक ऐसी ही कृति है। आगम साहित्य का अधिकाश भाग इन्द्रभूति गौतम और भगवान महावीर के सवाद-रूप मे है। ऐसे महिमामय, असाधारण व्यक्तित्व पर जैन, बौद्ध और वैदिक साहित्य के परिप्रेक्ष्य मे तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत कर पहली बार विशद विवेचन प्रस्तुत किया गया है। अहिंसा जैन धर्म का ही नही भारतीय सस्कृति का प्राण तत्त्व है। इस पर विपुल परिमाण में तात्विक और सैद्धान्तिक निरूपण किया गया है। पर मुनि श्री ने वर्तमान युग की समस्याओ के समाधान के रूप मे अहिंसा के रचनात्मक उपयोग का व्यावहारिक रूप प्रस्तुत कर उसे एक वहु-आयामी धरातल प्रदान किया है। 'आधुनिक विज्ञान और अहिंसा' तथा 'अहिंसा की वोलती मीनारें' पुस्तको मे मुनि श्री का धर्म और विज्ञान को एक दूसरे के पूरक के रूप में प्रस्तुत करने का चिन्तन अभिनन्दनीय है।

"हवाई जहाज के अन्दर दो यन्त्र होते हैं। एक यन्त्र हवाई जहाज की रफ्तार को घटाता-वढाता है और दूसरा यन्त्र दिशा का बोधक होता है जिससे चालक हवाई जहाज की गति विधि को ठीक से सभाले रहता है। इसी प्रकार विश्व में दो शक्तिरूप यन्त्र अविराम गति से

काम कर रहे है। एक भौतिक और दूसरा आध्यात्मिक। भौतिक यन्त्र विविध सुख सुविधा व कार्यो की रफ्तार वढाता है, और उसके वेग को कम ज्यादा करता है, तो अध्यात्म यन्त्र दिशा दर्शन देता है, हानि-लाभ का परिज्ञान करवाता है और मजिले मकसद तक पहुचाने का प्रयास करता है। इसी अध्यात्म शक्ति (अहिंसा) के द्वारा हम विश्वविनाशक तत्त्व के निर्माताओ का मन, मस्तिष्क वदल सकते है और उनके प्रयासो की अनुपयुक्तता को समझा सकते है।'

('अहिंसा की वोलती मीनारे' से उद्धृत, पृष्ठ–161)

'प्रेरणा के विन्दु' मे मुनि श्री ने छोटे-छोटे रूपको के माध्यम से जीवन यात्रा पर वढने वाले पथिको को आस्था, विश्वास और साहस का सम्बल लुटाया है।

14 श्री भगवती मुनि 'निर्मल'--

आप समाज के युवा साहित्यकार और प्रवुद्ध तत्त्व चिन्तक है। कवि, कथाकार और आगम व्याख्याता के रूप मे आपका व्यक्तित्व उभर कर सामने आ रहा है। 'लो कहानी सुनो', 'लो कथा कह दू' पुस्तको मे धर्म-ग्रन्थो, इतिहास, पुराण, प्रकृति आदि विविध क्षेत्रो तथा जीवन की साधारण घटनाओ से प्रसग जुटाकर छोटी-छोटी कहानिया लिखी गयी है जो वडी प्रेरणादायी और जीवन के उत्थान मे सहायक है। आपकी भाषा प्रभावमयी और शैली रोचक है। 'आगम युग की कहानिया' भाग-1, 2 मे आगमिक धरातल से प्रेरित होकर कहानिया लिखी गई है। इनके पठन से तत्कालीन युग की सामाजिक और सास्कृतिक झाकी भी मिलती चलती है। 'प्रेरणा के प्रकाश स्तम्भ', 'जीवन के पराग कण', विखरे पुष्प, 'अनुभूति के शव्द शिल्प' आदि आपकी अन्य कृतिया है जिनमे अध्यात्म जगत से निसृत अनुभूत विचारो को कथात्मक और गद्य काव्यात्मक शैली मे प्रस्तुत किया गया है। एक उदाहरण देखिए—

'कटोरा पास मे रखने से प्यास नही वुझेगी, उसमे रखे हुए पानी को अपने गले मे उतारना होगा। शरीर की पूजा छोडकर आत्मा के सहज स्वाभाविक गुणो को अपनाना ही सच्चे साधक का लक्ष्य होना चाहिए। शरीर की पूजा तो अनन्त काल से होती ही रही है, उससे आत्मा भटकी है, किनारे पर नही आयी। वहुधा साधक ने आत्मा के गुणो के गीत तो गाये, परन्तु उनमे आत्मा को भिगो कर उसे तृप्त नही किया।'

(अनुभूति के शव्द शिल्प से उद्धृत, पृष्ठ-108)

15 श्री रमेश मुनि--

आप मेवाड भूषण श्री प्रतापमलजी म के विद्वान् शिष्य है। तत्त्व चिन्तक और सफल कवि होने के साथ साथ आप सरस कथाकार भी है। 'प्रताप कथा कौमुदी' के पाच भागो में जैन आगमो और जैन चरित्रो मे आये हुए विविध प्रसगो को लेकर आपने जो कथाये लिखी है वे वडी प्रेरणादायी है। आपमें वर्णन की क्षमता, चित्रोपमता तथा भाषा का अच्छा प्रवाह है। 'भगवान् महावीर के पावन प्रसग' मे आपने भगवान् महावीर के 65 घटनात्मक और 22 संवादात्मक प्रसगो को वड़े ही रोचक कथात्मक ढग से प्रस्तुत किया है। 'चिन्तन के आलोक मे' सामाजिक तथा दार्शनिक चिन्तन के धरातल से लिखे गये आपके छोटे-छोटे सुभाषित सगृहीत है। इनका अध्ययन करते समय शास्त्र और लोकजीवन की अनुभूति साथ-साथ होती चलती है। एक उदाहरण देखिए—

'कीमती जवाहरात जैसे सोना, मणि-माणिक्य, हीरे, पन्ने, रत्न आदि को मेधावी मानव तिजोरी मे छिपा कर रखता है। कारण कि वहुमूल्य वस्तु वरावर नही मिला करती है। उन्हे पाने के लिए उन पर वहुतो की आखे ताका करती है। थोड़ी सी असावधानी हुई कि माल, माल

के ठिकाने पहुच जाता है। उसी प्रकार भव्यात्माओ के लिये मूल्यवान आभूषण माने हैं उनके द्वारा गृहीत व्रत। व्रत देही के अलंकार हैं जो उत्तरोत्तर आत्म ज्योति को तेजस्वी एव ऊर्ध्वमुखता की ओर प्रेरित करते है। कहा भी है—'देहस्य सारं व्रतधारणम्'' मानव देह की सार्थकता इसी मे है कि वह यथाशक्ति सुव्रतो को अपनाकर असयमी वृत्तियो को नियन्त्रित करे।'

(चिन्तन के आलोक मे से उद्धृत, पृष्ठ-37)

उपर्युक्त सत लेखको के अतिरिक्त कई युवा सत कथा और निबन्ध क्षेत्र मे बराबर अपना योगदान दे रहे हैं। विस्तार भय से यहा प्रत्येक के सम्बन्ध मे लिखना शक्य नही है। इन सत लेखको मे श्री अजितमुनि 'निर्मल', श्री सौभाग्य मुनि 'कुमुद', श्री उदय मुनि, श्री महेन्द्र मुनि 'कमल', श्री राजेन्द्र मुनि, श्री रमेश मुनि (पुष्कर मुनिजी के शिष्य,) श्री मदन मुनि, मुनि श्री नेमिचन्दजी आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं।

[ख] साध्वी वर्ग.—

जैन सतो की तरह जैन साध्वियो की भी साहित्य सर्जना और सरक्षणा मे विशेष भूमिका रही है। स्थानकवासी परम्परा मे कई ऐसी साध्विया हुई है जिन्होने महत्त्वपूर्ण ग्रन्थो का प्रतिलेखन कर उन्हे सुरक्षित रखा है। ऐसी साध्वियो मे आर्या उमा, केसर, गगा, गुलाबा, चन्दणा, छगना, जेता, ज्ञानो, पन्ना, पदमा, प्रेमा, फूला, मगना, रुकमा, लाछा, सतोखा, सरसा आदि के नाम विशेष उल्लेखनीय हैं। महासती भूर सुन्दरी और जडावजी ने काव्य क्षेत्र मे सुन्दर आध्यात्मिक गीत प्रस्तुत किए हैं। गद्य क्षेत्र मे भी ये पीछे न रही। आधुनिक युग मे शास्त्रीय अध्ययन के साथ-साथ सस्कृत और हिन्दी के अध्ययन-अध्यापन की प्रवृत्ति साध्वी समुदाय मे भी विशेष रूप से बढ़ी। कई साध्विया अच्छी व्याख्याता होने के साथ-साथ सफल लेखिकाए भी है। इनमे साध्वी उमराव कुवर जी 'अर्चना' और मैना सुन्दरी जी का नाम विशेष उल्लेखनीय है।

1. साध्वी उमराव कुंवर जी 'अर्चना'—

आप स्थानकवासी समाज की विदुषी विचारक साध्वी हैं। जैन दर्शन व अन्य भारतीय दर्शन का आपका गहन अध्ययन है। सस्कृत, प्राकृत, हिन्दी, गुजराती, उर्दू, अंग्रेजी आदि भाषाओ का आपको अच्छा ज्ञान है। अपने पाद विहार से आपने राजस्थान के अतिरिक्त पजाब, कश्मीर, हिमाचल प्रदेश तथा उत्तर प्रदेश की भूमि को भी पावन किया है। आपके व्यक्तित्व मे ओज और माधुर्य का सामजस्य है। आपकी प्रवचन शैली स्पष्ट व निर्भीक है।

आपकी कई साहित्यक कृतिया प्रकाशित हो चुकी है। उनमे मुख्य हैं—हिम और आतप, आम्रमजरी, समाधि मरण भावना, उपासक और उपासना तथा अर्चना और आलोक। 'अर्चना और आलोक' में शास्त्रीय और लौकिक विषयो से सम्बद्ध 21 प्रवचन सकलित हैं। पौराणिक और आधुनिक जीवन से प्रेरक कथाओ और मार्मिक प्रसगो का उल्लेख करते हुए आपने प्रवाहमयी भाषा और ओजस्वी शैली मे अपने विषय का प्रतिपादन किया है। आपके विचारो मे उदारता और चिन्तन मे नवीन दृष्टि का उन्मेष है। धर्म की विवेचना करत हुए आपने लिखा है—

'धर्म के दो रूप हैं—पहला मन शुद्धि और दूसरा बाह्य व्यवहार। मन की शुद्धि से तात्पर्य है—मन मे अवतरित होने वाले क्रोध, मान, माया, लोभ तथा मोह आदि मनोविकारो को क्षमा, नम्रता, निष्कपटता, सतोष, सयम आदि आत्मगुणो मे परिणत कर लेना तथा बाह्य व्यवहार का अर्थ है—आत्म गुणो को जीवन-व्यापार मे क्रियान्वित करने के लिए सामायिक, सवर, प्रतिक्रमण तथा व्रत-उपवास आदि क्रियाए करना। मन को विकारो से मुक्त करना विचार

धर्म है और उन निर्विकारी भावो को विवेकपूर्वक जीवन व्यवहार मे उतारना आचार धर्म है। यदि विचारो मे राग, द्वेष आदि विकारो का विप नही है, तो आचार मे भी उनका कुप्रभाव प्रतिलक्षित नही होगा।'

(अर्चना और आलोक से उदधृत, पृष्ठ-303)

2. साध्वी मैना सुन्दरी जी—

सौम्य स्वभाव और मधुर व्यक्तित्व की धनी साध्वी श्री मैनासुन्दरी जी अपनी ओजस्वी प्रवचन शैली और स्पष्ट विचार धारा के लिए प्रसिद्ध है। आपके विषय-प्रतिपादन मे शास्त्रीय आधार तो होता ही है, वह नानाविध जीवन प्रसगो, ऐतिहासिक घटनाओ और काव्यात्मक उदाहरणो से सरस और रोचक बनकर श्रोता समुदाय को आत्म विभोर करता चलता है। विशेप पर्व तिथियो और पर्युषण पर्वाराधन के 8 दिनो मे दिये गये आपके प्रवचन विशेप प्रभावशाली और प्रेरक सिद्ध हुए है।

आपके प्रवचनो के दो सग्रह, प्रकाशित हो चुके है— दुर्लभ अग चतुष्टय और पर्युपण पर्वाराधन। पहली कृति मे मनुष्यत्व, श्रुतवाणी श्रवण, श्रद्धा और सयम मे पुरुपार्थ इन चार दुर्लभ अगो पर मार्मिक प्रवचन और परिशिष्ट मे इन पर दो-दो कथाए सकलित है। दूसरी कृति मे सम्यग्ज्ञान, सम्यक्दर्शन, सम्यक् चारित्र, तप, दान, सयम, आत्म शुद्धि और क्रोधविजय पर जीवन निर्माणकारी सामग्री प्रस्तुत की गई है। आपकी शैली सरस एव सुवोध है, भाषा मे प्रवाह है, माधुर्य है और विपय का आगे वढाने की अपूर्व क्षमता है। एक उदाहरण देखिए—

'किसी भयानक वन मे वहुत जोरो से आग लगी हो और उसमे एक अन्धा और दूसरी तरफ एक लूला व्यक्ति झुलस रहा हो, ऐसी विपम वेला मे दोनो आपस मे प्रेम करले और कहदे कोई वात नही यदि हमे अग अपूर्ण मिले है, परन्तु हम एक दूसरे के सहायक वनकर इस वीहड भूमि से पार हो जायेगे। अन्धा अपने कन्धे पर लूले को चढाले और लूला उन्हें मार्ग-दर्शन करता रहे तो वे दोनो सरलता से पार होगे या नही? उत्तर स्पष्ट है कि अवश्य ही होगे। तो आइये, हम अपने जीवन को ज्ञान और क्रिया के समन्वय से सुन्दर, समुज्ज्वल स्वरूप प्रदान करे ताकि हमारे लडखडाते कदम अन्धकार से प्रकाश की ओर, असत्य से सत्य की ओर और मृत्यु से अमरत्व की ओर वढ सके।

(पर्युषण पर्वाराधन से उद्धृत, पृष्ठ 66)

उक्त साध्वी द्वय के अतिरिक्त अन्य साध्वी लेखिकाओ मे साध्वी श्री रतनकवर जी और निर्मल कवरजी के नाम उल्लेख योग्य है। इन उदीयमान लेखिकाओ के निबन्ध जिनवाणी' मासिक पत्रिका, मे समय-समय पर प्रकाशित होते रहते हैं। इनके अतिरिक्त महासती जसकवरजी, छगन कवरजी, कुसुमवती जी आदि प्रभावशाली व्याख्यानकर्त्री साध्विया है।

[ग] गृहस्थ वर्ग —

जैन सत-सतियो के समानान्तर ही जैन गृहस्थ वर्ग का भी साहित्य सर्जना मे योग रहा है। यो जैन समाज मुख्यत व्यावसायिक समाज है पर राष्ट्रीय जीवन के सभी पक्षो को पुष्ट करने मे उसकी सवल भूमिका रही है। साहित्य का क्षेत्र भी उससे अछूता नही रहा। समाज मे व्याप्त कुरीतियो के खिलाफ आवाज वुलन्द करने, नैतिक शिक्षण को वढावा देने, स्वाधीनता आन्दोलन को गतिशील वनाने, धर्म और दर्शन को सामाजिक परिप्रेक्ष्य मे प्रस्तुत करने तथा समाज मे ऐक्य और सेवा भावना का प्रसार करने-जैसे विविध लक्ष्यो को ध्यान मे रख कर गद्य

साहित्य का निर्माण होता रहा है। कुछ प्रमुख गद्य लेखको का उल्लेख इस प्रकार किया जा सकता है—

1 प. उदय जैन —

श्री जवाहर विद्यापीठ, कानोड के सस्थापक, सचालक, प उदय जैन प्रारम्भ से ही ओजस्वी वक्ता और मौलिक चिन्तक रहे है। आपकी यह प्रखरता और मौलिक चिन्तना आपके लेखन मे भी प्रतिफलित हुई हैं। स्वतन्त्र विचारक होने के नाते आप निर्भीक होकर स्पष्ट बेलाग भाषा मे अपनी बात कहते हैं। भगवान् महावीर के जीवन और सिद्धान्तो मे सम्बन्धित 'वीर विभूति' नामक आपका एक ग्रन्थ प्रकाशित हुआ है जिसके वर्धमान महावीर, तीर्थंकर महावीर और सर्वज्ञ महावीर तीन खण्ड है। आपकी दूसरी पुस्तक है 'साम्प्रदायिकता से ऊपर उठो'। इसमे 30-35 वर्षों के मध्य समय-समय पर लिखे गए विभिन्न पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित जैन धर्म, धार्मिक शिक्षा, जैन सिद्धान्त, समाज सगठन, सघ सेवा आदि से सबद्ध विचारोत्तेजक, प्रेरणादायी लेख सकलित है। नवयुवको को प्रेरणा देते हुए आप कहते है—

> "वीर नवयुवको! अपना समाज धनलोलुप बना हुआ है। वीर के तप और त्याग को भूल गया है। गौतम जैसे शिष्य ने निर्वाणोत्सव मनाया था। आज हमे उसी तरह सद्ज्ञान का प्रदीप जला कर मनाना है। ससार को शाति, अहिंसा का पाठ पढा कर मनाना है। ससार मे प्रज्वलित हिंसा की आग अब शात करना है। यह कार्यवीर के अनुयायी ज्ञान और क्रिया की दो पाखो वाले जैन युवक ही कर सकते हैं। अत हे नवयुवाओ आप उठो, निर्भय होकर अपने पुरुषार्थ को बताओ और अपनी सारी प्रवृत्तिया समाजोत्थान के कार्य मे समर्पण कर दो।"

(24-4-45 के 'जैन प्रकाश' मे प्रकाशित लेख से उद्धृत)

2 डा. मोहनलाल मेहता—

कानोड (उदयपुर) के ही डॉ, मेहता जो वर्तमान मे पार्श्वनाथ विद्याश्रम शोध सस्थान, वाराणसी के अध्यक्ष और बनारस हिन्दू युनिवर्सिटी मे जैन दर्शन के सम्मान्य प्राध्यापक है, सफल लेखक और विचारक विद्वान् है। आपका सस्कृत और प्राकृत के साथ हिन्दी, अग्रेजी और गुजराती भाषाओ पर अच्छा अधिकार है। जैन दर्शन और जैन सस्कृति पर आपने हिन्दी और अग्रेजी मे कई पुस्तके लिखी है जिनमे मुख्य है—जैन धर्म दर्शन, जैन आचार, जैन साहित्य का वृहद् इतिहास, प्राकृत और उसका साहित्य, गणितानुयोग। जैन दर्शन, जैन मनोविज्ञान, जैन सस्कृति और जैन कर्म सिद्धान्त पर लिखी हुई आपकी अग्रेजी पुस्तके बुद्धजीवियो के लिए विशेष उपयोगी रही है। आपकी लेखन शैली स्पष्ट और सटीक है। सहज, सरल भाषा मे आप सीधे ढग से प्रमाण पुरस्सर बात कह जाते है। एक उदाहरण देखिए—

> "मरण दो प्रकार का होता है—बाल मरण और पडित मरण। अज्ञानियो का मरण बाल मरण एव ज्ञानियो का पडित मरण कहा जाता है। जो विषयो मे आसक्त होते हैं एव मृत्यु से भयभीत रहते हैं वे अज्ञानी बाल मरण से मरते हैं। जो विषयो मे अनासक्त होते है यथा मृत्यु मे निर्भय रहते हैं, वे ज्ञानी पडित मरण मे मरते है। चूकि पडित मरण मे सयमी का चित्त समाधियुक्त होता है अर्थात् सयमी के चित्त मे स्थिरता एव समभाव की विद्यमानता होती है, अत पडित मरण को समाधि मरण भी कहते है।"

(जैन धर्म दर्शन से उद्धृत, पृ. 531)

3. डा. नरेन्द्र भानावत–

राजस्थान विश्वविद्यालय मे हिन्दी विभाग के प्राध्यापक डा. नरेन्द्र भानावत ओजस्वी वक्ता होने के साथ-साथ सफल साहित्यकार भी हैं। पद्य और गद्य दोनो क्षेत्रो मे आपने समान रूप से लिखा है। आप प्रगतिशील चेतना और जीवन आस्था के कवि है। आपका इन्सान की कर्मठता, अदम्य जिजीविषा और यातनाओ के खिलाफ अस्तित्व रक्षा के लिए निरन्तर सघर्ष करते रहने का साहसिक स्वर 'माटी कुकम' तथा 'आदमी, मोहर और कुर्सी' पुस्तको मे सकलित कविताओ मे मुखरित हुआ है। मानवीय सवेदना और प्रगतिशील उदार सास्कृतिक चेतना के धरातल से लिखी गई आपकी कहानिया 'कुछ मणिया कुछ पत्थर' मे तथा एकाकी 'विष से अमृत की ओर' मे सगृहीत है।

कवि, कहानीकार और एकाकीकार होने के साथ-साथ आप मौलिक चिन्तक और प्रौढ निवन्धकार भी है। आपने साहित्यिक और सामाजिक सवेदना के धरातल से जैन धर्म और दर्शन को प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया है। 'साहित्य के त्रिकोण' मे आपके जैन साहित्य सम्बन्धी 9 समीक्षात्मक निबन्ध सगृहीत है। 'राजस्थानी वेलि साहित्य' मे जैन वेलि परम्परा का विवेचनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। 'जिनवाणी' के सपादक के रूप मे समय-समय पर लिखी गई आपकी विशिष्ट सपादकीय टिप्पणिया धर्म की तेजस्विता और उसके सामाजिक दाय को उभारने मे विशेष सहायक हुई है। आपके निवन्धो मे आलोचना और गवेषणा के सम्यग् योग से एक विशेष चमत्कृति आ जाती है। आपकी भाषा प्राजल, शैली रोचक और विचार परिष्कृत होते है। एक उदाहरण देखिए—

"किसी को यह भ्रम नही होना चाहिए कि आधुनिकता और वैज्ञानिक युग धर्म के लिए अनुकूल नही है या वे धर्म के शत्रु हैं। सही बात तो यह है कि आधुनिकता ही धर्म की कसौटी है। धर्म सहज अधविश्वास या अवसरवादिता नही है। कई लोकसम्मत जीवनादर्श मिल कर ही धर्म का रूप खड़ा करते है। उसमे जो अवाछनीय रुढि तत्त्व प्रवेश कर जाते है, आधुनिकता उनका विरोध करती है। आधुनिकता का परम्परा या धर्म के केन्द्रीय जीवन तत्त्वो से कोई विरोध नही है। उदाहरण के लिये परम्परागत मानवीय आदर्श-प्रेम, सुरक्षा, सहयोग, ममता, करुणा, सेवा आदि गुण लिए जा सकते है। हमारी दृष्टि से आधुनिकता इन गुणो से रहित नही हो सकती। यह अवश्य है कि ज्यो-ज्यो सामाजिक सुरक्षा के विविध साधन अधिकाधिक प्रस्तुत होते जा रहे है त्यो त्यो इन मानवीय गुणो का स्थानान्तरण होता जा रहा है। पेन्शन, प्रावीडेण्ट फण्ड, जीवन बीमा आदि एजेन्सियो मे व सरकारी सस्थानो मे। पर यह स्मरणीय है कि धर्म की भावना ही एक ऐसा रस तत्त्व-सजीवन तत्त्व है जो आधुनिकता के परिपक्व फल को सडने से वचायेगा, अन्यथा उसमे कीडे पड जायेंगे और वह खाने के योग्य नही रहेगा।

('जिनवाणी' के श्रावक धर्म विशेषाक से उद्धृत, पृष्ठ 4)

उपर्युक्त लेखको के अतिरिक्त ऐसे लेखको की सख्या पर्याप्त है जिनके स्फुट लेख समय-समय पर विविध पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित होते रहते हैं। श्री कन्हैयालाल लोढा और श्री हिम्मतसिंह सरुपरया ने आधुनिक विज्ञान के परिप्रेक्ष्य मे जैन धर्म और दर्शन का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत करने मे अच्छी पहल की है। डा महेन्द्र भानावत ने जैन साहित्य की लोकधर्मी परम्पराओ को उजागर करने का प्रयास किया है। श्री शान्तिचन्द्र मेहता, श्री मिट्ठालाल मुरडिया, श्री रिखबराज कर्णावट, डा इन्द्रराज वैद, श्री रत्नकुमार जैन 'रत्नेश', श्री चादमल कर्णावट, श्री रतनलाल सघवी, श्री सूरजचन्द डागी, श्री सपतराज डोसी, श्री जशकरण डागा, श्री प्रतापचन्द भूरा, श्री उदय नागौरी आदि लेखको ने धार्मिक-सामाजिक सवेदना से प्रेरित होकर कई लेख लिखे है।

महिला लेखिकाओं मे शान्ता भानावत (लेखिका) ने जीवन की सामान्य घटनाओ को लेकर नैतिक प्रेरणा देने वाली धार्मिक-सामाजिक कहानिया और दैनन्दिन जीवन मे घटने वाली बातों को लेकर कई जीवनोपयोगी प्रेरक लेख लिखे हैं। श्रीमती सुशीला बोहरा और रतन चौरडिया के भी कुछ लेख प्रकाशित हुए है।

जैन संत सामान्यत. सीधे लेख नही लिखते। उनका अधिकांश साहित्य सपादित होकर प्रकाश मे आया है। सपादको की इस पक्ति मे यशस्वी नाम हैं प. शोभाचन्द भारिल्ल और श्री श्रीचन्द सुराणा 'सरस'। भारिल्ल जी ने अपने जीवन का अधिकाश भाग सपादन-सेवा मे ही समर्पित किया है। जवाहर किरणावली, दिवाकर दिव्य ज्योति, हीरक प्रवचन आदि के रूप मे जो प्रवचन साहित्य प्रकाशित हुआ है उसका श्रेय आप ही को है। इधर सरसजी के सपादन मे अधिकाश साहित्य प्रकाशित हो रहा है।

समग्र रूप से कहा जा सकता है कि हिन्दी गद्य साहित्य के क्षेत्र में जैन सतो, साध्वियो और गृहस्थो की महत्त्वपूर्ण देन रही है। इस साहित्य मे उत्तेजना का स्वर न होकर प्रेरणा का स्वर है। यह हमारी बाह्य वृत्तियो को उभाडता नही वरन् उन्हें अनुशासित कर अन्तर्मुखी बनाता है। जीवन को पवित्र, समाज को प्रगतिगामी और विश्व को शातिपूर्ण सह अस्तित्व की ओर उन्मुख करने मे यह साहित्य बडा उपयोगी है।

हिन्दी जैन गद्य साहित्य-7.

मुनि श्रीचन्द 'कमल'

तेरापथ तीसरे शतक के दूसरे दशक मे चल रहा है। इस कालावधि मे अनेक साधु-साध्विया साहित्यकार हुए हैं। जैन परम्परा के अनुसार वे पाद-विहार व्रती है। 'तिन्नण तारयाण' सूत्र के अनुसार वे आत्म-साधना के साथ-साथ जन कल्याण की भावना लेकर चलते हैं। इसलिये वे सदा लोक भाषा को महत्व देते रहे हैं। तेरापथ के नवमाचार्य श्री तुलसी गणी के आचार्यकाल मे साधु-साध्वियो का विहार क्षेत्र व्यापक हुआ है। जन सम्पर्क और आवश्यकता वश तेरापथ के साधु-साध्वियो ने हिन्दी साहित्य मे प्रवेश किया। हिन्दी की सर्वप्रथम पुस्तक जीव-अजीव वि स 2000 मे प्रकाश मे आई जो मुनिश्री नथमलजी की प्रथम कृति थी। आपकी दूसरी पुस्तक थी अहिंसा। फिर धीरे-धीरे साहित्य सर्जन मे गति होती गई। इन तीस वर्षो मे साधु-साध्वियो की छोटी-मोटी लगभग तीन-चार सौ कृतिया प्रकाशित हो चुकी हैं। गद्य साहित्य अनेक विषयो को लक्ष्यकर लिखा गया मुख्य विषय है—विचार प्रधान निबन्ध, योग, जैन दर्शन, यात्रा, सस्मरण, इतिहास, आगमो की व्याख्या, जीवनी, अणुव्रत, उपन्यास-कथा, प्रवचन, काव्य, विविध विषय आदि- आदि।

विचार प्रधान निबन्ध साहित्य :

1 मेरा धर्म केन्द्र और परिधि—लेखक आचार्य तुलसी —पच्चीस निबन्धात्मक इस कृति मे धर्म के तेजस्वी रूप को केन्द्र मे प्रतिष्ठित करके विविध सम्प्रदायो को परिधि माना गया है। धर्म बुद्धि की दौड से दूर अनुभूतिगम्य है। वह व्यक्ति को बाधता नही, मुक्त करता है। धर्म की रूढ धारणाओ के प्रति इसमे एक क्रान्तिकारी स्वर मुखरित किया गया है। आज वही धर्म जीवित रह सकता है जिसमे बौद्धिक चुनौतियो को झेलने की क्षमता हो, मन को स्थिरता, बुद्धि को समाधान और हृदय को श्रद्धा का सबल प्रदान करने वाले ये लघु निबन्ध धर्मानुभूति की दिशा मे प्रेरणा देने वाले है।

2 क्या धर्म बुद्धि गम्य है —आचार्य तुलसी —प्रस्तुत पुस्तक मे धर्म का जो स्वरूप उपस्थित किया गया है उससे धर्म का द्वार उन लोगो के लिए भी खुल जाएगा जो बुद्धिवाद के रग मे रगकर उसे कपोल-कल्पित मात्र समझते हैं। वे भी लाभान्वित होगे जो धर्म को केवल परलोक की छाया मे ही देखते हैं। वे भी उपकृत होगे जो धर्म को आत्मानुभूति का तत्व मानते हैं।

3 धर्म एक कसौटी एक रेखा—आचार्य तुलसी —भारत मे धर्म शब्द बहुत प्रिय रहा है। उसकी अत्यन्त प्रियता के कारण उसकी मर्यादा मे कुछ उन वस्तुओ का भी समावेश हो गया है, जो इष्ट नही है। अनिष्ट का प्रवेश होने पर उसकी परीक्षा का प्रश्न उपस्थित हुआ। परीक्षा का पहला प्रकार कसौटी है। उस पर रेखा खीचते ही स्वर्ण परीक्षित हो जाता है। धर्म की कसौटी है मानवीय एकता की अनुभूति। हृदय और मस्तिष्क पर अभेद की रेखा खचित होते ही धर्म परीक्षित हो जाता है। प्रस्तुत पुस्तक मे धर्म को इसी कसौटी पर रखा गया है।

4 तट दो प्रवाह एक—मुनि नथमल —प्रस्तुत कृति दार्शनिक परिवेश मे दर्शन, जीवन, समाज-व्यवस्था के साथ अनिवार्यत सम्बद्ध जीवन धर्म, राष्ट्र धर्म, एकता, अभय, अहिंसा, सह अस्तित्व आदि प्रश्नो की बुद्धिगम्य और तर्क सगत व्याख्या देती है।

5 समस्या का पत्थर अध्यात्म की छेनी—मुनि नथमल—जहा अध्यात्म है वहा व्यावहारिकता का सामजस्य नही है, यह एकागीपन समस्या है। दूसरी ओर व्यवहार को पकडने वाले व्यक्ति सभी समस्याओ को सुलझाने में केवल व्यवहार को ही उपयोगी मानते हैं। हमारी समस्याए बाहर के विस्तार से आ रही हैं किन्तु उनका मूल हमारे मन मे है। 95 प्रतिशत समस्यायें हमारे मन से उत्पन्न होती है। अध्यात्म एक छेनी है, उससे समस्या के पत्थर को तराशा जा सकता है। मन की गहराई मे पनपने वाली समस्याओ की गाठ खुलने पर मुक्ति की अनुभूति सहज हो जाती है। प्रस्तुत पुस्तक इसी सत्य की परिक्रमा किए चलती है।

6 महावीर क्या थे ?—मुनि नथमल—महावीर क्या थे यह प्रश्न पहले भी पूछा जाता रहा है और आज भी पूछा जाता है। इसका उत्तर एक-सा नही दिया जा सकता। महावीर के जीवन के अनेक आयाम है। सभी आयाम यशस्वी और उज्ज्वल हैं। उन्होने सत्य-सधित्सा की भावना से अभिनिष्क्रमण किया, सत्य की साधना की और एक दिन स्वय सत्य हो गए। इस पुस्तक में उनके व्यक्तित्व के विभिन्न आयामो की स्फुट व्याख्या है और सत्य बनने का प्रशस्त मार्ग निर्दिष्ट है।

योग साहित्य

1 तुम अनन्त शक्ति के स्रोत हो—मुनि नथमल—प्रस्तुत पुस्तक अपनी अनन्त शक्तियो के प्रकटन का मार्ग दिखाती है। जैन योग और आसन, कायोत्सर्ग, भाव-क्रिया, मोह व्यूह, सवेग निर्वेद आदि 24 योग विषयो पर जैन साधना की दृष्टि स्पष्ट की गई है।

2 मैं मेरा मन मेरी शान्ति—मुनि नथमल—प्रस्तुत ग्रथ में मन की एकाग्रता, अमनावस्था की उपलब्धि, धर्मतत्व का चिन्तन, व्यष्टि और समष्टि में अविरोध की साधना पर आधृत शास्वत प्रश्नो को विवेचित किया गया है। इसके तीन खण्ड हैं—मैं और मेरा मन, धर्म क्रान्ति और मानसिक शाति के 16 सूत्र।

3 चेतना का ऊर्ध्वारोहण—मुनि नथमल—अनेक लोगो की यह धारणा है कि जैनो की साधना-पद्धति व्यवस्थित नही है, या जैन योग नही है। यह पुस्तक इस धारणा को निराधार सिद्ध करती है। इस कृति मे जैन योग पर दिए गए प्रवचनो तथा प्रश्नोत्तरो का सकलन है। इसमें अनुपलब्ध जैन साधना-पद्धति को अपने अनुभवो तथा साधना के प्रकाश में खोजने का प्रयत्न किया गया है।

4 भगवान महावीर की साधना का रहस्य भाग, 1-2—मुनि नथमल—भगवान् महावीर के युग में जो साधना सूत्र ज्ञात थे, आज वे समग्रतया ज्ञात नही है। इसमें उन साधना सूत्रो के स्पर्श का प्रयत्न किया है, जो अज्ञात से ज्ञात बने हैं। साधना के क्षेत्र में शरीर, श्वास, वाणी और मन को साधना आवश्यक होता है। इन पुस्तको मे इनकी साधना का मर्म उद्घाटित किया गया है। शरीर का सवर, श्वास सवर, इन्द्रिय सवर, वाक् सवर, प्राण आदि योग विषयो पर वर्तमान मे प्रचलित साधना-पद्धतियो के परिप्रेक्ष्य में जैन दृष्टिकोण उपस्थित किया गया है। इसमें चार अध्याय है—आत्मा का जागरण, आत्मा का साक्षात्कार, समाधि और इतिहास के सदर्भ में। तीसरे अध्याय में समाधि को जैन परिप्रेक्ष्य में उपस्थित करते हुए सामायिक सामाधि, ज्ञान समाधि,

दर्शन समाधि, चारित्र समाधि आदि की विस्तृत व्याख्या की है। अन्तिम अध्याय में जैन परम्परा में ध्यान का ऐतिहासिक विश्लेषण प्रस्तुत है। इस लम्बी कालावधि में इतर साधना पद्धतियो से जो आदान-प्रदान हुआ है उसका सुन्दर विश्लेषण इस पुस्तक में है। इसे जैन योग का प्रतिनिधि ग्रन्थ माना जा सकता है।

5 योग की प्रथम किरण—साध्वी राजीमती —प्रस्तुत पुस्तक में योग साधना के प्रारभिक अंश आहार शुद्धि, शरीर शुद्धि, इन्द्रिय शुद्धि, श्वासोच्छ्वास शुद्धि आदि विषयो पर चिन्तन किया गया है। आसन प्रयोगो से होने वाले हानि-लाभ के विवरण के साथ-साथ स्वय की अनुभूतियो का भी उल्लेख किया है।

6 अस्तित्व का बोध—मुनि नथमल —प्रस्तुत पुस्तक मे योग सम्बन्धी विचार अभि-व्यक्त हुए है।

7 जागरिका—स मुनि श्रीचन्द्र, मुनि किशनलाल —इस पुस्तक में लाडनू में आयोजित एक मासीय साधना-सत्र में विभिन्न प्रवक्ताओ द्वारा प्रदत्त योग विषयक पचास प्रवचनो का सकलन है। इनमे जैन साधना पद्धति या जैन योग के मूलभूत तथ्यो का सुन्दर विवेचन प्रस्तुत है। प्रश्नोत्तरो के कारण विषय बहुत स्पष्ट होता गया है। कुछ क्रियात्मक प्रयोग भी विनिर्दिष्ट हैं।

8 मनोनिग्रह के दो मार्ग—मुनि धनराज (सरसा) —प्रस्तुत पुस्तक में स्वाध्याय और ध्यान को मनोनिग्रह के दो मार्ग बताकर जैनागमो में वर्णित ध्यान के चार प्रकारो का विवेचन किया गया है।

अनूदित

9 मनोनुशासनम्—आचार्य श्री तुलसी, व्याख्याकार मुनि नथमल —प्रस्तुत ग्रन्थ में मन के अनुशासन की प्रक्रिया निरूपित की गई है। यह ग्रन्थ जैन योग में पातजल योग सूत्र के समान सूत्रबद्ध तथा व्याख्या सहित है।

10 ध्यान शतक-जिनभद्रगणि, अनु मुनि दुलहराज —इसमें ध्यान के भेद-प्रभेद, ध्यान का स्वरूप आलम्बन, प्रक्रिया और फल आदि का विवेचन है। सौ श्लोको का यह लघुकाय ग्रन्थ जैन ध्यान पद्धति को समझाने में बहुत सहायक हो सकता है।

जैन दर्शन साहित्य

1 जैन दर्शन मनन और मीमासा—मुनि नथमल —यह ग्रन्थ जैन दर्शन को समग्रता से प्रस्तुत करता है। इसके पाच खण्ड है। ग्रन्थ का पहला खण्ड भगवान् ऋषभदेव से लेकर महावीर की परम्परा और कालचक्र का बोध देता है। दूसरे खण्ड मे पुद्गल परमाणु, जीवन, प्राण, आत्मवाद, कर्मवाद, स्याद्वाद के गहन-गम्भीर विषय पाठक के लिए सुगम्य बन गए हैं। तीसरे खण्ड मे आचार मीमासा है। इसमे मोक्ष प्राप्ति के लिए साधक को जीवन साधना का पथ दर्शन मिलता है। चौथे खण्ड मे ज्ञान मीमासा है। इसमें ज्ञान, इन्द्रिय, मन, मनोविज्ञान, चेतना का विकास, कषाय, भावना, ध्यान आदि विषयो पर विस्तृत चर्चा है। पाचवें खण्ड में प्रमाण मीमासा है। ये पाचो खण्ड अपने आप मे स्वतन्त्र ग्रन्थ रूप लिये हुए है। इनका एकत्र समाकलन जैन दर्शन को समग्रता से प्रस्तुत करने मे सक्षम है। समीक्षको ने इसे जैन दर्शन का प्रतिनिधि ग्रन्थ मानते हुए इस विद्या का अलभ्य ग्रन्थ माना है।

2 जैन दर्शन और आधुनिक विज्ञान—मुनि नगराज—बुद्धिजीवी स्वीकार करते हैं कि जैन दर्शन वैज्ञानिक दर्शन है। प्रस्तुत पुस्तक दर्शन और विज्ञान की समीक्षात्मक सामग्री प्रस्तुत करती है। इसमें परमाणु, भू-भ्रमण, स्याद्वाद आदि की जैन दर्शन सम्मत विवेचना प्रस्तुत करते हुए आधुनिक विज्ञान की मान्यताओ के साथ उसकी तुलना प्रस्तुत की गई है। लेखक जैन दर्शन के मूलभूत कतिपय तथ्यो को वैज्ञानिक कसौटी पर कसकर उनकी सारगर्भिता प्रतिपादित कर पाठक के मन पर जैन दर्शन की वैज्ञानिकता की अमिट छाप छोड जाता है।

3 अतीत का अनावरण—मुनि नथमल—प्रस्तुत कृति शोधपूर्ण ग्रन्थ है। श्रमण सस्कृति का प्राग्वैदिक अस्तित्व, श्रमण सस्कृति आत्म विद्या के सधानी क्षत्रियो की उपलब्धि, आर्य-अनार्य, बुद्ध और महावीर, आगम ग्रन्थो का विचार और व्यवहार तत्व, बृहत्तर भारत के दक्षिणार्ध और उत्तरार्ध की विभाजन रेखा वैताढ्य पर्वत आदि विषयो पर 25 निबधात्मक इस कृति में अनेक तथ्य उद्घाटित हुए है जो धर्म और दर्शन जगत मे पहेली बने हुए थे।

4 अहिंसा तत्व दर्शन—मुनि नथमल—प्रस्तुत कृति अहिंसा विश्वकोश है। इसमें अहिसा पर समग्र दृष्टिकोण से विचार प्रस्तुत करते हुए आगम तथा उत्तरवर्ती आचार्यों के दृष्टि-कोण प्रतिपादित किए गए है। अहिसा के क्रमिक विकास पर एतिहासिक विश्लेषण भी इसमें विस्तार से हुआ है।

5 अहिंसा और विवेक—मुनि नगराज—प्रस्तुत पुस्तक में अहिंसा का विकास अहिसा का स्वरूप तथा उसकी अवस्थाओ का चित्रण बहुत सहज ढग से किया गया है। आचार्य भिक्षु की अहिसा दृष्टि को महात्मा गाधी की अहिसा दृष्टि के साथ तोलते हुए दोनो में कहा भेद अभेद है उसका सुन्दर विवेचन प्रस्तुत किया गया है।

6 विश्व प्रहेलिका—मुनि महेन्द्र कुमार—इस कृति मे वैज्ञानिक सिद्धान्तो और उनसे सम्बद्ध दार्शनिक प्रतिपादनो का आलोचनात्मक विवरण प्रस्तुत किया गया है। इसके साथ विश्व सम्बन्धी जैन सिद्धान्तो का विशद निरूपण भी हुआ है। प्रस्तुत कृति मे विज्ञान, पाश्चात्य दर्शन और जैन दर्शन के आलोक मे विश्व की वास्तविकता, स्वरूप और उसकी स्थिति की गणित के माध्यम से मीमासा की गई है।

7 सत्य की खोज अनेकान्त के आलोक मे—मुनि नथमल—यह 13 शीर्षको मे विभक्त जैन दर्शन के मूलभूत सिद्धान्तो को आधुनिक परिप्रेक्ष्य में प्रस्तुत करने वाली मौलिक कृति है। इसमें भगवान महावीर की अर्थ नीति, समाज शास्त्र, कर्मवाद, परिणामि नित्यवाद आदि विपयक मान्यताओ को आधुनिक सदर्भ मे प्रस्तुत किया गया है।

8 अहिसा पर्यवेक्षण—मुनि नगराज—समाज मे अहिसा का विकास क्यो, कब और कैसे हुआ इसका क्रमिक ब्यौरा प्रस्तुत पुस्तक मे उपस्थित किया गया है। कालक्रम के साथ अहिसा के उन्मेष और निमेष देखे गए है।

9 शब्दो की वेदी अनुभव का दीप—मुनि दुलहराज—प्रस्तुत पुस्तक भगवान् महावीर के जीवन प्रसग, प्रेरक कथाए, आगम-सपादन सम्बन्धी विशेष जानकारी, सप्रदायो का इतिहास, ग्रन्थो का समीक्षात्मक अध्ययन, आगम वाक्यो की व्याख्या आदि 119 लेखो में वह विविध सामग्री प्रस्तुत करती है।

10 अहिसा के अचल में—मुनि नगराज—प्रस्तुत पुस्तक में समय-समय पर लिखे गए अहिसा विषय के लेखो का सग्रह है। इसमे अहिसा के विभिन्न पहलुओ पर चिन्तन किया गया है।

11. अहिंसा की सही समझ—मुनि नथमल —प्रस्तुत पुस्तक अहिंसा की अधूरी समझ के प्रत्युत्तर में लिखा गया वृहत्तर निबन्ध है। इसमे अहिंसा के विषय मे उठने वाले प्रश्नो का आगम व तर्क के आधार पर समाधान दिया गया है।

12 जैन तत्व चिन्तन—मुनि नथमल —प्रस्तुत पुस्तक मे जैन दर्शन के विभिन्न पहलुओ वर्तमान के सन्दर्भ मे विचार किया गया है।

13 जैन धर्म बीज और बरगद—मुनि नथमल —बीजावस्था मे जैन धर्म एक ओर अविभक्त था। विस्तारावस्था मे वह अनेक शाखाओ और प्रशाखाओ में विभक्त हो गया है। तेरापन्थ जैन धर्म की एक शाखा है। शाखा मूल से भिन्न नही होती, इसमे जैन धर्म और तेरापन्थ सम्बन्धी बहुविध सामग्री का सकलन है।

14 ज्ञान प्रकाश—मुनि धनराज (सरसा) —इस कृति मे मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधि ज्ञान, मन पर्यय ज्ञान और केवल ज्ञान के भेद-प्रभेद तथा तत्सम्बन्धी सामग्री सकलित है। विषय की प्रमाणिक जानकारी के लिए आगमो के प्रमाण प्रस्तुत किए गए है अत यह ग्रन्थ अनुसधित्सुओ के लिए बहुत उपयोगी है।

15 चारित्र प्रकाश— मुनि धनराज (सरसा) —इस कृति में 9 प्रकाश पु ज है। महाव्रत, समिति, गुप्ति आदि मुनि धर्मो का विस्तृत विवेचन है।

16 मोक्ष प्रकाश—मुनि धनराज (सरसा) —इस कृति मे बारह पु ज है। इसमे मोक्ष के स्वरूप पर विशद प्रकाश डाला गया है। मोक्ष के साधक (निर्जरा) और बाधक (आश्रव) आदि तत्वो का सुन्दर विवेचन हुआ है। प्रस्तुत ग्रन्थ में सर्व साधारण के उपयोगी कर्म सिद्धान्तो की जानकारी प्राप्त है।

17. जीवन-अजीव—मुनि नथमल —इस कृति मे पच्चीस बोल पर विस्तृत चर्चा की गई है। जैन दर्शन सम्मत गति, पर्याप्ति, प्राण, नौ तत्व, चारित्र आदि-आदि विषयो की प्रारभिक जानकारी देने वाला यह ग्रन्थ जैन दर्शन का प्रवेश द्वार है।

18 लोक प्रकाश—मुनि धनराज (सरसा) —इस कृति मे लोक की आकृति, स्वरूप तथा उसके आधार का विवेचन हुआ है। नरक, तिर्यन्च, मनुष्य और देवता के भेद-प्रभेद स्वरुप, आवागमन, जीवन विधि आदि प्रश्नो का जैन मान्यता के अनुसार समाधान दिया गया है।

19 ज्ञान वाटिका—मुनि छत्रमल —प्रस्तुत पुस्तक मे 21 कलिका (प्रकरण) हैं। इसमे ज्ञान, दर्शन, स्याद्वाद, सप्तभगी, आचार और इतिहास आदि जैन दर्शन सम्बन्धी सामग्री प्रश्नोत्तर के रूप में प्रस्तुत की गई है। बालको को तत्व ज्ञान मे प्रवेश कराने के लिए यह पुस्तक उपयोगी है।

20 श्रावक धर्म प्रकाश—मुनि धनराज —प्रश्नोत्तरात्मक प्रस्तुत कृति श्रावक धर्म के 12 व्रतो का सरल भाषा मे विवेचन देती है। श्रावक की पडिमाए, सलेखना करने की विधि, श्रावक की दिनचर्या व तीन मनोरथ तथा चार विश्रामो पर भी पुस्तक प्रकाश डालती है।

21. नई समाज व्यवस्था में दान—दया—मुनि नगराज —प्रस्तुत पुस्तक में दान-दया का तार्किक और बौद्धिक स्तर से वर्णन किया गया है।

22. तत्व प्रवेशिका—मुनि मधुकर —जैन तत्वो मे प्रवेश करने वाले विद्यार्थियो के लिए ज्ञातव्य करने योग्य सामग्री सकलित है।

अनुदित —

23 सबोधि—व्याख्याकार मुनि शुभकरण—प्रस्तुत ग्रन्थ मुनि श्री नथमल जी कृत सबोधि की विस्तृत व्याख्या है। इसे जैन गीता भी कहते है। गीता का अर्जुन कुरुक्षेत्र के समरागण मे क्लीव होता है तो सबोधि का मेघकुमार साधना की समर भूमि में क्लीव बनता है। गीता के गायक योगिराज कृष्ण हैं और सबोधि के गायक भगवान् महावीर। अर्जुन का पौरुष जाग उठा कृष्ण का उपदेश सुनकर और महावीर की वाणी सुन मेघकुमार की आत्मा चैतन्य से जगमगा उठी। मेघकुमार ने जो प्रकाश पाया वही प्रकाश प्रस्तुत ग्रन्थ मे व्यापक बना है। सवाद शैली मे लिखा गया यह ग्रन्थ समग्र जैन दर्शन का प्रतिनिधित्व करता है।

24 अध्यात्म धर्म जैन धर्म—अनु मुनि शुभकरण—उडीसा के ख्याति प्राप्त विद्वान पडित नीलकन्ठ दास ने गीता पर उडिया भाषा मे टीका लिखी थी। उसकी भूमिका मे जैन धर्म सम्बन्धी एक महत्वपूर्ण अध्याय लिखा था। प्रस्तुत पुस्तक उसी का हिन्दी अनुवाद है। इसमें ऐतिहासिक दृष्टि से जैन धर्म की प्राचीनता अनेक उद्धरणो से सिद्ध की गई है तथा समस्त भोगवादी या आत्मवादी धर्मो पर जैन धर्म दर्शन का प्रतिविम्व माना गया है।

25 उडीसा मे जैन धर्म—मुनि अनु शुभकरण—सम्राट खारवेल ने कलिग मे जैन धर्म को वहुत प्रभावी बनाया। उस समय उडीसा जैन धर्म और जैन श्रमणो के परिव्रजन का महान केन्द्र था। खारवेल ने आगम वाचना की आयोजना की थी। जैन परम्परा मे सम्राट खारवेल का वही स्थल है जो वौद्ध परम्परा मे सम्राट अशोक का है। प्रस्तुत पुस्तक मे इतिहास के सदर्भ में कलिग मे जैन धर्म के प्रभाव की परिस्थितियो का विशद विवेचन किया गया है। जैन इतिहास का विस्तृत अध्याय इस पुस्तक से पुन प्रकाश मे आएगा। प्रस्तुत पुस्तक उडिया भाषा मे डा लक्ष्मीनारायण साहू द्वारा लिखित ओडिसा रे जैन धर्म का हिन्दी अनुवाद है।

यात्रा साहित्य —

1 नव निर्माण की पुकार—स. सत्यदेव विद्यालकार—प्रस्तुत पुस्तक मे अणुवृत आन्दोलन के प्रवर्तक आचार्य श्री तुलसी की दिसम्बर 1956 की 39 दिन की दिल्ली यात्रा का वर्णन है। इसमें प्रेरणाप्रद सदेशो, दार्शनिक प्रवचनो, देश-विदेश के लब्ध-प्रतिष्ठित विचारको, पत्रकारो, धार्मिक नेताओ, राजनीतिज्ञो तथा कूटनीतिज्ञो के साथ जीवन निर्माण सम्वन्धी चर्चा, विचार-विनिमय का दिन क्रम से विवरण प्रस्तुत किया गया है। प्रस्तुत पुस्तक मे 23 आयोजनो, 19 प्रवचनो तथा 32 चर्चा-वार्ताओ की सामग्री है।

2 कुछ देखा कुछ सुना कुछ समझा—मुनि नथमल—प्रस्तुत पुस्तक आचार्य तुलसी की राजस्थान (लाडनूं) से कलकत्ता और वहा से वापस राजस्थान (सरदारशहर) आने तक की यात्रा का इतिहास हे। उपन्यास की शैली से लिखा गया यह यात्रा विवरण बहुत ही रोचक और तत्कालीन घटनाओ का सुन्दर विवेचन प्रस्तुत करता है।

इसके परिशिष्ट मे तारीख क्रम से दो वर्षो की विशेष घटनाओ की सकलना प्रस्तुत की गई है।

3 पदचिन्ह—मुनि श्री चन्द्र—इस कृति में 27-3-62 से 3-2-63 तक आचार्य श्री तुलसी के परिव्रजन का इतिहास वोलता है। यात्रा के साथ घटने वाले सस्मरण, प्रश्नोत्तर, प्रवचन, प्रोग्रामो आदि का सजीव वर्णन है। इस कृति में न केवल यात्रा का दर्पण ही दिया गया है अपितु प्रसगोपात विचार भी दिए गए है जिससे इसकी रोचकता और ग्राह्यता अधिक वढ गई है।

4 जन जन के वीच-भाग-1—मुनि सुखलाल—प्रस्तुत पुस्तक मे आचार्य श्री तुलसी की यात्रा का वर्णन सकलित है।

5. जन जन के वीच-भाग-2—मुनि सुखलाल—इस पुस्तक मे आचार्य श्री की विद्युत्वेग यात्रा मे बगाल विहार से वापस आते उत्तर प्रदेश, पजाव तथा राजस्थान की यात्रा का वर्णन है। आचार्य श्री के जीवन प्रसग, स्थानीय लोगो की मनोवृत्ति, प्राकृतिक चित्रण, इतिहास और यात्रा मे घटने वाली घटनाओ का सूक्ष्म दृष्टि से विश्लेषण किया गया है।

6. वढते चरण—मुनि श्री चन्द्र—वगाल से राजस्थान की ओर आते हुए आचार्य श्री तुलसी की विद्युत्वेग यात्रा के 40 दिन (वगाल और विहार प्रदेश की यात्रा) का विवरण इस कृति मे दिया गया है। इसमे यात्रा के वीच आने वाले गाव या शहरो का इतिहास भी सकलित है। सस्मरण और इतिहास प्रधानात्मक इस कृति मे प्रवचनो का स्पर्श नही के वरावर हुआ है।

सस्मरण साहित्य—

1. रश्मिया-मुनि श्रीचन्द्र—इस कृति मे आचार्य श्री तुलसी के ऐसे क्षणो को सूक्ष्मता से पकडा गया है जो जीवन की पगडडी पर दिशा-सकेत वनकर मार्ग दर्शन करते हैं और व्यवहार मे सरस जीवन जीने की कला सिखाते है। आचार्य श्री तुलसी की पैनी दृष्टि ने हर वस्तु मे गुणो को ग्रहण किया है।

2 आचार्य श्री तुलसी अपनी छाया मे—मुनि सुखलाल—इस कृति मे आचार्य श्री तुलसी के ऐसे सस्मरण सकलित हैं जो शिक्षाप्रद होने के साथ-साथ जीवन को समरस वनाने मे उपयोगी हैं। इन सस्मरणो मे आचार्य श्री तुलसी के विचार, स्वभाव और प्रकृति का प्रतिविम्व वहुत सुन्दर ढग हुआ है।

3 जय सौरभ—मुनि छत्रमल—एक पद्य पर एक सस्मरण को कहने वाली यह कृति जयाचार्य के जीवन के सौ सस्मरणो का सग्रह है।

4 महावीर की सूक्तिया—मेरी अनुभूतिया—मुनि छत्रमल—प्रस्तुत पुस्तक मे भगवान् महावीर की वाणी के सदर्भ मे अपनी विभिन्न घटनाओ को देखा गया है।

5 बुद्ध की सूक्तिया मेरी अनुभूतिया—मुनि छत्रमल—प्रस्तुत पुस्तक मे अपनी अनुभूतियां और सस्मरणो के आलोक मे भगवान बुद्ध की वाणी की तुलनात्मक स्मृति की गई है।

इतिहास साहित्य—

1 तेरापन्थ का इतिहास भाग 1—मुनि बुद्धमल—इस ग्रन्थ मे दस परिच्छेद तथा दस परिशिष्ट हैं। प्रथम परिच्छेद मे प्राग ऐतिहासिक काल और ऐतिहासिक काल मे होने वाली जैन धर्म की स्थितियो का सक्षिप्त विवरण है। दूसरे परिच्छेद से लेकर दसवे परिच्छेद तक तेरापन्थ के नौ आचार्यो का क्रमश एक-एक परिच्छेद मे वर्णन है। प्रत्येक आचार्य का जीवन तथा उसका व्यक्तित्व और कृतित्व, सत सतियो की ख्यात, सम्प्रदाय की परम्परा, आन्तरिक व्यवस्था, अनुशासन, मर्यादा, विकास क्रम, युगानुकुल परिवर्तन आदि विविध सामग्री इस ग्रन्थ मे सग्रहीत की गई है। इसमें उन घटनाओ का भी उल्लेख है जो सघ मे श्रुतानु श्रुतिक रूप से प्रचलित थी।

2. इतिहास के बोलते पृष्ठ—मुनि छत्रमल—प्रस्तुत पुस्तक में आचार्य भिक्षु के उत्क्रान्तिमय जीवन से जुड़ी घटनावलियो को शब्दो का आकार दिया गया है। घटनाओ की प्रामणिकता के लिए सदर्भ ग्रन्थो का भी उल्लेख किया गया है।

3 चमकते चाद—मुनि धनराज—इस लघु कृति मे तेरापन्थ के नव आचार्यों का अति सक्षिप्त जीवन इतिहास है।

आगम साहित्य—

आगम सपादन का कार्य 25 वर्षो से चल रहा है। आगमो की भाषा प्राकृत है। मूल पाठ का सशोधन, सस्कृत छाया, हिन्दी अनुवाद, तुलनात्मक टिप्पणिया, शब्दानुक्रम, नामानुक्रम और समीक्षात्मक अध्ययन ये आगम सपादन के प्रमुख अग है। इस शोध कार्य के वाचना प्रमुख है—आचार्य श्री तुलसी और प्रधान सपादक तथा विवेचक है-मुनि श्री नथमल जी। इस गुरुतर कार्य को सम्पन्न करने के लिए लगभग 20-25 साधु-साध्विया जुटे हुए है। काल की इस लम्बी, अवधि मे जितना कार्य हुआ है उसका कुछ भाग प्रकाशित हुआ है। हिन्दी मे अनूदित और विवेचित आठ ग्रन्थ इस प्रकार है—

1 आयारो (आचाराग) — यह भगवान् महावीर की वाणी का सबसे प्राचीन सकलन है। इसकी भाषा अन्यान्य आगमो से पृथक् पडती है। यह सूत्रात्मक है किन्तु यत्र तत्र विभिन्न छन्दो के एक-एक दो-दो तीन-तीन चरण भी उपलब्ध होते है। भगवान् महावीर के जीवन और दर्शन का यह प्राचीनतम श्रोत है। इसका आधुनिक शैली मे हिन्दी अनुवाद तथा टिप्पणी बहुत अपेक्षित थे। यह ग्रन्थ इसकी पूर्ति करता है। टिप्पणो तथा मूल के अनुवाद से जैन साधना पद्धति का सुन्दर चित्र प्रस्तुत होता है।

2 ठाण (स्थानाग) — यह तीसरा अग आगम है। इसमें एक से दस तक की सख्या के आधार पर हजारो विषयो की सूचना दी गई है। यह ग्रन्थ आध्यात्मिक तथ्यो तथा जैन परम्परा के मूलभूत सिद्धान्तो और परम्परा का आकर ग्रन्थ है। इसके विस्तृत टिप्पण जैन, बौद्ध और वैदिक परम्परागत अनेक नई सूचनाए प्रस्तुत करता है। इस रूप में ग्रन्थ के प्रस्तुतीकरण अपने आप मे एक अनोखा अनुष्ठान है।

3 समवायो (समवायाग) — यह चौथा अग आगम है। यह भी साख्यिक विधि से सकलित ग्रन्थ है। इसमें विविध प्रकार की सूचनाए सकलित है।

4 उत्तरज्झयणाणि (उत्तराध्ययन) — यह सकलन सूत्र है। इसके छत्तीस अध्ययन है। इसमें अनेक ऐतिहासिक कथाओ के माध्यम से जैन परम्परा के अनेक तथ्यो को उजागर किया गया है। इसमे जैन योग तथा जैन तत्ववाद और परम्परा के अनेक अध्ययन है।

5 दसवेआलिय (दसवैकालिक)—यह आचार्य शय्यभव की रचना है। इसका रचना-काल वीर निर्वाण की पहली शताब्दी है। इसमे लगभग 750 श्लोक है। साधारणतया यह माना जाता है कि यह बहुत सरल सूत्र है। किन्तु सक्षिप्त शैली मे लिखा गया यह सूत्र बहुत गूढ है। प्रस्तुत सस्करण मे इसके एक एक शब्द की मीमासा प्रस्तुत की गई है। यह सस्करण इस ग्रन्थ गत विशेषताओ की अभिव्यक्ति करने में पूर्ण सक्षम है।

6 उत्तराध्ययन एक समीक्षात्मक अध्ययन — प्रस्तुत ग्रन्थ श्रमण परम्परा का प्रतिनिधि ग्रन्थ है। यह दो खण्डो में विभाजित है। प्रथम खण्ड मे श्रमण और वैदिक परम्पराये,

श्रमण संस्कृति का प्रागैतिहासिक अस्तित्व, श्रमण संस्कृति के मतवाद, आत्मविद्या, तत्वविद्या, जैन धर्म का प्रचार-प्रसार, साधना पद्धति, योग आदि अतीव महत्वपूर्ण और गम्भीर विषयो पर प्रामाणिक सामग्री उपलब्ध की गई है। द्वितीय खड मे उत्तराध्ययन सूत्र से सबधित विषयो पर विस्तार से चर्चा की गई है। उसमे व्याकरण विमर्श, छन्दो विमर्श, चूर्णिकृत परिभाषायें, कथानक सक्रमण, भौगोलिक व व्यक्ति परिचय, तत्कालीन संस्कृति और सभ्यता आदि की चर्चा है।

7 दशवैकालिक-एक समीक्षात्मक अध्ययन —प्रस्तुत ग्रन्थ मे दशवैकालिक सूत्र का समीक्षात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। यह पाच अध्यायो मे विभक्त है —प्रथम अध्याय मे दशवैकालिक का महत्व, उपयोगिता, रचनाकाल, रचनाकार का जीवन परिचय, रचना शैली, व्याकरण विमर्श, छन्द विमर्श तथा भाषा दृष्टि से चिन्तन किया गया है।

द्वितीय अध्याय मे साधना तथा साधना के अग पर विचार हुआ है। तृतीय अध्याय मे महाव्रत और चतुर्थ अध्याय मे चर्या और विहार, ईर्यापथ, वाकशुद्धि, एषणा, इन्द्रिय और मनोनिग्रह आदि विषयो को विस्तार से विवेचित किया गया है। पाचवें अध्याय मे आहार चर्या, निक्षेप पद्धति, निरुक्त, तत्कालीन सभ्यता और सस्कृति पर प्रकाश डाला गया है।

8 दशवैकालिक उत्तराध्ययन (अनुवाद) — ये दोनो आगम जैन आचार-गोचर और दार्शनिक विचारधारा का प्रतिनिधित्व करते है। दशवैकालिक मे अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह आदि धर्म तत्वो का, साधुओ की भिक्षाचर्याविधि, भाषा विवेक, विनय तथा व्यावहारिक शिक्षाओ का विस्तृत और सूक्ष्म विवेचन है। उत्तराध्ययन मे वैराग्यपूर्ण कथा प्रसगो द्वारा धार्मिक जीवन का अति प्रभावशाली चित्राकन तथा तात्विक विचारो का हृदयग्राही सग्रह है।

9 आगम और त्रिपिटक एक अनुशीलन—मुनि नगराज :— श्रमण परम्परा की दो मुख्य धारायें है —जैन और बौद्ध। जैन परम्परा का नेतृत्व भगवान् महावीर ने किया और बौद्ध परम्परा का नेतृत्व महात्मा बुद्ध ने। दोनो सम-सामयिक थे। दोनो का कर्मक्षेत्र लगभग एक ही रहा। दोनो अहिंसा, सयम और करुणा को लेकर बढे। अत दोनो मे अभिन्नता के अंश अधिक थे, भिन्नता के कम। प्रस्तुत ग्रन्थ मे दोनो श्रामणिक परम्पराओ के कतिपय विषयो का तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। इसके एक अध्याय मे महावीर और बुद्ध में ज्येष्ठ कौन? इस प्रश्न को विभिन्न प्रमाणो से समाहित किया है। महावीर और बुद्ध के समकालीन राजा श्रेणिक, बिम्बिसार, कूणिक, चण्डप्रद्योत, प्रसेनजित्, चेटक आदि पर आगमो तथा त्रिपिटको के आधार पर तुलनात्मक अध्ययन प्रस्तुत किया है। भगवान महावीर और जैन धर्म विषय के जितने भी समुल्लेख त्रिपिटक साहित्य मे है वे सब प्रस्तुत ग्रन्थ के एक अध्याय में सकलित कर दिए गए है। शोधनकर्त्ताओ के लिये इनका बहुत महत्व है।

10 महावीर और बुद्ध की समसामयिकता—मुनि नगराज —प्रस्तुत पुस्तक मे महावीर और बुद्ध की काल गणना पर ऐतिहासिक दृष्टि से विचार किया गया है। इतिहास के विद्वानो ने प्रस्तुत पुस्तक को मान्यता दी है।

जीवनी साहित्य —

1. भगवान महावीर—आचार्य तुलसी.— प्रस्तुत पुस्तक में भगवान महावीर को सरल सुबोध भाषा में प्रस्तुत किया गया है। बडे बूढे, स्त्री, पुरुष, सभी के लिये सुपाच्य है। इसमें न सैद्धान्तिक जटिलतायें है और न दार्शनिक गुत्थिया ही। सब कुछ सरल भाषा में

समझाया गया है। इसके अन्त में महावीर वाणी के रूप मे लगभग सौ श्लोकों का सग्रह श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनो परम्पराओ के मान्य ग्रन्थो से किया गया है।

2. श्रमण महावीर—मुनि नथमल :—इस कृति मे भगवान महावीर के जीवन का ऐसा चित्र है जिसमे श्वेताम्बर और दिगम्बर परम्परा की भेद रेखायें अव्यक्त रही है और उनका साधनामय जीवन का विराट व्यक्तित्व पक्ष उभर कर आया है। इस ग्रन्थ की विशेषता यह है कि भगवान महावीर को दैवीकरण से दूर रखकर मानव की भूमिका से देखा गया है। ध्यान साधना आदि की प्रतिक्रियाओ से उनका व्यक्तित्व क्रमश आरोहण होता हुआ अत मे अपने लक्ष्य तक पहुच गया है।

यह ग्रन्थ काल्पनिक नही है लेकिन दिगम्बर और श्वेताम्बर के आधार ग्रन्थ, सूत्र और आलेखन आदि 250 प्रामाणिक स्रोतो के अध्ययन के वाद लिखा गया है। इसकी प्रामाणिकता इससे और वढ जाती है कि सारे प्रयुक्त ग्रन्थो के सदर्भ परिशिष्ट में दिए गए है। महावीर का जीवन इतिहास, महावीर की आध्यात्मिक साधना और महावीर की खोज का एक ऐसा सुस्वादु मिश्रण इस ग्रन्थ में है कि आप इसे पढ़ना प्रारम्भ करेंगे तो पढ़कर ही उठेंगे और अनुभव करेंगे कि आपने महावीर की हजार-हजार भव्य प्रस्तर मूर्तियो के अन्तराल को झाक लिया है और महावीर आपके सामने एक दम निकट खडे है।

3. भिक्षु विचार दर्शन—मुनि नथमल —प्रस्तुत कृति में 7 अध्याय हैं। उनमे आचार्य भिक्षु के सिद्धान्तो, मन्तव्यो, विचारो एव निष्कर्षों का गहराई से प्रतिपादन हुआ है। आचार्य भिक्षु क्रान्तद्रष्टा थे। प्रस्तुत कृति मे उनके क्रान्ति वीज तथा साध्य-साधन शुद्धि की सूक्ष्म मीमासा की गई है। रोचक शैली मे लिखा गया यह ग्रन्थ आचार्य भिक्षु के जीवन और दर्शन को समग्रता से प्रस्तुत करने के साथ-साथ जैन दर्शन की कई उलझी गुत्थियो को सुलझाता है। आचार्य भिक्षु धार्मिक सघ के नेता ही नही, राजस्थानी साहित्य के सफल स्रष्टा भी थे। अनेक रूपो में उनका व्यक्तित्व उभरा है। प्रस्तुत कृति मे उनके दो रूप वहुत ही स्पष्ट और प्रभावशाली हैं —

1 विचार और चारित्र शुद्धि के प्रवर्तक
2 सघ व्यवस्थापक

कुल मिलाकर आचार्य भिक्षु के विचार विन्दुओ का एक समाकलन है।

4 आचार्य श्री तुलसी-जीवन दर्शन—मुनि नथमल —आचार्य श्री तुलसी ने वहुत किया, वहुत सघर्ष झेले, चरित्र विकास के लिए वहुत यत्न किया, वहुत परिव्रजन किया, वहुत चिन्तन किया और वहुत कार्य किया। इन सारे वहुत्वो का विस्तार भी वहुत हो सकता है। प्रस्तुत पुस्तक में इस विस्तार को भी शाब्दिक अल्पत्व मे कुशलता से सजोया गया है। इस पुस्तक की विशेषता यह है कि यह जीवनी गुणात्मक न होकर समीक्षात्मक है। इसमें आचार्य श्री की व्यक्तिगत डायरी के अ श भी यत्र-तत्र उद्धृत है।

5 आचार्य श्री तुलसी जीवन पर एक दृष्टि—मुनि नथमल —प्रस्तुत कृति आचार्य श्री तुलसी के 37 वर्षीय जीवन पर प्रकाश डालने वाली प्रथम कृति है। इसमे आचार्य श्री के वहुमुखी व्यक्तित्व, कृतित्व, विचार और जीवन प्रसगो का हृदयग्राही विवेचन है।

6 आचार्यश्री तुलसी जीवन और दर्शन—मुनि वुद्धमल —प्रस्तुत कृति आचार्य श्री तुलसी के जन्म से लेकर धवल समारोह तक उनकी वहुमुखी प्रवृत्तिया तथा उनके कर्तृत्व और व्यक्तित्व पर पूर्ण प्रकाश डालती है।

7 बूंद बूंद बन गई गंगा—साध्वी सघमित्रा –प्रस्तुत कृति मे साध्वी प्रमुखा लाडाजी के जीवन-प्रसग, व्यक्तित्व-दर्शन और उनका कर्तत्व बोलता है। साथ में साध्वी प्रमुखा के प्रति साधु-साध्वियो तथा श्रावक-श्राविकाओ की श्रद्धान्जली भी सकलित है।

अणुव्रत साहित्य—

1 अणुव्रत के सदर्भ मे—आचार्य तुलसी –प्रस्तुत पुस्तक प्रश्नोत्तरात्मक है। इसमें धर्म, नैतिकता, आर्थिक विषमता, राष्ट्र की प्रवृत्ति, चन्द्रलोक, शोपण विहीन समाज, साधु सस्था आदि सम सामयिक अनेक प्रश्नो को उपस्थित किया गया है और उनका अणुव्रत के सदर्भ मे आचार्यश्री तुलसी से समाधान लिया गया है।

2 नैतिकता का गुरुत्वाकर्षण—मुनि नथमल –प्रस्तुत कृति में नैतिकता के मूलभूत प्रश्नो को उपस्थित कर वर्तमान के सदर्भ मे नैतिकता की मान्यताओ पर अणुव्रत के माध्यम से चिन्तन प्रस्तुत किया गया है। इसमे अणुव्रत को वैचारिक धरातल पर उपस्थित कर वर्तमान के वादो मे अणुव्रत की उपयोगिता पर प्रकाश डाला गया है।

3 प्रश्न और समाधान—मुनि सुखलाल –विश्व सघ और अणुव्रत, युवक ममाज और अणुव्रत, अस्पृश्यता और अणुव्रत, अणुव्रतो का रचनात्मक पक्ष, राजनीति और अणुव्रत आदि वर्तमान के सदर्भ मे उपस्थित होने वाले प्रश्नो को उपस्थित कर अणुव्रत आन्दोलन के प्रवर्तक आचार्य श्री तुलसी से समाधान लिए गए है।

4 अणुव्रत दर्शन—मुनि नथमल –आज का युग नैतिक समस्या का युग है। कुछ विकासमान गरीब देशो में अर्थ विपयक अनैतिकता चल रही है। मानवीय घृणा के रूप मे समाज विपयक अनैतिकता विकसित और अविकसित दोनो प्रकार के देशो में चलती है। राजनीति विषयक अनैतिकता की भी यही स्थिति है। यह बहुरूपी अनैतिकता मानवीय दृष्टिकोण आध्यात्मिक समानता की अनुभूति होने पर ही मिट सकती है। प्रस्तुत पुस्तक में इन दोनो दृष्टिकोणो से अनैतिकता की चर्चा की गई हैं।

5 अणुव्रत विचार दर्शन—मुनि बुद्धमल –प्रस्तुत पुस्तक में अणुव्रत आन्दोलन के विचार पक्ष के परिप्रेक्ष्य मे लिखे गए 16 निबन्धो का सकलन है।

6 अणुव्रत जीवन दर्शन—मुनि नगराज –प्रस्तुत पुस्तक मे अणुव्रत आन्दोलन के प्रत्येक नियम में अन्तर्हित सूक्ष्मतम भावनाओं का विस्तार पूर्वक विवेचन किया गया है। अन्त मे अणुव्रतियो के जीवन सस्मरण भी प्रस्तुत किए गए है।

7 अणुव्रत दृष्टि—मुनि नगराज –अणुव्रत के नियमो की विस्तृत व्याख्या के रूप मे प्रस्तुत पुस्तक लिखी गई है।

8. अणु से पूर्ण की ओर—मुनि नगराज –प्रस्तुत पुस्तक रोटरी क्लबो आदि विभिन्न स्थलो पर दिए गए अणुव्रत सम्बन्धी भापणो का सकलन है।

9 अणुव्रत विचार—मुनि नगराज –दैनिक पत्रो मे प्रकाशित अणुव्रत सम्बन्धी भाषणो का सकलन है।

10 अणुव्रत क्रान्ति के बढते चरण—मुनि नगराज –इसमे अणुव्रत के उद्गम और उसके क्रमिक विकास का ब्यौरा प्रस्तुत है।

11. अणुव्रत आन्दोलन और विद्यार्थी वर्ग—मुनि नगराज—विद्यार्थियो में चल रही अणुव्रत गतिविधियो का लेखा जोखा इसमें प्रस्तुत किया गया है।

12. प्रेरणा दीप—मुनि नगराज—अणुव्रतियो के रोचक और प्रेरक संस्मरणो का सकलन है।

13. अणुव्रत—आचार्य तुलसी—प्रस्तुत पुस्तक में अणुव्रतो के नियम-उपनियम तथा लक्ष्य-साधना और श्रेणियो की परिचर्या की गई है। साथ मे वर्गीय अणुव्रतो के भी नियम सकलित हैं। एक प्रकार से यह पुस्तक नैतिक विकास की आचार सहिता है।

उपन्यास कथा साहित्य—

1 निष्पत्ति—मुनि नथमल—यह विचार प्रधान लघु उपन्यास है। हिंसा की प्रतिहिंसा की प्रतिक्रिया हिंसा को जन्म देती है, हिंसा से कभी हिंसा नही मिटती, इसी तथ्य के परिप्रेक्ष्य मे इस निष्पत्ति की निष्पत्ति हुई है।

2. बधन टूटे—भाग 1, 2, 3—अनु मुनि दुलहराज—यह कृति जैन कथानक महासती चन्दनबाला पर आधारित गुजराती उपन्यास का हिन्दी अनुवाद है। कथा प्रसग में अनेक मोड हैं। तत्कालीन राजनैतिक, सामाजिक तथा धार्मिक स्थितियो का तथा तन्त्र-मन्त्र-वादियो की प्रवृत्तियो का सुन्दर समावेश इसमे है।

3 गागर मे सागर—मुनि नथमल—प्रस्तुत कृति मे 47 लघु कथाए है। प्रत्येक कथा हृदय को स्पर्श करती हुई आगे बढती है और दिशा बोध मे उसकी परिसमाप्ति होती है। शब्द थोडे भाव गहरे की उक्ति का प्रत्यक्ष प्रमाण प्रस्तुत पुस्तक है।

4 जैन जीवन—मुनि धनराज (सरसा)—प्रस्तुत पुस्तक मे जैन जगत के ऐसे 24 कथानक व प्रसग हैं जो प्राचीन परम्परा से सम्बन्धित हैं।

5 विजास—मुनि राकेश कुमार:—इस पुस्तक मे भारत तथा विश्व के 118 जीवनप्रसंग तथा लघु कहानिया है।

6 प्रकास—मुनि राकेशकुमार—प्रस्तुत पुस्तक मे कालिदास, स्वामी विवेकानन्द, आचार्य बहुश्रुति महात्मा गाधी, तिलक, जार्ज वाशिंगटन, अब्राहमलिंकन, आइंस्टीन आदि अनेक भारत, ग्रीक एव पर्शियन चिन्तको के 112 जीवन प्रसग व सवाद है।

7 विश्वास—मुनि मोहन शार्दूल—प्रस्तुत पुस्तक मे 84 लघु कथानक सग्रहीत हैं जो नैतिकता और सदाचार का पाठ पढाते है।

8 अगडाई—मुनि मोहन शार्दूल—प्रस्तुत पुस्तक अणुव्रत भावना के प्रकाश मे लिखी गई 15 काल्पनिक कहानियो का सग्रह है।

9. आदमी की राह—मुनि मोहनलाल शार्दूल—प्रस्तुत पुस्तक मे 15 नई कहानियाँ हैं। इन काल्पनिक कहानियो में मनुष्य को अपने मानवता के पथ पर आने के लिये प्रेरणा दी गई है।

10. बाल कहानिया भाग 1, 2, 3—मुनि कन्हैयालाल—प्रस्तुत तीन पुस्तको में बच्चों के लिए शिक्षाप्रद कहानिया सकलित है।

11. आदर्श पोथी—मुनि छत्रमल—प्रस्तुत पुस्तक मे अ से लेकर ज्ञ तक के वर्णों पर 50 कथानक हैं। प्रत्येक वर्ण का अर्थ वही किया गया है जो कथानक का सार है। प्रत्येक वर्ण पर होने वाली कथा अन्त्याक्षरी के लिए उपयोगी है।

पाठ्यक्रम साहित्यः—

1 नैतिक पाठमाला—मुनि नथमल —प्रस्तुत कृति स्कूलो मे नैतिक शिक्षा के अन्तर्गत 11 वी कक्षा के लिए लिखी गई पाठ्य पुस्तक है। इसमे नैतिकता के मूलभूत तथ्यो को रोचक कथानको, सस्मरणो तथा सवादो से प्रस्तुत किया गया है, जिससे विद्यार्थी उन्हे सहजतया अपना सके।

2 नैतिक पाठमाला—मुनि सुखलाल —प्रस्तुत कृति स्कूलो मे नैतिक शिक्षा के अन्तर्गत 7 वी कक्षा के लिए लिखी गई पाठ्यपुस्तक है।

3 नया युग नया दर्शन—मुनि नगराज —प्रस्तुत पुस्तक अणुव्रत विशारद द्वितीय वर्ष के पाठ्यक्रम मे निर्धारित थी। इसमे धर्म, सस्कृति, विज्ञान, शिक्षा आदि जीवन के मूलभूत विषयो को वर्तमान के सदर्भ मे सजगता से खोला गया है।

4 नैतिक विज्ञान—मुनि नगराज —प्रस्तुत पुस्तक नैतिक प्रशिक्षण की दृष्टि से लिखी गई है। इसमे ह्रदय स्पर्शी उदाहरणो के द्वारा नैतिकता का विश्लेषण किया गया है। अणुव्रत परीक्षा के प्रथम वर्ष की यह पाठ्यपुस्तक है।

5 धर्मबोध भाग-1, 2, 3—मुनि नथमल —प्रस्तुत तीनो कृतिया जैन धर्म के पाठ्यक्रम की पाठ्य पुस्तकें है। इनमे जैन धर्म, दर्शन, सस्कृति, सभ्यता परम्परा, तत्व विद्या आदि का ज्ञान क्रमश कराने का प्रयत्न किया गया है। इनमें जैन कथानक, जैन साहित्य आदि के भी पाठ है। धार्मिक क्रियाओ के प्रति वच्चो का सहज आकर्षण हो, इसको ध्यान मे रखते हुए मनोवैज्ञानिक ढंग से तत्वो का प्रतिपादन किया गया है।

6 आत्मबोध भाग-1 व 2—मुनि किशनलाल, आत्मबोध भाग-3, 4—मुनि सुदर्शन — प्रस्तुत चार पुस्तकें महासभा धार्मिक पाठ्यक्रम में पाठ्यपुस्तक के रूप मे निर्धारित थी। इसमें विविध लेखको की जैन दर्शन और तेरापन्थ सप्रदाय सम्बन्धी सामग्री सकलित है।

प्रवचन साहित्य —

1 प्रवचन डायरी भाग-1—आचार्य तुलसी —प्रस्तुत ग्रन्थ आचार्य तुलसी के ई. सन् 1953 के प्रवचनो का सग्रह है। प्रवचनो में विविध विषय हैं, उन विविधताओ का लक्ष्य एक ही है जीवन निर्माण। जीवन निर्माण की दिशा में दिए गए ये प्रवचन मानव समाज को एक नया दिशा सकेत देते हैं।

2 प्रवचन डायरी भाग-2—आचार्य तुलसी —इसमे आचार्य तुलसी ई. सन् 1954 के 163 और ई सन् 1955 के 158 प्रवचनो का सग्रह है। प्रवचनो के नीचे दिनाक और स्थान का उल्लेख किया गया है।

3 आचार्य श्री तुलसी के अमर सदेश —प्रस्तुत पुस्तक में आचार्य तुलसी के विभिन्न अवसरो पर दिए गए प्रवचनो का सग्रह है। प्रस्तुत पुस्तक स्वतन्त्रता, शान्ति और मानवता के नव निर्माण मे एक मूलयवान विचार निधि है।

4 पथ पाथेय—स मुनि श्रीचन्द्र —प्रस्तुत कृति आचार्य तुलसी के प्रवचनो के विचार विन्दुओ का सकलन है। गद्य काव्य के रूप मे चुने गए ये विचार विषय क्रम से हैं तथा इनमें

मार्मिक वेधकता है। सक्षेप मे आचार्यश्री के विचारो का प्रतिनिधित्व करने वाली प्रथम पुस्तक है।

5 शाति के पथ पर भाग-1, 2—आचार्य तुलसी –प्रस्तुत दोनो पुस्तको में आचार्य श्री तुलसी के प्रवचनो का सग्रह है। सास्कृतिक सम्मेलन, दर्शन कान्फ्रेन्स, युवक सम्मेलन, विचार परिषद, साहित्य परिषद्, सस्कृत साहित्य सम्मेलन, महावीर जयन्ती, दीक्षा समारोह, स्वतन्त्रता दिवस, पर्युषण पर्व, अहिंसा दिवस आदि विशेष अवसरो पर दिए गए प्रवचन तथा सदेश सकलित है।

6 तुलसी वाणी—मुनि दिनकर –प्रस्तुत पुस्तक मे आचार्य श्री तुलसी के प्रेरणाप्रद छोटे-छोटे प्रवचनो का सकलन है।

काव्यसाहित्य —

1 भाव और अनुभाव—मुनि नथमल.–प्रस्तुत कृति सूक्तियो और नीति प्रवचनो का भण्डार है। भाषा की सरसता और सौम्यता के कारण सूक्तियो मे निखार आ गया है। प्रस्तुत कृति मे अनुभूतियो का तीखापन है और व्यापक दर्शन है।

2 अनुभव चिन्तन मनन—मुनि नथमल –प्रस्तुत कृति में दार्शनिक चिन्तनशीलता और अनुभूतियो की प्रखरता मुखरित हुई है।

3 आखो ने कहा—मुनि बुद्धमल –प्रस्तुत कृति में परिस्थितियो का ऊबड-खाबड तथा अज्ञात पगडण्डी पर बढने वाले मानव सकल्प को विभिन्न प्रतीको के माध्यम से व्यक्त किया गया है।

4 पथ और पथिक—साध्वी राजीमती –इस लघु कृति मे निराश व्यक्ति को उसके कर्तव्य-बोध के प्रति जागरुक किया गया है। पथिक सबोधन से लिखे गए य गद्य प्रकृति की मूक भाषा मे प्रेरणा के स्वर निकालते है।

5 रेखाचित्र—मुनि श्रीचन्द्र –51 गद्यात्मक प्रस्तुत कृति मे आचार्यश्री तुलसी के जीवन का ऐसा शब्द चित्र खीचा गया है जिसकी प्रत्येक रेखा जीवन की विशेष घटना या विचारो का प्रतिनिधित्व करती है।

6 प्रकृति के चौराहे पर—साध्वी मजुला –प्रस्तुत कृति में सवेदनशील मानस का शब्द-मय प्रतिबिम्ब है। प्रकृति की विचित्रता में 88 जिज्ञासाओ को उपस्थित करके उनका समाधान भी प्रश्नो के माध्यम से दिया गया है।

7. वर्तमान भारत का नक्शा –

8 मौन वाणी—मुनि चन्दन (सरसा) –प्रस्तुत कृति मे सरल व सीधी भाषा में व्यावहारिक तथ्यो से प्रेरणा को स्वर मुखरित किया गया है।

9 अन्तर्ध्वनी—मुनि चन्दन (सरसा) –इस लघु कृति में अनुभूतियो और कल्पनाओ का सगम हुआ है।

10 राजहंस के पखो पर—मुनि चन्दन –प्रस्तुत कृति मे विविध रूपको द्वारा धार्मिक, राजनैतिक एव सास्कृतिक विधा पर प्रतीकात्मक गद्य लिखे हुए है ।

11 प्रकृति और प्रेरणा—मुनि कन्हैयालाल –प्रस्तुत कृति मे प्रकृति के माध्यम मे अनेक प्रेरणाए दी गई है । कुछ गद्य उपदेशात्मक भी है ।

12 विजय यात्रा—मुनि नथमल –आत्मा की साक्षात् अनुभूति ही विजय है । तप, सयम, स्वाध्याय, ध्यान, जप, कायोत्सर्ग आदि योगो मे जागरुकता यात्रा है । प्रस्तुत कृति में भगवान महावीर की विजय यात्रा को काव्य मे प्रस्तुत किया गया है ।

13 विचार विकास—मुनि धनराज (लाडनू) –प्रस्तुत कृति मे 71 विपयो पर लघु निबन्धात्मक गद्य है । इसमे सामान्य जीवन-व्यवहार मे उपयोगी विषयो पर अपने अनुभवो तथा विचारो को शब्दो का आकार दिया गया है ।

14 नास्ति का अस्तित्व—मुनि नथमल –प्रस्तुत कृति मे जैन दर्शन के परिप्रेक्ष्य मे आत्मा का अस्तित्व जैसे गम्भीर विपय को काव्य का परिधान देकर सरस व सुगम वनाया गया है । दर्शन के क्षेत्र मे यह नया उपक्रम है ।

15 उठो जागो—मुनि बुद्धमल –प्रस्तुत पुस्तक सस्कृत के गद्यो का हिन्दी अनुवाद है । इसमे 54 गद्य युवक को स बोधित कर लिखे गए है , ये गद्य निराश युवक के मानस को झकझोर कर उसमे कर्तव्य वोध को जागृत करते है ।

विविध साहित्य –

1 सास और वहु—मुनि श्रीचन्द्र –प्रस्तुत पुस्तक पारिवारिक जीवन के परिप्रेक्ष्य में परिवार के सदस्यो–सास, बहु, पति-पत्नी, नौकर आदि के सम्बन्धो पर पूर्ण प्रकाश डालती है । सरल भाषा मे सत्य घटनाओ पर आधारित यह पुस्तक हर परिवार के लिए उपयोगी है ।

2 स्मृति विज्ञान—मुनि श्रीचन्द्र –प्रस्तुत पुस्तक में स्मरण शक्ति के विकास के साधनो पर प्रकाश डाला गया है और प्रयोग भी प्रस्तुत किए गए है ।

3 विसर्जन—मुनि नथमल –प्रस्तुत पुस्तक मे वर्तमान के सदर्भ में विसर्जन के विभिन्न पहलुओ पर समग्रता से विचार किया गया है ।

4 वाल दीक्षा एक विवेचन—मुनि नगराज –प्रस्तुत पुस्तक में जैन दीक्षा पर सर्वांगीण विवेचन और वाल दीक्षा की उपादेयता पर वौद्धिक तथा तार्किक रूप से विवेचन किया गया है । भारतीय सस्कृति के तथा रूप अनेको उदाहरणो से पूर्ण है ।

5 मर्यादा महोत्सव इतिहास और परिचय—मुनि नगराज –मर्यादा शताब्दि समारोह के अवमर पर प्रस्तुत पुस्तक लिखी गई है । इसमे तेरापन्थ के मर्यादा महोत्सव का आदि से अन्त तक का वर्णन प्रामाणिकता से प्रस्तुत किया गया है ।

6 जयाचार्य की कृतिया—मुनि मधुकर –प्रस्तुत पुस्तक मे महामनीषी जयाचार्य के सम्पूर्ण साहित्य (हस्तलिखित पुस्तको) का विस्तृत परिचय दिया गया है ।

लघु पुस्तिका (ट्रेक्ट) साहित्य—

1 विजय के आलोक में—मुनि नथमल—प्रस्तुत कृति भगवान महावीर के वाङ मय पर आधारित चिन्तन प्रधान लेख है।

2 श्रमण सस्कृति की दो धाराए जैन और बौद्ध—मुनि नथमल—श्रमण सस्कृति पर एक निवन्धात्मक लघु कृति है।

3 विश्व स्थिति—मुनि नथमल—विश्व स्थिति के परिप्रेक्ष्य म लिखे गए 11 लघु निबन्धात्मक प्रस्तुत कृति है।

4 शान्ति और समन्वय का पथ-नयवाद—इसमें नयवाद के दार्शनिक पहलुओ के साथ आज की राजनैतिक गुत्थियो का तुलनात्मक विवेचन देते हुए शान्ति और समन्वय का एक व्यावहारिक हल प्रस्तुत किया गया है।

5 भारतीय भापाओ को जैन साहित्यकारो की देन—मुनि बुद्धमल—प्राकृत, सस्कृत, अपभ्र श हिन्दी, गुजराती, मराठी, राजस्थानी, कन्नड, तमिल आदि भापाओ मे योग, दर्शन, तत्व-निरूपण, इतिहास, पुराण, नीति, राजनीति, अर्थशास्त्र, व्याकरण, कोप, छन्द, अलकार, भूगोल, गणित, ज्योतिष, आयुर्वेद, मन्त्र तन्त्र, सगीत, रत्न परीक्षा आदि विपयो पर जो साहित्य लिखा गया है उसका सक्षेप मे व्यौरा दिया गया है।

6 तेरापन्थ की विचारधारा और वर्तमान लोक चिन्तन—मुनि बुद्धमल—इसमें तेरापन्थ की विचार धारा को वर्तमान के चिन्तको विचारको के परिप्रेक्ष्य मे देखा गया है।

7 तेरापन्थ शासन प्रणाली—मुनि नगराज—तेरापन्थ की शासन व्यवस्था को वर्तमान समाजवादी आदि शासन प्रणालियो के साथ तोला गया है।

8 युग प्रवर्तक भगवान महावीर—मुनि नगराज—भगवान महावीर के जीवन पर और उनके अहिंसा अनेकान्त के सिद्धान्तो पर प्रकाश डाला गया है।

9 सर्वधर्म सदभाव—मुनि नगराज—सब धर्मों मे नवीनता होते हुए भी हम एकता कैसे खोज सकते है। यह इस ट्रेक्ट का विषय है।

10 अणुव्रत आन्दोलन—मुनि नगराज—अणुव्रतो के आदर्शो को सक्षेप मे विवेचित किया गया है।

11 आचार्य श्री तुलसी एक अध्ययन—मुनि नगराज—आचार्यश्री के व्यक्तित्व और कृतित्व पर एक परिचय पुस्तिका है।

12 तेरापन्थ दिग्दर्शन—मुनि नगराज—तेरापन्थ की सक्षिप्त परिचयात्मक पुस्तिका है।

13 मानवता का मार्ग अणुव्रत आन्दोलन—मुनि बुद्धमल—मानवता की भूमिका पर अणुव्रत आन्दोलन को प्रस्तुत किया गया है।

14 जैन धर्म एक परिचय—मुनि दुलहराज—जैन धर्म की प्रारम्भिक जानकारी के लिए यह उपयोगी पुस्तिका है ।

15 एक आदर्श आत्मा—मुनि धनराज (सरसा)—मुनि श्री केवलचन्द जी स्वामी का सक्षिप्त जीवन परिचय है ।

16 अणुव्रत आन्दोलन एक परिचय—मुनि रूपचन्द्र—उस समय तक अणुव्रत आन्दोलन की गति विधि तथा प्रमुख प्रवृत्तियो का दिशा बोध इसमे है ।

17 आचार्यश्री तुलसी एक परिचय—मुनि रूपचन्द्र—आचार्य श्री तुलसी के जीवन का सक्षिप्त परिचय प्रस्तुत पुस्तिका में है ।

18 तेरापन्थ एक परिचय—मुनि रूपचन्द्र—तेरापन्थ की आज तक की प्रगति का अति सक्षेप में दिग्दर्शन किया गया है ।

19 तेरापन्थ-मुनि बुद्धमल—तेरापन्थ का संक्षिप्त परिचय इसमे प्रस्तुत किया गया है ।

20 हिन्दी जन-जन की भाषा—मुनि नथमल—हिन्दी भाषा को राष्ट्रभाषा का गौरव प्रदान करने के लिए कई तर्क इसमे प्रस्तुत किए गए है ।

धर्म रहस्य, दर्शन प्रकाश, वर्तमान भारत का नक्शा, आदि बीस-तीस पुस्तके वर्तमान की स्थिति में उपलब्ध न होने के कारण इनसे मै आपका परिचय नही करा सकता ।

हिन्दी जैन गद्य साहित्य—8.

—पं. अनूपचन्द न्यायतीर्थ

राजस्थान प्राचीन काल से ही साहित्य व संस्कृति का केन्द्र रहा है। यहां की भूमि मे जिस प्रकार अनेक रण-बाकुरो ने जन्म लेकर इसके कण-कण को पवित्र किया है उसी प्रकार अनेक साहित्यकारो व कलाकारो ने साहित्य की सर्जना कर तथा कला द्वारा इसका सम्मान बढाया है। अनेक शास्त्र भण्डार और विशाल कलापूर्ण मन्दिर इसके ज्वलन्त प्रमाण हैं। साहित्य समाज का दर्पण है। समाज की उन्नति, अवनति, अधोपतन, विनाश व पुनरुत्थान आदि सभी उसके साहित्य मे सम्मिलित है। यदि किसी समाज का साहित्य सम्पन्न, उच्च कोटि का व लोकोपकारी भावनाओ से ओत-प्रोत है, आत्मा के उद्धार मे सहयोग देने वाला है, उसी समाज की स्थिति अक्षुण्ण बनी रहती है अन्यथा बनती व बिगडती रहती है और कभी-कभी तो समूल नष्ट हो जाती है। जैसा कि ऊपर कहा गया है कि राजस्थान मे अनेक शास्त्र भण्डार हैं जिनमे संस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश, राजस्थानी व हिन्दी आदि अनेक भाषाओ मे लिपिबद्ध आगम-सिद्धान्त, ज्योतिष, व्याकरण, आयुर्वेद, इतिहास, चरित्र पुराण, काव्य, कथा, रस, पिंगल कोश आदि अनेक विषयो के ग्रन्थ उपलब्ध हैं। इन भण्डारो के सूचीपत्र भी छपे हैं। वैसे सभी भाषाओं का साहित्य पद्य व गद्य मे मिलता है किन्तु पद्य मे प्रचुर मात्रा मे उपलब्ध है। इसका कारण यह है कि गेय होने के कारण स्वांत सुखाय और मनोरंजक होने के कारण साहित्यकारो की रुचि पद्य-रचना की ओर अधिक रही है। राजस्थान मे आज भी बडे-बडे आख्यान गीत रूप मे गा कर सुनाए जाते है। वक्ता और श्रोता को जितना आनन्द गेय पद्यो मे आता है और किसी में भी नही। पद्यो की गेयात्मकता से मनुष्य ही नही पशु-पक्षी भी झूम उठते है और आनन्द-विभोर हो जाते है। गद्य का विकास बहुत पीछे का है। डा रामचन्द्र शुक्ल के अनुसार तो हिन्दी साहित्य के सर्वप्रथम गद्यकार लल्लूलाल तथा सदल मिश्र माने जाते है किन्तु यह धारणा अब गलत सिद्ध हो चुकी है क्योकि हिन्दी गद्य साहित्य का विकास 18वी शताब्दी से पूर्व हो चुका था।

प दौलतराम कासलीवाल, महापण्डित टोडरमल, प जयचन्द छाबडा आदि दिगम्बर जैन गद्य साहित्यकार हुए है किन्तु इनकी रचनाए अधिकतर राजस्थानी, ढूढारी तथा ब्रज मिश्रित है। कही-कही गुजराती व पजाबी का भी पुट है। यद्यपि डा रामचन्द्र शुक्ल ने हिन्दी साहित्य के इतिहास मे प दौलतराम के गद्य को खडी बोली का गद्य स्वीकारा है (पत्र 411), किन्तु इनकी भाषा ढूढारी तथा ब्रज होने के कारण पूरी तरह से खडी बोली की गणना मे नही आती। खडी बोली का गद्य साहित्य गत 100 वर्षो से ही मिलता है। खडी बोली का तात्पर्य जनसाधारण की सीधी सादी बोली है। इस भाषा मे रचना करने वाले राजस्थान के दिगम्बर जैन साहित्यकारो मे से कुछ प्रमुख साहित्यकारो का परिचय इस प्रकार है।

1 प चैनसुखदास न्यायतीर्थ—पडितजी प्राकृत, संस्कृत के समान हिन्दी भाषा के भी प्रमुख विद्वान् थे। प्रारम्भ से ही इन्हें लिखने मे रुचि थी तथा आपके लेख विश्वामित्र, कल्याण, अनेकान्त, साप्ताहिक हिन्दुस्तान आदि पत्रो मे प्रकाशित होते रहते थे। आप वर्षों तक विभिन्न पत्रो के सम्पादक रहे। वीरवाणी की सम्पादकीय टिप्पणिया आपकी विद्वत्ता एव सूझबूझ के अतिरिक्त आपको हिन्दी गद्य के प्रमुख लेखको मे प्रस्तुत करने वाली है। आप कभी

कभी कहानियां भी लिखते थे। पडितजी के गद्य का एक नमूना इस प्रकार है—

"क्षमा हमे विवेक देती है और प्रत्येक विषय पर गहराई से विचार करने का अवकाश प्रदान करती है। क्षमा को ठीक समझने के लिए हमे उसके दो भेद करने होगे। एक साधु की तथा दूसरी गृहस्थ की। साधु की क्षमा प्रतिकार रहित होती है जब कि गृहस्थ की क्षमा आततताइयो का प्रतिकार करती है। क्षमा मनुष्य को अकर्मण्यता का पाठ नही पढाती, वह तो मनुष्य को काम करना सिखाती है और आध्यात्मिक योगी को आत्म-समर्पण की शिक्षा देकर मुक्ति की राह बतलाती है।"

पडितजी इस शताब्दि के अच्छे हिन्दी गद्य लेखक माने जाते हैं।

2 श्री श्रीप्रकाश शास्त्री—आपका जन्म स 1972 मे जयपुर मे हुआ। आपके पिता श्री बालचन्द जी सोनी थे। आपने सन् 1934 मे न्यायतीर्थ, 1935 मे शास्त्री व 1936 मे काव्यतीर्थ की परीक्षा पास की। सन् 1933 से ही आपके लेख जैन पत्र-पत्रिकाओ मे छपने लग गए थे। आप दर्शन व आध्यात्मक परक लेख लिखने मे विशेष रुचि लेते थे। पडितजी प्राचीन साहित्य के प्रसिद्ध विद्वान् थे और हिन्दी जैन साहित्य पर आपके कितने ही लेख वीरवाणी मे प्रकाशित होते रहते थे। आपने प चैनसुखदास जी के सस्कृत ग्रन्थ 'निक्षेपचक्र' का हिन्दी अनुवाद किया था। वीरवाणी मे आपने 'जयपुर राज्य के दिगम्बर जैन साहित्यकार' लेख माला के माध्यम से सारे साहित्यकारो का पूर्ण परिचय प्रस्तुत किया। आपने सूर्यसागर ग्रन्थमाला द्वारा प्रकाशित तथा आचार्य सूर्यसागर जी द्वारा लिखित 'सयम प्रकाश' ग्रन्थ का सपादन किया था। आप महान् साहित्यसेवी थे। आपका असमय मे निधन होने से साहित्य जगत को गहरी क्षति पहुची है।

3 पण्डित इन्द्रलाल शास्त्री—आपका जन्म 21-9-1897 को जयपुर मे हुआ। आप मुशी मालीलाल जी चादवाड के पुत्र थे। आपने स 1972 मे शास्त्री की परीक्षा उत्तीर्ण की। आपका अध्ययन गहन एव विद्वत्ता अगाध थी। हिन्दी पद्य के समान हिन्दी गद्य के भी शास्त्री जी अच्छे लेखक थे। खण्डेलवाल जैन हितेच्छु, अहिसा जैसे पत्रो के सम्पादक रह कर हिन्दी गद्य साहित्य की अच्छी सेवा की थी। आपकी निम्न रचनाये इस प्रकार हैं—धर्म सोपान, तत्वालोक, आत्म वैभव, पशुवध सबसे बडा देशद्रोह, शाति पीयूषधारा, अहिंसा तत्व, विवेक मजूषा, दिगम्बर जैन साधु की चर्या, जैन धर्म और जाति भेद, महावीर देशना, भारतीय सस्कृति का महारूप आदि।

आप अपने समय के अच्छे वक्ता, लेखक, कवि तथा अनेक पत्रो के सम्पादक रहे हैं।

4 प मिलापचन्द शास्त्री:—आपका जन्म जयपुर राज्य के प्रतापपुरा ग्राम मे वि स 1971 मे हुआ था किन्तु कुछ समय बाद आप जयपुर मे श्री मगनलाल जी पहाडिया के यहा गोद आ गए। यहा आने के पश्चात् आपने शास्त्री व न्यायतीर्थ की परीक्षाए उत्तीर्ण की। आपकी प्रवचन शैली और लेखन शैली दोनो ही मजी हुई है। आपने 'पावन-प्रवाह' एव 'जैन दर्शनसार' पर सुन्दर हिन्दी गद्य टीकाए लिखी है। समय-समय पर आपके लेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाओ मे छपते रहते हैं।

5 डा कस्तूरचन्द कासलीवाल—डा कासलीवाल का जन्म दिनाक 8 अगस्त, 1920 को जयपुर जिलान्तर्गत सैथल ग्राम मे हुआ। आपके पिताजी श्री गैदीलालजी ग्राम के प्रतिष्ठित व्यक्तियो मे से थे। ग्राम मे प्रारम्भिक शिक्षा प्राप्त करने के बाद आप अपने छोटे भाई के साथ जयपुर मे प चैनसुखदास जी न्यायतीर्थ के सरक्षण मे आए और यही एम ए तथा

शास्त्री की परीक्षा पास की। आप पडितजी के प्रमुख शिष्यो मे हैं। सन् 1961 मे राजस्थान विश्वविद्यालय ने 'आपको राजस्थान के जैन ग्रन्थ भण्डारो' पर शोधकार्य करने पर पी एच. डी की उपाधि से सम्मानित किया। गत 25 वर्षों से डा कासलीवाल प्राचीन साहित्य की खोज एव प्रकाशन मे लगे हुए हैं। अब तक आपकी 20 से भी अधिक पुस्तके प्रकाशित हो चुकी है जिनमे राजस्थान के जैन ग्रन्थ भण्डारो की ग्रन्थ सूची पाच भाग, प्रशस्ति सग्रह, प्रद्युम्न चरित, जिणदत्त चरित, राजस्थान के जैन सन्त, हिन्दी पद सग्रह, महाकवि दौलतराम कासलीवाल व्यक्तित्व और कृतित्व, शाकम्भरी प्रदेश के सास्कृतिक विकास मे जैन धर्म का योगदान और वीर शासन के प्रभावक आचार्य आदि हैं। राजस्थान के जैन सन्त विद्वत् परिषद् 'तथा महाकवि दौलतराम कासलीवाल व्यक्तित्व और कृतित्व साहित्य परिषद् द्वारा पुरस्कृत हो चुकी है। राजस्थान मे जैन साहित्य को प्रकाश मे लाने का प्रमुख श्रेय आपको ही है। आपके 350 से भी अधिक खोजपूर्ण लेख देश की विभिन्न पत्र-पत्रिकाओ मे प्रकाशित हो चुके हैं। आपकी भाषा व शैली दोनो ही सरल किन्तु भावपूर्ण है। आपकी भाषा शैली का नमूना इस प्रकार है—

> "राजस्थान के मध्य मे स्थित होने तथा प्राकृतिक साधनो से रक्षित होने के कारण अजमेर अपने जन्म से ही देश के सर्वोच्च शासको के आकर्षण का केन्द्र रहा है। यह नगर पृथ्वीपुर, अजयमेरु, अजयदुर्ग, अजयगढ, अजयनगर, अजीर्णगढ जैसे विभिन्न नामो से प्रसिद्ध रहा है। सर्व प्रथम यह प्रदेश शाकम्भरी प्रदेश के अधीन रहा है लेकिन कुछ ही समय पश्चात् इसे इसकी राजधानी बनने का सौभाग्य प्राप्त हुआ।"
>
> (शाकम्भरी प्रदेश पृष्ठ 15)

अपनी विद्वता एव महती साहित्य सेवा के कारण आप अब तक कितनी ही सामाजिक व साहित्यिक सस्थाओ से सम्मानित हो चुके है। डा कासलीवाल को राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो मे से कितनी ही रचनाओ को प्रकाश मे लाने का श्रेय है। साहित्यान्वेषण उनके जीवन का स्वभाव बन गया है। इनकी लेखन शैली मे माधुर्य है तथा अपनी बात को अत्यधिक स्वाभाविकता मे रखते हैं।

6 पण्डित गुलाबचन्द जैन दर्शनाचार्य—प गुलाबचन्द का जन्म जयपुर जिले के गोनेर ग्राम मे दिनाक 9-11-21 को हुआ। आपके पिता का नाम भूरामल जी छाबड़ा है। पडित जी जैन दर्शन के अच्छे विद्वान् हैं। सन् 1969 से आप दिगम्बर जैन सस्कृत कालेज, जयपुर के प्राचार्य हैं। पडित जी हिन्दी गद्य के अच्छे लेखक हैं। अब तक आपके एकाकी, नेमिराजुल सवाद आदि प्रकाशित हो चुके है।

7 प भवरलाल न्यायतीर्थ—आपका जन्म जयपुर मे सवत् 1972 मे हुआ था। आपके पिता श्री गेंदीलाल जी भावसा जयपुर के प्रसिद्ध सगीतज्ञो मे से थे। आप जयपुर नगर के प्रसिद्ध विद्वान्, पत्रकार, लेखक एव कुशल वक्ता माने जाते हैं। गत 30 वर्षों से आप वीरवाणी का सम्पादन कर रहे हैं तथा इसके पूर्व जैन बन्धु तथा जैन हितेच्छु के सम्पादक रह चुके है। जयपुर के जैन दीवानो पर लेखमाला के रूप मे आपके द्वारा लिखित खोज पूर्ण सामग्री प्रकाशित हो चुकी है। सयम-प्रकाश एव बनारसी-विलास ग्रन्थो का आपने सम्पादन किया है। आपकी गद्य शैली सुन्दर है।

पडित जी साहित्यसेवी के साथ ही समाज सेवी भी है तथा वीर निर्वाण भारती मेरठ द्वारा आप समाजरत्न की उपाधि से सम्मानित हो चुके है।

8. प्रो प्रवीणचन्द जैन —प्रो प्रवीणचन्द जी जैन का जन्म सन् 1909 जयपुर मे श्री लक्ष्मणलाल जी पाटनी के यहा हुआ। आपकी प्रारम्भ से ही अध्ययन की ओर विशेष रुचि रही। आपने एम ए हिन्दी व सस्कृत, शास्त्री व साहित्यरत्न की परीक्षा उत्तीर्ण की। शिक्षा जगत मे आपका विशेष योगदान रहा तथा भरतपुर, डूगरपुर, बीकानेर, वनस्थली महाविद्यालयो के वर्षो तक आचार्य रहे। आज कल आप उच्चस्तरीय अनुसधान केन्द्र, जयपुर के सचालक है तथा पौराणिक साहित्य पर विशेष अनुसन्धान मे लगे हुए हैं।

9 डा हुकुमचन्द भारिल्ल —आप हसराज भारिल्ल के पुत्र हैं। आप शास्त्री, न्यायतीर्थ, साहित्य रत्न तथा एम ए, पी एच डी है। आप हिन्दी के अच्छे विद्वान् हैं। आप उच्च कोटि के निबन्धकार तथा आध्यात्मिक वक्ता है। गत 10 वर्षो से आप जयपुर मे प टोडरमल स्मारक ट्रस्ट के सयुक्त मत्री हैं। आपकी कितनी ही रचनाये प्रकाशित हो चुकी हैं—बालबोध पाठमाला भाग 1 से 3, वीतराग विज्ञान पाठमाला भाग 1 से 3, तीर्थंकर महावीर, भगवान महावीर और उनका सर्वोदय तीर्थ तथा पडित टोडरमल व्यक्तित्व और कृतित्व आदि। आपकी भाषा सरस व प्राजल है। आपकी भाषा का नमूना इस प्रकार है—

> "भोले भक्तो ने अपनी कल्पना के अनुसार तीर्थंकर भगवन्तो मे भी भेदभाव कर डाला है। उनके अनुसार पार्श्वनाथ रक्षा करते है तो शान्तिनाथ शान्ति। इसी प्रकार शीतलनाथ शीतला (चेचक) को ठीक करने वाले है और सिद्ध भगवान् को कुष्ठ रोग निवारण करने वाला कहा जाता है। भगवान तो सभी वीतरागी, सर्वज्ञ, एक सी शक्ति, अनन्तवीर्य के धनी है। उनके कार्यो मे यह भेद कैसे सम्भव है? एक तो भगवान कुछ करते ही नही है, यदि करे तो क्या शान्तिनाथ पार्श्वनाथ के समान रक्षा नही कर सकते? ऐसा कोई भेद तो अरहन्त सिद्ध भगवन्तो मे है नही।"

(सर्वोदय तीर्थ पृष्ठ 115)

10 डा कमलचन्द सौगानी —डा सोगानी का जन्म 25 अगस्त 1928 को जयपुर मे हुआ। आप उदयपुर विश्वविद्यालय मे दर्शन विभाग के प्रोफेसर एव अपने विषय के अधिकारी विद्वान् है। आप 'एथिकिल डाक्ट्रिन्स इन जैनिज्म' शोध प्रबन्ध पर राजस्थान विश्वविद्यालय से पी-एच डी की उपाधि से सम्मानित हो चुके है। मुनि श्री मिश्रीलाल जी महाराज तथा प चैनसुखदास जी न्यायतीर्थ द्वारा सकलित 'अर्हत् प्रवचन' तथा 'प्रवचन प्रकाश' के हिन्दी रूपान्तर मे आपका बहुत बडा हाथ रहा है।

11 प. मूलचन्द शास्त्री —श्री शास्त्री जी वर्षो से श्री महावीर जी (राज) मे रह कर मा सरस्वती की सेवा कर रहे है। आप हिन्दी व सस्कृत के प्रकाण्ड विद्वान् है। आपने जैन दर्शन के उच्च ग्रन्थ आप्त-मीमासा तथा युक्त्यनुशासन का विस्तृत अनुवाद किया है। स्वतन्त्र ग्रन्थ "जैन दर्शन का तुलनात्मक अध्ययन" अभी अप्रकाशित है। आपने महाकवि कालिदास के मेघदूत के अन्तिम चरण की समस्या पूर्ति करते हुए राजुल की विरह वेदना को व्यक्त करने वाले 'वचन-दूतम्' सस्कृत काव्य की रचना की है। साथ ही उसका पद्यानुवाद तथा

गद्यानुवाद भी आपने ही किया है। आपकी भाषा बहुत ही सम्पन्न तथा प्राजल है। पडितजी के दार्शनिक विचारो का दिग्दर्शन कराने वाला गद्य का एक नमूना इस प्रकार है—

"आत्मा मे अल्पज्ञता एव सदोषता ज्ञानावरणादिक पौद्‌गलिक कर्मों के सम्बन्ध से आती है। जब उनका अपने विरोधी कारणो के उत्कर्ष से अभाव- सर्वथा क्षय होता है तब आत्मा निर्दोष होकर सर्वज्ञ हो जाता है।"

12 प मिलापचन्द रतनलाल कटारिया —आप केकडी के रहने वाले दिगम्बर जैन कटारिया गोत्रीय श्रावक हैं। केकडी जैन विद्वानो का केन्द्र रहा है और आपने उसमे चार चाद ही लगाए हैं। जैन साहित्य सेवियो मे इन पिता-पुत्र के जैसे कम ही देखने को मिलेंगे। दोनो ही सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रश तथा हिन्दी के अच्छे विद्वान्, सिद्धान्त, पुराण, कथा-चरित्र, व्याकरण, दर्शन, पूजा विधान आदि सभी विषयो के ज्ञाता, सफल समालोचक एव अधिकारी लेखक हैं। आप दोनो के अच्छे लेखे अनेक पत्र-पत्रिकाओ मे निकलते हैं। आपके अनेक शोधपूर्ण निबन्धो का सकलन "जैन निबन्ध रत्नावली" मे निकल चुका है। इसे वीर शासन सघ, कलकत्ता ने अप्रेल, 1966 मे प्रकाशित कराया है।

13 श्री भवरलाल पोल्याका —पोल्याका जी का जन्म जयपुर मे सन् 1918 मे श्री पारसमलजी पोल्याका के यहा हुआ। आपकी शिक्षा जैन सस्कृत कालेज मे हुई जहा से आपने जैन दर्शनाचार्य तथा साहित्य शास्त्री की परीक्षाए उत्तीर्ण की। आप कुशल वक्ता, लेखक और समालोचक है। जयपुर से प्रकाशित होने वाली "महावीर जयन्ती स्मारिका" के आप कई वर्षों से प्रधान सम्पादक हैं। आपकी भाषा लालित्य व प्रसादगुण युक्त होती है। 'तमिल भाषा का जैन साहित्य" पुस्तक जो आपके द्वारा लिखित है, प्रकाशित हो चुकी है।

14 प वशीधर शास्त्री —आपका जन्म आज से करीब 40 वर्ष पूर्व चौमू मे हुआ। आपका अध्ययन पडित चैनसुखदासजी के सानिध्य मे हुआ। शास्त्री परीक्षा उत्तीर्ण करने के बाद आपने एम ए तथा साहित्यरत्न की परीक्षा उत्तीर्ण की। आपके खोजपूर्ण लेख विभिन्न पत्र-पत्रिकाओ मे छपते रहते है। आप अधिकतर समालोचनात्मक लेख लिखते हैं। आप आजकल बारह भावना तथा बारह मासा साहित्य पर कार्य कर रहे हैं।

15 प श्री हीरालाल सिद्धान्तशास्त्री —प हीरालाल सिद्धान्तशास्त्री मध्य-प्रदेश के निवासी है लेकिन गत 15-20 वर्षो से वे राजस्थान मे रहते हुए जैन साहित्य की अपूर्व सेवा कर रहे हैं। सर्व प्रथम 'जयधवला' की हिन्दी टीका मे उन्होने प्रमुख योग दिया।

16 श्री नाथूलाल जैन:—श्री नाथूलाल जैन कोटा निवासी हैं तथा हिन्दी के अच्छे लेखक एव कवि हैं। आप भाषा आयोग के सदस्य भी रह चुके हैं।

उक्त जैन हिन्दी विद्वानो एव लेखको के अतिरिक्त डा लालचन्द जैन वनस्थली, डा गगाराम गर्ग भरतपुर, महावीर कोटिया जयपुर, श्रीमती सुशीला देवी वाकलीवाल, श्रीमती सुदर्शन छाबडा जयपुर, श्रीमती सुशीला कासलीवाल, प सत्यन्धरकुमार सेठी, श्रीमती

स्नेहलता जैन, सुश्री सुशीला बैद, प्रेमचन्द रावका, भवरलाल सेठी, माणिक्यचन्द्र जैन आदि के नाम विशेषत उल्लेखनीय है। इनमे से श्री डा लालचन्द जैन नाट्यकार हैं और अब तक आपके दो तीन लघु नाटक प्रकाशित हो चुके हैं। डा गगाराम गर्ग ढूढारी भाषा के कवियो पर लेख प्रकाशित करते रहते है। श्रीमती सुशीला देवी बाकलीवाल उदीयमान लेखिका है और आप समालोचनात्मक लेख लिखने मे विशेप रुचि लेती है। श्रीमती सुदर्शन छाबडा जैन तत्वज्ञान पर लेख लिखती रहती है। श्री प्रेमचन्द रावका भी युवा लेखक है और ब्रह्म॰ जिनदास पर खोज कार्य कर रहे हैं।

जैन साहित्य पर कार्य करने वाले विद्वानो मे प्रमुख रूप से साहित्य, दर्शन एव सिद्धान्त पर लिखने वाले लेखको की सबसे अधिक सख्या है। प्राचीन जैन साहित्य को प्रकाश मे लाने का सर्वाधिक श्रेय डा कस्तूरचन्द कासलीवाल को है जिन्होने सैकडो सस्कृत, अपभ्रश एव राजस्थान के कवियो पर अपनी कृतिया एव लेखो मे प्रकाश डाला है तथा जो सदा लेखको एव विद्वानो को आगे बढाने मे सतत प्रयत्नशील रहते है।

जैन कथा साहित्य की प्रवृत्तियां—9

—श्री महावीर कोटया

धर्म और कथाए

कथाए जन-मानस के लिए सदा ही प्रिय और आह्लादकारी रही है। धर्म-प्रवर्तको, धर्माचार्यों तथा प्रचारको ने मानव-मन के इस मूलभूत मनोविज्ञान को बडी सावधानी से पहचाना और धार्मिक भावना के प्रचार मे इसका भरपूर उपयोग किया। यही कारण है कि संसार के धार्मिक साहित्य का अधिकाश कथा-कहानियो मे है। कथाओ के द्वारा धार्मिक सिद्धान्तो को जन-मन के लिए सुगमतापूर्वक ग्राह्य बनाया जा सका। इस तरह धर्म लोकप्रिय बन सका, परलोक सुधार के साथ-साथ लोकरजन का भी साधन बन सका। बडी ही रोचक और प्रेरणास्पद कथा-कहानियो का अक्षय भण्डार विविध धर्मों मे उपलब्ध है।

जैन कथा साहित्य

साहित्य का उत्स धर्म रहा है। धार्मिक कथाये साहित्य का मूलाधार रही हैं। तदनुसार जैन साहित्य भी मूलत धार्मिकता-परक है। अनेकानेक कथाओ, उपकथाओ, प्रसगो आदि के द्वारा जैन दार्शनिक सिद्धान्तो, जैन आचार तथा विचार को लोकमानस के लिए सुलभ कराया गया ताकि जन-मन अधिकाधिक धर्म के प्रति आकृष्ट हो सके। यही कारण है कि जैन परम्परा का कथात्मक साहित्य विशाल परिमाण मे उपलब्ध है।

समग्र जैन साहित्य को चार अनुयोगो मे विभाजित किया गया है—(1) चरण-करणानुयोग, (2) धर्मकथानुयोग, (3) द्रव्यानुयोग एव (4) गणितानुयोग। इस विभाजन मे धर्मकथानुयोग का एक स्वतन्त्र वर्ग रखा जाना, जैन साहित्य मे कथाओ के माहात्म्य का प्रमाण है। वस्तुत कथाओ के माध्यम से उपदेश, ज्ञान, प्रतिबोध देने की जैन परम्परा की प्राचीनतम शैली है। प्राप्त आगम ग्रन्थो, जिनमे भगवान महावीर की वाणी का सकलन है, मे ही हजारो कथाए तथा प्रसग सकलित हैं। ज्ञाताधर्म कथा, उपासकदशा, अन्तकृद्दशा, अनुत्तरोपपातिकदशा, विपाकश्रुत, निरयावलिका, कप्पवडसिया, पुप्फिया, पुप्फचलिका, वह्निदशा, आदि आगम ग्रन्थ इस दृष्टि से उल्लेखनीय हैं। प्राचीन जैन साहित्यकारो मे आचार्य भद्रबाहु, जिनदास गणि व सघदास गणि, विमलसूरि, अभयदेव, शीलाक आचार्य जिनसेन, आचार्य गुणभद्र, आचार्य हरिभद्र, आचार्य हेमचन्द्र प्रभृति ने अनेक जैन कथाओ को साहित्यिक रूप देकर सदा-सर्वदा के लिए सुरक्षित व अमर बना दिया है। इन द्वारा प्रणीत चरित ग्रन्थो, पुराणो तथा आधुनिक भारतीय भाषाओ विशेष कर राजस्थानी व गुजराती के अनेक साहित्य-कारो ने अपने रास ग्रन्थो, फागु, चर्चरी, वेलि सज्ञक कृतियो मे जैन कथाओ को सुन्दर साहित्यिक रूप मे प्रस्तुत कर जैन साहित्य की महान् सेवा की है।

हिन्दी में जैन कथा साहित्य

हिन्दी के प्रारम्भिक जैन कथा ग्रन्थ सस्कृत पुराणो व चरितादि ग्रन्थो के अनुवाद-अनुकरण के रूप मे प्रणीत हुए। परन्तु यह प्रवृत्ति प्रारम्भिक ही रही। कालान्तर मे जैन

आगमिक व पौराणिक साहित्य मे बिखरी कथाओ को हिन्दी गद्य मे स्वतन्त्र रूप से प्रस्तुत किया जाने लगा। आज स्थिति यह है कि जैन कथाए विविध साहित्यिक विधाओ के स्वरूप मे मण्डित होकर समकालीन हिन्दी साहित्य कृतियो के समानान्तर लिखी जा रही है। उपन्यास, लघु उपन्यास, कहानी, लघु कथाए, नाटक-एकाकी आदि विधाओ मे आज जैन कथा साहित्य उपलब्ध है।

राजस्थान का जैन कथा साहित्य

जैन साहित्य के उन्नयन मे राजस्थान का सदा ही अग्रणी स्थान रहा है। इस तथ्य का अनुमान इसी से लगाया जा सकता है कि इस प्रदेश मे लगभग तीन हजार ग्रन्थागार है जिनमे लगभग तीन लाख पाण्डुलिपिया एकत्रित है। यह अधिकाश साहित्य अप्रकाशित है क्योकि इस युग मे साहित्य प्रकाशन की आज की जैसी सुविधाए उपलब्ध नही थी। आज का जैन साहित्यलेखन इस दृष्टि से भाग्यवान है कि उसका अधिकाश भाग प्रकाशित है, प्रकाशित होता रहता है। अनेक जैन पत्र-पत्रिकाओ ने साहित्य-प्रकाशन की स्थिति को अधिक सुविधाजनक बना दिया है। पुन साधु-साध्वियो के प्रभाव व जैन धनिको की उदार सहायता के कारण भी आधुनिक जैन साहित्य के प्रकाशन का क्षेत्र उज्ज्वल रहा है।

हिन्दी जैन साहित्य की अधुनातन प्रवृत्तियो मे निबन्ध, समालोचना, शोध-प्रबन्ध तथा प्रवचन-साहित्य का प्रणयन व प्रकाशन अधिक हुआ है, अपेक्षाकृत विविध विधापरक स्वतन्त्र कथा साहित्य का प्रणयन व प्रकाशन स्वल्प है। यहा हम राजस्थान के उपलब्ध जैन कथा साहित्य का विधापरक व प्रवृत्तिमूलक अध्ययन प्रस्तुत करने का प्रयत्न कर रहे है। इस अध्ययन से आधुनिक जैन कथा साहित्य लेखन की विशिष्टिता तथा दिशा का प्रकटीकरण हो सकेगा, ऐसा विश्वास है।

उपन्यास-लघु उपन्यास

प्रकाशित उपन्यासो की सख्या बहुत सीमित ही है। जिन उपन्यासो की जानकारी मिल सकी है, वे है, चितेरो के महावीर—डा प्रेम सुमन जैन, अग्निपथ—कमला जैन 'जीजी', कपिल—आचार्य अमृत कुमार, तरगवती, शूली और सिहासन, भटकते भटकते—तीनो कृतियो के लेखक है ज्ञान भारिल्ल। लघु उपन्यासो मे प्रस्तुत लेखक के दो उपन्यास 'जिनवाणी' (मासिक पत्रिका जयपुर) मे धारावाहिक प्रकाशित हुए है, वे है आत्मजयी और कूणिक।

'चितेरो के महावीर' उपन्यास मे महावीर के परम्परा से मान्य जीवन प्रसगो को नवीन शैली मे प्रस्तुत किया गया है। मध्यप्रदेश मे विदिशा के पास अवस्थित उदयगिरि की गुफाओ को पृष्ठभूमि के रूप मे लेकर और आचार्य कश्यप तथा उनके कलाकार शिष्यो की कल्पना कर लेखक ने उपन्यास मे धाराप्रवाहिकता, रोचकता व महावीर सिद्धान्तो के प्रस्तुतिकरण मे सहजता का समावेश किया है। उपन्यास की यह नवीन शैली एक उपलब्धि है। 'कपिल' नामक उपन्यास मे लेखक आचार्य अमृतकुमार ने 'उत्तराध्ययन सूत्र' के आठवे अध्ययन मे उपलब्ध कथासूत्र को आधुनिक उपन्यास की शैली मे प्रस्तुत कर, सार्वजनिक बना दिया है। उपन्यास का कथानक सार्वकालिक और सार्वभौमिक है। शकुनीदत्त के चरित्र द्वारा मनुष्य का स्वार्थ और उसकी प्रेरणा से किए जाने वाले मानवीय दुष्कर्म प्रकट हो चुके है, वही व्यक्ति की अपराध प्रवृत्ति का मनोवैज्ञानिक स्वरूप स्पष्ट हो सका है। 'कपिल' के पात्र हमारे ही समय के, हमारे गली-मुहल्ले के ही पात्र है और इसमे उठाई गई समस्या भी पूर्णत मानवीय है, अत सबकी है। आधुनिक जैन साहित्यकार प्राचीन कथासूत्रो को किस सफलता से आधुनिकता

का जामा पहना रहा है और उन कथाओ में निहित शाश्वत मानवीय आदर्शो को प्रस्तुत कर नैतिक जागरण का जो प्रयत्न कर रहा है, उसका इस उपन्यास से आभास किया जा सकता है ।

कमला जैन 'जीजी' का उपन्यास 'अग्निपथ' जैन साध्वी श्री उमरावकुवर जी 'अर्चना' की जीवन कथा पर आधारित है। इस महिमावान, परम विदुषी, महान तपस्विनी साध्वी का आदर्श जीवन प्रस्तुत कर लेखिका ने सामाजिक नैतिक जागरण को ही दिशा दी है। पवित्र आत्माओ के चरित्र हमारे लिए दीप-स्तम्भ है, जो अज्ञान की अधियारी मे भटकती मानवता को प्रकाश देते हैं। इस कृति की यह विशिष्टता है कि प्रत्यक्ष मे जीए गए जीवन को सहज, सरल और रोचक औपन्यासिक शैली मे सफलता पूर्वक प्रस्तुत किया गया है।

श्री ज्ञान भारिल्ल का उपन्यास 'तरगवती' एक प्राचीन जैन कथा का आत्म कथात्मक उपन्यास के रूप में किया गया रूपान्तर है। आचार्य पादलिप्त द्वारा मूल प्राकृत में लिखी गई इस कथा से पुनर्जन्म के सिद्धान्त की रोचक पुष्टि हुई है।

लघु उपन्यास की दृष्टि से प्रस्तुत लेखक के दो उपन्यास 'आत्मजयी' और 'कूणिक' प्रकाश में आए हैं। 'आत्मजयी' में तीर्थ कर महावीर की जीवन घटनाओ को बौद्धिक व मनो-वैज्ञानिक धरातल पर प्रस्तुत करने का प्रयत्न किया गया है। । उपन्यास द्वारा महावीर स्वामी के महामानव रूप और उन द्वारा प्रचारित धर्म का लोक कल्याणकारी स्वरूप प्रकट हुआ है। 'कूणिक' में जैन परम्परा में उपलब्ध अजात शत्रु के राज्य ग्रहण की घटना को आधार बनाकर पिता-पुत्र सम्बन्धो के भावनात्मक स्वरूप व आदर्श को वाणी दी गई है जिसकी आज के घोर व्यक्तिगत स्वार्थो से परिचालित जीवन में नितात आवश्यकता है।

ऊपर जिन कतिपय कृतियो का परिचय दिया गया है, उसके आधार पर हम जैन उपन्यासो की प्रवृत्तियो का निम्न प्रकार उल्लेख कर सकते है --

1 आधुनिक जैन उपन्यास का कथासूत्र परम्परागत स्रोतो से प्राप्त किया जाता है । यही एक बडा आधार है जिस कारण हम इस प्रकार की कृतियो को जैन उपन्यास कह सकते है।

2 परम्परागत कथा सूत्र को कथाकारो ने नया रूप, नई शैली व नवीन विचारो से अनुप्राणित किया है।

3 उपन्यासो मे आधुनिक सदर्भ तथा आज के युग की समस्याओ को भी प्रस्तुत किया गया है।

4 इन उपन्यासो का उद्देश्य नैतिक आदर्श प्रस्तुत कर पाठक को चरित्र-निर्माण की दिशा सकेत करना है। -

5 ये उपन्यास सुन्दर साहित्यिक कृतिया है जिनमे आधुनिक औपन्यासिक शैली का सफल निर्वाह हुआ है।

कहानी-लघु कथाए

कहानी सकलन अपेक्षाकृत अधिक परिमाण मे प्रकाशित हुए है। कतिपय सकलन है— कुछ मणिया कुछ पत्थर—डा नरेन्द्र भानावत, बदलते क्षण—महावीर कोटिया, धार्मिक कहानिया

आचार्य श्री हस्तीमल जी, जैन कथामाला भाग 1 से 12–श्री मधुकर मुनि, जैन कहानियो भाग-1 से 25,–मुनि श्री महेन्द्र कुमार जी 'प्रथम', प्रताप कथा कौमुदी भाग-1 से 5–श्री रमेश मुनि, सौन्दर्य दर्शन–श्री शान्ति चन्द्र मेहता, कथा कल्पतरु–मुनि श्री छदमल, लो कहानी सुनो, लो कथा कहदू–श्री भगवती मुनि 'निर्मल', श्री देवेन्द्र मुनि के सकलन–खिलती कलिया मुस्कराते फूल, प्रतिध्वनि, श्री गणेश मुनि शास्त्री के सकलन–प्रेरणा के विन्दु श्री विजय मनि शास्त्री का 'पीयूष घट तथा' श्री केसरीचन्द्र सेठिया का सग्रह 'मुक्ति के पथ पर' आदि।

उक्त कहानी व लघुकथा सकलनो को देखकर हमे हिन्दी जैन कथा साहित्य की निम्न तीन प्रवृत्तिया परिलक्षित होती है।

(क) जैनागमो, पुराणो तथा अन्य धार्मिक साहित्य मे उपलब्ध कथासूत्रो को आधार रूप मे लेकर अपने वर्णन कोशल व कल्पना से उसे आधुनिक हिन्दी कहानी के साहित्यिक रूप मे प्रस्तुत करना।

(ख) धार्मिक साहित्य से उपलब्ध कथा-कहानियो को ज्यो की त्यो हिन्दी मे प्रस्तुत करना।

(ग) जैन धार्मिक तथा इतर ग्रन्थो मे उपलब्ध प्रेरणात्मक चरित्र-निर्माण सम्बन्धी व जीवनोपयोगी प्रसगो को अपनी टिप्पणियो के साथ सुन्दर साहित्यक भाषा मे प्रस्तुत करना।

उक्त तीन प्रवृत्तियो के आधार पर जैन कहानी साहित्य तीन रूपो मे उपलब्ध है (क) साहित्यिक कहानिया–यथा डा नरेन्द्र भानावत के सकलन 'कुछ मणिया कुछ पत्थर' तथा प्रस्तुत लेखक के सकलन 'वदलते क्षण' मे उपलब्ध। (ख) धार्मिक कहानिया -यथा 'मुक्ति के पथ पर' (केसरी चन्द सेठिया) 'जैन कथामाला' (मधुकर मुनि) आदि। (ग) प्रेरक-प्रसग वर्णन, यथा प्रतिध्वनि (देवेन्द्र मुनि शास्त्री) प्रेरणा के विन्दु (गणेश मनि शास्त्री) आदि मे सकलित है।

तीनो शैलियो मे उपलब्ध समग्र जैन कहानी साहित्य का एक समान उद्देश्य है–मानव जीवन का उत्थान, चरित्र का निर्माण। इसलिए भेद शैली मात्र का है, वाह्य है, अन्तर सबका एक है, भाव भूमि समान है।

नाटक–एकाकी

यह विधा जैन साहित्यकारो से जैसे अछूती ही रही है। कहने मात्र को एक एकाकी सकलन 'विष से अमृत की ओर' डा नरेन्द्र भानावत का है, जिसमे नौ एकाकी सकलित है। विष से अमृत की ओर, शरणागत की रक्षा, आत्मा का पर्व, एटम अहिंसा और शान्ति, इन्सान की पूजा का दिन, सच्चा यज्ञ, अनाथी मुनि, तीर्थकर, नमिराज और इन्द्र। इनमे तीन एकाकी-आत्मा का पर्व, एटम अहिंसा और शान्ति तथा इन्सान की पूजा का दिन आगम सम्मत विचारधारा पर आधारित काल्पनिक एकाकी है, शेष छह एकाकी प्रसिद्ध जैन कथानको पर आधारित है। सभी एकाकियो मे जैन सास्कृतिक परम्परा और जैन दर्शन की आत्मा का सफल प्रस्तुतिकरण है। डा रामचरण महेन्द्र के शब्दो मे–"लेखक ने इन एकाकियो के माध्यम से कर्ममूलक सस्कृति की प्रतिष्ठा, पुरुषार्थवाद की मान्यता और कर्तव्य की भावना को जाग्रत करने का प्रयत्न किया है। यद्यपि इन एकाकियो की कथावस्तु और सास्कृतिक पृष्ठभूमि जैन कथाओ से सम्बन्धित है–तथापि भानावत जी देश की आधुनिक सामाजिक, सास्कृतिक एव

राजनैतिक परिस्थितियो से भी अपना मुख नही मोड सके है। देश की वर्तमान परिस्थितिया उनमे से झलकी है।"

सम्पूर्ण नाटक की दृष्टि से श्री महेन्द्र जैन का 'महासती चन्दनबाला' नाटक अभी प्रकाश मे आया है। यह तीन अको मे समाप्त सुन्दर, प्रभावोत्पादक नाटक है जिसको जयपुर व दिल्ली मे सफलतापूर्वक रगमच पर खेला जा चुका है और सराहा गया है। भगवान महावीर के साध्वी सघ की प्रमुख चन्दनबाला का कथानक अत्यन्त कारुणिक है जो मानव मन की गहराई मे सुषुप्त कोमल व मानवीय अनुभूतियो की जागति में परम सहायक है। रगमचीय नाट्य -रचना की दृष्टि से लेखक ने इस प्रसिद्ध कथानक का सहज निर्वाह किया है, दृश्य परिवर्तन यथासभव कम है तथा पात्र सख्या सीमित है। चन्दनबाला और साथ ही रानी धारिणी का चरिताकन अत्यन्त गरिमामय ढग से हो सका है जो नारी की चारित्रिक दृढता, आत्म सयम, कष्ट सहिष्णुता, धैर्य-शीलता और कोमल मानवीय भावनाओ का सुन्दर निदर्शन है। जैन दर्शन के कर्मवाद की पुष्टि इस प्रसिद्ध कथानक मे होती है। लेखक ने भी चन्दनबाला के मुख से इसका समर्थन स्थान-स्थान पर कराया है, यथा—काल कोठरी से मुक्ति मिली पर भाग्य के खेल का अन्त कहा? स्थितिया बदली है, बदलती चली गई, मानव अपनी सत्ता, सम्पन्नता और सुन्दरता पर इतराता है, वह भूल जाता है— कर्मों मे भी अपना विधान है, इसके आगे किसी की नही चलती। कर्मो ने मुझे कहा नही छला, देव! आज वे फिर छल रहे है।" अस्तु, जैन साहित्य मे अधुनातम नाट्य विधा की दृष्टि से कोई रचना नही थी, यह कृति उस अभाव की पूर्ति है।

1—सकलन के प्राक्कथन पृ 7-8 से उद्धृत।

प्रथम परिशिष्ट

1. राजस्थान का जैन लोक साहित्य
   —डॉ. महेन्द्र भानावत

2. राजस्थान के जैन ग्रन्थ संग्रहालय
   —डॉ. कस्तूरचन्द्र कासलीवाल

3 राजस्थान के जैन शिलालेख
   —रामवल्लभ सोमानी

4. जैन लेखन कला
   —भंवरलाल नाहटा

राजस्थान का जैन लोक साहित्य

—डा० महेन्द्र भानावत

राजस्थान के लोकसाहित्य की बडी विविध एव व्यापक पृष्ठभूमि रही है। विविध धर्मो, विविध जातियो, विविध सम्प्रदायो तथा विविध सस्कारो, त्योहारो और तौर तरीको की जीवनानुभूतियो से जुडा यहा का लोकमत अपनी विराट सस्कृति की जडो को गहरी किये पल्लवित पुष्पित है। इस सस्कृति मे जैन लोकसाहित्य की अपनी विशिष्ट भूमिका रही है। यह साहित्य मूलत धार्मिक, आध्यात्मिक एव नैतिक मूल्यो का एक ऐसा पनघट है जिसका पानी पीकर व्यक्ति अपने घर-मरघट तक को परिष्कृत, सात्विक और सासारिक उलझनो से मुक्त बनाये रखता है। इस साहित्य के सहारे कितनी ही विधवाए अपने वैधव्य को अभिशाप होने से बचाती है। कितने ही बेसहारा मन इसकी शरण को जिन्दगी का सबसे बडा सहारा मान अपनी नैया पार लगाते है। पापी मन प्रायश्चित करते है। अपनी ग्रन्थियो को खोलते है। कुन्ठाओ को कालिख देते है। चित का चचलपन दूर करते है। अपने हाथी मन को अकुश देते है। घोडे मन को लगाम लगाते है और अत मे सुखपूर्वक अमरापुर का आसन ग्रहण करते है। इच्छाओ को मारना और जीवन को सयमित करना इस साहित्य का मूल दर्शन है। यह दर्शन सपनो, वधावो, स्तवनो, भजनो, ढालो, व्यावलो, थोकडो, सिलोको, कथाओ, गर्भ-चिन्तारणियो तथा तीर्थकरो, गणधरो, साधुसतियो सम्बन्धी गीतो से सपूरित है।

तीर्थकर सम्बन्धी गीत मुख्यत सपनो के रूप मे प्रचलित है। इन सपनो मे उनके गर्भधारण से लेकर उनके जन्म, उनके विविध सस्कार तथा उनके जीवन की मुख्य प्रमुख घटनाओ का उल्लेख किया होता है। धर्म-स्थानो के अलावा विवाह शादियो मे चाक नूतने से लेकर शादी के दिन तक प्रति प्रात भी ये सपने गाये जाते है। पर्युषण के दिनो मे भी इन्हें विशेष रूप से गाया जाता है। गर्भावास में तीर्थंकरो की माताओ को आने वाले स्वपनो के कई गीत इस साहित्य के प्रमुख विषय बने हुए है। एक सपने में वाल जन्म का हरख किस खूबी से उमड पडा है—आगण ओवरिया चुणावा। नारियलो से नीव भरावो। दाई बुलाओ जो तीर्थ कर को झेले। सोने की छुरी से उसका नारा मोराओ। रूपो की कुण्डियो में स्नान कराओ। रानी के आगन सास वुलाओ जो वालक को पटरी झेले। जोशी बुलाओ जो नाम निकाले। ढोली बुलाओ जो दस दिन ढोल वजावे। सेवक को बुलाओ जो दस दिन झालर वजाये। भुआ बुलाओ जो मगल गाये। चौक पुराओ। सुहागिन से सूरज पुजाओ। कुम्हार बुलाओ जो कुभ कलश लाये। देराणिया-जेठानिया बुलाओ जो आरती उतारे। हौज खुदाओ, झलमा पूजो। ढोलिया ढराओ। सुहागिन पोढेगी। हिंगलू ढोराओ, पगल्या माडेगी। केल रूपाओ उनके पास हाथी-घोडे मडेंगे। सवके मन में कितना उल्लास और उछाह है।

तीर्थ करो की पूजा के लिए दूर-दूर से यात्री उमड पड़ते है। गीतो की गगाये छलक पडती है। पूजा के विविध थाल और पूजापा सजाया जा रहा है। रिखवदेव के लिये केसर नेमिनाथ के लिए फूल, पारसनाथ के लिए केवडा, महावीर स्वामी के लिए नारियल तथा शातिनाथ के लिए खारको के थाल भरे जा रहे है। कव दरवाजा खुले, पट खुले और दर्शन हो। भगवान के पाव पूजने और मुंह देखने के लिए प्रतीक्षा पवित लगी हुई है—

सामी कदकी ऊवी ने कदकी खरी रे दरवाजे,
तोर्ड नी खोल्या दरवाजा रे।

मामो पाव पूगण दोनी मुख देखण दोनी
म्है दूरा सू आया जी ।

ये मपने बडे मगल और कल्याण सूचक है। इनका गाना वैकुठ पाना और नही गाना अजगर का अवतार होना है, तो फिर कौन सपने गाना नही चाहेगी ? गाने वाली को चूडा-चूदडी यानी सुहाग-सौभाग्य की प्राप्ति और जोडने वाली को झूलता हुआ पुत्र, रोग-शोक से मुक्ति और ज्ञानावरणीय से लेकर अन्तराय तक के आठो कर्मों से छुटकारा।

कर्म को लेकर हमारे यहा जीवन की जडे बहुत खखेरी गई है। मनुष्य जैसा कर्म करता है वैसा ही फल भोगता है। अच्छे काम का अच्छा फल और बुरे काम का बुरा फल। इस धारणा से हर व्यक्ति अपनी जिन्दगानी को बुरे फलो से बिगाडना नहीं चाहता। प्रति दिन उसके हाथो अच्छा काम हो, वह यही आशा लिए उठता है और इसी आशा मे बिस्तरा पकडता है। इसलिए वह अपना आत्मचिन्तन करता है। गलत किये हुए पर प्रायश्चित्त करता है और आगे के जीवन का सुधारने का प्रण दोहराता है। आत्मा सो परमात्मा। इसलिए वह अपनी आत्मा को अपवित्र हाने से बचाता है। आत्मा को लेकर ऐसे कई एक चौक प्रचलित है जिनमे अच्छी करणी के रूप मे आत्मा को निर्मल, निरोग और निष्पाप रहने को सचेत, सजग किया गया है।

इन चौको के अतिरिक्त थोकडो मे भी इसी प्रकार की, जीवन को धिक्कारने और आत्माओ को फटकारने की भावना भरी मिलती है। आत्मनिन्दा एव भर्त्सना के साथ-साथ सासारिक मोहमाया, रागद्वेष एव कषाय आदि मे निर्लिप्त जीवन को झकझोरते हुए उसे सद्वृत्ति की ओर प्रेरित किया जाता है। इसीलिए मरणासन्न व्यक्ति को मृत्यु से पूर्व भी ये थोकडे सुनाये जाते है ताकि वह अपने जीवन को तोलता हुआ पापो का प्रायश्चित करे। ये थोकडे मुख्यत जीवन के कृष्णपक्ष को उद्घाटित कर उसे शुक्लजीवी बनाते है। एक उदाहरण देखिये—

ज्यू समदर मे हिलोरा उछरे छै ज्यू थारे तिरसणा रूपी हिलोरा उछरे छै। अरे जीव थू करणी तो करे छै पर सूना मन सू करे छै। धीरप मन सू करसी तो थारे लखे लागसी। देखो देखो भरत महाराज की राज, रीति रमणीक, गमणीक सोभाइमान वेइरी छै। जणा कई जाण्यो छै के धरकारपणो अणीराज ने, धरकारपणो अणी पाटने, धरकारपणो अणी चकरवती पदवी ने। असी चिन्तावणा करता करता भरत म्हाराज केवलग्यान दरसन पाया। असयो थारे पण उदे आवसी ? थारे कणसू उदे आसी रे बापडा ? करोध मान माया लोभ री चकरी ने पटरी पार। अकुल विकुल पणो थारे मरे न थी। करोध, मान, माया, लोभ, राग दवेस जगजगारमान हो र्या छै। थारी समाई तो या छै ने वा छै।

अर्थात् ज्यो समुद्र की लहरे उछाल खाती है उसी तरह तुम्हारे तृष्णारूपी हिलोरे उछाल खा रही है। अरे जीव तू कर्म तो करता है पर खाली मन से करता है। धैर्य से करेगा तो तुझे अपना लक्ष्य हाथ लगेगा। देखो महाराज भरत की राजरीति शोभित हो रही है जिन्होने जाना कि धिक्कार है इस राजपाट को, धिक्कार है चक्रवर्ती पदवी को। ऐसी चिन्तना करते भरत महाराज केवल ज्ञान केवल दर्शन को प्राप्त हो गये। ऐसा भाग्य तुम्हारे भी उदित होगा ? तुम्हारे कैसे उदित होगा ! क्रोध, मान, माया, लोभ की चकरी को जीवन पटरी से पार लगा। आकुल-व्याकुलता तुममे नही छूटती। क्रोध, मान, माया, लोभ राग, द्वेष की जगमगाहट हो रही है। तेरी सामयिक, कमाई तो यह है, यही है।

ये थोकडे हमारे इस भव के ही नही अपितु परभव, भव-भव के निकित्सक है। इनमे काया कचन बनती है। हमारा मन यदि अचगा है तो काया चगी कैसे होगी ? मन की उद्दाम

वासनाए, अनन्त लालसाए और अखूट तृष्णाए जब तक काबू मे नही आयेगी तब तक आत्मा का मैल कैसे कटेगा ? विविध कथा-आख्यानो और दृष्टान्तो के आधार पर इन थोकडो की बणगट मानव जीवन के शैक्षिक सास्कृतिक पक्ष को मजबूती से पाटती है।

गर्भ चिन्तारणियो मे गर्भस्थ शिशु की चिन्तना के साथ-साथ मानव जीवन को समतावान बनाने की सीख भी रहती है। ये गर्भवती महिलाओ को सुनाई जाती है ताकि गर्भ मे ही गर्भस्थ शिशु जीव योनि के स्वरूप, कर्मफल, सासारिक मोहजाल, रोग-भोग तथा सुख-दु ख का सम्यक् ज्ञान प्राप्त कर जीव धारण करे और मानव जीवन को सार्थक करता हुआ मरण को ममताविहीन रूप मे वरण करे। इस दृष्टि से ये चिन्तारणिया जीव योनि का गूढ दर्शन लिए होती है। मरणासन्न व्यक्ति को भी ये चिन्तारणिया सुनाई जाती है ताकि वह अपने को सासारिकताओ से मुक्त समझता हुआ देह त्यागे और आगे कोई अच्छा जन्म प्राप्त करे। इसके अनुसार जीव जन्म धारण करता है, मरता है, पुन -पुन जीता है और इस प्रकार चौरासी लाख योनियो मे भटकता रहता है।

मनुष्य अकेला आता है और अकेला जाता है। साथ न कुछ लाता है और न ले जाता है अत बार-बार उसे अच्छे कर्म करने के लिए सचेत किया जाता है। एक पगल्या देखिए—

रतना रा प्याला ने सोना री थाल ।
मूग मिठाई ने चावल दाल, भोजन भल भल भातरा ॥
गगा जल पाणी दीधो रे ढार, वस्तु मगावो ने तुरत त्यार, कमी ए नही किण बात री ॥
वडा बडा होता जी राणा ने राव, सेठ सेनापति ने उमराव, खाता मे नही राखता ॥
जी नर भोगता सुख भरपूर, देख ता देखता होयग्या धूड, देखो रे गत ससार री ॥
करे गरव जसी होसी जी वास, देखता देखता गया रे विनास, थू चेते उचेते तो मानवी ॥

किसी स्थान पर साधु सतो का आगमन बडा आह्लादकारी होता है, तब पूरा श्रावक-श्राविका समुदाय उमड पडता है। इस दिन की खुशी का पार नही, जसे सोने और रत्नो का सूरज उदित हो आया हो—

आज सोना रो सूरज उगियो,
आज रत्ना रो सूरज उगियो,
आज रो गोडरो लागे डगेमगे,
म्हारासा ओ लागे दीपता ॥

कुकुम और केसर के पगल्ये-महाराज श्री का पदार्पण। मारा गाव लुल-लुल पाव लगने के लिए उमड पडा है। इनके दर्शनो से सारे पाप धुल गए है। बधावे पर बधावे गाए जा रहे है।

भगवान महावीर के बाल जीवन के गीतो मे उन्हे नहाने, कपडे पहनाने तथा पालने मे झुलाने के बडे रोचक वर्णन मिलते हैं। महावीर के जरी का रुमाल, मखमल का आगा और हीरे-मोती से जडी टोपी शोभित है। उनका पालना सोने की साकल कडियो वाला, रत्नो से जडा, रेशम की डोर। उनके पावो मे झाझरिये खन-खनाते हुए, ठुमक ठुमक ठुमकती उनकी चाल और माता त्रिशला के उनके साथ बुने नाना स्वप्न, कितनी रगीन छटा और दृश्यावली आखो के सामने थिरक उठती है। माता त्रिशला तो भाग्यशाली है ही पर इन गीतो को गाने- सुनाने वाले भी अपने को कितना भाग्यवान समझते है, यह कल्पना सहज ही की जा सकती है।

तीर्थ करो से सम्बन्धित शिलोको का भी इधर विशेष प्रचलन रहा है। इनमे मुख्यत देव, वासुपूज्य, नेमिनाथ पार्श्वनाथ, शातिनाथ के शिलोको की सख्या अधिक है।

तीर्थंकरो के अतिरिक्त रामलखन, कृष्ण, वालाजी, गणपति एव मुख्य प्रमुख सतियो के शिलोके भी मिलते हैं। पर्युषण के दिनो मे कई तरह के गीत गाये जाते हैं। औरते तीर्थंकरो से सम्बन्धित गीत गाती हुई मन्दिर जाती है, पूजा करती हैं और हरख मनाती हैं। किसी के बच्चा नही होने पर पत्नि-पति सजोडे उपवास करते है। धर्म के प्रताप से उनके कूख चलने लगती है। तब हाथ पावो मे मेहदी दी जाती है। नारियल या खडिया वाटी जाती है। पारणे के दिन सपने गवाये जाते हैं। सवत्सरी को प्रत्येक व्यक्ति उपवास करता है। कहावत भी है कि 'वालक ने नह थान ने बूडा ने नही धान" छोटे-छोटे बच्चे तक इस दिन स्तन्यपान नही करते हैं और बूढे भी भूखे रहते हैं।

लोकसाहित्य के इन विविध रूपो मे कथा-कहानियो की सख्या सर्वाधिक है। इनकी आत्मा धार्मिक ताने-वाने से गुथी हुई होती है। ये कहानिया सुखात होती हैं। अधिकतर कहानियो की समाप्ति सयम मार्ग धारण कर दीक्षित होने मे होती है। ये कहानिया गद्य, पद्य अथवा दोनो का सयुक्त रूप लिये होती है। इनमे शिक्षात्मक अश भी खासा रहता है। जीवन निर्माण की दिशा मे ये कहानिया वडी प्रेरक, शिक्षात्मक तथा वडी उपयोगी सिद्ध हुई हैं। गावो मे जहा मनोरजन के कोई साधन नही होते वहा इन कहानियो का वाचन-कथन कइयो को सद्‌आचरण की ओर प्रेरित करता है।

ढालो मे भगु, भरत, मेघकुमार, पवनकुमार, रावण, विजयासेठ, जम्बूस्वामी की ढालो का विशेष प्रचलन है। ये ढालें गद्य-पद्य मिश्रित सुन्दर सवाद लिए होती हैं। यहा रावण की ढाल का सीता मन्दोधर सवाद द्रष्टव्य है—

सीता जी सू मिलवा मदोधर राणी आई,
सग मे सहेल्या लाई।
राजा की राणी आई ॥टेर॥

मदो— किणरे घर थू जाई उपणी किणरे घर परणाई ?
ओ सीता किण रे घर परणाई ?
कई थारो प्रीतम हुवो वावलो मोरे पिया सग चली आई,
अरे सीता राणा की राणी आई ॥

सीता—जनकराय घर जाय उपणी दसरथ घर परणाई,
ओ मदोधर दसरथ घर परणाई।
नहीं म्हारो प्रीतम हुवो वावलो, सरन सोना री लका देखण आई,
ओ मदोधर राजा की राणी आई ॥

मदो— तू तो कहीजै सत की सीता या कैसे चली आई,
कई थनै प्रीतम वन मे छोडी मोरे पिया सग चली आई,
ओ सीता राजा की राणी आई ॥

सीता—म्हे तो कही जू सत की सीता ऐसे ही चली आई,
नही म्हारा प्रीतम वन मे छोडी थने रडापो देवण आई,
ओ मदोधर राजा की राणी आई ॥

इन ढालो की रागे वडी मीठी तथा मोहक होती है। इनके आधार पर नृत्य नाट्य भी मचित किए जा सकते हैं।

इस प्रकार हम देखते हैं कि यह साहित्य न केवल जैनो के लिए अपितु ग्राम लोगो के लिए भी उतना ही उपयोगी और आत्मशुद्धि मूलक है। जैन सम्प्रदाय और जैन वर्ग विशेष का साहित्य होते हुए भी यह ग्राम जनजीवन के सुख और कल्याण का वाहक है।

राजस्थान के जैन ग्रन्थ सग्रहालय

—डा. कस्तूरचन्द कासलीवाल

राजस्थान रजपूती आन बान का प्रदेश है। यह वीर भूमि है जहा देश पर अथवा मातृभूमि पर बलिदान होने मे यहा के निवासियो ने सदा ही गौरव माना है। मुस्लिम शासन मे मुसलमानो से जितना यहा के वीरो ने लोहा लिया था, उतना किसी प्रदेश वाले नही ले सके। यहा की धरती महाराणा प्रताप की गौरव गाथा से अलकृत है। महाराजा हम्मीर के शौर्य्य, पराक्रम एव बहादुरी से कृतकृत्य है और यहा के असख्य वीर योद्धाओ के खून से इस प्रदेश का चप्पा-चप्पा अभिसिक्त है लेकिन वीर भूमि के साथ-साथ राजस्थान कर्मभूमि भी रहा है। एक ओर यहा के वीर पुत्रो ने यदि मातृभूमि के लिए अपने जीवन की आहुति दी तो दूसरी ओर यहा के वणिक् समाज ने देश की साहित्यिक एव सास्कृतिक सपत्ति को भी सुरक्षित ही नही रखा किन्तु उसके प्रचार प्रसार मे भी अपना अपूर्व योगदान दिया और इस दृष्टि से भी राजस्थान का महत्व कम नही है। जैसे चित्तौड, रणथम्भौर, अजमेर जैसे दुर्गों के दर्शन करते ही हमारी भुजाए फडकने लगती है उसी तरह जैसलमेर, नागौर, अजमेर एव बीकानेर, जयपुर के ग्रन्थ सग्रहालयो मे सुरक्षित साहित्यिक धरोहर के दर्शन करके हम अपने भाग्य की सराहना करने लगते हैं। आज अकेले राजस्थान मे जितनी हस्तलिखित पाण्डुलिपिया मिलती है उतनी देश के किसी अन्य प्रदेश मे नही मिलती। यह सब राजस्थानवासियो के युगो की साधना का फल है। राजस्थान मे जैन एव जैनेतर शास्त्र सग्रहालयो मे पाच लाख से भी अधिक पाण्डुलिपिया है। जिनके केन्द्र है जैसलमेर, जयपुर, बीकानेर, जोधपुर, उदयपुर, अजमेर, भरतपुर, बून्दी के ग्रन्थागार जिनमे पाण्डुलिपियो के रूप मे साक्षात् सरस्वती एव जिनवाणी के दर्शन होते है। अनूप सस्कृत लायब्रेरी बीकानेर, राजस्थान पुरातत्व मन्दिर जोधपुर, जयपुर महाराजा का पोथीखाना एव उदयपुरादि के महाराजाओ के निजी सग्रह मे 1½-2 लाख से कम ग्रन्थ नही होगे, जिनमे सारी भारतीय विद्या छिपी पडी है और वह हमारे आचार्यों के असीम ज्ञान का एक जीता जागता उदाहरण है।

राजस्थान मे जैन ग्रन्थ सग्रहालयो की जितनी अधिक सख्या है उतनी गुजरात को छोड कर देश के किसी अन्य प्रदेश मे नही है। लेखक द्वारा अब तक किए गए सर्वे के अनुसार राजस्थान मे दिगम्बर एव श्वेताम्बर दोनो ही सप्रदायो के सग्रहालयो मे ढाई-तीन लाख पाण्डुलिपियो से कम सख्या नही होगी। इनमे से 1-1½ लाख पाण्डुलिपिया दिगम्बर भण्डारो मे एव इतनी ही पाण्डुलिपिया श्वेताम्बर भण्डारो मे मिलेगी। ये पाण्डुलिपिया मुख्यत सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रश, हिन्दी एव राजस्थानी भाषा के ग्रन्थो की है और 10 वी शताब्दी से लेकर 20 वी शताब्दी तक की है। जैनाचार्यों, साधुओ, भट्टारको एव पडितो ने अपने ग्रन्थ सग्रहालयो को साहित्य सग्रह की दृष्टि से सर्वाधिक उपयोगी बनाने का सदैव प्रयास किया है। जहा कही से भी कोई हस्तलिखित ग्रन्थ मिल गया चाहे वह फिर किसी धर्म का हो अथवा विषय का उसे भण्डार मे सुरक्षित रूप से विराजमान कर दिया गया या फिर उसकी प्रतिलिपि करवा कर सग्रहीत करने का प्रयास किया गया। इसलिए राजस्थान के ये जैन ग्रन्थ भण्डार साहित्यिक उपयोगिता की दृष्टि से देश के महत्वपूर्ण सग्रहालय है। जैनो ने इन भण्डारो की रक्षा करने मे भी कोई कसर नही छोडी और मुगलो एव शत्रुओ के आक्रमण के समय मे अपने जीवन की आहुति देकर भी इन भण्डारो की सुरक्षा की थी। यही कारण है राज्याश्रय विहीन होने पर भी ये अब तक सुरक्षित रह सके और देश की महत्वपूर्ण सामग्री नष्ट होने से बचायी जा सकी।

श्री महावीर क्षेत्र के साहित्य शोध विभाग की ओर से राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो की ग्रन्थ सूचियो के पाच भाग प्रकाशित हो चुके है। जिनमे करीब पचास हजार प्रतियो का परिचय दिया हुआ है। इन ग्रन्थ सूचियो से सैकडो अज्ञात ग्रन्थो का परिचय विद्वानो को प्रथम बार प्राप्त हुआ है। स्व डा वासुदेवशरण अग्रवाल ने ग्रन्थ सूची चतुर्थ भाग की भूमिका मे लिखा है कि"––विकास की उन पिछली शतियो मे हिन्दी साहित्य के कितने विविध साहित्य रूप थे, यह भी अनुसधान के लिए महत्वपूर्ण विषय है। इस सूची को देखते हुए उनमे से अनेक नाम सामने आते है जैसे, स्तोत्र, पाठ, सग्रह, कथा, रासो, रास, पूजा, मगल, जयमाल, प्रश्नोत्तरी, मन्त्र, अष्टक, सार, समुच्चय, वर्णन, सुभाषित, चौपई, शुभमालिका, निशाणी, जकडी, व्याहलो, वधावा, विनती, पत्री, आरती, बोल, चरचा, विचार, बात, गीत, लीला, चरित्र, छन्द, छहप्पय, भावना, विनोद, कल्प, नाटक, प्रशस्ति, धमाल, चोढालिया, चौमासिया, वारामासा, वटोई, वेलि, हिंडोलणा, चूनडी, सज्झाय, बाराखडी, भवित, वन्दना, पच्चीसी, बत्तीसी, पचासा, बावनी, सतमई, सामायिक, सहस्त्रनाम, नामावली, गुरुवावली, स्तवन, सम्बोधन, मोडलो आदि। इन विविध साहित्य रूपो मे से किसका कव आरम्भ हुआ और किस प्रकार विकास और विस्तार हुआ यह शोध के लिए रोचक विषय हे। उसकी बहुमूल्य सामग्री इन भण्डारो मे सुरक्षित है।"

इसी तरह जयपुर के आचार्य विनयचन्द्र ज्ञान भण्डार, लाल भवन की ओर से ग्रन्थ सूची का एक भाग डा नरेन्द्र भानावत के सम्पादन मे अभी कुछ वर्ष पूर्व प्रकाशित हो चुका है। इन ग्रन्थ सूचियो ने देश के प्राच्यविद्या पर कार्य करने वाले विद्वानो का ध्यान आकृष्ट किया हे और देश के विभिन्न विश्वविद्यालयो मे अव कितने ही रिसर्च विद्यार्थियो द्वारा शोध कार्य किया जा रहा है जो एक शुभ सूचना है और जिससे इन भण्डारो मे सैकडो वर्षो से सग्रहीत ग्रन्थो का उपयोग होना प्रारम्भ हो गया है।

राजस्थान के सभी शास्त्र भण्डारो का परिचय देना सम्भव नही है इसलिए प्रदेश के कुछ प्रमुख शास्त्र भण्डारो का सक्षिप्त परिचय प्रस्तुत किया जा रहा है।

(1) बृहद ज्ञान भण्डार, जैसलमेर

विश्व के ग्रन्थ भण्डारो मे जैसलमेर के इस ज्ञान भण्डार को सर्वाधिक प्रसिद्धि प्राप्त है। आचार्य जिनभद्रसूरि ने इसे सवत् 1497 (1440 ए डी) मे सभवनाथ मन्दिर मे स्थापित किया था। यह ज्ञान भण्डार कितने ही आचार्यों एव विद्वानो की साहित्यिक गतिविधियो का केन्द्र रहा। इनमे कमलसयम उपाध्याय (1487 ए डी) एव समयसुन्दर (17 वी शताब्दि) के नाम उल्लेखनीय है। कर्नल जेम्सटाड, डा व्हूलर, डा जेकोबी जैसे पाश्चात्य विद्वानो ने तथा मुनि हसविजयजी, सी डी दलाल, मुनि पुण्यविजय जैसे भारतीय विद्वानो ने इस शास्त्र भण्डार का अवलोकन किया था। श्री सी डी दलाल, प लालचन्द्र, म गाधी एव मुनि पुण्यविजयजी ने तो अपने इस भण्डार की ग्रन्थ सूची तैयार की जो प्रकाशित भी की जा चुकी है। इस भण्डार मे ताड–पत्रो पर लिखे हुए ग्रन्थो की सख्या 804 है जिनमे सर्वनोलेख वाली ओधनियुक्ति वृत्ति की पाण्डुलिपि सबसे प्राचीन है जो सन् 1060 की लिखी हुई है। वैसे विशेषावश्यक भाष्य की प्रति 10 वी शताब्दी की है।

इसके अतिरिक्त 12 वी और 13 वी शताब्दी मे लिखे हुए ग्रन्थो की सख्या काफी अच्छी है। जैनाचार्यों द्वारा निबद्ध ग्रन्थो के अतिरिक्त यहा जैनेतर विद्वानो की कृतियो की भी प्राचीनतम पाण्डुलिपिया सगहीत है। ऐसी पाण्डुलिपियो मे कुवलयमाला, काव्य मीमासा (राजशेखर) काव्यादर्श (सोमेश्वर भट्ट) काव्य प्रकाश (मम्मट) एव श्री हर्ष का नैषधचरित के नाम उल्लेखनीय है। इसी भण्डार मे विमलसूरि के पउमचरिय (1141),

हितोपदेशामृत (1253) वसुदेवहिण्डो, शान्तिनाथ चरित (देवचन्द्रसूरि), नैषधटीका (विद्याधर) मुद्राराक्षस नाटक (विशाखदत्त), की कुछ ऐसी महत्वपूर्ण पाण्डुलिपिया है जो अन्यत्र नही मिलती ।

उक्त भण्डार के अतिरिक्त जैसलमेर मे (पचानो शास्त्र भण्डार, बडा उपाश्रय ज्ञान भण्डार), तपागच्छीय ज्ञान भण्डार, लोकागच्छीय ज्ञान भण्डार, थारूसाह ज्ञान भण्डार और है जिनमे भी हस्तलिखित पाण्डुलिपियो का अच्छा सग्रह है ।

(2) भट्टारकीय ग्रन्थ भण्डार, नागौर (राजस्थान)

नागौर राजस्थान के प्राचीन नगरो मे से है । प्राचीन लेखो मे इसका दूसरा नाम नागपुर एव अहिपुर भी मिलता है । नागपुर (नागौर) का सर्व प्रथम उल्लेख जयसिंह सूरि की धर्मोपदेशमाला (9 वी शताब्दी) मे मिलता है । 11 वी शताब्दी मे जिनवल्लभ सूरि एव जिनदत्तसूरि ने यहा विहार किया था । 15 वी शताब्दी मे हाने वाले प मेधावी ने अपने धर्मोपदेश श्रावकाचार (1484) मे इसे सपादलक्ष प्रदेश का सर्वाधिक सुन्दर नगर माना है । सन् 1524 मे भट्टारक रत्नकीर्ति ने यहा भट्टारकीय गादी के साथ ही एक वृहद् ज्ञान भण्डार की स्थापना की थी । शताब्दियो से नागौर जैनो के दोनो ही सप्रदायो का प्रधान केन्द्र बना रहा है ।

शास्त्र भण्डार एव भट्टारक गादी की स्थापना के पश्चात् यहा कितने ही भट्टारक हुए जिनमे भुवनकीर्ति (सन् 1529) धर्मकीर्ति (सन् 1533) विशालकीर्ति (सन् 1544) लक्ष्मीचन्द्र (सन् 1554) यशकीर्ति (सन् 1615) भानुकीर्ति (सन् 1633) के नाम उल्लेखनीय है । यहा के अन्तिम भट्टारक भट्टारक देवेन्द्रकीर्ति थे जिनका कुछ ही वर्ष पहिले स्वर्गवास हुआ था ।

हस्तलिखित ग्रन्थो के सग्रह की दृष्टि से यह भट्टारकीय शास्त्र भण्डार अत्यधिक महत्वपूर्ण है । यहा करीब 14 हजार पाण्डुलिपियो का सग्रह है जिनमे एक हजार से अधिक गुटके हैं । जिनमे एक एक मे ही बीसो पच्चीसो लघु ग्रन्थो का सग्रह होता है । भण्डार मे प्राकृत, अपभ्रश, सस्कृत, हिन्दी एव राजस्थानी भाषा म निवद्ध कृतियो का उत्तम सग्रह है, जो सभी विषयो से सम्बन्धित है । अधिकाश पाण्डुलिपिया 14 वी शताब्दी से लेकर 19 वी शताब्दी तक की है जिनसे पता चलता है कि गत 100 वर्षों मे यहा बहुत कम सख्या मे ग्रन्थ लिखे गये । प्राकृत भाषा के ग्रन्थो मे आचार्य कुन्दकुन्द के समयसार की यहा सन् 1303 की पाण्डुलिपि है इसी तरह मूलाचार की सन् 1338 की पाण्डुलिपि है । इसी तरह अपभ्रश का यहा विशाल साहित्य सग्रहीत है । कुछ अन्यत्र अनुपलब्ध ग्रन्थो मे वराग चरिउ (तेजपाल) वसुधीर चरिउ (श्री भूषण) सम्यकत्व कौमुदी (हरिसिंह) णेमिणाह चरिउ (दामोदर) के नाम उल्लेखनीय हैं । सस्कृत एव हिन्दी भाषा की भी इसी तरह सैकडो पाण्डुलिपिया यहा सग्रहीत है जिनका अन्यत्र मिलना दुर्लभ सा है । ऐसी रचनाओ मे भाउकवि का नेमिनाथरास (16 वी शताब्दी) जगरूप कवि का जगरूपविलास, कल्ह की कृपणपच्चीसी, मण्डलाचार्य श्री भूषण का सरस्वती लक्ष्मी सवाद, सुखदेव का क्रियाकोश भाषा, मानसागर की विक्रमसेन चौपाई के नाम उल्लेखनीय हैं । 17 वी एव 18 वी शताब्दी मे निवद्ध लोकप्रिय हिन्दी काव्यो का यहा अच्छा सग्रह है ।

जयपुर नगर के शास्त्र भण्डार

जयपुर नगर यद्यपि प्राचीनता की दृष्टि से 250 वर्ष से ही कम प्राचीन है लेकिन उत्तरी भारत मे देहली के अतिरिक्त जयपुर ही दिगम्बर जैन समाज का प्रमुख केन्द्र रहा है और

इसीलिए 200 वर्ष पूर्व भाई रायमल्ल ने इसे जैनपुरी लिखा था। यह नगर सन् 1727 में महाराजा सवाई जयसिंह द्वारा बसाया गया था। इससे पूर्व आमेर यहा की राजधानी थी। महाराजा साहित्य एव कला के अत्यधिक प्रेमी थे। उन्होने एक राज्यकीय पोथीखाना की स्थापना की। जयपुर नगर बसने के साथ ही यहा सागानेर, आमेर एव अन्य स्थानो मे हजारो की सख्या मे जैन बन्धु आकर बस गए थे। नगर निर्माण के साथ ही यहा बडे-बडे मन्दिरो का निर्माण हुआ और उनमे शास्त्रो को विराजमान किया गया। यह नगर 150 वर्षों तक विद्वानो का सारे देश मे प्रमुख केन्द्र के रूप मे माना जाता है। यहा एक के पीछे एक विद्वान् होते गए।

आज कल जयपुर नगर मे करीब 170 मन्दिर व चैत्यालय हैं। यद्यपि सभी मन्दिरो मे स्वाध्याय निमित हस्तलिखित ग्रन्थो का सग्रह मिलता है लेकिन फिर भी 25 मन्दिरो मे तो अत्यधिक महत्वपूर्ण ग्रन्थो का सग्रह है। इसमे महावीर भवन स्थित आमेर शास्त्र भण्डार, तेरह पन्थी बडा मन्दिर का शास्त्र भण्डार, पाटोदी के मन्दिर का शास्त्र भण्डार, पाण्डे लूणकरण जी का मन्दिर का शास्त्र भण्डार, बधीचन्द जी के मन्दिर का शास्त्र भण्डार, ठोलियो के मन्दिर का शास्त्र भण्डार, चन्द्रप्रभ सरस्वती भण्डार, लाल भवन स्थित विनयचन्द्र ज्ञान भण्डार, खरतर-गच्छ ज्ञान भडार, सघीजी के मन्दिर का शास्त्र भण्डार, लश्कर के मन्दिर का शास्त्र भण्डार आदि के नाम विशेषत उल्लेखनीय हैं।

आमेर का शास्त्र भण्डार, पहिले आमेर नगर के सावला के मन्दिर मे सग्रहीत था लेकिन गत 25 वर्षो से उसे महावीर भवन जयपुर मे स्थानान्तरित कर दिया गया है। इसमे तीन हजार से भी अधिक पाण्डुलिपिया हैं। अपभ्र श के ग्रन्थो के सग्रह की दृष्टि से आमेर शास्त्र भण्डार अत्यधिक महत्वपूर्ण भण्डार है। पाटोदी के मन्दिर के शास्त्र भण्डारो मे ग्रन्थो की सख्या 2257 एव 308 गुटके हैं। इस भण्डार मे वैदिक साहित्य का भी अच्छा सग्रह है। सवत् 1354 मे निबद्ध हिन्दी की आदिकालीन कृति जिणदत्तचरित की एक मात्र पाण्डुलिपि इसी भण्डार में सग्रहीत है। जयपुर के तेरह पथी बडा मन्दिर मे भी पाण्डुलिपियो का महत्वपूर्ण सग्रह मिलता है। जिनकी सख्या तीन हजार से भी अधिक है। यहा पर पचास्तिकाय की पाण्डुलिपि सबसे प्राचीन है जो सन् 1272 की लिखी हुई है। यह देहली मे बादशाह गयासुद्दीन बलबन के शासन काल मे लिखी गयी थी। इसी शास्त्र भण्डार मे आदि पुराण की दो सचित्र पाण्डुलिपिया है। सवत् 1597 (सन् 1540) की है जो कला की दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण है। इस अकेली पाण्डुलिपि मे सकडो चित्र हैं। बडे मन्दिर के शास्त्र भण्डार मे प्राकृत, अपभ्रश, सस्कृत, हिन्दी एव राजस्थानी सभी भाषाओ की पाण्डुलिपि का अच्छा सग्रह है। गोरखनाथ, कबीर, बिहारी, केशव, वृन्द जैसे जैनेतर कवियो की हिन्दी रचनाओ का अपभ्रश भाषा के कवि अब्दुल रहमान के सन्देश रासक एव महाकवि भारवि के 'किरातार्जुनीय' पर प्रकाश-वर्ष की सस्कृत टीका की पाण्डुलिपियो का इस भण्डार मे उल्लेखनीय सग्रह है।

पाड्या लूणकरणजी का शास्त्र भण्डार 18वी शताब्दि के अन्त मे पडित लूणकरण जी द्वारा स्थापित किया गया था। इस भण्डार मे उन्ही के द्वारा लिखी हुई यशोधरचरित की एक पाण्डु-लिपि है जिसका लेखन काल सवत् 1788 है। पाडेजी ज्योतिष, आयुर्वेद, मन्त्रशास्त्र के अच्छे विद्वान् थे। उन्होने अपना पूरा जीवन स्वाध्याय एव ज्ञानाराधना मे समर्पित कर दिया था। इस भण्डार मे 807 हस्तलिखित पत्राकार ग्रन्थ एव 225 गुटके है जिनमे महत्वपूर्ण साहित्य सकलित है। सवत् 1407 मे लिपिबद्ध प्रवचन सार की यहा प्राचीनतम पाण्डुलिपि है। इसी तरह भट्टारक सकलकीर्ति के यशोधर चरित की जो सचित्र पाण्डुलिपि है वह कला की दृष्टि से अत्यधिक महत्व-पूर्ण है। प्रारम्भ मे इसमे पाडे लूणकरण जी का भी चित्र है। भण्डार का पूरा सग्रह अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

बावा दुलीचन्द का शास्त्र भण्डार भी एक ही व्यक्ति द्वारा स्थापित एव सकलित शास्त्र भण्डार है, जिसकी स्थापना सन् 1854 मे बावा दुलीचन्द ने की थी। वे पूना जिले के निवासी थे लेकिन बाद मे जयपुर आकर रहने लगे थे। भण्डार मे 850 हस्तलिखित प्रतियो का सग्रह है। कुछ पाण्डुलिपिया स्वय बावा दुलीचन्द ने लिखी थी तथा शेप ग्रन्थ उन्होने विभिन्न स्थानो से सग्रहीत किये थे।

बधीचन्द जी के मन्दिर का शास्त्र भण्डार पाण्डुलिपियो की सख्या की दृष्टि मे ही नही किन्तु उनकी प्राचीनता एव अज्ञात ग्रन्थो की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है। इसमे 1278 प्रतियो का सग्रह है। जिनमे महाकवि स्वयम्भू रचित रिट्ठणोमि चरिउ, सधारु कवि कृत प्रद्युम्न चरित के नाम विशेषत उल्लेखनीय है। भण्डार मे सकलकीर्ति छीहल, ठक्कुरसी, जिनदास, पूनो एव बनारसी दास की हिन्दी रचनाओ का अच्छा सग्रह है।

ठोलियो के मन्दिर के शास्त्र भण्डार मे भी 628 पाण्डुलिपिया एव 125 गुटके हैं। इस भण्डार में हिन्दी कृतियो का अच्छा सकलन है जिनमे भट्टारक शुभचन्द (16वी शताब्दी), हेमराज (7वी शताब्दी), रघुनाथ (17 वी शताब्दी), ब्रह्म जिनदास (15वी शताब्दी), ब्रह्म ज्ञान सागर (17वी शताब्दी), पद्मनाभ (16 वी शताब्दी) की रचनाये विशेपत उल्लेखनीय हैं।

उक्त शास्त्र भण्डारो के अतिरिक्त नगर मे और भी शास्त्र भण्डार है जिनमे पाण्डुलिपियो का निम्न प्रकार सग्रह है –

भण्डार का नाम	पाण्डुलिपियो की सख्या
(1) श्री चन्द्रप्रभ सरस्वती भण्डार	830
(2) जोबनेर के मन्दिर का शास्त्र भण्डार	340
(3) पार्श्वनाथ दिगम्बर जैन सरस्वती भवन	558
(4) गोधो के मन्दिर का शास्त्र भण्डार	718
(5) सघीजी के मन्दिर का शास्त्र भण्डार	979
(6) दि जैन मन्दिर लश्कर के मन्दिर का शास्त्र भण्डार	828
(7) नया मन्दिर का शास्त्र भण्डार	150
(8) चौधरियो के मन्दिर का शास्त्र भण्डार	108
(9) काला छाबडो के मन्दिर का शास्त्र भण्डार	410
(10) मेघराज जी के मन्दिर का शास्त्र भण्डार	249
(11) यशोदानन्द जी के मन्दिर का शास्त्र भण्डार	398

दिगम्बर जैन मन्दिरो एव महावीर भवन के सग्रह के अतिरिक्त यहा लाल भवन मे भी हस्तलिखित ग्रन्थो का महत्वपूर्ण सग्रह है। आचार्य श्री विनय चन्द्र ज्ञान भण्डार की ग्रन्थ सूची

भाग-1, कुछ समय पूर्व प्रकाशित हुई है जिनमें 3710 हस्तलिखित ग्रन्थों प्रतियों का परिचय दिया गया है। अभी भंडार में विशाल संग्रह है जिसके सूचीकरण का कार्य हो रहा है और इस प्रकार की और भी दस ग्रंथ सूचियां प्रकाशित की जा सकती है। उक्त भण्डार के अतिरिक्त और भी खरतरगच्छ ज्ञान भण्डारादि, श्वेताम्बर जैन मन्दिरों, उपासरो में ग्रन्थों का संग्रह है। अभी कुछ समय पूर्व स्व मुनि श्री कान्तिसागर जी का संग्रह यहां आया है जिसका अभी तक पूरा सूचीकरण नहीं हो सका है।

भट्टारकीय शास्त्र भण्डार, अजमेर

अजमेर राजस्थान के प्राचीनतम नगरों में से है। इसका पुराना नाम अजय-मेरु दुर्ग था। इसकी स्थापना सादलक्ष के राजा अजयपाल चौहान ने छठी शताब्दी में की थी। जैसल-मेर के शास्त्र भण्डार में एक संवत् 1212 की प्रशस्ति है जिसमें इस नगर का अजय मेरु दुर्ग लिखा हुआ है। यह नगर भी प्रारम्भ से ही देश का राजनैतिक साहित्यिक एवं सांस्कृतिक गतिविधियों का केन्द्र रहा। जैन धर्म एवं साहित्य तथा संस्कृति के प्रचार प्रसार में इस नगर का महत्वपूर्ण योगदान रहा। एक पट्टावली के अनुसार सर्वप्रथम संवत् 1168 में भट्टारक विशाल कीर्ति ने इस नगर में भट्टारक गादी की स्थापना की थी। इससे पता चलता है कि इसके पूर्व यहां जैन साहित्य एवं संस्कृति को पर्याप्त लोकप्रियता प्राप्त हो चुकी थी। राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों में इस नगर में लिपिबद्ध की गयी अनेकों पाण्डुलिपियां उपलब्ध होती हैं।

यहां का भट्टारकीय शास्त्र भण्डार राजस्थान के प्रसिद्ध एवं महत्वपूर्ण शास्त्र भण्डारों में से है। बडे धडे के मन्दिर में स्थापित होने के कारण इसे दिगम्बर जैन मन्दिर बडा धडा का शास्त्र भण्डार भी कहा जाता है। यह मन्दिर एक दीर्घकाल तक भट्टारकों का केन्द्र रहा। संवत् 1770 (1713) में यहां पुन विधिवत भट्टारक गादी की स्थापना की गई, जिसका वर्णन कविवर बखतराम साह ने अपने बुद्धिविलास में किया है। भट्टारक विजय-कीर्ति तक यह भण्डार साहित्यिक गतिविधियों का केन्द्र बना रहा क्योंकि भट्टारक विजय-कीर्ति स्वयं विद्वान् ही नहीं कितने ही ग्रन्थों के रचयिता भी थे। स्वयं लेखक ने दिसम्बर 1958 में 2015 ग्रन्थों का सूची-पत्र बनाया तथा उन्हें पूर्ण व्यवस्थित करके रखा था।

भण्डार में महापण्डित आशाधर (13 वीं शताब्दी) के अध्यात्म-रहस्य की एक मात्र पाण्डुलिपि संग्रहीत है इसे खोज निकालने का श्रेय स्व श्री जुगलकिशोर जी मुख्तार को है। इसी तरह ज्ञातसार समुच्चय (वृषभनन्दि), समाधिमरण महात्म्य दीपिका (भट्टारक सकलकीर्ति), चित्त बन्धन स्तोत्र (मेधावी) जैसी संस्कृत कृतियों के नाम उल्लेखनीय हैं। भण्डार में प्राकृत भाषा की प्रसिद्ध कृति गोमट्टसार पर एक प्राकृत भाषा की टीका उपलब्ध हुई है। तेजपाल का पासणाह चरित (अपभ्रंश) की पाण्डुलिपि भी इसी भण्डार में सुरक्षित है।

इसी तरह कुछ अन्य महत्वपूर्ण एवं प्राचीन पाण्डुलिपियों में प्रभाचन्द्र की आत्मानु-शासन टीका (संवत् 1580), मल्लिषेण का नागकुमार चरित (संवत् 1675), वीरनन्दि का चन्द्रप्रभकाव्य (संवत् 1678), सकलकीर्ति का प्रश्नोत्तर श्रावकाचार (संवत् 1553), अमित-गति की धर्मपरीक्षा (संवत् 1537) आदि भी उल्लेखनीय प्रतियां हैं।

भरतपुर प्रदेश (राजस्थान) के शास्त्र भण्डार

भरतपुर प्रदेश ही पहिले भरतपुर राज्य कहलाता था। इस प्रदेश की भूमि ब्रज भूमि कहलाती है तथा डीग, कामा आदि नगर राजस्थान में होने पर भी ब्रज प्रदेश में गिने जाते हैं।

राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारों की ग्रन्थ सूची पंचम भाग में—इस भण्डार की विस्तृत सूची प्रकाशित हो चुकी है।

यह प्रदेश प्राचीन काल से ही जैन साहित्य एव सस्कृति का केन्द्र रहा। 18वी शताब्दी से यहा कितने ही साहित्यकार हुए जिन्होने हिन्दी मे काव्य रचना करके अपने पाडित्य का परिचय दिया। इस प्रदेश मे मुख्य रूप से भरतपुर, डीग, कामा, कुम्हेर, वैर, बयाना आदि स्थानो मे शास्त्र भण्डार मिलते है। पचायती मन्दिर भरतपुर मे सबसे बडा सग्रह है, जिनकी सख्या 800 से अधिक है।[1] इसमे बृहद् तपागच्छ पट्टावली की प्रति सबसे प्राचीन है जो सवत् 1490 (सन् 1433) की लिखी हुई है। इसी तरह अपभ्रन्श की कृति सप्तव्यसन कथा महत्वपूर्ण कृति है जो इस भण्डार मे सग्रहीत है। यह माणिकचन्द्र की रचना है तथा सवत् 1634 इसका रचनाकाल है। प्राकृत, सस्कृत एव हिन्दी ग्रन्थो की भी यहा अच्छी सख्या है। भक्तामर स्तोत्र की एक सचित्र प्रति है जिसमे 51 चित्र है तथा जो अत्यधिक कलापूर्ण है। यह पाण्डुलिपि सन् 1769 की है। भरतपुर के ही एक अन्य मन्दिर मे हस्तलिखित ग्रन्थो का एक छोटा सा सग्रह और है।

डीग नगर के तीन मन्दिरो मे ग्रन्थो का सग्रह है, इससे पता चलता है कि प्राचीन काल मे ग्रन्थो को लिखने-लिखाने के प्रति जनता की काफी अच्छी रुचि थी। सेवाराम पाटनी जो हिन्दी के अच्छे कवि माने जाते है, इसी नगर के थे। उनके द्वारा रचित मल्लिनाथ चरित (सन् 1793) की मूल पाण्डुलिपि यही डीग के पचायती मन्दिर मे सग्रहीत है। रामचन्द्रसूरि द्वारा विरचित विक्रमचरित की एक महत्वपूर्ण प्रति भी यहा उपलब्ध होती है। जिन गुण विलास (रचना सवत् 1822) पुरानी डीग के मन्दिर मे सवत् 1823 की पाण्डुलिपि मिलती है।

भरतपुर से कामा कोई 40 मील दूरी पर स्थित है जो राजस्थान के प्राचीनतम नगरो मे गिना जाता है। इस नगर का खण्डेलवाल दिगम्बर जैन मन्दिर का शास्त्र भण्डार प्राचीन एव महत्वपूर्ण पाण्डुलिपियो की दृष्टि से सारे प्रदेश के भण्डारो मे उल्लेखनीय है। दौलतराम के पुत्र जोधराज कासलीवाल यही के रहने वाले थे। प्रवचनसार एव पचास्तिकाय पर प्रसिद्ध हिन्दी विद्वान हेमराज द्वारा सवत् 1719 व 1737 मे इसी नगर मे पाण्डुलिपिया लिखी गई थी। इसी तरह देवप्रभसूरि का पाडव चरित्र (सवत् 1454), प्रभाचन्द्र कृत आत्मानुशासन की टीका (सवत् 1548) की शुद्ध पाण्डुलिपियो का सग्रह भी इसी भण्डार मे मिलता है। यहा भट्टारक शुभचन्द्र कृत समयसार की टीका की एक पाण्डुलिपि है जो अन्यत्र नही मिलती। इस शास्त्र भण्डार में 578 प्रतियो का सग्रह है। नगर के दूसरे अग्रवाल मन्दिर मे 105 हस्तलिखित प्रतियो का सग्रह मिलता है।

बयाना भी राजस्थान का प्राचीन नगर है एव भरतपुर जिले के प्रमुख नगरो मे से है। दो दशक पूर्व ही वहा गुप्त काल के सिक्के मिले थे जिनके आधार पर इस नगर की प्राचीनता सिद्ध होती है। यहा पचायती मन्दिर एव तेरहपथी मन्दिर दोनो मे ही शास्त्र भण्डार है। दोनो ही मन्दिरो मे 150-150 मे भी अधिक पाण्डुलिपियो का सग्रह है। वैर, जो बयाना से 15 मील पूर्व की ओर है वहा भी एक दिगम्बर जैन मन्दिर के शास्त्र भण्डार मे 120 हस्तलिखित प्रतियो का सग्रह मिलता है।

श्री महावीरजी राजस्थान का सर्वाधिक लोकप्रिय दिगम्बर जैन अतिशय क्षेत्र है। गत 300 वर्षो से यह क्षेत्र जैन साहित्य सस्कृति का केन्द्र रहा है और यहा पर दिगम्बर भट्टारको की गादी भी है। इस गादी के भट्टारक चन्द्रकीर्ति का अभी कुछ ही वर्ष पहिले स्वर्गवास हुआ था। यहा के शास्त्र भण्डार मे 400 से अधिक प्रतिया है जिनमे प्राकृत, अपभ्रश, सस्कृत एव हिन्दी ग्रन्थो का अच्छा सग्रह है। इन ग्रन्थो की सूची राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो की ग्रन्थ सूची (प्रथम भाग) मे प्रकाशित हो चुकी है। प्राचीन पाण्डुलिपियो का यहा अच्छा सग्रह है जिनके आधार पर इतिहास के कितने ही नवीन तथ्यो की जानकारी मिलती है।

---

1. विस्तृत सूची राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो की ग्रन्थ सूची पचम भाग मे देखिये।

बीकानेर के शास्त्र भण्डार

बीकानेर नगर की स्थापना सन् 1488 मे बीकाजी द्वारा की गई थी। इस नगर का प्रारम्भ से ही राजनैतिक महत्व रहा है। साहित्य की दृष्टि से भी बीकानेर की लोक-प्रियता रही है। अकेले बीकानेर शहर मे 1 लाख से भी अधिक ग्रन्थो का सग्रह मिलता है। इनमें से 15 हजार पाण्डुलिपिया तो अनूप सस्कृत लायब्रेरी मे है और शेष 85 हजार पाण्डुलिपिया नगर के जैन शास्त्र भण्डारो मे सग्रहीत है। हस्तलिखित ग्रन्थो का इतना भारी भण्डार जयपुर के अतिरिक्त राजस्थान के अन्यत्र किसी नगर मे नही मिलता। इन भण्डारो मे प्राचीन तथा स्वर्ण एव रजत की स्याही द्वारा लिखे हुए ग्रन्थ भी अच्छी सख्या मे मिलते है। बीकानेर नगर के अतिरिक्त चूरु एव सरदारशहर मे भी शास्त्र भण्डार है। बीकानेर मे सबसे बडा सग्रह अभय जैन ग्रन्थालय, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान एव बडे उपासरे मे स्थित वृहत् ज्ञान भण्डार मे है। इनमे दानसागर भण्डार, महिमा-भक्ति भण्डार, वर्द्धमान भण्डार, अभयसिंह भण्डार, जिनहर्षसूरि भण्डार, भुवन भक्ति भण्डार, रामचन्द्र भण्डार और महरचन्द्र भण्डार के नाम उल्लेखनीय है। इनके अतिरिक्त श्री पूज्य जी का भण्डार, जैन लक्ष्मी मोहन शाला ज्ञान भण्डार, मोतीचन्द जो खजान्ची सग्रह, क्षमाकल्याणजी का ज्ञान भण्डार, छत्ती बाई के उपासरे का भण्डार आदि के नाम भी उल्लेखनीय हैं। इनमे सबसे प्रसिद्ध एव महत्वपूर्ण अभय जैन ग्रन्थालय है जिसमे अकेले मे करीब 60 हजार प्रतिया सग्रहीत है। यह सग्रह सभी दृष्टियो से महत्वपूर्ण है। इस भण्डार की स्थापना करीब 40 वर्ष पूर्व हुई थी। यहा कागज के अतिरिक्त ताडपत्र पर भी ग्रन्थ मिलते है। इतिहास से सम्बन्धित ग्रन्थो का भण्डार मे उत्तम सग्रह है। जैनाचार्यो एव यतियो द्वारा लिखे हुए सैकडो पत्र भी यहा सग्रहीत हैं। भण्डार मे पुराने चित्र, सचित्र विज्ञप्तिया, कपडे के पट्ट, सिक्को एव दावात पर लिखे हुए पत्र सग्रहीत है। यह भण्डार पूर्णत व्यवस्थित है तथा सभी ग्रन्थ वर्णक्रमानुसार रखे हुए हैं। इस ग्रन्थालय के प्रबन्धक एव स्वामी श्री अगरचन्द्र नाहटा हैं जो स्वय भी महान् साहित्य सेवी हैं।

उक्त सग्रहो के अतिरिक्त सेठिया पुस्तकालय, गोविन्द पुस्तकालय, पायचन्द गच्छ उपासरा का सग्रह भी उल्लेखनीय है। इन सभी मे पाण्डुलिपियो का उत्तम सग्रह मिलता है। नगर मे कुछ और भी हस्तलिखित भण्डार हैं। राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान को श्री पूज्य जी का, उ जयचन्दजी का, उ समीरमलजी का, मोतीचन्दजी खजाची आदि का 22000 प्रतियो का सग्रह भेट स्वरूप दिया गया है। वास्तव मे इन भण्डारो की दृष्टि से बीकानेर का अत्यधिक महत्व है और इसे हम पाण्डुलिपियो का नगर ही कह सकते है।

चूरू मे यति ऋद्धिकरणजी का शास्त्र भण्डार है जिसमे करीब 3800 पाण्डुलिपियो का सग्रह है। यहा पृथ्वीराज रासो, काव्य कौस्तुभ (वैद्य भूषण), अलकार शेखर (केशव मिश्र) जैसी महत्वपूर्ण प्रतियो का सग्रह मिलता है। इसी तरह सरदारशहर की तेरापन्थी सभा मे करीब 1500 प्रतियों का सग्रह है। जिनमे अमरसेन रास, नैषधीय टीका का उत्तम सग्रह है। बीकानेर प्रदेश के अन्य नगरो मे शास्त्र भण्डारो की उपलब्धि निम्न प्रकार होती है—

1. यति सुमेर मल सग्रह, भीनासर (रा प्रा वि प्र को प्रदान)।
2. बहादुरसिंह बाठिया सग्रह, भीनासर।
3. श्वेताम्बर तेरहपथी पुस्तकालय, गगाशहर।
4. यति किशनलाल का सग्रह, कालू।
5. खरतरगच्छ के यति दुलीचन्द, सुजानगढ का शास्त्र भण्डार।
6. सुराना पुस्तकालय, चूरू।
7. श्रीचन्द गदहिया सग्रह, सरदारशहर।

8. ताराचन्द तातेड सग्रह, हनुमानगढ (वीरायतन को प्रदत्त) ।
9 वैदो का पुस्तकालय, रतनगढ ।

उक्त शास्त्र भण्डारो मे भारतीय साहित्य एव सस्कृति का अमूल्य सग्रह बिखरा हुआ पडा है ।

2 जोधपुर सभाग के ज्ञान भण्डार

जोधपुर राजस्थान की ऐतिहासिक नगरी है । इसकी स्थापना राठौड जोधाजी ने की थी । इसकी पुरानी राजधानी मण्डौर थी । यहा श्वेताम्बर जैनियो की अधिकता है । वर्तमान मे कई मन्दिर, दादावाडिया, उपासरे और स्थानक है । कई मन्दिरो व उपासरो मे ज्ञानभण्डार विद्यमान हैं जिनमे सहस्रो की सख्या मे हस्तलिखित पाण्डुलिपिया उपलब्ध है । केसरियानाथजी मन्दिर मे स्थित ज्ञानभण्डार मे लगभग 2000 पाण्डुलिपियां सग्रहीत हैं । इनमे सूरचन्द्र उपाध्याय रचित स्थूलिभद्र गुणमाला काव्य आदि की दुर्लभ पाण्डुलिपिया प्राप्त हैं । कोटडी के ज्ञानभण्डार मे लगभग एक हजार प्रतिया और जिनयशस्सूरि ज्ञानभण्डार मे अच्छा साहित्य सग्रहीत है । जयमल ज्ञानभण्डार, जैनरत्न पुस्तकालय, मगलचन्द्रजी ज्ञान-भण्डार आदि मे भी अच्छा सग्रह है ।

राजस्थान राज्य सरकार द्वारा स्थापित राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान का मुख्य कार्यालय यहा है । इस प्रतिष्ठान का विशाल हस्तलिखित ग्रन्थागार है । जिसमे लगभग 45,000 हस्तलिखित प्रतिया सुरक्षित हैं । इनमे से लगभग 30,000 जैन पाण्डुलिपिया हैं । इस प्रतिष्ठान मे अनेक दुर्लभ प्रतिया हैं जिनका ऐतिहासिक, सास्कृतिक एव भाषा-वैज्ञानिक दृष्टि से विशेष महत्व है । इस प्रतिष्ठान की अन्य शाखाए बीकानेर, उदयपुर, चित्तौडगढ, कोटा, टोक, जयपुर और अलवर मे स्थित है जिनमे लगभग 65,000 हस्तलिखित ग्रथ सग्रहीत हैं । राजस्थानी शोध सस्थान चौपासनी मे भी 17 हजार हस्तलिखित ग्रन्थो का सग्रह है ।

जोधपुर के अतिरिक्त अन्य स्थानो पर भी हस्तलिखित ग्रथो को सग्रह करने का कार्य हुआ है । इनमे पीपाड सिटी का जयमल ज्ञान भण्डार, यति चतुरविजयजी का सग्रह, सोजत-सिटी का रघुनाथ ज्ञान भण्डार, पाली स्थित श्री पूज्यजी का सग्रह, जैन स्थानक, खरतरगच्छ व तपागच्छ मन्दिर, उपासरे के भण्डार, बालोतरा का यति माणकचन्दजी का सग्रह, बाडमेर का यति नेमिचन्द्रजी का सग्रह, घाणेराव का हिमाचलसूरि का ज्ञान भण्डार, ओसिया के जैन विद्यालय मे स्थित भण्डार, फलौदी के तीन छोटे ज्ञानभण्डार, मेडता का पचायती ज्ञान भण्डार, सिरोही का तपागच्छीय भण्डार, जालौर का मुनि कल्याणविजयजी का सग्रह, आहोर का राजेन्द्र सूरि का ज्ञान भण्डार आदि उल्लेखनीय हैं ।

उदयपुर के शास्त्र भण्डार

राजस्थान के पश्चिमी भाग मे उदयपुर, डूगरपुर, बासवाडा, प्रतापगढ आदि प्रदेशो का भाग जैन सस्कृति, साहित्य एव पुरातत्व की दृष्टि से महत्वपूर्ण प्रदेश माना जाता है । चित्तौड, सागवाडा, डूगरपुर, ऋषभदेव जैसे नगर जैन सन्तो के केन्द्र रहे है । इन नगरो मे

प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश एवं हिन्दी की कितनी ही रचनायें रची गयी, लिपिबद्ध की गयी एवं स्वाध्यायार्थ जन-जन मे वितरित की गयी। उदयपुर मे 9 जैन मन्दिर है जिनमे सभी मे हस्त-लिखित पाण्डुलिपियो का संग्रह मिलता है लेकिन सबसे अधिक एव महत्वपूर्ण ग्रन्थ दिगम्बर जैन मन्दिर संभवनाथ, खण्डेलवाल जैन मन्दिर, अग्रवाल जैन मन्दिर एव गौडीजी का उपासरा मे संग्रहीत है। संभवनाथ मन्दिर के शास्त्र भण्डार मे 517 हस्तलिखित ग्रन्थ है। सबसे प्राचीन पाण्डुलिपि सन् 1408 की है जो भट्टोत्पल की "लघु जातक" टीका की है। यहा सकलकीर्ति रास की भी पाण्डुलिपि है जिसमे भट्टारक सकलकीर्ति का जीवन वृत्त दिया हुआ है। अग्रवाल दिगम्बर जैन मन्दिर मे यद्यपि करीब 400 ग्रन्थ है लेकिन अधिकाश पाण्डु-लिपिया प्राचीन है। सबसे प्राचीन पूज्यपाद कृत सर्वार्थसिद्धि की पाण्डुलिपि है जिस पर संवत् 1370 का लेखन काल दिया हुआ है। इसकी प्रतिलिपि योगिनीपुर मे की गयी थी। इस भण्डार मे सबसे अधिक संख्या हिन्दी ग्रन्थो की है। जिनमे कल्याणकीर्ति कृत चारुदत्त प्रबन्ध (1635 ए डी), अकलक यति रास (जयकीर्ति सन् 1710), दौलतराम कासलीवाल कृत जीवन्धर चरित (संवत् 1805), अम्बिका रास (ब्र जिनदास) आदि के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। दौलतराम कासलीवाल ने इसी मन्दिर मे बैठ कर जीवन्धर चरित की रचना की थी। इस भण्डार मे उसकी एक मात्र पाण्डुलिपि संग्रहीत है।[1]

खण्डेलवाल जैन मन्दिर के शास्त्र भण्डार मे करीब 200 प्रतिया है और संवत् 1363 की भूपाल स्तवन की पाण्डुलिपि है। इसी तरह गौडीजी के मन्दिर, उपासरे मे करीब 625 पाण्डुलिपिया है। इस भण्डार मे आगम शास्त्र, आयुर्वेद एव ज्योतिष आदि विषयो के ग्रन्थो का अच्छा संग्रह है।

डूगरपुर राजस्थान प्रान्त का जिला मुख्यालय है। यह पहिले वागड प्रदेश का सर्वा-धिक प्रसिद्ध राज्य था। जैन संस्कृति की दृष्टि से यह प्रदेश का एक संपन्न क्षेत्र रहा है। 15वी शताब्दी मे भट्टारक सकलकीर्ति एव उसके पश्चात् होने वाले भट्टारको का यह नगर प्रमुख केन्द्र था। सकलकीर्ति ने संवत् 1483 मे यही पर भट्टारक गादी की स्थापना की थी। सकलकीर्ति के पश्चात् होने वाले सभी भट्टारको ने अपने ग्रन्थो मे डूगरपुर, गिरिपुर के नाम का बहुत उल्लेख किया है। इन भट्टारको मे भुवनकीर्ति, ज्ञानभूषण, विजयकीर्ति, शुभचन्द्र आदि के नाम उल्लेखनीय है। ब्र जिनदास ने अपने प्रसिद्ध राम ग्रन्थ रामसीता रास की समाप्ति यही पर संवत् 1508 मे की थी। यहा के मन्दिर के शास्त्र भण्डार मे 553 प्रतिया है जिनमे अधिकाश ग्रन्थ अत्यधिक महत्वपूर्ण है। भण्डार मे चन्दनमलयागिरि चौपई, आदित्यवार कथा एव राग रागिनियो की सचित्र पाण्डुलिपिया है जो चित्रकला एव शैली की दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण है।

केसरियानाथ के नाम से प्रसिद्ध 'ऋषभदेव' जैनो का अत्यधिक प्राचीन एव लोकप्रिय तीर्थ माना जाता है जहा जैन एव अजैन बन्धु प्रति वर्ष लाखो की संख्या मे आते है। जैन जाति के भट्टारको का यह प्रमुख स्थान माना जाता है। यहा उनकी गादी भी स्थापित है यहा का शास्त्र भण्डार भट्टारक यशकीर्ति जैन सरस्वती भवन के नाम से प्रसिद्ध है जिसमे हस्तलिखित ग्रन्थो की संख्या करीब 1100 से भी अधिक है। 15वी, 16वी एव 17वी शताब्दी मे लिखे हुए ग्रन्थो की संख्या सबसे अधिक है जो भण्डार की प्राचीनता की ओर एक स्पष्ट संकेत है। शास्त्र भण्डार मे राजस्थानी, हिन्दी एव मेवाडी भाषा मे लिखे हुए ग्रन्थ सर्वाधिक है जिससे ज्ञात होता है कि इन ग्रन्थो के संग्रहकर्ता इन भाषाओ के प्रेमी रहे थे। ऐसे ग्रन्थो मे पद्मा कवि का महावीर रास (संवत् 1609), नरसिंहपुरा जाति रास, भ रतनचन्द्र का शान्ति नाथ पुराण (संवत् 1783), भट्टारक महीचन्द्र का लवकुश आख्यान आदि के नाम उल्लेखनीय है।

1 ग्रन्थो का विशेष विवरण देखिये—राजस्थान के जैन शास्त्र भण्डारो की ग्रन्थ सूची पंचम भाग।

सागवाडा बागड प्रदेश का प्रमुख नगर है जो सैकडो वर्षो तक भट्टारको का प्रभाव केन्द्र रहा। यहा के मन्दिरो मे विशाल एव कलापूर्ण मूर्तिया विराजमान हैं जो इन भट्टारको द्वारा प्रतिष्ठापित की गयी थी। सागवाडा को हम विशाल जैन मन्दिरो का नगर भी कह सकते हैं। यहा की प्राचीनता एव भट्टारको के केन्द्र स्थान की दृष्टि से शास्त्र भण्डार उतना महत्वपूर्ण नही है। फिर भी यहा अधिकाश भट्टारको की कृतिया उपलब्ध है।

कोटा-बून्दी के ग्रन्थ भण्डार

कोटा, बून्दी, झालावाड हाडौती प्रदेश के नाम से विख्यात हैं। राजस्थान मे इस प्रदेश की सस्कृति एव सभ्यता का इतिहास काफी पुराना है। जैन धर्म एव सस्कृति ने इस प्रदेश को कब से गौरवान्वित किया यह अभी तक खोज का विषय बना हुआ है। लेकिन बून्दी, नैणवा, झालरापाटन का जैन ग्रन्थो मे काफी वर्णन मिलता है क्योकि इन नगरो ने जैन सस्कृति के विकास मे खूब योग दिया था।

खरतरगच्छीय शास्त्र भण्डार, कोटा मे 1177 हस्तलिखित ग्रन्थो का सग्रह है जो प्रमुखत 15वी, 16वी एव 17वी शताब्दी मे लिखे हुए हैं। सबसे प्राचीन पाण्डुलिपि रामलक्ष्मण रास की है जो सवत् 1415 की लिखी हुई है। इसी भण्डार मे हिन्दी की प्रसिद्ध कृति वीसलदेव चौहान रास की पाण्डुलिपि भी उपलब्ध है। इसी प्रकार महोपाध्याय विनय-सागरजी का सग्रह भी उल्लेखनीय है जिसमे लगभग 1500 पाण्डुलिपिया प्राप्त हैं। दिगम्बर जैन मन्दिर बोलसिरी के शास्त्र भण्डार मे करीब 735 हस्तप्रतियो का भी सग्रह है। इस भण्डार के सग्रह से पता चलता है कि यहा 18वी शताब्दी मे हस्तलिखित ग्रन्थो का सबसे अधिक सग्रह हुआ था। सबसे प्राचीन पाण्डुलिपि भट्टारक शुभचन्द्र कृत पाण्डवपुराण की है जो सवत् 1548 मे प्रतिलिपि की गयी थी। शुभचन्द्र का पल्य विधान रास, भट्टारक नरेन्द्रकीर्ति का चन्द्रप्रभ स्वामी विवाहलो (सवत् 1702) एव मुनि सकलकीर्ति की रविव्रत कथा का नाम उल्लेखनीय है।

बून्दी नगर मे दिगम्बर जैन मन्दिर पार्श्वनाथ, आदिनाथ, अभिनन्दनस्वामी, महावीर एव नेमिनाथ इन सभी मन्दिरो मे हस्तलिखित भण्डार उपलब्ध हैं। यद्यपि इनमे किसी मे भी 500 से अधिक प्रतिया नही हैं। लेकिन फिर भी यहा के शास्त्र भण्डार पूर्ण रूप से व्यवस्थित हैं। पार्श्वनाथ मन्दिर के शास्त्र भण्डार मे ब्रह्म जिनदास के रामसीतारास की अब तक उपलब्ध पाण्डुलिपियो मे सबसे पुरानी पाण्डुलिपि है जो सवत् 1518 की लिखी हुई है। इसी तरह नेमिनाथ (नागदी) के मन्दिर मे रचित माधवानल प्रवन्ध की सवत् 1594 की प्रति है। यहा कवि बूचराज की कृतियो का अच्छा सग्रह है जो अन्यत्र नही मिलती।

झालरापाटन मे ऐलक पन्नालाल सरस्वती भवन है जिसमे 1436 पाण्डुलिपिया सग्रहीत हैं। हस्तलिखित ग्रन्थ सस्कृत, प्राकृत एव हिन्दी भाषा मे उपलब्ध हैं तथा सिद्धान्त, अध्यात्म, पुराण, काव्य, कथा, न्याय एव स्तोत्र आदि विषयो से सम्बन्धित है। यह भण्डार पूर्णत व्यवस्थित है।

बून्दी के समान नैणवा मे भी प्राय प्रत्येक मन्दिर मे शास्त्र भण्डार है जो दिगम्बर जैन मन्दिर, बघेरवाल तेरापन्थी मन्दिर एव अग्रवाल जैन मन्दिर के नाम से प्रसिद्ध है। इन भण्डारो मे पचासो ऐसी पाण्डुलिपिया है जो नैणवा मे ही लिखी गयी थी। सबसे अधिक पाण्डुलिपि 18वी एव 19वी शताब्दी मे लिखी गयी है। सबसे अच्छा सग्रह बघेरवाल मन्दिर का है जिसमे सार सिखामण रास (भट्टारक सकलकीर्ति), ब्रह्म यशोधर का नेमिनाथ गीत (16वी शताब्दी), जिनसेन का पन्चेन्द्रियगीत (16वी शताब्दी) आदि के नाम उल्लेखनीय हैं।

दबलाना एक छोटा सा गाव है, यह बून्दी से पश्चिम की ओर दस मील सडक पर स्थित है यहा के मन्दिर मे भी ग्रन्थो का अच्छा सग्रह है जिनकी सख्या 416 है। शास्त्र भण्डार से ऐसा मालूम पडता है कि यह भण्डार किसी दिगम्बर साधु (पाण्डे) का था जो उसकी मृत्यु के पश्चात् यही के मन्दिर मे स्थापित कर दिया गया। इसमे सबसे प्राचीन षडावश्यक बालावबोध का है जिसका लेखन काल सन् 1464 का है। भण्डार मे राजस्थान के विभिन्न नगरो मे लिपि किए हुए ग्रन्थ है जिनमे बून्दी, नैणवा, गोठडा, इन्दरगढ, जयपुर, जोधपुर, सागवाडा एव मीसवाली के नाम उल्लेखनीय है।

इन्दरगढ सवाई माधोपुर से कोटा जाने वाले रेल्वे लाइन पर स्थित है। यहा के पार्श्वनाथ मन्दिर मे हस्तलिखित पाण्डुलिपियो का भण्डार है जिसमे 289 हस्तलिखित ग्रन्थो का सग्रह है। इनमे से अधिकाश ग्रन्थ स्वाध्याय मे काम मे आने वाले है।

राजस्थान के जैन शिलालेख

—रामवल्लभ सोमाना

राजस्थान से प्राप्त शिलालेखो मे जैन शिलालेखों की सख्या अधिक है। ये लेख प्राय मन्दिरो, मूर्तियो, स्तम्भो, निषेधिकाओ और कीर्तिस्तम्भो पर विशेष रूप से उत्कीर्ण मिलते हैं। इनके अतिरिक्त सुरह लेख एव चट्टानो पर खुदे लेख भी कुछ मिले हैं। मोटे तौर पर जैन लेखो को निम्नाकित पाच भागो मे बाट सकते है—

(1) ऐतिहासिक लेख,
(2) मन्दिरो की प्रतिष्ठा एव व्यवस्था सम्बन्धी लेख,
(3) यात्रा सम्बन्धी विवरण,
(4) मूर्तियो के लेख,
(5) निषेधिकाओ और कीर्तिस्तम्भो के लेख।

राजस्थान से प्राप्त लेखो मे बडली का बहुचर्चित लेख प्राचीनतम माना जाता है, किन्तु इस लेख के सम्बन्ध मे विभिन्न विद्वानो मे मतभेद रहा है। मध्यमिका से एक खण्डित लेख मिला है जिसमे 'सब जीवो की दया के निमित्त' भावना युक्त कुछ खण्डित अश हैं। इसे जैन अथवा बौद्ध लेख मान सकते हैं। इसके अतिरिक्त राजस्थान से प्राचीनतम जैन लेख अपेक्षाकृत कम मिले हैं, यद्यपि यहा ख्याति प्राप्त आचार्य सिद्धसेन दिवाकर, हरिभद्रसूरि, उद्योतनसूरि, एलाचार्य जैसे विद्वान हुए हैं। साहित्यिक आधारो से यहा कई प्राचीन मन्दिरो की स्थिति का पता चलता है किन्तु प्राचीनतम शिलालेखो का नही मिलना उल्लेखनीय है। मथुरा प्राचीन काल से जैन धर्म का केन्द्र स्थल रहा है। यहा से जैन साधुओ को दक्षिणी भारत अथवा गुजरात मे जाने के लिए, नि सदेह राजस्थान से होकर यात्राए करनो पडती थी किन्तु इनके कोई शिलालेख नही मिले हैं। राजस्थान से प्राप्त जैन लेखो का विवेचन इस प्रकार है—

1 ऐतिहासिक लेख

जैन शिलालेखो का ऐतिहासिक महत्व अत्यधिक है। प्राचीन काल से ही जैनियो मे इतिहास लिखन की सुदृढ परम्परा रही है। कालगणना सम्बन्धी जैनियो का ज्ञान उल्लेखनीय रहा है। जैन विद्वानो द्वारा किंचित् प्रशस्तियो मे ऐतिहासिक महत्व की सामग्री अत्यधिक पाई गई हैं। इस सम्बन्ध मे एक रोचक वृत्तान्त प्रस्तुत किया जा सकता है। वि. स 1330 की चीरवा की प्रशस्ति एव वि स 1324 की घाघसा की अजैन प्रशस्तियो की रचना जैन विद्वान् चैत्रगच्छाचार्य रत्नप्रभसूरि ने की थी। दोनो प्रशस्तियो मे मेवाड के महाराणाओ के सम्बन्ध मे कई महत्वपूर्ण सूचनायें दी गई है। लगभग इसी समय वेदशर्मा नामक चित्तौड निवासी ब्राह्मण ने दो प्रशस्तिया वि स 1331 की चित्तौड की और वि स 1342 की अचलेश्वर मन्दिर आबू की प्रशस्तिया बनाई। दोनो मे भी मेवाड के राजाओ का वर्णन है। इन दोनो की तुलना करने पर पता चलता है कि वेद शर्मा द्वारा विरचित प्रशस्तिया ऐतिहासिक तथ्यो से परे अलकारिक एव परम्परागत वर्णन लिए हुए ही हैं।

राजस्थान से ऐतिहासिक महत्व की कई जैन प्रशस्तियां मिली हैं। घटियाला का वि स 918 का लेख पूरा प्राकृत भाषा मे निबद्ध है एव इसका भारत के जैन लेखो मे बड़ा महत्व है। इस लेख में प्रतिहार राजवश का वर्णन है। इसमे दी गई वशावली वि. स 894 के जोधपुर अभिलेख से भी मिलती है। लेख कीर्तिस्तम्भ पर उत्कीर्ण है। ओसिया के जैन मन्दिर के वि स 1013 के शिलालेख के सातवे श्लोक मे प्रतिहार राजा वत्सराज (8वीं शताब्दी) द्वारा वहा जैन प्रतिमा स्थापित करने का उल्लेख है। आहड के जैन मन्दिर के 10वी शताब्दी के एक शिलालेख मे (जिसे मैने अनेकान्त पत्र (दिल्ली से प्रकाशित) मे सम्पादित करके प्रकाशित कराया है) मेवाड़ के शासक अल्लट द्वारा प्रतिहार राजा देवपाल के मारने का उल्लेख मिलता है। लकुलीश मन्दिर एकलिगजी के राजा नरवाहन के समय के शिलालेख वि स 1028 मे शैवो, बौद्धो और जैनो के मध्य वाद-विवाद करने का उल्लेख किया गया है। दिगम्बर जैन परम्पराओ से भी इसकी पुष्टि होती है। काष्ठासघ की लाट वागड की गुर्वावली के अनुसार प्रभाचन्द्र नामक साधु को "विकटशैवादिवृन्दवनदहनदावानल" कहा गया ह। इनके उक्त राजा नरवाहन की सभा मे शास्त्रार्थ करने का भी उल्लेख किया गया है। इस प्रकार यह एक महत्वपूर्ण सूचना है। वस्तुत एकलिगजी से 2 मील दूर "आलाक पार्श्वनाथ का मन्दिर" नागदा मे स्थित हैं। यह दिगम्बर सम्प्रदाय का 10वीं शताब्दी का बना हुआ है। इसमे 11वी शताब्दी का एक शिलालेख भी मुनि कान्तिसागरजी ने देखा था जिस उन्हाने प्रकाशित भी कराया है, लेकिन इस समय अब केवल 13वी शताब्दी के शिलालेख ही उपलब्ध ह। वि स. 1226 क बिजोलिया के शिलालेख मे इस मन्दिर का विशिष्ट रूप से उल्लेख होन से यह माना जा सकता है कि उस समय नागदा एक दिगम्बर तीर्थ के रूप मे प्रसिद्धि पा चुका था। समस्त तीर्थ नमस्कार, चैत्यवन्दना आदि ग्रन्थो मे भी इसका इसी रूप में उल्लेख किया गया है। अतएव प्रतीत होता है कि मेवाड मे कई साधु रहते होगे और उनसे ही शैवो का शास्त्राथ हुआ हागा। प्रभाचन्द्र साधु भी मेवाड़ मे दीघकाल तक रहे हो तो कोई आश्चर्य नही।

11वी शताब्दी के आसपास जैन धर्म को राज्याश्रय मिलना शुरू हो गया था। दिगम्बरो के चित्तौड़, नागदा, केसरियाजी, वागडक्षेत्र, हाड़ौती, लाडनू, आमेर, चाटसू आदि मुख्य केन्द्र थे। श्वेताम्बरो के केन्द्रस्थल ओसिया, किराडवाली, आबू, जालोर आदि मुख्य रूप से थे। मेवाड़ मे श्वेताम्बर साधु भी प्रभाव बढ़ाते जा रहे थे। पश्चिमी राजस्थान में बड़ी सख्या मे जैन शिलालेख मिले है। राठौड़ो के राज्याश्रय मे हस्तीकुण्डी का वि. स 1053 का महत्वपूर्ण जैन लेख खुदवाया गया था। इसमे कई महत्वपूण ऐतिहासिक सूचनाये दी गई है। इसमे परमार राजा मुज के मेवाड़ पर आक्रमण करने और आघाट को खण्डित करने का उल्लेख है। इसी लेख मे गुजरात के राजा द्वारा धरणीवराह परमार पर आक्रमण करने और उसके हठूडी मे शरण लेने का उल्लेख है। हठूडी और सेवाड़ी गोडवाड़ मे हैं और जैनियो के तीर्थस्थलो मे से एक है। सेवाडी से वि स 1172 और 1176 के प्रसिद्ध जैन लेख मिले हैं। इन लेखो के अवलोकन से पता चलता है कि राठोड़ो के अतिरिक्त गुहिलोत और चौहान भी व्यापक रूप से जैन मन्दिरो के लिए दान दते आ रह थे। इनके दानपत्रो मे जो वंश वर्णन दिया गया है वह ऐतिहासिक दृष्टि से महत्वपूर्ण है। नाडाल के वि स 1218 और नाडलाई के भी वि स 1218 के ताम्रपत्र इसी कारण वहुत ही प्रसिद्ध हं।

2. मन्दिरो की प्रतिष्ठा एव व्यवस्था सम्बन्धी लेख

प्राय मन्दिरो की व्यवस्था गोष्ठिको द्वारा की जाती थी। इन गोष्ठिको का चुनाव समाज के प्रतिनिधि व्यक्ति अथवा मन्दिर बनाने वाले या उसके निकट परिवार के सदस्य करते थे। इन्हे मन्दिर की आय, व्यवस्था, व्यय, पूजा-प्रतिष्ठा, स्थायी सम्पत्ति की प्राप्ति

ग्रौर विक्री, ब्याज पर पूजी नियोजन ग्रादि का पूर्ण ग्रधिकार रहता था। वि सं 1287 के ग्राबू के लूणिग वसही के लेख से पता चलता है कि मन्त्री वस्तुपाल तेजपाल ने ग्रपने सभी निकट सम्बन्धियो को पूजा सम्बन्धी विस्तृत ग्रधिकार दिए थे। रत्नपुर के शिलालेख से पता चलता है कि गोष्ठिकों की सस्था को "भाटक" सस्था भी कहते थे। वि स 1235 के सच्चिका देवी के मन्दिर के शिलालेख मे "सच्चिकादेवी गोष्ठिकान् भगित्वा तत्समक्षत इय व्यवस्था लिखापित" एव सेवाडी के वि सं 1192 के लेख मे "गोष्ठया मिलित्वा निषेधीकृत" कहकर व्यवस्था की गई है। ऐसे ही वर्णन वि सं 1236 के साडेराव के लेख मे हैं।

मन्दिरो की व्यवस्था के लिए कई दान देने का भी उल्लेख है। इनमे पूजा के ग्रतिरिक्त वार्षिक उत्सव, रथयात्रा ग्रादि के लिए भी व्यवस्था कराने का उल्लेख है। इनके ग्रतिरिक्त कई बार कर लगाने के भी उल्लेख मिलते हैं जिनकी ग्राय सीधी मन्दिर को मिलती थी। इनमे से कुछ का वर्णन इस प्रकार है—

वि स 1167 के सेवाडी के शिलालेख मे महाराज ग्रश्वराज द्वारा धर्मनाथ देव की पूजा के निमित्त ग्राम पदराडा, मेदरचा, छोछडिया ग्रौर मादडी से प्रति रहट जव देने का उल्लेख किया गया है। वि स 1172 के इसी स्थान के लेख मे जैन मन्दिर के निमित्त प्रति वर्ष 8 द्रम्म देने का उल्लेख है। वि सं 1198 के नाडलाई के लेख मे महाराज रायपाल के दो पुत्रो ग्रौर उसकी पत्नी द्वारा जैन यतियों के लिये प्रति घाणी दो पल्लिका तेल देने की व्यवस्था की सूचना मिलती है। वि सं 1187 के सडेरगच्छ के महावीर देशी चैत्य के निमित्त मोरकरा गाम मे प्रति घाणी तेल देने का इसी प्रकार उल्लेख मिलता है। वि स 1195 के नाडलाई के लेख मे गुहिल वशीय राऊल उद्धरण के पुत्र ठक्कुर राजदेव द्वारा नेमिनाथ की पूजा के निमित्त नाडलाई मे ग्राने-जाने वाले समस्त भारवाहक वृषभो से होने वाली ग्राय का 1'10 भाग देने का उल्लेख है। वि सं 1200 के नाडलाई के लेख मे रथ यात्रा के निमित्त उक्त राजदेव द्वारा 1 विंशोपक ग्रौर 2 तेल पल्लिका देने का उल्लेख है। वि स 1200 के वाली के शिलालेख मे इसी प्रकार रथ यात्रोत्सव के लिए 4 द्रम्म देने की सूचना दी गई है। वि. स 1202 के नाडलाई के लेख के ग्रनुसार उक्त राजदेव गुहिलोत द्वारा महावीर चैत्य के साधुग्रो के लिए दान दिया गया था। वि स 1218 के ताम्रपत्र मे सडेरगच्छ के महावीर चैत्य के लिए प्रतिमास 5 द्रम्म दान मे देने का उल्लेख किया गया है। वि स 1218 के नाडलाई के ताम्रपत्रों मे कीतु चौहान द्वारा 12 ग्रामो मे प्रत्येक से 2 द्रम्म महावीर मन्दिर के निमित्त दान मे देने का उल्लेख है। वि सं 1221 के केल्हण के साडेराव के लेख से ज्ञात होता है कि चैत्र वदि 13 को होने वाले भगवान् महावीर के कल्याणक महोत्सव के निमित्त राजकीय ग्राय मे से दान देने का उल्लेख है। इसी प्रकार के उल्लेख दताणी के वि स 1345, हटूंडी के पास स्थित राता महावीर मन्दिर के सं 1335, 1336 ग्रौर वि स 1345 के लेखो मे है। चाचिगदेव सोनगरा ने मेवाड के करेडा मन्दिर के निमित्त नाडोल की मडपिका से दान दिया था। इसका उल्लेख उसने वि स 1326 के शिलालेख मे किया है। यह मन्दिर उसकी राज्य के सीमाग्रो मे नही था फिर भी दान देना विचारणीय है।

जालौर क्षेत्र से भी इस प्रकार के कई लेख मिल चुके हैं। वहा से प्राप्त वि स 1320 के एक शिलालेख के ग्रनुसार नानकीयगच्छ के चन्दन-विहार नामक मन्दिर के निमित्त लक्ष्मीधर श्रेष्ठि ने 100 द्रम्म दान मे दिए थे। जिसकी ग्राय मे से नियमित रूप से ग्रासोज मास के ग्रष्टान्हिक महोत्सव कराए जाने की व्यवस्था कराने का उल्लेख है। वि स 1323 के इसी मन्दिर के लेख के ग्रनुसार मह नरपति ने 50 द्रम्म दान मे दिए थे। जिसके ब्याज की ग्राय से मन्दिर के लिए नेचक (माला) की व्यवस्था कराने का उल्लेख है।

चित्तौड से वि स 1335 का एक शिलालेख मिला है। इसमे भर्तृपुरीय गच्छीय आचार्य प्रद्युम्नसूरि के उपदेश से महारावल समरसिंह ने अपनी माता जयतल्लदेवी की इच्छानुसार श्याम पार्श्वनाथ का मन्दिर बनाया एव मठ की व्यवस्था के लिए पर्याप्त राशि दान मे दी। चित्तौड, सज्जनपुर, खोहर, आघाट आदि की मडपिकाओ से होने वाली आय मे से पर्याप्त राशि देने का उल्लेख मिलता है।

बिजोलिया क्षेत्र मे दिगम्बर जैनो का अधिक प्रभाव रहा था। वहा से दो प्रसिद्ध लेख मिले है। पहला लेख वि स. 1226 का है। इसमे चौहानो की विस्तृत वशावली दी हुई है। यह वशावली हर्षनाथ के वि स 1030 के शिलालेख और पृथ्वीराज विजय काव्य से मिलती है और प्रामाणिक है। इसी सामग्री से पृथ्वीराज रासो नामक ग्रन्थ को जाली सिद्ध करने मे सहायता मिली है। दूसरा लेख "उन्नत शिखर पुराण" का अश है। इसे मैंने अनेकान्त मे सपादित करके प्रकाशित कराया है। चित्तौड से परमार राजा नरवर्मा के समय का लेख मिला है। इस लेख के प्रारम्भ में मालवे के परमार राजाओ की वशावली दी हुई है। इसमे चित्तौड मे स्थापित विधिचैत्य के लिए दान देने की व्यवस्था भी की गई है। चित्तौड से ही वि स 1207 की कुमारपाल की शिवमन्दिर की प्रशस्ति मिली है। इसकी रचना दिगम्बर जैन विद्वान रामकीर्ति ने की थी जो जयकीर्ति के शिष्य थे। इस लेख मे कुमारपाल के शाकम्भरी जीतने की महत्वपूर्ण सूचना है।

13वी शताब्दी मे राजस्थान मे आबू, चित्तौड, जालौर, गौडवाड आदि क्षेत्रो मे महत्वपूर्ण निर्माण कार्य हुआ था। आबू मे प्रसिद्ध 'लूणिग वसही" नामक जैन मन्दिर बना था। इसके वि स 1287 के शिलालेख मे कई महत्वपूर्ण ऐतिहासिक सूचनाए है। इसमे गुजरात के शासको और आबू के परमारो की विस्तृत वशावली दी हुई है एव कई राजाओ का विस्तृत वशवृक्ष भी दिया हुआ है। यह मन्दिर परमार राजा सोमसिंह के समय बना था। इसकी मा शृगारदेवी भी जैन धर्म से प्रभावित थी। झाडोली के वि स 1255 के जैन मन्दिर के लेख मे इसका उल्लेख भी किया हुआ है। वि स 1350 का परमार राजा वीसलदेव का आबू से प्राप्त महत्वपूर्ण लेख है। इस राजा के 4 अन्य जैन लेख वि स 1345 से 1351 तक के भी मिले है। आबू के अन्तिम परमार शासको के सम्बन्ध मे जानकारी देने वाले ये लेख महत्वपूर्ण हैं। वस्तुत वि स 1344 के पाटनारायण के लेख के बाद आबू मे परमारो के सम्बन्ध मे क्रमबद्ध सूचना नहीं मिलती है। अतएव यह लेख भी महत्वपूर्ण है। नाडोल के चौहानो और जालोर के सोनगरो के सम्बन्ध मे सूढा पहाड का महत्वपूर्ण शिलालेख मिला है। इस लेख के माध्यम से इनकी विस्तृत वशावली तैयार की गई है। सोनगरो के बचे हुए राजाओ के नामो की विस्तृत सूची वि स 1378 के देलवाडा के विमल वसही के लेख मे है।

अल्लाउद्दीन खिल्जी ने आबू के जैन मन्दिरो को विध्वस किया था और उनका जीर्णोद्धार वि स 1378 के आसपास मण्डोर के जैन श्रेष्ठि परिवारो ने कराया था। सैणवा (जिला चित्तौड) और गगरार (जिला चित्तौड) से भी वि स 1372 और वि. स 1389 तक के कई दिगम्बर जैन लेख मिले है। ये लेख प्राय निषेधिकाओ के है। इन लेखो से पता लगता है कि अल्लाउद्दीन के आक्रमण के बाद कुछ दिनो मे वहा स्थिति मे परिवर्तन आ गया था और जैन साधु वापस वहा आकर रहने लग गए थे। जैसलमेर मे भी अल्लाउद्दीन का आक्रमण हुआ था। इस आक्रमण के सम्बन्ध मे फारसी तवारीखे प्राय. मौन है और एक मात्र सूचना वहा के जैन मन्दिरो की प्रशस्तियो से ही मिलती है।

अल्लाउद्दीन के आक्रमण के बाद राजस्थान मे कई महत्वपूर्ण परिवर्तन हुए है। मेवाड के सिसोदियो का उदय एक महत्वपूर्ण ऐतिहासिक घटना है। इनके राज्य मे श्वेताम्बर जैनियो

का वडा अभ्युदय हुआ। देवकुलपाटक (देलवाडा), चित्तौड और करेडा मे कई मन्दिर बने। यहा से कई शिलालेख, ग्रन्थ, प्रशस्तिया आदि मिली है। इन लेखो मे वि स 1495 का चित्तौड का लेख और वि स 1496 का राणकपुर का शिलालेख मुख्य है। राणकपुर का शिलालेख मेवाड इतिहास के लिए बहुत ही उपयोगी है। मैंने "महाराणा कुम्भा" पुस्तक मे इस पर विस्तार से लिखा है। शत्रुन्जय का जीर्णोद्धार चित्तौड के जैन श्रेष्ठि तोलाशाह ने कराया था। इसका एक शिलालेख वि स 1587 का मिला है। इसमे प्रारम्भ मे मेवाड के राजवश का वर्णन आदि का उल्लेख है। वागड प्रदेश भी मेवाड की तरह जैन धर्म का प्रमुख केन्द्र रहा था। यहा से ऊपर गाव की वि स 1461 की एक महत्वपूर्ण प्रशस्ति मिली है जिसे मैंने "अनेकान्त" मे प्रकाशित भी कराई है। इसमे प्रथम बार वागड के शासको पर प्रामाणिक सामग्री प्रकाशित हुई है।

इस प्रकार मध्यकाल मे और भी कई लेख मिले हैं। मुंहता नैनसी और उसके पिता जयमल के जालौर, फलोदी और नाडोल के लेख, थाहरुशाह भणशाली के जैसलमेर एव लोद्रवा के लेख, मोहनदास मन्त्री परिवार के आमेट आदि के लेख हैं। इस प्रकार कई महत्वपूर्ण सामग्री जैन लेखो से प्राप्त हुई है।

इन शिलालेखो का क्रम इस प्रकार से मिलता है। प्रारम्भ मे जैन तीर्थंकरो की स्तुति, और वाद मे सरस्वती आदि की वन्दना भी दी गई है। इसके बाद राजवश वर्णन रहता है। आवू की लूणिग वसही की प्रशस्ति मे पहले श्रेष्ठि परिवार का वर्णन है और राजवश वर्णन वाद में दिया गया है, किन्तु अधिकाश लेखो मे राजवश वर्णन के वाद ही श्रेष्ठि वश-वर्णन रहता है। श्रेष्ठि वश के बाद साधुओ के गच्छ, परम्परा आदि का वर्णन रहता है, किन्तु कही-कही श्रेष्ठि वश के पूर्व भी साधुओं का वर्णन दिया गया है। अत मे प्रशस्तिकार का वर्णन, खोदने-वाले, लिखने वाले आदि का उल्लेख रहता है।

सुरह लेखो मे परम्परा इससे कुछ भिन्न होती है। ये दानपत्र के रूप मे होते है। इसमे प्राय न तो राजा का वश वर्णन रहता है और न जैन साधुओ का। इसमें केवल राजा विशेष द्वारा दिये गये दान आदि का उल्लेख रहता है। अगर भूमि दान में दें तो भूमि की सीमाये भी अकित रहती है। अन्य दान पत्र होगा तो उसमें विशेष प्रयोजन का भी उल्लेख होगा।

3 यात्रा सम्बन्धी विवरण

यात्रा सम्बन्धी विवरण प्राय दो प्रकार के मिलते है। कुछ विवरण सघ यात्राओ के हैं जो मुख्य-मुख्य तीर्थों, जैसे आवू, राणकपुर, चित्तौड, केसरियाजी आदि स्थानो पर यात्रार्थ जाने के हैं। ये यात्री भारत के अन्य जैन-तीर्थों की यात्रा करते-करते राजस्थान में भी आये प्रतीत होते हैं। दूसरे विवरण उन यात्रियो से सम्बन्धित है जो अकेले ही यात्रा करते थे। सघ यात्राओ के विशद वर्णन मिलते हैं। वस्तुपाल तेजपाल द्वारा सघ निकालकर यात्रा पर जाने का वर्णन बहुत ही विस्तार से मिलता है। चित्तौड के वि स 1495 के शिलालेख मे श्रेष्ठि गुणराज द्वारा सघ यात्रा निकालने आदि के वर्णन है। इस यात्रा में राणकपुर मदिर के निर्माता श्रेष्ठि धरणा भी सम्मिलित हुआ था। मालवे से आये सघयात्री जसवीर को महाराणा कुम्भा ने तिलक लगाया और सम्मानित किया था। आवू मे सघ यात्राओ के कई शिलालेख लगे है। वि स 1358 जेठ सुदि 5 के लेख मे लखावी के सघ की यात्रा की सूचना दी गई है। वि स 1378 में रणस्तम्भपुर के विस्तृत सघ के वहा आने का उल्लेख भी शिलालेख से ज्ञात होता है। इसी प्रकार वि स 1503 में चन्देरी से सघ के आने की सूचना मिलती है। राजस्थान में ऐसे सघ यात्रा सम्बन्धी कई और लेख मिले हैं। इनसे ज्ञात होता है कि राजस्थान में श्रेष्ठिगण

अपने धर्म स्थानो की यात्राओ पर प्राय जाया करते थे। उनके साथ जैन साधु भी होते थे। आचार्य सोमसुन्दरसूरि, हीरविजयसूरि आदि ने कई उल्लेखनीय सघ यात्राये कराई थी।

4 मूर्तिलेख

राजस्थान से श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनो ही सम्प्रदायो की असख्य मूर्तिया लेखयुक्त मिलती है। ये लेख प्राय तीर्थंकरो की प्रतिमाओ पर उत्कीर्ण मिलते है किन्तु, कही-कही आचार्यो की प्रतिमाओ, जीवन्तस्वामी की प्रतिमाओ, जैन सरस्वती, अम्बिकादेवी, सच्चिका देवी आदि की प्रतिमाओ पर भी लेख मिलते है। 10वी शताब्दी के पूर्व की लेख युक्त प्रतिमाये अत्यल्प है। 10वी शताब्दी से वडी सख्या मे मूर्तिया मिलती हैं। ओसिया के मदिर में वि. स 1040 मे प्रतिष्ठापित प्रतिमा विराजमान है। अमरसर से खुदाई मे प्रतिमाओ मे संवत् 1063, 1104, 1112, 1129, 1136 और 1160 की प्रतिमाये मिली हैं। इसी प्रकार वघेरा से खुदाई में प्राप्त प्रतिमाये भी 11वी और 12वी शताब्दी की हैं। रूपनगढ से प्राप्त प्रतिमाये भी इसी काल की हैं। माचोर मे विशालकाय पीतलमय मूर्ति वि स 1134 मे प्रतिष्ठित की गई थी जो वि स 1562 मे आवू मे लाई गई थी। वि.स 1102 मे आवू मे सलावटो ने अपनी ओर से जिन प्रतिमा निर्मित कराके प्रतिष्ठित कराई थी। इन मूर्तियो की प्रतिष्ठायें विशेष आचार्यों द्वारा कराई जाती थी। दिगम्वरो द्वारा मूर्ति प्रतिष्ठाओ मे मोजमावाद मे वि स 1664 मे, चाद खेडी खानपुर में वि स 1746 मे, वासखो में वि स 1783 में, सवाई माधोपुर मे वि स 1826 में हुई प्रतिष्ठाओ के समय वड़ी सख्या मे मूर्तिया और यन्त्र प्रतिष्ठापित हुये थे। वि स 1508 मे नाडोल मे महाराणा कुभा के समय जव प्रतिष्ठा हुई थी तव भी कई प्रतिमाओ की प्रतिष्ठा कराई गई थी, जो वाद में कुभलगढ, देवकुल पाटन आदि स्थानो को भेजी गई थी। इन मूर्ति लेखो से कई रोचक वृत्तान्त भी मिलते है। जैसे वि स 1483 के जीरापल्ली के लेखो से ज्ञात होता है कि इस वर्ष वहा 4 गच्छो के वडे-वडे आचार्यों ने एक साथ चौमासा किया था। वि स 1592 के वीकानेर के शिलालेख से वहा कामरा के आक्रमण की सूचना दी गई है जो महत्वपूर्ण है।

कई वार जैन प्रतिमाये एक स्थान से दूसरे स्थान पर ले जाई गई थी। वि स 1408 में मूडस्थला में प्रतिष्ठित प्रतिमाये आवू ले जायी गई जो आजकल विमल वसही में मुख्य मन्दिर के वाहर लग रही है। इसी प्रकार वि स 1518 में कुम्भलगढ में महाराणा कुम्भा के राज्य में प्रतिष्ठित प्रतिमा वि स 1566 में अचलगढ ले आई गई थी। मन्त्री कर्मचन्द्र अकबर से स्वीकृति लेकर सिरोही और आवू क्षेत्र की कई प्रतिमाये देहली से वीकानेर ले गया था।

तीर्थ करो की प्रतिमाओ के अतिरिक्त जीवन्त स्वामी की पीतलमयी प्रतिमाये बहुत ही प्रकाश मे आई हैं। 10वी शताब्दी की लेखयुक्त एक सुन्दर पत्थर की प्रतिमा सरदार म्युजियम जोधपुर मे भी है। आचार्यो की प्रतिमाये 10वी शताब्दी से ही मिलनी शुरू हो जाती हैं। लेख-युक्त प्रतिमायें साडेराव, देवकुल पाटक आदि कई स्थानो पर उपलब्ध है। आचार्यो की प्रतिमाओ के स्थान पर चारण पादुकाये भी वनाई जाती थी। जयपुर से 2 मील दूर पुराने घाट पर दिगम्बर आचार्यों से सम्वन्धित वि स 1217 का शिलालेख हाल ही मे मैंने प्रकाशित कराया है। इसमें भी लेख के एक और चरण पादुका वनी है। इस लेख से आमर और जयपुर क्षेत्र में दिगम्बर जैनो के 10वीं शताब्दी मे अस्तित्व होने की सूचना मिलती है। इन मूर्तियो के अतिरिक्त कई पट्ट, यन्त्र आदि भी लेखयुक्त मिलते है।

अन्य देवियो के साथ सरस्वती देवी की उपासना जैनियो मे विशेष रही प्रतीत होती है। चित्र कला में इसका अकन वहुत ही अधिक है। मूर्तियो मे पल्लु की जैन सरस्वती प्रतिमाये वडी प्रसिद्ध हैं। वि. स 1202 की लेखयुक्त सरस्वती प्रतिमा नरेणा के जैन

मन्दिर मे है। इसी प्रकार वि स. 1219 की लेख युक्त प्रतिमा लाडनू के दिगम्बर जैन मन्दिर मे है। इसी प्रकार जैन श्रेष्ठियो या उपासको की मूर्तिया भी मिलती हैं। आबू के विमल-वसही के सभा मण्डप में वि स. 1378 में जीर्णोद्धार कराने वाले परिवार की प्रतिमाये बनी हुई है। इसी मन्दिर मे कुमारपाल के मत्री कपर्दि के मा की प्रतिमा वि स 1226 के लेख युक्त वहा लग रही है।

मूर्ति लेख समसामयिक, सामाजिक, आर्थिक और धार्मिक स्थिति के अध्ययन के लिये बहुत ही उपयोगी है। इनमे श्रेष्ठियो के वशो का विस्तृत वर्णन, उनके पूर्वजो द्वारा समय-समय पर कराये गये धार्मिक कार्यो का विवरण आदि रहता है। श्रेष्ठियो के आगे भडारी, व्यवहारी, महत्तर, मंत्री, श्रेष्ठि, शाह, ठक्कुर, गोष्ठिक, सघपति आदि कई शब्द भी मिलते हैं। आबू के पित्तलहर मदिर में वि स 1225 के लेख में श्रेष्ठि रामदास को राजाधिराज उपाधि युक्त लिखा है। यह पदवी उसे गुजरात के सुल्तान द्वारा दी गई थी। गुजरात के सुल्तान ने चित्तौड के जैन श्रेष्ठि गुणराज को सन्मानित किया था। इन लेखो मे खडेलवाल, अग्रवाल, धर्क्कट, पोरवाल, पल्लीवाल, श्रीमाल, ओसवाल, बघेरवाल आदि के उल्लेख विशेष रूप से मिलते हैं। कुछ ब्राह्मणो द्वारा जैन प्रतिमाये बनाने के भी रोचक वृतान्त मिलते है। डूगरपुर से 15वी शताब्दी के कई श्रेष्ठियो ने विष्णु की प्रतिमाये बनाई थी। मूर्तियो के लेखो से ही चन्द्रावती के व मडोर के जैन श्रेष्ठियो आदि के बारे में जानकारी मिली है। ये लेख नही होते तो कवीन्द्र बन्धु यशोवीर, नागपुरिया, वाहडिया परिवार तथा देवकुल पाटक के जैन परिवारो के बारे में हमारे पास सूचना नही के बराबर होती।

5 निषेधिकाओ और कीर्तिस्तम्भो के लेख

निषेधिकाओ और कीर्तिस्तम्भो के लेख अपेक्षाकृत कम मिलते है। निषेधिकाओ के प्राचीनतम लेख राजस्थान से सम्भवत रूपनगढ से 10वी शताब्दी के मिले है। 14वी शताब्दी के बाद से ऐसे लेख अधिक सख्या मे मिलते है। चित्तौड के पास गगरार, सैगवा और बिजौलिया से जो लेख मिले है वे उल्लेखनीय है। इनमें आचार्य या आर्यिका जो मरण-समाधि लेती है उसका नाम और उसके पूर्व-आचार्यों की परम्परा का उल्लेख रहता है। कीर्तिस्तम्भो के लेखो मे वि. स 918 का घटियाला लेख और चित्तौड के जैन कीर्तिस्तम्भ सम्बन्धी शिलालेख उल्लेखनीय हैं। घटियाला का पूरा लेख प्राकृत में है और बहुत ही महत्वपूर्ण है। चित्तौड के कीर्तिस्तम्भ से सम्बन्धित 3 शिलालेख हाल ही मे मैंने अनेकान्त मे प्रकाशित कराये है। यह कीर्तिस्तम्भ 13 वी शताब्दी में बघेरवाल श्रेष्ठि जीजा ने शुरु कराया था जिसकी प्रतिष्ठा उसके पुत्र पूर्णसिंह ने की थी। इसे माणस्तम्भ कहा गया है। इसी प्रकार पट्टावली स्तम्भ भी बनते है। वि. स 1706 का पट्टावली स्तम्भ लेखयुक्त चाकसू के जैन मन्दिर का आमेर मे लग रहा है।

शिलालेखो की विशेषताएं

जैन लेखो की शैली भी उल्लेखनीय है। मन्दिर की प्रतिष्ठा मे प्रायः प्रारम्भ मे तीर्थंकरो की स्तुति, राजवश वर्णन, वश वर्णन आदि रहता है। मूर्ति लेख इससे कुछ भिन्न होते हैं। इनमे सवत् और उसके बाद श्रेष्ठि वर्ग का नाम और उसके वश का वर्णन, उसके बाद बिम्ब का उल्लेख और प्रतिष्ठा करने वाले साधु का प्राय वर्णन रहता है। इन लेखो से जैन धर्म को जो राज्याश्रय मिला उसकी पूर्ण सूचना मिलती है। वि स 1372 और 1373 के महारावल लूणका के और वि स 1506 के महाराणा कुम्भा के लेखो से सूचित होता है कि आबू पर आने वाले यात्रियो से लिये जाने वाले करो की छूट थी। वरकाणा के जैन मन्दिर में महाराजा जगतसिंह प्रथम और जगतसिंह द्वितीय के शिलालेख मे इसी प्रकार वहा लगने वाले मेले के लिये कुछ विशेष रियायतें देने के उल्लेख है। केसरियाजी के मन्दिर के बाहर भी कई सुस्पष्ट लेख लग रहे है जिनमें 2 भीलो और मेवाड़ के महाराणा के मध्य समझौते की प्रतिलिपि खुदी हुई है।

जैन लेखन कला

—भंवरलाल नाहटा

गुजरात की यह कहावत सर्वथा सत्य है कि सरस्वती का पीहर जैनो के यहा है। भगवान् ऋषभदेव ही मानव सस्कृति के जनक थे, उन्होने ही परम्परागत युगलिक धर्म को हटाकर कर्मभूमि के असि, मसि और कृषि लक्षण को सार्थक किया। समस्त ज्ञान-विज्ञान, कला-कौशल, धर्म, अर्थ, काम और मोक्ष के वे प्रथम शिक्षक आदि पुरुष होने से उन्हे आदिनाथ कहा जाता है। सर्व प्रथम भगवान् ऋषभदेव ने अपनी पुत्री ब्राह्मी का लेखन -कला लिपिविज्ञान सिखाया, इसी से उसका नाम ब्राह्मी लिपि पडा। आवश्यक निर्युक्ति भाष्य गाथा 13 मे "लेह लिवी विहाण जिणेण वभीइ दाहिण करेण" लिखा है एव पचमाग भगवती सूत्र मे भी सर्वप्रथम 'नमो वभीए लिवीए' लिखकर अठारह लिपियो मे प्रधान ब्राह्मी लिपि को नमस्कार किया है। बौद्ध ग्रन्थ ललितविस्तरा में 64 लिपियो के नाम है जिनमे भी प्रथम ब्राह्मी और खरोष्टी का उल्लेख है। बायी ओर से दाहिनी ओर लिखी जाने वाली समस्त लिपियो का विकास ब्राह्मी लिपि से हुआ है। दाहिनी ओर से वायी ओर लिखी जाने वाली लिपि खरोष्टी है और उसी से अरवी, फारसी, उर्दू आदि भाषाए निकली है। चीनी भाषा के बौद्ध विश्वकाश के अनुसार ब्रह्म और खरोष्ट भारत मे हुए है और उन्होने देवलोक से लिपिया प्राप्त की तथा ऊपर से नीचे खडी लिखी जाने वाली लिपि त्सको है जो चीन के अधिवासी त्सकी ने पक्षियो आदि के चरण चिन्हो से निर्माण की थी।

यद्यपि भगवान ऋषभदेव को असख्य वर्ष हो गए और लिपियो का उसी रूप मे रहना असभव है और न हमारे पास उस विकास क्रम को काजावधि मे आवद्ध करने वाले साधन ही उपलब्ध है। वर्तमान लिपियो का सम्वन्ध ढाई हजार वर्षो की प्राप्त लिपियो से जुडता है। यो माहन-जोदडो और हडप्पा आदि की सस्कृत मे पाच हजार वर्ष की लिपिया प्राप्त हुई है तथा राजगृह एव वाराणसी के अभिलेख जिसे विद्वानो ने "शख लिपि" का नाम दिया है, पर अद्यावधि उन लिपियो को पढने मे पुरातत्वविद् और लिपि विज्ञान के पण्डित भी अपने को अक्षम पाते है। ब्राह्मी लिपि नाम से प्रसिद्ध लिपि का क्रमिक विकास होता रहा और उसी विकास का वर्तमान रूप अपने-अपने देशो व प्रान्तो की जलवायु के अनुसार विकसित वर्तमान भाषा-लिपिया है। खरोष्टी लिपि 'सैमेटिक वर्ग' की है और उसका प्रचा [illegible] री शती पर्यन्त पजाव मे था और उसके वाद वह लुप्त हो गई। पन्नवणा सूत्र मे कुल लिपियो के नामोल्लेख के अतिरिक्त समवायाग सूत्र के 18वे समवाय मे अठारह लिपियो क नाम एव विशेपावश्यक टीका के अठारह-लिपि नामा मे कुछ अन्तर पाया जाता है। जो भी हो हमे यहा जैन लेखन कला और उसके विकास- पर प्रकाश डालना अभीष्ट है।

भगवान् महावीर की वाणी को गणधरो ने ग्रथित की तथा भगवान् पार्श्वनाथ के शासन का वाङ्मय जो मिल-जुलकर एक हो गया था विशेषत मौखिक रूप मे ही निर्ग्रंथ परम्परा में चला आता रहा। आचार्य देवर्द्धिगणि क्षमाश्रमण ने वीर निर्वाण सवत् 980 मे वल्लभी मे आगमो को ग्रन्थारुढ लिपिवद्ध किया तव से लेखन-कला का अधिकाधिक विकास हुआ। अत पूर्व कथचित् आगम लिखाने का उल्लेख सम्राट खारवेल के अभिलेख मे पाया जाता है एव अनुयोगद्वार सूत्र में पुस्तक पत्रारुढ श्रुत को द्रव्य-श्रुत माना है पर अधिकाश आगम मौखिक ही रहते थे, लिखित

आगमो का प्रचलन नही था, क्योकि श्रमण वर्ग अधिकतर जगल, उद्यान और गिरिकन्दराओ मे निवास करते और पुस्तको को परिग्रह के रूप मे मानते थे। इतना ही नही, वे उनका सग्रह करना असभव और प्रायश्चित योग्य मानते थे, निशीथ भाष्य, कल्प भाष्य, दशवैकालिक चूर्णि मे इसका स्पष्ट उल्लेख है। परन्तु पचम काल के प्रभाव से क्रमश स्मरण शक्ति का ह्रास हो जाने से श्रुत साहित्य को ग्रन्थारूढ करना अनिवार्य हो गया था। अत श्रुतधर आचार्य ने समस्त सघ समवाय मे श्रुतज्ञान की वृद्धि के लिए ग्रन्थारूढ करने की स्वीकृति को सयम वृद्धि का कारण मान्य किया और उसी सन्दर्भ मे ग्रन्थ व लेखन सामग्री का सग्रह व विकास होने लगा।

लिपि और लेखन उपादान :

श्रुत लेखन में लिपि का प्राधान्य है। जैनाचार्यों ने भगवती सूत्र के प्रारम्भ मे 'नमो बभीए लिवीए' द्वारा भारत की प्रधान ब्राह्मी लिपि को स्वीकार किया। इसी से नागरी शारदा, ठाकरी, गुरुमुखी, नेवारी, बगला, उडिया, तेलगु, तामिल, कन्नडी, राजस्थानी, गुप्त, कुटिल, गुजराती, महाजनी और तिब्वती आदि का क्रमिक विकास हुआ। उत्तर भारत के ग्रन्थो मे देवनागरी लिपि का सार्वभौम प्रचार हुआ। स्थापत्य लेखो के लिए अधिकतर पाषाण शिला-फलको का उपयोग हुआ। कही-कही काष्ठ-पट्टिका और भित्ति लेख भी लिखे गये पर उनका स्थायित्व अल्प होने से उल्लेख योग्य नही रहा। दान-पत्रादि के लिये ताम्र धातु का उपयोग प्रचुरता से होता था, पर ग्रन्थो के लिए ताडपत्र, भोजपत्र और कागज का उपयोग अधिक हुआ। यो काष्ठ के पतले फलक एव लाक्षा के लेप द्वारा निर्मित फलको पर लिखे ग्रन्थ भी मिलते है जिनका सम्बन्ध ब्रह्म देश से था। जैन ग्रन्थ लिखने मे पहले ताडपत्र और बाद में कागज का उपयोग प्रचुरता से होने लगा। ग्रन्थ लेखन में वस्त्रो का उपयोग भी कभी-कभी होता था, परन्तु पत्राकार तो पाटण भण्डारस्थ स 1410 की धर्म विधि आदि की प्रति के अलावा टिप्पणाकार एव चित्रपट आदि मे प्रचुर परिमाण में उसका उपयोग होना पाया जाता है। हमारे सग्रह मे ऐसे कई ग्रन्थादि है। ताडपत्र और वस्त्र पर ग्रन्थ लेखन का उल्लेख अनुयोग चूर्णि तथा टीका मे है।

पुस्तक लेखन के साधन .

जैनागम यद्यपि गणधर व पूर्वधर आचार्यो द्वारा रचित है। इनका लेखनकाल विक्रम स 500 निर्णीत हे। उपाग सूत्र राजप्रश्नीय मे देवताओ के पढने के सूत्र का जो वर्णन आता है वह समृद्धि पूर्ण होते हुए भी तत्कालीन लेखन सामग्री और ग्रन्थ के प्रारूप का सुन्दर प्रतिनिधित्व करता है। इस सूत्र में लिखा है कि पुस्तक-रत्न के सभी साधन स्वर्ण और रत्नमय होते है। यत.—

'तस्स ण पोत्थ रयणस्स इमेयारूवे वण्णावासे पण्णते, त जहा रयणमयाइ पत्तगाइ, रिट्ठामई कवियाओ, तवणिज्जमए दोरे, नाणामणिमए गठी, वेरुलिय-मणिमए लिप्पासणे, रिट्ठामए छदणे, तवणिज्जमई सकला, रिट्ठामई मसी, वइरामई लेहणी, रिट्ठामयाई अक्खराइ, धम्मिए सत्थे।' (पृष्ठ 96)

प्रस्तुत उल्लेख मे लेखन कला से सम्बन्धित पत्र, काविका, डोरा, ग्रन्थि-गाठ, लिप्यासन-दवात, छदणय(ढक्कन), साकल, मषी-स्याही और लेखनी साधन है। ये—1-जिस रूप में ग्रन्थ लिखे जाते थे, 2-लिखने के लिए जो उपादान होता, 3-जिस स्याही का उपयोग होता और, 4-लिखित ग्रन्थो को कैसे रखा जाता था, इन बातो का विवरण है।

पत्र—जिस पर ग्रन्थ लिखे जावे उसे पत्र या पन्ना कहते है । पत्र-वृक्ष के पत्ते ताडपत्र, भोज पत्रादि का और बाद मे कागज का उपयोग होता था, पर बाधने आदि के साधन से विदित होता है कि वे पत्ते अलग अलग खुले होते थे ।

कबिका—ताडपत्रीय ग्रन्थ के सरक्षण के लिए रखी जाने वाली काष्ठपट्टिका को आगे काबी कहा जाता था। आजकल जो बाद की बनी हुई कबिका प्रयोग मे आती है वह बास, लकडी, हाथीदात आदि की चीप होती है, जिस पर हाथ रखने से पन्नो पर पसीने के दाग आदि न लगे। रेखा खीचने के लिए भी उसका उपयोग होता व कुछ चौडी पट्टियो पर पत्र रखकर पढने के उपयोग मे भी आती थी ।

डोरा—ताडपत्रीय ग्रन्थो के पन्ने चौडाई मे सकडे और लम्बाई मे अधिक होने से वे एक दूसरे से सलग्न न रहकर अस्त-व्यस्त हो जाते है, इसलिए उन्हें व्यवस्थित रखने के लिए बीच मे छेदकर बाध देना अनिवार्य था । बाधने के लिए डोरे का प्रयोग होता और उस लबे डोरे को फिर कसकर बाध देते जिससे वह दोनो पुट्ठो-काष्ठफलको के बीच कसा हुआ सुरक्षित रहता। ताडपत्रीय ग्रन्थो के पश्चात् जब कागजो पर लिखने की प्रथा हो गई तो भी उसके मध्य में छेद करके डोरा पिरोया जाता। वह अनावश्यक होने पर भी ताडपत्रीय पद्धति कायम रही और मध्य भाग में चौरस या वृत्ताकार रिक्त स्थान छोड दिया जाता था। यह प्रथा उन्नीसवी शती तक चलती रही। फिर भले ही उसमे अलकरण का रूप ताडपत्रीय ग्रन्थो की स्मृति रूढिमात्र रही हो ।

ग्रन्थि—ताडपत्रीय पुस्तक में डोरा पिरोने के बाद वे निकल न जाए तथा ग्रन्थ नष्ट न हो जाए इसलिए हाथीदात, सीप, काष्ठ आदि के चपटे वाशर लगाए जाते थे जिसे ग्रथी कहते थे।

लिप्यासन—शब्दार्थ के अनुसार तो इसका अर्थ लेखन के उपादान कागज, ताडपत्रादि होता है परन्तु आचार्य मलयगिरि ने इसका अर्थ मषि-भाजन अर्थात् दवात किया है। गुजरात मे खडिया कहते है, राजस्थान मे विज्जासणा कहते थे । कविवर समयसुन्दरजी ने मजीसणा शब्द का प्रयोग किया है, पर सबका आशय इकपोट (Ink-pot) से है। विज्जासणा-विद्यासन और मजीसणा-मषीआसन, मषीभाजन से बना प्रतीत होता है ।

छदण और साकल—दवात के ऊपर ढक्कन जो लगाया जाता है उसे छदण (आच्छादन) कहते है तथा उसे सम्बन्धित रखने वाली साकल होती है जो दवात से ढक्कन को सलग्न रखती है पुरानी पीतल आदि की भारी भरकम शिखरबद्ध ढक्कनवाली दवाते आज भी कही-कही देखने को मिलती हैं ।

मषी—अक्षरो को साकार रूप देने वाली मषी-स्याही है। मषी शब्द कज्जल का द्योतक है जो काली स्याही का उपयोग सूचित करता है । रायपसेणी सूत्र का 'रिट्ठामई मसी' और अक्षर रिष्ट रत्न के श्याम वर्ण होने से उसी का समर्थन करते है । आजकल दूसरे सभी रगो के साथ काली स्याही शब्द प्रयोग मे आता है।

लेखनी—जिसके द्वारा शास्त्र लिखे जाए उसे लेखनी कहते है। साधारणतया कलम ही लिखने के काम में आती थी पर दक्षिण भारत, उडीसा और बर्मा की लिपियो को ताडपत्र पर लिखने के लिए लाह लेखनी का आज भी उपयोग होता है पर कागज और उत्तर भारत के ताडपत्रादि पर लिखने वाली कलम का ही यहा आशय समझना चाहिए । यो बगाल आदि मे पक्षियो की पाख से भी लिखा जाता है ।

लेखन उपादान के प्रकारान्तर

जैसे आजकल छोटी-बडी विविध आकार की पुस्तकें होती है उसी प्रकार प्राचीन काल मे विविध आकार-प्रकार की पुस्तकें होने के उल्लेख दशवैकालिक सूत्र की हरिभद्रीय टीका, निशीथ-चूर्णि, वृहत्कल्पसूत्र वृत्ति आदि में पाये जाते है। यहा उनका सक्षिप्त परिचय दिया जाता है—

गडी पुस्तक—चौडाई और मोटाई मे समान किन्तु विविध लवाई वाली ताडपत्रीय पुस्तक को गडी कहते है। इस पद्धति के कागज के ग्रन्थो का भी इसी मे समावेश होता है।

कच्छपी पुस्तक—जिस पुस्तक के दोनो किनारे सकडे तथा मध्य में कछुए की भाति मोटाई हो उसे कच्छपी पुस्तक कहते है। यह आकार कागज के गुटको मे तो देखा जाता है पर ताडपत्रीय ग्रन्थो मे नही देखा जाता।

मुष्टि पुस्तक—जो पुस्तक चार अगुल लम्बी और गोल हो, मुट्ठी मे रख सकने योग्य पुस्तक को मुष्टि पुस्तक कहते है। छोटी-मोटी टिप्पणकाकार पुस्तके व आज की डायरी का इसी में समावेश हो जाता है।

सपुट फलक—व्यवहार पीठिका गा 6 की टीका व निशीथ चूर्णि के अनुसार काष्ठफलक पर लिखे जाने वाले पुस्तक को कहते है। विविध यत्र, नक्शे, समवसरणादि चित्रो को जो काष्ठ सपुट में लिखे जाए वे इसी प्रकार मे समाविष्ट होते है।

छेद पाटी—थोडे पन्नो वाली पुस्तक को कहते थे, जिस प्रकार आज कागजो पर लिखी पुस्तके मिलती है। उनकी लम्बाई का कोई प्रतिवन्ध नही, पर मोटाई कम हुआ करती थी।

उपर्युक्त सभी प्रकार विक्रम की सातवी शताब्दी तक के लिखित प्रमाण से बतलाए है जब कि उस काल की लिखी हुई एक भी पुस्तक आज उपलब्ध नही है। वर्तमान मे जितने भी ग्रन्थ उपलब्ध है, पिछले एक हजार वर्षो तक के प्राचीन है। अत इस काल की लेखन सामग्री पर प्रकाश डाला जा रहा है।

लिप्यासन—लेखन उपादान, लेखनपात्र-ताडपत्र, वस्त्र, कागज इत्यादि। जैसा कि ऊपर बतलाया है राजप्रश्नीय सूत्र मे इसका अर्थ मषीभाजन रूप में लिया पर यहा ताडपत्र, वस्त्र, कागज, काष्ठपट्टिका, भोजपत्र, ताम्रपत्र, रौप्यपत्र, सुवर्णपत्र, पत्थर आदि का समावेश करते है। गुजरात, राजस्थान, कच्छ और दक्षिण मे स्थित ज्ञान भण्डारो में जो भी ताडपत्रीय ग्रन्थ उपलब्ध हैं, तेरहवी शती से पूर्व ताडपत्र पर ही लिखे मिलते है। बाद मे कागज का प्रचार अधिक हो जाने से उसे भी अपनाया गया। मणिधारी श्री जिनचन्द्रसूरिजी के समय विक्रम स 1204 का 'ध्वन्यालोकलोचन' ग्रन्थ उपलब्ध है, पर टिकाऊ होने के नाते ताडपत्र ही अधिक प्रयुक्त होते थे। महाराजा कुमारपाल और वस्तुपाल तेजपाल के समय में भी कुछ ग्रन्थ कागज पर लिखे गए थे, फिर भी भारत की जलवायु मे अधिक प्राचीन ग्रन्थ टिक न रह सकते थे, जबकि जापान में तथा यारकन्द नगर के दक्षिण 60 मील पर स्थित कुगियर स्थान मे भारतीय लिपि के चार ग्रन्थ वेबर साहब को मिले, जिन्हे ईसा की पाचवी शती का माना जाता है। ताडपत्रीय ग्रन्थो में सबसे प्राचीन एक त्रुटित नाटक की प्रति का 'भारतीय प्राचीन लिपि माला' मे उल्लेख किया है जो दूसरी शताब्दी के आसपास की मानी गई है। ताडपत्रो मे खास करके श्रीताल के पत्र का उपयोग किया जाता था। कुमारपाल प्रबन्ध के अनुसार श्रीताल दुर्लभ हो जाने से कागज का प्रचार हो गया। पाटण भण्डार के एक विकीर्ण ताडपत्र के उल्लेखानुसार एक पत्र का मूल्य छ आना पड़ता था।

वस्त्र पर लिखे ग्रन्थों में धर्मविधि प्रकरण वृत्ति, कच्छूली रास और त्रिषष्टि शलाका पुरुष चरित्र (अष्टम पर्व) की प्रति पत्राकार पायी जाती है जो 25×5 इच की लम्बी चौडी है परन्तु लोकनालिका, अढाई द्वीप, जम्बूद्वीप, नवपद, ह्रीकार, घण्टाकर्ण, पचतीर्थीपट आदि के वस्त्रपट चित्र प्रचुर परिमाण मे पाये जाते है। सिद्धाचलजी के पट तो आज भी बनते हैं और प्राचीन भी ज्ञान भण्डारो मे बहुत से है। जम्बू द्वीप आदि के पटो मे सबसे बडा पट कलकत्ता जैन मन्दिर मे है जो 16×16 फुट माप का है। टिप्पणकाकार मे बने कर्मप्रकृति. बारह व्रत टीप, अनानुपूर्वी, शत्रुजय यात्रापट आदि एक दो फुट से लेकर 30-30 फुट जितने लम्बे पाए जाते हैं। पाटण भण्डार का सग्रहणी टिप्पणक स 1453 का लिखा हुआ 166X11½ इच का है। पन्द्रहवी शताब्दी तक के प्राचीन कई पचतीर्थी पट भी पाए गए है।

भोजपत्र पर बौद्ध और वैदिक लोग अधिकाश लिखा करते थे, जैन ग्रन्थ अद्यावधि एक भी भोजपत्र पर लिखा नही मिलता। हा, यति लोगो ने पिछले दो-तीन सौ वर्षो मे मत्र-तत्र-यन्त्रो मे उसका उपयोग भले किया हो। बौद्ध ग्रन्थ धम्मपद व सयुक्तागम अवश्य ही भोजपत्र पर लिखे दूसरी से चौथी शताब्दी के माने गए है।

शिलापट्ट पर लिखे जैनेतर नाटकादि अनेक ग्रन्थ पाए जाते है पर जैन ग्रन्थो मे उन्नति-शिखर पुराण स 1226 का लिखा हुआ वीजोल्या मे है। श्री जिनवल्लभसूरिजी ने चित्रकूटीय प्रशस्ति आदि ग्रन्थ खुदवा कर मन्दिरो मे लगवाये थे। इसके सिवा मन्दिरो के प्रतिष्ठा लेख, विस्तृत श्लोकवद्ध प्रशस्ति काव्य, कल्याणक पट, तप पट्टिका, स्थविरावली पट्टक, लोकनाल, ढाई द्वीप, शतदलपद्म यत्र पट्टक, समवशरण पट्ट, नंदीश्वर पट्ट, शत्रु जय गिरनारादि पट्ट प्रचुर परिमाण मे बने पाए जाते हैं। बीसवी शताब्दी मे सागरानन्दसूरिजी ने पालीताना एव सूरत के आगम मन्दिरो मे सभी आगम मार्बल एव ताम्रपट्टो पर लिखवा दिए हैं तथा वर्तमान मे समयसारादि दिगम्बर ग्रन्थ भी लिखवाए जा रहे हैं।

ताम्रपत्र, रौप्यपत्र, स्वर्णपत्र, कास्यपत्र, पचधातु पत्रादि का प्रयोग अधिकाश मत्र और यन्त्र लेखन मे हुआ है। राजाओ के दानपत्र ताम्रपत्रो पर लिखे जाते थे। जैन शैली मे नवपद यत्र, विशतिस्थानक यत्र, घण्टाकर्ण, ऋषिमण्डल आदि विविध प्रकार के यन्त्र आज भी लिखे जाते है और मन्दिरो मे पाए जाते हैं। ताम्रपत्र पर ग्रन्थ लेखन का उल्लेख वसुदेवहिण्डी जैसे प्राचीन ग्रन्थ मे पाया जाता है। सूरत के आगम-मन्दिर मे ताम्र पर शास्त्र लिखाए गए है।

बौद्धो ने हाथी दात आदि का उपयोग ग्रन्थ लेखन मे किया है, पर जैनो मे उसके काबी, ग्रन्थी, दावडा एव स्थापनाचार्य (ठवणी) रूप मे किया है, पर ग्रन्थ लेखन मे नही। इसी प्रकार से चमडे के सम्बन्ध मे समझना चाहिए। ग्रन्थो के पूठे, पटडी, दाबडे आदि मे उसका उपयोग हुआ है पर ग्रन्थ-लेखन मे नही।

वृक्ष की छाल का उपयोग जैनेतर ग्रन्थो मे प्राप्त हुआ है। अगुरु छाल पर सं 1770 में लिखी हुई ब्रह्मवैवर्त पुराण की प्रति वडौदा के ओरिएण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट मे है। हमारे सग्रह मे कुछ बगला लिपि के ऐसे ग्रन्थ है जिनमे लकडी के फलक का उपयोग हुआ है तथा उनके पूठे वृक्ष की छाल व बास पट्टी के बने हुए हैं। जैन ग्रन्थो मे ऐसे उपादानो का उपयोग नही हुआ है।

<u>ताड़पत्र</u>—ये ताल या ताड वृक्ष के पत्ते हैं। ताड वृक्ष दो प्रकार के होते हैं (1) खरताड़ और (2) श्रीताड। खरताड के पत्ते लम्बाई और चौडाई मे छोटे और चटक जाने वाले अल्पायु के होते हैं अत इनका उपयोग ग्रन्थ लेखन मे नही होता। श्रीताड़ के वृक्ष मद्रास,

ब्रह्मदेश आदि मे होते है जिसके पत्ते वडे चिकने, लचीले और टिकाऊ होते है। ये ताड़पत्र ग्रन्थ-लेखन मे काम आते है। इन्हें प्रौढ हो जाने पर सीधे करके एक साथ जमीन मे डाल कर सुखाए जाते हैं जिससे इनका रस धूप के साथ न उड कर उसी मे रहता है और कोमलता आ जाती है। ये पत्ते लम्बाई मे 37 इच तक के मिलते हैं। पाटण के भण्डार की प्रमेयकमल-मार्त्तण्ड की प्रति 37 इच लम्बी है।

कागज—इसे सस्कृत मे कागद या कद्गल नाम से और गुजराती मे कागल नाम से सम्बोधित किया है। जैसे आजकल विविध प्रकार के कागज आते है, प्राचीन काल मे भी भिन्न-भिन्न देशो मे बने विविध प्रकार के मोटे पतले कागज होते थे। काश्मीर, दिल्ली, विहार, मेवाड, उत्तर प्रदेश (कानपुर), गुजरात (अहमदावाद), खभात, देवगिरि (कागजीपुरा), उडीसा (बालासोर) आदि के विविध जाति के कागजो मे विशेषत काश्मीरी, कानपुरी, अहमदाबादी व्यवहार मे आते है। काश्मीरी कागज सर्वोत्तम होते हैं। प्राचीन ज्ञान भण्डारो मे प्राप्त 14वी, 15वी शताव्दी के कागज आज के से बने हुए लगते है पर 18वी, 19वी शताब्दी के कागजो मे टिकाऊपन कम है। मिल के कागज तो बहुत कम वर्ष टिक पाते हैं।

कागज काटना—आजकल की भाति इच्छित माप के कागज न बनकर प्राचीन काल मे बने छोटे-मोटे कागजो को पेपर कटिंग मशीनो के अभाव मे अपनी आवश्यकतानुसार काटना होता था और उन्हें बास या लोहे की चीपो मे देकर हाथ से काटा जाता था।

घोटाई—ग्रन्थ लेखन योग्य देशी कागजो को घोटाई करके काम मे लेते थे जिससे उनके अक्षर फूटते नही थे। यदि बरसात की सील से पॉलिश उतर जाती तो उन्हे फिर से घोटाई करनी होती थी। कागजो को फिटकडी के जल मे डुबो कर अधसूखा होने पर अकीक, कसौटी आदि के घूटे-ओपणी से घोट कर लिखने के उपयुक्त कर लिए जाते थे। आजकल के मिल कारखानो के निर्मित कागज लिखने के काम नही आते। वे दीखने मे सुन्दर और चमकदार होने पर भी शीघ्र गल जाते हैं।

वस्त्रपट—कपड़े पर यन्त्र, टिप्पण आदि लिखने के लिए उसे गेहू या चावल की लेई द्वारा छिद्र बन्द होने पर, सुखाकर के घोटाई कर लेते। जिस पर चित्र, यत्र, ग्रन्थादि सुगमता से लिखे जा सकते थे। पाटण भण्डार के वस्त्र पर लिखित ग्रन्थ खादी को दुहरा चिपका कर लिखा हुआ है।

टिप्पणक—जन्म कुण्डली, अणुपुर्वी, विज्ञप्ति-पत्र, वारहव्रतटीप आदि Scrole कागज के लीरो को चिपका करके तैयार करते तथा कपडे के लम्बे थान मे वे आवश्यकतानुसार बना कर उसके साथ चिपका कर या खाली कागज पर लिखे जाते थे, जिन पर किए हुए चित्रादि सौ-सौ फीट लम्बे तक के पाए जाते हैं।

काष्ठ पट्टिका—काष्ठ की पट्टिया कई प्रकार की होती थी। काष्ठ की पट्टियो को रग कर उस पर वर्णमाला आदि लिखी हुई 'वोरखा पाटी' पर अक्षर सीखने-जमाने मे काम लेते थे। खडी मिट्टी के घोल से उस पर लिखा जाता था तथा ग्रन्थ निर्माण के कच्चे खरडे भी पाटियो पर लिखे जाते थे। उत्तराध्ययन वृत्ति (स 1129) को नेमिचन्द्राचार्य ने पट्टिका पर लिखा था जिसे सर्वदेव गणि ने पुस्तकारूढ किया था। खोतान प्रदेश मे खरोष्टी लिपि मे लिखित कई प्राचीन काष्ठ पट्टिकाए प्राप्त हुई हैं।

लेखनी —आजकल लेखन कार्य फाउण्टेनपैन, डॉटपेन आदि द्वारा होने लगा है पर आगे होल्डर, पैन्सिल आदि का अधिक प्रचार था। इससे पूर्व बास, बेत, दालचीनी के अण्ट इत्यादि से लिखा जाता था। आजकल उसकी प्रथा अल्प रह गई है, पर हस्तलिखित ग्रन्थो को लिखने मे आज भी कलम का उपयोग होता है। कागज, ताडपत्र पर लिखने के उपयुक्त ये लेखनिया थी, पर कर्नाटक, सिहल, उत्कल, ब्रह्मदेशादि मे जहा उत्कीर्णित करके लिखा जाता है वहा लोहे की लेखनी प्रयुक्त होती थी। कागजो पर यन्त्र व लाइने वनाने के लिए जुजवल का प्रयोग किया जाता था जो लोहे के चिमटे के आकार की होती थी। लोह लेखनी मे दोनो तरफ ये भी लगे रहते थे। आजकल के होल्डर की निवे इसी का विकसित रूप कहा जा मकता है। कलमो के घिस जाने पर उसे चाकू से पतला कर लिया जाता था तथा बीच मे खडा चीरा देने से स्याही उसमे से उतर आने मे सुविधा होती है। निवो मे यह प्रथा कलम के चीरे का ही रूप है। लेखनियो के शुभाशुभ कई प्रकार के गुण दोपो को वताने वाले श्लोक पाए जाते है जिनमे उनकी लम्बाई, रग, गाठ आदि से ब्राह्मणादि वर्ण, आयु, धन, मतानादि हानि वृद्धि आदि के फलाफल लिखे है। उनकी परीक्षा पद्धति, ताडपत्रीय युग की पुस्तको से चली आ रही है। रत्न-परीक्षा मे रत्नो के श्वेत, पीत, लाल और काले रग ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य, शूद्र की भाति लेखनी के भी वर्ण समझना चाहिए। इसका कैसे उपयोग व किस प्रकार करना, इसका पुराना विधान तत्कालीन विश्वास व प्रथाओ पर प्रकाश डालता है।

वतरणा —लेखनी-कलम की भाति यह शब्द भी लिखने के साधन का द्योतक है। लिपि को लिप्यासन पर 'अवतरण' करने के मस्कृत शब्द से यह शब्द वनना सभव है। काठ की पाटी जिसे तेलिया पाटी कहते थे, धूल डाल कर लिखने का साधन वतरणा था। फिर स्लेट की पाटी पर व टीन व गत्ते की पाटी पर लिखने की स्लेट पैंसिल को भी भापा मे वतरणा कहते है। ललितविस्तर के लिपिशाला सदर्शन परिवर्त मे 'वर्णातिरक' शब्द से वतरणा वनने का कुछ लोग अनुमान करते हैं।

जुजवल —इस विषय मे ऊपर लेखनी के सदर्भ मे लिखा जा चुका है। इसका स्वतत्र अस्तित्व था और सस्कृत 'युगबल' शब्द से इसकी व्युत्पत्ति सभव है। यह चिमटे के आकार की दोनो ओर लगी लेखनी वाली लोह लेखनी थी। पुराने लहिये इसका प्रयोग लेखन समय मे हासिया आदि की लाल लकीरे खीचने मे किया करते थे।

प्राकार —चित्रपट, यन्त्र आदि लेखन मे गोल आकृति वनाने मे आजकल के कम्पास की भांति प्रयोग मे आता था। विविध शिल्पी लोग भी इसका उपयोग करते हैं।

ओलिया फाटिया —कागज की प्रतिया लिखते समय सीधी लकीरे जिसके प्रयोग मे आती है वह गुजरात मे ओलिया व राजस्थान मे फाटिया कहलाता है। लकडी के फलक या गत्ते के मजबूत पूठे पर छेद कर मजबूत सीधी डोरी छोटे-वडे अक्षरो के चौडे-सकडे अन्तरानुसार उभय पक्ष मे कसकर वाध दी जाती है और उस पर इमली, चावल या रग-रोगन लगाकर तैयार किये फाटिये पर कागज को रख कर अगुलियो द्वारा टान कर लकीर चिन्हित कर ली जाती है। ताडपत्रीय प्रतियो पर फाटिये का उपयोग न होकर छोटी-सी बिन्दु सीधी लकीर आने के लिए कर दी जाती थी। श्रावकातिचार मे लेखन-ज्ञानोपकरण मे इसे ओलिया लिखा है। राजस्थान मे आजकल कागज के लम्बे टुकडो को ओलिया कहते है जिस पर चिट्ठी लिखी जाती है।

कंबिका —ताडपत्रीय लेखनोपकरण के प्रसग मे ऊपर कावी के विषय मे बतलाया जा चुका है। आजकल फुट की भाति चपटी होने से माप करके हासिये की लकीर खीचने व ऊपर अंगुलिया रख कर लिखने के प्रयोग मे आने वाला यह उपकरण है। यह बास, हाथी-दात या चन्दन काष्ठादिक की होती है।

लिपि की स्वरूप दर्शिका—स्याही या रग —पुस्तक लिखने के अनेक प्रकार के रग या स्याही मे काला रग प्रधान है। सोना, चादी और लाल स्याही से भी ग्रन्थ लिखे जाते हैं पर सोना, चादी की महर्घ्यता के कारण उसका प्रयोग अत्यल्प परिमाण मे ही विशिष्ट शास्त्र लेखन मे श्रीमन्तो द्वारा होता था। लाल रग का प्रयोग बीच-बीच मे प्रकरण समाप्ति व हासिए की रेखा मे तथा चित्रादि आलेखन मे सभी रगो का प्रयोग होता था। एक दूसरे रग के मिश्रण द्वारा कई रग तैयार हो जाते हैं। पूर्व काल मे ताडपत्र, कागज आदि पर लेखन हेतु किस प्रकार स्याही बनती थी ? इस पर सक्षिप्त प्रकाश डाला जाता है। ताड-पत्र काष्ठ की जाति है, जब कि कागज व वस्त्र उससे भिन्न हैं। अत प्रकृति भिन्नता के कारण तदनुकूल स्याही की रासायनिक विधि भिन्न होना स्वाभाविक है। आजकल ताड-पत्र लेखन प्रचलित न होने से उसकी स्याही का स्वरूप प्राचीन उल्लेखो पर आधारित है।

प्रथम प्रकार —काटोसेरिया (धमासा), जल भागरा का रस, त्रिफला, कसीस, लोहचूर्ण को उकाल कर, क्वाथ बना कर, गली के रस को बराबर परिमाण मे मिला कर, काजल व बीजा बोल मिलाने से ताड-पत्र लेखन-योग्य स्याही बनती है। इन्हे ताबे की कढाई मे घोट कर एक रस कर लेना चाहिए।

द्वितीय प्रकार —काजल, पोयण, बीजाबोल, भूमितला, जलभागरा और पारे व उबलते हुए पानी मे मिला कर, ताबे की कढाई मे सात दिन तक घोट कर एक रस कर लेना फिर उसकी बडिया बना लेना। उन्हे कूट कर रखे। फिर जब आवश्यक हो उन्हें गर पानी मे खूब मसल कर स्याही कर लेना।

तृतीय प्रकार —कोरे काजल को मिट्टी के कोरे सिकोरे मे अगुली से मसल कर उसव चिकनाई मिटा देना। थोडे से गोमूत्र मे भिगो देने से भी चिकनास मिट जाती है। फि उसे निंब या खैर के गूद के साथ बीआरस मे भिगो कर खूब घोटना। फिर बडी सुखा क ऊपर की भाति करना।

चतुर्थ प्रकार —गूद, नीब के गूद से दुगुना बीजाबोल, उससे दुगुना काजल (तिल के ते से पाडा हुआ) को घोट कर गोमूत्र के साथ आच देना, पात्र ताम्र का होना चाहिए। सूख पर थोडा-थोडा पानी देते रहे व पाच तोला एक दिन परिमाण से घोट कर लोद, साजीख युक्त लाक्षारस मिलाना। गोमूत्र मे धोये भीलामा घूटा के नीचे लगाना। फिर काले भाग के रस के साथ मर्दन करने से उत्तम स्याही बनती है।

पचम प्रकार —ब्रह्मदेश, कर्णाटक, उत्कलादि देशो मे ताडपत्र लोहे की सूई से व कर लिखे जाते हैं। उनमे अक्षरो मे काला रग लाने के लिए नारियल की टोपसी या बाद के छिलको को जला कर, तेल मे मिला कर लगा देना। पोछने से ताड-पत्र साफ हो जाएग अक्षरो मे कालापन आ जायेगा।

कागज और कपडो पर लिखने योग्य काली स्याही

(1) जितना काजल उतना बोल, तेथी दूणा गूद झकोल।
जो रस भागरा नो पडे, तो अक्षरे अक्षरे दीवा बले॥

(2) काजल से आधा गूद, गूद से आधा बीजाबोल, लाक्षारस, बीयारस के
ताबे के भाजन मे मर्दन करने से काली स्याही होती है।

(3) बीग्राबोल ग्रनइ लक्खारस, कज्जल वज्जल नइ ग्रबारस ।।
भोजराज मिसी निपाई । पानउ फाटइ मिसी नवि जाई ।।

(4) लाख टाक वीस मेल, स्वाग टाक पाच मेल,
नीर टाक दो सौ लेई हाडी मे चढाइये ।
जो लौ ग्राग दीजे तो लों ग्रौर खार सब लीजे,
लोद खार बाल वाल पीस के रखाइये ।
मीठा तेल दीप जार काजल सोले उतार,
नीकी विधि पिछानी के ऐसे ही बनाइये ।
चाहक चतुर नर लिख के ग्रनूप ग्रन्थ,
बाच बाच बाच रिझरिझ मौज पाइये ।

(5) स्याही पक्की करने की विधि—लाख चोखी या चीपड़ी पैसा 6, तीन सेर पानी मे डालना, सुहागा पैसा 2 डालना, लोद पैसा 3, पानी तीन पाव, फिर काजल पैसा 1 घोट के सुखा देना । फिर शीतल जल मे भिगो कर स्याही पक्की कर लेना ।

(6) काजल 6 टाक, वीजाबोल 12 टाक, खेर का गूद 36 टाक, ग्रफीम ग्राधा टाक, ग्रलता पोथी 3 टाक, फिटकडी कच्ची 0।। टाक, नीम के घोटे से 7 दिन ताम्रपात्र मे घोटना ।

इन सभी प्रकारो मे प्रथम प्रकार उपयोगी ग्रौर सुसाध्य है । कपडे के टिप्पणक के लिए वीजावोल से दुगुना गूद, गूद से दुगुनी काजल मिली स्याही दो प्रहर मर्दन करने से वज्रवत् हो जाती है ।

सुन्दर ग्रौर टिकाऊ पुस्तक लेखन के लिए कागज की श्रेष्ठता जितनी ग्रावश्यक है उतनी ही स्याही की भी है । ग्रन्यथा प्रमाणोपेत विधिवत् न बनी हुई स्याही के पदार्थ रसायनिक विकृति द्वारा कागज को गला देती है, चिपका देती है, जर्जर कर देती है । एक ही प्रति के कई पन्ने ग्रच्छी स्थिति मे होते हैं ग्रौर कुछ पन्ने जर्जरित हो जाते हैं, इसमे लहिया लोगो की ग्रज्ञानता से या ग्रादतन गाढी स्याही करने के लिए लोह चूर्ण, बीयारस ग्रादि डाल देते हैं जिससे पुस्तक काली पड़ जाती है, विकृत हो जाती है ।

सुनहरी रूपहली स्याही

सोना ग्रौर चादी की स्याही बनाने के लिए वर्क को खरल मे डाल कर धव के गूद के स्वच्छ जल के साथ खूब घोटते जाना चाहिए । बारीक चूर्ण हो जाने पर मिश्री का पानी डाल कर खूब हिलाना चाहिए । स्वर्ण चूर्ण नीचे बैठ जाने से पानी को धीरे-धीरे निकाल देना चाहिए । तीन चार वार धुलाई पर गूद निकल जाएगा ग्रौर सुनहरी या रूपहली स्याही तैयार हो जाएगी ।

लाल स्याही :

हिंगुल को खरल मे मिश्री के पानी के साथ खूब घोट कर ऊपर ग्राते हुए पीलास लिए हुए पानी को निकाल देना । इस तरह दस पन्द्रह वार करने से पीलास निकल कर शुद्ध लाल रग हो जाएगा । फिर उसे मिश्री ग्रौर गूद के पानी के साथ घोट कर एकरस कर लेना । फिर सुखा कर टिकड़ी की हुई स्याही को ग्रावश्यकतानुसार पानी मे घोल कर काम मे लेना चाहिए । मिश्री के पानी की ग्रपेक्षा नीवू का रस प्रयुक्त करना ग्रधिक उपयोगी है ।

ग्रष्टगन्ध :

ग्रगर, तगर, गोरोचन, कस्तूरी, रक्त चन्दन, चन्दन, सिंदूर ग्रौर केशर के मिश्रण से ग्रष्ट-

गन्ध बनता है। कपूर, कस्तूरी, गोरोचन, सिंगरफ, केशर, चन्दन, अगर, गेहूला से भी अष्टगन्ध बनाया जाता है।

यक्षकर्द्दम

चन्दन, केशर, अगर, बरास, कस्तूरी, मरचककोल, गोरोचन, हिंगुल, रतजन, सुनहरे वर्क और अबर के मिश्रण से यक्षकर्द्दम बनता है।

अष्टगन्ध और यक्षकर्द्दम गुलाब जल के साथ घोटते है और इनका उपयोग मत्र, यत्र, तत्रादि लिखने मे, पूजा प्रतिष्ठादि मे काम आता है।

मषी-स्याही शब्द काले रग की स्याही का द्योतक होने पर भी हर रग के साथ इसका वचन प्रयोग-रूढ हो गया। लाल स्याही, सुनहरी स्याही, हरी स्याही आदि इसी प्रकार बगाल मे लाल काली, ब्लूकाली आदि कहते है। स्याही और काली शब्द ये हरेक रग वाली लिपि की स्वरूप दर्शिका के लिए प्रयुक्त होते हे।

चित्रकला के रग

सचित्र पुस्तक लेखन मे चित्र बनाने के लिए ऊपर लिखित काले, लाल, सुनहरे, रूपहले रगो के अतिरिक्त हरताल और सफेदा का भी उपयोग होता था। दूसरे रगो के लिए भी विधि है। हरताल और हिंगुल मिलाने पर नारगी रग, हिंगुल और सफेदा मिलाने से गुलाबी रग, हरताल और काली स्याही मिल कर नीला रग बनता था।

(1) सफेदा 4 टाक व पेवडी 1 टाक व सिंदूर 1।। टाक से गौर वर्ण।
(2) सिंदूर 4 टाक व पोथी गली 1 टाक से खारिक रग।
(3) हरताल 1 टाक व गली आधा टाक मे नीला रग।
(4) सफेदा 1 टाक व अलता आधा टाक स गुलाबी रग।
(5) सफेदा 1 टाक व गली 1 टाक से आसमानी रग।
(6) सिंदूर 1 टाक व पेवडी आधा टाक से नारगी रग होता ह।

हस्तलिखित ग्रन्थ पर चित्र बनाने के लिए इन रगो के साथ गोद का स्वच्छ जल मिलाया जाता है। इसके अतिरिक्त विभिन्न चित्रकला के योग्य रगो के निर्माण की विधि के पचासो प्रयोग पुराने पत्रो मे लिखे पाये जाते है।

जैन लिपि की परम्परा

भगवान् महावीर का विहार अधिकाश विहार प्रान्त (अग-मगध-विदह आदि), बगाल और उत्तर प्रदेश मे हुआ था। अत वे अर्द्धमागधी भाषा मे उपदेश देते थे। जैनो का सम्बन्ध मगध से अधिक था। जैनागमो की भाषा प्राकृत है, दिगम्बर साहित्य सौरसेनी प्राकृत मे और श्वेताम्बर आगम महाराष्ट्री प्राकृत मे ह। जिस प्रकार अन्य भाषाए प्राकृत से अपभ्रश के माध्यम से हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती आदि हुई, इसी प्रकार बगला भाषा और लिपि का उद्गम प्राकृत मे हुआ है। मगध से पडी मात्रा का प्रयोग बगला मे गया। जब बारह वर्षी दुष्काल पडे तो जैन श्रमण सघ दक्षिण और पश्चिम देशो मे चला गया, परन्तु अपनी लिपि ब्राह्मी से गुप्त, कुटिल और देवनागरी के विकास मे ब्राह्मी-देवनागरी मे ब्राह्मी-बगला का प्रभाव लेता गया। यही कारण है कि सैंकडो वर्षो तक पडी मात्रा का जैनो मे प्रचलन रहा। बगला

लिपी मे आज भी पडी मात्रा है । अत प्राचीन जैन लिपि के अभ्यासी के लिए बगला लिपि का ज्ञान बडा सहायक है ।

जिस प्रकार ब्राह्मी-देवनागरी लिपि मे जलवायु-देशपद्धति और शिक्षक द्वारा प्रस्तुत अक्षर जमाने के उपकरणो की लिपि विविधता, रुचि-भिन्नता के अन्यान्य मरोड के कारण अनेक रूपो मे प्रान्तीय लिपिया विभक्त हो गई , उसी प्रकार जैन लिपि मे भी यतियो की लिपि, खरतर-गच्छीय लिपि, मारवाडी लहियो की लिपि, गुजराती लहियो की लिपि-परम्परा पायी जाती है । कोई गोल अक्षर, कोई खडे अक्षर, कोई बैठे अक्षर, कोई हलन्त की भाति पूछ वाले अक्षर, तो कोई कलात्मक अलकृताक्षर, कोई टुकडे-टुकडे रूप मे लिखे व कोई घसीटवे अक्षर लिखने के अभ्यस्त थे । एक ही, शताब्दी के लिए ब्राह्मण, कायस्थादि की लिपि मे तो जैन लिपि से महद् अन्तर है ही परन्तु जैन लिपि मे भी लेखनकाल निर्णय करने मे वहुत सावधानी और सतर्कता आवश्यक है ।

लेखन सौष्ठव

सीधी लकीर मे सघन गोल, एक दूसरे से अलग्न, शीर्ष-मात्रादि अखण्ड एक जैसे, न खाली, न भीड-भाड वाले अक्षर लिखने वाले लेखक भी आदर्श और उनकी लिपि भी आदर्श कहलाती है । जैन शैली मे इस ओर विशेष ध्यान दिया है जिससे पिछली शताब्दियो मे क्रमश लेखनकला विकसित होती गई थी ।

लिपि का माप —फाटिये द्वारा यथेच्छ एक माप की पक्तियो मे लगभग तृतीयाश या इससे कम-वेश अन्तर रख कर एक समान सुन्दर अक्षरो से प्रतिया लिखी जाती थी जिससे अक्षर गणना करने वाले को सुविधा रहती और अक्षर भी सरल, सुवाच्य और नयनाभिराम लगते थे ।

पडी मात्रा —ब्राह्मी लिपि से जब वर्तमान लिपियो का विकास हुआ, मात्राए सूक्ष्म रूप मे अथवा स्वर सलग्न सकेत मे लिखी जाती थी । वे अपना बडा रूप धारण करने लगी और वर्तमान मे अक्षर व्यजन के चतुर्दिक् लिखी जाने लगी । पृष्ठि मात्रा, अपमात्रा, उर्ध्व-मात्रा मे 'उ,ऊ' की अग्रमात्रा 'रु,रू' के अतिरिक्त अधोमात्रा का रूप धारण कर लिया । पृष्ठि मात्रा मे ह्रस्व इकारान्त सकेत के अतिरिक्त उर्ध्व और अग्रमात्रा बन गई है, जैसे के,कै,को,कौ । जब कि प्राचीन काल मे वगला लिपि की भाति ाक,ाके,ाका,ाको लिखे जाते थे, दीर्घ ईकार का सकेत अपरिर्वतित ही रहा । सयुक्ताक्षर एव मात्राओ के प्रयोग के कारण अक्षरो के माप मे अन्तर आ जाना स्वाभाविक था, अस्तु । पडी मात्रा लिखने की पद्धति प्राय सतरहवी शताब्दी के पश्चात् लुप्त हो गई ।

जैन लेखक

जैन साहित्य के परिशीलन से विदित होता है कि जैन विद्वानो-श्रुतधरो ने जो विशाल साहित्य रचना की उन्हे वे पहले काष्ठपट्टिका पर लिख कर फिर ताडपत्र, कागज आदि पर उतारते थे । श्री देवभद्राचार्य ने जिस काष्ठोत्कीर्ण पट्टिका पर महावीर चरित्र, पार्श्वनाथ चरित्रादि लिखे थे वे उन्होने सोमचन्द्र मुनि (श्री जिनदत्तसूरिजी) को भेट किए थे । अत इन वस्तुओ का वडा महत्व था । ग्रन्थकार अपने महान् ग्रन्थो को स्वय लिखते या अपने आज्ञानवर्ति शिष्य वर्ग से प्रथमादर्श पुस्तिका लिखवाते, जिनका उल्लेख कितने ही ग्रन्थो की प्रशस्तियो मे पाया जाता है । मणिधारी जिनचन्द्रसूरि, स्थिरचन्द्र, ब्रह्मदत्त आदि की लिखित प्रतिया आज भी उपलब्ध है । श्री जिनभद्रसूरि, कमलसयमोपाध्याय, युगप्रधान श्री

जिनचन्द्रसूरि, समयसुन्दरोपाध्याय, गुणविनयोपाध्याय, यशोविजय उपाध्याय, विनयविजय, नयविजय, कीर्तिविजय, जिनहर्षगणि, क्षमाकल्याणोपाध्याय, ज्ञानसार गणि आदि बहुसख्यक विद्वानो के स्वय हस्तलिखित ग्रन्थ उपलब्ध है। जैन यति-मुनियो, साध्वियो आदि के अतिरिक्त श्रीमन्त श्रावको द्वारा लहिया लोगो से लिखवाई हुई बहुत सी प्रतिया हैं। इस प्रकार जैन ज्ञान भण्डारो मे लाखो प्राचीन ग्रन्थ आज भी विद्यमान है। पुस्तको के लिपिक लहिए कायस्थ, ब्राह्मण, नागर, महात्मा, भोजक आदि जाति के होते थे, जिनका पेशा ही लिखने का था और उन सैंकडो परिवारो की आजीविका जैनाचार्यो व जैन श्रीमन्तो के आश्रय से चलती थी। वे जैन लिपि व लेखन पद्धति के परम्परागत अभिज्ञ थे और जैन लहिया-जैन लेखक कहलाने मे अपना गौरव समझते थे। महाराजा श्रीहर्ष, सिद्धराज जयसिंह, राजा भोज, महाराणा कुम्भा आदि विद्याविलासी नरेश्वरो को छोड कर एक जैन जाति ही ऐसी थी जिसके एक-एक व्यक्ति ने ज्ञान भण्डारों के लिए लाखो रुपये लगा कर अद्वितीय ज्ञानोपासना-श्रुतभक्ति की है। लाखो ग्रन्थो के नष्ट हो जाने व विदेश चले जाने पर भी आज जो ग्रन्थ भण्डार जैनों के पास हैं वे बडे गौरव की वस्तु हैं। ज्ञान पचमी का आराधन एव सात क्षेत्रो मे तथा स्वतन्त्र ज्ञान द्रव्य की मान्यता से इस ओर पर्याप्त ज्ञान सेवा समृद्ध हुई। साधु- यतिजनो को स्वाध्याय करना अनिवार्य है। श्रुत-लेखन स्वाध्याय है और इसीलिए इतने ग्रन्थ मिलते हैं। आज मुद्रण युग मे भी सुन्दर लिपि मे ग्रन्थ लिखवा कर रखने की परिपाटी कितने ही जैनाचार्य मुनि-गण निभाते आ रहे हैं। तेरापन्थी श्रमणो मे आज भी लेखन कला उन्नत देखी जाती है क्योंकि उनमे हस्तलिखित ग्रन्थ लिखने और वर्ष मे अमुक परिमाण मे लेखन-स्वाध्याय की पूर्ति करना अनिवार्य है।

लेखक के गुण-दोष

लेख पद्धति के अनुसार लेखक सुन्दर अक्षर लिखने वाला, अनेक लिपियो का अभिज्ञ, शास्त्रज्ञ और सर्वभाषा विशारद होना चाहिए, ताकि वह ग्रन्थ को शुद्ध अविकल लिख सके। मेधावी, वाक्पटु, धैर्यवान्, जितेन्द्रिय, अव्यसनी, स्वपरशास्त्रज्ञ और हलके हाथ से लिखने वाला सुलेखक है। जो लेखक स्याही गिरा देता हो, लेखनी तोड देता हो, आसपास की जमीन बिगाडता हो, दवात मे कलम डुबोते समय उसकी नोक तोड देता हो वह अपलक्षणी और कूट लेखक बतलाया गया है।

लेखक की साधन समग्री

ग्रन्थ लेखन के हेतु पीतल के कलमदान और एक विशिष्ट प्रकार के लकडी या कूटे के कलमदानो मे लेखन सामग्री का सग्रह रहता था। हमारे सग्रह मे ऐसा एक सचित्र कूटे का कलमदान है जिस पर दक्षिणी शैली से सुन्दर कृष्णलीला का चित्राकन किया हुआ है। एक सादे कलमदान मे पुरानी लेखन सामग्री का भी सग्रह है। यह लेखन सामग्री विविध प्रकार की होती थी जिसका वर्णन ऊपर किया जा चुका है। एक श्लोक मे 'क' अक्षर वाली 17 वस्तुओ की सूची उल्लिखित है—

(1) कुपी (दवात), (2) काजल (स्याही), (3) केश (सिर के बाल या रेशम), (4) कुश-दर्भ, (5) कम्बल, (6) काबी, (7) कलम, (8) कृपाणिका, (छुरी), (9) कतरनी (कैंची), (10) काष्ठपट्टिका, (11) कागज, (12) कीकी-आखे, (13) कोटडी (कमरा), (14) कलमदान, (15) क्रमण-पैर, (16) कटि-कमर, और (17) ककड।

इनमे आख, पैर और कमर की मजबूती आवश्यक है। बैठने के लिए कंबल-दर्भासन व कोठरी-कमरा के अतिरिक्त अवशिष्ट स्टेशनरी-लेखन सामग्री है।

लहिये लोग विविध प्रकार के आसनो मे व विविध प्रकार से कलम पकड कर या प्रतिया रख कर लिखने के अभ्यस्त होने से अपने लेखनानुकूल कलम को अपर व्यक्ति को देने मे हानि समझते थे। अत पुस्तको की पुष्पिका के साथ निम्न सुभाषित लिख दिया करते थे —

लेखिनी पुस्तिका रामा परहस्ते गता गता ।
कदाचित् पुनरायाता लष्टा भ्रष्टा च मर्दिता (या चुम्बिता) ।।

लेखन विराम

लिखते समय यदि छोड कर उठना पडे तो वे अपने विश्वास के अनुसार 'घ झ ट ड त प व ल व श' अक्षर लिखते छोड कर या अलग कागज पर लिख के उठते है। अवशिष्ट अक्षर लिखते उठ जाने पर उन्हे पुस्तक के कट जाने, जन्तु खा जाने तथा नष्ट हो जाने के विविध सदेह रहते थे। इन विश्वासो का वास्तविकता से क्या सम्बन्ध है ? कहा नही जा सकता।

लेखक की निर्दोषता

जिस प्रकार ग्रन्थकार अपनी रचना मे हुई स्खलना के लिए क्षमा प्रार्थी बनता है वैसे ही लेखक अपनी परिस्थिति और निर्दोषता प्रकट करने वाले श्लोक लिखता है —

यादृश पुस्तके दृष्ट तादृश लिखित मया ।
यदि शुद्धमशुद्ध वा मम दोषो न दीयते ।।
भग्नपृष्ठ-कटिग्रीवा—वक्रदृष्टिरधोमुखम् ।
कष्टेन लिखित शास्त्र यत्नेन परिपालयेत् ।।
बद्धमुष्टि-कटिग्रीवा——वक्रदृष्टिरधोमुखम् ।
कष्टेन लिखित शास्त्र यत्नेन प्रतिपालयेत् ।। इत्यादि ।

भ्रान्तिमूलक अशुद्धिया

प्राचीन प्रतियो की नकल करते समय लिपि अल्पज्ञता से या भ्रात पठन से, अक्षराकृति साम्य या सयुक्ताक्षरो की दुरूहता मे अनेकश अशुद्ध परम्परा चल पडती थी। एक शब्द के अनेक अर्थ होते है, मिलते-जुलते अशुद्ध वाक्यो को शुद्ध करने जाते नवीन पाठान्तरो की सृष्टि हो जाती, जिसका सशोधन किसी अनुभवी विद्वान् सशोधक के हाथो मे पडने पर ही सभव होता। 'च्छ' का 'त्थ' और 'त्थ' का 'च्छ' हो जाना तो मामूली बात थी।

ग्रन्थ लेखनारभ

भारतीय सस्कृति मे न केवल ग्रन्थ रचना मे ही किन्तु ग्रन्थ लेखन के समय लहिये लोग सर्वप्रथम मगलाचरण करते थे, यह चिरपरिपाटी है। जैन लेखक "ॐ नम, ऐ नम, नमो

जिनाय, नम श्री गुरुभ्य , नमो वीतरागाय, जयत्यनेकान्तकण्ठीरव , ॐ नम सरस्वत्यै, ॐ नम सर्वज्ञाय, नम श्रीसिद्धार्थसुताय" इत्यादि अपने देव, गुरु, धर्म, इष्टदेव के नाम मगल के निमित्त लिखते थे । जैन मगलाचरण का सार्वत्रिक प्रचार न केवल भारत मे ही, चीन, तिब्वत तक मे लिखे ग्रन्थो मे कातन्त्र व्याकरण का 'ॐनम सिद्ध' प्रचुरता से प्रचलित हुआ था । प्राचीन लिपियो के प्रारम्भिक मगल-चिन्ह शिलालेखो मे, ताडपत्रीय ग्रन्थो मे व परम्परा से चलते हुए अर्थ न समझने पर भी रूढ हो गए थे । ब्राह्मी लिपि के ॐकार, ऐकार सहस्राब्दी पर्यन्त चलते रहे और आज भी ग्रन्थ लेखन के प्रारम्भ मे उन्ही विविध रूपो को लिखने की परम्परा चल रही है । भारतीय प्राचीन लिपि माला एव प्राचीन शिलालेखो व ग्रन्थो से उन मगल-चिन्हो का विकास चारुतया परिलक्षित होता है । राजस्थान मे सर्वत्र कातन्त्र व्याकरण का प्रथम अपभ्रष्ट पाठ बडे ही मनोरजक रूप मे बच्चो को रटाया जाता था ।

लेखको की ग्रन्थ लेखन समाप्ति

ग्रन्थ लेखन समाप्त होने पर ग्रन्थ की परिसमाप्ति सूचन करने के पश्चात् लेखन सवत् पुष्पिका लिख कर "शुभभवतु, कल्याणमस्तु, मगल महा श्री, लेखक-पाठकयो शुभभवतु, शुभ भवतु सघस्य, आदि वाक्य लिख कर ॥छ॥ ब॥ आकृतिया लिखा करते थे जो पूर्णकुम्भ जैसे सकेत होने का मुनि श्री पुण्यविजयजी ने अनुमान किया है । और भी प्राचीन ग्रन्थो मे विभिन्न चिन्ह और अक्षरो पर गेरु आदि लाल रग से रजित ग्रन्थो के अन्तिम पत्र पाये जाते है । गन्थ के अध्ययन, खण्ड, उद्देश्य, सर्ग, परिच्छेद, उच्छ्वास, लभक, काण्ड आदि की परिसमाप्ति पर सहज ध्यान आकृष्ट करने के हेतु भी इन चिन्हो का उपयोग किया जाता था ।

लेखको द्वारा अक प्रयोग

यद्यपि ग्रन्थ की पत्र सख्या आदि लिखने के लिए अको का प्रयोग प्राचीन काल से होता आया है, पर साथ-साथ रोमन लिपि की भाति ˉ, I₁, III, IV, V आदि साकेतिक अक प्रणाली भी नागरी लिपि मे प्रचलित थी, जिसके सकेत अपने ढग के अलग थे। ताडपत्रीय ग्रन्थो मे और उसके पश्चात् कागज के ग्रन्थो मे भी इसका उपयोग किये जाने की प्रथा थी । पत्र के दाहिनी ओर अक्षरात्मक अक सकेत व बायी तरफ अक लिखे रहते थे । यह पद्धति जैन छेद आगमो, चूर्णियो मे एक जैसे पाठो मे प्रायश्चित्त व भागो के लिए भी प्रयुक्त हुई है । जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण कृत जीतकल्पसूत्र के भाष्य मे सूत्र की मूल गाथाओ के अक अक्षरात्मक अको मे दिए ह । इस पद्धति के ज्ञान बिना मूल प्रति की नकल करने वालो द्वारा भयकर भूल हो जाने की सभावना है । इस प्रथा का एक दूसरा रूप नेवारी ग्रन्थो मे देखा गया है । बात यह है कि श्री मोतीचन्दजी खजान्ची के सग्रह की एक प्रति को जब 1900 वर्ष प्राचीन बताया गया तो असभव होते हुए भी मैने स्वय उसे देखना चाहा । प्रति देखने पर राज खुला कि सवत् वाला अक 1 बगला लिपि का 7 था जो कि पत्राको पर दी हुई उभयपक्ष की सख्या से समर्थित हो गया । इस प्रकार 600 वर्ष का अन्तर निकल गया और नेवारी सवत् व विक्रम सवत् का अक निकालने पर उसकी यथार्थ मिती बतला कर भ्राति मिटा दी गई। अस्तु । हमे जैन लेखको द्वारा अक्षरात्मक अक सकेतो का समीचीन ज्ञान प्राप्त करने के हेतु ~नकी तालिका जान लेना आवश्यक समझ कर यहा दी जा रही है ।

उपर्युक्त तालिका के अनुसार इकाई, दहाई और सैकडो के अक का उपयोग इस प्रकार किया जाता था —

लृं ० १०, लृं १ ११, लृं २ १२, लृं ३ १३, लृं एकं १४, लृं लृ १५, लृं फ्रु १६, लृं ग्रा १७, लृं र्ह्रा १८, लृं [illegible] १९;

थ ० २०, थ १ २१, थं एकं २४, था फ्रा २६, थ र्ह्रा २८; ला ० ३०, ला २ ३२, ला फ्र ३६, ला ग्रा ३७, ला [illegible] ३९;

प्र ० ४०, प्र र्ह्र ४४, प्र लृं ४५, प्र र्ह्रा ४८; ६ ० ५०, ६ एकं ५४, ६ फ्र ५६, ६ [illegible] ५९; [illegible] ० ६०, [illegible] ग्रा ६७,

थृं ० ७०, थृं २ ७२, थृं लृ ७५, थृं प्र ७७; [illegible] ० ८०, [illegible] ८८, [illegible] ० ९०, [illegible] ९७, [illegible] ९९;

सु ० १००, सु लृ १४५, सु एका १७४; सु ० २००, सा ग्र २२७, सा फ्र २६६, सा ० ३००, स्ता उना ३४७;

स्ता ० ४००, स्तो लृं ४१५, स्ता एकं ४७४; स्ते ० ५००, स्तो [illegible] ५०९, [illegible] फ्र ५३६, [illegible] ० ५८०, [illegible] ९००,

स्तं ग्रा ६३७, स्तं ग्रा ६४७, स्तं लृं ६६५; स्त: ० ७००, स्त: २ ७२२, स्त: ३ ७४३, स्त: ग्रा ७७७, स्त: [illegible] ७९५,

यह ताडपत्रीय पत्राक लेखन पद्धति कागज पर लिखे ग्रन्थो पर चली आती थी किन्तु कई कागज की प्रतियो मे इकाई, दहाई, सैकडो के सकेत न व्यवहृत कर केवल इकाई अक्षराको का भी व्यवहार हुआ है । यत —

स्व 10,	स्ति 20,	एक 40,	स्व 100,	स्व	एक 400,	स्व	इत्यादि
0	0	0	0	स्व 115,	0	स्ति 1240	
			0	लृ	0	एक	

त्रिशती नामक गणित विपयक सग्रह ग्रन्थ मे जैन "अके" रूप मे एक से दस हजार तक के अक्षराक लिखे है । उपर्युक्त तालिका मे आये हुए एक से तीन सौ तक के अको के पश्चात् अधिक की तालिका यहा दी जाती है —

"स्तु 400, स्ते 500, स्ते 600, स्ता 700, स्तो 800, स्त 900, स्त 1000, क्षु 2000, क्षू 3000, क्षा 4000, क्ष 5000, क्षे 6000, क्षा 7000, क्षो 8000, क्ष 9000, क्ष 10000

इति गणितसख्या जैनाङ्काना समाप्ता ।

इन अक्षरात्मक अको की उत्पत्ति की आदि कैसे हुई ? यह वता सकना कठिन है, प र प्रारम्भ के दो तीन अक्षरो के लिए लिखे जाते स्व, स्वि, स्ति, श्री अथवा ऊ नग या श्री श्री श्री ये मगलीक के लिए प्रयुक्त अक्षरो से प्रारम्भ हुआ विदित होता है । आगे के सकेतो का वास्तविक बीज क्या है ? शोधकर वास्तविक निर्णय मे अब तक विद्वानो की कल्पना सफल नही हो सकी है ।

शून्यांक

जैन छेद आगमो की चूर्णि मे जहा मास, लघु मास, गुरु, चतुर्लघु, चतुर्गुरु, षड्लघु, षड्गुरु प्रायश्चित के सकेत लिखे है वहा उस सख्या का निदेश एक, चार, छ शून्य के द्वारा किया गया है । यत –

0 ., 00 00 .. .. , 000 000, ...,

इस प्रकार खाली शून्य लघुता सूचक और काले भरे शून्य गुरुत्व सूचक है ।

शब्दात्मक अक

जैनागम सूत्रकृताग, उत्तराध्ययनादि मे वैदिक ग्रन्थो एव ज्योतिष छदादि विविध विषयक ग्रन्थो मे, शिलालेखो, ग्रन्थ प्रशस्तियो व पुष्पिकाओ मे शब्दाको का प्रयोग प्राचीन काल से चला आता है । कुछ सार्वजनिक और कुछ साप्रदायिक, पारिभाषिक, धार्मिक, व्यावहारिक वस्तुओ के भेद की सख्या के आधार पर रूढ शब्दाको का बिना भेद भाव से ग्रन्थकारो, कवियो और लेखको ने उन्मुक्त प्रयोग किया है, जिसकी तालिका बहुत बडी तैयार हो सकती है । यहा जिस-जिस अक के लिए जिन शब्दो का प्रयोग हुआ है उसे दिया जा रहा है –

0 शून्य, बिन्दू, रन्ध्र, ख, छिद्र, पूर्ण, गगन, आकाश, वियत्, व्योम, नभ, अभ्र, अन्तरिक्ष, अम्बरादि ।

1 कलि, रूप, आदि, पितामह, नायक, तनु, शशि, विधु, इन्दु, चन्द्र, शीताशु, शीतरश्मि, सितरुच, हिमकर, सोम, शशाक, सुधाशु, निशेश, निशाकर, क्षपाकर, औषधीश, दाक्षायणी प्राणेश, अब्ज (चन्द्रवाचक अन्य शब्द भी), भू, भूमि, क्षिति, क्षमा, धरा, वसुधा, वसुन्धरा उर्वरा, गो, पृथ्वी, धरणी, इला, कु, मही (पृथ्वी वाचक अन्य शब्द भी) जैवाकृत इत्यादि ।

2 यम, यमल, युगल, द्वद्व, युग्म, द्वय, पक्ष, अश्विन, नासत्य, दस्र, लोचन, नेत्र, नयन इक्षण, अक्षि, दृष्टि, चक्षु, (नेत्र वाचक अन्य शब्द भी); कर्ण, श्रुति, श्रोत्र, कान वाचक शब्द, बाहु, कर, हस्त, पाणी, दोष, भुज, (हाथ वाचक शब्द समूह), कर्ण, कुच, ओष्ठ गुल्फ, जानु, जघा, (शरीर के युग्म अवयव वाचक अन्य शब्द), अयन, कुटुम्ब, रविचन्द्रौ इत्यादि ।

3 राम, त्रिपदी, त्रिकाल, त्रिगत, त्रिनेत्र, लोक, जगत, भुवन, (विश्व वाचक शब्द समूह), गुण, काल, सहोदरा, अनल, अग्नि, वह्नि, ज्वलन, पावक, वैश्वानर, दहन, तपन, हुताशन, शिखिन, कृशानु, (अग्नि वाचक अन्य शब्द समूह), तत्व, त्रैत, होतृ, शक्ति, पुष्कर, सध्या, ब्रह्मा, वर्ण, स्वर, पुरुष, वचन, अर्थ, गुप्ति इत्यादि ।

4 वेद, श्रुति, समुद्र, सागर, अब्धि, जलधि, जलनिधि, वार्धि, नीरधि, नीर, निध्रि, वारिधि, वारिनिधि, उदधि, अम्बुधि, अम्बुनिधि, अभोधि, अर्णव (समुद्रवाचक अन्य शब्द भी), केन्द्र, वर्ण, आश्रम, युग, तुर्य, कृत, अय, आय, दिश (दिशा), बन्धु, कोष्ठ, ध्यान, गति, सज्ञा, कषाय इत्यादि।

5 बाण, शर, सायक, इषु, (बाण वाचक शब्द), भूत, महाभूत, प्राण, इन्द्रिय, अक्ष, विषय, तत्व, पर्व, पाण्डव, अर्थ, वर्ष्म, व्रत, समिति, कामगुण, शरीर, अनुत्तर, महाव्रत, इत्यादि।

6 रस, अग, काय, ऋतु, मासार्ध, दर्शन, राग, अरि, शास्त्र, तर्क, कारक, समास, लेश्या, क्ष्माखण्ड, गुण, गुहक, गुहवक्त्र इत्यादि।

7 नग, अग, भूभृत, पर्वत, शैल, अद्रि, गिरि, (पर्वत वाचक शब्दावली), ऋषि, मुनि, अत्रि, वार, स्वर, धातु, अश्व, तुरंग, वाह, हय, वाजिन् (अश्व वाचक शब्द), छद, धी, कलत्र, भय, सागर, जलधि (समुद्र वाचक शब्द समूह) लोक इत्यादि।

8 वसु, अहि, गर्ग, (सर्प वाचक अन्य शब्द भी), नागेन्द्र, नाग, गज, दन्तिन्, दिग्गज, हस्तिन्, मातग, करि, कुजर, द्विप, करटिन्, (हस्ति वाचक शब्द), तक्ष, सिद्धि, भूति, अनुष्टुब्, मगल, मद, प्रभावक, कर्मन्, धी गुण, वुद्धि गुण, सिद्ध गुण इत्यादि।

9 अक, नन्द, निधि, ग्रह, खग, हरि, नारद, रध्र, ख, छिद्र, गो, पवन, तत्व, ब्रह्मगुप्ति, ब्रह्मवृत्ति, ग्रैवेयक इत्यादि।

10 दिश, (दिशा, आशा, ककुभ, दिशा, वाचक शब्द), अगुली, पक्ति, रावणशिरस्, अवतार, कर्मन्, यतिधर्म, श्रमणधर्म, प्राण इत्यादि।

11 रुद्र, ईश्वर, हर, ईश, भव, भर्ग, शूलिन्, महादेव, पशुपति, शिव, (महादेव वाचक शब्द), अक्षौहणी इत्यादि।

12 रवि, सूर्य, अर्क, मार्त्तण्ड, द्युमणि, भानु, आदित्य, दिवाकर, दिनकर, उष्णांशु, इन, (सूर्य वाचक शब्दावली), मास, राशि, व्यय, चक्रिन्, भावना, भिक्षु, प्रतिमा, यति प्रतिमा इत्यादि।

13 विश्व, विश्वदेवा, वाम, अतिजगती, अघोष, क्रियास्थान, यक्ष इत्यादि।

14 मनु, विद्या, इन्द्र, शक्र, वासव, (इन्द्र वाचक शब्द) लोक, भुवन, विश्व, रत्न, गुणस्थान, पूर्व, भूतग्राम, रज्जु इत्यादि।

15 तिथि, घस्र, दिन, अहन्, दिवस, (दिवस वाचक शब्द) पक्ष, परमाधार्मिक इत्यादि।

16 नृप, भूप, भूपति, अष्टि, कला, इन्दुकला, शशिकला इत्यादि।

17. अत्यष्टि। 18. धृति, अब्रह्म, पापस्थानक इत्यादि। 19. अतिधृति। 20. नख, कृति इत्यादि। 21. उत्कृति, प्रकृति, स्वर्ग। 22 कृति, जाति, परीषह इत्यादि। 23 विकृति। 24. गायत्री, जिन, अर्हन् इत्यादि। 25. तत्व। 27 नक्षत्र, उडु, भ। 32 दत, रद, इत्यादि।

33 देव, अमर, त्रिदश, सुर इत्यादि। 40. नरक। 48 जगती। 49. तान। 64. स्त्री कला। 72 पुरुष कला।

यहा दी गई शब्द सूची मे कितनी ही वैकल्पिक हैं, अत किस प्रसंग प्रयोग मे कौन सा चालू अक लेना है यह विचारणीय रहता है।

रध्र, ख और छिद्र का उपयोग शून्य के लिए हुआ है और नौ के लिए भी हुआ है। गो एक के लिए व नौ के लिए भी व्यवहृत हुआ है। पक्ष दो के लिए व पन्द्रह के लिये भी व्यवहृत हुआ है। इसी प्रकार श्रुति दो के लिये व चार के लिये, लोक और भुवन तीन, सात और चौदह के लिए, गुण शब्द तोन और छ के लिए, तत्व तीन, पाच, नौ और पच्चीस के लिए, समुद्र वाचक शब्द चार और सात के लिए तथा विश्व तीन, तेरह और चौहद के लिए व्यवहृत देखने मे आते है।

पुस्तक लेखन

ताडपत्नीय ग्रन्थ—छोटे साइज के ताडपत्नीय ग्रन्थ को दो विभाग (कॉलम) मे एव लम्बे पत्ना पर तान कालम मे लिखा जाता था। विभाग के उभय पक्ष मे एक डेढ इन्च का हासिया (मार्जिन) रखा जाता था। वीच के हासिया मे छिद्र करके डोरा पिरोया जाता था ताकि पत्र अस्त व्यस्त न हो। पत्न के दाहिनी ओर अक्षरात्मक पत्नाक एव बायी तरफ अकात्मक पत्नाक लिखे जाते थे। कितनी ही प्रतियो मे उभय पक्ष में एक ही प्रकार के अक लिखे मिलते हैं। बीच मे छिद्र करने के स्थान मे तथा कई प्रतियो मे किनारे के हासिये मे भी हिंगुली का बड़ा टीका (अगूठे) से किया जाता था। विभागीय लेख के उभय पक्ष मे सुन्दरता के लिए बोर्डर या दो तोन खडी लकीरें खीच दी जाती थी। ताडपत्र के पत्ते चौडे-सकड़े होते थे, अत. कही अधिक व कही कम पक्तिया सम विपम रूप में हो जाती थी। लिखते-लिखते जहा पत्न सकडा हो जाता था, पक्ति को शेप करके ", " चन्द्र (स्टार) आदि आकृति चिन्हित कर दी जाती थी। अन्त और प्रारम्भ जहा से होता वैसा ही चिन्ह सकेत सम्बन्ध मिलाने मे सहायक होता था।

पुस्तक लेखन प्रारम्भ मे 'दो पाई, भले मीडा' के बाद जिन, गणधर, गुरु, इष्टदेव, सरस्वती आदि के सूचक नमस्कार लिखा जाता और जहा श्रुतस्कन्ध, सर्ग, खण्ड, लभक, उच्छ्वास आदि की पूर्णाहूति होती वहा ॥छ॥ एव समाप्ति सूचक ग्रन्थ चिन्ह लिखकर कुछ खाली जगह छोड कर उसी प्रकार नमस्कारादि सह आगे का विभाग चालू हो जाता। कहो-कही ग्रन्थ के विभाग के शेष मे या ग्रन्थ पूर्णाहूति मे चक्र, कमल, कलशादि को आकृति वनाई जाती थी। वीच-वीच मे जहा कहीं गाथा का टोका, भाष्य, चूर्णि शेष होने के अन्त मे भी ॥छ॥ लिख दिया जाता था। किन्तु रिक्त स्थान नही छोडा जाता था।

कागज के ग्रन्थ.—प्रारम्भ मे कागज के ग्रन्थ भी ताडपत्नीय ग्रन्थो की तरह लम्बाई चौडाई मे छोटे मुष्टि-पुस्तक के आकार मे लिखते, किन्तु दो-तीन विभाग करने आवश्यक नहीं थे। कितन हा ग्रन्थो की लम्बाई ताडपत्नीय ग्रन्थो की भाति करके चौडाई भी उनसे डबल अर्थात् 4॥ इच का रखा जाता। किन्तु वाद मे तेरहवी शताब्दी के पश्चात् सुविधा के लिए 12 × 5 या इससे कमवेश साइज कर दिया गया। प्रारम्भ मे कागज के ग्रन्था पर वोर्डर की लकीरें काली हाती थीं, पर सोलहवी शताब्दी से लाल स्याही के वोर्डर वनने लगे। ताडपत्नीय ग्रन्थो मे पत्नो के न सरकने के लिए खाली जगह मे छिद्र करके डोरी पिरोई जाती थी। उसी प्रकार कागज के ग्रन्थो में भी उसी पद्धति का अनुकरण कर, खाली जगह रखी जाती; पर डोरी के लिए छिद्र किए ग्रन्थ क्वचित ही पाये जाते है, क्योकि कागज के पत्नो के सरकने का भय नही था। खाली जगह मे लाल रग आदि के टीके या फूल आदि विविध अलकार किये हुए ग्रन्थ भी पाये जाते हैं। उभय पक्ष मे ताडपत्नीय पत्नाक लेखन पद्धति उभय प्रकार पहले पहले-पाई जाती है, बाद मे केवल अको मे पत्नाक एव एक ओर ग्रन्थ के नाम की हुण्डी (Heading) लिख दी जाती थी। कितने ही सग्रह ग्रन्थो मे सीरियल क्रमिक अक चालू रखने पर भी विभागीय सूक्ष्म चोर अक कोने में लिखे जाते थे।

कागज का साइज एक होने से सभी पत्रो मे एक जैसी लकीरें पक्तिया आती थीं। जहा विभागीय परिसमाप्ति होती वहा लाल स्याही से विराम चिन्ह एव प्रारम्भ में ॥60॥ आदि तथा अत मे ॥छ॥ की पद्धति ताडपत्रीय लेखन के अनुसार ही प्रचलित थी। पुष्पिका संवत आदि पर ध्यान आकर्षण करने के लिये लाल स्याही से अथवा जैसे लाल पैंसिल फिरा दी जाती है वैसे गेरु आदि से रग दिया जाता था।

प्राचीन लेखन वैशिष्ट्य—

ग्रथ-लेखन में जहा वाक्यार्थ या सम्बन्ध पूर्ण होता था वहा पूर्ण विराम, दोहरा पूर्ण विराम एव अवातर विषय अवतरण आदि की परिसमाप्ति पर ॥छ॥ लिखा जाता था एव श्लोकाक भी इसी प्रकार लिखा जाता था। विशिष्ट ग्रन्थो मे मूलग्रन्थ के विषय को स्पष्ट करने वाले यन्त्र, चिन्ह, लिखने के साथ-साथ श्लोक सख्या, गाथा सख्या, ग्रथाग्रथ, प्रशस्ति आदि लिखी जाती थी। कुछ अविवेकी लेखक इन्हे न लिखकर ग्रन्थ के महत्व और वैशिष्ट्य को कम कर देते थे।

ताडपत्रीय ग्रन्थो के चित्र व टीके आदि के अतिरिक्त केवल काली स्याही ही व्यवहृत होती थी। जबकि कागज के ग्रन्थो के लेखन मे काली के अतिरिक्त सुनहरी, रूपहली और लाल स्याही का प्रयोग छूट से हुआ है। सुनहरी, रूपहली स्याही मे समग्र ग्रन्थ लिखे गए है, वैसे लाल रग का प्रयोग पूरे ग्रन्थ में न होकर विशिष्ट स्थान, पुष्पिका, ग्रन्थाग्र, उक्त च, तथाहि, पूर्ण विराम आदि मे हुआ है। पर पत्रो की पृष्ठभमि मे लाल, नीला, हरा आदि सभी रगो से रग कर उस पर अन्य रगो का प्रयोग हुआ है।

पुस्तक लेखन के प्रकार—

पुस्तको के बाह्य आकार को लक्षित करके आगे गडी, कच्छपी, मुष्टि आदि पुस्तको के प्रकार बतलाए गए है पर जब कागज के ग्रन्थ लिखे जाने लगे तो उनकी लेखन पद्धति व आभ्यन्तरिक स्वरूप मे पर्याप्त विविधता आ गई थी। कागज पर लिखे ग्रन्थ, त्रिपाठ, पचपाठ, टब्बा, बालावबोध शैली, दो विभागी (कालम), सूड (Running) लेखन, चित्रपुस्तक, स्वर्णाक्षरी, रौप्याक्षरी, सूक्ष्माक्षरी, स्थूलाक्षरी, मिश्रिताक्षरी, पौथियाकार, गुटकाकार आदि अनेक विधाओ के सप्राप्त है।

त्रिपाठ या त्रिपाट—

ग्रन्थ के मध्य मे बडे अक्षर व ऊपर नीचे उसके विवेचन में टीका टवा आदि सूक्ष्माक्षरों की पक्तिया लिखी गई हो वह त्रिपाठ या त्रिपाट ग्रन्थ कहलाता है।

पचपाठ या पचपाट—जिस ग्रन्थ के बीच में मूलपाठ व चारो ओर के बडे वोर्डर हासिया मे विवेचन, टीका, टबादि लिखा हो, अर्थात्, लेखन पाच विभागो में हुआ हो वह पचपाठ या पचपाट ग्रन्थ कहलाता है।

सूड या सूढ—जो ग्रन्थ मूल टीका आदि के विभाग विना सीधा लिखा जाता हो वह सूड या सूढ (Running) लेखन कहलाता है।

प्राचीन ग्रन्थ मूल, टीका आदि अलग-अलग लिखे जाते थे तव ताडपत्रीय ग्रन्थो में ऐसे कोई विभाग नही थे, जब मूल के साथ टीका, चूर्णि, निर्युक्ति, भाष्य, बालावबोध आदि साथ में लिखे

जाने लगे तो त्रिपाठ या पचपाठादि विभागीय लेखन प्रारम्भ हुआ। इससे एक ही प्रति में टीका आदि पढने की सुगमता हो गई।

टवा या बालावबोध शैली—त्रिपाठ, पचपाठ से भिन्न टवा लिखने की शैली मे एक-एक पक्ति के मूल बडे अक्षरो के ऊपर छोटे अक्षरो मे विवेचन, टवा व थोडे से बडे अक्षरो के ऊपर नीचे विशद विवेचन छोटे अक्षरो मे लिखा जाता था। आनन्दघन चौवीसी बालावबोधादि की कई प्रतिया इसी शैली की उपलब्ध है। विभागीय (कालम) पुस्तक, कुछ सूक्ष्माक्षरी आदि दो विभाग में लिखी हुई पुस्तके मिलती है तथा कई प्रतियो मे नामावली सूची, बालावबोध आदि लिखने मे सुविधानुसार कालम बनाकर के लिखे हुए कागज के ग्रन्थ उपलब्ध है।

चित्र पुस्तक—यहा चित्र पुस्तक का आशय सचित्र पुस्तक से नही पर यह वह विद्या है जिससे लेखनकला की खूबी मे इस प्रकार जगह छोडकर अक्षर लेखन होता है जिससे चौपट, वज्र, स्वस्तिक, छत्र, फूल आदि विविध आकृतिया उभर आती है और व्यक्ति का नाम भी चित्र रूप में परिलक्षित हो जाता है। कभी-कभी यह लेखन लाल स्याही से लिखा होने से लेखन कला स्वय बोल उठती है। हासिया और मध्य भाग मे जहा छिद्र की जगह रखने की ताडपत्रीय प्रथा थी वहा विविध फूल आदि चित्रित होते।

स्वर्णाक्षरी—रौप्याक्षरी ग्रन्थ—आगे बतायी हुई विधि के अनुसार स्वर्णाक्षरी, रौप्याक्षरी और गगा-जमनी ग्रन्थ लेखन के लिये इस स्याही का प्रयोग होता। ग्रन्थो को विशेष चमकदार दिखाने के लिए कागज के पत्रो की पृष्ठ भूमि (बैकग्राउण्ड) लाल, काला आसमानी, जामुनी आदि गहरे रग से रग कर अकीक, कसौटी, कोडा आदि से घोटकर मुलायम, पालिमदार बना लिया जाता था। फिर पूर्वोल्लिखित सोने चादी के वर्क चूर्ण को धव के गोद के पानी के साथ तैयार की हुई स्याही से ग्रन्थ लिखा जाता था। लिखावट सूख जाने पर अकीक आदि की ओपणी से घोटकर ओपदार बना लिए जाते थे। इन पत्रो के बीच मे व हासिये मे विविध मनोरम चित्र हसपक्ति, गज पक्ति आदि से अलकृत करके अद्वितीय नयनाभिराम बना दिया जाता था।

स्वर्णाक्षरी, रौप्याक्षरी स्याही की लिखी हुई ताडपत्रीय पुस्तके अब एक भी प्राप्त नही है पर महाराजा कुमारपाल और वस्तुपाल महामात्य ने अनेक स्वर्णाक्षरी ग्रन्थ लिखाए थे जिसका उल्लेख कुमारपाल प्रबन्ध व उपदेशतरगिणी मे पाया जाता है। वर्तमान मे प्राप्त स्वर्णाक्षरी ग्रन्थ पन्द्रहवी शती से मिलते है। रौप्याक्षरी उसके परवर्ती काल से मिलते है। स्वर्णाक्षरी प्रतिया कल्पसूत्र और कालकाचार्य कथा की प्रचुर परिमाण मे प्राप्त है और क्वचित् भगवती सूत्र, उत्तराध्ययन सूत्र, नवस्मरण, अध्यात्मगीता, शालिभद्ररास एव स्तोत्रादि भी पाये जाते है।

सूक्ष्माक्षरी ग्रन्थ—ताडपत्रीय युग में सूक्ष्माक्षरी प्रतिया नही मिलती, पर कागज के ग्रन्थ लेखन में सूक्ष्म अक्षरो का त्रिपाठ, पचपाठ आदि लेखन मे पर्याप्त प्रयोग हुआ। साधुओ को विहार मे अधिक भार उठाना न पडे इस दृष्टिकोण से भी उसका प्रचलन उपयोगी था। ज्ञान भण्डारो मे कई एक सूक्ष्माक्षरी ग्रन्थ पाये जाते है। यो केवल एक पत्र मे दशवैकालिकादि आगम लिखे मिलते है। तेरापथी साधुओ ने तथा कुछ कलाकारो ने सूक्ष्माक्षर मे उल्लेखनीय कीर्तिमान कायम किया है, पर वे पठन-पाठन में उपयोगी न होकर प्रदर्शनी योग्य मात्र हैं।

स्थूलाक्षरी ग्रन्थ—पठन-पाठन के सुविधार्थ विशेष कर सम्वत्सरी के दिन कल्पसूत्र मूल का पाठ सघ के समक्ष वाचने के लिये स्थूलाक्षरी ग्रन्थ लिखे जाते थे। कागज युग मे इसका पर्याप्त विकास दृष्टिगोचर होता है।

कर्त्तरित ग्रन्थ –कागज को केवल ग्रक्षराकृति मे काटकर बिना स्याही के ग्रालेखित ग्रन्थो मे मात्र एक 'गीतगोविन्द' की प्रति वडौदा के गायकवाड ग्रोरिएण्टल इन्स्टीट्यूट मे है। वाकी फुटकर पत्र एव चित्रादि पर्याप्त पाये जाते हैं।

मिश्रिताक्षरी –छोटे-वडे मिश्रित ग्रक्षरो की प्रतियो का परिचय वर्णन टवा, वालावबोध की एव सपर्याय प्रतियो मे चारुतया परिलक्षित होता है।

गुटकाकार ग्रन्थ –इनका एक माप नही होता। ये छोटे-वडे सभी ग्राकार-प्रकार के पाये जाते हैं। पोथिये, गुटके ग्रादि बीच मे सिलाई किए हुए, जुज सिलाई वाले भी मिलते हैं। बराबर पन्नो को काटकर सिलाई करने से ग्रागे से तीखे ग्रौर ग्रवशिष्ट एक से होते हैं। उनकी जिल्दे भी कलापूर्ण, सुरक्षित ग्रौर मखमल, छीट, किमख्वाप-जरी ग्रादि की होती हैं। कुछ गुटके सिलाई करके काटे हुए ग्राजकल के ग्रन्थो की भाति मिलते हैं। माप में वे दफ्तर की भाति वडे-वडे फुलस्केप साइज के, डिमाई साइज के व क्राउन व उससे छोटे लघु ग्रौर लघुतर माप के गुटके प्रचुर परिमाण में उपलब्ध हैं। उनमे रास, भास, स्तवन, सज्झाय, प्रतिक्रमण, प्रकरण सग्रहादि ग्रनेक प्रकार के सग्रह होते हैं। हमारे सग्रह मे ऐसे गुटके सैकडो की सख्या में हैं जो सोलहवी शताब्दी मे वीसवी शती तक के लिखे हुए हैं।

पुस्तक संशोधन

हस्तलिखित ग्रन्थो में प्रति से प्रति की नकल की जाती थी। ऊपर वाली प्रति यदि ग्रशुद्ध होती तो उस विना सशोधित प्रति से नकल करने वाला भाषा ग्रौर लिपि का ग्रनभिज्ञ लेखक भ्रान्त परम्परा ग्रौर भूलो की ग्रभिवृद्धि करने वाला ही होता। फलस्वरूप ग्रन्थ में पाठान्तर, पाठभेद का प्राचुर्य होता जाता ग्रौर कई पाठ तो ग्रशुद्ध लेखको की कृपा से ग्रन्थकार के ग्राशय से वहुत दूर चले जाते थे। एक जैसी प्राचीन लिपि ग्रौर मोड़ के भेद से, भाषा व विषय की ग्रनभिज्ञता मे जो भ्रान्तिया नजर ग्राती हैं उनके कुछ कारण ग्रक्षरो की मोड साम्य व ग्रन्य भ्रान्तिया हैं यहा कुछ उदाहरण प्रस्तुत किये जाते हैं—

1 लिपिभ्रम —

क रु	म स रा ग	था थ्य
ख र व स्व	व ब त	पा प्य
ग रा	ह इ	सा स्य
घ प्प व थ प्य	त्त तू	पा ष्य
च व ठ ध	द्द द्व द्ध द्र	ड्ड ट्ट दृ
छ व	ग्र ग्ग ग्ज	त्त न्न
ज ज्ञ	द्र ड	च्च थ
ञ्ज ज	वु तु	इ ह द्र
ट ठ द	प्प प्य थ घ	ई र्ह
ड र म	ज्ज व्व द्य	ए प य
त व	सू स्त स्व मू	ऐ पे ये
थ व	त्थ च्छ	क्व क्र कु क्ष
न त व	कृ क्ष	प्त पू पृ
नु तु	त्व च न	सु मु
प य ए	प्रा था	ष्ठ ष्व ष्ट पृ ब्द
फ पु	टा य	त्म त्स ता त्य
भ स म	त्र थ	कू क्त क्र
य ध	एय एा एम	

इस प्रकार कितनी ही लम्बी सूची दी जा सकती है। अक्षरभ्राति से उत्पन्न पाठ-भेद से भिन्नार्थ, समानार्थ भी घटित हो सकता है और इस चक्कर मे वडे-वडे विद्वान् भी फस जाते हैं। भ्रात लेखन से उत्पन्न पाठ भेदो को देखिए—

(1) प्रभव–प्रसव, स्तवन-सूचन, यच्चा-यथा, प्रत्यक्षतोवगम्या-प्रत्यक्षवोधगम्या, नवा-तथा, नच-तव, तद्वा-तथा, पवत्तस्स-पवन्नस्म, जीवसात्मीकृत-जीवमात्मीकृत, परिवुड्ढि-परितुट्ठि, नचैव-नदैव, अरिदारिणी-अरिवारिणी-अविदारिणी, दोहलक्खेविया-दोहलक्खेदिया, नदीमरदीवगमणसभवजणमडिय-नदीसरदीवगमणमभवजिणमडिय, घाणामयपसादजणण-घणोगय पसाद जणण, गयकुलासण्ण-रायकुलासण्ण, मच्च-सत्व सत्त, विच्छूढदाणजलाविलकपोला विगजा-विच्छूढदाणजलवित्त घोलविवजा, इत्यादि ।

(2) पडी मात्रा विषयक भ्रम—कितने ही लेखक पडीमात्रा-पृष्ठमात्रा का रहस्य न समझ कर एक दूसरे अक्षर के साथ उसकी मात्रा को लगा कर भ्रान्तपाठ की सृष्टि कर डालते हैं जिससे सशोधन कार्य वडा दुरूह हो जाता है। यत—

किसलयकोमलपसत्थपाणी–किमयलवखामलपत्थपाणी, तारानिकर–तरोनिकर-तमोनिकर, आसरासीओ–असेरासीओ-असेससीओ, इत्यादि ।

(3) पतितपाठ स्थान परिवर्तन—कितनी ही वार छूटे हुए पाठ को हासिए मे सशोधन द्वारा लिखा जाता है जिसे प्रतिलिपिकार सकेत न समझ कर अन्य स्थान मे उसे लिख देते हैं ऐसे गोलमाल प्रतिलिपि करते समय आए दिन देखने मे आते हैं।

(4) टिप्पण प्रवेश—सशोधक द्वारा हासिए पर किए गए टिप्पण पर्याय को प्रतिलिपि कार भ्रान्तिवश ग्रन्थ का छूटा हुआ पाठ समझ कर मूल पाठ मे दाखिल कर देते हैं।

(5) शब्द पण्डित लेखको के कारण—कितने ही लेखक अमुक शब्दो के विशेष परिचित होने से मिलते-जुलते स्थान मे अघटित फेरफार कर डालते हैं—भ्रान्तिवश हो जाता है जिससे सशोधक के लिए वडी कठिनाई हो जाती है।

(6) अक्षर या शब्दो की अस्तव्यस्तता—लेखक लिखते-लिखते अक्षरो को उलट-पुलट कर डालते हैं जिससे पाठान्तरो की अभिवृद्धि हो जाती है। यत दाएइ–दाइए।

(7) डवल पाठ—कितनी ही वार लेखक ग्रन्थ लिखते हुए पाठ को डबल लिख डालते हैं जिससे लिखित पुस्तक मे पाठ भेद की सृष्टि हो जाती है। जैसे-सव्व पासणिएहिं सव्व पासणिएहिं सव्वपासत्थपासणिएहिं, तस्सरूव–तस्सरू वस्सरूव इत्यादि ।

(8) पाठ स्खलन—ग्रन्थ के विषय और अर्थ से अज्ञात लेखक कितनी ही वार भगकादि विपयक सच्चे पाठ को डवल समझ कर छोड देते है जिससे गम्भीर भूले पैदा होकर विद्वानो को भी उलझन मे डाल देती हैं।

इस प्रकार अनेक कारणो से लेखको द्वारा उत्पन्न भ्रान्ति और अर्ध-दग्ध-पण्डितो द्वारा भ्रान्ति-भिन्नार्थ को जन्म देकर उपरिनिर्दिष्ट उदाहरणो की भाति सही पाठ निर्णय मे विद्वानो को वड़ी असुविधा हो जाती है।

सशोधकों की निराधार कल्पना

प्रायोगिक ज्ञान मे अधूरे सशोधक शब्द व अर्थ ज्ञान मे अपरिचित होने से अपनी मति-कल्पना से सशोधन कर नए पाठ भेद पैदा कर देते हैं, तथा सच्चे पाठ के वदले अपरिचित प्रयोग

देकर अनर्थ कर डालते हैं। खण्डित पाठ की पूर्ति करने के बहाने सशोधको की मति-कल्पना भी पाठभेदो मे अभिवृद्धि कर देती है क्योकि पत्र चिपक जाने से, अक्षर उड जाने से, दीमक खा जाने से रिक्त स्थान की पूर्ति दूसरी प्रति से मिलाने पर ही शुद्ध होगी अन्यथा कल्पना प्रसूत पाठ भ्रान्त परम्परा को जन्म देने वाले होते हैं।

ग्रंथ संशोधन की प्राचीन अर्वाचीन प्रणाली :

ज्ञान भण्डारस्थ ग्रन्थो के विशद अवलोकन से विदित होता है कि लिखते समय ग्रन्थ मे भूल हो जाती तो ताडपत्रीय लेखक अधिक पाठ को काट देते या पानी से पोछ कर नया पाठ लिख देते थे। छूटे हुए पाठ को देने के लिए "Λ" पक्षी के पजे की आकृति देकर किनारे X X के मध्य मे 'Λ' देकर लिखा जाने लगा था। अधिक पाठ को हटाए हुए रिक्त स्थान को लकीर तथा अन्याकृति से पूर्ण कर दिया जाता था। सोलहवी शताब्दी मे प्रति सशोधन मे आई हुई काटाकाटी की असुन्दरता को मिटाने के लिए सफेदा या हरताल का प्रयोग होने लगा। अशुद्धि पर हरताल लगा कर शुद्ध पाठ लिखा जाने लगा। अशुद्ध अक्षर को सुधारने के लिए जैसे 'च' का 'व' करना हो, 'प' का 'प' करना हो 'थ' का 'य' करना हो तो अक्षर के अधिक भाग को हरताल आदि से ढक कर शुद्ध कर दिया जाता, यही प्रणाली आज तक चालू है। त्रूटक पाठ को लिखने के लिए तो उन्ही चिन्हो को देकर हासिये मे लिखना पड़ता व आज भी यही रीति प्रचलित है।

ग्रंथ संशोधन के साधन :

ग्रन्थ सशोधन करने के लिए पीछी, हरताल, सफेदा, घूटो (ओपणी), गेरू और डोरे का समावेश होता है। अत इन वस्तुओ के सम्बन्ध मे निर्देश किया जाता है।

पीछी—चित्रकला के उपयोगी पीछी-ब्रुश आदि हाथ से ही बनाने पडते और उस समय टालोरी-खिसकोली के बारीक बालो से वह बनती थी। ये बाल स्वाभाविक ग्रथित और टिकाऊ होते थे। कबूतर की पाख के पोलार मे पिरो कर या मोटी बनाना हो तो मयूर के पाखो के ऊपरी भाग मे पिरोकर तैयार कर ली जाती थी। डोरे को गोद आदि से मजबूत कर लिया जाता और वह चित्रकला या ग्रन्थ सशोधन मे प्रयुक्त हरताल, सफेदा आदि मे प्रयुक्त होती थी।

हरताल—यह दगड़ी और वरगी दो तरह की होती है। ग्रन्थ सशोधन मे 'वरगी हरताल' का प्रयोग होता है। हरताल के बारीक छने हुए चूर्ण को बावल के गोद के पानी मे मिला कर, घोटकर, आगे बताई हुई हिंगुल की विधि से तैयार कर सुखा कर रखना चाहिए।

सफेदा—सफेदा आज कल तैयार मिलता है। उसे गोद के पानी मे घोट कर तैयार करने से ग्रन्थ सशोधन मे काम आ सकता है। पर हरताल का सौन्दर्य और टिकाऊपन अधिक है।

घूटा या ओपणी—आगे लिखा जा चुका है कि अकीक, कसौटी या दरियाई कांडा से कागज पर पालिस होती है। हरताल, सफेदा लगे कागजो पर ओपणी करके फिर नए अक्षर लिखने से वे फैलते नही—स्याही फूटती नही।

गेरू—जैसे आजकल विशिष्ट वाक्य, श्लोक, पुष्पिका आदि पर लाल पैन्सिल से अण्डर लाईन करते हैं वैसे हस्तलिखित ग्रन्थो मे भी आकर्षण के लिए पद, वाक्य, गाथा, परिच्छेद, परिसमाप्ति स्थान गेरू से रग दिए जाते थे।

डोरा —ताडपत्रीय युग मे स्मृति योग्य पक्ति, पाठ, अधिकार, अध्ययन, उद्देश्य आदि की परिसमाप्ति स्थान मे वारीक डोरा पिरो कर वढा हुआ वाहर छोड दिया जाता था । जैसे आजकल फ्लेग चिन्हित किया जाता है और उससे ग्रन्थादि का प्रसग खोजने मे सुविधा होती है, वैसे ही ताड़पत्रीय युग की यह पद्धति थी ।

पुस्तक सशोधन के संकेत चिन्ह .

जिस प्रकार लेखन और सशोधन मे पूर्ण विराम, अर्द्ध विराम, अल्प विराम, प्रश्नविराम, आश्चर्यदर्शक चिन्ह, अर्थद्योतक चिन्ह, छन्द समास द्योतक चिन्ह, शकित पाठ द्योतक चिन्हादि प्रचलित है, पुराकालीन जैन विद्वानो ने भी लेखन सौष्ठव को ध्यान मे रख कर विविध चिन्हो का प्रयोग किया है। वे चिन्ह कब और किस स्थिति मे प्रयुक्त होते थे ? उसका यहा निर्देश किया जाता है ।

संशोधन के संकेत चिन्ह:-

(१) ^, v, [illegible], x, [illegible]. (२) x. (३) [illegible]. (४) ω.

(५) २-१. (६) अ = ऽ, आ = [illegible] ऽऽ, इ = [illegible], ई = [illegible], उ = [illegible], ऊ = [illegible], ॠ = [illegible], ए = [illegible], ऐ = [illegible], ओ = [illegible], औ = [illegible], अं = [illegible]

(७) प्र॰ पा॰, प्रत्यं॰ पा॰, प्रत्यंतरे पाठंतरम्. (८) टं॰ पं॰, टं॰ गु॰ पं॰ गु॰, उं॰ नी॰ पं॰ नी॰. (९) '. (१०) ". (११) ' '. (१२) ११, १२, २१, २३, ३२, ४१, ५३, ८२, ७३, ९१ इत्यादि (१३) १, २, ३, ४, ५, ६, इत्यादि

(१४) =, \\. (१५) [illegible]. (१६) .., ..., [illegible], इत्यादि.

इन चिन्हो की पहचान इन नामो से कीजिए —–

(1) पतितपाठ दर्शक चिन्ह —लेखको की असावधानी से छूटे हुए स्थान पर यह चिन्ह करके हासिये पर त्रुटक पाठ लिखा जाता है और दोनो स्थान मे चिन्ह कर दिए जाते है।

(2) पतित पाठ विभाग दर्शक चिन्ह —यह चिन्ह छूटे हुए पाठ को वाहर लिखने के उभय पक्ष मे दिया जाता है जिसमे अक्षर या पाठ का सेल-भेल न हो जाय। इसके पास 'ओ' या 'प' करके जिस पक्ति का हो नम्वर दिया जाता है ।

(3) आकारान्त—'काना' दर्शक चिन्ह—यह अक्षर के आगे की मात्रा 'ा' छूट गई हो वहा अक्षर के ऊपर दी जाती है।

(4) अन्याक्षर वाचन दर्शन चिन्ह—यह चिन्ह लिखे गए अक्षर के बदले दूसरा अक्षर लिखने की हालत मे लगाया जाता है। जैसे 'श' के बदले 'ष', 'स' के बदले 'श', 'ज' के बदले 'य', 'प' के बदले 'क्ष' आदि। यत—सत्रु=शत्रु, खट्=षट्, जज्ञ=यज्ञ, जात्रा यात्रा आदि।

(5) पाठ परावृत्ति दर्शक चिन्ह—अक्षर या वाक्य के उलट-पुलट लिखे जाने पर सही पाठ बताने के लिए अक्षर पर लिख दिया जाता है। यत—'वनचर' के बदले 'वचनर' खाल गया हो तो वचनर शव्द पर चिन्ह कर दिया जाता है।

(6) स्वर सन्ध्यश दर्शक चिन्ह—यह चिन्ह सन्धि हो-जाने के पश्चात् लुप्तस्वर को बताने वाला है। इनं चिन्हो को भी ऊपर और कभी नीचे व अनुस्वार युक्त होने पर नु स्वार महित भी किया जाता है। यत—ऽऽ। ऽऽऽ इत्यादि।

(7) पाठ भेद दर्शक चिन्ह—एक प्रति को दूसरी प्रति से मिलाने पर जो पाठान्तर, त्यिन्तर हो उसके लिए यह चिन्ह लिख कर पाठ दिया जाता है।

(8) पाठानुसधान दर्शक चिन्ह—छूटे हुए पाठ को हासिए मे लिखने के पश्चात् किस पक्ति का वह पाठ है यह अनुसधान बताने के लिए ओ प लिख कर ओली, पक्ति का नम्बर दे दिया जाता है।

(9) पदच्छेद दर्शक चिन्ह—आजकल की तरह वाक्य शब्द एक साथ न लिख कर आगे अलग-अलग अक्षर लिखे जाते थे, अत शुद्ध पाठ करने के लिए ऊपर खडी लाईन का चिन्ह करके शब्द अक्षर पार्थक्य बता दिया जाता था।

(10) विभाग दर्शक चिन्ह—ऊपर दिए गए सामान्य पदच्छेद चिन्ह से डबल लाइन देकर सम्बन्ध, विषय या श्लोकार्द्ध की परिसमाप्ति पर यह लगाया जाता है।

(11) एक पद दर्शक चिन्ह—एक पद होने पर भी भ्रान्ति न हो इसलिए दोनो ओर ऊपर खडी लाइन लगा देते थे। यत—'स्यात्पद' एक वाक्य को कोई स्यात् और पद अलग-अलग न समझ बैठे इसलिए वाक्य के दोनो ओर इसका प्रयोग होता था।

(12) विभक्ति वचन दर्शक चिन्ह—यह चिन्ह अक परक है। सात विभक्ति और सबोधन मिलाकर आठ विभक्तियो को तीन वचनो से सबद्ध-सूचन करने के लिए प्रथमा का द्विवचन शब्द पर 12, अष्टमी के बहुवचन पर 83 आदि अक लिख कर निर्भ्रान्त बना दिया जाता था। सबोधन के लिए कही-कही 'हे' भी लिखा जाता था।

(13) अन्वय दर्शक चिन्ह—यह चिन्ह भी विभक्ति वचन को चिन्ह की भाति अक लिख कर प्रयुक्त किया जाता था। ताकि सशयात्मक वाक्यो मे अर्थ भ्रान्ति न हो, श्लोको मे पदो का अन्वय भी अको द्वारा बतला दिया जाता था।

(14) टिप्पणक दर्शक चिन्ह—यह चिन्ह मूलपाठ के भेद-पर्याय आदि दिखाने के लिए वाक्य पर चिन्ह करके हासिए में वही चिन्ह करके पर्यायार्थ या व्याख्या लिख दी जाती थी।

(15) विशेषण विशेष्य सम्बन्ध दर्शक चिन्ह—दूर-दूर रहे हुए शब्दो का विशेषण-विशेष्य आकलन करने के लिए ये चिन्ह कर देने से प्रबुद्ध वाचक तत्काल संबंध को पकड लेता-समझ सकता है।

(16) पूर्वपद परामर्शक चिन्ह—ये चिन्ह दुरुह हैं। तर्क शास्त्र के ग्रन्थ मे बार-बार आने वाले तत् शब्द को अलग-अलग अर्थ-द्योतक बताने के लिए व्यर्थ के टिप्पण न देकर संकेत से अर्थ समझने के लिए इन चिन्हो का प्रयोग होता था। साधारण लेखको का समझ से बाहर विचक्षण विद्वानो के ही काम मे आने वाले ये चिन्ह है।

दार्शनिक विषय के ग्रन्थो के लम्बे सम्बन्धो पर भिन्न-भिन्न विकल्प चर्चा मे उसका अनुसंधान प्राप्त करने के लिए इस प्रकार के चिन्ह बडे सहायक होते है। विद्वान् जैन श्रमण वर्ग आज भी अपने गम्भीर संशोधन कार्य मे इन शैलियो का अनुकरण करता है।

जैन लेखन कला, संशोधन कला के प्राचीन-अर्वाचीन साधनो पर यहा जो विवेचन हुआ है इससे विदित होता है कि जैन लेखन कला कितनी वैज्ञानिक, विकसित और अनुकरणीय थी। भारतीय संस्कृति के इतिहास मे जैनो का यह महान् अनुदान सर्वदा स्वर्णाक्षरो मे अंकित रहेगा।

जैन ज्ञान भंडारो का महत्त्व

प्रारम्भ मे जो जैन श्रमण वर्ग श्रुतज्ञान को लिपिवद्ध करने के विपक्ष मे था वह समय के अनुकूल उसे परम उपादेय मानने लगा और देवर्द्धि गणि क्षमाश्रमण के समय से ज्ञानोपकरण का सविशेष प्रयोग करने के लिए उपदेश देने लगा। आज हमारे समक्ष तत्कालीन लिखित वाङ्मय का एक पन्ना भी उपलब्ध नही है। अत वे कैसे लिखे जाते थे, कैसे संशोधन किया जाता था, कहा और किस प्रकार रखा जाता था, इस विषय मे प्रकाश डालने का कोई साधन नही है। गत एक हजार वर्ष के ग्रन्थ व ज्ञान भण्डार विद्यमान है जिससे हमे मालूम होता है कि श्रुतज्ञान की अभिवृद्धि मे जैन श्रमण और श्रावक वर्ग ने सविशेष योगदान किया था। श्री हरिभद्रसूरिजी ने योगदृष्टिसमुच्चय मे 'लेखना पूजना दान' द्वारा पुस्तक लेखन को योग भूमिका का अग बतलाया है। 'मण्ह जिणाण आण' सज्झाय मे पुस्तक लेखन को निम्नोक्त गाथा से श्रावक का नित्य-कृत्य बतलाया है।

> संघोवरि बहुमाणा पुत्थयलिहण पभावणा तित्थे।
> सड्ढाणकिच्चमेय निच्च सुगुरुवएसेण ॥5॥

बारहवी शताब्दी मे सूराचार्य ने भी 'दानादिप्रकाश' के पाचवे अवसर मे पुस्तक लेखन की बडी महिमा गायी है। उस जमाने मे ग्रन्थो को ज्ञान भण्डारो मे रखा जाता था। एक हजार वर्ष पूर्व भी राजाओ के यहा पुस्तक संग्रह रखा जाता था, सरस्वती भण्डार होते थे। चैत्यवासियो से सम्बन्धित मठ-मन्दिरो मे भी ज्ञानकक्ष अवश्य रहता था। सुविहित शिरोमणि श्री वर्द्धमानसूरि–जिनेश्वरसूरि के पाटन की राजसभा मे चैत्यवासियो के साथ हुए शास्त्रार्थ मे पाटण के सरस्वती भण्डार से ही 'दशवैकालिक' ग्रन्थ लाकर प्रस्तुत किया गया था। मुसलमानी काल मे नालन्दा विश्वविद्यालय के ग्रन्थागार की भाति अगणित ज्ञान-

भण्डारो व ग्रन्थो को जला कर नष्ट कर डाला गया। यही कारण है कि प्राचीनतम लिखे ग्रन्थ आज उपलब्ध नहीं हैं। जिस प्रकार देवालयो और प्रतिमाओ के विनाश के साथ-साथ नव-निर्माण होता गया उसी प्रकार जैन शासन के कर्णधार जैनाचार्यों ने शास्त्र निर्माण व लेखन का कार्य चालू रखा। जिसके प्रताप से आज वह परम्परा बच पाई। भारतीय ज्ञान-विज्ञान के क्षेत्र मे जैन ज्ञान भण्डार एक अत्यन्त गौरव की वस्तु हे।

ज्ञान भंडारो की स्थापना व अभिवृद्धि

हस्तलिखित ग्रन्थो के पुष्पिका लेख तथा कुमारपाल प्रबन्ध, वस्तुपाल चरित्र, प्रभावक चरित्र, सुकृतसागर महाकाव्य, उपदेश तरंगिणी, कर्मचन्द मन्त्रिवश-प्रबन्ध, अनेको रास एव ऐतिहासिक चरित्रो से समृद्ध श्रावको द्वारा लाखो-करोडो के सद्व्यय से ज्ञान कोश लिखवाने तथा प्रचारित करने के विशुद्ध उल्लेख पाए जाते हैं। शिलालेखो की भाति ही ग्रन्थ-लेखन-पुष्पिकाओ व प्रशस्तियो का बडा भारी ऐतिहासिक महत्व है। जैन राजाओ, मन्त्रियो एव धनाढ्य श्रावको के सत्कार्यो की विरुदावली मे लिखी हुई प्रशस्तिया किसी भी खण्ड काव्य से कम महत्वपूर्ण नही है। गुर्जरेश्वर सिद्धराज जयसिह और कुमारपालदेव ने बहुत बडे परिमाण मे शास्त्रो को ताडपत्रीय प्रतिया स्वर्णाक्षरी व सचित्रादि तक लिखवायी थी। यह परम्परा न केवल जैन नरपति श्रावक वर्ग मे ही थी परन्तु श्री जिनचन्द्रसूरिजी को अकबर द्वारा 'युगप्रधान' पद देने पर बीकानेर महाराजा रायसिह, कुअर दलपतसिह आदि द्वारा भी सख्याबद्ध प्रतिया लिखवा कर भेट करने के उल्लेख मिलते हैं एव इन ग्रन्थो की प्रशस्तियो मे बीकानेर, खभात आदि के ज्ञान भण्डारो मे ग्रन्थ स्थापित करने के विशद वर्णन पाए जाते हैं। त्रिभुवनगिरि के यादव राजा कुमारपाल द्वारा प्रदत्त पुस्तिका के काष्ठफलक का चित्र, जिसमे जैनाचार्य श्री जिनदत्तसूरि और महाराजा कुमारपाल का चित्र है। इस पर "नृपतिकुमार-पाल भक्तिरस्तु' लिखा हुआ है। सम्राट अकबर अपनी सभा के पडित यति पद्मसुन्दर का ग्रन्थ भण्डार, हीर विजयसूरि को देना चाहता था, पर उन्होने लिया नही, तब उनकी निष्पृहता से प्रभावित होकर आगरा मे ज्ञान भण्डार स्थापित किया गया था।

जैन श्रावको ने अपने गुरुओ के उपदेश से बडे-बडे ज्ञान भण्डार स्थापित किए थे। भगवती सूत्र श्रवण करते समय गौतम स्वामी के छत्तीस हजार प्रश्नो पर स्वर्ण मुद्राए चढाने का पेथडशाह, सोनी सग्रामसिंह आदि का एव छत्तीस हजार मोती चढाने का वर्णन मन्त्रीश्वर कर्मचन्द्र के चरित्र मे पाया जाता है। उन मोतियो के बने हुए चार- चार सौ वर्ष प्राचीन चन्द्रवा पूठिया आदि चालीस वर्ष पूर्व तक बीकानेर के बडे उपाश्रय मे विद्यमान थे। श्री जिनभद्रसूरि जी के उपदेश से जैसलमेर, पाटण, खभात, जालोर, देवगिरि, नागौर आदि स्थानो मे ज्ञान भण्डार स्थापित होने का वर्णन उपाध्याय समयसुन्दर गणि कृत 'कल्पलता' ग्रन्थ मे पाया जाता है। धरणाशाह, मण्डन, धनराज और पेथडशाह, पर्वत कान्हा एव भणशाली थाहरुशाह ने ज्ञान भण्डार स्थापित करने मे अपनी लक्ष्मी का मुक्त हस्त से व्यय किया था। थाहरुशाह का भण्डार आज भी जैसलमेर मे विद्यमान है। जैन ज्ञान भण्डारो मे बिना किसी धार्मिक भेद-भाव के जो ग्रन्थ सग्रहीत किए गए, आज भी भारतीय वाड्मय के सरक्षण मे गौरवास्पद है। क्योकि अनेक जैनेतर ग्रन्थो को सरक्षित रखने का श्रेय केवल जैन ज्ञान भण्डारो को ही है।

वर्तमान मे जैन ज्ञान भण्डार सारे भारतवर्ष मे फैले हुए है। यद्यपि लाखो ग्रन्थ अयोग्य उत्तराधिकारियो द्वारा नष्ट हो गए, बिक गए, विदेश चले गए, फिर भी जैन ज्ञान भण्डारो मे स्थित अवशिष्ट लाखो ग्रन्थ शोधक विद्वानो को अपनी ओर आकृष्ट करते हैं। गुजरात मे पाटण, अहमदाबाद, पालनपुर, राधनपुर, खेडा, खभात, छाणी, बडौदा, पादरा, दरापरा, डभोई, सिनोर, भरोच, सूरत एव महाराष्ट्र मे बम्बई व पूना के ज्ञान भण्डार सुप्रसिद्ध हैं।

सौराष्ट्र मे भावनगर, पालीताना, घोघा, लीवडी, वढवाण, जामनगर, मागरौल आदि स्थानो मे ज्ञान भण्डार है। कच्छ मे कोडाय और माण्डवी का ज्ञान भण्डार विख्यात है। राजस्थान मे जैसलमेर, बीकानेर, वाडमेर, वालोतरा, जोधपुर, नागौर, जयपुर, पीपाड, पाली, लोहावट, फलौदी, उदयपुर गढसिवाना, आहोर, जालोर, मुडारा, चूरू, सरदारशहर, फतेहपुर, किशनगढ, कोटा, झुझूनू आदि स्थानो मे नए-पुराने ग्रन्थ सग्रह ज्ञान भण्डार है। अकेले वीकानेर से हजारो प्रतिया वाहर चले जाने व कई तो समूचे ज्ञान भण्डार नष्ट हो जाने पर भी आज वहा लाखो की सख्या मे हस्तलिखित प्रतिया विद्यमान है। राजकीय अनूप सस्कृत लायब्रेरी मे हजारो जैन ग्रन्थ है। पजाब मे अवाला, होशियारपुर, जडियाला, आदि मे ज्ञान भण्डार है तथा कतिपय ज्ञान भण्डार दिल्ली, रूपनगर मे आ गए है। आगरा, वाराणसी आदि उत्तर प्रदेश के स्थानो के अच्छे ज्ञान भण्डार है। उज्जैन, इन्दोर, शिवपुरी आदि मध्य प्रदेश मे भी कई ज्ञान भण्डार है। कलकत्ता, अजीमगज आदि वगाल देश के ज्ञान भण्डारो का अपना अनोखा महत्व है। आगमो को प्रारम्भिक मुद्रण युग मे सुव्यवस्थित और प्रचुर परिमाण मे प्रकाशित करने का श्रेय यहा के राय धनपतसिह दूगड को है। श्री पूरणचन्द जी नाहर की 'गुलावकुमारी लायब्रेरी' सारे देश मे प्रसिद्ध है। ताडपत्रीय प्राचीन ग्रन्थ सग्रह के लिए जिस प्रकार जैसलमेर, पाटण और खभात प्रसिद्ध है, उसी प्रकार कागज पर लिखे ग्रन्थ वीकानेर और अहमदावाद मे सर्वाधिक है। दिगम्वर समाज के ताडपत्रीय ग्रन्थो मे मूडविद्री विख्यात है तथा आरा का जैन सिद्धान्त भवन, अजमेर व नागौर के भट्टारकजी का भण्डार तथा जयपुर आदि स्थानो के दिगम्वर जैन ग्रन्थ भण्डार वडे ही महत्वपूर्ण है।

ज्ञान भण्डारो की व्यवस्था

प्राचीनकाल मे ज्ञान भण्डार विल्कुल वन्द कमरो मे रखे जाते थे। जैसलमेर का सुप्रसिद्ध श्री जिनभद्रसूरि ज्ञान भण्डार तो किले पर स्थित सभवनाथ जिनालय के नीचे तलघर मे सुरक्षित कोठरी मे था। जिसमे प्रवेश पाने के लिए अन्तर्गत कोठरी के छोटे मे दरवाजे मे से निकलना पडता था। अव भी है तो वही, पर आगे से कुछ सुधार हो गया है। आगे ग्रन्थो को पत्थर की पेटियो मे रखते थे जहा सर्दी व जीव जन्तुओ की विल्कुल सभावना नही थी। ताडपत्रीय ग्रन्थो को लकडी की पट्टिकाओ के वीच खादी के वीठागणो मे कस कर रखा जाता था। आजकल आधुनिक स्टील की अलमारियो मे अपने माप के अल्युमिनियम के डव्वो मे ताडपत्रीय ग्रन्थो को सुरक्षित रखा गया है और उनकी विवरणात्मक सूची भी प्रकाश मे आ गई है। प्राचीनकाल मे केवल ग्रन्थ के नाम मात्र और पत्र सख्यात्मक सूची रहती थी। कही-कही ग्रन्थकर्ता का नाम भी अपवाद रूप मे लिखा रहता था। एक ही बण्डल या डावडे मे कागज पर लिखे अनेक ग्रन्थ रखे जाते और उन्हे क्वचित् सूत के डोरे मे लपेट कर दूसरे ग्रन्थ के साथ पन्नो के सेलभेल होने से वचाया जाता था। कागज की कमी से आजकल की भाति पूरा कागज लपेटना महर्घ्य पडने से कही-कही कागज की चीपो मे ग्रन्थो को लपेट कर, चिपका कर रखे जाते थे। यही कारण है कि समुचित सार सभाल के अभाव मे ग्रन्थो के खुले पन्ने अस्तव्यस्त होकर अपूर्ण हो जाते थे। विछुडे पन्नो को मिलाना और ग्रन्थो को पूर्ण करना एक वहुत ही दुष्कर कार्य है।

ताडपत्रीय ग्रन्थो को उसी माप के काष्ठफलको के वीच कस कर वाधा जाता था। कतिपय काष्ठफलक विविध चित्र समृद्धि युक्त पाए जाते है। शिखरवद्ध जिनालय, तीर्थंकर प्रतिमा चित्र, उपाश्रय मे जैनाचार्यो की व्याख्यान सभा, चतुर्दश महास्वप्न, अष्टमगलीक, वेल वूटे, राजा और प्रधानादि राज्याधिकारी, श्रावक-श्राविकाए, वादि देवसूरि और दि कुमुद-चन्द्र के शास्त्रार्थ आदि के चित्राकन पाए जाते है।

कागज के ग्रन्थ जिन डावडे-डिव्वो मे रखे जाते थे वे भी लकडी या कूटे के बने हुए होते थे। जिन पर विविध प्रकार के चित्र वना कर वार्निश कर दिया जाता था। उन डव्वो

पर नम्बर लगाने की पद्धति भी तीर्थंकर नाम, गणधर, अष्ट मगलीक आदि के अभिधान सकेत मय हुआ करते थे। हस्तलिखित कागज के ग्रन्थ पूठा, पटडी, पाटिया आदि के बीच रखे जाते थे। पूठो को विविध प्रकार से मखमल, कारचोवी, हाथीदात, काच व कसीदे के काम से अलकृत किया जाता था। कई पूठे चादी, सोने व चन्दनादि के निर्मित पाए जाते हैं, जिन पर अष्ट मगलीक, चतुदर्श महास्वप्नादि की मनोज्ञ, कलाकृतिया बनी हुई है। कूटे के पुठो पर समवशरण, नेमिनाथ बरात, दशार्णभद्र, इलापुत्र की नटविद्या आदि विपय विविध कथा-वस्तुओ से सम्वन्धित चित्रालकृति पाई जाती है। कलमदान लकडी के अतिरिक्त कूटे के भी मजबूत हल्के और शताब्दियो तक न बिगडने वाले बनाए जाते थे। हमारे मग्रह मे एक कलमदान पर कृष्णलीला के विविध चित्र विद्यमान हैं। जैसलमेर की चित्र समृद्धि मे हसपक्ति, बगपक्ति, गजपक्ति और जिराफ जैसे जीव जन्तुओ के चित्र भी देखे गए है।

जैन ज्ञान भण्डारो की व्यवस्था सर्वत्र सघ के हस्तगत रहती आई है तथा उनकी चाविया मनोनीत ट्रस्टियो के हाथ मे होते हुए भी श्रमण वर्ग और यतिजनो के कुशल सरक्षण मे रहने से ये सरक्षित रहे है। अयोग्य उत्तराधिकारियो के हाथ मे आने से अनेक ज्ञान भण्डार रद्दी के भाव विक कर नप्ट हो गए।

पुस्तको को रखने के लिए जहा चन्दन और हाथीदात से निर्मित कलापूर्ण डिब्बे आदि होते थे वहा छोटे-मोटे स्थानो मे मिट्टी के माटे, बैंत के पिटारे व लकडी की पेटिया व दीवालो मे वने आलो मे भी रखे जाते थे। इन ग्रन्थो को दीमक, चूहो व ठडक से बचाने के लिए यथासभव उपाय किए जाते थे। साप की कुचली, घोडावज आदि औषधी की पोटली आदि रखी जाती तथा वर्षाती हवा से बचाने के लिए चौमासे मे यथासभव ज्ञान भण्डार कम ही खोले जाते थे। ग्रन्थो की प्रशस्ति मे लिखे श्लोको मे जल, तैल, शिथिल बन्धन और अयोग्य व्यक्ति के हाथ से वचाने की हिदायत सतत दी जाती रही है।

ग्रन्थ रचना के अनन्तर ग्रन्थकार स्वय या अपने शिष्य वर्ग से अथवा विशुद्धाक्षर लेखी लहियो से ग्रन्थ लिखवाते थे और विद्वानो के द्वारा उनका सशोधन करा लिया जाता था। लहिया-लेखको को 32 अक्षर के अनुष्टुप छद की अक्षर गणना के हिसाब से लेखन शुल्क चुकाया जाता था। ग्रन्थ लिखवाने वालो के वश की विस्तृत प्रशस्तिया लिखी जाती और ज्ञान भण्डारो के सरक्षण की ओर सविशेष उपदेश दिया जाता था। ज्ञान पचमी पर्व और उनके उद्यापनादि के पीछे ज्ञानोपकरण वृद्धि और ज्ञान प्रचार की भावना विशेष कार्यकारी हुई। ज्ञान की आशातना टालने के लिए जैन सघ सविशेष जागरूक रहा है और यही कारण है कि जैन समाज के पास अन्य भारतीय प्रजा की अपेक्षा सरस्वती भण्डार का सम्बन्ध सर्वाधिक रहा है।

जैन समाज शास्त्रो को अत्यधिक सम्मान की दृष्टि से देखता है। ज्ञान का बहुमान, ज्ञानभक्ति आदि की विशद उपादेयता नित्यप्रति के व्यवहार मे परिलक्षित होती है। कल्पसूत्रादि आगमो की पर्युषण मे गजारूढ शोभायात्रा निकाली जाती है, ज्ञानभक्ति, जागरणादि किए जाते हैं। भगवती सूत्रादि आगम पाठ के समय धूप-दीप तथा शोभायात्रा आदि जैनो के ज्ञान-बहुमान के ही प्रतीक है। ज्ञान पूजा विधिवत् की जाती है और ज्ञान द्रव्य के सरक्षण-सवर्धन का विशेष ध्यान रखा जाता है। पुस्तको को धरती पर न रख कर उच्चासन पर रख कर पढा जाता है। उसे सापडा-सापडी पर रखते हैं, जिसे रील भी कहते है। सापडा शब्द सम्पुट या सम्पुटिका सस्कृत से बना है। साधु-श्रावक के अतिचार मे ज्ञानोपकरण के पैर, थूक आदि लगने पर प्रायश्चित वताया हैं। इसलिए बैठने के आसन पर भी ग्रन्थो को नही रखा जाता।

कवली

ग्रन्थ के पत्रो को अध्ययन के हेतु कवली-कपलिका मे लपेट कर रखा जाता था, जिससे पत्रो के उडने का भय नही रहता। यह कवली बास की चीप आदि को गूथ कर ऊपर वस्त्रादि से मढी रहती थी। बारहवी शताब्दी मे युगप्रधान श्री जिनदत्तसूरि जी की जीवनी मे कवली-कपलिका का प्रयोग होना पाया जाता है।

काबी

बास, काष्ठ या हाथीदात की चीजो की होती थी। उसी कम्बिकावली शब्द से काबी शब्द बना प्रतीत होता है। चातुर्मास की वर्षाती हवा लग कर पत्रो को चिपक जाने से बचाने मे कांबी का प्रयोग उपयोगी था।

जैन समाज ज्ञान के उपकरण दवात, कलम, पाटी, पाठा, डोरा, कवली, सापडा-सापडी काबी, बन्धन, बीटागणा-वेष्टन, दाबडा, करण्डिया आदि को महर्घ्य द्रव्य मे निर्मित और कला-पूर्ण निर्मित कर काम मे लाया है। ग्रन्थो को जैसे ठण्ड से बचाते थे वैसे धूप से भी बचाया जाता था। स्याही मे गोद की अधिकता हो जाने से ग्रन्थ के पन्ने परस्पर चिपक कर थेपडे हो जाते है जिन्हें खोलने के लिए प्रमाणोपेत साधारण ठडक पहुचा कर ठण्डे स्थान मे रख कर धीरे-धीरे खोला जाता है और अक्षरादि नष्ट हो जाने से भरसक बचाने का प्रयत्न किया जाता है। ग्रन्थ और ग्रन्थ भण्डार से सम्बन्धित व्यक्ति को इन बातो का अनुभव होना अनिवार्य है।

ग्रन्थो की रक्षा के लिए प्रशस्ति मे लिपिकर्ता निम्नोक्त श्लोक लिखा करते थे —

जलाद्रक्षेत् स्थलाद् रक्षेत् रक्षेत् शिथिलबन्धनात्।
मूर्खहस्ते न दातव्या, एव वदति पुस्तिका ॥1॥
अग्ने रक्षेत् जलाद् रक्षेत् मूषकेभ्यो विशेषत।
कष्टेन लिखित शास्त्र, यत्नेन प्रतिपालयेत् ॥2॥
उदकानिलचौरेभ्य, मूषकेभ्यो हुताशनात्।
कष्टेन लिखित शास्त्र, यत्नेन प्रतिपालयेत् ॥3॥ इत्यादि।

ज्ञान पचमी पर्व

ज्ञान की रक्षा और सेवा के लिए ज्ञान पचमी पर्व का प्रचलन हुआ और इसके माध्यम से ज्ञानोपकरणो का प्रचुरता से निर्माण होकर ज्ञान भण्डारो की अभिवृद्धि की गई। ज्ञान पचमी पर्वाराधन के बहाने ज्ञान की पूरी सार सभाल होने लगी। उद्यापनादि मे आए हुए मूल्यवान चन्द्रवे, पुठिये, झिलमिल, वेष्टन आदि विविध वस्तुओ को आकर्षक और समृद्धिपूर्ण ढग मे सजाये जाने लगे। ज्ञान की वास्तविक सार सभाल को भूल कर केवल बाह्य सजावट मे रचे-पचे समाज को देख कर एक बार महात्मा गाधी जैसे सात्विक वृत्ति वाले महापुरुष को कहना पडा कि "यदि चोरी का पाप न लगता हो तो मै इस ज्ञान उपादानो को जैन समाज से छीन लू क्योकि वे केवल सजाना जानते है, ज्ञानोपासना नही"। अस्तु।

पारिभाषिक शब्द

प्रस्तुत निबन्ध मे अनेक जैन पारिभाषिक शब्दो, उपकरणो आदि का परिचय कराया गया है फिर भी कुछ पारिभाषिक शब्दो का परिचय यहा उपयोगी समझकर कराया जाता है।

1 हस्तलिखित पुस्तक को प्रति कहते हैं जो प्रतिकृति का सक्षिप्त रूप प्रतीत होता है।

2 हस्तलिखित प्रति के उभयपक्ष मे छोडे हुए मार्जिन को हासिया कहते है और ऊपर नीचे छोडे हुए खाली स्थान को जिव्हा या जिभ्भा-जीभ कहते है।

3 हासिये के ऊपरिभाग मे ग्रन्थ का नाम, पत्राक, अध्ययन, सर्ग, उच्छ्वास आदि लिखे जाते हैं जिसे हुण्डी कहते हैं।

4 ग्रन्थ की विषयानुक्रमणिका को बीजक नाम से सम्बोधित किया जाता है।

5 पुस्तको के लिखित अक्षरो की गणना करके उसे ग्रन्थाग्र तथा अत मे समस्त अध्यायादि के श्लोको को मिलाकर सर्व ग्रथ या सर्व ग्रन्थाग्र सख्या लिखा जाता है।

6 मूल जैनागमो पर रची हुई गाथाबद्ध टीकाओ को नियुक्ति कहते है।

7 मूल आगम और नियुक्ति पर रची हुई विस्तृत गाथाबद्ध व्याख्या को भाष्य या महाभाष्य कहते है। भाष्य और महाभाष्य सीधे मूलसूत्र पर भी हो सकते है, यो नियुक्ति, भाष्य और महाभाष्य ये सब गाथाबद्ध टीका ग्रन्थ होते है।

8 मूल सूत्र, नियुक्ति, भाष्य और महाभाष्य पर प्राकृत-सस्कृत मिश्रित गद्यबद्ध टीका को चूर्णि और विशेष चूर्णि नाम से पहिचाना जाता है।

9 जैनागमादि ग्रन्थो पर जो छोटी-मोटी सस्कृत व्याख्या होती है उसे वृत्ति, टीका, व्याख्या, वार्तिक, टिप्पणक, अवचूरि, अवचूर्णि, विषम पद व्याख्या, विषम पद पर्याय आदि विविध नामो से सबोधित किया जाता है।

10 जैनागमादि पर गुजराती, मारवाडी, हिन्दी आदि भाषाओ मे जो अनुवाद किया जाता है, उसे स्तवक टबा या टबार्थ कहते है। विस्तृत विवेचन बालावबोध कहलाता है।

11 मूल जैनागमो की गाथाबद्ध विषयानुक्रमणिका व विषय वर्णानत्मक गाथाबद्ध प्रकरण को एव कितनी ही बार प्राकृत-सस्कृत मिश्रित सक्षिप्त व्याख्या को भी सग्रहणी नाम दिया जाता है।

इस निबन्ध मे श्वेताम्बर ज्ञान भण्डारो के अनुभव के आधार पर प्राप्त सामग्री पर प्रकाश डाला गया है। दिगम्बर समाज के ज्ञान भण्डार व लेखन सामग्री पर अध्ययन अपेक्षित है। श्वेताम्बर समाज मे विशेषकर मन्दिर आम्नाय के साहित्य पर विशेष परिशीलन हुआ है। आगमप्रभाकर परम पूज्य मुनिराज श्री पुण्यविजय जी महाराज की "भारतीय जैन श्रमण सस्कृति अने लेखनकला" निबन्ध पर आधारित यह सक्षिप्त अभिव्यक्ति है।

परिशिष्ट २

[1] ग्रन्थ-नामानुक्रमणी

ग्रन्थनाम पृष्ठांक

ग्रन्थनाम पृष्ठांक

ग्रन्थनाम	पृष्ठांक

ग्रन्थनाम	पृष्ठांक

थ

द

ग्रन्थनाम पृष्ठांक

ध

ग्रन्थनाम पृष्ठांक

न

श

ग्रन्थनाम पृष्ठाक

ग्रन्थनाम पृष्ठाक

ग्रन्थनाम	पृष्ठाक

ग्रन्थनाम	पृष्ठाक

ह

[2] विशिष्ट व्यक्ति एवं ग्रन्थकार नामानुक्रमणी

नाम	पृष्ठांक	नाम	पृष्ठांक

नाम — पृष्ठांक

नाम	पृष्ठांक

य

र

(३) ग्राम-नगर-नामानुक्रमणी

प्राकृत-भारती पुष्प 2

राजस्थान का जैन साहित्य

सम्पादक–मण्डल

अगरचन्द नाहटा — डॉ. कस्तूरचन्द कासलीवाल

डॉ. नरेन्द्र भानावत — डॉ. मूलचन्द सेठिया

महोपाध्याय विनयसागर

❋

प्राकृत भारती, जयपुर

प्रकाशक

देवेन्द्रराज मेहता

सचिव, प्राकृत-भारती

जयपुर

❀

मूल्य 30.00 रुपये

❀

वीर नि. सं. 2503

विक्रम सं. 2034

ईसवी 1977

शकाब्द 1899

❀

मुद्रक।

राज्य केन्द्रीय मुद्रणालय,

जयपुर।

आमुख

जैन धर्म का दर्शन, न्याय तथा संस्कृति---ये भारतीय परम्परा के बड़े समृद्ध और प्राचीनतम तत्व हैं। इस स्थिति का प्रमाण जैन साहित्य है जो प्राकृत, संस्कृत, राजस्थानी एवं कई स्थानीय भाषाओं में मिलता है। ये साहित्य आगम, पुराण, कथा, चरित्र, काव्य, निबन्ध आदि के रूप में उपलब्ध है। कुछ साहित्य ऐसा है जो कविताओं, कथाओं तथा गीतों के द्वारा जैन धर्म के गूढ़ सिद्धान्तों को समाजोद्धार और राष्ट्रोत्थान के स्वर को मुखरित करने में सहयोगी सिद्ध हुआ है। परन्तु इस वैज्ञानिक युग में इस साहित्य का अधिकांश भाग या तो अप्रकाशित है या अप्राप्य है। अतएव जैन धर्म और संस्कृति के संबंध में लेखन एवं अध्ययन का कार्य अनुसंधानकों के लिये एक कठिनाई का कारण बना हुआ है। कई जैन भण्डार ऐसे हैं जिनमें निहित विद्या-निधि के दर्शन का लाभ भी सुलभ नहीं है।

प्रस्तुत ग्रन्थ में गणमान्य विद्वानों के लेखों ने जैन साहित्य को प्रकाश में लाने का सफल प्रयत्न किया है। इन लेखों में प्राचीन लेखकों, साधकों और ग्रन्थों की समीक्षा देकर जिज्ञासुओं की ज्ञान-पिपासा को किसी सीमा तक बुझाने में सफलता प्राप्त की है। अनुसंधानकर्त्ताओं के लिए भी यह ग्रन्थ पथ-प्रदर्शक का काम करेगा, ऐसी मेरी मान्यता है। इसमें दिये गये साहित्य और साहित्यकारों का परिचय महत्वशाली जैन साहित्य की अपार राशि का सर्वांगीण विश्लेषण तो नहीं करता परन्तु खोज की दृष्टि से समुचित उद्‌बोधन अवश्य करता है। मैं प्राकृत भारती एवं संचालक मंडल को बधाई देता हू कि इस प्रकाशन के कार्य का शुभारंभ कर उसने जैन साहित्य की प्रशंसनीय सेवा की है।

गोपीनाथ शर्मा,
निदेशक,
राजस्थान अध्ययन केन्द्र,
राजस्थान विश्व विद्यालय, जयपुर।

प्रकाशकीय

'प्राकृत-भारती' के द्वितीय पुष्प के रूप में 'राजस्थान का जैन साहित्य' नामक शोध-निबन्धो का सग्रह पाठको के कर-कमलो मे अर्पित करते हुए मुझे हार्दिक प्रसन्नता हो रही है।

श्रमण भगवान् महावीर की 2500वी निर्वाण शताब्दी के शुभ अवसर पर राजस्थान सरकार ने राज्य स्तर पर शताब्दी समारोह समिति की स्थापना की थी। समिति ने साहित्यिक योजना के अन्तर्गत तीन पुस्तको के प्रकाशन का निर्णय लिया था—1. कल्पसूत्र (सचित्र), 2 राजस्थान का जैन साहित्य, और 3. राजस्थान की जैन कला और स्थापत्य।

भगवान् महावीर का दर्शन और लोक-कल्याणमयी सार्वजनीन विचारधारा से सम्बन्धित साहित्य का प्रचार-प्रसार सर्वदा प्रवर्धमान रूप से होता रहे, इस दृष्टि-बिन्दु को ध्यान में रखकर, शताब्दी समारोह के पश्चात् 'प्राकृत-भारती' की स्थापना की गई और उक्त ग्रन्थो के कार्य को पूर्ण करने का भार 'प्राकृत-भारती' को सौंप दिया गया।

राजस्थान प्रदेश के निवासियो एव इस प्रदेश मे विचरण करने वाले मूर्धन्य विद्वानों-श्रमणो ने शताब्दियो से धर्म एव धर्मेतर सभी विषयो तथा समग्र विधाओ पर मौलिक एव व्याख्यात्मक साहित्य-सर्जन कर सरस्वती की अभूतपूर्व सेवा की है। इन मनीषियो ने केवल देववाणी-संस्कृत को ही माध्यम नही बनाया, अपितु सस्कृत के साथ-साथ तत्कालीन जन-भाषाओ प्राकृत, अपभ्रंश, राजस्थानी और हिन्दी भाषा मे भी रचनाए की और इन भाषाओ को सक्षम बनाने में हाथ बटाया।

प्रत्येक साहित्यकार और साहित्य का समीक्षात्मक मूल्याकन अनेक खण्डो मे किया जा सकता है किन्तु वह समय तथा श्रमसाध्य है। इसी कारण विद्वान् लेखको ने प्रस्तुत पुस्तक में राजस्थान के ज्ञात विद्वानो द्वारा रचित तथा प्राप्त समस्त साहित्य का दिग्दर्शन कराने का प्रयत्न किया है।

विज्ञ लेखकगण, विद्वान् सम्पादक मण्डल आदि जिन्होने प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से इस प्रकाशन मे अपना सौहार्दपूर्ण योगदान देकर सस्थान को गौरवान्वित किया है उसके लिये मैं अपनी ओर से एवं सस्थान की ओर से इन सब का हृदय से आभारी हू।

महोपाध्याय विनयसागरजी का इस पुस्तक के सम्पादन एव व्यवस्था का कार्यभार सभालने मे विशेष सहयोग रहा है एतदर्थ वे धन्यवाद के पात्र हैं।

मेरा विश्वास है कि यह पुस्तक साहित्य के क्षेत्र मे शोधार्थियो के लिये न केवल पथ-प्रदर्शक होगी अपितु शोध के क्षेत्र में नये आयाम भी प्रस्तुत करने में समर्थ होगी।

देवेन्द्रराज मेहता,
सचिव,
प्राकृत-भारती, जयपुर।

दिनांक 28-3-1977

सम्पादकीय

भगवान् महावीर के 2500वें परिनिर्वाण वर्ष के उपलक्ष्य मे राज्यस्तर पर गठित राजस्थान राज्य भगवान् महावीर 2500वा निर्वाण महोत्सव समिति की साहित्यिक योजना के अन्तर्गत यह ग्रन्थ प्रकाशित किया जा रहा है। ग्रन्थ छ खण्डो में विभक्त है। प्रथम खण्ड प्राकृत साहित्य से सम्बन्धित है। इसमें चार निबन्ध हैं जो प्राकृत साहित्य की सामान्य प्रवृत्तियो और राजस्थान के प्राकृत साहित्यकारो से सम्बन्धित हैं। द्वितीय खण्ड सस्कृत साहित्य से सम्बन्धित है। इस खण्ड में पाच निबन्ध हैं जो सस्कृत साहित्य के विकास और प्रवृत्तियो, राजस्थान के सस्कृत साहित्यकारो तथा जैन सस्कृत महाकाव्यो से सम्बन्धित हैं। तृतीय खण्ड अपभ्रंश साहित्य से सम्बन्धित है। इसमे चार निबन्ध हैं जो अपभ्रंश साहित्य की सामान्य पृष्ठभूमि, उसके विकास,प्रवृत्तियो और साहित्यकारो से सम्बन्धित हैं। चतुर्थ खण्ड राजस्थानी साहित्य से सम्बन्धित है। इसमें 9 निबन्ध हैं जो राजस्थानी साहित्य की सामान्य पृष्ठभूमि और पद्य तथा गद्य क्षेत्र के साहित्यकारो से सम्बन्धित हैं। पचम खण्ड हिन्दी साहित्य से सम्बन्धित है। इसमे 9 निबन्ध हैं जो हिन्दी जैन साहित्य की सामान्य प्रवृत्तियो और पद्य तथा गद्य की विविध विधाओ पर प्रकाश डालते हैं। षष्ठ खण्ड परिशिष्ट खण्ड है। इस खण्ड मे लोक साहित्य, ग्रन्थभण्डार, शिलालेख और लेखनकला से सम्बन्धित 4 लेख दिये गये हैं। अन्त में अनुक्रमणिका देकर ग्रन्थ को शोधार्थियो के लिए विशेष उपयोगी बनाने का प्रयत्न किया गया है।

इस ग्रन्थ द्वारा राजस्थान मे रचित प्राकृत, सस्कृत, अपभ्रंश, राजस्थानी और हिन्दी भाषा के जैन साहित्य की सामान्य प्रवृत्तियो और उमसे सम्बद्ध रचनाकारो का परिचय देने का विनम्र प्रयास किया गया है। राजस्थान में रचित आधुनिक साहित्य अलग-अलग स्थानो से अलग-अलग व्यक्तियो और सस्थाओ द्वारा प्रकाशित होने से विभिन्न स्थलो पर उपलब्ध है। इस कारण अब तक प्रकाशित समग्र साहित्य का आकलन कर, उसका मूल्याकन करना किसी एक लेखक के लिए शक्य न होने से सभव है कतिपय ग्रन्थो तथा ग्रन्थकारो का नामोल्लेख होने से रह गया हो। इस प्रकाशन द्वारा राजस्थान में प्रवाहित जैन साहित्य की बहुमुखी धारा से पाठको को परिचित कराना हमारा उद्देश्य है। इसका सम्यक् मूल्याकन तो आगे की सीढी है।

ग्रन्थ के प्रस्तुतिकरण में हमारी समन्वयात्मक दृष्टि रही है। राजस्थान में प्रचलित जैन समाज की श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनो परम्पराओ के साहित्य और साहित्यकारो के सम्बन्ध में, परम्परा विशेष से सम्बद्ध अधिकारी विद्वानो से निवेदन कर, निबन्ध जुटाने का प्रयत्न किया गया है। निबन्धो में अभिव्यक्त विचार लेखको के अपने हैं। उसके लिए राज्य समिति या सम्पादक मण्डल उत्तरदायी नही है।

विद्वान् सतो और लेखको ने अत्यन्त व्यस्त रहते हुए भी हमारे निवेदन पर जिस अपनत्व के साथ अपने निबन्ध भिजवाकर सहयोग प्रदान किया उसके लिये कृतज्ञता ज्ञापित करना हम अपना परम कर्तव्य मानते हैं।

राज्यस्तर पर गठित समिति के अध्यक्ष माननीय श्री हरिदेवजी जोशी, मुख्य मन्त्री, राजस्थान सरकार, समिति के उपाध्यक्ष माननीय श्री चन्दनमलजी वैद, वित्त मन्त्री, राजस्थान

सरकार और समिति के सचिव माननीय श्री देवेन्द्रराजजी महता के हम विशेष आभारी हैं जिनके सक्रिय सहयोग और सम्यक् निर्देशन से इस महत्वपूर्ण ग्रन्थ का प्रकाशन सम्भव हो सका।

आशा है, राजस्थान के जैन साहित्य के अध्ययन, समीक्षण और मूल्यांकन की दिशा में यह ग्रन्थ एक आधारभूत ग्रन्थ सिद्ध होगा और इसके माध्यम से समग्र भारतीय साहित्य की आत्मा और सांस्कृतिक चेतना को समझने-परखने में मदद मिलेगी।

—सम्पादक मण्डल के सदस्य

भूमिका

धर्म, साहित्य और सस्कृति

धर्म और साहित्य दोनो सस्कृति के प्रमुख अग है। सस्कृति जन का मस्तिष्क है, धर्म जन का हृदय और धर्म की रसात्मक अनुभूति है साहित्य। जब-जब सस्कृति ने कठोर रूप धारण किया, हिंसा का पथ अपनाया, अपने रूप को भयावह व विकृत बनाने का प्रयत्न किया, तब-तब धर्म ने उसे हृदय का प्यार लुटा कर कोमल बनाया, अहिंसा और करुणा की बरसात कर उसके रक्तानुरजित पथ को स्नेहपूरित और अमृतमय बनाया, सयम, तप और सदाचार से उसके जीवन को सौन्दर्य और शक्ति का वरदान दिया। मनुष्य की मूल समस्या है--आनन्द की खोज। यह आनन्द तब तक नही मिल सकता जब तक कि मनुष्य भय-मुक्त न हो, आतक-मुक्त न हो। इस भय-मुक्ति के लिये दो शर्ते आवश्यक है। प्रथम तो यह कि मनुष्य अपने जीवन को इतना शीलवान, सदाचारी और निर्मल बनाए कि कोई उससे न डरे। द्वितीय यह कि वह अपने में इतना पुरुषार्थ, सामर्थ्य और बल सचित करे कि कोई उसे डरा-धमका न सके। प्रथम शर्त को धर्म पूर्ण करता है और दूसरी को सस्कृति। साहित्य इन्हे सवेदना के स्तर पर कलापूर्ण बनाता है।

जैन धर्म और मानव सस्कृति

जैन मान्यता के अनुसार सभ्यता की प्रारम्भिक अवस्था मे वर्तमान अवसर्पिणी के प्रथम तीनो कालो मे जीवन अत्यन्त सरल एव प्राकृतिक था। तथाकथित कल्पवृक्षो से आवश्यकताओ की पूर्ति हो जाया करती थी। यह अकर्म भूमि, भोग-भूमि का काल था। पर तीसरे काल के अन्तिम पाद में काल चक्र के प्रभाव से इस अवस्था मे परिवर्तन आया और मनुष्य कर्मभूमि की ओर अग्रसर हुआ। उसमें मानव सम्बन्धपरकता का भाव जगा और पारिवारिक व्यवस्था—कुल व्यवस्था-सामने आई। इसके व्यवस्थापक कुलकर या मनु कहलाये जो विकास-क्रम में चौदह हुए। कुलकर व्यवस्था का विकास आगे चलकर समाज सगठन, धर्मसगठन के रूप में हुआ और इसके प्रमुख नेता 24 तीर्थंकर तथा गौण नेता 39 अन्य महापुरुष (12 चक्रवर्ती, 9 बलदेव, 9 वासुदेव, 9 प्रतिवासुदेव) हुए जो सब मिलकर त्रिषष्टि शलाका पुरुष कहे जाते है।

उपर्युक्त पृष्ठभूमि मे यह कहा जा सकता है कि जैन दृष्टि से धर्म केवल वैयक्तिक आचरण ही नही है, वह सामाजिक आवश्यकता और समाज-कल्याण व्यवस्था का महत्त्वपूर्ण घटक भी है। जहा वैयक्तिक आचरण को पवित्र और मनुष्य की आतरिक शक्ति को जागृत करने की दृष्टि से क्षमा, मार्दव, आर्जव, सत्य, सयम, तप, त्याग, ब्रह्मचर्य जैसे मनोभावाधारित धर्मों की व्यवस्था है वहा सामाजिक चेतना को विकसित और सामाजिक सगठन को सुदृढ तथा स्वस्थ बनाने की दृष्टि से ग्राम धर्म, नगर धर्म, राष्ट्र धर्म, कुल धर्म, गण धर्म, सघ धर्म जैसे समाजोन्मुखी धर्मों तथा ग्राम स्थविर, नगर स्थविर, प्रशास्ता स्थविर, कुल स्थविर, गण स्थविर, सघ स्थविर जैसे धर्मनायको की भी व्यवस्था की गई है। इस बिन्दु पर आकर "जन" और "समाज" परस्पर जुडते हैं और धर्म में निवृत्ति-प्रवृत्ति, त्याग-सेवा और ज्ञान-क्रिया का समावेश होता है।

सस्कृति का परिष्कार और भगवान महावीर

अन्तिम तीर्थंकर महावीर तक आते-आते इस सस्कृति में कई परिवर्तन हुए। सस्कृति के विशाल सागर में विभिन्न विचारधाराओ का सगम हुआ। पर महावीर के समय इस

सास्कृतिक सगम का कुत्सित और वीभत्स रूप ही सामने आया। सस्कृति का जो निर्मल और लोक कल्याणकारी रूप था वह अब विकारग्रस्त होकर चन्द व्यक्तियो की ही सम्पत्ति बन गया। धर्म के नाम पर क्रियाकाण्ड का प्रचार बढा। यज्ञ के नाम पर मूक पशुओ की बलि दी जाने लगी। अश्वमेध ही नही नरमेध भी होने लगे। वर्णाश्रम व्यवस्था मे कई विकृतिया आ गई। स्त्री और शूद्र अधम तथा निम्न समझे जाने लगे। उनको आत्म-चिन्तन और सामाजिक-प्रतिष्ठा का कोई अधिकार न रहा। त्यागी-तपस्वी समझे जाने वाले लोग अब लाखो-करोडो की सपत्ति के मालिक बन बैठे। भोग और ऐश्वर्य किलकारिया मारने लगा। एक प्रकार का सास्कृतिक सकट उपस्थित हो गया। इससे मानवता को उबारना आवश्यक था।

वर्द्धमान महावीर ने सवेदनशील व्यक्ति की भाति इस गभीर स्थिति का अनुशीलन और परीक्षण किया। बारह वर्षो की कठोर साधना के बाद वे मानवता को इस सकट से उबारने के लिये अमृत ले आये। उन्होने घोषणा की—'सभी जीव जीना चाहते है, मरना कोई नही चाहता। यज्ञ के नाम पर की गई हिंसा अधर्म है। सच्चा यज्ञ आत्मा को पवित्र बनाने मे है। इसके लिये क्रोध की बलि दीजिये, मान को मारिये, माया को काटिये और लोभ का उन्मूलन कीजिये।' महावीर ने प्राणी-मात्र की रक्षा करने का उद्बोधन दिया। धर्म के इस अहिंसामय रूप ने सस्कृति को अत्यन्त तरल और विस्तृत बना दिया। उसे जनरक्षा (मानव समुदाय) तक सीमित न रखकर समस्त प्राणियो की सुरक्षा का भार भी सभलवा दिया।

जैन धर्म मे जनतात्रिक सामाजिक चेतना के तत्त्व

यद्यपि यह सही है कि धर्म का मूल केन्द्र व्यक्ति होता है क्योकि धर्म आचरण से प्रकट होता है पर उसका प्रभाव समूह या समाज मे प्रतिफलित होता है और इसी परिप्रेक्ष्य मे जनतान्त्रिक सामाजिक चेतना के तत्त्वो को पहचाना जा सकता है। कुछ लोगो की यह धारणा है कि जन-तान्त्रिक सामाजिक चेतना की अवधारणा पश्चिमी जनतत्र—यूनान के प्राचीन नगर राज्य और कालान्तर मे फ्रास की राज्य क्रान्ति की देन है। पर सर्वथा ऐसा मानना ठीक नही। प्राचीन भारतीय राजतन्त्र व्यवस्था मे आधुनिक इगलैण्ड की भाति सीमित व वैधानिक राजतन्त्र से युक्त प्रजातन्त्रात्मक शासन के बीज विद्यमान थे। जन सभाओ और विशिष्ट आध्यात्मिक ऋषियो द्वारा राजतन्त्र सीमित था। स्वय भगवान महावीर लिच्छिवीगण राज्य से सबधित थे। यह अवश्य है कि पश्चिमी जनतन्त्र और भारतीय जनतन्त्र की विकास प्रक्रिया और उद्देश्यो मे अन्तर रहा है, उसे इस प्रकार समझा जा सकता है —

1 पश्चिम मे स्थानीय शासन की उत्पत्ति केन्द्रीय शक्ति से हुई है जबकि भारत मे इसकी उत्पत्ति जन-समुदाय की शक्ति से हुई है।

2 पाश्चात्य जनतान्त्रिक राज्य पूजीवाद, उपनिवेशवाद और साम्राज्यवाद के बल पर फले-फूले है। वे अपनी स्वतन्त्रता के लिये तो सघर्ष करते है पर दूसरे देशो को राजनैतिक दासता का शिकार बना कर उन्हे स्वशासन के अधिकार से वचित रखने की साजिश करते है। पर भारतीय जनतन्त्र का रास्ता इससे भिन्न है। उसने आर्थिक शोषण और राजनैतिक प्रभुत्व के उद्देश्यो से कभी बाहरी देशो पर आक्रमण नही किया। उसकी नीति शान्तिपूर्ण सह-अस्तित्व और अन्तरराष्ट्रीय सहयोग की रही है।

3 पश्चिमी देशो ने पूजीवादी और साम्यवादी दोनो प्रकार के जनतन्त्रो को स्थापित करने मे रक्तपात, हत्याकाण्ड और हिंसक क्रान्ति का सहारा लिया है पर भारतीय जनतन्त्र का विकास लोक-शक्ति और सामूहिक चेतना का फल है। अहिंसक प्रतिरोध और सत्याग्रह उसके मूल आधार रहे है।

मक्षेप मे कहा जा सकता है कि भारतीय समाज-व्यवस्था मे जनतन्त्र केवल राजनैतिक सदर्भ ही नही है। यह एक व्यापक जीवन पद्धति है, एक मानसिक दृष्टिकोण है जिसका सबध जीवन के धार्मिक, नैतिक, आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक सभी पक्षो से है। इस धरातल पर जब हम चिन्तन करते हैं तो मुख्यत जैन दर्शन मे और अधिकाशत अन्य भारतीय दर्शनो में भी जनतान्त्रिक सामाजिक चेतना के निम्न लिखित मुख्य तत्त्व रेखाकित किये जा सकते है —

1 स्वतन्त्रता

2 ममानता

3 लोककल्याण

4 सार्वजनीनता

1 स्वतन्त्रता —स्वतन्त्रता जनतन्त्र की आत्मा है और जैन दर्शन की मूल भित्ति भी। जैन मान्यता के अनुसार जीव अथवा आत्मा स्वतन्त्र अस्तित्व वाला द्रव्य है। अपने अस्तित्व के लिये न तो यह किसी दूसरे द्रव्य पर आश्रित है और न इस पर आश्रित कोई अन्य द्रव्य है। इम दृष्टि से जीव को प्रभु कहा गया है —जिसका अभिप्राय यह है कि जीव स्वय ही अपने उत्थान या पतन का उत्तरदायी है। सद्प्रवृत्त आत्मा ही उमका मित्र है और दुष्प्रवृत्त आत्मा ही उसका शत्रु है। स्वाधीनता और पराधीनता उसके कर्मों के अधीन है। वह अपनी साधना के द्वारा घाति-अघाति सभी प्रकार के कर्मों को नष्ट कर पूर्ण मुक्ति प्राप्त कर सकता है। स्वय परमात्मा वन सकता है। जैन दर्शन मे यही जीव का लक्ष्य माना गया है। यहा स्वतन्त्रता के स्थान पर मुक्ति शब्द का प्रयोग हुआ है। इम मुक्ति प्राप्ति मे जीव की साधना और उसका पुरुषार्थ ही मुख्य साधन है। मुक्ति-प्राप्ति के लिये स्वय के आत्म को ही पुरुपार्थ मे लगाना होगा। इस प्रकार जीव मात्र की गरिमा, महत्ता और इच्छा शक्ति को जैन दर्शन में महत्त्वपूर्ण स्थान दिया गया है। इसीलिये यहा मुक्त जीव अर्थात् परमात्मा की गुणात्मक एकता के साथ-साथ मात्रात्मक अनेकता है। क्योकि प्रत्येक जीव ईश्वर के सान्निध्य-सामीप्य-लाभ ही प्राप्त करने का अधिकारी नही है, वल्कि स्वय परमात्मा वनने के लिये क्षमतावान है। फलत जैन दृष्टि मे आत्मा ही परमात्मदशा प्राप्त करती है, पर कोई परमात्मा आत्मदशा प्राप्त कर पुन अवतरित नही होता। इस प्रकार व्यक्ति के अस्तित्व के धरातल पर जीव को ईश्वराधीनता और कर्माधीनता दोनो से मुक्ति दिलाकर उमकी पूर्ण स्वतन्त्रता की रक्षा की गयी है।

कुछ लोगो का कहना है कि महावीर द्वारा प्रतिपादित कर्म सिद्धान्त स्वतन्त्रता का पूरी तौर से अनुभव नही कराता। क्योकि वह एक प्रकार से आत्मा को कर्माधीन बना देता है। पर सच वात तो यह है कि महावीर की कर्माधीनता भाग्य द्वारा नियन्त्रित न होकर पुरुषार्थ द्वारा सचालित है। महावीर स्पष्ट कहते हैं—'हे आत्मन्! तू स्वय ही अपना निग्रह कर। ऐसा करने से तू दुखो से मुक्त हो जायेगा।' यह सही है कि आत्मा अपने कृत कर्मों को भोगने के लिये बाध्य है पर वह इतनी बाध्य नही कि वह उसमे परिवर्तन न ला सके। महावीर की दृष्टि मे आत्मा को कर्मबन्ध में जितनी स्वतन्त्रता है, उतनी ही स्वतन्त्रता उसे कर्मफल के भोगने की भी है। आत्मा अपने पुरुषार्थ के वल पर कर्मफल मे परिवर्तन ला सकती है। इस सवध मे भगवान् महावीर के कर्म-परिवर्तन के निम्नलिखित चार सिद्धान्त विशेष महत्त्वपूर्ण है —

(1) उदीरणा—नियत अवधि में पहले कर्म का उदय मे आना।

(2) उद्वर्तन—कर्म की अवधि और फल देने की शक्ति में अभिवृद्धि होना।

(3) अपवर्तन—कर्म की अवधि और फल देने की शक्ति में कमी होना।

(4) सक्रमण—एक कर्म प्रकृति का दूसरी कर्म प्रकृति मे सक्रमण होना।

उक्त सिद्धान्त के आधार पर भगवान् महावीर ने प्रतिपादित किया कि मनुष्य अपने पुरुषार्थ के बल से बन्धे हुए कर्मों की अवधि को घटा-बढा सकता है और कर्मफल की शक्ति मन्द अथवा तीव्र कर सकता है। इस प्रकार नियत अवधि से पहले कर्म भोगा जा सकता है और तीव्र फल वाला कर्म मन्द फल वाले कर्म के रूप मे, मन्द फल वाला कर्म तीव्र फल वाले कर्म के रूप मे बदला जा सकता है। यही नही, पुण्य कर्म के परमाणु को पाप के रूप मे और पाप कर्म के परमाणु को पुण्य के रूप में सक्रान्त करने की क्षमता भी मनुष्य के स्वय के पुरुषार्थ मे है। निष्कर्ष यह कि महावीर मनुष्य को इस बात की स्वतन्त्रता देते है कि यदि वह जागरुक है, अपने पुरुपार्थ के प्रति सच्चा है और विवेक पूर्वक अप्रमत्त भाव से अपने कार्य सम्पादित करता है, तो वह कर्म की अधीनता से मुक्त हो सकता है, परमात्म दशा (पूर्ण स्वतन्त्रता) को प्राप्त कर सकता है।

जैन दर्शन की यह स्वतन्त्रता निरकुश एकाधिकारवादिता की उपज नही है। इसमें दूसरो के अस्तित्व की स्वतन्त्रता की भी पूर्ण रक्षा है। इसी बिन्दु से अहिंसा का सिद्धान्त उभरता है जिसमे जन के प्रति ही नही, प्राणी मात्र के प्रति मित्रता और बन्धुत्व का भाव है। यहा जन अर्थात् मनुष्य ही प्राणी नही है और मात्र उसकी हत्या ही हिंसा नही है। जैन शास्त्रो मे प्राण अर्थात् जीवन शक्ति के दस भेद बताये गये है—सुनने की शक्ति, देखने की शक्ति, सूघने की शक्ति, स्वाद लेने की शक्ति, छूने की शक्ति, विचारने की शक्ति, बोलने की शक्ति, गमनागमन की शक्ति, श्वास लेने-छोडने की शक्ति और जीवित रहने की शक्ति। इनमे से प्रमत्त योग द्वारा किसी भी प्राण को क्षति पहुचाना, उस पर प्रतिबन्ध लगाना, उसकी स्वतन्त्रता में बाधा पहुचाना, हिंसा है। जब हम किसी के स्वतन्त्र चितन को बाधित करते हैं, उसके बोलने पर प्रतिबन्ध लगाते है और गमनागमन पर रोक लगाते हैं तो प्रकारान्तर से क्रमश उसके मन, वचन और काया रूप प्राण की हिंसा करते हैं। इसी प्रकार किसी के देखने, सुनने, सूघने, चखने, छूने आदि पर प्रतिबध लगाना भी विभिन्न प्राणो की हिंसा है। यह कहने की आवश्यकता नही कि स्वतन्त्रता का यह सूक्ष्म, उदात्त चिंतन ही हमारे सविधान के स्वतन्त्रता सबधी मौलिक अधिकारो का उत्स रहा है।

विचार-जगत मे स्वतन्त्रता का बडा महत्त्व है। आत्मनिर्णय और मताधिकार इसी के परिणाम हैं। कई साम्यवादी देशो मे सामाजिक और आर्थिक स्वतन्त्रता होते हुए भी इच्छा स्वातन्त्र्य का यह अधिकार नही है। पर जैन दर्शन मे और हमारे सविधान में भी विचार स्वातन्त्र्य को सर्वोपरि महत्त्व दिया गया है।

जैन दर्शन की मान्यता के अनुसार जगत मे जड और चेतन दो पदार्थ हैं। सृष्टि का विकास इन्ही पर आधारित है। जीव का लक्षण चैतन्यमय कहा गया है। जीव अनन्त हैं और उनमे आत्मगत समानता होते हुए भी सस्कार, कर्म और बाह्य परिस्थिति आदि अनेक कारणो से उनके शारीरिक एव मानसिक विकास में बहुत ही अन्तर आ जाता है। इसी कारण सब की पृथक् सत्ता है और सब अपने कर्मानुसार फल भोगते हैं। अनन्त जीवो का पृथक्-पृथक् अस्तित्व होने तथा कर्मो की विविध वर्गणाओ के कारण उनके विचारो में विभिन्नता होना स्वाभाविक है। अलग-अलग जीवो की बात छोडिये, एक ही मनुष्य में द्रव्य, क्षेत्र, काल और भाव के अनुसार अलग-अलग विचार उत्पन्न होते रहते हैं। अत दार्शनिको के समक्ष सदैव यह एक जटिल प्रश्न बना रहा कि इस विचारगत विषमता मे समता कैसे स्थापित की जाये?

जैन तीर्थंकरो ने और विशेषत भगवान् महावीर ने इस प्रश्न पर बहुत ही गभीरतापूर्वक चिन्तन किया और निष्कर्ष रूप मे कहा—प्रत्येक वस्तु अनन्त धर्मात्मक है। वह उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य युक्त है। द्रव्य मे उत्पाद और व्यय से होने वाली अवस्थाओ को पर्याय कहा गया है। गुण कभी नष्ट नही होते और न अपने स्वभाव को बदलते है किन्तु पर्यायो के द्वारा अवस्था से अवस्थान्तर होते हुए सदैव स्थिर बने रहते है। जैसे स्वर्ण द्रव्य है। किसी ने उसके कडे बनवा लिये और फिर उस कडे से कगण बनवा लिए तो यह पर्यायो का बदलना कहा जायेगा पर जो स्वर्णत्व गुण है वह हर अवस्था मे स्थायी रूप से विद्यमान रहता है। ऐसी स्थिति मे किसी वस्तु की एक अवस्था को देखकर उसे ही सत्य मान लेना और उस पर अडे रहना हठवादिता या दुराग्रह है। एकान्त दृष्टि से किसी वस्तु विशेष का समग्र ज्ञान नही किया जा सकता। सापेक्ष दृष्टि से, अपेक्षा विशेष से देखने पर ही उसका सही व सपूर्ण ज्ञान प्राप्त किया जा सकता है। इस दृष्टिकोण के आधार पर भगवान् महावीर ने जीव, अजीव, लोक-द्रव्य आदि की नित्यता-अनित्यता, द्वैत-अद्वैत, अस्तित्व-नास्तित्व जैसी विकट दार्शनिक पहेलियो को सरलता पूर्वक सुलझाया और समन्वयवाद की आधारभित्ति के रूप मे कथन की स्याद्वाद शैली का प्रतिपादन किया।

जब व्यक्ति मे इस प्रकार की वैचारिक उदारता का जन्म होता है तब वह अह, भय, घृणा, क्रोध, हिंसा आदि भावो से विरत होकर सरलता, प्रेम, मैत्री, अहिंसा और अभय जैसे लोक-हितवाही मागलिक भावो मे रमण करने लगता है। उसे विभिन्नता मे अभिन्नता और अनेकत्व में एकत्त्व के दर्शन होने लगते हैं।

महावीर ने स्पष्ट कहा कि प्रत्येक जीव का स्वतन्त्र अस्तित्व है, इसलिये उसकी स्वतन्त्र विचार-चेतना भी है। अत जैसा तुम सोचते हो एक मात्र वही सत्य नही है। दूसरे जो सोचते हैं उसमें भी सत्याश निहित है। अत पूर्ण सत्य का साक्षात्कार करने के लिये इतर लोगो के सोचे हुये, अनुभव किये हुए सत्याशो को भी महत्त्व दो। उन्हे समझो, परखो और उसके आलोक मे अपने सत्य का परीक्षण करो। इसमे न केवल तुम्हे उस सत्य का साक्षात्कार होगा वरन् अपनी भूलो के प्रति सुधार करने का अवसर भी मिलेगा। प्रकारान्तर से महावीर का यह चिन्तन जनतान्त्रिक शासन-व्यवस्था में स्वस्थ विरोधी पक्ष की आवश्यकता और महत्ता प्रतिपादित करता है तथा इस बात की प्रेरणा देता है कि किसी भी तथ्य को भली प्रकार समझने के लिये अपने को विरोध पक्ष की स्थिति मे रखकर उस पर चिंतन करो। तब जो सत्य निखरेगा वह निर्मल, निर्विकार और निष्पक्ष होगा। महावीर का यह वैचारिक औदार्य और सापेक्ष चिंतन स्वतन्त्रता का रक्षा कवच है। यह दृष्टिकोण अनेकात सिद्धात के रूप मे प्रतिपादित है।

2 समानता —स्वतन्त्रता की अनुभूति वातावरण और अवसर की समानता पर निर्भर है। यदि समाज में जातिगत वैषम्य और आर्थिक असमानता है तो स्वतन्त्रता के प्रदत्त अधिकारो का भी कोई विशेष उपयोग नही। इसलिये महावीर ने स्वतन्त्रता पर जितना बल दिया उतना ही बल समानता पर दिया। उन्हे जो विरक्ति हुई वह केवल जीवन की नश्वरता या सासारिक असारता को देखकर नही, वरन् मनुष्य द्वारा मनुष्य का शोषण देखकर वे तिलमिला उठे और उस शोषण को मिटाने के लिये, जीवन के हर स्तर पर समता स्थापित करने के लिये उन्होने क्राति की, तीर्थ-प्रवर्तन किया। एक ओर, भक्त और भगवान के बीच पनपे धर्म दलालो को अनावश्यक बताकर, भक्त और भगवान के बीच गुणात्मक सबध जोडा। जन्म के स्थान पर कर्म को प्रतिष्ठित कर गरीबो, दलितो और असहायो को उच्च आध्यात्मिक स्थिति प्राप्त करने की कला सिखायी। अपने साधना काल मे कठोर अभिग्रह धारण कर दासी बनी, हथकडी और बेडियो मे जकडी, तीन दिन से भूखी, मुण्डितकेश राजकुमारी चदना से आहार ग्रहण कर, उच्च क्षत्रिय राजकुल की महारानियो के मुकाबले समाज मे निकृष्ट समझी जाने वाली नारी शक्ति की आध्यात्मिक गरिमा और महिमा प्रतिष्ठापित की। जातिवाद

ग्रौर वर्णवाद के खिलाफ छेडी गयी यह सामाजिक क्राति भारतीय जनतन्त्र की सामाजिक समानता का मुख्य ग्राधार बनी है। यह तथ्य पश्चिम के सभ्य कहलाने वाले तथाकथित जनतान्त्रिक देशो की रगभेद नीति के विरुद्ध एक चुनौती है।

महावीर दूरद्रष्टा, विचारक ग्रौर अनन्तज्ञानी साधक थे। उन्होने ग्रनुभव किया कि ग्रार्थिक समानता के विना सामाजिक समानता अधिक समय तक कायम नही रह सकती ग्रौर राजनैतिक स्वाधीनता भी ग्रार्थिक स्वाधीनता के अभाव मे कल्याणकारी नही बनती। इसलिये महावीर का सारा वल अपरिग्रह भावना पर रहा। एक ग्रोर उन्होने एक ऐसी साधु सस्था खडी की जिसके पास रहने को अपना कोई ग्रागार नही। कल के खाने की ग्राज कोई निश्चित व्यवस्था नही, सुरक्षा के लिये जिसके पास कोई साधन-सग्रह नही, जो अनगार है, भिक्षुक है, पादविहारी है, निर्ग्रन्थ है, श्रमण है, अपनी श्रम-साधना पर जीता है ग्रौर दूसरो के कल्याण के लिये समर्पित है उसका सारा जीवन। जिसे समाज से कुछ लेना नही, देना ही देना है। दूसरी ग्रोर उन्होने उपासक सस्था-श्रावक सस्था खडी की जिसके परिग्रह की मर्यादा है। - जो अणुव्रती है।

श्रावक के बारह व्रतो पर जब हम चितन करते है तो लगता है कि अहिंसा के समानान्तर ही परिग्रह की मर्यादा ग्रौर नियमन का विचार चला है। गृहस्थ के लिये महावीर यह नही कहते कि तुम सग्रह न करो। उनका वल इस बात पर है कि ग्रावश्यकता से अधिक सग्रह मत करो। ग्रौर जो सग्रह करो उस पर स्वामित्व की भावना मत रखो। पाश्चात्य जनतान्त्रिक देशो मे स्वामित्व को नकारा नही गया है। वहा सपत्ति को एक स्वामी से छीन कर दूसरे को स्वामी बना देने पर वल है। इस व्यवस्था मे ममता टूटती नही, स्वामित्व बना रहता है ग्रौर जब तक स्वामित्व का भाव है—सघर्ष है, वर्ग भेद है। वर्ग-विहीन समाज रचना के लिये स्वामित्व का विसर्जन जरूरी है। महावीर ने इसलिये परिग्रह को सपत्ति नही कहा, उसे मूर्च्छा या ममत्व भाव कहा है। साधु तो नितान्त अपरिग्रही होता है, गृहस्थ भी धीरे-धीरे उस ग्रोर बढे, यह अपेक्षा है। इसीलिये महावीर ने श्रावक के बारह व्रतो मे जो व्यवस्था दी है वह एक प्रकार से स्वैच्छिक स्वामित्व-विसर्जन ग्रौर परिग्रह-मर्यादा, सीलिंग की व्यवस्था है। ग्रार्थिक विषमता के उन्मूलन के लिये यह ग्रावश्यक है कि व्यक्ति के अर्जन के स्रोत ग्रौर उपभोग के लक्ष्य मर्यादित ग्रौर निश्चित हो। बारह व्रतो मे तीसरा अस्तेय व्रत इस बात पर वल देता है कि चोरी करना ही वर्जित नही है बल्कि चोर द्वारा चुराई हुई वस्तु को लेना, चोर को प्रेरणा करना, उसे किसी प्रकार की सहायता करना, राज्य नियमो के विरुद्ध प्रवृत्ति करना, झूठा नाप-तोल करना, झूठा दस्तावेज लिखना, झूठी साक्षी देना, वस्तुग्रो मे मिलावट करना, अच्छी वस्तु दिखाकर घटिया दे देना ग्रादि सव पाप है। ग्राज की बढती हुई चोर-बाजारी, टैक्स चोरी, खाद्य पदार्थो मे मिलावट की प्रवृत्ति ग्रादि सव महावीर की दृष्टि मे व्यक्ति को पाप की ग्रोर ले जाते हैं ग्रौर समाज मे ग्रार्थिक-विषमता के कारण बनते हैं। इस प्रवृत्ति को रोकने के लिये पाचवे व्रत मे उन्होने खेत, मकान, सोना-चादी ग्रादि जेवरात, धन-धान्य, पशु-पक्षी, जमीन-जायदाद ग्रादि को मर्यादित, ग्राज की शब्दावली मे इनका सीलिंग करने पर जोर दिया है ग्रौर इच्छाग्रो को उत्तरोत्तर नियन्त्रित करने की बात कही है। छठे व्रत मे व्यापार करने के क्षेत्र को सीमित करने का विधान है। क्षेत्र ग्रौर दिशा का परिमाण करने मे न तो तस्करवृत्ति को पनपने का अवसर मिलता है ग्रौर न उपनिवेशवादी वृत्ति को बढावा मिलता है। सातवें व्रत मे अपने उपभोग मे ग्राने वाली वस्तुग्रो की मर्यादा करने की व्यवस्था है। यह एक प्रकार का स्वैच्छिक राशनिंग सिस्टम है। इससे व्यक्ति अनावश्यक सग्रह से बचता है ग्रौर सयमित रहने से साधना की ग्रोर प्रवृत्ति बढती है। इसी व्रत में अर्थार्जन के ऐसे स्रोतो से बचते रहने की बात कही गयी है जिनसे हिंसा बढ़ती है, कृषि-उत्पादन को हानि पहुचती है ग्रौर असामाजिक तत्त्वो को प्रोत्साहन मिलता है। भगवान् महावीर ने ऐसे व्यवसायो को कर्मादान की सज्ञा दी है ग्रौर उनकी सख्या पन्द्रह

बतलायी है। आज के सदर्भ मे इंगालकम्मे–जगल मे आग लगाना, असईजणपोषणया–असयति जनो का पोषण करना अर्थात् असामाजिक तावो को पोषण देना, आदि पर रोक का विशेष महत्त्व है।

3 लोक कल्याण.—जैसा कि कहा जा चुका है महावीर ने गृहस्थों के लिये सग्रह का निषेध नही किया है बल्कि आवश्यकता से अधिक सग्रह न करने को कहा है। इसके दो फलितार्थ है—एक तो यह कि व्यक्ति अपने लिये जितना आवश्यक हो उतना ही उत्पादन करे। दूसरा यह कि अपने लिये जितना आवश्यक हो उतना तो उत्पादन करे ही और दूसरो के लिये जो आवश्यक हो उसका भी उत्पादन करे। यह दूसरा अर्थ ही अभीष्ट है। जैन धर्म पुरुपार्थ प्रधान धर्म है अत वह व्यक्ति को निष्क्रिय व अकर्मण्य वनाने की शिक्षा नही देता। राष्ट्रीय उत्पादन मे व्यक्ति की महत्त्वपूर्ण भूमिका को जैन दर्शन स्वीकार करता है पर वह उत्पादन शोषण, जमाखोरी और आर्थिक विषमता का कारण न वने, इसका विवेक रखना आवश्यक है। सरकारी कानून-कायदे तो इस दृष्टि से समय-समय पर बनते ही रहते है पर जैन साधना मे व्रत-नियम, तप-त्याग और दान-दया के माध्यम से इस पर नियत्रण रखने का विधान है। तपों मे वैयावृत्य अर्थात् सेवा को महत्वपूर्ण स्थान दिया गया है। इसी सेवा-भाव से धर्म का सामाजिक पक्ष उभरता है। जैन धर्मावलिम्बयो ने शिक्षा, चिकित्सा, छात्रवृत्ति, विधवा सहायता आदि के रूप मे अनेक ट्रस्ट खडे कर राष्ट्र की महान सेवा की है। हमारे यहा शास्त्रो मे पैसा अर्थात् रुपयो के दान का विशेष महत्त्व नही है। यहा विशेप महत्व रहा है—आहारदान, ज्ञानदान, औषधदान और अभयदान का। स्वय भूखे रह कर दूसरो को भोजन कराना पुण्य का कार्य माना गया है। अनशन अर्थात् भूखा रहना, अपने प्राणो के प्रति मोह छोडना, प्रथम तप कहा गया है पर दूसरो को भोजन, स्थान, वस्त्र आदि देना, उनके प्रति मन से शुभ प्रवृत्ति करना, वाणी से हित-वचन वोलना और शरीर से शुभ व्यापार करना तथा समाज-सेवियो व लोक-सेवको का आदर-सत्कार करना भी पुण्य माना गया है। इसके विपरीत किसी का भोजन-पानी से विच्छेद करना 'भत्तपाणवुच्छेए' अतिचार, पाप माना गया है।

महावीर ने स्पष्ट कहा है—जैसे जीवित रहने का हमे अधिकार है वैसे ही अन्य प्राणियो को भी। जीवन का विकास सघर्ष पर नही सहयोग पर ही आधारित है। जो प्राणी जितना अधिक उन्नत और प्रबुद्ध है, उसमे उसी अनुपात मे सहयोग और त्यागवृत्ति का विकास देखा जाता है। मनुष्य सभी प्राणियो मे श्रेष्ठ है। इस नाते दूसरो के प्रति सहयोगी वनना उसका मूल स्वभाव है। अन्त करण में सेवा-भाव का उद्रेक तभी होता है जब "आत्मवत् सर्वभूतेषु" जैसा उदात्त विचार शेष सृष्टि के साथ आत्मीय संबध जोड पाता है। इस स्थिति में जो सेवा की जाती है वह एक प्रकार से सहज स्फूर्त सामाजिक दायित्व ही होता है। लोक-कल्याण के लिये अपनी सम्पत्ति विसर्जित कर देना एक वात है और स्वय सक्रिय घटक वन कर सेवा कार्यों में जुट जाना दूसरी वात है। पहला सेवा का नकारात्मक रूप है जबकि दूसरी मे सकारात्मक रूप। इसमे सेवाव्रती 'स्लीपिंग पार्टनर' बन कर नही रह सकता, उसे सजग प्रहरी बन कर रहना होता है।

लोक-सेवक में सरलता, सहृदयता और सवेदनशीलता का गुण होना आवश्यक है। सेवाव्रती को किसी प्रकार का अहम् न छू पाये और वह सत्तालिप्सु न बन जाये, इस बात की सतर्कता पद-पद पर वरतनी जरूरी है। विनय को, जो धर्म का मूल कहा गया है, उसकी अर्थवत्ता इस सदर्भ मे वड़ी गहरी है।

लोक-सेवा के नाम पर अपना स्वार्थ साधने वालो को महावीर ने इस प्रकार चेतावनी दी है—

असविभागी असगहरुई अप्पमाणभोई ।
से तारिसए नाराहए वयमिण ॥

अर्थात्—जो असविभागी है–जीवन साधनो पर व्यक्तिगत स्वामित्व की सत्ता स्थापित कर दूसरो के प्रकृति प्रदत्त सविभाग को नकारता है, असग्रहरुचि–जो अपने लिये ही सग्रह करके रखता है और दूसरो के लिये कुछ भी नही रखता, अप्रमाण भोजी–मर्यादा से अधिक भोजन एव जीवन-साधनो का स्वय उपभोग करता है, वह आराधक नही, विराधक है।

4 सार्वजनीनता—स्वतन्त्रता, समानता और लोककल्याण का भाव सार्वजनीनता (धर्म निरपेक्षता) की भूमि मे ही फल-फूल सकता है। धर्म निरपेक्षता का अर्थ धर्म-विमुखता या धर्म-रहितता न होकर असाम्प्रदायिक भावना और सार्वजनीन समभाव से है। हमारे देश मे विविध धर्म और धर्मानुयायी हैं। इन विविध धर्मों के अनुयायियो मे पारस्परिक सौहार्द, सम्मान और ऐक्य की भावना बनी रहे, सब को अपने-अपने ढग से उपासना करने और अपने-अपने धर्म का विकास करने का पूर्ण अवसर मिले तथा धर्म के आधार पर किसी के साथ भेद भाव या पक्ष-पात न हो, इसी दृष्टि से धर्म निरपेक्षता हमारे सविधान का महत्वपूर्ण अग बना है। धर्म निरपेक्षता की इस अर्थभूमि के अभाव मे न स्वतन्त्रता टिक सकती है और न समानता और न लोक कल्याण की भावना पनप सकती है। जैन तीर्थंकरो ने सभ्यता के प्रारम्भ मे ही शायद यह तथ्य हृदयगम कर लिया था। इसीलिये उनका सारा चिन्तन धर्म-निरपेक्षता अर्थात् सार्वजनीन समभाव के रूप मे ही चला। इस सबध में निम्नलिखित तथ्य विशेष महत्वपूर्ण हैं—

(1) जैन तीर्थंकरो ने अपने नाम पर धर्म का नामकरण नही किया। 'जैन' शब्द, बाद का शब्द है। इसे समण (श्रमण), अर्हत् और निर्ग्रन्थ धर्म कहा गया है। 'श्रमण' शब्द समभाव, श्रमशीलता और वृत्तियो के उपशमन का परिचायक है। अर्हत् शब्द भी गुणवाचक है। जिसने पूर्ण योग्यता-पूर्णता प्राप्त करली है वह है—अर्हत्। जिसने सब प्रकार की ग्रन्थियो से छुटकारा पा लिया है वह है 'निर्ग्रन्थ'। जिन्होने राग-द्वेष रूप शत्रुओ–आन्तरिक विकारो को जीत लिया है वे 'जिन' कहे गये हैं और उनके अनुयायी जैन। इस प्रकार जैन धर्म किसी विशेष व्यक्ति, सम्प्रदाय या जाति का परिचायक न होकर उन उदात्त जीवन आदर्शों और सार्वजनीन भावो का प्रतीक है जिनमे ससार के सभी प्राणियो के प्रति आत्मौपम्य मैत्री-भाव निहित है।

(2) जैन धर्म मे जो नमस्कार मत्र है, उसमे किसी तीर्थंकर, आचार्य या गुरु का नाम लेकर वन्दना नही की गई है। उसमे पच परमेष्ठियो को नमन किया गया है–णमो अरिहताण, णमो सिद्धाण, णमो आयरियाण, णमो उवज्झायाण, णमो लोए सव्वसाहूण। अर्थात् जिन्होने अपने अन्तरग शत्रुओ पर विजय प्राप्त करली है, उन अरिहन्तो को नमस्कार हो, जो ससार के जन्म-मरण के चक्र से छूटकर शुद्ध परमात्मा बन गये है उन सिद्धो को नमस्कार हो, जो दर्शन, ज्ञान, चारित्र, तप आदि आचारो का स्वय पालन करते है और दूसरो से करवाते हैं, उन आचार्यों को नमस्कार हो, जो आगमादि ज्ञान के विशिष्ट व्याख्याता है और जिनके सान्निध्य मे रहकर दूसरे अध्ययन करते हैं, उन उपाध्यायो को नमस्कार हो, लोक मे जितने भी सत्पुरुष है, उन सभी साधुओ को नमस्कार हो, चाहे वे किसी जाति, धर्म, मत या तीर्थ से सबधित हो। कहना न होगा कि नमस्कार मत्र का यह गुणनिष्ठ आधार जैन दर्शन की उदारचेता सार्वजनीन भावना का मेरु-दण्ड है।

(3) जैन दर्शन ने आत्म-विकास अर्थात् मुक्ति को सम्प्रदाय के साथ नही बल्कि धर्म के साथ जोडा है। महावीर ने कहा–किसी भी परम्परा या सम्प्रदाय में दीक्षित, किसी भी लिंग मे स्त्री हो या पुरुष, किसी भी वेश मे साधु हो या गृहस्थ, व्यक्ति अपना पूर्ण विकास कर सकता है। उसके लिये यह आवश्यक नही कि वह महावीर द्वारा स्थापित धर्म-सघ मे ही दीक्षित हो। महावीर ने अश्रुत्वा केवली को जिसने कभी भी धर्म को सुना भी नही, परन्तु चित्त की निर्मलता के कारण, केवल ज्ञान की कक्षा तक पहुचाया है। पन्द्रह प्रकार के सिद्धो मे अन्य लिंग और प्रत्येक बुद्ध सिद्धो को जो किसी सम्प्रदाय या धार्मिक परम्परा से प्रेरित होकर नही, बल्कि अपने ज्ञान से प्रबुद्ध होते है, सम्मिलित कर महावीर ने माम्प्रदायिकता की निस्सारता सिद्ध कर दी है।

वस्तुत धर्म निरपेक्षता का अर्थ धर्म के सत्य से साक्षात्कार करने की तटस्थ वृत्ति से है। निरपेक्षता अर्थात् अपने लगाव और दूसरो के द्वेष भाव के परे रहने की स्थिति। इसी अर्थ मे जैन दर्शन मे धर्म की विवेचना करते हुए वस्तु के स्वभाव को धर्म कहा है। जब महावीर से पूछा गया कि आप जिसे नित्य, ध्रुव और शाश्वत धर्म कहते है वह कौनसा है ? तब उन्होने कहा—किसी प्राणी को मत मारो, उपद्रव मत करो, किसी को परिताप न दो और न किसी की स्वतन्त्रता का अपहरण करो। इस दृष्टि से जैन धर्म के तत्व प्रकारान्तर से जनतान्त्रिक सामाजिक चेतना के ही तत्व है।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्पष्ट है कि जैन दर्शन जनतान्त्रिक सामाजिक चेतना से प्रारम्भ से ही अपने तत्कालीन सदर्भों मे सम्पृक्त रहा है। उसकी दृष्टि जनतन्त्रात्मक परिवेश मे राज-नैतिक क्षितिज तक ही सीमित नही रही है। उसने स्वतन्त्रता और समानता जैसे जनतान्त्रिक मूल्यो को लोकभूमि मे प्रतिष्ठित करने की दृष्टि से अहिंसा, अनेकान्त और अपरिग्रह जैसे मूल्यवान सूत्र दिये है और वैयक्तिक तथा सामाजिक धरातल पर धर्मसिद्धातो की मनोविज्ञान और समाजविज्ञान सम्मत व्यवस्था दी है। इससे निश्चय ही सामाजिक और आर्थिक क्षेत्र मे सांस्कृतिक स्वराज्य स्थापित करने की दिशा मिलती है।

सास्कृतिक समन्वय और भावनात्मक एकता

जैन धर्म ने सास्कृतिक समन्वय और एकता की भावना को भी बलवती बनाया। यह समन्वय विचार और आचार दोनो क्षेत्रो मे देखने को मिलता है। विचार-समन्वय के लिये अनेकान्त दर्शन की देन अत्यन्त महत्वपूर्ण है। भगवान् महावीर ने इस दशन की मूल भावना का विश्लेषण करते हुए सासारिक प्राणियो को बोध दिया—किसी बात को, सिद्धान्त को एक तरफ से मत देखो, एक ही तरह उस पर विचार मत करो। तुम जो कहते हो वह सच होगा पर दूसरे जो कहते हैं वह भी सच हो सकता है। इसलिये सुनते ही भडको मत, वक्ता के दृष्टिकोण से विचार करो।

आज ससार में जो तनाव और द्वन्द्व है वह दूसरो के दृष्टिकोण को न समझने या विपर्यय रूप से समझने के कारण है। अगर अनेकान्तवाद के आलोक में सभी व्यक्ति और राष्ट्र चिन्तन करने लग जायें तो झगडे की जड ही न रहे। मानव-सस्कृति के रक्षण और प्रसार में जैन धर्म की यह देन अत्यन्त महत्वपूर्ण है।

आचार-समन्वय की दिशा मे मुनि-धर्म और गृहस्थ धर्म की व्यवस्था दी है। प्रवृति और निवृत्ति का सामजस्य किया गया है। ज्ञान और क्रिया का, स्वाध्याय और सामायिक का सन्तुलन इसीलिये आवश्यक माना गया है। मुनिधर्म के लिये महाव्रतो के परिपालन का विधान है। वहा सर्वथा-प्रकारेण हिंसा, झूठ, चोरी, मैथुन और परिग्रह के त्याग की बात कही गई है।

गृहस्थ धर्म मे अणुव्रतो की व्यवस्था दी गई है, जहा यथाशक्य इन आचार-नियमो का पालन अभिप्रेत है। प्रतिमाधारी श्रावक वानप्रस्थाश्रमी की तरह और साधु मन्यासाश्रमी की तरह माना जा सकता है।

सास्कृतिक एकता की दृष्टि से जैनधर्म का मूल्याकन करते समय यह स्पष्ट प्रतिभासित होता है कि उसने सम्प्रदायवाद, जातिवाद, प्रान्तीयतावाद, आदि सभी मतभेदो को त्याग कर राष्ट्र-देवता को बडी उदार और आदर की दृष्टि से देखा है। सामान्यत धर्म के विकसित होने के कुछ विशिष्ट क्षेत्र होते है। उन्ही दायरो मे वह धर्म बन्धा हुआ रहता है पर जैन धर्म इस दृष्टि से किसी जनपद या प्रान्त विशेष मे ही बन्धा हुआ नही रहा। उसने भारत के किसी एक भाग विशेष को ही अपनी श्रद्धा का, साधना का और चिन्तना का क्षेत्र नही बनाया। वह सम्पूर्ण राष्ट्र को अपना मानकर चला। धर्म का प्रचार करने वाले विभिन्न तीर्थ करो की जन्मभूमि, दीक्षास्थली, तपोभूमि, निर्वाणस्थली, आदि अलग-अलग रही है। भगवान् महावीर विदेह (उत्तर विहार) मे उत्पन्न हुए तो उनका साधना क्षेत्र व निर्वाण स्थल मगध (दक्षिण विहार) रहा। तेइसवें तीर्थ कर पार्श्वनाथ का जन्म तो वाराणसी मे हुआ पर उनका निर्वाण स्थल बना सम्मेतशिखर। प्रथम तीर्थ कर भगवान् ऋषभदेव अयोध्या में जन्मे, पर उनकी तपोभूमि रही कैलाश पर्वत और भगवान् अरिष्टनेमि का कर्म व धर्म क्षेत्र रहा गुजरात–सौराष्ट्र। दक्षिण भारत मे इसके प्रचार-प्रसार का सम्बन्ध भद्रबाहु से जुडा हुआ है। कहा जाता है कि 300 ई पूर्व के लगभग जब उत्तर भारत मे द्वादशवर्षीय दुष्काल पडा तब उसके निवारणार्थ श्रुतकेवली भद्रबाहु, चन्द्रगुप्त मौर्य व अन्य मुनियो तथा श्रावको के साथ कर्नाटक मे जाकर कल्वप्पु (वर्तमान श्रवण वेलगोल) मे बसे। लगता है यहा इसके पूर्व भी जैनधर्म का विशेष प्रभाव था। इसी कारण यहा भद्रबाहु को अनुकूलता रही। यही से भद्रबाहु ने अपने साथी मुनि विशाख को तमिल प्रदेश भेजा। वर्ण-व्यवस्था के दुष्परिणाम से पीडित तमिलनाडु जैन धर्म के सर्वजाति समभाव सिद्धान्त से अत्यन्त प्रभावित हुआ और वहा उसका खूब प्रचार-प्रसार हुआ। तिरुवल्लुवर का 'तिरुकुरल' तमिलवेद के रूप मे समादृत हुआ। इसमे 1330 कुरलो के माध्यम से धर्म, अर्थ और काम की सम्यक् व्याख्या की गई है। आन्ध्रप्रदेश भी जैन धर्म से प्रभावित रहा। प्रसिद्ध आचार्य कालक पैठन के राजा के गुरु थे। इस प्रकार देश की चप्पा-चप्पा भूमि इस धर्म की श्रद्धा और शक्ति का आधार बनी।

जैन धर्म की यह सास्कृतिक एकता देशगत ही नही रही। भाषा और साहित्य मे भी उसने समन्वय का यह औदार्य प्रकट किया। जैनाचार्यों ने सस्कृत को ही नही अन्य सभी प्रचलित लोक-भाषाओ को अपनाकर उन्हे समुचित सम्मान दिया। जहा-जहा भी वे गए वहा-वहा की भाषाओ को चाहे वे आर्य-परिवार की हो, चाहे द्राविड परिवार की–अपने उपदेश और साहित्य का माध्यम बनाया। इसी उदार प्रवृत्ति के कारण मध्ययुगीन विभिन्न जनपदीय भाषाओ के मूल रूप सुरक्षित रह सके है। आज जब भाषा के नाम पर विवाद और मतभेद हैं तब ऐसे समय मे जैन धर्म की यह उदार दृष्टि अभिनन्दनीय ही नही, अनुकरणीय भी है।

साहित्यिक समन्वय की दृष्टि से तीर्थ करो के अतिरिक्त राम और कृष्ण जैसे लोकप्रिय चरित्र-नायको को जैन साहित्यकारो ने सम्मान का स्थान दिया। ये चरित्र जैनियो के अपने बन कर आए है। यही नही, जो पात्र अन्यत्र घृणित और बीभत्स दृष्टि से चित्रित किए गए है वे भी यहा उचित सम्मान के अधिकारी बने है। इसका कारण शायद यह रहा कि जैन साहित्यकार दूसरो की भावनाओ को किसी प्रकार की ठेस नही पहुचाना चाहते थे। यही कारण है कि वासुदेव के शत्रुओ को भी प्रतिवासुदेव का उच्च पद दिया गया है। नाग, यक्ष आदि को भी अनार्य न मान कर तीर्थ करो का रक्षक माना है और उन्हे देवालयो मे स्थान दिया है। कथा-

प्रबन्धो मे जो विभिन्न छन्द और राग-रागिनिया प्रयुक्त हुई हैं उनकी तर्जें वैष्णव साहित्य के सामजस्य को सूचित करती है । कई जैनेतर सस्कृत और डिंगल ग्रथो की लोकभाषाओ मे टीकायें लिख कर भी जैन विद्वानो ने इस सास्कृतिक विनिमय को प्रोत्साहन दिया है ।

जैन धर्म अपनी समन्वय भावना के कारण ही सगुण और निर्गुण दोनो प्रकार की भक्ति पद्धति का आदर कर सका । गोस्वामी तुलसीदास के समय इन दोनो भक्ति धाराओ मे जो समन्वय दिखाई पडता है उसके बीज जैन भक्तिकाल में आरम्भ से मिलते है । जैन दर्शन में निराकार आत्मा और वीतराग साकार भगवान के स्वरूप मे एकता के दर्शन होते है । पच-परमेष्ठी महामन्त्र में सगुण और निर्गुण भक्ति का सुन्दर सामजस्य है । अर्हन्त सकल परमात्मा है, वे सशरीर है जबकि सिद्ध निराकार है । एक ही मगलाचरण में इस प्रकार का समभाव अन्यत्र दुर्लभ है ।

जैन धर्म का लोक सग्राहक रूप

धर्म का आविर्भाव जब कभी हुआ विषमता मे समता, अव्यवस्था मे व्यवस्था और अपूर्णता मे सम्पूर्णता स्थापित करने के लिये ही हुआ । अत यह स्पष्ट है कि इसके मूल मे वैयक्तिक अभिक्रम अवश्य रहा पर उसका लक्ष्य समष्टिमूलक हित ही रहा है, उसका चिन्तन लोकहित की भूमिका पर ही अग्रसर हुआ है ।

पर सामान्यत जब कभी जैन धर्म या श्रमण धर्म के लोक-सग्राहक रूप की चर्चा चलती है तब लोग चुप्पी साध लेते हैं । इसका कारण मेरी समझ मे यह रहा है कि जैन दर्शन मे वैयक्तिक मोक्ष पर बल दिया गया है । पर जब हम जैन दर्शन का सम्पूर्ण सदर्भो मे अध्ययन करते है तो उसके लोक-सग्राहक रूप का मूल उपादान प्राप्त हो जाता है ।

लोक-सग्राहक रूप का सबसे बडा प्रमाण है लोक-नायको के जीवन-क्रम की पवित्रता, उनके कार्य-व्यापारो की परिधि और जीवन-लक्ष्य की व्यापकता । जैन धर्म के प्राचीन ग्रन्थो मे ऐसे कई उल्लेख आते हैं कि राजा श्रावक धर्म अगीकार कर, अपनी सीमाओ मे रहते हुए, लोक-कल्याणकारी प्रवृत्तियो का सचालन एव प्रसारण करता है । पर काल-प्रवाह के साथ उसका चिन्तन बढता चलता है और वह देश विरति श्रावक से सर्वविरति श्रमण बन जाता है । सासारिक माया-मोह, पारिवारिक प्रपच, देह-आसक्ति आदि से विरत होकर वह सच्चा साधु, तपस्वी और लोक-सेवक बन जाता है । इस रूप या स्थिति को अपनाते ही उसकी दृष्टि अत्यन्त व्यापक और उसका हृदय अत्यन्त उदार बन जाता है । लोक-कल्याण में व्यवधान पैदा करने वाले सारे तत्त्व अब पीछे छूट जाते है और वह जिस साधना पर बढता है उसमें न किसी के प्रति राग होता है न द्वेष । वह सच्चे अर्थो में श्रमण है ।

श्रमण के लिये शमन, समण आदि शब्दो का भी प्रयोग होता है । उनके मूल में भी लोक-सग्राहक वृत्ति काम करती रही है । लोक-सग्राहक वृत्ति का धारक सामान्य पुरुष हो ही नही सकता । उसे अपनी साधना से विशिष्ट गुणो को प्राप्त करना पडता है, क्रोधादि कषायो का शमन करना पडता है, पाच इद्रियो और मन को वशवर्ती बनाना पडता है, शत्रु-मित्र तथा स्वजन-परिजन की भेद भावना को दूर हटाकर सब में समताभाव नियोजित करना पडता है, समस्त प्राणियो के प्रति समभाव की धारणा करनी पडती है । तभी उसमे सच्चे श्रमण-भाव का रूप उभरने लगता है । वह विशिष्ट साधना के कारण तीर्थंकर तक बन जाता है । ये तीर्थंकर तो लोकोपदेशक ही होते है ।

इस महान् साधना को जो साध लेता है वह श्रमण बारह उपमाओ से उपमित किया गया है —

उरग-गिरि-जलण-सागर
णहतल-तरुगण-समो य जो होई।
भमर-मिय-धरणि-जलरुह
रवि-पवण समो य सो समणो ॥

अर्थात् जो सर्प, पर्वत, अग्नि, सागर, आकाश, वृक्षपवित, भ्रमर, मृग, पृथ्वी, कमल, सूर्य, और पवन के समान होता है, वह श्रमण कहलाता है।

ये सब उपमाये साभिप्राय दी गई है। सर्प की भाति ये साधु भी अपना कोई घर (बिल) नही बनाते। पर्वत की भाति ये परीषहो और उपसर्गों की आधी से दोलायमान नही होते। अग्नि की भाति ज्ञान रूपी ईन्धन से ये तृप्त नही होते। समुद्र की भाति अथाह ज्ञान को प्राप्त कर भी ये तीर्थंकर की मर्यादा का अतिक्रमण नही करते। आकाश की भाति ये स्वाश्रयी-स्वालम्बी होते हैं, किसी के अवलम्बन पर नही टिकते। वृक्ष की भाति समभाव पूर्वक दु ख-सुख को सहन करते है। भ्रमर की भाति किसी को बिना पीडा पहुचाये शरीर-रक्षण के लिये आहार ग्रहण करते हैं। मृग की भाति पापकारी प्रवृत्तियो के सिंह से दूर रहते हैं। पृथ्वी की भाति, शीत, ताप, छेदन, भेदन आदि कष्टो को समभाव पूर्वक सहन करते है। कमल की भाति वासना के कीचड और वैभव के जल से अलिप्त रहते हैं। सूर्य की भाति स्वसाधना एव लोको-पदेशना के द्वारा अज्ञानान्धकार को नष्ट करते हैं। पवन की भाति सर्वत्र अप्रतिबद्ध रूप से विचरण करते हैं। ऐसे श्रमणो का वैयक्तिक स्वार्थ हो ही क्या सकता है?

ये श्रमण पूर्ण अहिंसक होते है। षट्काय। (पृथ्वीकाय, अप्काय, तेउकाय, वायुकाय, वनस्पतिकाय और त्रसकाय) जीवो की रक्षा करते है। न किसी को मारते है, न किसी को मारने की प्रेरणा देते है और न जो प्राणियो का वध करते है, न उनकी अनुमोदना करते है। इनका यह अहिंसा प्रेम अत्यन्त सूक्ष्म और गभीर होता है।

ये अहिंसा के साथ-साथ सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह के भी उपासक होते हैं। किसी की वस्तु बिना पूछे नही उठाते। कामिनी और कचन के सर्वथा त्यागी होते हैं। आवश्यकता से भी कम वस्तुओ का सेवन करते है। सग्रह करना तो इन्होने सीखा ही नही। ये मनसा, वाचा, कर्मणा किसी का वध नही करते। हथियार उठाकर किसी अत्याचारी, अन्यायी राजा का नाश नही करते, लेकिन इससे उनके लोक सग्रही रूप मे कोई कमी नही आती। भावना की दृष्टि मे तो उसमे और वैशिष्ट्य आता है। ये श्रमण पापियो को नष्ट कर उनको मौत के घाट नही उतारते वरन् उन्हे आत्मबोध और उपदेश देकर सही मार्ग पर लाते है। ये पापी को मारने मे नही, उसे सुधारने मे विश्वास करते है। यही कारण है कि महावीर ने विषदृष्टि सर्प चण्डकौशिक को मारा नही वरन् अपने प्राणो को खतरे मे डाल कर, उसे उसके आत्मस्वरूप से परिचित कराया। बस फिर क्या था? वह विष से अमृत बन गया। लोक-कल्याण की यह प्रक्रिया अत्यन्त सूक्ष्म और गहरी है।

इनका लोक-सग्राहक रूप मानव सम्प्रदाय तक ही सीमित नही है। ये मानव के तनिक हित के लिये अन्य प्राणियो का बलिदान करना व्यर्थ ही नही धर्म के विरुद्ध समझते है। इनकी यह लोकसग्रह की भावना इसलिये जनतन्त्र से आगे बढकर प्राणतन्त्र तक पहुची हैं। यदि अयतना से किसी जीव का वध हो जाता है या प्रमादवश किसी को कष्ट पहुचता है तो ये उन

सव पापो से दूर हटने के लिये प्रात -साय प्रतिक्रमण (प्रायश्चित) करते है। ये नगे पैर पैदल चलते हैं। गाव-गाव और नगर-नगर मे विचरण कर नैतिक चेतना और सुषुप्त पुरुषार्थ को जागृत करते हैं। चातुर्मास के अलावा किसी भी स्थान पर नियत-वास नही करते। अपने पास केवल इतनी वस्तुयें रखते है जिन्हें ये अपने आप उठाकर विचरण कर सकें। भोजन के लिये गृहस्थो के यहा से भिक्षा लाते हैं। भिक्षा भी जितनी आवश्यकता होती है उतनी ही। दूसरे समय के लिये भोजन का सचय ये नही करते। रात्रि मे न पानी पीते हैं न कुछ खाते हैं।

इनकी दैनिक चर्या भी वडी पवित्र होती है। दिन-रात ये स्वाध्याय, मनन-चिन्तन, लेखन और प्रवचन आदि मे लगे रहते हैं। सामान्यत ये प्रतिदिन ससार के प्राणियो को धर्म-वोध देकर कल्याण के मार्ग पर अग्रसर करते है। इनका समूचा जीवन लोक-कल्याण मे ही लगा रहता है। इस लोकसेवा के लिये ये किसी से कुछ नही लेते।

श्रमण धर्म की यह आचारनिष्ठ दैनन्दिनचर्या इस बात का प्रवल प्रमाण है कि ये श्रमण सच्चे अर्थों मे लोक-रक्षक और लोकसेवी है। यदि आपत्काल में अपनी मर्यादाओ से तनिक भी इधर-उधर होना पडता है तो उसके लिये भी ये दण्ड लेते हैं, व्रत-प्रत्याख्यान करते है। इतना ही नही जव कभी अपनी साधना मे कोई वाधा आती है तो उसकी निवृत्ति के लिये परीषह और उपसर्ग आदि की सेवना करते है। मैं नही कह सकता, इससे अधिक आचरण की पवित्रता, जीवन की निर्मलता और लक्ष्य की सार्वजनीनता और किस लोक-सग्राहक की होगी?

सामान्यत यह कहा जाता है कि जैनधर्म ने ससार को दु खमूलक वताकर निराशा की भावना फैलाई है, जीवन में सयम और विराग की अधिकता पर वल देकर उसकी अनुराग भावना और कला प्रेम को कुठित किया है। पर यह कथन साधार नही है, भ्रातिमूलक है। यह ठीक है कि जैन धर्म ने ससार को दु खमूलक माना, पर किसलिये? अखण्ड आनन्द की प्राप्ति के लिये, शाश्वत सुख की उपलव्धि के लिये। यदि जैन धर्म ससार को दु खपूर्ण मान कर ही रुक जाता, सुख प्राप्ति की खोज नही करता, उसके लिये साधना-मार्ग की व्यवस्था नही देता तो हम उसे निराशावादी कह सकते थे, पर उसमे तो मानव को महात्मा वनाने की, आत्मा को परमात्मा बनाने की आस्था का वीज छिपा हुआ है। देववाद के नाम पर अपने को असहाय और निर्वल समझी जाने वाली जनता को किसने आत्म-जागृति का सन्देश दिया? किसने उसके हृदय मे छिपे हुये पुरुषार्थ को जगाया? किसने उसे अपने भाग्य का विधाता बनाया? जैन धर्म की यह विचारधारा युगो बाद आज भी वुद्धिजीवियो की धरोहर वन रही है, सस्कृति को वैज्ञा-निक दृष्टि प्रदान कर रही है।

यह कहना भी कि जैन धर्म निरा निवृत्तिमूलक है, ठीक नही है। जीवन के विधान पक्ष को भी उसने महत्व दिया है। इस धर्म के उपदेशक तीर्थंकर लौकिक-अलौकिक वैभव के प्रतीक हैं। दैहिक दृष्टि से वे अनन्त वल, अनन्त सौन्दर्य और अनन्त पराक्रम के धनी होते हैं। इन्द्रादि मिलकर उनके पच कल्याणक महोत्सवो का आयोजन करते है। उपदेश देने का उनका स्थान (समवसरण) कलाकृतियो से अलकृत होता है। जैन धर्म ने जो निवृत्ति-मूलक वातें कही हैं, वे केवल उच्छृ खलता और असंयम को रोकने के लिये ही है।

जैन धर्म की कलात्मक देन अपने आप मे महत्वपूर्ण और अलग से अध्ययन की अपेक्षा रखती है। वास्तुकला के क्षेत्र में विशालकाय कलात्मक मन्दिर, मेरुपर्वत की रचना, नदीश्वर द्वीप व समवसरण की रचना, मानस्तम्भ, चैत्य, स्तूप आदि उल्लेखनीय हैं। मूर्तिकला मे विभिन्न तीर्थंकरो की मूर्तियो को देखा जा सकता है। चित्रकला मे भित्तिचित्र, ताडपत्रीय चित्र, काष्ठ चित्र, लिपिचित्र, वस्त्र चित्र आश्चर्य मे डालने वाले हैं। इस प्रकार निवृत्ति और

प्रवृत्ति का समन्वय कर जैन धर्म ने सस्कृति को लचीला बनाया है। उसकी कठोरता को कला की वाह दी है तो उसकी कोमलता को सयम की दृढता।

साहित्य-निर्माण के प्रेरक तत्त्व

जैन साहित्य निर्माण लौकिक यश और सम्पदा प्राप्ति के लिए न किया जाकर आत्मशुद्धि, सामाजिक जागरण और लोक मगल की भावना से प्रेरित होकर किया जाता रहा है। यो तो साहित्य निर्माण मे सन्तो और गृहस्थो दोनो का योग रहा है पर साहित्य का अधिकाश भाग सन्तो द्वारा ही निर्मित रहा है। सन्तो की आत्मानुभूति और लोक सम्पर्क का व्यापक अनुभव इस साहित्य को जीवन्त, प्राणवान और लोकभोग्य बनाये हुए है। तटस्थ वृत्ति और उदार दृष्टिकोण के कारण जीवन के नानाविध पक्षो को स्पर्श करने वाला यह साहित्य केवल भावना के स्तर पर ही निर्मित नही हुआ है, ज्ञान-चेतना के स्तर पर धर्मेत्तर विषयो से सम्बद्ध, यथा-गणित, वैद्यक, ज्योतिष, स्थापत्य पर भी विपुल परिमाण मे साहित्य रचा गया है।

साहित्य समाज का दर्पण होता है। उसमे युग विशेष की घटनाये और प्रवृत्तिया प्रतिबिम्बित होती है। जैन साहित्य भी अपने युग के घटना-चक्रो से प्रेरित-प्रभावित रहा है और चू कि सन्तो का सम्बन्ध उच्च-वर्ग से लेकर सामान्य-वर्ग तक बराबर बना रहता है, इस कारण यह साहित्य केवल आभिजात्य वर्ग की मनोवृत्ति का चितेरा बन कर नही रह गया है, इसमे सामान्य जन की आशा-आकाक्षा और लोक-जीवन की चित्त-वृत्तिया यथार्थ-रूप मे चित्रित हुई हैं।

प्रतिदिन प्रवचन देना जैन सन्तो का मुख्य कर्तव्य-कर्म है। प्रवचन रोचक और सरस होने के साथ-साथ श्रोताओ मे औत्सुक्यवृत्ति जगाये रख, तथा गूढ दार्शनिक-तात्त्विक सिद्धान्त सहज हृदयगम हो जाये, इस भावना से जैन सन्त प्राय कथा-काव्य या चरित-काव्य की सृष्टि बराबर करते रहे है। अपने शिष्यो और श्रावको मे नियमित रूप से अध्ययन और स्वाध्याय का क्रम चलता रहे, इस भावना से प्रेरित होकर भी समय-समय पर नये ग्रन्थो की रचनाये होती रही हैं तथा प्राचीन शास्त्रीय ग्रन्थो पर टीकाये, व्याख्याये और वचनिकाये लिखी जाती रही हैं। विभिन्न पर्व तिथियो, धार्मिक उत्सवो, जयन्तियो और विशेष समारोहो पर भी सामयिक साहित्य रचा जाता रहा है। श्रद्धेय महापुरुषो, प्रभावशाली मुनि-आचार्यो और विशिष्ट श्रावको तथा प्रेरणादायी चरितो पर भी इतिहास की सवेदना के धरातल से जीवनी परक साहित्य लिखा जाता रहा है। सक्षेप मे कहा जा सकता है कि प्राचीन गौरव-गान, आराध्य के प्रति भक्ति-भाव, सिद्धान्त-निरूपण, व्यावहारिक ज्ञान, चरित्र-गठन, समाज-सुधार, राष्ट्रीय-जागरण, लोक-मगल और विश्वजनीन भावो की स्फुरणा पैदा करने की भावना जैन साहित्य निर्माण मे मूल प्रेरणा और कारक रही है।

साहित्य-रक्षण के प्रयत्न

जैन साहित्य के मूल ग्रन्थ आगम हैं जो 'द्वादशागी' कहे जाते है। जैन मान्यतानुसार तीर्थंकर अपनी देशना में जो अभिव्यक्त करते है, उनके प्रमुख शिष्य गणधर शासन के हितार्थ अपनी शैली मे उन्हे सूत्रवद्ध करते हैं। वे ही बारह अग प्रत्येक तीर्थंकर के शासन-काल मे 'द्वादशागी' सूत्र के रूप मे प्रचलित एव मान्य होते हैं। 'द्वादशागी' का 'गणिपिटक' के नाम से भी उल्लेख किया गया है। इस मान्यता के अनुसार वर्तमान अवसर्पिणी काल के अन्तिम चौबीसवे तीर्थंकर भगवान् महावीर द्वारा चतुर्विध तीर्थ की स्थापना के दिन जो प्रथम उपदेश इन्द्रभूति आदि

ग्यारह गणधरो को दिया गया, वह "द्वादशागी" के रूप मे सूत्रबद्ध किया गया। बारहवे अग दृष्टिवाद का तो आज से बहुत समय पहले विच्छेद हो गया। आज जो एकादशागी उपलब्ध है वह आर्य सुधर्मा की वाचना का ही परिणाम है।

समय-समय पर दीर्घकाल के दुर्भिक्ष आदि दैवी-प्रकोप के कारण श्रमण वर्ग एकादशागी के पाठो का स्मरण, चिन्तन, मनन आदि नही कर सका, परिणाम स्वरूप सूत्रो के अनेक पाठ विस्मृत होने लगे। अत अग शास्त्रो की रक्षा हेतु वीर निर्वाण सवत् 160 मे स्थूलभद्र के तत्वावधान मे पाटलिपुत्र मे प्रथम आगम वाचना हुई। फलस्वरूप विस्मृत पाठो को यथातथ्यरूपेण सकलित कर विनष्ट होने से बचा लिया गया।

वीर निर्वाण सवत् 830 से 840 के बीच विषम स्थिति होने से फिर आगम-विच्छेद की स्थिति उत्पन्न हो गई अत. स्कन्दिलाचार्य के तत्वावधान मे मथुरा मे उत्तर भारत के श्रमणो की दूसरी वाचना हुई, जिसमें जिस-जिस स्थविर को जो-जो श्रुत पाठ स्मरण था, उसे सुन-सुनकर आगमो के पाठ को सुनिश्चित किया गया। मथुरा में होने के कारण यह वाचना माथुरी वाचना के नाम से भी प्रसिद्ध है। ठीक इसी समय नागार्जुन ने दक्षिणापथ के श्रमणो को एकत्र कर वल्लभी में वाचना की। इसके 150 वर्ष बाद वीर निर्वाण सवत् 980 मे देवर्द्धि क्षमा श्रमण के तत्वावधान में वल्लभी में तीसरी वाचना हुई जिसमे शास्त्र लिपिबद्ध किये गये। कहा जाता है कि समय की विषमता, मानसिक दुर्बलता और मेधा की मन्दता आदि कारणो से जब सूत्रार्थ का ग्रहण एव परावर्तन कम हो गया, तो देवर्द्धि ने शास्त्रो को लिपिबद्ध करने का निर्णय किया। इसके पूर्व सामान्यत शास्त्र श्रुति परम्परा से ही सुरक्षित थे। देवर्द्धि क्षमाश्रमण के प्रयत्नो से ही शास्त्र पहली बार व्यवस्थित रूप मे लिपिबद्ध किये गये। दिगम्बर परम्परा की मान्यता के अनुसार वीर निर्वाण सवत् 683 में ही सम्पूर्ण द्वादशागी विलुप्त हो गई।

जैन धर्म में स्वाध्याय को आभ्यन्तर तप का अग माना गया है। स्वाध्याय के लिए ग्रन्थो का होना आवश्यक है। अत नये-नये ग्रन्थो की रचना के साथ-साथ उनकी सुरक्षा करना भी धर्म का महत्त्वपूर्ण अग बन गया। मुद्रण के आविष्कार से पूर्व ग्रन्थ पाडुलिपियो के रूप मे ही सुरक्षित रहते थे। उनकी सुरक्षा के लिए सन्तो की प्रेरणा से विभिन्न स्थानो पर ज्ञान भण्डार स्थापित किये जाते रहे। आज जो कुछ प्राचीन और मध्ययुगीन साहित्य उपलब्ध है, वह इन्ही ज्ञान भण्डारो की देन है। महत्वपूर्ण ग्रन्थो की एक से अधिक प्रतिलिपिया करायी जाती थी। ग्रन्थो का यह प्रतिलिपिकरण कार्य श्रुत-सेवा का अग बन गया था। विशेष धार्मिक अवसरो पर यथा श्रुत-पंचमी, ज्ञान-पचमी पर महत्वपूर्ण ग्रन्थो की प्रतिलिपिया पूर्ण कर आचार्यों और ज्ञान भण्डारो को समर्पित की जाती थी। प्रतिलिपिकरण का यह कार्य सन्तो और सतियो द्वारा भी सम्पन्न होता रहा।

साहित्य-रक्षण मे जैन समाज की बडी उदार दृष्टि रही है। गुणग्राहक होने से जहा भी जीवन-उन्नायक सामग्री मिलती, जैन सत उन्हे लिख लेते। इस प्रकार एक ही गुटके मे विभिन्न लेखको और विविध विषयो की ज्ञान वर्धक, आत्मोत्कर्षक, जीवनोपयोगी सामग्री सचित हो जाती। ऐसे अनेक गुटके आज भी विभिन्न ज्ञान भण्डारो में सगृहीत है।

जैन सन्त अपने प्रवचनो मे सामान्यत. नैतिक शिक्षण के माध्यम से, सही ढग से जीने की कला सिखाते है। यही कारण है कि उनके प्रवचनो में जैन कथाओ के साथ-साथ अन्य धर्मों तथा लोक-जीवन की विविध कथायें, दृष्टान्त और उदाहरण यथाप्रसग आते रहते है। ठीक यही उदार भावना ग्रन्थो के सरक्षण और प्रतिलिपिकरण मे रही है। इसका सुखद परिणाम यह

हुआ कि जैन ज्ञान भण्डारों मे धर्म तथा धर्मेत्तर विपयों के भी कई महत्वपूर्ण ग्रन्थ बडी सख्या मे सुरक्षित मिलते हैं। राजस्थान इस दृष्टि से सर्वाधिक मूल्यवान प्रदेश है । हिन्दी के आदिकाल की अधिकाश सामग्री यहा के जैन ज्ञान भण्डारो से ही प्राप्त हुई है ।

जैन साहित्य का महत्त्व

जैन साहित्य का निर्माण यद्यपि आध्यात्मिक भावना से प्रेरित होकर किया गया है पर वह वर्तमान सामाजिक जीवन से कटा हुआ नही है। जैन साहित्य के निर्माता जन सामान्य के अधिक निकट होने के कारण समसामयिक घटनाओ, धारणाओ और विचारणाओ को यथार्थ अभिव्यक्ति दे पाये हैं। इस दृष्टि से जैन साहित्य का महत्व केवल व्यक्ति के नैतिक सम्बन्धो की दृष्टि से ही नही हैं वरन् सामाजिक—सास्कृतिक अध्ययन की दृष्टि से भी है।

आज हमे अपने देश का जो इतिहास पढने को मिलता है वह मुख्यत राजा-महाराजाओ और सम्राटो के वशानुक्रम का इतिहास है। उसमे राजनैतिक घटना-चक्रो, युद्धो और सधियो की प्रमुखता है। उसके समानान्तर चलने वाले धार्मिक और सामाजिक आन्दोलनो को विशेष महत्व नही दिया गया है और उससे सम्बद्ध स्रोतो का इतिहास लेखन मे सावधानीपूर्वक बहुत कम उपयोग किया गया है। जैन साहित्य इस दृष्टि से अत्यन्त मूल्यवान है। जैन सन्त ग्रामानुग्राम पादविहारी होने के कारण क्षेत्र-विशेष मे घटित होने वाली छोटी सी छोटी घटना को भी सत्य रूप मे लिखने के अभ्यासी रहे है। समाज के विभिन्न वर्गो से निकटता का सम्पर्क होने के कारण वे तत्कालीन जन-जीवन की चिन्ताधारा को सही परिप्रेक्ष्य मे समझने और पकडने मे सफल रहे हैं। इस प्रक्रिया से गुजरने के कारण उनके साहित्य मे देश के सामाजिक और सास्कृतिक इतिहास-लेखन की प्रचुर सामग्री बिखरी पडी है ।

इतिहास-लेखन मे जिस तटस्थ वृत्ति, व्यापक जीवनानुभूति और प्रामाणिकता की अपेक्षा होती है, वह जैन सन्तो मे सहज रूप से प्राप्य है। वे सच्चे अर्थो मे लोक-प्रतिनिधि हैं। न उन्हे किसी के प्रति लगाव है न दुराव। निन्दा और स्तुति से परे जीवन की जो सहज प्रकृति और सस्कृति है, उसे अभिव्यजित करने मे ही ये लगे रहे। इनका साहित्य एक ऐसा निर्मल दर्पण है जिसमे हमारे विविध आचार-व्यवहार, सिद्धान्त-सस्कार रीति-नीति, वाणिज्य-व्यवसाय, धर्म-कर्म, शिल्प-कला, पर्व-उत्सव, तौर-तरीके, नियम-कानून आदि यथारूप प्रतिविम्बित है ।

जहा तत्कालीन सामाजिक, सास्कृतिक जीवन को जानने और समझने का जैन साहित्य सच्चा वेरोमीटर है, वहा जीवन की पवित्रता, नैतिक-मर्यादा और उदात्त जीवन-आदर्शों का व्याख्याता होने के कारण यह साहित्य समाज के लिए सच्चा पथप्रणेता और दीपक भी है। इसका अध्येता निराशा मे आशा का सम्बल पाकर, अन्धकार से प्रकाश की ओर चरण बढाता है। काल को कला मे, मृत्यु को मगल मे और उष्मा को प्रकाश मे परिणत करने की क्षमता है—इस साहित्य मे ।

जैन साहित्य का भाषा शास्त्र के विकासात्मक अध्ययन की दृष्टि से विशेष महत्त्व है। भाषा की सहजता और लोक भूमि की पकड के कारण इस साहित्य मे जनपदीय भाषाओ के मूल रूप सुरक्षित है। इनके आधार पर भारतीय भाषाओ के ऐतिहासिक विकास और पारस्परिक सास्कृतिक एकता के सूत्र आसानी से पकडे जा सकते हैं।

जैन साहित्यकार मुख्यत आत्मधर्मिता के उद्गाता होकर भी प्रयोगधर्मी रहे है। अपने प्रयोग मे क्रान्तिवाही होकर भी वे अपनी मिट्टी और जलवायु से जुडे हुए हैं। अत उनके साहित्य

मे भारतीय अध्यात्म-धारा की प्रवहमानता देखी जा सकती है। इस दृष्टि से भारतीय साहित्य की विभिन्न प्रवृत्तियो और धाराओ को इससे पुष्टता और गति मिली है। विभिन्न भाषाओ के साहित्य के इतिहासो को भी जैन साहित्य के कथ्य और शिल्प ने काफी दूर तक प्रभावित किया है। हिन्दी साहित्य की आध्यात्मिक चेतना को आज तक जागृत और क्रमबद्ध रखने मे जैन साहित्य की दार्शनिक सवेदना की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है।

जैन साहित्य की विशेषताए

ऊपर हमने जैनदर्शन के जिन सामाजिक-चेतना, सास्कृतिक-समन्वय और लोक-सग्राहक रूप के तत्त्वो की चर्चा की है, वे ही प्रकारान्तर से जैन साहित्य की वैचारिक पृष्ठभूमि तैयार करते हैं अतः यहा जैन साहित्य की विचार भूमि पर विचार न करते हुए उसकी प्रमुख विशेषताओ का सक्षेप मे उल्लेख किया जाता है—

जैन साहित्य विविध और विशाल है। सामान्यत यह माना जाता है कि जैन साहित्य मे निर्वेद भाव को ही अनेक रूपो और प्रकारो मे चित्रित किया गया है। यह सच है कि जैन साहित्य का मूल स्वर शान्त रसात्मक है पर जीवन के अन्य पक्षो और सार्वजनीन विषयो की ओर से उसने कभी मुख नही मोडा है। यही कारण है कि आपको जितना वैविध्य यहा मिलेगा, कदाचित् अन्यत्र नही। एक ही कवि ने शृगार की पिचकारी भी छोडी है और भक्ति का राग भी अलापा है। वीरता का ओजपूर्ण वर्णन भी किया है और हृदय को विगलित कर देने वाली करुणा की बरसात भी की है। साहित्य के रचनात्मक पक्ष से आगे बढकर उसने उसके बोधात्मक पक्ष को भी सम्पन्न बनाया है। व्याकरण, ज्योतिष, वैद्यक, मन्त्र-तन्त्र, इतिहास, भूगोल, दर्शन, राजनीति आदि वाङ्मय के विविध अग उसकी प्रतिभा का स्पर्श पा कर चमक उठे है।

विषय की दृष्टि से सम्पूर्ण जैन साहित्य दो भागो मे विभक्त किया जा सकता है (1) आगम साहित्य और (2) आगमेतर साहित्य। आगम साहित्य के दो प्रकार हैं—अर्थ आगम और सूत्र आगम। तीर्थंकर भगवान् द्वारा उपदिष्ट वाणी अर्थागम है। तीर्थंकरो के प्रवचन के आधार पर गणधरो द्वारा रचित साहित्य सूत्रागम हैं। ये आगम आचार्यों के लिये अक्षय ज्ञानभण्डार होने से गणिपिटक तथा सख्या मे बारह होने से 'द्वादशागी' नाम से भी अभिहित किये गये है। प्रेरणा की अपेक्षा से ये अग-प्रविष्ट कहलाते हैं। द्वादशागी के अतिरिक्त जो अन्य उपाग छेद, मूल और आवश्यक हैं, वे पूर्वधर स्थविरो द्वारा रचे गये है और अनग-प्रविष्ट कहलाते है।

आगमेतर साहित्य के रचयिता जैन आचार्य, विद्वान्, सन्त आदि है। इसमे गद्य और पद्य के माध्यम से जीवनोपयोगी सभी विषयो पर प्रकाश डाला गया है। यह वैविध्यपूर्ण जैन साहित्य अत्यन्त विशाल है। हिन्दी साहित्य के आदिकाल का अधिकाश भाग तो इसी से सम्पन्न बना है। साहित्य निर्माण की यह प्रक्रिया आज तक प्राकृत, सस्कृत, हिन्दी, राजस्थानी आदि भाषाओ मे अनवरत रूप से जारी है।

जैन साहित्य की यह विविधता विषय तक ही सीमित न रही। उसने रूप और शैली मे भी अपना कौशल प्रकट किया।

काव्य रूपो के सम्बन्ध मे जैन कवियो की दृष्टि बडी उदार रही है। उन्होने प्रचलित शास्त्रीय रूपो को स्वीकार करते हुए भी लोकभाषा के काव्यरूपो मे व्यापकता और सहजता का रग भरा।

जैन धर्म जन्म से ही रूढिबद्धता के खिलाफ लड़ता रहा। उसे न विचार मे रूढ परम्परायें मान्य हो सकीं और न आचार मे। साहित्य और कला के क्षेत्र मे भी जो बंधी-बंधायी परिपाटी चल रही थी, वह उसके प्रतिरोध के आगे न टिक सकी। उसने उसके शास्त्रीय बन्धन काट दिये। इसी का एक परिणाम यह हुआ कि जन तीर्थंकरो ने अपनी देशना तत्कालीन जन भाषा प्राकृत मे दी और जव प्राकृत भी शास्त्रीयता के कटघरे मे कैद हो गयी तो जैन आचार्यों ने अपभ्रंश मे अपनी रचनायें लिखी। आज विभिन्न प्रादेशिक भाषाओ के जो मूल रूप सुरक्षित रह सके है, उनके मूल मे जैन साहित्यकारो की यह दृष्टि ही मुख्य रही कि वे हमेशा जनपदीय भाषाओ को अपनी अभिव्यक्ति का माध्यम वनाते रहे।

भाषा के क्षेत्र मे ही नही, छन्द और सगीत के क्षेत्र मे भी यह सहजता देखने को मिलती है। शास्त्रीय छन्दो के अतिरिक्त जैन कवियो ने लोकरुचि को ध्यान मे रखकर कई नये छन्द निर्मित किये और उनमें अपनी रचनाए लिखीं। इनके ये छन्द प्रधानत गेय रहे है। सगीत को शास्त्रीयता से मुक्त करने के लिए इन कवियो ने विभिन्न लोक-देशियो को अपनाया। प्रयुक्त टालो में जो तर्जे दी गयी है, वे एक प्रकार की लोक-देशिया है। इनके प्रयोग से भारत का पुरातन लोक संगीत सुरक्षित रह सका।

जैन कवियो ने काव्य-रूपो की परम्परा को सकीर्ण परिधि मे वाहर निकाल कर व्यापकता का मुक्त क्षेत्र प्रदान किया। आचार्यो द्वारा प्रतिपादित प्रवन्ध-मुक्तक की चलती आई परम्परा को इन कवियो ने विभिन्न रूपो मे विकसित कर, काव्यशास्त्रीय जगत में एक क्रान्ति सी मचा दी। दूसरे शब्दो मे यह कहा जा सकता है कि इन कवियो ने प्रवन्ध और मुक्तक के वीच काव्य-रूपो के कई नये स्तर निर्मित किये।

जैन कवियो ने नवीन काव्य-रूपो के निर्माण के साथ-साथ प्रचलित काव्य रूपो को नयी भावभूमि और मौलिक अर्थवत्ता भी दी। इन सव मे उनकी व्यापक उदार दृष्टि ही काम करती रही है। उदाहरण के लिए, वेलि, वारहमासा, विवाहलो, रासो, चौपाई, सन्धि आदि काव्यरूपो के स्वरूप का अध्ययन किया जा सकता है। 'वेलि' सज्ञक काव्य डिंगल-शैली मे सामान्यत वेलियो छन्द में ही लिखा गया है, पर जैन कवियो ने वेलि काव्य को छन्द विशेष की इस सीमा से वाहर निकाल कर वस्तु और शिल्प दोनो दृष्टि से व्यापकता प्रदान की। 'वारहमासा' काव्य ऋतुकाव्य रहा है, जिसमे नायिका एक 2 माह के क्रम से अपना विरह प्रकृति के विभिन्न उपादानो के माध्यम से व्यक्त करती है। जैन कवियो ने 'वारहमासा' की इस विरह-निवेदन-प्रणाली को आध्यात्मिक रूप देकर इसे शृंगार क्षेत्र से वाहर निकाल कर, भक्ति और वैराग्य के क्षेत्र तक आगे वढाया। 'विवाहलो' सज्ञक काव्य मे सामान्यत नायक-नायिका के विवाह का वर्णन रहता है जिसे 'व्याहलो' भी कहा जाता है। जैन कवियो ने इस 'विवाहलो' सज्ञक काव्य को भी आध्यात्मिक रूप दिया है। इसमे नायक का किसी स्त्री से परिणय न दिखाकर सयमश्री और दीक्षाकुमारी जैसी अमूर्त भावनाओ को परिणय के वन्धन में बाधा गया है। 'रासो' 'सन्धि' और 'चौपाई' जैसे काव्य-रूपो को भी इस प्रकार का भाव-बोध दिया। 'रासो' यहा केवल युद्धपरक वीर काव्य का व्यजक न रहकर प्रेमपरक गेय काव्य का प्रतीक वन गया। 'सन्धि' शब्द अपभ्रंश महाकाव्य के सर्ग का वाचक न रहकर विशिष्ट काव्य-विधा का ही प्रतीक वन गया। 'चौपाई' सज्ञक काव्य चौपाई छन्द मे ही वधा न रहकर वह जीवन की व्यापक चित्रण क्षमता का प्रतीक वन कर छन्द की रूढ कारा से मुक्त हो गया।

उपर्युक्त उदाहरणो से स्पष्ट है कि जैन कवियो ने एक ओर काव्यरूपो की परम्परा के धरातल को व्यापकता दी तो दूसरी ओर उनको वहिरग से अतरग की ओर तथा स्थूल से सूक्ष्म की ओर खीचा।

यहा यह भी स्मरणीय है कि जैन कवियो ने केवल पद्य के क्षेत्र मे ही नवीन काव्यरूप खडे नही किये वरन् गद्य-क्षेत्र में भी कई नवीन काव्य-रूपो की सृष्टि की। यह सृष्टि इसलिए और भी महत्त्वपूर्ण है क्योकि उसके द्वारा हिन्दी गद्य का प्राचीन इतिहास प्रकट होता है। हिन्दी के प्राचीन ऐतिहासिक और कलात्मक गद्य के विकास मे इन काव्य-रूपो की देन बडी महत्त्वपूर्ण है।

जैन कवि सामान्यत सन्त रहे हैं। व्याख्यान और प्रवचन देना उनके दैनिक आचार का प्रमुख अग है। दर्शन जैसे जटिल और गूढ विषयो को समझाने के लिए वे कवि सन्त से साहित्यकार बने। धर्म प्रचार की दृष्टि से इन्होने अपनी बात को लोकमानस तक पहुचाने के लिए काव्य और सगीत का सहारा लिया तथा अपनी परम्परा को सुरक्षित रखने व शास्त्र-विवेचन के लिए प्रमुखत ऐतिहासिक और टीका ग्रन्थो का सहारा लिया। एक का मुख्यत माध्यम बना पद्य और दूसरे का गद्य। फलत दोनो क्षेत्रो मे कई काव्य-रूपो का सृजन और विकास हुआ।

पद्य के सौ से अधिक काव्यरूप देखने को मिलते है। सुविधा की दृष्टि से इनके चार वर्ग किये जा सकते है—चरित्र काव्य, उत्सव काव्य, नीतिकाव्य, और स्तुति काव्य। चरित-काव्य मे सामान्यत. किसी धार्मिक पुरुष, तीर्थंकर आदि की कथा कही गई है। ये काव्य, रास, चौपाई, ढाल, पवाडा, सधि , चर्चरी, प्रवन्ध, चरित, सम्वन्ध, आख्यानक, कथा आदि रूपो मे लिखे गये हैं। उत्सव काव्य विभिन्न पर्वों और ऋतु विशेष के बदलते हुए वातावरण के उल्लास और विनोद को चित्रित करते है। फागु, धमाल, बारहमासा, विवाहलो, धवल, मगल आदि काव्यरूप इसी प्रकार के है। इनमे सामान्यत लौकिक रीति-नीति को माध्यम बनाकर उनके लोकोत्तर रूप को ध्वनित किया गया है। नीति-काव्य जीवनोपयोगी उपदेशो से सम्बन्धित है। इनमें सदाचार-पालन, कषाय-त्याग, व्यसन-त्याग, ब्रह्मचर्य, व्रत, पच्चक्खाण, भावना, ज्ञान, दर्शन, चारित्र, तप, दान, दया, सयम आदि का माहात्म्य तथा प्रभाव वर्णित है। सवाद, कक्का, मातृका, बावनी, छत्तीसी, कुलक, हीयाली आदि काव्यरूप इसी प्रकार के हैं। स्तुतिकाव्य महापुरुषो और तीर्थंकरो की स्तुति से सम्बन्धित हैं। स्तुति, स्तवन, स्तोत्र, सज्झाय, विनति, नमस्कार, चौवीसी, बीसी आदि काव्यरूप स्तवनात्मक ही हैं।

गद्य साहित्य के भी स्थूल रूप से दो भाग किये जा सकते है। मौलिक गद्य-सृजन और टीका, अनुवाद आदि। मौलिक गद्य सृजन धार्मिक, ऐतिहासिक, कलात्मक आदि विविध रूपो में मिलता है। धार्मिक गद्य में सामान्यत कथात्मक और तात्विक गद्य के ही दर्शन होते हैं। ऐतिहासिक गद्य गुर्वावली, पट्टावली, वशावली, उत्पत्तिग्रन्थ, दफ्तर बही, टिप्पण आदि रूपो में लिखा गया। इन रूपो मे इतिहास-धर्म की पूरी-पूरी रक्षा करने का प्रयत्न किया गया है। आचार्यों आदि की प्रशस्ति यहा अवश्य है पर वह ऐतिहासिक तथ्यो की अवहेलना नही करती। कलात्मक गद्य वचनिका, दवावैत, वात, सिलोका, वर्णक, सस्मरण आदि रूपो में लिखा गया। अनुप्रासात्मक झकारमयी शैली और अन्त्तर्तुकात्मकता इस गद्य की अपनी विशेषता है। आगमो मे निहित दर्शन और तत्व को जनोपयोगी बनाने की दृष्टि से प्रारम्भ में निर्युक्तिया और भाष्य लिखे गये। पर ये पद्य में थे। बाद में चलकर इन्ही पर चूर्णिया लिखी गईं। ये गद्य में थी। निर्युक्ति, भाष्य और चूर्णि साहित्य प्राकृत अथवा प्राकृत-सस्कृत मिश्रित मे ही मिलता है। आगे चलकर टीकायुग आता है। ये टीकाए आगमो पर ही नही लिखी गईं वरन् निर्युक्तियो और भाष्यो पर भी लिखी गईं। ये टीकाए प्रारम्भ में सस्कृत मे और बाद मे लोक-कल्याण की भावना से सामान्यत पुरानी हिन्दी मे लिखी मिलती है। इनके दो रूप विशेष प्रचलित हैं। टब्बा और बालावबोध। टब्बा सक्षिप्त रूप है जिसमें शब्दो के अर्थ ऊपर, नीचे या पार्श्व में लिख दिये जाते है पर बालावबोध में व्याख्यात्मक समीक्षा के दर्शन होते है। यहा निहित सिद्धान्त को कथा और दृष्टान्त दे-देकर इस प्रकार समझाया जाता है कि बालक जैसा मन्द बुद्धि वाला भी उसके सार को ग्रहण कर सके। पद्य और गद्य के ये विभिन्न साहित्य रूप जैन साहित्य की विशिष्ट देन हैं।

जैन साहित्यकार सामान्यत. साधक और सन्त रहे है । साहित्य उनके लिए विशुद्ध कला की वस्तु कभी नही रहा, वह धार्मिक आचार की पवित्रता और साधना का एक अग वन कर आया है । यही कारण है कि अभिव्यक्ति मे सरलता सुबोधता और सहजता का सदा आग्रह रहा है । जब अपभ्रश से हिन्दी, राजस्थानी, गुजराती आदि भाषाए विकसित हुई तो जैन साहित्यकार अपनी बात इन जनपदीय भाषाओ मे सहज भाव से कहने लगे । यह भाषागत उदारता उनकी प्रतिभा पर आवरण नही डालती वरन् भाषाओ के ऐतिहासिक विकासक्रम को सुरक्षित रखे हुए है ।

जैन साहित्यकार साहित्य को कलाबाजी नही समझते । वे उसे अकृत्रिम रूप से हृदय को प्रभावित करने वाली आनन्दमयी कला के रूप मे देखते है । जहा उन्होने लोक भाषा का प्रयोग किया वहा भाषा को सशक्त बनाने वाले अधिकाश उपकरण भी लोक-जीवन से ही चुने है । छन्दो मे तो इतना वैविध्य है कि सभी धर्मो, परम्पराओ और रीति-रिवाजो से वे सीधे खीचे चले आ रहे है । ढालो के रूप मे, जो देशिया अपनाई गई है, वे इसकी प्रतीक हैं। पर इससे यह न समझा जाये कि उनका काव्य-शास्त्रीय ज्ञान अपूर्ण था या बिल्कुल ही नही था । ऐसे कवि भी जैन-जगत् मे कई हो गये है जो शास्त्रीय परम्परा मे सर्वोच्च ठहरते हैं, आलकारिक चमत्कारिता, शब्दक्रीडा और छन्दशास्त्रीय मर्यादा-पालन मे जो होड लेते प्रतीत-होते हैं, पर यह प्रवृत्ति जैन-साहित्य की सामान्य प्रवृत्ति नही है ।

जैन साहित्य मे जो नायक आये है, उनके दो रूप है—मूर्त और अमूर्त । मूर्त नायक मानव है, अमूर्त नायक मनोवृत्ति विशेष । मूर्त नायक साधारण मानव कम, असाधारण मानव अधिक है । यह असाधारणता आरोपित नही, अर्जित है । अपने पुरुषार्थ, शक्ति और साधना के बल पर ही ये साधारण मानव विशिष्ट श्रेणी में पहुच गये है । ये पात्र सामान्यत सस्कारवश या किसी निमित्त कारण से विरक्त हो जाते हैं और प्रव्रज्या अंगीकार कर लेते हैं । दीक्षित होने के बाद पूर्व जन्म के कर्म उदित होकर कभी उपसर्ग बनकर, कभी परीषह बनकर सामने आते हैं पर ये अपनी साधना से विचलित नही होते । परीक्षा के कठोर आघात इनकी आत्मा को और अधिक मजबूत तथा इनकी साधना को और अधिक तेजस्वी बना देते हैं । प्रतिनायक परास्त होते हैं, पर अन्त तक दुष्ट बनकर नही रहते । उनके जीवन मे भी परिवर्तन आता है और वे नायक के व्यक्तित्व की प्रेरक किरण का स्पर्श पाकर साधना पथ पर चल पडते है ।

जैन साहित्य के मूल मे आदर्शवादिता है । वह सघर्ष मे नही मगल मे विश्वास करता है । यहा नायक का अन्त दुखद मृत्यु मे नही होता । उसे कथा के अन्त में आध्यात्मिक वैभव से सम्पन्न अनन्तबल, अनन्तज्ञान, अनन्तसुख और अनन्त सौन्दर्य का धारक बताया गया है ।

जैन साहित्य मे यो तो सभी रस यथावसर अभिव्यजित हुए हैं पर अगीरस शान्त रस ही है । प्राय प्रत्येक कथा-काव्य का अन्त शान्त रसात्मक ही है । इतना सब कुछ होते हुये भी जैन साहित्य में शृगार रस के बडे भावपूर्ण स्थल और मार्मिक प्रसग भी देखने को मिलते हैं । विशेषकर विप्रलभ शृगार के जो चित्र हैं वे बडे मर्मस्पर्शी और हृदय को गद्‌गद् करने वाले हैं । मिलन के राशि-राशि चित्र वहा देखने को मिलते है जहा कवि 'सयमश्री' के विवाह की रचना करता हैं । यहा जो शृगार है वह रीतिकालीन कवियो के भाव सौंदर्य से तुलना मे किसी प्रकार कम नही है, पर उसमे मन को सुलाने वाली मादकता नही वरन् आत्मा को जागृत करने वाली मनुहार है । शृगार की यह धारा आवेगमयी बनकर, नायक को शान्त रस के समुद्र की गहराई में बहुत दूर तक पैठा देती हैं ।

राजस्थान की धार्मिक पृष्ठभूमि :

राजस्थान वीर-भूमि होने के साथ-साथ धर्म-भूमि भी है। शक्ति और भक्ति का सामजस्य इस प्रदेश की मूल सास्कृतिक विशेषता है। यहा के वीर भक्तिभावना से प्रेरित होकर अपनी अद्भुत शौर्यवृत्ति का परिचय देते हुये आत्मोत्सर्ग की ओर वढते रहे, तो यहा के भक्त अपने पुरुषार्थ, साधना और सामर्थ्य के वल पर धर्म को सतेज करते रहे।

राजस्थान मे उदार मानववाद के धरातल पर वैदिक, वैष्णव, शैव, शाक्त, जैन, इस्लाम, आदि सभी धर्म अपनी-अपनी रगत के साथ सौहार्दपूर्ण वातावरण में फलते-फूलते रहे। यहा की प्राकृतिक स्थिति और जलवायु ने जीवन के प्रति निस्पृहता और अनुरक्ति, कठोरता और कोमलता, सयमशीलता और सरसता का समानान्तर पाठ पढाया। यह जीवन-दृष्टि यहा के धर्म, साहित्य, सगीत और कला मे स्पष्ट प्रतिविम्बित है।

प्रारम्भ से ही राजस्थान के जन-जीवन पर धर्म का व्यापक प्रभाव रहा है। प्राचीनकाल से ही यहा यज्ञ की वैदिक परम्परा विद्यमान रही है। दूसरी शताब्दी ईसा के घोसुण्डी शिलालेख में अश्वमेध यज्ञ के सम्पादन का उल्लेख मिलता है। पौराणिक धर्म के अन्तर्गत विष्णु, शिव, दुर्गा, ब्रह्मा, गणेश, सूर्य आदि देवी-देवताओ की आराधना के लिये चित्तौड, ओसिया, पुष्कर, आहड, भीनमाल आदि नगरो मे समय-समय पर अनेक मन्दिरो का निर्माण हुआ। ध्यान देने की वात यह है कि यद्यपि यहा विभिन्न देवी-देवताओ की उपासना प्रचलित रही तथापि धार्मिक सहिष्णुता की भावना को इससे कोई ठेस नही पहुची। धार्मिक सहिष्णुता की यह भावना प्रतिहार काल मे हिन्दू देवताओ की मूर्तियो के निर्माण में अभिव्यक्त हुई है। वघेरा तथा वेदला से प्राप्त हरिहर की मूर्ति, हर्ष से प्राप्त तीन मुख वाले सूर्य की मूर्ति, झालावाड से प्राप्त सूर्य-नारायण की मूर्ति, आम्वानेरी से प्राप्त अर्द्धनारीश्वर की मूर्ति और अजमेर म्यूजियम में उपलब्ध विष्णु तथा त्रिपुरुष की त्रिमूर्ति धर्म की समन्वयात्मक प्रवृत्ति की सुन्दर प्रतीक है।

राजस्थान मे प्राचीन काल से शैव मत का व्यापक प्रसार रहा है। पाशुपत, कापालिक, लकुलीश आदि अनेक शैव सम्प्रदाय राजस्थान मे प्रचलित रहे हैं। राजस्थान मे शिव की उपासना अनेक नामो से की जाती रही है, यथा एकलिंग, समिधेश्वर, अचलेश्वर, शम्भु, भवानीपति, पिनाकिन, चन्द्रचूडामणि आदि। मेवाड के महाराणाओ ने श्री एकलिंगजी को ही राज्य का स्वामी माना और स्वय उनके दीवान बनकर रहे। नाथ सम्प्रदाय का जोधपुर क्षेत्र मे विशेष प्रभाव और सम्मान रहा है। राजस्थान मे कई स्थलो पर उनके अखाडे हैं।

राजस्थान मे वैष्णव धर्म का प्राचीनतम उल्लेख दूसरी शताब्दी ई पूर्व के घोसुण्डी अभिलेख मे मिलता है। इस मत के अन्तर्गत कृष्णलीला से सवधित दृश्य उत्कीर्ण मिलते हैं। कृष्ण लीला मे कृष्ण चरित से सवधित कई आख्यान तक्षण-कला के माध्यम से भी व्यक्त हुये हैं। कृष्ण भक्ति के साथ राम भक्ति भी राजस्थान मे समादृत हुई है। मेवाड के महाराणा तो राम से अपना वशक्रम निर्धारित करते है।

राजस्थान मे शक्ति के रूप में देवी की उपासना का भी प्रचलन रहा है। शक्ति की आराधना, शौर्य, क्रोध और करुणा की भावना से जुडी हुई है। अतएव शक्ति की मातृदेवी, लक्ष्मी, सरस्वती, महिषासुरमर्दिनी, दुर्गा, पार्वती, अम्बिका, काली, सच्चिका आदि रूप मे स्तुति की गई है। राजस्थान के कई राजवश शक्ति को कुलदेवी के रूप मे पूजते रहे है। बीकानेर के राज परिवार ने करणी माता को, जोधपुर राज परिवार ने नागणेचीजी को, सीसोदिया नरेश ने बाणमाता को और कछवाहो ने अन्नपूर्णा को कुलदेवी स्वीकृत किया है।

राजस्थान इस्लाम धर्म के प्रभाव से भी अछूता नही रहा। यहा 12वी शती मे इसका विशेष प्रसार हुआ। अजमेर इसका मुख्य केन्द्र बना और यही से जालौर, नागौर, माडल, चित्तौड आदि स्थानो मे यह फैला। राजस्थान मे इसके प्रचारक सतो में मुइनुद्दीन चिश्ती प्रमुख थे।

सम्पूर्ण भारत मे मध्ययुग मे धर्मसुधार आन्दोलन की जो लहर फैली, उससे राजस्थान भी प्रभावित हुआ और रूढिवाद, वाह्य आडम्बर तथा जड पूजा के खिलाफ क्राति चेतना मुखरित हो उठी। इस नई धार्मिक चेतना ने एक ओर गोगाजी, पावूजी, तेजाजी जैसे लोकदेवो को अपने प्रतिज्ञापालन, आत्मवलिदान तथा सदाचारनिष्ठ सादगीमय जीवन के कारण सम्मान प्रदान किया तो दूसरी ओर जाम्भोजी, जसनाथजी, दादूजी जैसे विशिष्ट सत पुरुषो को प्रकट किया जिन्होने धर्म को वाह्याचार से आत्मशुद्धि और आन्तरिक पवित्रता की ओर मोडा। इन सतो ने आत्म-साधना और आत्म-कल्याण के सिद्धातो की व्याख्या वोल-चाल की भाषा मे की। राजस्थान मे पनपने वाले ऐसे मुख्य जैनेतर सत सम्प्रदायो की तालिका इस प्रकार है —

	नाम	प्रवर्तक	समय	प्रधान स्थल
			विक्रम सवत्	
1	विश्नोई सम्प्रदाय	जाभोजी	1508–93	मुकाम (बीकानेर)
2	जसनाथी सम्प्रदाय	जसनाथजी	1539–63	कतरियासर (बीकानेर)
3	निरजनी सम्प्रदाय	हरिदासजी	1512–95	डीडवाना (नागौर)
4	लाल पथ	लालदासजी	1597–1705	नगला (अलवर)
5	दादू पथ या ब्रह्म सम्प्रदाय	दादू	1601–60	नराणा (जयपुर)
6	रामस्नेही रैणशाखा	दरियावजी	1733–1815	रैण (नागौर)
7	रामस्नेही सीथल शाखा	हरिरामदासजी	1754–1835	सीथल (बीकानेर)
8	रामस्नेही खैडापा शाखा	रामदासजी	1783–1855	खैडापा (जोधपुर)
9	रामस्नेही शाहपुरा शाखा	रामचरणदासजी	1776–1855	शाहपुरा (भीलवाडा)
10	चरणदासजी सम्प्रदाय	चरणदासजी	1760–1839	डेहरा (अलवर)
11	जैहरि सम्प्रदाय	तारणदासजी	1822–1932	रतनगढ
12	अलखिया सम्प्रदाय	लालगिरि	1860–1925	बीकानेर
13	गूदड पथ	सतदासजी	–1822	दातडा (मेवाड)
14	भाव पथ	भावजी	1771–1801	साबला (डूगरपुर)
15	आई पथ	आईमाता	1472–1561	बिलाडा (जोधपुर)
16	नवल पथ	नवलनाथजी	1840–1965	जोधपुर

राजस्थान मे जैन धर्म .

उपर्युक्त धार्मिक पृष्ठभूमि के समानान्तर ही प्रारम्भ से राजस्थान मे जैन धर्म प्रभावी रहा है। भगवान् महावीर के जीवनकाल मे ही राजस्थान के कुछ भागो मे जैन धर्म के प्रचार एव प्रसार का ज्ञान परवर्ती जैन साहित्य से होता है। महावीर के मामा एव लिच्छवी गणतन्त्र के प्रमुख चेटक की ज्येष्ठ पुत्री प्रभावती सिन्धु सौवीर के शासक उदायन को ब्याई गई थी। उदायन जैनमतावलम्बी हो गया था। 'भगवती सूत्र' के अनुसार उसने अपने भाणेज केशी को राज्य देकर अन्तिम समय में श्रमण दीक्षा ग्रहण कर ली थी। सामान्यत. सौवीर प्रदेश के अन्तर्गत जैसलमेर और कच्छ के हिस्से भी माने जाते हैं। भीनमाल के 1276 ई के एक अभिलेख से विदित होता है कि महावीर स्वामी स्वय श्रीमाल नगर पधारे थे। आबूरोड से 8 किलोमीटर पश्चिम मे मुंगस्थल से प्राप्त 1369 ईस्वी के शिलालेख से पता चलता है कि भगवान् महावीर स्वामी स्वय अर्बुद भूमि पधारे थे, पर ये विवरण बहुत बाद के हैं, अत इनकी सत्यता सदिग्ध है।

राजस्थान में जैनधर्म के प्रसार का सर्वाधिक ठोस प्रमाण ईसा से पूर्व 5वी शताब्दी का बडली शिलालेख माना जाता है जिसमे वीर निर्वाण सवत् के 84वे वर्ष का तथा चित्तौड के समीप स्थित माझमिका (माध्यमिका) का उल्लेख है। माझमिका जैन धर्म का प्राचीन केन्द्र रही है जहा जैन श्रमण सघ की माध्यमिका शाखा की स्थापना सुहस्ती के द्वितीय शिष्य प्रियग्रन्थ ने की थी। मौर्य युग मे चन्द्रगुप्त ने जैन धर्म के प्रसार के लिये कई प्रयत्न किये। अशोक के पौत्र राजा सम्प्रति ने जैन धर्म के उन्नयन एव विकास में महत्त्वपूर्ण योग दिया। कहा जाता है कि उसने राजस्थान में कई जैन मन्दिर बनवाये और वीर निर्वाण सवत् 203 मे आर्य सुहस्ती के द्वारा घघाणी में पद्मप्रभु की प्रतिमा की प्रतिष्ठा करायी थी।

विक्रम की दूसरी शती मे बने मथुरा के ककाली टीले की खुदाई से अति प्राचीन स्तूप और जैन मन्दिरो के ध्वसावशेष मिले हैं जिनसे ज्ञात होता है कि राजस्थान में उस समय जैन धर्म का अस्तित्व था। केशोरायपाटन मे गुप्तकालीन एक जैन मन्दिर के अवशेष से, सिरोही क्षेत्र के बसन्तगढ मे प्राप्त भगवान् ऋषभदेव की खड्गासन प्रतिमा से, जोधपुर क्षेत्र के ओसिया के महावीर मन्दिर के शिलालेख से, कोटा की समीपवर्ती जैन गुफाओ से, उदयपुर के पास स्थित आयड के पार्श्वनाथ मन्दिर और जैसलमेर के लोदरवा स्थित जिनेश्वरसूरि की प्रेरणा से निर्मित पार्श्वनाथ के मन्दिर से यह स्पष्ट होता है कि राजस्थान में जैन धर्म का प्रचार ही नही था, वरन् सभी क्षेत्रो में उसका अच्छा प्रभाव भी था।

अजमेर क्षेत्र मे भी जैन धर्म का व्यापक प्रभाव रहा। पृथ्वीराज चौहान प्रथम ने बारहवी शताब्दी के प्रारम्भ मे रणथम्भौर के जैन मन्दिर पर स्वर्ण कलश चढाये थे। यहा के राजा अर्णोराज के मन में श्री जिनदत्तसूरि के प्रति विशेष सम्मान का भाव था। जिनदत्त-सूरि मरुधरा के कल्पवृक्ष माने गये हैं। इनका स्वर्गवास अजमेर मे हुआ। इनके निधन के उपरान्त इनकी पुण्य स्मृति मे राजस्थान मे स्थान-स्थान पर दादावाडियो का निर्माण हुआ।

कुमारपाल के समय मे हेमचन्द्र की प्रेरणा से जैन धर्म का विशेष प्रचार हुआ। आबू के जैन मन्दिर, जो अपनी स्थापत्यकला के लिये विश्व विख्यात हैं, इसी काल मे बने। पन्द्रहवी शती में निर्मित राणकपुर का जैन मन्दिर भी भव्य और दर्शनीय है। जयपुर क्षेत्रीय श्री महावीरजी और उदयपुर क्षेत्रीय श्री केसरियानाथजी के मन्दिरो ने जैन धर्म की प्रभावना में महत्त्वपूर्ण योग दिया है। ये तीर्थस्थल सभी धर्मों व वर्गों के लिये श्रद्धा केन्द्र बने हुये है। इस क्षेत्र के मीणा और गूजर लोग भगवान महावीर और ऋषभदेव को अपना परम आराध्य मानते है।

यह तथ्य ध्यान देने योग्य है कि महावीर के निर्वाण के लगभग 600 वर्ष बाद जैन धर्म दो मतो में विभक्त हो गया—दिगम्बर और श्वेताम्बर। जो मत साधुओ की नग्नता का पक्षधर था और उसे ही महावीर का मूल आचार मानता था, वह दिगम्बर कहलाया। यह मूल सघ नाम से भी जाना जाता है और जो मत साधुओ के वस्त्र-पात्र का समर्थन करता था वह श्वेताम्बर कहलाया। आगे चलकर दिगम्बर सम्प्रदाय कई सघो मे विभक्त हो गया। जिनमे मुख्य हैं—द्राविड सघ, काष्ठ सघ और माथुर सघ। कालान्तर मे शुद्धाचारी, तपस्वी दिगम्बर मुनियो की सख्या कम हो गई और एक नये भट्टारक वर्ग का उदय हुआ जिसकी साहित्य के क्षेत्र मे महत्त्वपूर्ण सेवाये रही हैं। जब भट्टारको मे शिथिलाचार पनपा तो उसके विरुद्ध सत्रहवी शती मे एक नये पथ का उदय हुआ जो तेरहपथ कहलाया। इस पंथ मे टोडरमल जैसे दार्शनिक विद्वान् हुए। श्वेताम्बर सम्प्रदाय भी आगे चल कर दो भागो मे बट गया—चैत्यवासी और वनवासी। चैत्यवासी उग्रविहार छोडकर मन्दिरो में रहने लगे। कालान्तर मे श्वेताम्बर सम्प्रदाय कई गच्छो मे विभक्त हो गया। इनकी सख्या 84 कही जाती है। इनमे खरतरगच्छ और तपागच्छ प्रमुख है। कहा जाता है कि वर्धमानसूरि के शिष्य जिनेश्वरसूरि ने गुजरात के अणहिलपुर पट्टण के राजा दुर्लभराज की सभा मे सन् 1017 ई मे जब चैत्यवासियो को परास्त किया तो राजा ने उन्हें 'खरतर' नाम दिया और इस प्रकार 'खरतरगच्छ' नाम चल पड़ा। तपागच्छ के सस्थापक श्री जगतचन्द्र सूरि माने जाते हैं। सन् 1228 ई मे इन्होने उग्रतप किया। इस उपलक्ष्य मे मेवाड के महाराणा जैत्रसिह ने इन्हें 'तपा' उपाधि से विभूषित किया। तब से यह गच्छ 'तपागच्छ' नाम से प्रसिद्ध हुआ। खरतरगच्छ और तपागच्छ दोनो ही मूर्ति पूजा मे विश्वास करते हैं ।

चौदहवी - पन्द्रहवी शती में सतो ने धर्म के नाम पर पनपने वाले बाह्य आडम्बर का विरोध किया, इससे भगवान् की निराकार उपासना को बल मिला। श्वेताम्बर परम्परा मे स्थानकवासी और तेरापथी अमूर्तिपूजक हैं। ये मूर्तिपूजा मे विश्वास नही करते। स्थानकवासियो का सबध गुजरात की लोकागच्छ परम्परा से रहा है। राजस्थान मे यह परम्परा शीघ्र ही फैल गयी और जालौर, सिरोही, जैतारण, नागौर, बीकानेर आदि स्थानो पर इसकी गद्दिया प्रतिष्ठापित हो गयी। इस परम्परा में जब आडम्बर बढा तब जीवराजजी, हरजी, धन्नाजी, पृथ्वीचन्द्र जी, मनोहरजी आदि पूज्य मुनियो ने तपत्यागमूलक सद्धर्म का प्रचार किया। स्थानकवासी परम्परा बाईस सम्प्रदाय के नाम से भी प्रसिद्ध है।

श्वेताम्बर तेरापथ के मूल सस्थापक आचार्य भिक्षु है। यह पथ सैद्धातिक मतभेद के कारण सवत् 1817 मे स्थानकवासी परम्परा से अलग हुआ। इस पथ के चौथे आचार्य, जो जयाचार्य के नाम से प्रसिद्ध है, राजस्थानी के महान् साहित्यकार थे। इन्होने तेरापथ के लिये कुछ मर्यादायें निश्चित कर मर्यादा महोत्सव का सूत्रपात किया। इस पथ के वर्तमान नवम् आचार्य श्री तुलसीगणी है जिन्होने अणुव्रत आदोलन के माध्यम से नैतिक जागरण की दिशा मे विशेष पहल की है।

राजस्थान मे जैन धर्म के विकास और प्रसार में इन सभी जैन मतो का महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। जैन धर्म के विभिन्न आचार्यो, सतो और श्रावको का जन साधारण के साथ ही नही वरन् यहा के राजा-महाराजाओ के साथ भी घनिष्ठ सबंध रहा है। प्रभावशाली जैन श्रावक यहा प्रधान, दीवान, सेनापति, सलाहकार और किलेदार जैसे विशिष्ट उच्च पदो पर सैंकड़ो की सख्या में रहे हैं।[1] उदयपुर क्षेत्र के नवलखा रामदेव, नवलखा महणपाल, कर्माशाह, भामा-

---

1 इस सबध में डा देव कोठारी का 'देशी रियासतो के शासन प्रबन्ध मे जैनियो का सैनिक व राजनीतिक योगदान' लेख विशेष रूप से पठनीय है। 'जिनवाणी' का 'जैन सस्कृति और राजस्थान' विशेषाक, पृ. 307 से 331।

शाह क्रमश महाराणा लाखा, महाराणा कुम्भा, महाराणा सागा और महाराणा प्रताप के समय मे प्रधान एवं दीवान थे। कुम्भलगढ़ के किलेदार आसाशाह ने बालक राजकुमार उदयसिंह का गुप्त रूप से पालन-पोषण कर अपने अदम्य साहस और स्वामिभक्ति का परिचय दिया था। बीकानेर के वच्छराज, कर्मचन्द्र वच्छावत, महाराव हिन्दूमल क्रमश राव बीका, महाराजा रायसिंह एव महाराजा रत्नसिंह के समय में दीवान थे। बीकानेर के महाराजा रायसिंह, कर्णसिंह, और सूरतसिंह ने क्रमश जैनाचार्य जिनचन्द्रसूरि, धर्मवर्धन व ज्ञानसारजी को बडा सम्मान दिया। जोधपुर राज्य के प्रधान व दीवानो मे भण्डारी नराजी, भण्डारी मानाजी, मूणोत नैणसी की सेवाये क्रमश राव जोधा, मोटाराजा उदयसिंह व महाराजा जसवतसिंह के शासनकाल मे विशेप महत्त्वपूर्ण रही। जयपुर राज्य के जैन दीवानो की लम्वी परम्परा रही है।[1] इनमें मुख्य है—सघी मोहनदास, रामचन्द्र छावडा, सघी हुक्मचन्द, सघी झूथाराम, श्योजीराम, अमरचन्द, राव कृपाराम पाड्या, बालचन्द्र छावडा, रायचन्द छाबडा, विजैराम तोतूका, नथमल गोलेछा आदि। इन सभी वीर मन्त्रियो ने अपने प्रभाव से न केवल जैन मन्दिरो का निर्माण या जीर्णोद्धार ही करवाया वरन् जनकल्याणकारी विभिन्न प्रवृत्तियो के विकास एव सचालन मे योग दिया और देश की रक्षा व प्रगति के लिये सघर्ष किया।

स्वतन्त्रता के बाद राजस्थान के नव निर्माण की सामाजिक, धार्मिक, शैक्षणिक, राजनैतिक और आर्थिक प्रवृत्तियो मे जैन धर्मावलम्बियो की महत्त्वपूर्ण भूमिका रही है। विभिन्न लोकोपकारी सस्थाओ और ट्रस्टो द्वारा लोगो को यथाशक्य सहायता दी जाती है। मानव समाज मे प्रचलित कुव्यसनों को मिटाकर सात्विक जीवन जीने की प्रेरणा देने वाली वीरवाल-धर्मपाल प्रवृत्ति का रचनात्मक कार्यक्रम अहिंसक समाज रचना की दृष्टि से विशेष महत्त्वपूर्ण है। व्यावहारिक शिक्षण के साथ-साथ नैतिक शिक्षण के लिये कई जैन शिक्षण सस्थाये, स्वाध्याय मडल और छात्रावास कार्यरत हैं। जन स्वास्थ्य के सुधार की दिशा मे विभिन्न क्षेत्रो मे कई अस्पताल और औषधालय खोले गये है जहा रोगियो को नि शुल्क तथा रियायती दरो पर चिकित्सा सुविधा प्रदान की जाती है। जैन साधु और साध्वियाँ वर्षा ऋतु के चार महिनो मे पद-यात्रा नही करते है। इस काल मे विशेषत तप, त्याग, प्रत्याख्यान, सघ-यात्रा, तीर्थ-यात्रा, मुनि-दर्शन, उपवास, आयम्बिल, मासखमण, सवत्सरी, क्षमापर्व जैसे विविध उपासना प्रकारो द्वारा आध्यात्मिक जागृति के विविध कार्यक्रम बनाये जाते है। इससे व्यक्तिगत जीवन निर्मल, स्वस्थ और उदार बनता है तथा सामाजिक जीवन में बधुत्व, मैत्री, वात्सल्य जैसे भावो की वृद्धि होती है।

कुल मिलाकर कहा जा सकता है कि जैन धर्म की दृष्टि राजस्थान के सर्वागीण विकास पर रही है। उसने मानव जीवन की भौतिक सफलता को ही मुख्य नही माना, उसका बल रहा मा.व जीवन की सार्थकता और आत्मशुद्धि पर।

राजस्थान का जैन साहित्य

ऊपर के विवेचन से यह स्पष्ट है कि धार्मिक भावना ने राजस्थान के साहित्य, सस्कृति और कला को व्यापक रूप से प्रभावित किया है। वस्तुत धार्मिक अनुभूति कोई सकीर्ण मनोवृत्ति नही है। वह एक नैतिक, मनोवैज्ञानिक और सामाजिक वृत्ति है जो मानवता के अस्तित्व के साथ जुडी हुई है। जब यह वृत्ति सर्जनात्मक स्तर पर रसमय बनकर मानवमन के रन्ध्रो को

---

1 इस सवध मे प भवरलाल जैन का 'जयपुर के जैन दीवान' लेख पठनीय है। 'जिनवाणी' का 'जैन सस्कृति और राजस्थान' विशेषाक, पृष्ठ 332 से 339।

छूती है, तब साहित्य और कला की सृष्टि होती है। इस बिन्दु पर आकर धार्मिक मूल्य और कलात्मक मूल्यो मे विशेष अन्तर नही रहता।

साहित्यकार कल्पना का आश्रय अवश्य लेता है पर वह मात्र कल्पनाजीवी बनकर जीवित नही रह सकता। चूकि सामान्य लोगो से वह अधिक सवेदनशील और क्रातिद्रष्टा होता है अत. उसकी विवेक शक्ति सक्रमण काल मे जनता के मनोवल को थामे रखने मे विशेष सहायक बनती है और सकटकाल मे सास्कृतिक तत्वो को नष्ट होने से बचाती है। जब राष्ट्रीयता राजनीति के स्तर पर सीमित हो जाती है और उसकी सास्कृतिक चेतना मन्द पड जाती है तब राष्ट्रीयता को सार्वजनीन नैतिक उत्कर्ष का दार्शनिक आधार सत साहित्यकार ही दे पाते हैं। वे ही राष्ट्र की आत्मा को, उसकी जीवनशक्ति को, ऊर्जा को सतेज बनाये रखने मे समर्थ होते हैं। भगवान् महावीर और उनके बाद के प्रभावक आचार्यों ने यह भूमिका निभायी। मध्ययुग मे जब विदेशी आक्रमणकारियो से हम राजनैतिक दृष्टि से परास्त हो गये तब भी इन सतो और आचार्यों ने भक्ति, धर्म और साहित्य के धरातल से सास्कृतिक आदोलन की प्रक्रिया जारी रखी। आधुनिक युग मे जब अग्रेजी शासन का दमन चक्र चला तब भी राष्ट्र के स्वतन्त्र्य-भाव को इन सतो ने धार्मिक व सास्कृतिक स्तर पर बुलद रखा। अहिसा, सत्याग्रह, स्वदेशीपन, लोकसेवा, सहअस्तित्व जैसे मूल्यो और आदर्शो के समाजीकरण मे इन सतों का विशेष योगदान रहा है।

राजस्थान मे जो जैन साहित्य रचा गया है, वह कथ्य और शिल्प दोनो ही दृष्टियो से बहुरगी व बहुआयामी है। अब तक जो कुछ प्रकाश मे आ पाया है उससे अधिक भाग अब भी पाण्डुलिपियो के रूप मे विभिन्न ज्ञान भण्डारो मे बन्द है। विभिन्न मतो के आचार्यो व सतो ने अपने-अपने प्रभाव-क्षेत्र के लोगो के स्वभाव व देशकाल को ध्यान मे रखकर वैविध्यपूर्ण साहित्य की रचना की है। प्राकृत, सस्कृत, अपभ्रश, राजस्थानी और हिन्दी सभी भाषाओ मे विपुल परिमाण मे यह साहित्य रचा गया है। रूप और शैली की दृष्टि से विविधता होने पर भी इसकी अपील मे एकोद्देश्यता है। वह प्राणिमात्र को मैत्री के सूत्र मे पिरोती है, समता और सहिष्णुता का सदेश देती है।

स्वतन्त्रता के बाद राजस्थान के जैन साहित्य के लेखन और प्रकाशन मे विशेष मोड आया। रूपात्मक दृष्टि से प्राचीन व मध्ययुगीन काव्य रूपो के स्थान पर उपन्यास, कहानी जैसे नवीन रूप अपनाये गये। इस युग की एक प्रमुख प्रवृत्ति शोध एव समीक्षात्मक ग्रथो की उभरी। विश्व-विद्यालयो मे साहित्य, इतिहास, दर्शन विषयो से सबद्ध कई जैन शोध ग्रन्थ लिखे गये, तो स्वतन्त्र रूप से पाण्डुलिपियो के सूचीकरण, प्राचीन साहित्यक और दार्शनिक ग्रन्थो के सम्पादन, समीक्षण और विवेचन के रूप मे शोध प्रवृत्ति का क्षेत्र विस्तृत हुआ। भगवान् महावीर के 2500वे निर्वाण महोत्सव के उपलक्ष्य मे कई सस्थाओ और व्यक्तियो द्वारा भगवान् महावीर के जीवन-दर्शन और जैन धर्म-दर्शन मे सवद्ध कई स्तरीय और सुगम-सुबोध पुस्तकें, पत्र-पत्रिकाओ के विशे-षाक और स्मारिकाये प्रकाशित हुई हैं। स्थानाभाव से उन सबकी चर्चा करना यहा सभव नही है। राज्य सरकार के सहयोग से राजस्थान विश्वविद्यालय मे और अखिल भारतर्षीय साधुमार्गी जैन सघ तथा राज्य सरकार के विशेष अनुदान से उदयपुर विश्वविद्यालय मे प्राकृत एव जैन विद्या विभाग की स्थापना से जैन साहित्य के अध्ययन, अध्यापन एव अनुसधान को विशेष गति मिलेगी और विभिन्न धर्मों के तुलनात्मक अध्ययन से राष्ट्र की भावात्मक एकता पुष्ट होगी।

यह बड़ी प्रसन्नता की बात है कि भगवान् महावीर के 2500 वे निर्वाण वर्ष के अवसर पर राज्य स्तर पर गठित समिति की साहित्यिक योजना के अन्तर्गत यह महत्वपूर्ण ग्रन्थ प्रकाशित

किया जा रहा है। इस ग्रन्थ मे राजस्थान के प्राकृत, संस्कृत, अपभ्रंश, राजस्थानी व हिन्दी भाषा के जैन साहित्य की प्रवृत्तियों और साहित्यकारों का, विद्वान् मुनियो और लेखकों द्वारा जो परिचय, समीक्षण और मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया है उससे प्राचीन काल से अद्यावधि तक अनवरत रूप से प्रवहमान साहित्य-साधना की विभिन्न धाराओ और विच्छित्तियों से साक्षात्कार ही नही होता वरन् राजस्थान की धार्मिक, सास्कृतिक चेतना को समझने में भी मदद मिलती है।

डॉ. नरेन्द्र भानावत
प्राध्यापक, हिन्दी विभाग,
राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर।

सी-235-ए, तिलकनगर, जयपुर-4

विषय-दर्शन

प्राकृत जैन साहित्य

संस्कृत जैन साहित्य

अपभ्रंश जैन साहित्य

राजस्थानी जैन साहित्य

हिन्दी जैन साहित्य

प्रथम परिशिष्ट

द्वितीय परिशिष्ट

निबन्धों के मनीषी लेखक

1. मुनि श्री नथमल–
   शोधपूर्ण अनेको ग्रन्थो के लेखक, अनुवादक, सम्पादक, आशुकवि तथा तेरापथी सम्प्रदाय के प्रमुख विद्वान्

2 श्री देवेन्द्र मुनि शास्त्री–
   शोधपूर्ण विविध ग्रन्थो के लेखक, अनुवादक, सम्पादक तथा स्थानकवासी सम्प्रदाय के प्रख्यात विद्वान्

3 मुनि श्री गुलाबचन्द 'निर्मोही'–
   तेरापन्थ सम्प्रदाय के विद्वान मुनि

4 मुनि श्री चन्द 'कमल'–
   तेरापन्थ सम्प्रदाय के विद्वान् मुनि

5 साध्वी कनकश्री–
   तेरापन्थ सम्प्रदाय की विदुषी साध्वी

6 डॉ भागचन्द्र जैन भास्कर
   अध्यक्ष, पाली-प्राकृत विभाग, नागपुर विश्वविद्यालय, नागपुर (महाराष्ट्र)

7 डॉ प्रेम सुमन जैन
   प्राध्यापक, प्राकृत (सस्कृत-विभाग), उदयपुर विश्वविद्यालय, उदयपुर (राजस्थान)

8 डॉ कस्तूरचन्द कासलीवाल
   अध्यक्ष, साहित्य शोध विभाग, महावीर भवन, चौडा रास्ता जयपुर (राजस्थान)

9 म विनय सागर, साहित्यमहोपाध्याय
   प्रकाशन एव शोध अधिकारी, राजस्थान प्राच्यविद्या प्रतिष्ठान, रामचन्द्रजी का मन्दिर, एम डी बाजार, जयपुर–2 (राजस्थान)

10 डॉ सत्यव्रत
   अध्यक्ष, सस्कृत विभाग, गवर्नमेन्ट कालेज, श्री गगानगर (राजस्थान)

11 डॉ देवेन्द्रकुमार जैन
   प्रोफेसर, हिन्दी मध्य प्रदेश शासन शिक्षा सेवा, 44 उपानगर, इन्दौर (मध्य प्रदेश)

12 डॉ राजाराम जैन
   महाजन टोली न 2, आरा (बिहार)

13 डॉ देवेन्द्रकुमार शास्त्री
   प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, शासकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, नीमच (मध्य प्रदेश)

14 डॉ हीरालाल माहेश्वरी
प्राध्यापक, हिन्दी साहित्य विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राजस्थान)

15 श्री अगरचन्द नाहटा
अध्यक्ष, अभय जैन ग्रन्थालय, नाहटों की गवाड़, बीकानेर (राजस्थान)

16 डॉ नरेन्द्र भानावत
प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राजस्थान)

17. डॉ. श्रीमती शान्ता भानावत
प्राध्यापिका, वीर बालिका महाविद्यालय, कुंदीगर भैरो का रास्ता,
जयपुर (राजस्थान)

18. डॉ. गंगाराम गर्ग
प्रवक्ता, हिन्दी राजकीय महाविद्यालय, करौली (राजस्थान)

19. डॉ देव कोठारी
उपनिदेशक, साहित्य सस्थान, राजस्थान विद्यापीठ, उदयपुर (राजस्थान)

20. डॉ. हुकमचन्द भारिल्ल
सयुक्त मन्त्री, प टोडरमल स्मारक ट्रस्ट, ए-4 बापूनगर, जयपुर (राज)

21 डॉ इन्दरराज बैद
कार्यक्रम अधिकारी, आकाशवाणी, मद्रास (तमिलनाड)

22 डॉ मूलचन्द सेठिया
प्राध्यापक, हिन्दी विभाग, राजस्थान विश्वविद्यालय, जयपुर (राजस्थान)

23 प भवरलाल न्यायतीर्थ
सम्पादक, वीरवाणी, मणिहारो का रास्ता, जयपुर (राजस्थान)

24 प अनूपचन्द न्यायतीर्थ
साहित्य शोध विभाग, महावीर भवन, चौडा रास्ता, जयपुर (राजस्थान)

25 श्री महावीर कोटिया
स्नातकोत्तर हिन्दी अध्यापक, केन्द्रीय विद्यालय, जयपुर (राजस्थान)

26 डॉ महेन्द्र भानावत
उपनिदेशक, भारतीय लोक कला मण्डल, उदयपुर (राजस्थान)

27 श्री रामवल्लभ सोमाणी,
दीनानाथजी की गली, कल्याण जी का रास्ता, चादपोल, जयपुर ।

28 श्री भवरलाल नाहटा
सपादक, कुशलनिर्देश, 4-जगमोहन मल्लिक लेन, कलकत्ता-7

प्राकृत जैन साहित्य

प्राकृत साहित्य : एक सर्वेक्षण : 1

डॉ. भागचन्द्र जैन भास्कर

प्रत्येक भाषा और साहित्य संस्कृति की निर्माण-प्रक्रिया के विविध रूप सन्निहित रहते हैं। ये रूप कुछ तो परम्परागत होते हैं और कुछ समय के साथ परिवर्तित होते चले जाते हैं। प्राकृत भाषा और साहित्य भी इस तथ्य से बाहर नही गया। वह भी समय की सूक्ष्म गति के साथ प्रवाहित होता रहा और जनसाहित्य तथा जनमानस को प्रभावित करता रहा। संकीर्णता के दायरे से हटकर व्यापक और निर्मुक्त क्षेत्र में ही वह सदव कार्यरत रहा है।

यह लिखना यहा अप्रासगिक नही होगा कि प्राकृत मूलत जनभाषा रही है और भ महावीर ने उसी का अपने सिद्धान्तो के प्रचार-प्रसार का माध्यम बनाया था। ये सिद्धान्त जब लिपिबद्ध होने लगे तब तक स्वभावत भाषा के प्रवाह में कुछ मोड आये और सकलित साहित्य उससे अप्रभावित नही रह सका। समकालीन अथवा उत्तरकालीन घटनाओं के समावेश में भी कोई एकमत नहीं हो सका। किसी ने सहमति दी और कोई उसकी स्थिति से सहमत नहीं हो सका। फलत पाठान्तरो और मतमतान्तरो का जन्म हुआ। भाषा और सिद्धान्तो के विकास की यही अमिट कहानी है। समूचे प्राकृत साहित्य का सर्वेक्षण करने पर यह तथ्य और कथ्य और भी स्पष्ट हो जाता है।

प्राकृत भाषा के कतिपय तत्व यद्यपि वैदिक और वैदिकोत्तर साहित्य में उपलब्ध होते हैं पर उसका साहित्य लगभग 2500 वर्ष प्राचीन ही माना जा सकता है। भगवान् पार्श्वनाथ और महावीर के पहले विद्यमान आगमिक साहित्य-परम्परा का उल्लेख 'पूर्व' शब्द से अवश्य हुआ है पर आज वह साहित्य-परम्परा उपलब्ध नही है। फिर भी इसी परम्परा से वर्तमान मे उपलब्ध प्राकृत साहित्य की उत्पत्ति मानी जा सकती है।

प्राकृत भाषा का अधिकाश साहित्य जैन धर्म और संस्कृति से सबद्ध है। उसकी मूल परम्परा श्रुत अथवा आगम के नाम से व्यवहृत हुई है और एक लम्बे समय तक श्रुति-परम्परा के माध्यम मे सुरक्षित रही। सगीतियो अथवा वाचनाओ के माध्यम से यद्यपि इस आगम-परम्परा का सकलन किया जाता रहा है पर समय और आवश्यकता के अनुसार चिन्तन के प्रवाह को रोका नही जा सका। फलत उसमे हीनाधिकता होती रही।

प्राकृत जैन साहित्य के सन्दर्भ मे जब हम विचार करते है तो हमारा ध्यान जैन धर्म के प्राचीन इतिहास की ओर चला जाता है जो वैदिक काल किंवा उससे भी प्राचीनतर माना जा सकता है। उस काल के प्राकृत जैन साहित्य को "पूर्व" सज्ञा से अभिहित किया गया है जिसकी सख्या चौदह है—उत्पादपूर्व, अग्रायणी, वीर्यानुवाद, अस्तिनास्तिप्रवाद, ज्ञानप्रवाद, सत्यप्रवाद, आत्मप्रवाद, कर्मप्रवाद, प्रत्याख्यान, विद्यानुवाद, कल्याणवाद, प्राणावाय, क्रियाविशाल और लोकबिन्दुसार। आज जो साहित्य उपलब्ध है वह भगवान् महावीर रूपी हिमाचल से निकली वाग्गगा है जिसमे अवगाहनकर गणधरो और आचार्यों ने विविध प्रकार के साहित्य की रचना की।

उत्तरकाल मे यह साहित्य दो परम्पराओ मे विभक्त हो गया--दिगम्बर परम्परा और श्वेताम्बर परम्परा। दिगम्बर परम्परा के अनुसार आगम साहित्य दो प्रकार का है--अगप्रविष्ट और अगबाह्य। अग-प्रविष्ट मे बारह ग्रन्थो का समावेश है--आचाराग, सूत्रकृताग, स्थानाग, समवायाग, व्याख्याप्रज्ञप्ति, ज्ञातृधर्मकथा, उपासकाध्ययन, अन्तकृद्दशाग, अनुत्तरोपपातिक दशाग, प्रश्नव्याकरण और दृष्टिवाद। दृष्टिवाद के पाच भेद किये गये हैं--परिकर्म, सूत्र, प्रथमानुयोग, पूर्वगत और चूलिका। पूर्वगत के ही उत्पाद आदि पूर्वोक्त चौदह भेद हैं। इन अगो के आधार पर रचित ग्रन्थ अगबाह्य कहलाते हैं जिनकी सख्या चौदह है--सामायिक, चतुर्विशतिस्तव, वन्दना, प्रतिक्रमण, वैनयिक, कृतिकर्म, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, कल्पव्यवहार, कल्पाकल्प, महाकल्प, पुण्डरीक, महापुण्डरीक और निषिद्धिका। दिगम्बर परम्परा इन अगप्रविष्ट और अगबाह्य ग्रन्थो को विलुप्त हुआ मानती है। उसके अनुसार भगवान् महावीर के परिनिर्वाण के 162 वर्ष पश्चात् अग ग्रन्थ क्रमश विच्छिन्न होने लग। मात्र दृष्टिवाद के अन्तर्गत आये द्वितीय पूर्व अग्रायणी के कुछ अधिकारो का ज्ञान आचार्य धरसेन के पास शेष था जिसे उन्होने आचार्य पुष्पदन्त और भूतबलि को दिया। उसी के आधार पर उन्होने षट्खण्डागम जैसे विशालकाय ग्रन्थ का निर्माण किया। श्वेताम्बर परम्परा में ये अगप्रविष्ट और अगबाह्य ग्रन्थ अभी भी उपलब्ध है। अगबाह्य ग्रन्थो के सामायिक आदि प्रथम छह ग्रन्थो का अन्तर्भाव आवश्यक सूत्र मे एव कल्प, व्यवहार और निशीथ आदि सूत्रो मे हो गया।

अगप्रविष्ट और अगबाह्य ग्रन्थो के आधार पर जो ग्रन्थ लिखे गय उन्हे चार विभागो मे विभाजित किया गया है--प्रथमानुयोग, करणानुयोग, द्रव्यानुयोग और चरणानुयोग। प्रथमानुयोग में ऐसे ग्रन्थो का समावेश होता है जिसमें पुराणो, चरितो और आख्यायिकाओ के माध्यम से सैद्धान्तिक तत्व प्रस्तुत किये जाते हैं। करणानुयोग मे ज्योतिष और गणित के साथ ही लोको, सागरो, द्वीपो, पर्वतो, नदियो आदि का विस्तृत वर्णन मिलता है। सूर्यप्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति आदि ग्रन्थ इस विभाग के अन्तर्गत आते हैं। जिन ग्रन्थो में जीव, कर्म, नय, स्याद्वाद आदि दार्शनिक सिद्धान्तो पर विचार किया जाता है वे द्रव्यानुयोग की सीमा में आते हैं। ऐसे ग्रन्थो में षट्खण्डागम, प्रवचनसार, पचास्तिकाय आदि ग्रन्थो का समावेश होता है। चरणानुयोग में मुनियो और गृहस्थो के नियमोपनियमो का विधान रहता है। कुन्दकुन्दाचार्य के नियमसार, रयणसार, वट्टकेर का मूलाचार, शिवार्य की भगवती आराधना आदि ग्रन्थ इस दृष्टि से महत्वपूर्ण हैं।

सम्पूर्ण श्रुत के ज्ञाता निर्युक्तिकार भद्रबाहु से भिन्न आचार्य भद्रबाहु थे जिन्हे श्रुत केवली कहा गया है। भगवान् महावीर के परिनिर्वाण के लगभग 150 वर्ष बाद तित्थोगालीपइन्ना के अनुसार उत्तर भारत में एक द्वादशवर्षीय दुर्भिक्ष पडा जिसके परिणाम स्वरूप सघ भेद का सूत्रपात हुआ। दुर्भिक्षकाल में अस्तव्यस्त हुए श्रुतज्ञान को व्यवस्थित करने के लिए थोड़े समय बाद ही पाटली-पुत्र में एक सगीति अथवा वाचना हुई जिसमें ग्यारह अगो को व्यवस्थित किया जा सका। बारहवें अंग दृष्टिवाद के ज्ञाता मात्र भद्रबाहु थे जो बारह वर्ष की महाप्राण नामक योगसाधना के लिये नेपाल चले गये थे। सघ की ओर से उसके अध्ययन के लिये कुछ साधुओ को उनके पास भेजा गया जिनमें स्थूलभद्र ही सक्षम ग्राहक सिद्ध हो सके। वे मात्र दश पूर्वो का साथ अध्ययन कर सके और शेष चार पूर्व मूलमात्र उन्हें (वाचनाभद से) मिल सके, अर्थत. नही। धीरे-धीरे काल-प्रभाव से दशपूर्वो का भी लोप होता गया। अन्त में भगवान् महावीर के परिनिर्वाण के लगभग 1000 (980) वर्ष बाद वलभी मे आचाय देवर्धिगणि क्षमाश्रमण के नतृत्व में परिषद् की सयोजना हुई जिसमें उपलब्ध-आगमो का लिपिबद्ध कर स्थिर किया गया। आज जो प्राकृत आगम उपलब्ध हैं व इसी वाचना के परिणाम हैं।

इतनी लम्बी अवधि में आगमो के स्वरूप मे परिवर्तन होना स्वाभाविक है। दिगम्बर सम्प्रदाय ने इस परिवर्तन को देखकर ही सम्भवत इन आगमो को "लुप्त" कह दिया पर श्वेताम्बर परम्परा में वे अब भी सुरक्षित हैं।

यहां हम सुविधा की दृष्टि से प्राकृत जैन साहित्य को निम्न भागो मे विभक्त कर सकते हैं :—

1. आगम साहित्य
2. आगमिक व्याख्या साहित्य
3. कर्म साहित्य
4. सिद्धान्त साहित्य
5. आचार साहित्य
6. विधिविधान और भक्ति साहित्य
7. पौराणिक और ऐतिहासिक साहित्य
8. कथा साहित्य
9. लाक्षणिक साहित्य

1. आगम साहित्य

प्राकृत जैनागम साहित्य की दो परम्पराओ से हम परिचित ही हैं। दिगम्बर परम्परा तो उसे लुप्त मानती है परन्तु श्वेताम्बर परम्परा में उसे अग, उपाग, मूलसूत्र, छेदसूत्र और प्रकीर्णक के रूप में विभक्त किया गया है। इनका सक्षिप्त परिचय इस प्रकार है —

क <u>अग साहित्य</u> :—अग साहित्य के पूर्वोक्त बारह भेद हैं :—

1 <u>आचाराग</u> —यह दो श्रुतस्कन्धो में विभक्त है। प्रथम श्रुतस्कन्ध में 'सत्थ परिण्णा' आदि नव अध्ययन हैं और द्वितीय स्कन्ध में पाच। द्वितीय श्रुतस्कन्ध चूलिका के रूप में लिखा गया है जिनकी सख्या पाच है। चार चूलिकायें आचाराग में और पचम चूलिका विस्तृत होने के कारण पृथक् रूप में निशीथ सूत्र के नाम से निबद्ध है। यह भाग प्रथम श्रुतस्कन्ध के उत्तरकाल का है। इस ग्रन्थ में गद्य और पद्य दोनो का प्रयोग हुआ है। इसमे मुनियो के आचार-विचार का विशेष वर्णन है। महावीर की चर्या का भी विस्तृत उल्लेख हुआ है।

2 <u>सूयगडाग</u> :—इसमें स्वसमय और परसमय का विवेचन है। इसे दो श्रुतस्कन्धो में विभक्त किया गया है। प्रथम श्रुतस्कन्ध मे 16 अध्ययन हैं—समय, वेयालिय,

उपसर्ग, स्त्रीपरिज्ञा, नरक विभक्ति, वीरस्तव, कुशील, वीर्य, धर्म, समाधि, मार्ग, समवशरण, याथातथ्य, ग्रन्थ आदान, गाथा और ब्राह्मण श्रमण निर्ग्रन्थ। द्वितीय श्रुतस्कन्ध मे सात अध्ययन है—पुण्डरीक, क्रियास्थान, आहारपरिज्ञा, प्रत्याख्यान क्रिया, आचारश्रुत, अर्द्धकीय तथा नालन्दीय। प्रथम श्रुतस्कन्ध के विषय को ही यहा विस्तार से कहा गया है। अत. निर्युक्तिकार ने इसे "महा अध्ययन" की सज्ञा दी है। इस अग मे मूलत क्रियावाद, अक्रियावाद, नियतिवाद, अज्ञानवाद आदि मतो का प्रस्थापन और उसका खण्डन किया गया है।

3 ठाणाग —इसमें दस अध्ययन हैं और 783 सूत्र हैं जिनमे अगुत्तरनिकाय के समान एक से लेकर दस सख्या तक सख्याक्रम के अनुसार जैन सिद्धान्त पर आधारित वस्तु सख्याओ का विवरण प्रस्तुत किया गया है। यहा भगवान् महावीर की उत्तरकालीन परम्पराओ को भी स्थान मिला है। जैसे नवें अध्ययन के तृतीय उद्देशक में महावीर के 9 गुणो का उल्लेख है। सात निन्हवो का भी उल्लेख है—जमालि, तिष्यगुप्त, आषाढ, अश्वमित्र, गग, रोहगुप्त और गोष्ठमाहिल। इनमें प्रथम दो के अतिरिक्त सभी निन्हवो की उत्पत्ति महावीर के बाद ही हई। प्रव्रज्या, स्थविर, लेखन-पद्धति आदि से सबद्ध सामग्री की दृष्टि से यह ग्रन्थ महत्वपूर्ण है।

4 समवायांग—इसमें कुल 275 सूत्र है जिनमें ठाणाग के समान सख्या-क्रम से निश्चित वस्तुओ का निरूपण किया गया है। यद्यपि कोई क्रम तो नही पर उसी का आधार लेकर सख्या-क्रम सहस्र, दश सहस्र और कोटा-कोटि तक पहुचा है। ठाणाग क समान यहा भी महावीर के बाद की घटनाओ का उल्लेख मिलता है। उदाहरणत 100 वें सूत्र मे गणधर इन्द्रभूति और सुधर्मा के निर्वाण से सबद्ध घटना। ठाणाग और समवायाग की एक विशिष्ट शैली है जिसके कारण इनके प्रकरणो में एक सूत्रता के स्थान पर विषय-वैविध्य अधिक दिखाई देता है। इसमें भौगोलिक और सास्कृतिक सामग्री भरी हुई है।

5 विवाहपण्णत्ति:—ग्रन्थ की विशालता और उपयोगिता के कारण इसे भगवतीसूत्र भी कहा जाता है। इसमें गणधर गौतम के प्रश्न और महावीर के उत्तर निबद्ध हैं। अधिकाश प्रश्न स्वर्ग, नरक, चन्द्र, सूर्य, आदि से सम्बद्ध है। इसमें 41 शतक है जिनमें 837 सूत्र हैं। प्रथम शतक अधिक महत्वपूर्ण है। आगे के शतक इसी की व्याख्या करते हुए दिखाई देते हैं। यहा मक्खली गौसाल का विस्तृत चरित्र भी मिलता है। बुद्ध को छोडकर पार्श्वनाथ और महावीर के समकालीन आचार्य और परिव्राजक, पार्श्वनाथ और महावीर का परम्पराभेद, स्वप्नप्रकार, जवणिज (यापनीय) सघ और वैशाली में हुए दो महायुद्ध, वनस्पतिशास्त्र, जीव प्रकार आदि के विषय में यह ग्रन्थ महत्वपूर्ण जानकारी देता है। इसमें देवर्धिगणि क्षमाश्रमण द्वारा रचित नन्दिसूत्र का भी उल्लेख है जिससे स्पष्ट है कि इस महाग्रन्थ मे महावीर के बाद की लगभग एक हजार वर्ष की प्राचीन परम्पराओ का सकलन है।

6. नायाधम्मकहाओ—इसमें भगवान् महावीर द्वारा उपदिष्ट लोकप्रचलित धर्मकथाओ का निबन्धन है जिसमें सयम, तप, त्याग आदि का महत्व बताया गया है। इस ग्रन्थ में दो श्रुतस्कन्ध है। प्रथम श्रुतस्कन्ध में नीति-कथाओ से सबद्ध उन्नीस अध्ययन है और द्वितीय श्रुतस्कन्ध के दस वर्गों में धर्मकथायें सकलित है। शैली रोचक और आकर्षक है। इसमें मेघकुमार, धन्ना और विजय चोर, सागरदत्त और जिनदत्त, कच्छप और श्रृगाल, शैलक मुनि और शुक परिव्राजक, तुव रोहिणी, मल्ली, माकदी, दुर्दर, अमात्य तेमलि, द्रोपदी, पुण्डरीक कुण्डरीक, गजमुकुमाल, नदमणियार आदि की कथायें सकलित है। ये कथायें घटना प्रधान तथा नाटकीय तत्वो से आपूर है। सास्कृतिक महत्व की सामग्री भी इसमें सन्निहित है।

7. उवासगदसाओ :—इसमें दस अध्ययन हैं जिसमें क्रमशः आनन्द, कामदेव; चुलिनीप्रिय, सुरादेव, चुल्लशतक, कुण्डकौलिक, सद्दालपुत्र, महाशतक, नदिनीपिता और सालतियापिता इन दस उपासको का चरित्र-चित्रण है। इन श्रावको को पाच अणुव्रत, तीन गुणव्रत और चार शिक्षाव्रत इन बारह अणुव्रतो का निरतिचार पूर्वक पालन करते हुए धर्मार्थसाधना में तत्पर बताया है। इसे आचाराग का परिपूरक ग्रन्थ कहा जा सकता है।

8 अंतगडदसाओ :—इस अंग में ऐसे स्त्री-पुरुषो का वर्णन है जिन्होने ससार का अन्त कर निर्वाण प्राप्त किया है। इसमें आठ वर्ग हैं। हर वर्ग किसी न किसी मुमुक्षु से सबद्ध है। यहा गौतम, समुद्र, सागर, गम्भीर, गजसुकुमाल, कृष्ण, पद्मावती, अर्जुनमाली, अतिमुक्त आदि महानुभावो का चरित्र-चित्रण उपलब्ध है। पौराणिक और चरितकाव्यो के लिये ये कथानक बीजभूत माने जा सकते हैं।

9. अणुत्तरोववाइयदसाओ :—इस ग्रन्थ में ऐसे महापुरुषो का वर्णन है जो अपने तप और संयम से अनुत्तर विमानो में उत्पन्न हुए। उसके बाद वे मुक्तिगामी होते है। यह अंग तीन वर्गों में विभक्त हैं। प्रथम वर्ग में 10, द्वितीय वर्ग में 13 और तृतीय वर्ग में 10 अध्ययन है। जालि, महाजालि, अभयकुमार आदि दस राजकुमारो का प्रथम वर्ग में, दीर्घसेन, महासेन, सिंहसेन आदि तेरह राजकुमारो का द्वितीय वर्ग में और धन्य कुमार, रामपुत्र, बेहल्ल आदि दस राजकुमारो का भोगमय और तपोमय जीवन का चित्रण मिलता है।

10. पण्हवागरण :—इसमें प्रश्नोत्तर के माध्यम से परसमय (जैनेतरमत) का खण्डन कर स्वसमय की स्थापना की है। इसके दो भाग हैं। प्रथम भाग में हिंसादिक पाप रूप आश्रवो का और द्वितीय भाग में अहिंसादि पाच व्रत-रूप सवर-द्वारों का वर्णन किया गया है। इसी सन्दर्भ में मन्त्र-तन्त्र और चमत्कारिक विद्याओ का भी वणन किया गया है। सभवतः यह ग्रन्थ उत्तरकालीन है।

11. विवागसुयं :—इस ग्रन्थ में शुभाशुभ कर्मों का फल दिखाने के लिये बीस कथाओ का आलेखन किया गया है। इन कथाओ मे मृगापुत्र, नन्दिषेण आदि की जीवन गाथायें अशुभ कर्म के फल को और सुबाहु, भद्रनन्दी आदि की जीवन गाथायें शुभकम के फल को व्यक्त करती हैं। प्रसगवशात् यहा हम विभिन्न घातक रोगो के वर्णन भी पाते है। वर्णनक्रम से पता चलता है कि यह ग्रन्थ भी उत्तरकालीन होना चाहिये।

12 दिट्ठिवाय :—श्वेताम्बर परम्परा के अनुसार यह ग्रन्थ लुप्त हो गया है जब कि दिगम्बर परम्परा के षट्खण्डागम आदि आगमिक ग्रन्थ इसी के भद प्रभेद पर आधारित रहे हैं। समवायाग में इसके पाच विभाग किये गये हैं — परिकर्म, सूत्र, पूर्वगत, अनुयोग और चूलिका। इसमें विभिन्न दर्शनो की चर्चा रही होगी। पूर्वगत विभाग के उत्पादपूर्व आदि चौदह भेद हैं। अनुयोग भी दो प्रकार के हैं। प्रथमानुयोग और गडिकानुयोग। चूलिकायें कही बत्तीस और कही पाँच बताई गई हैं। उनका सम्बन्ध मन्त्र-तन्त्रादि से रहा होगा।

ख उपांग साहित्य :—वैदिक अगोपागो के समान जैनागम के भी उपयुक्त बारह अगो के बारह उपाग माने जाते है। परन्तु ऐतिहासिक दृष्टि से देखा जाय तो उपागों के क्रम का अगो के क्रम से कोई सम्बन्ध नही बैठता है। लगभग 12वी शती से पूर्व के ग्रन्थो में अगो के साथ उपागो का वर्णन भी नही आता। इसलिये इन्हे उत्तरकालीन माना जाना चाहिये। ये उपांग इस प्रकार है —

1. उववाइय मे 43 सूत्र हैं और उनमें साधकों का पुनर्जन्म कहाँ-कहाँ होता है इसका वर्णन किया गया है। इसमें 72 कलाओं और विभिन्न परिव्राजकों का वर्णन मिलता है।

2 रायपसेणिय में 217 सूत्र हैं। प्रथम भाग में सूर्याभदेव का वर्णन है। और द्वितीय भाग में केशी और प्रदेशी के बीच जीव-अजीव विषयक संवाद का वर्णन है। इसमें दर्शन, स्थापत्य, संगीत और नाट्यकला की विशिष्ट सामग्री सन्निहित है।

3. जीवाभिगम में 9 प्रकरण और 272 सूत्र हैं जिनमें जीव और अजीव के भेद-प्रभेदों का विस्तृत वर्णन किया गया है। टीकाकार मलयगिरि ने इसे ठाणांग का उपांग माना है। इसमें अस्त्र, वस्त्र, धातु, भवन आदि के प्रकार दिये गये हैं।

4. पण्णवणा में 349 सूत्र हैं और उनमें जीव से संबंध रखने वाले 36 पदों का प्रतिपादन है—प्रज्ञापना, स्थान, योनि, भाषा, कषाय, इन्द्रिय, लेश्या आदि। इसके कर्ता आर्य श्यामाचार्य हैं जो महावीर परिनिर्वाण के 376 वर्ष बाद अवस्थित थे। इसे समवायांग सूत्र का उपांग माना गया है। वृक्ष, तृण, औषधियां, पंचेन्द्रियजीव, मनुष्य, साढ़े पच्चीस आर्यदेशों आदि का वर्णन मिलता है।

5 सूरपण्णत्ति में 20 पाहुड, और 108 सूत्र हैं जिनमें सूर्य, चन्द्र और नक्षत्रों की गति आदि का वर्णन मिलता है। इस पर भद्रबाहु ने निर्युक्ति और मलयगिरि ने टीका लिखी है[1]।

6 जम्बूदीवपण्णत्ति दो भागों में विभाजित है—पूर्वार्ध और उत्तरार्ध। पूर्वार्ध में चार और उत्तरार्ध में तीन वक्षस्कार (परिच्छेद) हैं तथा कुल 176 सूत्र हैं, जिनमें जम्बूद्वीप, भरतक्षेत्र, नदी, पर्वत, कुलकर आदि का वर्णन है। यह नायाधम्मकहाओ का उपांग माना जाता है।

7. चन्दपण्णत्ति में बीस प्राभृत हैं और उनमें चन्द्र की गति आदि का विस्तृत विवेचन मिलता है। इसे उवासगदसाओ का उपांग माना जाता है।

8 निरयावलिया अथवा कप्पिया में दस अध्ययन हैं जिनमें काल, सुकाल, महाकाल, कण्ह, सुकण्ह, महाकण्ह, वीरकण्ह, रामकण्ह, पिउसेणकण्ह और महासेणकण्ह का वर्णन है।

9. कप्पावडिंसिया में दस अध्ययन हैं जिनमें पउम, महापउम, भद्द, सुभद्द, पउमभद्द, पउमसेण, पउमगुम्म, नलिणिगुम्म, आणद व नन्दण का वर्णन है।

10. पुप्फिया में भी दस अध्ययन हैं जिनमें चन्द, सूर, सुक्क, बहुपुत्तिया, पुन्नभद्द, मणिभद्द, दत्त, सिव, बल और अणाढिय का वर्णन है।

11. पुप्फचूला में भी दस अध्ययन हैं—सिरि, हिरि, धिति, कित्ति, बुद्धि, लच्छी इलादेवी, सुरादेवी, रसदेवी और गन्धदेवी।

12. वण्हिदसाओ में बारह अध्ययन हैं—निसढ, माअनि, वह, वण्ह, पगता, जुत्ती, दसरह, दढरह, महाधणु, सत्तधणू, दसधणू और सयधणू।

ये उपांग सांस्कृतिक दृष्टि से विशेष महत्व के हैं। आठवें उपांग से लेकर बारहवें उपांग तक को समग्र रूप में निरयावलियाओ भी कहा गया है।

ग. मूलसूत्र —

डा. शुब्रिंग के अनुसार इनमें साधु जीवन के मूलभूत नियमों का उपदेश गर्भित है इसलिये इन्हें मूलसूत्र कहा जाता है। उपांगों के समान मूलसूत्रों का भी इस नाम से उल्लेख प्राचीन आगमों में नही मिलता। इनकी मूलसूत्रों की सख्या में भी मतभेद है। कोई इनकी सख्या तीन मानता है—उत्तराध्ययन, आवश्यक और दसवैकालिक, और कुछ विद्वानों ने पिण्डनिर्युक्ति और ओघनिर्युक्ति दोनों में से एक को सम्मिलित कर उनकी सख्या चार कर दी है।

1. उत्तरज्झयण—भाषा और विषय की दृष्टि से प्राचीन माना जाता है। इसकी तुलना पालि त्रिपिटक के सुत्तनिपात, धम्मपद आदि ग्रन्थों से की गई है। इसका अध्ययन आचारांगादि के अध्ययन के बाद किया जाता था। यह भी सभव है कि इसकी रचना उत्तरकाल में हुई हो। उत्तराध्ययन में 36 अध्ययन है जिनमें नैतिक, सैद्धान्तिक और कथात्मक विषयों का समावेश किया गया है। इनमें कुछ जिनभाषित हैं, कुछ प्रत्येक बुद्धो द्वारा प्ररूपित है और कुछ सवाद रूप में कहे गये हैं।

2 आवस्सय में छ नित्य क्रियाओ का छ अध्यायों में वर्णन है—सामायिक, चतुर्विंशतिस्तव, वन्दन, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग और प्रत्याख्यान।

3. दसवेयालिय के रचयिता आर्य शयभव है। उन्होंने इसकी रचना अपने पुत्र के लिये की थी। विकाल अर्थात् सन्ध्या में पढे जाने के कारण इसे दशवेयालिय कहा जाता है। यह दस अध्यायों में विभक्त है जिनमें मुनि-आचार का वर्णन किया गया है।

4 पिण्डनिर्युक्ति में आठ अधिकार और 671 गाथायें है जिनमें उद्गम, उत्पादन, एषणा आदि दोषों का प्ररूपण किया गया है। इसके रचयिता भद्रबाहु माने जाते हैं।

5 ओघनिर्युक्ति में 811 गाथाये है जिनमें प्रतिलेखन, पिण्ड, उपाधिनिरूपण अनायतनवर्णन, प्रतिसेवना, आलोचना और विशुद्धि का निरूपण है।

घ. छेदसूत्र —

श्रमण धर्म के आचार-विचार को समझने की दृष्टि से छेदसूत्रों का विशिष्ट महत्व है। इनमें उत्सर्ग (सामान्य विधान), अपवाद, दोष और प्रायश्चित्त विधानों का वर्णन किया गया है। छेदसूत्रों की सख्या 6 है—दसासुयक्खध, वृहत्कल्प, ववहार, निसीह, महानिसीह, और पचकप्प अथवा जीतकप्प।

1. दसासुयक्खध अथवा आचारदसा में दस अध्ययन है। उनमें क्रमश असमाधि के कारण, शवलदोष (हस्तकर्म मैथुन आदि), आशातना (अवज्ञा), गणिसम्पदा, चित्तसमाधि, उपासक प्रतिमा, भिक्षु प्रतिमा, पर्यूषणा कल्प, मोहनीयस्थान और आयातिस्थान (निदान) का वर्णन मिलता है। महावीर के जीवन-चरित की दृष्टि से भी यह ग्रन्थ महत्वपूर्ण है। इसके रचयिता निर्युक्तिकार से भिन्न आचार्य भद्रबाहु माने जाते हैं।

2. बृहत्कल्प में छ उद्देश्य हैं जिनमें भिक्षु-भिक्षुणियों के निवास, विहार, आहार, आसन आदि से सम्बद्ध विविध नियमों का विधान किया गया है। इसके भी रचयिता भद्रबाहु माने गये हैं। यह ग्रन्थ गद्य में लिखा गया है।

3. व्यवहार में दस उद्देश और 300 सूत्र हैं। उनमें आहार, विहार, वैश्यावृत्ति, साधु-साध्वी का पारस्परिक व्यवहार, गृहगमन, दीक्षाविधान आदि विषयो पर सागोपाग चर्चा की गई है। इस ग्रन्थ क भी कर्ता भद्रबाहु मान गये हैं।

4 निसीह में बीस उद्देश और लगभग 1500 सूत्र हैं। इनमे गुरुमासिक, लघुमासिक, गुरुचातुर्मासिक, लघुचातुर्मासिक प्रायश्चित्त से सबद्ध क्रियाओ का वर्णन है।

5 महानिसीह मे छ अध्ययन और दो चूलाए हैं जिनका परिमाण लगभग 4554 श्लोक हैं। भाषा और विषय की दृष्टि से यह ग्रन्थ अधिक प्राचीन नही जान पडता। विनष्ट महानिसीथ हरिभद्रसूरि ने सशोधित किया और सिद्धसेन तथा जिनदास गणि ने उसे मान्य किया। कर्मविपाक, तान्त्रिक-प्रयोग, सघस्वरूप आदि पर विस्तार से यहा चर्चा की गई है।

6 जीतकप्प की रचना जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण ने 103 गाथाओ में की। इसमे आत्मा की विशुद्धि के लिए जीत अर्थात् प्रायश्चित का विधान है। इसमें आलोचना, प्रतिकमण उभय, विवेक, व्युत्सर्ग, तप, छेद, मूल अनवस्थाप्य और पाराचिक भदो का वणन किया गया है।

च. चूलिका सूत्र —चूलिकाये ग्रन्थ के परिशिष्ट के रूप में मानी गई हैं। इनमें ऐसे विषयों का समावेश किया गया है जिन्हें आचार्य अन्य किसी ग्रन्थ प्रकार में सम्मिलित नही कर सके। नन्दी और अनुयोगद्वार की गणना चूलिका सूत्रो में की जाती है। ये सूत्र अपेक्षाकृत अर्वाचीन हैं। नन्दीसूत्र गद्य-पद्य में लिखा गया है। इसमें 90 गाथाये और 59 गद्यसूत्र हैं। इसका कुल परिमाण लगभग 700 श्लोक होगा। इसके रचयिता दूष्यगणि के शिष्य देववाचक माने जाते हैं जो देवर्धिगणि क्षमाश्रमण से भिन्न हैं। इसमें पाच ज्ञानो का वर्णन विस्तार से किया गया है। स्थविरावली और श्रुतज्ञान के भद-प्रभेद की दृष्टि से भी यह ग्रन्थ महत्वपूर्ण है। अनुयोगद्वार में निक्षप पद्धति से जैनधर्म के मूलभूत विषयो का आख्यान किया गया है। इसके रचयिता आर्यरक्षित माने जाते है। इसमे नय, निक्षेप, प्रमाण, अनुगम आदि का विस्तृत वर्णन हैं। ग्रन्थमान लगभग 2000 श्लोक प्रमाण हैं। इसमे अधिकाशत गद्य भाग है।

छ. प्रकीर्णक —इस विभाग मे ऐसे ग्रन्थ सम्मिलित किये गये है जिनकी रचना तीर्थंकरो द्वारा प्रवदित उपदेश के आधार पर आचार्यों ने की है। ऐसे आगमिक ग्रन्थो की सख्या लगभग 14000 मानी गई है परन्तु वल्लभी वाचना के समय निम्नलिखित दस ग्रन्थो का ही समावेश किया गया है—चउसरण, आउरपच्चक्खाण, महापच्चक्खाण, भत्तपइण्णा, तदुलवयालिय, संथारक, गच्छायार, गणिविज्जा, देविंदथय, और मरणसमाहि (चउसरण में 63 गाथायें हैं) जिनमें अरिहत, सिद्ध, साधु, एव केवलिकथित धर्म को शरण माना गया है। इसे वीरभद्र कृत माना जाता है। आउरपच्चक्खाण में वीरभद्र ने 70 गाथाओ मे बालमरण और पण्डितमरण का व्याख्यान किया है। महापच्चक्खाण मे 142 गाथायें हैं जिनमे व्रतो और आराधनाओ पर प्रकाश डाला गया है। भत्तपइण्णा में 17 गाथायें हैं जिनमें वीरभद्र ने भक्तपरिज्ञा, इगिनी और पादोपगमन रूप मरण-भेदो के स्वरूप का विवेचन किया है। तदुलवयालिय में 139 गाथायें हैं और उनमें गर्भावस्था, स्त्रीस्वभाव तथा ससार का चित्रण किया गया है। सथारक में 123 गाथाये हैं जिनमें मृत्युशय्या का वर्णन है। गच्छायार में 130 गाथायें हैं जिनमें गच्छ में रहने वाले साधु-साध्वियो के आचार का वर्णन है। गणिविज्जा में 80 गाथायें हैं जिनमें दिवस, तिथि, नक्षत्र, करण, मुहूर्त आदि का वर्णन है। देविंदथय (307 गा) में देवेन्द्र की स्तुति है। मरणसमाहि (663 गा) में आराधना, आराधक, आलोचना, सलेखन, क्षमायापन आदि पर विवेचन किया गया है।

इन प्रकीर्णको के अतिरिक्त तित्थुगालिय, अजीवकप्प, सिद्धपाहुड, आराहण पगास, दीवसायरपण्णत्ति, जोइसकरंडक, अंगविज्जा, पिंडविसोहि, तिहिपइण्णग, सारावलि, पज्जताराहणा, जीवविभत्ति, कवच-पकरण और जोगिपाहुड ग्रन्थो को भी प्रकीर्णक श्रेणी में सम्मिलित किया जाता है ।

2. आगमिक व्याख्या साहित्य

उपर्युक्त अर्धमागधी आगम साहित्य पर यथासमय निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि, टीका, विवरण, वृत्ति, अवचूर्णि, पंजिका एव व्याख्या रूप में विपुलसाहित्य की रचना हुई है । इनमे आचार्यों ने आगमगत दुर्बोध स्थलो को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है। इस विधा में निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि और टीका साहित्य विशेष उल्लेखनीय है ।

क. निर्युक्ति साहित्य:—जिस प्रकार यास्क ने वैदिक पारिभाषिक शब्दो की व्याख्या के लिये निरुक्त की रचना की उसी प्रकार आचार्य भद्रबाहु (द्वितीय) ने आगमिक शब्दो की व्याख्या के लिये निर्युक्तियो का निर्माण किया है। ये निर्युक्तिया निम्नलिखित दस ग्रन्थो पर लिखी गई है—आवश्यक, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, आचाराग, सूत्रकृताग, दशाश्रुतस्कन्ध वृहत्कल्प, व्यवहार, सूर्यप्रज्ञप्ति और ऋषिभाषित । इनमें अन्तिम दो निर्युक्तिया उपलब्ध नही है। इन निर्युक्तियो की रचना प्राकृत पद्यो मे हुई है। बीच-बीच में कथाओ और दृष्टान्तो को भी नियोजित किया गया है । सभी निर्युक्तियो की रचना निक्षेप पद्धति म हुई है । इस पद्धति में शब्दो के अप्रासंगिक अर्थों को छोड कर प्रासगिक अर्थों का निश्चय किया गया है ।

आवश्यकनिर्युक्ति में छ. अध्ययन है —सामायिक, चतुर्विशतिस्तव, वन्दना, प्रतिक्रमण, कायोत्सर्ग और प्रत्याख्यान । इसमें सप्त निन्हव तथा भगवान् ऋषभदेव और महावीर के चरित्र का आलेखन हुआ है । इस निर्युक्ति पर जिनभद्र, जिनदासगणि, हरिभद्र, कोट्याचार्य, मलयगिरि, मलधारी हेमचन्द्र, माणिक्यशेखर आदि आचार्यों ने व्याख्या ग्रन्थ लिखे । इसमें लगभग 1650 गाथायें है । दशवैकालिक निर्युक्ति (341 गा.) में दश, काल आदि शब्दो का निक्षेप पद्धति से विचार हुआ है। उत्तराध्ययन निर्युक्ति (607 गा.) में विविध धार्मिक और लौकिक कथाओ द्वारा सूत्रार्थ को स्पष्ट किया गया है । आचारांग निर्युक्ति (347 गा) मे आचार, अग ब्रह्म चरण आदि शब्दो का अर्थ निर्धारण किया गया है । सूत्रकृताग निर्युक्ति (205 गा.) मे मत मतान्तरो का वर्णन है । दशाश्रुतस्कन्ध निर्युक्ति में समाधि, स्थान, दक्ष, श्रुत आदि का वर्णन है । वृहत्कल्प निर्युक्ति (559 गा.) और व्यवहार निर्युक्ति भाष्य मिश्रित अवस्था में उपलब्ध होती है। इनके अतिरिक्त पिण्डनिर्युक्ति, ओघनिर्युक्ति, पंचकल्प-निर्युक्ति, निशीथ-निर्युक्ति, और ससक्तनिर्युक्ति भी मिलती है। भाषा–विज्ञान की दृष्टि से इन निर्युक्तियो का विशेष महत्व है ।

ख भाष्य साहित्य —निर्युक्तियो मे प्रच्छन्न गूढ विषय को स्पष्ट करने के लिए भाष्य लिखे गये । जिन आगम ग्रन्थो पर भाष्य मिलते है वे है—आवश्यक, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, वृहत्कल्प, पंचकल्प, व्यवहार, निशीथ, जीतकल्प, ओघनिर्युक्ति और पिण्डनिर्युक्ति । ये सभी भाष्य पद्यबद्ध प्राकृत में है । आवश्यक सूत्र पर तीन भाष्य मिलते है—मूलभाष्य, भाष्य और विशेषावश्यकभाष्य । विशेषावश्यकभाष्य आवश्यकसूत्र के मात्र प्रथम अध्ययन सामायिक पर लिखा गया है फिर भी उसमें 3603 गाथायें है । इसमें आचार्य जिनभद्र (लगभग विक्रम सवत् 650-660) ने जैन ज्ञान और तत्वमीमासा की दृष्टि से सामग्री को सकलित किया है। योग, मगल, पंचज्ञान, सामायिक, निक्षप, अनुयोग, गणधरवाद, आत्मा और कर्म, अष्ट निन्हव, प्रायश्चित्त विधान आदि का विस्तृत विवेचन मिलता है। जिनभद्र का ही दूसरा भाष्य जीतकल्प (103 गा.)

पर है जिसमें प्रायश्चितों का वर्णन है। इसी पर एक स्वोपज्ञभाष्य (2606 गाथायें) भी मिलता है जिसम बृहत्कल्प, लघुभाष्य, व्यवहारभाष्य, पंचकल्प महाभाष्य, पिण्डनिर्युक्ति आदि की गाथायें शब्दश. उद्धृत हैं।

बृहत्कल्प लघुभाष्य के रचयिता संघदासगणि क्षमाश्रमण जिनभद्र के पूर्ववर्ती हैं जिन्होंने इसे छ उद्देश्यो और 6490 गाथाओ में पूरा किया है। इसमें जिनकल्पिक और स्थविर कल्पिक साधु-साध्वियो के आहार, विहार, निवास आदि का सूक्ष्म वर्णन किया गया है। सास्कृतिक सामग्री से यह ग्रन्थ भरा हुआ है। इन्ही आचार्य का पचकल्प महाभाष्य (2665 गाथायें) भी मिलता है। बृहत्कल्प लघु-भाष्य क समान बृहत्कल्प बृहद्भाष्य भी लिखा गया है पर दुर्भाग्य से अभी तक वह अपूर्ण ही उपलब्ध है। इस सदर्भ में व्यवहारभाष्य (दस उद्देश), ओघनिर्युक्ति लघुभाष्य (322 गा.), ओघनिर्युक्त बृहद्भाष्य (2517 गा.) और पिण्डनिर्युक्ति भाष्य (46 गा) भी उल्लेखनीय हैं।

ग. चूर्णि साहित्य.—आगम साहित्य पर निर्युक्तियो और भाष्यो के अतिरिक्त चूर्णियो की भी रचना हुई है। पर वे पद्य में न होकर गद्य में हैं और शुद्ध प्राकृत भाषा में न होकर प्राकृत सस्कृत मिश्रित है। सामान्यतः यहा सस्कृत की अपेक्षा प्राकृत का प्रयोग अधिक हुआ है। चूर्णिकारो में जिनदासगणि महत्तर और सिद्धसेनसूरि अग्रगण्य हैं। जिनदासगणि महत्तर (लगभग स 650-750) ने नन्दी, अनुयोगद्वार, आवश्यक, दशवैकालिक, उत्तराध्ययन, आचाराग, सूत्रकृताग, बृहत्कल्प, व्याख्याप्रज्ञप्ति, निशीथ और दशाश्रुतस्कन्ध पर चूर्णिया लिखी है तथा जीतकल्प चूर्णि के कर्त्ता सिद्धसेनसूरि (वि. स. 1227) हैं। इनके अतिरिक्त जीवाभिगम, महानिशीथ, व्यवहार, जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति आदि ग्रन्थो पर भी चूर्णिया लिखी गई हैं। इन चूर्णियों में सास्कृतिक तथा कथात्मक सामग्री भरी हुई है।

घ. टीका साहित्यः—आगम को और भी स्पष्ट करने के लिये टीकायें लिखी गईं हैं। इनकी भाषा प्रधानत. सस्कृत है पर कथाभाग अधिकाशतः प्राकृत मे मिलता है। आवश्यक, दशवैकालिक, नन्दी और अनुयोगद्वार पर हरिभद्रसूरि (लगभग 700-770 ई.) की, आचाराग और सूत्रकृताग पर शीलाचार्य (वि. स. लगभग 900-1000) की, 9 अंग सूत्रो पर अभयदेवसूरि की, अनेक आगमो पर मलयगिरि की, उत्तराध्ययन पर शिष्यहिता टीका शान्तिसूरि (11वी शती) की तथा सुखबाधा टीका देवेन्द्रगणि नेमिचन्द्र की विशेष उल्लेखनीय हैं। सस्कृत टीकाओ में विवरणो और वृत्तियो की तो एक लम्बी सख्या है जिसका उल्लेख करना यहां अप्रासगिक होगा।

3. कर्म साहित्य

पूर्वोक्त आगम साहित्य अर्धमागधी प्राकृत में लिखा गया है। इसे परम्परानुसार श्वेताम्बर सम्प्रदाय स्वीकार करता है परन्तु दिगम्बर सम्प्रदाय किन्ही कारणोवश उसे लुप्त हुआ मानता है। उसके अनुसार आशिक ज्ञान मुनि-परम्परा में सुरक्षित रहा। उसी के आधार पर आचार्य धरसेन के सान्निध्य में षट्खण्डागम की रचना हुई।

षट्खण्डागम दृष्टिवाद नामक बारहवें अग के अन्तर्गत अग्रायणी नामक द्वितीय पूर्व के चयन-लब्धि नामक पाचवे अधिकार के चतुर्थ पाहुड (प्राभृत) कर्मप्रकृति पर आधारित है। इसलिय इसे कर्मप्राभृत भी कहा जाता है। इसके प्रारम्भिक भाग सत्प्ररूपणा के रचयिता पुष्पदन्त हैं और शेष भाग को आचार्य भूतवलि ने लिखा है। इनका समय महावीर निर्वाण के 600-700 वर्ष बाद माना जाता है।[1] सत्प्ररूपणा में 177 सूत्र हैं। शेष ग्रन्थ 6000 सूत्रो में रचित है। कर्मप्राभृत के छः खण्ड हैं—जीवट्ठाण (2375 सूत्र), खुद्दाबन्ध (1582 सूत्र), बन्धसामित्तविचय (324 सूत्र), वेदना (144 सूत्र), वग्गणा (962 सूत्र) और

टिप्पणीः—1. षट्खण्डागम, पुस्तक 1, प्रस्तावना पृ. 21-31.

महाबन्ध (सात अधिकार)। इनमें कर्म और उनकी विविध प्रकृतियों का विस्तृत विवेचन मिलता है। इस पर निम्नलिखित टीकायें लिखी गई हैं। इन टीकाओ में धवला टीका को छोड़कर शेष सभी अनुपलब्ध हैं। इनकी भाषा शौरसैनी प्राकृत है :—

(1) प्रथम तीन खण्डों पर कुन्दकुन्दाचार्य की प्राकृत टीका (12000 श्लोक)

(2) प्रथम पांच खण्डो पर शास्त्रकुण्डकृत पद्धति नामक प्राकृत-संस्कृत कन्नड मिश्रित टीका (12000 श्लोक परिमाण)

(3) छठे खण्ड पर तुम्बूलाचार्यकृत प्राकृत पंजिका (6000 श्लोक)

(4) वीरसेन (816 ई.) की प्राकृत संस्कृत मिश्रित टीका (72000 श्लोक)

दृष्टिवाद के ही ज्ञानप्रवाद नामक पांचवें पूर्व की दसवी वस्तु के पेज्जदोस नामक तृतीय प्राभृत से कषायप्राभृत (कसाय पाहुड) की उत्पत्ति हुई। इसे पेज्जदोसपाहुड भी कहा गया है। आचार्य गुणधर ने इसकी रचना भगवान् महावीर के परिनिर्वाण के 683 वर्ष बाद की। इसमें 1600 पद, 180 किंवा 233 गाथायें और 15 अर्थाधिकार हैं। इस पर यति वृषभ ने विक्रम की छठी शती में छ हजार श्लोक प्रमाण चूर्णिसूत्र लिखा। उस पर वीरसेन ने सन् 874 में वीस हजार श्लोक प्रमाण जयधवला टीका लिखी। इस अधूरी टीका को उनके शिष्य जयसेन (जिनसेन) ने चालीस हजार श्लोक प्रमाण टीका और लिखकर ग्रन्थ समाप्त किया। इनके अतिरिक्त उच्चारणाचार्यकृत उच्चारणवृत्ति, शामकुण्डकृत पद्धति टीका, तुम्बुलाचार्यकृत चूडामणिव्याख्या तथा बप्पदेवगुरुकृत व्याख्याप्रज्ञप्ति वृत्ति नामक टीकाओं का उल्लख मिलता है पर आज वे उपलब्ध नहीं हैं। इन सभी टीका ग्रन्थो में कर्म की विविध व्याख्या की गई है।

इन्ही ग्रन्थो के आधार पर नेमिचन्द्र सिद्धान्तचक्रवर्ती ने विक्रम की 11वी शती में गोमट्टसार की रचना की। वे चामुण्डराय के गुरु थे जिन्हें गोमट्टराय भी कहा जाता था। गोमट्टसार के दो भाग है—जीवकाण्ड 733 गाथायें और कर्मकाण्ड (972 गा)। जीवकाण्ड में जीव, स्थान, क्षुद्रबन्ध, बन्धस्वामी और वेदना इन पाच विषयो का विवेचन है। कर्मकाण्ड में कर्म के भेद-प्रभेदो की व्याख्या की गई है। इसी लेखक की लब्धिसार (261 गा.) नामक एक और रचना मिलती है। लगभग आठवी शती में लिखी किसी अज्ञात विद्वान् की पञ्चसग्रह (1304 गा) नामक कृति भी उपलब्ध है। इसमें कर्मस्तव आदि पांच प्रकरण हैं। प्राय. ये सभी ग्रन्थ शौरसैनी प्राकृत में लिखे गये हैं। आचार्य कुन्दकुन्द, वट्टकेर और शिवार्य के साहित्य को इसमें और जोड दिया जाय तो यह समूचा साहित्य दिगम्बर सम्प्रदाय का आगम साहित्य कहा जा सकता है।

इन ग्रन्थो के अतिरिक्त शिवशर्मसूरि (वि. की पाचवी शती) की कर्मप्रकृति (475 गा.); उस पर किसी अज्ञात विद्वान् की सात हजार श्लोक प्रमाण चूर्णि, वीरशेखरविजय का ठिइबन्ध (876 गा.) तथा खवग सेढी और चन्द्रर्षिमहत्तर का पचसग्रह (1000 गा.) विशिष्ट कर्म-ग्रन्थ हैं। गर्गर्षि (वि. की 1 वी शती) का कर्मविपाक, अज्ञात कवि का कर्मस्तव और बन्धस्वामित्व, जिनवल्लभ गणि की षडशीति, शिवशर्मसूरि का शतक और अज्ञात कवि की सप्ततिका ये प्राचीन षट् कर्म ग्रन्थ कहे जाते हैं। जिनवल्लभगणि (वि की 12वी शती) का सार्धशतक (155 गा.) भी स्मरणीय है। देवेन्द्रसूरि (13वीं शती) के कर्मविपाक (60 गा.), कर्मस्तव (34 गा.), बन्धस्वामित्व (24 गा), षडशीति (86 गा) और शतक (100 गा.), इन पाच ग्रन्थो को नव्यकर्मग्रन्थ कहा जाता है। जिनभद्रगणि की विशेषणवति,

विजयविमलगणि (वि. स. 1623) का भावप्रकरण (30 गा.), हर्षकुल गणि (16वी शती) का बन्धोदयसत्ता प्रकरण (24 गा.) ग्रन्थ भी यहा उल्लेखनीय है ।

4. सिद्धान्त साहित्य

कर्मसाहित्य के अतिरिक्त कुछ और ग्रन्थ हैं जिन्हे हम आगम के अन्तर्गत रख सकते है । इन ग्रन्थों में आचार्य कुन्दकुन्द (प्रथम शती) के पवयणसार (275 गा.), समयसार (415 गा.), नियमसार (187 गा.), पंचत्थिकाय-संगहसुत्त (173 गा.), दंसणपाहुड (36 गा.), चारित्तपाहुड (44 गा.), सुत्तपाहुड (27 गा.), बोधपाहुड (62 गा.), भावपाहुड (166 गा.), मोक्खपाहुड (106 गा.), लिंगपाहुड (22 गा.) और सीलपाहुड (40 गा.) प्रधान ग्रन्थ हैं । इनमें निश्चय नय की दृष्टि से आत्मा की विशुद्धावस्था को प्राप्त करने का मार्ग बताया गया है । इनकी भाषा शौरसेनी है ।

अनेकान्त का सम्यक् विवेचन करने वालो में आचार्य सिद्धसेन (5-6वी शती) शीर्षस्थ हैं । जिन्होने सम्मइसुत्त (167 गा.) लिखकर प्राकृत में दार्शनिक ग्रन्थ लिखने का मार्ग प्रशस्त किया । यह ग्रन्थ तीन खण्डों में विभक्त है—नय, उपयोग और अनेकान्तवाद । अभयदेव ने इस पर 25000 श्लोक प्रमाण तत्वबोध-विद्यायिनी नामक टीका लिखी । इसकी भाषा महाराष्ट्री प्राकृत है । इसी प्रकार आचार्य देवसेन का लघुनयचक्र (87 गा.) और माइल धवल का वृहन्नयचक्र (423 गा.) भी इस सदर्भ में उल्लेखनीय ग्रन्थ हैं ।

किसी अज्ञात कवि का जीवसमास (286 गा.); शान्तिसूरि (11वी शती) का जीवविचार (51 गा.), अभयदेवसूरि की पण्णवणा-तइयपयसंगहणी (133 गा.), अज्ञातकवि की जीवाजीवाभिगमसंगहणी (223 गा.), जिनभद्रगणि क्षमाश्रमण का समयखित्तसमास (637 गा.), रत्नशेखरसूरि की क्षेत्रविचारणा (377 गा.), नेमिचन्द्रसूरि का पवयणसारुद्धार (1599 गा.), सोमतिलकसूरि (वि. स. 1373) का सत्तरिसयठाण पयरण (359 गा.); देवसूरि का जीवाणुसासण (323 गा) आदि रचनाओ में सप्त तत्वो का सांगोपाग विवेचन मिलता है ।

धर्मोपदेशात्मक साहित्य भी प्राकृत में प्रचुर मात्रा में मिलता है । जीवन-साधना की दृष्टि से यह साहित्य लिखा गया है । धर्मदास गणि (लगभग 8 वी शती) की उवएसमाला-(542 गा.), हरिभद्रसूरि का उवएसपद (1039 गा.) एवं सबोहपयरण (150 गा.), हेमचन्द्र सूरि की पुष्पमाला (505 गा.) व भवभावणा (531 गा.), महेन्द्रप्रभसूरि (सं. 1436) की उवएस चिंतामणि (415 गा.), जिनदत्तसूरि (1231) का विवेकविलास (1323 गा.), शुभवर्धनगणि (सं. 1552) की वद्धमाणदेसना (3163 गा.), लक्ष्मीवल्लभगणि का वैराग्य-रसायनप्रकरण (102 गा.); पद्मनन्दमुनि का धम्मरसायण (193 गा.) तथा जयवल्लभ का वज्जालग्ग (1330 गा.) आदि ग्रन्थ मुख्य हैं । इन कृतियो में जैनधर्म, सिद्धात और तत्वो का उपदेश दिया गया है और आध्यात्मिक उन्नति की दृष्टि से व्रतादि का महत्व बताया गया है । ये सभी कृतिया जैन महाराष्ट्री प्राकृत में लिखी गई हैं और पश्चिम के जैन साहित्यकारो ने अर्धमागधी के बाद इसी भाषा को माध्यम बनाया । 'यश्रुति' इसकी विशेषता है ।

आचार्यों ने योग और बारह भावनाओ सम्बन्धी साहित्य भी प्राकृत में लिखा है । इसका अधिकांश साहित्य यद्यपि सस्कृत में मिलता है पर प्राकृत भी उससे अछूता नही रहा । हरिभद्र सूरि का झाणज्झयण (106 गा), कुमार कार्तिकेय का बारसानुवेक्खा (489 गा.), उ देवचन्द्र का गुणट्ठाणमय (107 गा.) उल्लेखनीय है । इन ग्रन्थो में यम, नियम आदि क माध्यम से मुक्तिमार्ग-प्राप्ति को निर्दिष्ट किया गया है । प्राचीन भारतीय योगसाधना को किस प्रकार विशुद्ध अध्यात्मिक साधना का माध्यम बनाया जा सकता है इसका निदर्शन इन आचार्यों ने इन कृतियों में बडी कुशलतापूर्वक किया है ।

5. आचार साहित्य

आचार साहित्य में सागार और अनगार के व्रतो और नियमो का विधान रहता है। वट्टकेर (लगभग 3री शती) का मूलाचार (1552 गा.), शिवार्य (लगभग तृतीय शती) का भगवइ आराहणा (2166 गा.) और वसुनन्दी (13वी शती) का उवासयाज्झयण (546 गा) शौरसेनी प्राकृत में लिखे कुछ विशिष्ट ग्रन्थ है जिनमे मुनियो और श्रावको के आचार-विचार का विस्तृत वर्णन है।

इसी तरह हरिभद्रसूरि के पंचवत्थुग (1714 गा.), पंचासग (950 गा.), सावयपण्णत्ति (405 गा) और सावयधम्मविहि (120 गा.), प्रद्युम्नसूरि की मूलसिद्धि (252 गा.), वीरभद्र (स. 1078) की आराहणापडाया (990 गा.), देवेन्द्रसूरि की सड्ढदिण किच्च (344 गा.)' आदि जैन महाराष्ट्री में लिखे प्रमुख ग्रन्थ हैं। इनमें मुनि और श्रावको की दिनचर्या, नियम, उपनियम, दर्शन, प्रायश्चित आदि की व्यवस्था विधि बताई गई है। इन ग्रन्थों पर अनेक टीकायें भी मिलती हैं।

6. विधि-विधान और भक्तिमूलक साहित्य

प्राकृत मे ऐसा साहित्य भी उपलब्ध होता है जिसमें आचार्यों ने भक्ति, पूजा प्रतिष्ठा, यज्ञ, मन्त्र, तन्त्र, पर्व, तीर्थ आदि का वर्णन किया है। कुन्दकुन्द की सिद्ध भक्ति (12 गा.), सुदभत्ति, चरित्तभत्ति, (10 गा.) अणगारभत्ति, (23 गा.), आयरियभत्ति, (10 गा), पचगुरुभत्ति, (7 गा.), तित्थयरभत्ति, (8 गा.) और निव्वाणभत्ति, (26 गा.) विशेष महत्वपूर्ण हैं। यशोदेवसूरि का पच्चक्खाणसरुव (329 गा.); श्रीचन्द्रसूरि की अणुट्ठाणविहि, जिनवल्लभगणि की पडिक्कमणसमायारी (40 गा.), पोसहविहिपयरण (118 गा.) और जिनप्रभसूरि (वि स. 1363) की विहिमग्गप्पवा (3575 गा) इस सदर्भ में उल्लेखनीय ग्रन्थ है। धनपाल की ऋषभपचासिका (50 गा.), भद्रबाहु का उपसग्गहरस्तोत्र (20 गा), नन्दिषेण का अजियसंतिथय, देवेन्द्रसूरि का शास्वतचैत्यस्तव, धर्मघोषसूरि (14वीं शती) का भवस्तोत्र, किसी अज्ञात कवि का निर्वाणकाण्ड (21 गा.) तथा योगन्द्रदेव (छठी शती) का निजात्माष्टक प्रसिद्ध स्तोत्र है इन स्तोत्रो में दार्शनिक सिद्धान्तो के साथ ही काव्यात्मक तत्वो का विशेष ध्यान रखा गया है।

7. पौराणिक और ऐतिहासिक काव्य साहित्य

जैन धर्म में 63 शलाका महापुरुष हुए हैं जिनका जीवन-चरित्र कवियो ने अपनी लेखनी मे उतारा है। इन काव्यों का स्रोत आगम साहित्य है। इन्हें प्रबन्ध काव्य की कोटि में रखा जा सकता है। इनमें कवियो ने धर्मोपदेश, कर्मफल, अवान्तरकथायें, स्तुति दर्शन, काव्य और सस्कृति को समाहित किया है। साधारणतया सभी काव्य शान्तरसानवर्ती हैं। इनमें महाकाव्य के प्राय सभी लक्षण घटित होते हैं। लोकतत्वो का भी समावेश यहा हुआ है।

पउमचरिय (8351 गा) पौराणिक महाकाव्यो में प्राचीनतम कृति है। जिसकी रचना विमलसूरि ने वि. स. 530 में की। कवि ने यहा रामचरित को यथार्थवादिता की भूमिका पर खडे होकर लिखा है। उसमें उन्होने अतार्किक और बेसिर-पैर की बातो को स्थान नही दिया है। सभी प्रकार के गुण, अलकार, रस और छन्दो का भी उपयोग किया गया है। गप्त वाकाटक युग की सस्कृति भी इसमें पर्याप्त मिलती है। महाराष्ट्री प्राकृत का परिमार्जित रूप यहा विद्यमान है। कही-कही अपभ्रश का भी प्रभाव दिखाई देता है। इसी तरह भुवनतगसूरि का सीताचरित्र (465 गा.) भी है।

सम्भवतः शीलाकाचार्य से भिन्न शीलाचार्य (वि. स. 925) का चउपन्नमहापुरिसचरिय (10800 श्लोक प्रमाण), भद्रेश्वरसूरि (12 वी शती) रचित कहावली तथा,

आम्रकवि (10वीं शती) का चउप्पन महापुरिस चरिय (103 अधिकार), सोमप्रभाचार्य, (सं 1199) का सुमईनाहचरिय (9621 श्लोक परिमाण), लक्ष्मणगणि (सं. 1199) का सुपासनाहचरिय (8000 गा.), नेमिचन्द्रसूरि (सं. 1216) का अनतनाहचरिय (1200 गा.), श्रीचन्द्र सूरि (सं. 1199) का मुनिसुव्वयसामिचरिय (10994 गा.) तथा गुण चन्द्रसूरि (सं. 1139) और नेमिचन्द्रसूरि (12वी शती) के महावीर चरित्र (क्रमशः 12025 और 2385 श्लोक प्रमाण) काव्य विशेष उल्लेखनीय हैं। ये ग्रन्थ प्रायः पद्यबद्ध हैं। कथावस्तु की सजीवता व चरित्र-चित्रण की मार्मिकता यहां स्पष्टतः दिखाई देती है।

द्वादश चक्रवर्तियों तथा अन्य शलाका पुरुषों पर भी प्राकृत रचनायें उपलब्ध हैं। श्रीचन्द्रसूरि (सं. 1214) का सणकुमार चरिय (8127 श्लोक प्रमाण), सघदासगणि और धर्मदासगणि (लगभग 5वी शती) का वसुदेवहिण्डी (दो खण्ड) तथा गुणपालमनि का जम्बूचरिय (15 उद्देश्य) इस सन्दर्भ मे उल्लेखनीय ग्रन्थ हैं। इन काव्यो मे जैन धर्म, इतिहास और संस्कृति पर प्रकाश डालने वाले अनेक स्थल हैं।

भगवान् महावीर के बाद होने वाले अन्य आचार्यों और साधकों पर भी प्राकृत काव्य लिखे गये हैं। तिलकसूरि (स 1261) का प्रत्येकबुद्धचरित (6050 श्लोक प्रमाण) उनमे प्रमुख हैं। इसके अतिरिक्त कुछ और पौराणिक काव्य मिलते हैं जो आचार्यों के चरित्र पर आधारित हैं जैसे कालकाचार्य कथा आदि।

जैनाचार्यों ने ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर कतिपय प्राकृत काव्य लिखे हैं। कही राजा, मन्त्री अथवा श्रेष्ठी नायक है तो कही सन्त, महात्मा के जीवन को काव्य के लिये चुना गया है। उनकी दिग्विजय, सघयात्रायें तथा अन्य प्रासागक वर्णनो मे अतिशयोक्तिया भी झलकती हैं। वहा काल्पनिक चित्रण भी उभरकर सामने आये हैं। ऐसे स्थलो पर इतिहासवेत्ता को पूरी सावधानी के साथ सामग्री का चयन करना अपेक्षित है। हेमचन्द्रसूरि का द्वयाश्रय महाकाव्य चालुक्यवंशीय कुमारपाल महाराजा के चरित का ऐसा ही चित्रण करता है। इस ग्रन्थ को पढकर भट्टिकाव्य, राजतरगिणी तथा विक्रमाकदेव चरित्र जैसे ग्रन्थ स्मृति पथ मे आने लगते हैं।

इतिहास के निर्माण में प्रशस्तियो और अभिलेखो का भी महत्व होता है। श्रीचन्द्रसूरि के मुनिसुव्वयसामिचरिय (सं. 1193) की 100 गाथाओ की प्रशस्ति मे सघ शाकम्भरी नरेश पृथ्वीराज, सौराष्ट्र नरेश खैंगार आदि का वर्णन है। साहित्य जहा मौन हो जाता है वहा अभिलेख बात करने लगते है। प्राकृत मे लिखे प्राचीनतम अभिलेख के रूप मे बारली (अजमेर से 38 मील दूर) मे प्राप्त पाषाण खण्ड पर खुदी चार पक्तिया हैं जिनमे वीर निर्वाण संवत् 84 उत्कीर्ण है। अशोक के लेख इसके बाद के हैं। उनमे भी प्राकृत रूप दिखाई देते है। सम्राट् खारवेल का हाथी गुफा शिलालेख, मथुरा और धमोसा से प्राप्त शिलालेख तथा घटियाल (जोधपुर) का शिलालेख (सं. 918) इस सन्दर्भ मे उल्लेखनीय है। कई मूर्ति लेख भी प्राकृत मे मिलते हैं।

नाटको का समावेश दृश्यकाव्य के रूप में होता है। इसमे सवाद, सगीत, नृत्य और अभिनय सन्निहित होता है। सस्कृत नाटको मे साधारणत स्त्रिया, विदूषक तथा निम्नवर्ग के किंकर, धूर्त, विट, भूत, पिशाच आदि अधिकाश पात्र प्राकृत ही बोलते हैं। पूर्णतया प्राकृत मे लिखा नाटक अभी तक उपलब्ध नही हुआ। नयचन्द्रसूरि की सट्टक कृति नयमजरी अवश्य मिली है जो कर्पूरमजरी के अनुकरण पर लिखी गई है। इसमे प्राकृत के विभिन्न रूप देखने को मिलते हैं।

8. कथा साहित्य

जैनाचार्यों ने प्राकृत भाषा में विपुल कथा साहित्य का निर्माण किया है। उनका मुख्य उद्देश्य कर्म, दर्शन, सयम, तप, चरित्र, दान आदि के महत्व को स्पष्ट करना रहा है। आगम साहित्य इन कथाओ का मूल स्रोत है। आधुनिक कथाओ के समान यहा वस्तु, पात्र, सवाद, देशकाल, शैली और उद्देश्य के रूप में कथा के अग भी मिलते हैं। निर्युक्ति, भाष्य, चूर्णि, टीका आदि ग्रन्थो में उपलब्ध कथायें उत्तर कालीन विकास को इगित करती है। यहा अपेक्षा कृत सरसता और स्पष्टता अधिक दिखाई देती है।

समूचे प्राकृत साहित्य को अनेक प्रकार से विभाजित किया गया है। आगमो मे अकथा, विकथा और कथा ये तीन भेद किये गये हैं।[1] कथा में लोककल्याण का हेतु गर्भित होता है। शेष त्याज्य है। विषय की दृष्टि से चार भेद हैं–अक्षेपणी, अर्थ, काम और मिश्रकथा। धर्मकथा के भी चार भेद हैं–अक्षेपणी, विक्षेपणी, सवेदनी और निर्वेदनी। जैनाचार्यों ने इसी प्रकार को अधिक अपनाया है। पात्रो के आधार पर उन्हें दिव्य, मानुष और मिश्रकथाओं के रूप में वर्गीकृत किया जा सकता है।[2] तीसरा वर्गीकरण भाषा की दृष्टि से हुआ है —सस्कृत, प्राकृत, और मिश्र।[3] उद्योतनसूरि ने शैली की दृष्टि से इसके पाच भेद किये हैं – सकल कथा, खण्ड कथा, उल्लाप कथा, परिहास कथा और सकीर्ण कथा।[4] प्राकृत साहित्य में में मिश्रकथायें अधिक मिलती हैं। इन सभी कथा-ग्रन्थो का परिचय देना यहा सरल नही। इसलिए विशिष्ट ग्रन्थो का ही उल्लेख किया जा रहा है।

कथा संग्रह:–जैनाचार्यों ने कुछ ऐसी धर्मकथाओं का सग्रह किया है जो साहित्यकार के लिये सदैव उपजीव्य रहा है। धर्मदासगणि (10वी शती) के उपदेशमाला प्रकरण (542 गा.) में 310 कथानको का नामोल्लेख है और टीकाओ में उनका चरित्र सग्रह है। जयसिंहसूरि (वि स. 915) का धर्मोपदेशमाला विवरण (159 कथायें), देवभद्रसूरि (स. 1108) का कहारयणकास (12300 श्लोक प्रमाण और 50 कथायें), देवेन्द्रगणि (स. 1129) का अक्खाणयमणिकोस (127 कथानक) आदि महत्वपूर्ण कथा सग्रह है जिनमें धर्म के विभिन्न आयामो पर कथानको के माध्यम से दृष्टात प्रस्तुत किये गये हैं। ये सर्वसाधारण के लिए बहुत उपयोगी हैं।

उपर्युक्त कथानको अथवा लोककथाओ का आश्रय लेकर कुछ स्वतन्त्र कथा साहित्य का भी निर्माण किया गया है जिनमें धर्माराधना के विविध पक्षो की प्रस्तुति मिलती है। उदाहरणत. हरिभद्रसूरि (स. 717-827) की समराइच्चकहा ऐसा ही ग्रन्थ है जिसमें महाराष्ट्रीय प्राकृत गद्य में 9 प्रकरण हैं और उनमें समरादित्य और गिरिसेन के 9 भवो का सुन्दर वर्णन है। इसी कवि का धूर्ताख्यान (480 गा.) भी अपने ढग की एक निराली कृति है जिसमें हास्य और व्यग्यपूर्ण मनोरजक कथायें निबद्ध हैं। जयराम की प्राकृत धम्मपरिक्खा भी इसी शैली में रची गई उत्तम कृति है।

यशोधर और श्रीपाल के कथानक आचार्यों को बड़े रुचिकर प्रतीत हुए। सिरिवालकहा (1342 गा.) को रत्नशेखरसूरि ने सकलित किया और हेमचन्द्र साधु (स. 1428)

---

1. दशवैकालिक गा. 188; समराइच्च कहा- पृ. 2,
2. समराइच्चकहा-पृ. 2,
3. लीलावईकहा–36,
4. कुवलयमाला-पृ. 4

ने उसे लिपिबद्ध किया। सुकौशल, सुकुमाल और जिनदत्त के चरित भी लेखको के लिए उपजीव्य कथानक रहे हैं।

कतिपय रचनाये नारीपात्र प्रधान हैं। पादलिप्तसूरि रचित तरगवईकहा इसी प्रकार की रचना है। यह अपने मलरूप में उपलब्ध नही पर नेमिचन्द्रगणि ने इसी को तरगलोला के नाम से सक्षिप्त रूपान्तरित-कथाओ (1642 गा.) में प्रस्तुत किया है। उद्योतन-सूरि (स. 835) की कुवलयमाला (13000 श्लोक प्रमाण) महाराष्ट्री प्राकृत में गद्य-पद्य मय चम्पूशैली में लिखी इसी प्रकार की अनुपम कृति है जिसे हम महाकाव्य कह सकते है। गुण-पाल मुनि (स. 1264) का इसिदत्ताचरिय (1550 ग्रन्थाग्र प्रमाण), घनेश्वरसूरि (स. 1095) का सुरसुन्दरी चरिय (4001 गा), देवेन्द्रसूरि (स. 1323) का सुदंसगाचरिय (4002 गा.) आदि रचनाये भी यहा उल्लेखनीय हैं। इनमे नारी मे प्राप्त भावनाओ का सुन्दर विश्लेषण मिलता है।

कुछ कथाग्रन्थ ऐसे भी रचे गये है जिनका विशेष सम्बन्ध किसी पर्व, पूजा अथवा स्तोत्र से रहा है। ऐसे ग्रन्थो में श्रतपञ्चमी के माहात्म्य को प्रदर्शित करने वाला "नाणपचमी कहाओ" ग्रन्थ सर्वप्रथम उल्लेखनीय है। इसमें 10 कथाये और 2804 गाथाये हैं। इन कथाओ मे भविस्सयत्तकहाने उत्तरकालीन आचार्यों को विशेष प्रभावित किया है। इसके अतिरिक्त एकादशीव्रतकथा (137 गा.) आदि ग्रन्थ भी उपलब्ध होते हैं।

9. लाक्षणिक साहित्य

लाक्षणिक साहित्य से हमारा तात्पर्य है—व्याकरण, कोश, छन्द, ज्योतिष-निमित्त, शिल्पादि विद्यायें। इन सभी विद्याओ पर प्राकृत रचनाये मिलती हैं। अणुयोगदारसुत्त आदि प्राकृत आगम साहित्य में व्याकरण के कुछ सिद्धान्त परिलक्षित होते है पर आश्चर्य की बात है कि अभी तक प्राकृत भाषा में लिखा कोई भी प्राकृत व्याकरण उपलब्ध नही हुआ। समन्तभद्र, वीरसेन और देवेन्द्रसूरि के प्राकृत व्याकरणो का उल्लेख अवश्य मिलता है पर अभी तक वे प्रकाश मे नही आ पाये। सभव है, वे ग्रन्थ प्राकृत में लिखे गये हो। सस्कृत भाषा मे लिखे गये प्राकृत व्याकरणो मे चण्ड का स्ववृत्तिसहित प्राकृत व्याकरण (99 अथवा 103 सूत्र), हेमचन्द्रसूरि का सिद्धहेमचन्द्र शब्दानुशासन (1119 सूत्र), त्रिविक्रम (13वी शती) का प्राकृत शब्दानुशासन (1036 सूत्र) आदि ग्रन्थ विशेष उल्लेखनीय है। इन ग्रन्थो में प्राकृत और अपभ्रंश के व्याकरण विषयक नियमोपनियमो का सुन्दर वर्णन मिलता है।

भाषा का ज्ञान प्राप्त करने के लिए कोश की भी आवश्यकता होती है। कोश की दृष्टि से नियुक्तियो का विशेष महत्व है। उसमे एक-एक शब्द के भिन्न-भिन्न अर्थो को प्रस्तुत किया गया है। प्राकृतकोशकला के उद्भव और विकास की दृष्टि से उनका समझना आवश्यक है। हेमचन्द्र की देशी नाममाला (783 गा.) मे 397 देशज शब्दो का सकलन किया गया है जो भाषा-विज्ञान की दृष्टि से विशेष उपयोगी है। इसके अतिरिक्त धनपाल (स. 1029) का पाइय लच्छीनाममाला (279 गा), विजयराजेन्द्रसूरि (स.1960) का अभिधान राजेन्द्रकोश (चार लाख श्लोक प्रमाण) और हरगोविन्ददास त्रिक्रमचन्द सेठ का पाइय सद्दमहण्णवो (प्राकृत हिन्दी) कोश भी यहां उल्लेखनीय है।

सवेदनशीलता जाग्रत करने कराने के लिए छन्द का प्रयोग हुआ है। नदिताढ्य (लगभग 10वी शती) का गाहालक्खण (96 गा.) और रत्नशेखरसूरि (15 वी शती) का छन्दः कोश (74 गा.) उल्लेखनीय प्राकृत छन्द गन्थ है।

गणित क क्षेत्र में महावीराचार्य का गणितसार संग्रह और भास्कराचार्य की लीलावती प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इन दोनों का आधार लेकर इनमें आलेखित विषयो का ठक्कर फेरु (13वी

शती) ने गणितसारकौमुदी नामक ग्रन्थ लिखा। उनके अन्य ग्रन्थ हैं—रत्न-परीक्षा (132 गा.), द्रव्यपरीक्षा (149 गा.), धातूत्पत्ति (57 गा.), भूगर्भप्रकाश आदि। यहां यतिवृषभ (छठी शती) की तिलोयपण्णत्ति का भी उल्लेख किया जा सकता है जिसमें लेखक ने जैन मान्यतानुसार त्रिलोक सम्बन्धी विषय को उपस्थित किया है। यह अठारह हजार श्लोक प्रमाण ग्रन्थ है।

ज्योतिष विषयक ग्रन्थों में सूर्यप्रज्ञप्ति, चन्द्रप्रज्ञप्ति आदि अंगबाह्य ग्रन्थों के अतिरिक्त ठक्कर फेरु का ज्योतिषसार (93. गा.), हरिभद्रसूरि की लग्नसुद्धि (133 गा.), रत्नशेखर सूरि (15वी शती) की दिनसुद्धि (144 गा.), हीरकलश (स. 1621) का ज्योतिस्सार आदि ग्रन्थ उल्लेखनीय हैं। निमित्तशास्त्र में भौम, उत्पात, स्वप्न अग अन्तरिक्ष, स्वर, लक्षण, व्यञ्जन आदि निमित्तों का अध्ययन किया गया है। किसी अज्ञात कवि का जयपाहुड (378 गा.), धरसेन का जोणिपाहुड, ऋषिपुत्र का निमितशास्त्र (187 गा.), दुर्गदेव (सं. 1089) का रिट्ठसमुच्चय (261 गा.) आदि रचनाएं प्रमुख हैं। अगविज्जा एक अज्ञात कर्तृक रचना है जिसमें 60 अध्यायों में शुभाशुभ निमित्तो का वर्णन किया गया है। कुषाणकालीन यह ग्रन्थ सांस्कृतिक सामग्री से भरा हुआ है। करलक्खण (61 गा.) भी किसी अज्ञात कवि की रचना है। जिसमें हाथ के लक्षण, रेखाओ आदि का वर्णन है।

वास्तु-शिल्प शास्त्र के रूप में ठक्कर फेरु का वास्तुसार (280 गा.) प्रतिष्ठित ग्रन्थ है जिसमें भूमिपरीक्षा, भूमिशोधन आदि पर विवेचन किया गया है। इसी कवि की एक अन्य कृति रत्नपरीक्षा (132 गा.) पद्मराग, मुक्ता, विद्रुम आदि 16 प्रकार के रत्नो की उत्पत्ति स्थान, आकार, वर्ण, गुण, दोष आदि पर विचार किया गया है। उन्ही की द्रव्यपरीक्षा (149 गा.) में सिक्को के मूल्य, तौल, नाम आदि पर तथा धातूत्पत्ति (57 गा.) में पीतल, तांबा आदि धातुओ पर तथा भूगर्भप्रकाश में ताम्र, स्वर्ण आदि द्रव्य वाली पृथ्वी की विशेषताओ पर विशद प्रकाश डाला गया है। ये सभी ग्रन्थ वि. स. 1372-75 के बीच लिखे गये हैं।

इस प्रकार प्राकृत साहित्य के सर्वेक्षण से यह स्पष्ट हो जाता है कि जैनाचार्यों ने उसकी हर विधा को समृद्ध किया है। प्रस्तुत निबन्ध में स्थानाभाव के कारण सभी का उल्लेख करना तो सम्भव नही हो सका, परन्तु इतना तो अवश्य कहा जा सकता है कि प्राकृत जैन साहित्य लगभग पच्चीस सौ वर्षों से साहित्य के हर क्षेत्र को अपने योगदान से हरा भरा करता आ रहा है। प्राचीन भारतीय इतिहास और संस्कृति का हर प्रागण प्राकृत साहित्य का ऋणी है। उसने लोकभाषा और लोक-जीवन को अगीकार कर उनकी समस्याओ के समाधान की दिशा में आध्यात्मिक चेतना को जाग्रत किया। इतना ही नही, आधुनिक साहित्य के लिए भी वह उपजीव्य बना। प्रेमाख्यानक काव्यो के विकास में प्राकृत जैन कथा साहित्य को भुलाया नहीं जा सकता। संस्कृत चम्पू और चरित काव्य के प्रेरक प्राकृत ग्रन्थ ही हैं। काव्य-शास्त्रीय सिद्धान्तो का सरस प्रतिपादन भी यहा हुआ है। दर्शन और सिद्धान्तो से लेकर भाषाविज्ञान, व्याकरण और इतिहास तक सब कुछ प्राकृत जैन साहित्य में निबद्ध है। उसके समग्र योगदान का मूल्यांकन अभी शेष है।

राजस्थान का प्राकृत-साहित्य : 2

—डॉ. प्रेमसुमन जैन

राजस्थान की साहित्यिक समृद्धि में प्राकृत, अपभ्रंश एवं संस्कृत भाषा की रचनाओं का महत्त्वपूर्ण योग है।[1] प्राचीन ग्रन्थों की प्रशस्तियाँ, लेख, पट्टावलियाँ आदि के उल्लेख एवं राजस्थान के ग्रन्थ भण्डारों में उपलब्ध इन भाषाओं के ग्रन्थ इस बात के साक्षी हैं कि जैनाचार्यों ने अपना अधिकांश समय राजस्थान के सांस्कृतिक विकास में व्यतीत किया है।[2] प्राकृत भाषा में लिखे गये ग्रन्थों का सर्वेक्षण व मूल्यांकन राजस्थान के जैनाचार्यों की इस थाती को और स्पष्ट करता है।[3] राजस्थान की इस साहित्यिक सम्पदा का एक प्रामाणिक इतिहास आधुनिक शैली में लिखा जाना नितान्त अपेक्षित है।

प्राकृत साहित्य के साहित्यकारों एवं उनकी रचनाओं को राजस्थान से सम्बन्धित बतलाने में जिस आधारभूत सामग्री का उपयोग किया जा सकता है वह है—(1) ग्रन्थों की प्रशस्तियाँ व वृत्तियों में राजस्थान के नगरों व मन्दिरों का उल्लेख, (2) रचनाकारों के गच्छ व गुरु परम्परा का राजस्थान से संबंध, (3) प्रतिमालेखों, अभिलेखों व पट्टावलियों में ग्रन्थ व ग्रन्थकार से संबंधित उल्लेख तथा (4) राजस्थान की प्रसिद्ध जातियों व राजवंशों से ग्रन्थकारों का संबंध आदि। इन तथ्यों के अतिरिक्त गुजरात, मालवा एवं दिल्ली के प्राचीन इतिहास आदि में भी राजस्थान के रचनाकारों व आचार्यों का परिचय यत्र-तत्र उपलब्ध हो जाता है। दूसरी बात यह है कि जैन आचार्यों के भ्रमणशील होने के कारण बहुत से गुजरात आदि के ग्रन्थकारों ने भी राजस्थान में रचनायें की हैं तथा उन्हें सुरक्षित रखा है।[4] इस तरह के सभी प्रमाणों के आधार पर राजस्थान के प्राकृत-साहित्य का मूल्यांकन किया जा सकता है।

राजस्थान की साहित्यिक परम्परा

यह कह पाना कठिन है कि राजस्थान में सर्व प्रथम किस भाषा में और कौन-सा ग्रन्थ लिखा गया? इसके उत्तर के लिये अनुश्रुति और उपलब्ध प्रमाणों को जाँचना होगा। राजस्थान में ऐसी अनुश्रुति है कि प्राचीन समय में इस प्रदेश में सरस्वती नदी बहती थी, जिसके किनारे बैठकर कभी मुनियों ने वेद की रचनायें एवं अन्य ग्रन्थ लिखे थे।[5] इस मिथ को प्रमाणित करना

---

1. द्रष्टव्य—लेखक का निबन्ध—"राजस्थान में अपभ्रंश और जैन संस्कृत साहित्य" —जैन संस्कृति और राजस्थान।
2. जैन, कैलाशचन्द्र,—"जैनिज्म इन राजस्थान"।
3. शर्मा, दशरथ, "राजस्थान थ्रू द एजेज", बीकानेर, 1971।
4. द्रष्टव्य—देसाई मोहनलाल दलीचन्द—"जैन साहित्यनो संक्षिप्त इतिहास" 1933।
5. नाहटा अगरचन्द—"राजस्थानी साहित्य की गौरवपूर्ण परम्परा" 1967।

कठिन है। पुनरपि सरस्वती नदी का उल्लेख राजस्थान में प्रारम्भ से ही साहित्य रचे जाने का प्रतीक है। यही बात राजस्थान में उपलब्ध प्रारम्भिक साहित्य से फलित होती है।

संस्कृत व प्राकृत की रचनाओं में महाकवि माघ का "शिशुपालवध", आचार्य हरिभद्रसूरि का "धूर्ताख्यान" व उद्योतनसूरि की "कुवलयमालाकहा" ऐसी प्रारम्भिक रचनाएं हैं जिनमें उनके कर्त्ता के साथ-साथ उनके रचना-स्थलों और समय का भी उल्लेख है। ये सभी रचनाएं आठवी शताब्दी की हैं और काव्य तथा शैली की दृष्टि से पर्याप्त प्रौढ हैं। अतः इनके सृजन के पीछे राजस्थान में साहित्यिक विकास की एक सुदृढ पष्ठभूमि होनी चाहिये। यह अनुमान किया जा सकता है कि राजस्थान में 4-5वी शताब्दी में ग्रन्थ लिखना प्रारम्भ हो गया होगा। क्योंकि इस युग में देश में विपुल साहित्य रचा जा रहा था। राजस्थान के तत्कालीन नगरों में रहने वाले साहित्यकार इसमें पीछे नहीं रहे होगे।

जैन-साहित्य की दृष्टि से यह युग आगमों पर भाष्य आदि लिखे जाने का था। जैनाचार्य अपनी टीकाओं में प्राकृत का प्रयोग अधिक कर रहे थे।[1] प्राकृत में लौकिक काव्य आदि भी लिखे जा रहे थे। अतः सम्भव है कि किसी जैनाचार्य ने राजस्थान में विचरण करते हुये प्राकृत में ग्रन्थ रचना की हो। जैनागम के प्रसिद्ध टीकाकारो का प्रामाणिक परिचय उपलब्ध होने पर भी संभव है कि गुप्तयुग में राजस्थान में रचित किसी प्राकृत ग्रन्थ का पता चल सके। गुप्त युग में रचित ऐसी कुछ प्राकृत रचनाओं ने ही आठवी शताब्दी की प्राकृत रचनाओ के निर्माण में भूमिका प्रदान की होगी।

राजस्थान में गुप्तयुग के जैनाचार्यों में आचार्य सिद्धसेन दिवाकर एवं एलाचार्य का चित्तौडगढ से संबंध बतलाया जाता है। सिद्धसेन दिवाकर 5वी शताब्दी के बहुप्रज्ञ विद्वान् थे। प्रभावकचरित और प्रबन्धकोश में सिद्धसेन की चित्तौडगढ यात्रा के उल्लेख प्राप्त हैं। दिवाकर की पदवी उन्हें चित्तौडगढ में ही प्राप्त हुई थी।[2] अतः बहुत सभव है कि सिद्धसेन की साहित्य-रचना का क्षेत्र मेवाड का प्रदेश रहा हो। प्राकृत में लिखा हुआ उनका 'सन्मतितर्क' नामक ग्रन्थ राजस्थान के साहित्यकार की प्रथम प्राकृत रचना मानी जा सकती है।

दिगम्बर आचार्यों की परम्परा में एलाचार्य को 7वी शताब्दी का विद्वान् माना जाता है। कुछ विद्वान् एलाचार्य को कुन्दकुन्द से अभिन्न मानते हैं। किन्तु एक एलाचार्य कुन्दकुन्द के बाद में भी हुये हैं।[3] इन्द्रनन्दिकृत "श्रुतावतार" से ज्ञात होता है कि एलाचार्य चित्रकूट (चित्तौडगढ) में निवास करते थे। वे जैन शास्त्रों के मर्मज्ञ विद्वान् थे।[4] उनके पास प्रसिद्ध

---

1. मेहता, मोहनलाल—आगमिक व्याख्याएं, "जैन साहित्य" का बृहद् इतिहास भाग, 3, 1967।

2. संघवी, सुखलाल—"सन्मतिप्रकरण", प्रस्तावना, 1963।

3. मुख्तार, जुगलकिशोर, "पुरातन जैन वाक्य-सूचि", प्रस्तावना।

4. काले गते कियत्यपि ततः पुनश्चित्रकूटपुरवासी।
 श्रीमानेलाचार्यो बभूव सिद्धान्ततत्वज्ञः ॥176॥
 तस्य समीपे सकलं सिद्धान्तमधीत्य वीरसेनगुरुः।
 उपरितमनिबन्धानधिकारानष्टं लिलेख ॥177॥ —श्रुतावतार

विद्वान् वीरसेन ने शास्त्रों का अध्ययन किया था। अतः एलाचार्य की उपस्थिति में चित्तौड़ गुप्त-युग में साहित्य - साधना और विद्या का केन्द्र बन गया था। राजस्थान के प्राकृत के प्रारम्भिक साहित्यकारों व विद्वानों में सिद्धसेन के बाद एलाचार्य को स्मरण किया जा सकता है, जिनके शिष्य वीरसेन ने आठवी शताब्दी में प्राकृत की महत्वपूर्ण रचना 'धवला' टीका के रूप में की है।

प्राकृत साहित्य का क्रमिक विकास

राजस्थान में प्राकृत-साहित्य आठवी शताब्दी में पर्याप्त समृद्ध हो चुका था। इस शताब्दी के प्रसिद्ध विद्वान् आचार्य हरिभद्रसूरि, उद्योतनसूरि, पद्मनन्दि तथा आचार्य वीरसेन हैं। आचार्य हरिभद्र का जन्म चित्तौड़ में हुआ था।[1] ये जन्म से ब्राह्मण थे तथा राजा जितारि के पुरोहित। जैन दीक्षा ग्रहण करने के बाद हरिभद्रसूरि ने जैन वाङ्मय की अपूर्व सेवा की है। इन्होंने प्राचीन आगमों पर टीकाएं एवं स्वतन्त्र मौलिक ग्रन्थ भी लिखे हैं।[2] दर्शन व साहित्य विषय पर आपकी विभिन्न रचनाओं में प्राकृत के निम्न ग्रन्थ अधिक प्रसिद्ध हैं—समराइच्चकहा, धूर्ताख्यान, उपदेशपद, धम्मसंग्गहणी, योगशतक, संबोहपगरण आदि। हरिभद्रसूरि ने न केवल अपने मौलिक प्राकृत ग्रन्थों द्वारा अपितु टीकाग्रन्थों में प्राकृत के प्रयोग द्वारा भी राजस्थान में प्राकृत के प्रचार-प्रसार में अपना योगदान दिया है। हरिभद्रसूरि का समय ई. सन् 700-770 माना जाता है।

उद्योतनसूरि, हरिभद्रसूरि के शिष्य थ। उन्होंने सिद्धान्त ग्रन्थों का अध्ययन हरिभद्र-सूरि से किया था। उद्योतनसूरि ने अपने प्रसिद्ध ग्रन्थ 'कुवलयमालाकहा' द्वारा राजस्थान में प्राकृत-कथा साहित्य को एक नया मोड़ दिया। उनकी यह कृति भारतीय साहित्य में चम्पू विधा का प्रथम निदर्शन है।[3] ई सन 779 में जालौर में कुवलयमाला की रचना हुई थी। उद्योतनसूरि ने इस ग्रन्थ द्वारा प्राकृत कथा साहित्य का प्रतिनिधित्व किया है।

इसी शताब्दी में आचार्य वीरसेन हुए हैं। इनके जन्म स्थान के संबंध में मतभेद हैं। किन्तु इनका अध्ययन केन्द्र चित्तौड़ था।[5] प्राकृत के ये प्रकाण्ड पण्डित थे। प्रसिद्ध जैन ग्रन्थ षट्खण्डागम पर इन्होंने 'धवला' नाम की टीका लिखी है, जो 72 हजार श्लोक प्रमाण प्राकृत व संस्कृत में हैं। वीरसेन की विद्वत्ता व पाण्डित्य की प्रशंसा उत्तरवर्ती अनेक कवियों ने की है।

इस शताब्दी के प्राकृत रचनाकारों में पद्मनन्दि का महत्वपूर्ण स्थान है। ये वीरनन्दि की शाखा में बालनन्दि के शिष्य थे। वि. सं. 805 में मेवाड राज्य के बारांनगर में आपका जन्म हुआ था। पद्मनन्दि की 'पंचविंशति', 'जम्बूद्वीपपण्णत्ति' तथा 'धम्मरसायण' प्राकृत

---

1. जीवनी के लिये द्रष्टव्य—संघवी 'समदर्शी आचार्य हरिभद्र' 1963।

2. द्रष्टव्य—शास्त्री, नेमिचन्द्र, 'हरिभद्र के प्राकृत कथा साहित्य का आलोचनात्मक परिशीलन'।

3. उपाध्ये, ए. एन.—'कुवलयमालाकहा'—भूमिका।

4 लेखक का प्रबंध—'कुवलयामालाकहा का सांस्कृतिक अध्ययन' 1975।

5. जैन, ज्योतिप्रसाद, 'राजस्थान के सबसे प्राचीन साहित्यकार'—वीरवाणी, अप्रेल, 1966।

की महत्वपूर्ण रचनायें हैं। इन रचनाओं का धर्म-दर्शन के क्षेत्र में काफी प्रभाव रहा है। इस प्रकार आठवी शताब्दी के इन चारों प्राकृत साहित्यकारों ने राजस्थान में प्राकृत-साहित्य को पर्याप्त समृद्ध किया है।[1]

पूर्व मध्य युग

राजस्थान में 9-10वीं शताब्दी में प्राकृत के अधिक साहित्यकार नहीं हुये। यह संस्कृत भाषा में पाण्डित्य-प्रदर्शन का युग था। सिद्धर्षि की 'उपमितिभवप्रपंचकथा' इसका प्रमुख उदाहरण है। यद्यपि इस युग के टीकाकारो ने प्राकृत का प्रयोग अपनी रचनाओं में किया है। 9वीं शताब्दी के प्राकृत रचनाकारो में जयसिंहसूरि प्रमुख हैं। इन्होंने 'धर्मोपदेशमाला' पर 5778 श्लोक प्रमाण एक विवरण लिखा है, जो वि सं. 915 में नागौर में पूर्ण हुआ था। इसमें 156 कथायें प्राकृत में दी गयी हैं।[2]

ग्यारहवी शताब्दी में राजस्थान में प्राकृत-साहित्य की पर्याप्त समृद्धि हुई है। जिनेश्वर-सूरि इस समय के प्रभावशाली आचार्य थे। इनका कार्य-क्षेत्र गुजरात, मालवा, मेवाड और मारवाड रहा है। इन्होने मारवाड के डिण्डवानक गांव में प्राकृत में 'कथाकोष-प्रकरण' की रचना की थी। वि सं 1086 में जालौर में 'चैत्यवन्दन विवरण' इन्होंने लिखा था। इनके अतिरिक्त भी 2-3 रचनाएं और इनकी प्राकृत में हैं।[3]

इसी शताब्दी में धनेश्वरसूरि ने चन्द्रावती (आबू) में 'सुरसुन्दरीचरियं' प्राकृत में लिखा। दुर्गदेव ने कुंभनगर (भरतपुर) में 'रिट्ठसमुच्चय' ग्रन्थ की रचना प्राकृत में की।[4] बुद्धिसागर ने जालौर में 'पंचग्रन्थी' ग्रन्थ प्राकृत में रचा। महेश्वरसूरि की ज्ञानपंचमीकहा भी इसी शताब्दी की रचना है। इस शताब्दी के प्रसिद्ध कवि धनपाल का भी राजस्थान (सांचौर) से संबंध रहा है, जिन्होंने प्राकृत में 'पाइयलच्छीनाममाला' ग्रन्थ की रचना की है।[5]

ग्यारहवी शताब्दी के पूर्वार्ध में प्राकृत साहित्य को समृद्ध करने वालों में नेमिचन्द्रसूरि का प्रमुख स्थान है। आचार्य पद प्राप्त करने के पूर्व इनका नाम देवेन्द्रगणि था। इन्होंने कई प्राकृत ग्रन्थ लिखे हैं। वि सं. 1129 में इन्होंने उत्तराध्ययन की सुखबोध टीका लिखी, जिसमें कई प्राकृत कथायें हैं। वि. सं. 1140 में इन्होंने प्राकृत में 'महावीर चरिय' लिखा। तथा

---

1. शास्त्री नेमिचन्द—प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, पृ. 239।
2. मेहता, मोहनलाल, 'जैन साहित्य का बृहद् इतिहास,' भाग 4, पृ. 196।
3. मुनि जिनविजय, 'कथाकोष प्रकरण', भूमिका।
4. शाह, अम्बालाल प्रे 'जैन साहित्य का बृहद् इतिहास' भाग 5 (लाक्षणिक साहित्य) पृ 202।
5. 'सत्यपुरीयमंडन–महावीरोत्साह' में उल्लेख।

लगभग वि. सं. 1122-1140 के बीच में इन्होंने 'रयणचूडरायचरियं' की रचना की। यह ग्रन्थ डिंडिल व सन्निवेश में प्रारम्भ कर उन्होंने चड्डावलिपुरी में इसे पूरा किया था।[1] प्रतीत होता है कि नेमिचन्द्रसूरि का कार्यक्षेत्र गुजरात एवं राजस्थान दोनों था।[2]

आचार्य हेमचन्द्र 11-12वीं शताब्दी के बहुश्रुत विद्वान् थे। प्राकृत-साहित्य के क्षेत्र में भी उनका अपूर्व योगदान है। किन्तु उनका कार्यक्षेत्र गुजरात ही रहा है। राजस्थान में भ्रमण कर उन्होंने प्राकृत में किसी ग्रन्थ की रचना की हो ऐसा उल्लेख प्राप्त नहीं है।[3] अतः हेम-चन्द्राचार्य की प्राकृत रचनाओं को यहां सम्मिलित नहीं किया है।

मध्य युग

राजस्थान में बारहवीं शताब्दी में भी अनेक प्राकृत ग्रन्थ लिखे गये हैं। खरतरगच्छ के आचार्यों ने जैन साहित्य की अपूर्व सेवा की है। अभयदेवसूरि नवांगीवृत्तिकार के रूप में प्रसिद्ध हैं। इनकी 30 रचनाओं में से 19 रचनायें प्राकृत की हैं। आपका राजस्थान व गुजरात में विचरण होता रहता था। जिनवल्लभसूरि की 17 रचनाएं प्राकृत में उपलब्ध हैं। वि. सं. 1167 में इन्हें चित्तौड़ में आचार्यपद मिला था। नागौर, मरुकोट, विक्रमपुर आदि में आपने साहित्य-सृजन किया है।[4] जिनदत्तसूरि का कार्यक्षेत्र राजस्थान भी था। इनकी 10-12 रचनायें प्राकृत में उपलब्ध हैं।[5] जिनचन्द्रसूरि ने जालौर में 'संवेगरंगशाला' प्राकृत-ग्रन्थ लिखा था। लक्ष्मणगणि ने ई. सन् 1142 में माण्डलगढ में 'सुपासनाहचरियं' की रचना की थी।[6] वर्द्धमानसूरि का 'आदिनाथचरित' इस शताब्दी की प्रमुख रचना है। मेड़ता में मलधारी हेमचन्द्रसूरि ने भवभावना (उपदेशमाला) की रचना की थी। यह इनकी प्रसिद्ध प्राकृत रचना है।[7] गुणचन्द्रगणि इस शताब्दी के प्रमुख रचनाकार हैं। 'कहारयणकोस' और 'पासनाहचरियं' इनकी प्रसिद्ध प्राकृत रचनायें हैं।

तेरहवीं शताब्दी के बाद राजस्थान और गुजरात में राजस्थानी व गुजराती भाषा का विकास प्रारम्भ हो गया था। अतः प्राकृत-अपभ्रंश की अपेक्षा प्रादेशिक भाषाओं में साहित्य लिखा जाने लगा था। फिर भी प्राकृत की रचनायें राजस्थान में लिखी जाती रही। भिन्नमाल कुल में उत्पन्न आसड कवि ने वि. सं. 1248 में 'विवेगमंजरी' नामक प्राकृत ग्रन्थ लिखा। देवेन्द्रसूरि ने आबू क्षेत्र में विचरण करते हुये 'सुदंसणाचरियं' एवं 'कण्हचरियं' नामक

---

1. डिंडिलवद्दनिवेसे पारद्धा सट्ठिएण सम्मत्ता।
   चड्डावल्लिपुरीए एसा फग्गणचउम्मासे ॥22॥
2. देसाई—जै. सा. सं. इ.।
3. बांठिया, कस्तूरमल, 'हेमचन्द्राचार्य जीवन चरित्र' 1967।
4. 'मणिधारी श्री जिनचन्द्रसूरि स्मृति ग्रन्थ', पृ. 20।
5. नाहटाः 'दादा जिनदत्तसूरि'।
6. देसाई—जै. सा. सं. इ., पृ. 275।
7. जैन, जगदीशचन्द्र,—'प्राकृत साहित्य का इतिहास' पृ. 505।

प्राकृत ग्रन्थों की रचना की।[1] मरुकोट के निवासी नेमिचन्द्र भण्डारी ने इस शताब्दी में 'षष्टिशतक' नामक प्राकृत ग्रन्थ लिखा।[2] ये भण्डारी गृहस्थ लेखक थे। खरतरगच्छ के जैनाचार्यों से प्रभावित थे।

चौदहवीं शताब्दी के प्राकृत ग्रन्थकारों में ठक्कर फेरु का महत्वपूर्ण स्थान है। ठक्कर फेरु कलश श्रेष्ठी के पौत्र और चन्द्र श्रावक के पुत्र थे। वे धंधकुल में हुये थे और कन्नाणपुर में रहते थे। दिल्ली में बादशाह अलाउद्दीन के यहा ये खजाञ्ची रहे हैं।[3] इनके वंश आदि के आधार पर इन्हें राजस्थान का स्वीकार किया जा सकता है। ठक्कर फेरु ने अनेक लाक्षणिक ग्रन्थो की रचना की है। 'इनके वास्तुसार', 'गणितसार कौमुदी', 'ज्योतिस्सार' आदि ग्रन्थ प्राकृत में हैं।

15-16वी शताब्दी में भी राजस्थान में प्राकृत की रचनायें लिखी जाती रही है। जिनभद्रसूरि, (कुम्भमेर), नयरंग (वीरमपुर), मुनिसुन्दर (सिरोही), जिनहर्षगणि (चित्तौड़), राजमल्ल (नागौर), जयसोम (जोधपुर) आदि अनेक जैनाचार्यों ने इस शताब्दी में महत्वपूर्ण रचनायें लिखी हैं। जिनसत्तरि, विधिकन्दली, अगलसतरी, रयणसेहर कहा, छंदाविद्या आदि प्राकृत रचनायें उनमें प्रमुख हैं। दिवाकरदास की 'गाथाकोष सप्तशती', हीरकलश का 'ज्योतिषसार', शुभचन्द्रसूरि का 'चिन्तामणिव्याकरण', साधुरंग की 'कर्मविचारसार प्रकरण' आदि 17वीं शताब्दी की प्राकृत रचनायें है।[4] मेघविजय उपाध्याय एवं उपाध्याय यशोविजय आदि ने 18वी शताब्दी मे भी प्राकृत के ग्रन्थ लिखे हैं। किन्तु 15वी शताब्दी के बाद राजस्थान में प्राकृत-साहित्य की वह समृद्धि नही रही जो मध्ययुग के पूर्व में थी।

प्राकृत रचनाओ के विषय

राजस्थान की इन प्राकृत रचनाओं में विषय की विविधता है। भारतीय साहित्य की शायद ही ऐसी कोई विधा हो जो राजस्थान के इन प्राकृत साहित्यकारो की लेखनी से अछूती रही हो। काव्य, कथा, चरित, चम्पू, कोश, व्याकरण, छंद, अलंकार आदि अनेक विषयो की प्राकृत रचनाएं यहां उपलब्ध हैं। धर्म व दर्शन को प्रतिपादित करने वाली भी सैंकड़ो रचनाएं प्राकृत में लिखी गई हैं। व्यंग्य-हास्य एवं नैतिक आदर्शों को प्रतिपादित करने वाले प्राकृत ग्रन्थों की कमी नही है। राजस्थान में विकसित प्राकृत की शताधिक रचनाओं में से कुछ प्रतिनिधि ग्रन्थो का संक्षिप्त मूल्यांकन यहा प्रस्तुत है।

1. कथा-ग्रन्थ:—

प्राकृत में कथा-साहित्य सबसे अधिक समृद्ध है। पहली शताब्दी से प्राकृत कथाओं की रचना प्रारम्भ हो गयी थी। राजस्थान में आचार्य हरिभद्र का प्राकृत कथा साहित्य पर्याप्त

---

1. जैन, प्रा. सा. इ., पृ. 561।

2. मेहता, जै. सा. बृ. इ., भाग 4, पृ. 211।

2. शाह, जै. सा. बृ. इ., भाग 5, पृ. 242।

4. द्रष्टव्य—शाह, जै. सा. बृ. इ., भाग 5,।

समृद्ध है। 'समराइच्चकहा' एवं 'धूर्ताख्यान' के अतिरिक्त उन्होंने अपने टीका ग्रन्थों में भी अनेक प्राकृत कथाओं का प्रणयन किया है।

समराइच्चकहा

यह ग्रन्थ प्राकृत कथाओं की अनेक विशेषताओं से युक्त है। इसमें उज्जैन के राजकुमार समरादित्य के नौ भवों की कथा वर्णित है। पूर्व जन्म में समरादित्य गुणसेन था और उसका मित्र था-अग्निशर्मा। किन्हीं कारणों से अग्नि शर्मा ने गुण शर्मा को अपना अपमान करने वाला मान लिया। अत. वह उससे निरन्तर बदला लेने की योजना बनाता रहा। यह प्रतिशोध की भावना इन दोनों व्यक्तियों के नौ जन्मों तक चलती रही। हरिभद्र ने कथा में इतना कौतूहल बनाये रखा है कि पाठक कथा पढ़ते समय आत्मविभोर हो उठता है। प्रमुख कथा की अनेक अवान्तर कथाएं विभिन्न विषयों पर प्रकाश डालती हैं।[1]

वस्तुत. यह कथा सदाचारी एवं दुराचारी व्यक्तियों के जीवन-संघर्ष की कथा है। देश, काल और वातावरण के अनुसार जन-जीवन से अनेक पात्र इस कथा में उभरकर सामने आते हैं। उनके चरित्र विभिन्न वर्गों का प्रतिनिधित्व करते हैं। कथाकार ने इसमें अनेक प्रतीकों का प्रयोग किया है। काव्यात्मक दृष्टि से इस कथा में अनेक मनोरम चित्र हैं। बाणभट्ट की 'कादम्बरी' ने जो स्थान संस्कृत में पाया है 'समराइच्चकहा' का साहित्यिक दृष्टि से वही स्थान प्राकृत-साहित्य में है।

'समराइच्चकहा' प्राचीन भारत के सांस्कृतिक जीवन का जीता-जागता उदाहरण है। समाज, धर्म, शिक्षा, कला आदि अनेक विषयों की प्रभूत सामग्री इसमें उपलब्ध है। विदेशों से समुद्रयात्रा के कई प्रसंग इसमें वर्णित हैं। प्राकृत में गद्य एवं पद्य में लिखी हुई यह कथा मानव-जीवन के उस चरम लक्ष्य का भी निरूपण करती है, जो व्यक्ति को इस संसार के पुनरागमन से मुक्ति दिलाता है। इस संबंध में मधुबिन्दु का दृष्टांत बड़े सुन्दर ढंग से इस कथा में प्रस्तुत किया गया है।

लघुकथायें

हरिभद्र ने अपनी दशवैकालिक टीका में तीस एवं, उपदेशपद में लगभग 70 प्राकृत कथायें दी हैं। इनमें से कुछ कथायें घटना-प्रधान तथा कुछ चरित्र-प्रधान हैं। कुछ कथाओं में बुद्धि का चमत्कार है तो कुछ कथायें पाठकों का स्वस्थ मनोरंजन करती हैं। नीति एवं उपदेश-प्रधान कथायें भी हरिभद्र ने लिखी हैं।[2] बुद्धि चमत्कार की एक लघु कथा द्रष्टव्य है---

कोई एक गाड़ीवान अपनी गाड़ी में अनाज भरकर एवं गाड़ी में तीतर का पिंजड़ा बांधकर शहर में अनाज बेचने आया। शहर के ठग ने उससे तीतर के दाम पूछे। गाड़ीवान ने सहजभाव से कहा---'दो कर्षापण'। ठग ने इस सौदे का गवाह बनाकर वह तीतर का पिंजड़ा अनाज से भरी गाड़ी समेत दो कर्षापण में खरीद लिया। गाड़ीवान बैलों को लेकर गांव लौटने लगा। तभी शहर के एक सज्जन व्यक्ति ने उसे एक उपाय बताया। तदनुसार वह गाड़ीवान अपने

---

1. शास्त्री, हरिभद्र की प्राकृत कथाओं का आलोचनात्मक परिशीलन; वैशाली।

2. शास्त्री, प्रा. सा. आ. इ. पृ. 476।

बैलो को लेकर फिर उस ठग के पास गया और बोला—'आप इन बैलो को खरीद लो। इनके बदले मुझे दो पाली सत्तु दे दो। किन्तु वह सत्तु आपकी भार्या के द्वारा ही लूगा।'

ठग ने इस सौदे का भी गवाह बनाकर गाडीवान की बात इसलिये मान ली कि दो पाली सत्तू में बैल मिल जायेगे। किन्तु जब उसकी भार्या गाडीवान को सत्तू देने आयी तो गाडीवान उसका सत्तू वाला हाथ पकड कर अपने घर ले जाने लगा। ठग के द्वारा विरोध करने पर गाड़ीवान ने कहा कि तुम पिजड़े की कीमत देकर जब मेरी पूरी गाड़ी ले सकते हो तो मैं भी जो सत्तू को लिये हुये है ऐसी तुम्हारी पत्नी को ले जाता हू।

इस तरह के अनेक कथानक हरिभद्र के प्राकृत साहित्य मे उपलब्ध है। उन्होने न केवल लोकभाषा को आगे बढाया है, अपितु लोक-जीवन को भी अपने ग्रन्थो में प्रतिपादित किया है। हरिभद्र की प्राकृत कथाओ की ये प्रवृत्तिया उत्तरवर्ती प्राकृत कथा-ग्रन्थो में भी परिलक्षित होती हैं।

ज्ञानपचमीकहा

महेश्वरसूरि सज्जन उपाध्याय के शिष्य थे। इनका राजस्थान से क्या सबंध था वह इनकी कृतियो से स्पष्ट नही होता। इस नाम के आठ आचार्य हुये है।[1] इनकी गुरु-परम्परा राजस्थान में विकसित हुई है। इनका यह 'ज्ञानपचमीकहा' ग्रन्थ भी राजस्थान मे पर्याप्त प्रसिद्ध रहा है। सभवत. वि. स 1109 के पूर्व इस ग्रन्थ की रचना हो चुकी थी।[2]

ज्ञानपचमीकहा मे श्रुतपचमीव्रत का महात्म्य प्रतिपादित किया गया है। यह व्रत सुख-समृद्धि को देने वाला है यह बात कथा मे कही गयी है। कथा के नायक भविष्यदत्त के विदेश चले जाने पर उसकी मा कमलश्री श्रुतपचमी व्रत करती है। फलस्वरूप भविष्यदत्त सकुशल अपार सम्पत्ति के साथ घर लौटता है। इस मुख्य कथा के साथ इस ग्रन्थ में अन्य नौ अवान्तर कथायें और हैं। इनमें सत् और असत् प्रवृत्तियो वाले व्यक्तियो के चारित्रिक सघर्ष को सुन्दर ढग से निरूपित किया गया है। कथाओ में पौराणिक पुट स्पष्ट नजर आता है। लोकोक्तियो का अच्छा प्रयोग हुआ है। यथा—

"मरइ गुडेण चिय तस्स विस दिज्जए कि व।"
(जो गुड़ देने से मरता है उसे विष देने से क्या ?)

निर्वाणलीलावतीकथा

इस कथा ग्रन्थ के रचयिता जिनेश्वरसूरि राजस्थान के प्रसिद्ध साहित्यकार थे। गुजरात में भी आपने ग्रन्थ लिखे हैं। इस ग्रन्थ की रचना वि. स 1090 के लगभग आशापल्ली नामक स्थान में हुई थी। यह पूरी कथा प्राकृत पद्यो मे लिखी गयी थी जो इस समय उपलब्ध नही है। इस प्राकृत ग्रन्थ का सस्कृत भाषान्तर उपलब्ध है।[3] इससे पता चलता है कि मूल प्राकृत ग्रन्थ में

---

1. देशाई—जै. सा. स. इ. अनुक्रमणिका, पृ. 861।
2. जैन, प्रा. सा. इ., पृ. 440।
3. मुनि जिनविजय 'कथाकोषप्रकरण' की भूमिका।

क्रोध, मान, माया, लोभ, हिंसा आदि विकारो के जन्म-जन्मान्तरो में प्राप्त होने वाले फलो का वर्णन है। इस ग्रन्थ में काव्य तथा कथा तत्व की अपेक्षा उपदेश तत्व की प्रधानता है।

इस समय तक प्राकृत कथाओं का इतना अधिक प्रचार हो चुका था कि स्वतन्त्र कथा ग्रन्थो के साथ-साथ प्राकृत की कथाओ के कोष-ग्रन्थ भी राजस्थान मे लिखे जाने लगे थे। निर्वाण-लीलावतीकथा के लेखक का ही 'कथाकोष-प्रकरण' नामक ग्रन्थ प्राकृत मे उपलब्ध है।

कथाकोष-प्रकरण

यह ग्रन्थ 'कहारयणकोस' नाम से भी प्रसिद्ध है। इसके मूल मे 30 गाथाए है, जिनकी व्याख्या करने मे जिनेश्वरसूरि ने 36 मुख्य एव 4-5 अवान्तर कथाए प्राकृत मे निवद्ध की है यह ग्रन्थ वि स. 1108 मे मारवाड़ के डिण्डिवानक नामक गाव के श्रावको के अनुरोध पर लिखा गया है।1 लेखक ने सरस कथाओ को सुबोध प्राकृत गद्य मे प्रस्तुत किया है। यत्र-तत्र संस्कृत-अपभ्रश के पद्य भी उपलब्ध है। इस ग्रन्थ मे सग्रहीत कथाओ मे तत्कालीन सामाजिक स्थिति, जन-स्वाभाव, राजतन्त्र एव धार्मिक सगठनो का सुन्दर चित्रण हुआ है। नीतिकथाओ का ये कथाए प्रतिनिधित्व करती है। सगीतकला आदि के महत्वपूर्ण सन्दर्भ इस ग्रन्थ मे है।

कहारयणकोस

इस कथा-कोष के रचयिता गणचन्द्रगणि है, जो जिनेश्वरसूरि की शिष्य-परम्परा मे सुमतिवाचक के शिष्य थे। खरतरगच्छ के इन आचार्यो का कार्य-क्षेत्र राजस्थान रहा है। अतः गुणचन्द्रगणि (देवभद्रसूरि) का भी राजस्थान से सम्बन्ध माना जा सकता है। यद्यपि इनकी रचनाए गुजरात मे अधिक लिखी गयी है।

कहारयणकोस की रचना वि. स. 1158 में भरुकच्छ नगर के मुनिसुव्रत चैत्यालय में की गयी थी। इस ग्रन्थ मे कुल 50 कथाए है। सभी कथाए रोचक एव जीवन के आदर्श को उपस्थित करने वाली है। इनमे विभिन्न प्रकार के चरित्र है, जो लेखक की सृजनात्मक प्रतिभा के द्योतक है। यह ग्रन्थ तत्कालीन सस्कृति का भी परिचायक है। प्राकृत गद्य-पद्य मे इसे लिखा गया है। अपभ्रश एव सस्कृत का प्रयोग भी यत्र-तत्र हुआ है।

आख्यानमणिकोश

इसके रचयिता नेमिचन्द्रसूरि है। इनके अन्य ग्रन्थो से ज्ञात होता है कि ये राजस्थान व गुजरात मे विचरण करते थे। आबू के निकट चन्द्रावती में भी इन्होने ग्रन्थ लिखे है। इस आख्यानमणिकोश मे धर्म के विभिन्न अगो को हृदयगम कराने वाली उपदेशप्रद 146 लघु कथाए सकलित है। आम्रदेवसूरि ने ई स. 1134 मे इस ग्रन्थ पर टीका लिखी है। मूल ग्रन्थ एव टीका दोनो प्राकृत मे है।

इस ग्रन्थ की कथाए मानव-स्वभाव के विभिन्न रूपो को उपस्थित करती है। उपकोश और तपस्वी का आख्यान व्यक्ति के मानसिक द्वन्द्व का अच्छा चित्र उपस्थित करता है। कई

---

1. मुनि जिनविजय, क. प्र. भूमिका।
2. जैन, प्रा. सा. इ., पृ. 448।

आख्यात परीकथा के तत्वों से समाहित है ।[1] सुभाषितों का ग्रन्थ में अच्छा प्रयोग हुआ है। यथा—

उप्पयउ गयणमग्गे हजउ कुसिणत्तण पयासेउ ।
तह वि हु गोव्वर ईडो न पायए भमरचनियाइं ।।

रयणसेहरीकहा

यह कथा ग्रन्थ 15 वी शताब्दी में जिनहर्षसूरि द्वारा चित्तौड में लिखा गया था ।[2] जिनहर्ष संस्कृत और प्राकृत के प्रकाण्ड पण्डित थे । उनकी यह कथा प्राकृत कथा साहित्य की सुन्दर प्रेम कथा है। जायसीकृत पद्मावत का इसे पूर्व रूप कह सकते हैं ।

कथा का नायक रत्नशेखर रत्नपुर का रहने वाला है । उसके मन्त्री का नाम मतिसागर है। एक बार राजा किन्नर-दम्पति के वार्तालाप मे सिंहलद्वीप की राजकुमारी रत्नावली की प्रशंसा सुनता है । उसे पाने के लिए व्याकुल हो उठता है । उसका मन्त्री मतिसागर जोगिनी का रूप धारणकर रत्नावली के पास जाता है। उसे वर-प्राप्ति का उपाय बतलाते हुए कहता है कि तुम्हारे यहा के कामदेव के मन्दिर में जो तुम्हारे मार्ग को रोकेगा वही तुम्हारा पति होगा । मन्त्री लौटकर रत्नशेखर को रत्नावलि के पास ले जाता है। उनका कामदेव मन्दिर मे मिलन होने के बाद विवाह हो जाता है। राजा रत्नशेखर अपने नगर में लौटकर पर्व के दिनों में ब्रह्मचर्य का पालन करता है। इससे उसके लोक-परलोक दोनो सुधर जाते हैं ।

इस तरह यह कथा मानव प्रेम के सात्विक स्वरूप की उपस्थित करती है । इसमें काम के स्थान पर प्रेम को प्रधानता दी गयी है, जो जीवन में अपूर्व आनन्द का संचार करता है। इस कथा में एक उपन्यास के समस्त तत्व और गुण विद्यमान है। कथा में गद्य व पद्य दोनों का प्रयोग सरस शैली में हुआ है। ग्रन्थ में कई सूक्तियां प्रयुक्त हुई है । यथा—

वर-कन्या का उचित संयोग मिलना लोक में दुर्लभ है—

"वरकन्ना सजोगी अणुसरिसो दुल्लहो लोए"

जिसके घर मे युवा कन्या हो उसे सैकडो चिन्ताए रहती हैं—

"चिंता सहस्स भरिओ पुरिसो सव्वोवि होइ अणुदियं"।
जुव्वण-भर-भरिअगी जस्स घरे वहए कन्ना।"

"विरह का दुख बडा कठिन है—

"दिण जायइ जणवत्तणी पुण रत्तडी न जाई" ।

---

1. शास्त्री, प्रा. सा. आ. इ. पृ. 503

2. वही पृ. 510 ।

इस तरह राजस्थान के प्राकृत-ग्रन्थो मे कथाग्रन्थों की अधिकता है । भारतीय कथा-साहित्य प्राकृत की इन कथाओ से प्रभावित हुआ है। इन कथाओं के अनेक अभिप्राय अन्य भाषाओ की कथाओ मे उपलब्ध होते है ।[1] प्राकृत की ये कथाएं धर्म और नैतिक आदर्शों से जुड़ी हुई है । यद्यपि इनमें काव्य तत्वो की कमी नही हैं।

2. प्राकृत चम्पू-काव्य —

प्राकृत साहित्य मे पद्य एव गद्य की स्वतन्त्र रचनाए उपलब्ध है । कथा एव चरित ग्रन्थो मे पद्य एव गद्य की मिश्रित शैली भी प्रयुक्त हुई है। किन्तु भारतीय साहित्य में जिसे चम्पू विधा के नाम से जाना गया है, उसका प्रतिनिधित्व प्राकृत में उद्योतनसूरि की कुवलयमाला कहा ही करती है। सस्कृत एव प्राकृत के अन्य चम्पू काव्य कुवलयमाला के बाद ही लिखे गये है ।

कुवलयमालाकहा

आचार्य उद्योतनसूरि 8वी शताब्दी के बहुश्रुत विद्वान् थे । उनकी एक मात्र कृति कुवलयमालाकहा उनके पाण्डित्य एव सर्वतोमुखी प्रतिभा का निष्कर्ष है । उद्योतनसूरि ने न केवल सिद्धान्त-ग्रन्थो का गहन अध्ययन और मनन किया था, अपितु भारतीय साहित्य की परम्परा और विधाओ के भी वे ज्ञाता थे । सिद्धान्त, साहित्य और लोक-सस्कृति के सुन्दर-सामंजस्य का प्रतिफल है—उनकी कुवलयमालाकहा ।

कुवलयमाला की रचना जावालिपुर (जालौर) मे वि. सं 835 ई सन् 779 में हुई थी। उद्योतनसूरि ने वहा के ऋषभ जिनेश्वर के मन्दिर के उपासरे में बैठकर इस ग्रन्थ को लिखा था ।[2] उस समय रणहस्तिन् वत्सराज का वहां राज्य था । इस तरह इतनी प्रामाणिक सूचनाए इस ग्रथ में होने से इसकी सांस्कृतिक सामग्री भी महत्वपूर्ण होगयी है।

उद्योतनसूरि ने इस ग्रन्थ में क्रोध, मान, माया, लोभ एव् मोह जैसे विकारो को पात्रो के रूप में उपस्थित किया है। इन पाचो की प्रमुख कथाओ के साथ कुवलयचन्द्र और कुवलयमाला के परिणय, दीक्षा आदि की कथा भी इसमें वर्णित है। कुल 27 अवान्तर प्राकृत कथाए इसमे है । भारतीय लोक-कथाओ का प्रतिनिधित्व कुवलयमाला की कथाओ द्वारा होता है।

कुवलयमालाकहा राजस्थान की प्राकृत रचनाओ मे कई दृष्टियो से महत्वपूर्ण है। इसमे प्रथम वार कथा के भेद-प्रभेदो मे सकीर्ण कथा के स्वरूप का परिचय दिया गया है, जिसका उदाहरण यह कृति स्वयं है। क्रोध आदि अमूर्त भावों को प्रभावशाली रूप मे प्रस्तुत करने से कुवलयमाला को भारतीय रूपकात्मक काव्य-परम्परा की जननी कहा जा सकता है।

---

1 लेखक का निबन्ध—'पालि-प्राकृत कथाओ के अभिप्राय-"एक अध्ययन"

—राजस्थान भारती, भाग 11, अक 1-3

2. जायालिउर अट्ठावय व अह विरइया तेण ।
—णिम्मविया बोहिकरी भव्वाण होउ सव्वाण ।।।

—कुव. 282, 21-23

इसकी कथावस्तु कर्मफल, पुनर्जन्म एवं मूल वृत्तियो के परिशोधन जैसी सांस्कृतिक विचारधाराओं पर आधारित है। आठवी शताब्दी के सामाजिक-जीवन का यथार्थ चित्र इस कृति में समाहित है। समाज की समृद्धि तत्कालीन व्यापार एवं वाणिज्य के विस्तार पर आधारित थी, जिसका सूक्ष्म विवेचन इसमे हुआ है।[1]

इस कृति की अप्रतिम उपयोगिता इसकी भाषागत समृद्धि के कारण है।[2] सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश एव पैशाची के स्वरूप को सोदाहरण इसमें प्रस्तुत किया गया है। 18 देशो (प्रान्तो) की भाषा के नमूने पहली वार इस ग्रन्थ में प्रस्तुत किये गये हैं। न केवल भाषा अपितु प्रत्येक प्रान्त के लोगो की पहिचान एवं उनके स्वभाव आदि का वर्णन भी कुव में अपना महत्व रखता है। मारवाड के व्यापारियो का वर्णन करते हुए कवि कहता है कि मारुक लोग वांके, सुस्त, जड वुद्धिवाले, अधिक भोजन करने वाले तथा कठोर एवं मोटे अगो वाले थे। वे "अप्पा-तुप्पा" (हम तुम) जैसे शब्दों का उच्चारण कर रहे थे। यथा—

वके जडे या जड्डे वहु-भोइ कठिण-पीण-सूणगे ।
"अप्पा तुप्पा" भणिरे अह पेच्छइ मारुए तत्तो ॥
(कुव 153-3)

आठवी शताब्दी के धार्मिक-जगत् का वैविध्यपूर्ण चित्र कुव. में उपस्थित किया गया है। उस समय के 32 मत-मतान्तरों की व्याख्या उद्योतनसूरि ने जैन धर्म के परिप्रेक्ष्य में की है। शिक्षा एव कला के क्षेत्र में उस समय के शिक्षण-संस्थान कितने महत्वपूर्ण थे, इसकी जानकारी भी इस ग्रन्थ में मिलती है।[3] कुवलयमाला न केवल सांस्कृतिक अपितु काव्यात्मक दृष्टि से भी एक उत्कृष्ट कृति है। गद्य एव पद्य में निबद्ध कई वर्णन बडे मनोहारी हैं। संध्यावर्णन एव लक्ष्मी वर्णन इसके प्रसिद्ध हैं। लक्ष्मी और नारी के स्वभावो का सुन्दर चित्रण निम्न गाथा में द्रष्टव्य है—

आलिंगिय पि मुचइ लच्छी पुरिस ति साहस-विहूण ।
गोत्त-क्खलण-विलक्खा णियव्व दइया ण सदेहो ॥
(कुव 66-19)

कुव. में अनेक नीति-वाक्यो का प्रयोग हुआ है। कुछ सूक्तिया वडी सटीक हैं। यथा—

"मा अप्पयं पसंसह जइ वि जस इच्छसे विमल।" (43-32)

(यदि विमल यश की आकाक्षा है तो अपनी प्रशसा मत करो)

"ज कुंभारी सूया लोहारी किं घयं पियउ"

(कुम्हारी (स्त्री) के प्रसूता होने पर लुहारिन (स्त्री) को घी पिलाने से क्या)

---

1. जैन, प्रेम सुमन—"कुवलयमालाकहा का सांस्कृतिक अध्ययन"
वैशाली 1975
2 उपाध्ये, ए. एन., कुवलयमाला, इण्ट्रोडक्शन
3. जामखेडकर, कुवलयमालाकहा . ए कल्चरल स्टडी, नागपुर, 1974

चम्पूविधा में कुवलयमालाकही के अतिरिक्त कोई अन्य स्वतन्त्र रचना प्राकृत में नही है। यद्यपि गद्य-पद्य मे कई प्राकृत चरित्र ग्रन्थ लिखे गये हैं

3 व्यग्य कथा—धूर्ताख्यान—

राजस्थान में रचित प्राकृत साहित्य में 'धूर्ताख्यान' व्यगोपहास शैली में लिखी गयी अनूठी रचना है। आचार्य हरिभद्र ने इसे चित्तौड मे लिखा था। समराइच्चकहा मे हरिभद्र ने काव्य-प्रतिभा का प्रदर्शन किया है तो धूर्ताख्यान में वे एक कुशल उपदेशक के रूप में प्रगट हुए है। इस कथा मे हरिभद्र ने पुराणों और रामायण, महाभारत जैसे महाकाव्यो मे पायी जाने वाली कथाओं की अप्राकृतिक, अवैज्ञानिक और अबौद्धिक मान्यताओ तथा प्रवृत्तियों का कथा के माध्यम से निराकरण किया है।[3]

धूर्ताख्यान का कथानक सरल है। यह पांच धूर्तशिरोमणि मूलश्री, कडरीक, एलाषाढ, शश और खंडयाणा की कथा है। चार पुरुष और एक नारी खडयाणा इस कथा के मूल सवाहक हैं। इनमे से प्रत्येक धूर्त असभव और काल्पनिक अपनी कथा कहता है। दूसरे धूर्त उसकी कथा को प्राचीन ग्रन्थो के उदाहरण देकर सही सिद्ध कर देते हैं। अन्त मे खडयाणा अपना अनुभव सुनाती है—

तरुण अवस्था मे मैं अत्यन्त रूपवती थी। एक बार मैं ऋतु-स्नान करके मडप में सो रही थी। तभी मेरे लावण्य से विस्मित होकर पवन ने मेरा उपभोग किया। उससे तुरन्त ही मुझे एक पुत्र उत्पन्न हुआ और वह मुझसे पूछकर कहीं चला गया।

यदि मेरा उक्त कथन असत्य है तो आप चारो लोग हमारे भोजन का प्रबन्ध करें और यदि मेरा अनुभव सत्य है तो इस ससार में कोई भी स्त्री अपुत्रवती न होनी चाहिये। क्योंकि पवन (हवा) के समागम से सबको पुत्र हो सकता है।

मूल श्री नामक धूर्त ने खडयाणा के इस कथन का समर्थन महाभारत आदि के उद्धरण देकर किया।

हरिभद्र जैन परम्परा को मानने वाले थे। अत उन्होने वैदिक परम्परा में प्रचलित काल्पनिक कथाओ एव अबौद्धिक धारणाओ का निरसन करना चाहा है। कथाकार ने स्वय इन मान्यताओ पर सीधा प्रहार न कर कथा के पात्रो द्वारा व्यग शैली में उनकी निस्सारता उपस्थित की है। सृष्टि की उत्पत्ति, प्रलय, ब्रह्मा-विष्णु-महेश की अस्वाभाविक कल्पना, अग्नि आदि का वीर्यपान, ऋषियों की काल्पनिक कार्य-प्रणाली, अन्धविश्वास आदि अनेक मान्यताओ का खण्डन इस ग्रन्थ द्वारा हुआ है। किन्तु शैली इस प्रकार की है कि पाठक ग्रन्थ को उपन्यास जैसी रुचि से पढ सकता है। सर्वत्र कौतूहल बना रहता है। हास्य-व्यग की इस अनुपम कृति से आचार्य हरिभद्र की मौलिक कथा-शैली परिलक्षित होती है। धूर्ताख्यान की इस शैली ने आगे चलकर धर्मपरीक्षा जैसी महत्वपूर्ण विधा को विकसित किया है।[4]

---

1. शास्त्री, प्रा. सा. आ. इ., पृ—337।
2. चित्तउडदुग्ग सिरीसंठिएहिं सम्मत्तराय रत्तेहि
   सुचरिअ समूह सहिआ कहिआ एसा कहा सुवरा।।
3. उपाध्ये, 'धूर्ताख्यान' भूमिका।
4. द्रष्टव्य लेखक का निबन्ध—'कुवलयमाला मे धम्मपरीक्खा अभिप्राय'
   —जैन सिद्धान्त भास्कर, 1975

4. चरित-काव्य:—

प्राकृत काव्यो मे कथा-ग्रन्थो के अतिरिक्त चरित्र ग्रन्थ भी लिखे गये है। चरित्र काव्यो के मूल स्रोत जैन आगम ग्रन्थ है। उनके प्रमुख महापुरुषो के चरित्रो को लेकर इन काव्य-ग्रन्थो की रचना की है।[1] प्राकृत के चरित्र-काव्यो मे कथा एव नीति दोनो साथ-साथ चलती है। प्रमुख चरित्रो के अतिरिक्त जन-जीवन के व्यक्तियो के भी चरित्र इन ग्रथो मे सम्मिलित है। राजस्थान के प्राकृत साहित्यकारो ने 10-15 चरित्र ग्रन्थो की रचना विभिन्न स्थानो मे की है। कुछ प्रमुख चरितकाव्यो का परिचय द्रष्टव्य है।

सिरिविजयचद केवलिचरिय

श्री अभयदेवसूरि के शिष्य, चन्द्रप्रभ महत्तर ने, वि. स. 1127 मे देवावड नगर मे वीरदेव के अनुरोध पर इस चरित की रचना की थी।[2] विजयचन्द्र के केवलज्ञान की प्राप्ति तक की कथा लेखक की अपनी कल्पना-शक्ति से प्रसूत हुई है तथा बाद मे जिनपूजा के महात्म्य का प्रतिपादन किया गया है। जिनेन्द्र देव की पूजा जिन द्रव्यो से करनी चाहिए, उन सबके सम्बन्ध मे एक-एक कथा इस चरित काव्य मे है। कथाओ का स्वतन्त्र महत्व भी है। वस्तुत. भक्ति-मार्ग का प्रतिपादन आलकारिक भाषा मे कथाओ के माध्यम से इस चरित ग्रन्थ मे किया गया है।

सुरसुन्दरीचरिय

जिनेश्वरसूरि के शिष्य साधु धनेश्वर ने वि. स. 1095 मे चड्डावलि (आबू) नामक स्थान मे इस ग्रन्थ की रचना की थी।[3] यह एक प्रेमकथा है। सुरसुन्दरी और मकरकेतु की इस प्रणय-कथा को कवि ने इतने सुन्दर ढग से प्रस्तुत किया है कि धार्मिक वर्णनो का बोझ ही प्रतीत नही होता। सारी कथा, नायिका के चारो ओर घूमती है। चरितो के मनोवैज्ञानिक विकास को प्रस्तुत करने मे तथा काव्यात्मक वर्णनो की छटा दिखाने मे धनेश्वरसूरि को पूर्ण सफलता मिली है। विरह से सतप्त हुए पुरुष की उपमा कवि ने भाड़ मे भूजे जाते हुए चने के साथ दी है—

'भट्ठियचणगो वि य सयणीये कीस तडफडसि'

एक स्थान मे कहा गया है कि राग के न होने से सुख एव रागयुक्त होने से दुःख प्राप्त होता है—

---

1. शास्त्री, प्रा सा. इ, पृ. 308-10

2. देयावडवरनयरे रिसहजिणदस्स मदिरे रइय ।
   नियवीरदेव सीसस्स साहुणो तस्स वयणेण ।
   —प्रशस्ति, 151

3. चड्डावलिपुरिट्ठियो स गुरुणो आणाए पाढत्तरा
   कासी विक्कम-वच्छरम्मि य गए वाणक सुन्नोड्ये ।।
   मासे भद्द गुरुम्मि कसिणो बीया-धणिट्ठादिसे ।।

   सु. च. 16-250-51

तावच्चिय परमसुह जाव न रागो मणम्मि उच्छरइ ।
हृदि सरागम्मि मणे दुक्खसहस्साइ पविसति ।।

इस चरित-काव्य की भाषा पर अपभ्रंश का प्रभाव है। समस्त काव्य प्रौढ एव उदारत्त शैली मे लिखा गया है ।

रयणचूडारायचरिय

इसके रचियता आचार्य नेमिचन्द्र हैं । इन्होंने इस काव्य को गुजरात एव राजस्थान दोनो प्रदेशो मे भ्रमण करते हुये पूरा किया था ।[1] प्राकृत गद्य मे रचित यह धर्मप्रधान कथा है । इस चरित-काव्य मे नायक रत्नचूड का सम्पूर्ण चरित वर्णित है । उसके चरित का विकास किस क्रम से हुआ है, इसका काव्यात्मक वर्णन इस ग्रन्थ मे है । मनोभावो का यहा सुन्दर चित्रण किया गया है । घटनाक्रम मे पूर्वजन्म की घटनाए वर्तमान जीवन के चरित का स्फाटन करती है। अवान्तर कथाओ का सयाजन भी सुन्दर ढग से हुआ है। इस कथा मे नायक ने जो नायिका को पत्र लिखा है, वह बहुत मार्मिक हे ।[2] काव्य के वस्तु वर्णन प्रशसनीय है ।

सुदसणाचरिय

यह चरितकाव्य देवेन्द्रसूरि का लिखा हुआ है। इन्होंने अर्बुदगिरि पर सूरिपद प्राप्त किया था ।[3] अत. राजस्थान आपका कार्यक्षेत्र रहा होगा । इस ग्रन्थ मे सुदर्शना राजकुमारी के जीवन की कथा है । वह अनेक विधाओ व कलाओ मे पारगत होकर श्रमणधर्म मे दीक्षित होती है । अवान्तर कथाओ द्वारा उसके जीवन के विकास को उठाया गया है । शील की काव्य में प्रतिष्ठा है । कवि जीवन की तीन विडम्बनाओ को गिनाता है—

तक्क विहूणो विज्जो, लक्खणहीणो य पडिओ लोए ।
भावविहूणो धम्मो तिण्णिवि गरुइ विडम्बणया ।।

अजनासुन्दरी चरित

राजस्थान मे केवल पुरुष कवियो ने ही नही, अपितु साध्वियो ने भी प्राकृत में रचनाए लिखी हैं । जिनेश्वरसूरि की शिष्या गुणसमृद्धि महत्तरा ने प्राकृत मे अजनासुन्दरी चरित की रचना की थी । इस ग्रन्थ की रचना जैसलमेर में हुई थी ।[4] 504 श्लोक प्रमाण इस ग्रन्थ में महसती अजना का जीवन-चरित सरस शैली में वर्णित है ।

---

1. डिंडिलवद्दनिवेसे पारद्धा सहिएण सम्पत्ता ।
   चड्डावल्लिपुरीए एसा फग्गुणचउम्मासे ।।
   र. च., प्रशस्ति, 22
2. शास्त्री, प्रा. सा. आ. इ., पृ. 348
3. जैन, प्रा. सा. इ., पृ. 561
4. देशाई, जै. सा. स. इ., पृ. 438

गणधरसार्द्धशतक

इसके रचयिता जिनदत्तसूरि राजस्थान के प्रभावशाली साहित्यकार हैं। इनको चित्तौड में वि. स. 1169 में आचार्यपद मिला तथा अजमेर में वि स 1211 में इनका अवसान हुआ। इनकी 9-10 रचनाए प्राकृत में हैं। गणधरसार्द्धशतक उनमें से एक है। भगवान् महावीर से लेकर जिनवल्लभसूरि तक के आचार्यों का गुणानुवाद इस कृति में है।[1] यद्यपि चरित एव काव्य की दृष्टि से यह कृति प्रौढ़ नही है, किन्तु इसकी ऐतिहासिक उपयोगिता है।

इन चरितग्रन्थो के अतिरिक्त प्राकृत मे और भी चरितकाव्य पाये जाते हैं जिनकी रचना गुजरात एव राजस्थान के जैनाचार्यों ने की है। देवेन्द्रसूरि का कण्हचरिय, नेमिचन्द्र कृत महावीरचरिय, शातिसूरिकृत पृथ्वीचन्द्र चरित, जिनमाणिक्यकृत कूर्मापुत्रचरित आदि उनमे प्रमुख हैं।

5. धार्मिक व दार्शनिक ग्रन्थ:—

वैसे तो जैनाचार्यों द्वारा रचित सभी ग्रन्थों मे धर्म व दर्शन का समावेश होता है। काव्य, चरित, कथा आदि ग्रन्थो में अध्यात्म की बात कही जाती है। किन्तु प्राकृत के इन ग्रन्थकारो ने कुछ ग्रन्थ धर्म व दर्शन के लिए प्रतिपादन के लिए ही लिखे हैं। आगमिक टीका आदि ग्रन्थो के अतिरिक्त इस क्षेत्र के निम्न ग्रन्थ प्राकृत की महत्वपूर्ण उपलब्धि कहे जा सकते हैं।

सम्मइसुत्त

आचार्य सिद्धसेन दिवाकर का 'सम्मइसुत्त' प्राकृत भाषा मे लिखा गया दर्शन का पहला ग्रन्थ है।[2] इसमे नय, ज्ञान, दर्शन आदि का सक्षेप विवेचन है। अर्थ की जानकारी नय ज्ञान से ही हो सकती है, इस बात को आचार्य ने जोर देकर कहा है। यह ग्रन्थ श्वेताम्बर और दिगम्बर दोनो परम्परा में मान्य है। 5-6 वी शताब्दी मे लिखा गया यह ग्रन्थ हो सकता है, राजस्थान का प्रथम प्राकृत ग्रन्थ हो।

योगशतक

आठवी शताब्दी मे आचार्य हरिभद्र ने राजस्थान मे धर्म व दर्शन सम्बन्धी ग्रन्थो का प्राकृत में प्रणयन किया है। उनमे योगशतक (जोगसयग) प्रमुख है। इस ग्रन्थ में योग का लक्षण, योगी का स्वरूप, आत्मा-कर्म का सम्बन्ध, योग की सिद्धि आदि अनेक दार्शनिक तथ्यो का निरूपण है।[3]

---

1 मणिधारी जिनचन्द्रसूरि स्मृतिग्रन्थ, पृ. 23,

2 सघवी, सुखलाल द्वारा सम्पादित एव ज्ञानोदय ट्रस्ट अहमदावाद से 1963 म प्रकाशित।

3. मेहता, जै. सा. बृ. इ., भाग 4, पृ. 234

धर्मोपदेशमाला-विवरण

इसकी रचना जयसिंहसूरि ने वि. स 915 मे नागौर मे की थी।[1] गद्य-पद्य मिश्रित इस ग्रन्थ मे कवि ने धार्मिक तत्वज्ञान का प्रस्तुत करने के लिए कथाए प्रस्तुत की है। दान, शील, तप की प्रतिष्ठा इन कथाओ के द्वारा होती है।

भव-भावना

मलधारी हेमचन्द्रसूरि ने वि. स 1170 मे मेडता और छत्रपल्ली में रहकर भवभावना (उपदेशमाला) और उस पर स्वोपज्ञवृत्ति की रचना की थी।[2] ग्रन्थ मे 531 गाथाओं में 12 भावनाओ का वर्णन है। वृत्ति मे अनेक प्राकृत कथाए गुफित है। सास्कृतिक दृष्टि से उनका बड़ा महत्व है। अनेक सुभाषित इस ग्रन्थ मे उपलब्ध है। विपत्ति के आने के पहिले ही उसका उपाय सोचना चाहिये। घर मे आग लगने पर कोई कुआ नही खोद सकता। यथा—

पढम पि आवयाण चिंतेयव्वो नरेण पडियारा।
नहि गेहम्मि पलित्ते अवड खणिउ तरइ कोई॥

हेमचन्द्रसूरि की दूसरी महत्वपूर्ण रचना उपदेशमाला या पुष्पमाला है। इसमें शास्त्रो के अनुसार विविध दृष्टान्तो द्वारा कर्मो के क्षय का उपाय प्रतिपादित किया गया है। तप आदि के स्वरूप एव इन्द्रिय-निग्रह सम्बन्धी विशेष जानकारी इसमें दी गयी है।[3]

सवेगरगशाला

इसके रचयिता जिनचन्द्रसूरि राजस्थान के प्रसिद्ध विद्वान् थे। उन्होने शान्तरस से भरपूर इस सवेगरगशाला की रचना वि स 1125 में की थी। इसमे दस हजार तिरेपन गाथाओ में सवेगभाव की महत्ता प्रगट की गयी है।[4] कहा गया है कि जिसके सवेगभाव नही है उसकी बाकी सब तपस्या आदि भूसे के समान निस्सार है—

'जइनो सवेगरसो ता त तुसखडण सव्व।'

विवेकमजरी

महाकवि श्रावक आसड ने वि. स. 1248 में विवेकमजरी की रचना की थी। इस ग्रन्थ में विवेक की महिमा बतलायी गयी है तथा मन की शुद्धि की प्रेरणा दी गयी है।[5] इसमें 12 भावनाओ का भी वर्णन है। इस ग्रन्थ की रचना कवि ने अपने पुत्र शोक मे अभयदेवसूरि के उपदेश से की थी।[6]

---

1. नाहटा, रा. सा गो. प पृ, 17
2. जैन, प्रा. सा. इ., पृ 505
3. जैन, प्रा. सा. इ., पृ 514-15
4. गाधी, लालचन्द भगवान,—'सवेगरगशाला आराधना'
—म जिन. स्मृतिग्रन्थ, पृ. 14-15
5. मेहता—जै. सा. बृ. इ., भाग 4, पृ. 216
6. देसाई—जै. सा. स. इ, पृ. 338-9

षष्टिशत

इसके रचयिता नेमिचन्द्र भण्डारी मारवाड के मरोट गाव के निवासी थे।[1] उन्होने 161 गाथाओ मे इस ग्रन्थ की रचना की है। इस रचना में जैन गृहस्थ व साधु के शिथिल आचार की कठोर आलोचना की गयी है। इसमें सद्गुरु एवं सदाचार के स्वरूप का भी प्रतिपादन है।

विवेकविलास

इस कृति के रचयिता जिनदत्तसूरि है। इन्होने जावालिपुर के राजा उदयसिंह के मन्त्री के पुत्र धनपाल के सतोष के लिए इस ग्रन्थ को लिखा था।[2] इस ग्रन्थ के 12 उल्लासों म मानव जीवन को नैतिक और धार्मिक बनाने के लिए सामान्य नियमो का प्रतिपादन है।

जंबुद्दीपपण्णत्ति सग्रह

आचार्य वीरनदि के शिष्य पद्मनदि ने इस ग्रन्थ की रचना वारानगर (कोटा) में की थी। इसका रचनाकाल 11वी शताब्दी होना चाहिए। इस ग्रन्थ में 2389 गाथाएं है, जिनमें जैन भूगोल के परिचय के साथ ही भगवान् महावीर के बाद की आचार्य-परम्परा दी गयी है।[3] पद्मनदि का 'धम्मरसायण' नाम का एक और प्राकृत ग्रन्थ उपलब्ध है। इसमें 193 गाथाओ में धर्म का प्रतिपादन किया गया है।[4]

इनके अतिरिक्त अन्य धार्मिक ग्रन्थ भी प्राकृत में राजस्थान में लिखे गये है। ये परिमाण में छोटे और किसी विशेष उद्देश्य की पूर्ति के लिये ही लिखे जाते थे। जीवसत्तरी, अगुलसत्तरि, प्रवचनपरीक्षा, द्वादशकुलक, कर्मविचार-प्रकरण, चैत्यवन्दनकुलक, विंशिका, सदेहदोलावलि, अवस्थाकुलक आदि इसी प्रकार की धार्मिक रचनाए हैं। भाषा एव विषय की दृष्टि से इनका अपना महत्व है।

6. लाक्षणिक ग्रन्थ:—

राजस्थान के प्राकृत साहित्यकारो ने काव्य एव धार्मिक ग्रन्थो के अतिरिक्त कोश, व्याकरण, छन्द, ज्योतिष आदि पर भी प्राकृत मे ग्रन्थ लिखे हैं। इससे प्रतीत होता है कि जैनाचार्य जीवनोपयोगी प्रत्येक-विषय पर प्राकृत में ग्रन्थ लिखते थे। लोकभाषा के विकास में उनका यह अपूर्व योगदान है।

पाइयलच्छी नाममाला

धनपाल ने सस्कृत, प्राकृत, अपभ्रंश इन तीनो भाषाओ में रचनाए लिखी है। उनकी 'पाइयलच्छी नाममाला' प्राकृत का प्रसिद्ध कोश ग्रन्थ है। इसकी रचना उन्होने अपनी छोटी

---

1. मेहता, जै. सा. बृ. इ, भाग 4, पृ. 211
2. वही, पृ 217
3. प्रेमी, नाथूराम, जैन साहित्य और इतिहास, पृ. 259
4. जैन प्रा सा इ., पृ. 315-16

वहिन सुन्दरी के लिए वि. स. 1059 मे की थी। इस ग्रन्थ में 279 गाथाएं हैं जिनमें 998 प्राकृत शब्दो के पर्याय दिये गये हैं। इस कोश में प्राकृत शब्द तथा देशी शब्द भी सग्रहीत हैं। भ्रमर के लिए भसल, इदिदर, धुअ्रगाय जैसे देशी शब्दो का इसमे प्रयोग है। सुन्दर के लिए 'लट्ठ' तथा आलसी के लिए 'मट्ठ' शब्द प्रयुक्त हुए हैं।[1]

रिट्ठसमुच्चय

'रिट्ठसमुच्चय' के कर्ता आचार्य दुर्गदेव दिगम्बर सम्प्रदाय के विद्वान् थे। इन्होने वि. स. 1089 मे कुम्भनगर (कुभेरगढ, भरतपुर) मे इस ग्रन्थ को समाप्त किया था। यह ग्रन्थ उन्होने 'मरणकरडिया' नामक ग्रन्थ के आधार पर लिखा है, जिसमें मरण-सूचक अनिष्ट चिन्हो (रिष्टो) का विवेचन है। ग्रन्थ में कुल 261 प्राकृत गाथाए हैं। पिंडस्थ, पदस्थ और रूपस्थ ये तीन प्रकार के रिष्ट इस ग्रन्थ में वताये गये हैं। ग्रन्थ मे स्वप्न विषयक जानकारी भी दी गयी है तथा विभिन्न प्रश्नो द्वारा भी व्यक्ति के मरण की सूचना प्राप्त करने का इसमें विधान है।[2]

अर्घकाण्ड

दुर्गदेव ने 'अग्घकड' नाम का एक ग्रन्थ प्राकृत में लिखा है। इस ग्रन्थ से यह पता लगाया जा सकता है कि कौन-सी वस्तु खरीदने से और कौन-सी वस्तु वेचने से लाभ हो सकता है।[3] इस ग्रन्थ का सम्बन्ध ज्योतिष से है।

ज्योतिषसार

हीरकलश 16वी शताब्दी के विद्वान् थे। बीकानेर एव जोधपुर राज्य में इनका विचरण अधिक हुआ है। नागौर के डेह नामक स्थान में इनका देहान्त हुआ था।[4] इन्होने वि. स 1621 मे 'ज्योतिस्सार' की रचना प्राकृत में की थी। इसमें दो प्रकरण हैं। इस ग्रन्थ की प्रति वम्वई के माणिकचन्द्र भण्डार में है।[5] इस प्राकृत ग्रन्थ का सार हीरकलश ने राजस्थानी भाषा के 'ज्योतिषहीर' नामक ग्रन्थ में दिया है।[6]

औदार्यचिन्तामणि व्याकरण

इसके रचयिता मुनि श्रुतसागर हैं। ये उभय भाषा चक्रवर्ती आदि उपाधियो से विभूषित एव विधानदि के शिष्य थे।[7] वि स. 1575 मे इन्होने 'औदार्यचिन्तामणि व्याकरण'

---

1 शास्त्री, प्रा. सा आ. इ, पृ. 537-38

2 शाह, जै. सा. वृ इ भाग 5, पृ. 202-203
3 वही, पृ. 222
4 नाहटा, 'राजस्थानी भाषा के एक वडे कवि हीरकलश' —शोधपत्रिका वर्ष 7, अक 4

5 शाह, जै सा. वृ इ. भाग 5, पृ. 186
6 साराभाई नवाव, अहमदावाद द्वारा प्रकाशित।
7. शाह, जै सा. वृ. इ., भाग 5, पृ 74

की रचना की थी। इसकी अपूर्ण पाण्डुलिपि प्राप्त है।[1] इसमें प्राकृत भाषा विषयक छह अध्याय हैं। प्राय हेमचन्द्र और त्रिविक्रम के प्राकृत व्याकरणो का इसमें अनुसरण किया गया है।

चिन्तामणि व्याकरण

भट्टारक शुभचन्द्रसूरि ने वि सं. 1605 में इस ग्रन्थ की रचना की थी। इसमें कुल 1224 सूत्र हैं। हेमचन्द्र के प्राकृत व्याकरण का इसमें अनुसरण किया गया है।[2] इस ग्रन्थ पर लेखक की स्वोपज्ञवृत्ति भी है।[3]

छदोविद्या

कवि राजमल्ल ने 16 वी शताब्दी म 'छदोविद्या' की रचना राजा भारमल्ल के लिये की थी। भारमल्ल श्रीमालवश का एव नागौर का सघाधिपति था। अत राजमल्ल भी राजस्थान से सम्बन्धित रहे होगे।

राजमल्ल का छदोविद्या नामक ग्रन्थ सस्कृत, प्राकृत, अपभ्र श और हिन्दी में निबद्ध है। प्राकृत-अपभ्रंश का इसमें अधिक प्रयोग हुआ है। यह ग्रन्थ छन्दशास्त्र के साथ ही ऐतिहासिक घटनाओ की दृष्टि से भी महत्वपूर्ण है।[4]

छदकोश

छदकोश के रचयिता रत्नशेखरसूरि 15 वी शताब्दी के विद्वान् थे। इनका सम्बन्ध नागपुरीयतपागच्छ से था। अत इनका कार्यक्षेत्र भी राजस्थान हो सकता है। छदकोश में कुल 74 पद्य हैं। 46 पद्य अपभ्र श में एव शेष प्राकृत में हैं। कई प्राकृत छदो का लक्षण इस ग्रन्थ में दिया गया है।[5]

7. प्राकृत के शिलालेख––

राजस्थान में प्राकृत भाषा का प्रचार धर्म-प्रभावना एव साहित्य तक ही सीमित नही था अपितु प्राकृत में शिलालेख आदि भी यहा लिखे जाते थे। जोधपुर से 20 मील उत्तर की ओर घट्याल नाम के गाव में कक्कुक का एक प्राकृत शिलालेख उत्कीर्ण है। यह शिलालेख वि स. 918 में लिखाया गया था। इसमें जैन मदिर आदि बनवाने का उल्लेख है। 23 गाथाओ में यह शिलालेख है।[6] इससे ज्ञात होता है कि कक्कुक प्रतिहार राजा ने अपने सदाचरण से मारवाड, माडवल्ल तमणी एव गुजरात आदि के लोगो को अनुरक्त कर रखा था। यथा—

मरु माडवल्ल-तमणी-परिअंका-मज्जगुज्जरत्तासु।
जणिओ जेन जणाणं सच्चरिअगुणेहि अणुदाहो ॥ 16 ॥

---

1 एनलस् आफ भडारकर ओरियण्टल रिसर्च इन्स्टीट्यूट भाग 13, पृ. 52-53।
2. शाह, वही, पृ. 74।
3 उपाध्ये, ए. एन. ए. भ. ओ रि. इ., वही, पृ. 46-52।
4. शाह, वही, पृ. 138।
5 शाह, वही, पृ. 149।
6. मूल प्राकृत एव हिन्दी अनुवाद के लिए द्रष्टव्य–शास्त्री, प्रा. सा. आ. इ., पृ. 255-57।

8. आधुनिक प्राकृत-साहित्य:—

राजस्थान में प्राकृत ग्रन्थो के लेखन का कार्य वर्तमान युग में भी चल रहा है। प्राचीन प्राकृत ग्रन्थो का सम्पादन, अनुवाद, प्रकाशन आदि कार्यों के अतिरिक्त जैन मुनि स्वतन्त्र प्राकृत रचनाए भी लिखते हैं। गुजरात में विहार करते हुए मूर्तिपूजक आचार्य विजयकस्तूरसूरि ने वि. स. 2027 में 'पाइयविन्नाणकहा' नामक पुस्तक प्राकृत में लिखी है।[1] इसके दो भागों में प्राकृत की 108 कथाए लिखी गयी है। आधुनिक शैली में लिखी गई ये कथाए सरल और सुबोध हैं।

तेरापन्थ सम्प्रदाय के मुनियो ने भी प्राकृत में रचनाए लिखी है। श्री चन्दनमुनि ने बीदासर, चूरू आदि स्थानो में भ्रमण करते हुए प्राकृत मे 'रयणवालकहा' 'जयचरिअ' एव 'णीई-धम्म-सुत्तीओ' ग्रन्थो की रचना की है।[2] इनमें रयणवालकहा बहुत सुन्दर और आधुनिक कथा ग्रन्थ है। वर्षाकाल का वर्णन करते हुए कवि कहता है—

समत्थ-जीवलोअ-तत्तिणिवारयो, णाणाविह तरु-लया-पुप्फ-फल-गुम्म-विचित्त-तणोसहि-उप्पायगो, णिउजल-पएसेगजीवणाहारो, हालिएहिं अणिमिसदिट्ठीए दिट्ठिओ चिर विहीरिओ उब्भूओ पाउसिओ कालो (र क. पृ 68)

मुनि श्री नथमल जी ने 'तुलसीमजरी' के नाम से प्राकृत व्याकरण प्रक्रिया की भी रचना की है जो कि अभी तक अप्रकाशित है।

9. राजस्थान के ग्रन्थ-भण्डारो मे प्राकृत ग्रन्थ —

राजस्थान के प्राकृत साहित्य का सम्पूर्ण परिचय तब तक पूरा नही हो सकता जब तक यहा के ग्रन्थ भण्डारो मे उपलब्ध प्राकृत ग्रन्थो का विवेचनात्मक विवरण प्रस्तुत न किया जाय। ग्रन्थ-भण्डारो की जो सूचिया प्रकाशित हैं उनसे तथा ग्रन्थ-भण्डारो के अवलोकन से इस प्रदेश के प्राकृत ग्रन्थो का परिचय तैयार किया जा सकता है। तभी ज्ञात होगा कि राजस्थान के मुनियो,श्रावको, राजाओ आदि ने प्राकृत साहित्य के विकास में कितना योगदान किया है।

---

1. नेमिविज्ञान कस्तूरसूरि ज्ञान मदिर, गोपीपुरा, सूरत से प्रकाशित।

2. भगवत प्रसाद रणछोड़दास, पटेल सोसायटी (शाहीबाग) अहमदाबाद से प्रकाशित।

राजस्थान के प्राकृत साहित्यकार : ३

—देवेन्द्र मुनि शास्त्री

आचार्य हरिभद्र

हरिभद्रसूरि राजस्थान के एक ज्योतिर्धर नक्षत्र थे। उनकी प्रबल प्रतिभा से भारतीय साहित्य जगमगा रहा है। उनके जीवन के सम्बन्ध मे सर्वप्रथम उल्लेख "कहावली" में प्राप्त होता है। इतिहासविज्ञ उसे विक्रम की बारहवी शती के आसपास की रचना मानते हैं। उसमें हरिभद्र की जन्म-स्थली के सम्बन्ध में "पिवगुई बंभपुणी" ऐसा वाक्य मिलता है,[1] जबकि अन्य अनेक स्थलो पर चित्तौड-चित्रकूट का स्पष्ट उल्लेख है।[2] पण्डित प्रवर श्री सुखलालजी[3] का अभिमत है कि बम्भपुणी-ब्रह्मपुरी चित्तौड का ही एक विभाग रहा होगा, अथवा चित्तौड के सन्निकट का कोई कस्बा होगा। उनके माता का नाम गगा और पिता का नाम शकर-भट्ट था।[4] सुमतिगणी ने "गणधरसार्धशतक" में हरिभद्र की जाति ब्राह्मण बताई है।[5] प्रभावक चरित्र में उन्हें पुरोहित कहा गया है।[6]

आचार्य हरिभद्र के समय के सम्बन्ध में विद्वानो मे विभिन्न मत थे। किन्तु पुरातत्ववेत्ता मुनि श्री जिनविजय जी ने प्रबल प्रमाणों से यह सिद्ध कर दिया कि वीर स 757 से 827 तक उनका जीवन काल है।[7] अब इस सम्बन्ध मे किसी भी प्रकार का मतभेद नही रहा है। उन्होने व्याकरण, न्याय, दर्शन और धर्मशास्त्र का गम्भीर अध्ययन कहा पर किया था इसका उल्लेख

---

1. पाटण सघवी के पाडे के जैन भण्डार की वि स. 1497 की लिखित ताडपत्रीय पोथी खण्ड 2, पत्र 300।

2. (क) उपदेश पद, श्री मुनिचन्द्रसूरि की टीका वि. स 1174।
   (ख) गणधर सार्धशतक श्री सुमतिगणि कृत वृत्ति।
   (ग) प्रभावक चरित्र 9 शृग (वि. स. 1334)।
   (घ) राजशेखर कृत प्रबन्धकोष वि स 1405, पृ. 60।

3. समदर्शी आचार्य हरिभद्र, पृ. 6।

4. सकरो नाम भटो, तस्स गगा नाम भट्टिणी। तीसे हरिभद्दो नाम पडिओ पुत्तो। कहावली पत्र 300।

5. एव सो पडिच्चगव्व मुव्वहमाणो हरिभद्दो नाम माहणो।

6. प्रभावक चरित्र शृग 9, श्लोक 8।

7. जैन साहित्य सशोधक वर्ष 1 अक 1।

नही मिलता है। वे एक बार चित्तौड के मार्ग से जा रहे थे उनके कर्ण-कुहरों में एक गाथा गिरी [1], गाथा प्राकृत-भाषा की थी, सक्षिप्त और सकेत-पूर्ण अर्थ लिए हुए थी अत उसका मर्म उनकी समझ में नही आया। उनने गाथा का पाठ करने वाली साध्वी से उस गाथा के अर्थ को जानने की जिज्ञासा व्यक्त की। साध्वी ने अपने गुरु जिनदत्त का परिचय कराया। प्राकृत साहित्य का और जैन-परम्परा का प्रामाणिक व गम्भीर अभ्यास करने के लिये उन्होने आचार्य के पास जैनेन्द्री-दीक्षा ग्रहण की और उस साध्वी के प्रति अपने हृदय की अनन्त श्रद्धा को उसका धर्मपुत्र अपने-आपको बताकर व्यक्त की है।[2] वे गृहस्थाश्रम मे सस्कृत भाषा के प्रकाण्ड पण्डित थे। श्रमण बनने पर प्राकृत भाषा का भी गहराई से अध्ययन किया। उन्होने दशवैकालिक, आवश्यक, नन्दी, अनुयोगद्वार, पन्नवणा, ओघनिर्युक्ति, चैत्यवन्दन, जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्ति, जीवाभिगम और पिण्ड-निर्युक्ति आदि आगमो पर सस्कृत भाषा मे टीकाए लिखी। आगम साहित्य के वे प्रथम टीकाकार हैं।

उन्होने प्राकृत भाषा में विपुल साहित्य का सृजन किया है। सस्कृत भाषा के समान उनका प्राकृत भाषा पर भी पूर्ण अधिकार था। उन्होने धर्म, दर्शन, योग तथा ज्योतिष और स्तुति प्रभृति सभी विषयो में प्राकृत भाषा में ग्रन्थ लिखे है। जैसे उपदेश पद, पचवस्तु, पचाशक, वीस विंशिकाए, श्रावक-धर्म-विधि प्रकरण, सम्बोध प्रकरण, धर्मसग्रहणी, योग विंशिका, योगशतक, धूर्ताख्यान, समराइच्च कहा, लग्नशुद्धि, लग्न कुण्डलिया आदि।

समराइच्चकहा, प्राकृत भाषा की एक सर्वश्रेष्ठ कृति है। जो स्थान सस्कृत साहित्य में कादम्बरी का है वही स्थान प्राकृत साहित्य मे समराइच्चकहा का है। यह जैन महाराष्ट्री प्राकृत मे लिखी गई है, अनेक स्थलो पर शौरसेनी भाषा का भी प्रभाव है।

धूत्तक्खाण[3] हरिभद्र की दूसरी उल्लेखनीय रचना है। निशीथ चूर्णि की पीठिका में धूर्ताख्यान की कथाए सक्षेप में मिलती हैं। जिनदासगणि महत्तर ने वहा यह सूचित किया है कि विशेष जिज्ञासु धुत्ताक्खान देखे। इससे यह स्पष्ट है कि जिनदासगणि के सामने धुत्ताक्खाण की कोई प्राचीन रचना रही होगी जो आज अनुपलब्ध है। आचार्य हरिभद्र ने निशीथचूर्णि के आधार से प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना की है। ग्रन्थ में पुराणो मे वर्णित अतिरजित कथाओ पर करारे व्यग करते हुए उसकी असार्थकता सिद्ध की है। भारतीय कथा-साहित्य में शैली की दृष्टि से प्रस्तुत कथा का मूर्धन्य स्थान है। लाक्षणिक शैली में इस प्रकार की अन्य कोई भी रचना उपलब्ध नही होती। यह साधिकार कहा जा सकता है, व्यगोपहास की इतनी श्रेष्ठ रचना अन्य किसी भी भाषा में नही है। धूर्तों का व्यग प्रहार ध्वसात्मक नही अपितु निर्माणात्मक है।

कहा जाता है कि आचार्य हरिभद्र ने 1444 ग्रन्थो की रचना की थी किन्तु वे सभी ग्रन्थ आज उपलब्ध नही है। डा. हर्मन जैकोबी, लायमान विन्तर्नित्स, प्रो सुवाली और शुब्रिग प्रभृति अनेक पाश्चात्य विचारको ने हरिभद्र के ग्रन्थो का सम्पादन और अनुवाद भी किया है[4] और उनके सम्बन्ध में प्रकाश भी डाला है जिससे भी उनकी महानता का सहज ही पता लग सकता है।

---

1. चक्किदुग हरि-पणगं, पणग चक्कीण केसवो चक्की। केसव चक्की, केसव दुचक्की केसी अ चक्की अ ॥ आवस्यक निर्युक्त गाथा 421।
2. धमतो याकिनीमहत्तरासूनुः।
3. सिंघी जैन ग्रन्थमाला, भारतीय विद्या भवन बम्बई से प्रकाशित।
4. देखिये, डा. हर्मन जैकोवी ने समराइच्च कहा का सम्पादन किया। सुवाली ने योगदृष्टि समुच्चय, योग विन्दु, लोकतत्वनिर्णय एव षड्दर्शन समुच्चय का सम्पादन किया और लोकतत्व निर्णय का इटालियन मे अनुवाद भी।

उद्योतनसूरि

उद्योतनसूरि श्वेताम्बर परम्परा क एक विशिष्ट मेधावी सन्त थे। उनका जीवनवृत्त विस्तार से नही मिलता। उन्होंने वीरभद्रसूरि से सिद्धान्त की शिक्षा प्राप्त की थी और हरिभद्रसूरि से युक्तिशास्त्र की। कुवलयमाला प्राकृत साहित्य का उनका एक अनुपम ग्रन्थ है। गद्य-पद्य मिश्रित महाराष्ट्री प्राकृत की यह प्रसाद-पूर्ण रचना चम्पू शैली में लिखी गई है।[1] महाराष्ट्री प्राकृत के साथ इसमें पैशाची, अपभ्र श व देशी भाषाओं के साथ कही-कही पर सस्कृत भाषा का भी प्रयोग हुआ है। प्रेम और श्रृंगार के साथ वैराग्य का भी सुन्दर प्रयोग हुआ है। सुभाषित, मार्मिक प्रश्नोत्तर, प्रहेलिका आदि भी यत्र-तत्र दिखलाई देती है जिससे लेखक के विशाल अध्ययन व सूक्ष्म दृष्टि का पता लगता है। ग्रन्थ पर वाण की कादम्बरी, त्रिविक्रम की दमयन्ती कथा, और हरिभद्रसूरि के समराइच्च कहा का स्पष्ट प्रभाव है। प्रस्तुत ग्रन्थ ईस्वी सन् 779 में जाबालिपुर जिसका वर्तमान में नाम जालौर है, मे पूर्ण किया गया था।[2]

जिनेश्वरसूरि

जिनेश्वरसूरि के नाम से जैन-सम्प्रदाय में अनेक आचार्य हुए है। प्रस्तुत आचार्य का उल्लेख धनेश्वरसूरि[3], अभयदेव[4] और गुणचन्द्र[5] ने युगप्रधान के रूप में किया है। जिनेश्वरसूरि का मुख्य रूप से विहार स्थल राजस्थान, मालवा और गजरात रहा है। इन्होने सस्कृत और प्राकृत दोनों भाषाओ में रचना की। उसमें हरिभद्र कृत अष्टक पर वृत्ति, पचलिंगी प्रकरण, वीरचरित्र, निर्वाण-लीलावती कथा, षट्-स्थानक प्रकरण, और कहाणय-कोस मुख्य है। कहाणय कोस में तीस गाथायें हैं और प्राकृत में टीका है, जिसमें छत्तीस प्रमुख कथाएं है। कथाओ में उस युग की समाज, राजनीति और आचार-विचार का सरस चित्रण किया गया है। समास युक्त पदावली, अनावश्यक शब्दाडम्बर और अलंकारो की भरमार नही है। कही-कही पर अपभ्र श भाषा का भी प्रयोग हुआ है।

उनकी निर्वाण लीलावती कथा भी प्राकृत भाषा की श्रेष्ठ रचना है। उन्होने यह कथा स. 1082 और सं. 1095 के मध्य में बनाई है। पदलालित्य, श्लेष और अलकारो से यह विभूषित है। प्रस्तुत ग्रन्थ का जिनरत्नसूरि रचित सस्कृत श्लोकबद्ध भाषान्तर जैसलमेर के भण्डार में उपलब्ध हुआ है। मूल कृति अभी तक अनुपलब्ध है। प्राकृत भाषा में उनकी एक अन्य रचना 'गाथा कोस' भी मिलती है।

---

1 सिघी जैन ग्रन्थमाला, भारतीय विद्या भवन, बम्बई वि. स 2005 स मुनि विजय जी।

2. तुगमलघ जिण-भवण-महाहर सावयाउल विसम।

जावालिउर अठ्ठावय व अह अत्थि पुहईए॥
कवलयमाला प्रशस्ति पृष्ठ 282
प्रकाशक-सिघी जैन ग्रन्थमाला, भारतीय विद्याभवन, बम्बई वि. स. 2005 स. मुनि जिनविजय जी।

3 सुरसुन्दरी चरित्र की अतिम प्रशस्ति गा. 240 से 248

4. भगवती, ज्ञाता, समवायाग, स्थानाग औपपातिक की वृत्तियो में प्रशस्तिया

5. महावीर चरित्र प्रशस्ति।

महेश्वरसूरि

महेश्वरसूरि प्रतिभा सम्पन्न कवि थे। वे संस्कृत-प्राकृत भाषा के प्रकाण्ड पण्डित थे। इनका समय ई. सन् 1052 से पूर्व माना गया है। "णाण पंचमी कहा"[1] इनकी एक महत्वपूर्ण रचना है। इसमें देशी शब्दों का अभाव है। भाषा में लालित्य है। यह प्राकृत भाषा का श्रेष्ठ काव्य है। महेश्वरसूरि सज्जन उपाध्याय के शिष्य थे।[3]

जिनचन्द्रसूरि

जिनचन्द्र जिनेश्वरसूरि के शिष्य थे। अपने लघु गुरुबन्धु अभयदेव की अभ्यर्थना को सन्मान देकर 'संवेगरंगशाला' नामक ग्रन्थ की रचना की। रचना का समय वि स. 1125 है। नवागी टीकाकार अभयदेव के शिष्य जिन-वल्लभसूरि ने प्रस्तुत ग्रन्थ का संशोधन किया। संवेग-भाव का प्रतिपादन करना ही ग्रन्थ का उद्देश्य रहा है। ग्रन्थ में सर्वत्र शान्त रस छलक रहा है।

जिनप्रभसूरि

जिनप्रभसूरि विलक्षण प्रतिभा के घनी आचार्य थे। उन्होंने 1326 में जैन दीक्षा ग्रहण की और आचार्य जिनसिंह ने उन्हें योग्य समझ कर 1341 में आचार्य पद प्रदान किया। दिल्ली का सुल्तान मोहम्मद तुगलक बादशाह इनकी विद्वत्ता और इनके चमत्कारपूर्ण कृत्यों से अत्यधिक प्रभावित था। इनके जीवन की अनेक चमत्कारपूर्ण घटनायें प्रसिद्ध हैं।

कातन्त्र विभ्रमवृत्ति, श्रेणिक चरित्र-द्वयाश्रय काव्य, विधिमार्गप्रपा आदि अनेक ग्रन्थ बनाये। विविधतीर्थकल्प[3] प्राकृत साहित्य का एक सुन्दर ग्रन्थ है। श्रीयुत अगरचन्द नाहटा का अभिमत है कि 700 स्तोत्र भी इन्होंने बनाये। वे स्तोत्र संस्कृत, प्राकृत, देश्य भाषा के अतिरिक्त फारसी भाषा में भी लिखे हैं। वर्तमान में इनके 75 स्तोत्र उपलब्ध होते हैं।

नेमिचन्द्रसूरि

नेमिचन्द्रसूरि बृहद्गच्छीय उद्योतनसूरि के प्रशिष्य थे और आम्रदेवसूरि के शिष्य थे। आचार्य पद प्राप्त करने के पूर्व इनका नाम देवेन्द्रगणि था। महावीर चरिय उनकी पद्यबद्ध रचना है। वि. स. 1141 में उन्होंने प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना की। इसके अतिरिक्त "अक्खाण मणिकोस" (मूल), उत्तराध्ययन की संस्कृत टीका, आत्मबोध कुलक प्रभृत्ति इनकी रचनाए प्राप्त होती हैं।

---

1. सम्पादक डा. अमृतलाल सवचन्द गोपाणी, प्रकाशक-सिंघी जैन ग्रन्थमाला बम्बई सन् 1949।

2. दोपक्खुज्जोयकरो दोसासगेण वज्जिओ अमओ।
   सिरि सज्जण उज्जाओ अउव्वचदुव्व अक्खत्थो ॥
   सीसेण तस्स कहिया दस वि कहाणा इमे उ पचमिए।
   सूरि महेसरएण भवियाण बोहणट्ठाए ॥ णाण. 10।496-497

3. सिंघी जैन ग्रन्थमाला, बम्बई से प्रकाशित।

गुणपाल मुनि

गुणपाल मुनि ये श्वेताम्बर परम्परा के नाइलगच्छीय वीरभद्रसूरि के शिष्य अथवा प्रशिष्य थे। जंबुचरिय-1 उनकी श्रेष्ठ रचना है । ग्रन्थ की रचना कब की इसका सकेत ग्रन्थकार ने नही किया है, पर ग्रन्थ के सम्पादक मुनि श्री जिनविजयजी का यह अभिमत है कि ग्रन्थ ग्यारहवी शताब्दी में या उससे पूर्व लिखा गया है । जैसलमेर के भण्डार से जो प्रति उपलब्ध हुई है वह प्रति 14 वी शताब्दी के आसपास की लिखी हुई है ।

जम्बुचरिय की भाषा सरल और सुबोध है । सम्पूर्ण ग्रथ गद्य-पद्य मिश्रित है । इस पर 'कुवलयमाला' ग्रन्थ का स्पष्ट प्रभाव है । यह एक ऐतिहासिक सत्य तथ्य है कि कुवलय-माला के रचयिता उद्द्योतनसूरि ने सिद्धान्तो का अध्ययन वीरभद्र नाम के आचार्य के पास किया था । उन्होने वीरभद्र के लिए लिखा दिन्न जहिच्छ-फलओ अवरो कप्परूक्खोव्व' । गुण-पाल ने अपने गुरु प्रद्युम्नसूरि को वीरभद्र का शिष्य बतलाया ह । गुणपाल ने भी 'परिचितिय दिन्न फलो आसी सो कप्परुक्खो' ऐसा लिखा है । जो उद्द्योतनसूरि के वाक्य-प्रयोग के साथ मेल खाता है । इससे यह स्पष्ट है कि उद्द्योतनसूरि के सिद्धान्त-गुरु वीरभद्राचार्य और गुणपाल मुनि के प्रगुरु वीरभद्रसूरि ये दोनो एक ही व्यक्ति होगे । यदि ऐसा ही है तो गुणपाल मुनि का अस्तित्व विक्रम की 9 वी शताब्दी के आस-पास है ।

गुणपाल मुनि की दूसरी रचना 'रिसिदत्ता चरिय' है । जिसकी अपूण प्रति भाण्डारकर प्राच्यविद्या सशोधन मन्दिर, पूना में है ।

समयसुन्दर गणिः

समयसुन्दर गणि ये एक वरिष्ठ मेधावी सन्त थे । तर्क, व्याकरण, साहित्य के ये गभीर विद्वान् थे उनकी अद्भुत प्रतिभा को देखकर बड़े-बड़े विद्वानो की अगुली भी दातो तले लग जाती थी। स. 1649 की एक घटना है । बादशाह अकबर ने काशमीर पर विजय वैजयन्ती फहराने के लिए प्रस्थान किया । प्रस्थान के पूर्व विशिष्ट विद्वानो की एक सभा हुई । समयसुन्दर जी ने उस समय विद्वानो के समक्ष एक अद्भुत ग्रन्थ उपस्थित किया । उस ग्रन्थ के सामने आज-दिन तक कोई भी ग्रन्थ ठहर नही सका है । 'राजानो ददते सौख्यम्' इस सस्कृत वाक्य के आठ अक्षर हैं और एक-एक अक्षर के एक-एक लाख अर्थ किये गये है । बादशाह अकबर और सभी विद्वान् प्रतिभा के इस अनूठे चमत्कार को देखकर नतमस्तक हो गये । अकबर काश्मीर विजय कर लौटा तो अनेक आचार्यों एव साधुओ का उसने सन्मान किया । उनमें एक समयसुन्दर जी भी थे, उन्हें वाचक पद प्रदान किया गया । उन्होने विक्रम सं. 1686 (ई सन् 1629) में गाथा सहस्री ग्रन्थ का सग्रह किया । इस ग्रन्थ पर एक टिप्पण भी है पर उसके कर्त्ता का नाम ज्ञात नही हो सका है । इसमें आचार्य के छतीस गुण, साधुओ के गुण, जिनकल्पिक के उपकरण, यति-दिनचर्या, साढ पच्चीस आर्यदेश, ध्याता का स्वरूप, प्राणायाम, बत्तीस प्रकार के नाटक, सोलह श्रृगार, शकुन और ज्योतिष आदि विषयो का सुन्दर सग्रह है । महानिशीथ, व्यवहारभाष्य, पुष्पमाला-वृत्ति आदि के साथ ही महाभारत, मनुस्मृति आदि संस्कृत के ग्रन्थो से भी यहा उद्धरण उद्धृत किये गये है ।

---

1. सिंघी जैन ग्रन्थमाला, बम्बई से प्रकाशित ।

ठक्कुर फेरु

ठक्कुर फेरु ये राजस्थान के कन्नाणा के निवासी श्वेताम्बर श्रावक थे। ये श्रीमालवंश के धाधिया (धन्धकुल) गोत्रीय श्रेष्ठि कालिय या कलश के पुत्र थे। इनकी सर्वप्रथम रचना युगप्रधान चतुष्पदिका है, जो स. 1347 मे वाचनाचार्य राजशेखर के समीप अपने निवास स्थान कन्नाणा में बनाई थी। इन्होने अपनी कृतियों के अंत में अपने आपको "परमजैन" और जिणद-पय-भत्तो, लिख कर अपना कट्टर जैनत्व बताने का प्रयास किया है। "रत्न-परीक्षा" में अपने पुत्र का नाम 'हेमपाल' लिखा है जिसके लिए प्रस्तुत ग्रन्थ की रचना की गई है। इनके भाई का नाम ज्ञात नही हो सका है।

दिल्लीपति सुरत्राण अलाउद्दीन खिलजी के राज्याधिकारी या मन्त्रि-मण्डल मे होने से इनको बाद में अधिक समय दिल्ली में रहना पडा। इन्होने 'द्रव्य परीक्षा' दिल्ली की टकसाल के अनुभव के आधार पर लिखी 'गणित-सार' में उस युग की राजनीति पर अच्छा प्रकाश डाला गया है। गणित प्रश्नावली से यह स्पष्ट ज्ञात होता है कि ये शाही दरबार में उच्च पदासीन व्यक्ति थे।

इनकी सात रचनायें प्राप्त होती हैं जो बहुत ही महत्वपूर्ण हैं। जिनका सम्पादन मुनि श्री जिनविजयजी न "रत्न परीक्षा दिसप्त ग्रन्थ सग्रह' के नाम से किया है। 'युग प्रधान चतुष्पदिक' तत्कालीन लोक भाषा चौपाई व छप्पय में रची गई है और शेष सभी रचनाए प्राकृत में है। भाषा सरल व सरस है। उस पर अपभ्रंश का प्रभाव है।

जयसिंहसूरि

'धर्मोपदेशमाला विवरण' 2 यह जयसिंहसूरि की एक महत्वपूर्ण कृति है जो गद्य-पद्य मिश्रित है। यह ग्रन्थ नागौर में बनाया गया था। 3

वाचक कल्याणतिलक

वाचक कल्याणतिलक ने छप्पन गाथाओं में कालकाचार्य की कथा लिखी है। 4

हीरकलश मुनि

हीरकलश मुनि ने स. 1621 में 'जोइसहीर' ग्रन्थ की रचना की। यह ग्रन्थ ज्योतिष की गहराई को प्रकट करता है। 5

---

1 प्रकाशक राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर

2. प्रकाशक सिंघी जैन ग्रन्थ माला, बम्बई

3 नागउर-जिणायतणे समाणिय विवरण एवं। धर्मोपदेशमाला प्रशस्ति 29 पृष्ठ 230

4 तीर्थंकर वर्ष 4, अक 1 मई, 1974।

5. मणिधारी श्री जिनचन्द्रसूरि अष्टम शताब्दी स्मृति ग्रन्थ 'जोईसहीर' महत्वपूर्ण खरतरगच्छीय ज्योतिष ग्रन्थ। लेख, पृष्ठ 95।

मानदेवसूरि

मानदेवसूरि का जन्म नाडोल में हुआ। उनके पिता का नाम धनेश्वर और माता का नाम धारणी था। इन्होंने 'तिजयपहुत' नामक स्तोत्र की रचना की।[1]

नेमिचन्द्र भण्डारी

नेमिचन्द्र भण्डारी ने प्राकृत भाषा में 'षष्टिशतक प्रकरण' जिनवल्लभसूरि गुणवर्णन एवं पार्श्वनाथ स्तोत्र आदि रचनाएं बनाई हैं।[2]

राजेन्द्रसूरि

श्री राजेन्द्रसूरि ने 'अभिधान राजेन्द्र कोष' और अन्य अनेक ग्रन्थों का सम्पादन-लेखन किया है।

स्थानकवासी मुनि

राजस्थान के स्थानकवासी जैन श्रमणों ने भी प्राकृत भाषा में अनेक ग्रन्थों की रचनाएं की हैं किन्तु साधनाभाव से उन सभी ग्रन्थकारों का परिचय देना सम्भव नही है।

श्रमण हजारीमल जिनकी जन्मस्थली मेवाड़ थी उन्होंने 'साहुगुणमाला' ग्रन्थ की रचना की थी। जयमल सम्प्रदाय के मुनि श्री चैनमल जी ने श्रीमद्गीता का प्राकृत में अनुवाद किया था। पं. मुनि लालचन्द जी 'श्रमण लाल' ने भी प्राकृत में अनेक स्तोत्र आदि बनाए हैं। प. फूलचन्द जी. म. पुप्फभिक्खु ने सुत्तागम का सम्पादन किया और अनेक लख आदि प्राकृत में लिख हैं। राजस्थान केसरी पुष्कर मुनिजी ने भी प्राकृत भाषा में निबन्ध और स्तोत्र लिखे हैं।

आचार्य घासीलाल जी म. एक प्रतिभा सम्पन्न सन्त-रत्न थे। उनका जन्म सं. 1941 में जसवन्तगढ़ मेवाड़ में हुआ। उनकी मा का नाम विमला बाई और पिता का नाम प्रभुदत्त था। जवाहराचार्य के पास आर्हती दीक्षा ग्रहण की। आपने आगमों पर संस्कृत भाषा मे टीकाए लिखी और शिवकोश, नानार्थ उदयसागर कोश, श्रीलालनाममाला कोश, आर्हत व्याकरण, आर्हत लघु व्याकरण, आर्हत सिद्धान्त व्याकरण, शाति-सिन्धु महाकाव्य, लोकाशाह महाकाव्य, जैनागमतत्वदीपिका, वृत्तबोध, तत्वप्रदीप, सूक्तिसंग्रह, गृहस्थकल्पतरु, पूज्य श्रीलाल-काव्य, नागाम्बरमज्जरी, लवजी-मुनि काव्य, नव स्मरण, कल्याणमगल स्तोत्र, वर्धमान स्तोत्र आदि संस्कृत भाषा में मौलिक ग्रन्थो का निर्माण किया और तत्वार्थसूत्र, कल्पसूत्र और प्राकृत व्याकरण आदि अनेक ग्रन्थ प्राकृत भाषा मे भी लिखे हैं।

---

26. प्रभावक चरित्र भाषान्तर पृष्ठ 187, प्र आत्मानन्द जैनसभा, भावनगर वि. सं. 1987 में प्रकाशित।

    (ख) जैन परम्परा नो इतिहास, भाग 1 पृष्ठ 359 से 361।

27. मणिधारी श्री जिनचन्द्रसूरि अष्टम शताब्दि स्मृति ग्रन्थ।

तेरापंथी मुनि

तेरापंथ सम्प्रदाय के अनेक आधुनिक मुनियो ने भी प्राकृत भाषा में लिखा है। 'रयणवाल-कहा' प. चन्दन मुनि जी की एक श्रेष्ठ रचना है।

राजस्थानी जैन श्वेताम्बर परम्परा के श्रमणों ने जितना साहित्य लिखा है उतना आज उपलब्ध नही है। कुछ तो मुस्लिमयुग के धर्मान्ध शासको ने जन शास्त्र-भण्डारों को नष्ट कर दिया और कुछ हमारी लापरवाही से हजारो ग्रन्थ चूहों, दीमक एवं शीलन से नष्ट हो गये। तथापि जो कुछ अवशिष्ट हैं उन ग्रन्थो को आधुनिक दृष्टि से सम्पादन कर प्रकाशित किये जायें और ग्रन्थ-भण्डारो की सूचिया भी प्रकाशित की जायें तो अनेक अज्ञात महान् साहित्यकारो का सहज रूप से पता लग सकता है।

राजस्थान के प्राकृत साहित्यकार : 4

—डॉ· कस्तूरचन्द कासलीवाल

आचार्य धरसेन

आचार्य धरसेन प्राकृत भाषा के महान् ज्ञाता थे। प्राकृत के प्रसिद्ध ग्रथ 'धवला' में इनको अष्टाग महानिमित्त के पारगामी, प्रवचनवत्सल तथा अगश्रुत के रक्षक के रूप में स्मरण किया है। सौराष्ट्र देश की गिरनगर की चन्द्रगुफा में निवास करते थे और वही से राजस्थान के प्रदेशो में भी विहार करते थे। नारायणा (जयपुर) के जैन मन्दिर में आचार्य धरसेन के संवत् 1083 (सन् 1029) के चरण-चिन्ह आज भी सुरक्षित रूप से विराजमान हैं। इसलिये राजस्थान ऐसे महान आचार्य पर गौरवान्वित है।

आचार्य धरसेन के चरणो में बैठकर ही आचार्य पुष्पदन्त एव भूतबलि ने प्राकृत भाषा का एव सिद्धान्त का अध्ययन किया। वास्तव मे वे सफल शिक्षक एव आचार्य थे। दिगम्बर परम्परा में आचार्य पुष्पदन्त और भूतबलि ने भगवान् महावीर क पश्चात् सर्व प्रथम षट्खण्डागम की रचना की और ज्ञान को विलुप्त होने से बचाया। इस महान् कार्य में आचार्य धरसेन का सर्वाधिक योगदान रहा।

धरसेन की प्राकृत-कृति 'योनि-पाहुड' की एक मात्र पाण्डुलिपि रिसर्च इन्स्टीट्यूट, पूना के शास्त्र भण्डार में बतलाई जाती है। आचार्य धरसेन का समय ईसा की प्रथम शताब्दी माना जाता है।

आचार्य वीरसेन

आचार्य वीरसेन जैन-सिद्धान्त के पारगत विद्वान् थे, इसके साथ ही गणित, न्याय, ज्योतिष एव व्याकरण आदि विषयों का भी उन्हें तलस्पर्शी ज्ञान प्राप्त था। आदिपुराण के कर्ता आचार्य जिनसेन जैसे उच्चस्तरीय विद्वान् इनके शिष्य थे। आचार्य जिनसेन ने अपने आदिपुराण एव धवला प्रशस्ति में इनका 'कवि-वृन्दारक' उपाधि के साथ स्तवन किया है।

आचार्य वीरसेन एलाचार्य के शिष्य थे। डा. हीरालाल जैन का अनुमान है कि एलाचार्य इनके विद्यागुरु थे। इन्द्रनन्दि के श्रुतावतार से ज्ञात होता है कि एलाचार्य चित्रकूट (चित्तौड़) में निवास करते थे और चित्तौड़ में रहकर ही आचार्य वीरसेन ने एलाचार्य से सिद्धान्त-ग्रन्थों का अध्ययन किया था। इसी कारण वीरसेन जैसे आचार्य पर राजस्थान को गर्व है।

शिक्षा-समाप्ति के पश्चात् आचार्य वीरसेन चित्तौड़ से वाटग्राम (बड़ौदा) चले गये और वहां के आनतन्द्र द्वारा बनवाये हुय जिनालय में रहने लगे। इसी मन्दिर में इन्होंने 72000 श्लोक प्रमाण षट्खण्डागम, की धवला टीका लिखी। धवला टीका समाप्ति के पश्चात् आचार्य वीरसेन ने कषाय प्राभृत पर 'जयधवला' टीका आरम्भ की और 20000 श्लोक प्रमाण टीका लिखे जाने के उपरान्त आचार्य वीरसेन का स्वर्गवास हो गया। पश्चात् उनके शिष्य आचार्य जिनसेन ने अवशिष्ट जयधवला टीका 40000 श्लोक प्रमाण लिखकर पूर्ण की।

आचार्य वीरसेन के समय के सबध में कोई विवाद नही है क्योंकि उनके शिष्य आचार्य जिनसेन ने जयधवला टीका को शक सवत् 756 की फाल्गुन शुक्ला दशमी के दिन पूर्ण किया था। इसलिये वीरसेन का समय इस सवत के पूर्व ही होना चाहिये। डा. हीरालाल जन ने धवला टीका का समाप्तिकाल शक सवत् 738 सिद्ध किया है। इसलिये वीरसेन 9वी शताब्दी (ईस्वी सन् 816) के विद्वान् थे।

धवला टीका :—"षट्खण्डागम" पर 72000 श्लोक प्रमाण प्राकृत-सस्कृत मिश्रित भाषा में मणि-प्रवाल न्याय से धवला टीका लिखी गई है। यह षट्खण्डागम के प्रन्य पांच खण्डो की सबसे महत्वपूर्ण टीका है। टीका प्रमेय बहुल है तथा टीका होने पर भी यह एक स्वतन्त्र सिद्धान्त ग्रथ है। टीका की प्राकृत भाषा प्रौढ मुहावरेदार एव विषय के अनुसार संस्कृत की तर्क शैली से प्रभावित है। पं. परमानन्द शास्त्री के शब्दो में इसमे प्राकृत गद्य का निखरा हुआ स्वच्छ रूप वर्तमान है। सन्धि और समास का यथास्थान प्रयोग हुआ है और दार्शनिक शैली में गम्भीर विषयो को प्रस्तुत किया गया है। टीका में केवल षट्खण्डागम के सूत्रो का ही मर्म उद्घाटित नही किया गया किन्तु कर्म-सिद्धान्त का भी विस्तृत विवेचन किया गया है। आचार्य वीरसेन गणित-शास्त्र के महान् विद्वान् थे इसलिये इन्होने वृत्त, व्यास, परिधि, सूची व्यास, घन, अर्द्धच्छेद घाताक, वलय व्यास और चाप आदि गणित की अनेक प्रक्रियाओ का महत्वपूर्ण विवेचन किया है। गणित के अतिरिक्त टीकाकार ने ज्योतिष और निमित्त सबधी प्राचीन मान्यताओ का भी स्पष्ट वर्णन किया है। षट्खण्डागम का वर्ण्य विषय 'जीवट्ठाण' खुद्दाबध, बध-सामित्तविचय, वेयणा, वग्गणा और महाबध है। इन्ही का आचार्य वीरसेन ने अपनी धवलाटीका में विस्तृत वर्णन किया है।

आचार्य देवसेन

देवसेन नाम के अनेक विद्वान् हो गये है जिनकी गुरु परम्परा एव समय भिन्न-भिन्न है प्रस्तुत आचार्य देवसेन प्राकृत भाषा के उद्भट विद्वान् थे। मालवा की धारा नगरी इनका प्रमुख साहित्यिक केन्द्र था लेकिन राजस्थान मे भी ये प्राय. विहार करते रहते थे और जन-जन मे सद्साहित्य और सद्धर्म का प्रचार किया करते थे। ये 10वी शताब्दी के अन्तिम चरण के विद्वान् थे।

देवसेन क्रान्तिकारी विद्वान् थे। ये दर्शन एव सिद्धान्त के प्रकाण्ड विद्वान् थे। इतिहास से उन्हे रुचि थी तथा देश एवं समाज में व्याप्त बुराइयो की निन्दा करने मे यह कभी पीछे नही रहते थे। प. नाथूराम प्रेमी न इनकी चार कृतिया स्वीकार की हैं जिनके नाम है—दर्शनसार भावसग्रह, तत्वसार, और नयचक्र। डा. नेमीचन्द शास्त्री ने उक्त ग्रन्थो के अतिरिक्त, आराधनासार एव आलापपद्धति इनकी और रचना स्वीकार की है। इन रचनाओ का सामान्य परिचय निम्नप्रकार ह—

1. दर्शनसार—यह कवि की एक मात्र कृति है जिसमें कृति का रचनाकाल दिया हुआ है। कवि ने इसे सवत् 997 माघ शुक्ला दशमी के दिन समाप्त की थी। यह एक समीक्षात्मक कृति है जिसमें विभिन्न दार्शनिक मतो के प्रवतक के रूप मे ऋषभदेव के पौत्र मारीचि को माना है। इसके पश्चात् द्रविड सघ, यापनीय सघ, काष्ठा सघ, माथुर सघ तथा भिल्लल सघ की उत्पत्ति एव उनकी समीक्षा की गई ह। दर्शनसार से देवसेन के अक्खड स्वभाव का पता चलता है। इन्होने अन्तिम गाथा में अपनी स्पष्टता व्यक्त करते हुये लिखा है—

रूसउ तूसउ लोओ सच्च अक्खतयस्स साहुस्स।
कि जूय-भए साडी विवज्जियव्वा णरिंदेण।

सत्य कहने वाले साधु से कोई रुष्ट हो, चाहे सन्तुष्ट हो, इसकी चिन्ता नहीं। क्या राजा को यूका (जुंओ) के भय से वस्त्र पहिनना छोड़ देना चाहिए ? कभी नहीं।

दर्शनसार में गाथाओ की सख्या 51 है।

2. भावसग्रह:—यह प्राकृत भाषा का विशाल ग्रथ है जिसमें 701 गाथायें है। इसमें चौदह गुणस्थानों को आधार बनाकर विविध विषयो का प्रतिपादन किया गया है। देवसेन ने अपने समय में फैले हुए अधविश्वास, रूढिवाद पर काफी प्रकाश डाला है। वह लिखता है कि यदि जल स्नान से समस्त पापो का क्षालन सभव हो तो नदी, समुद्र और तालाबो में रहने वाले जलचर जीवो को कभी का स्वर्ग मिल गया होता। इसी तरह जो श्राद्ध द्वारा पितरों की तृप्ति मानता है वह भ्रम में है। किसी के भाजन से किसी की तृप्ति नही हो सकती। इसी प्रकार अन्य दर्शनो की आचार्य देवसेन ने अच्छी समीक्षा की है। गाथाओ की भाषा अत्यधिक मधुर है।

3. आराधनासार.—प्रस्तुत कृति में प्राकृत गाथाओं की सख्या 115 है। इनमें सम्यक् दर्शन, सम्यक्ज्ञान एव सम्यक् चारित्र तथा तप रूप चारो आराधनाओ का अच्छा वर्णन दिया गया है। विषय विवेचन की अच्छी शैली है। यह एक उद्बोधनात्मक कृति है जिसमें इस आत्मा से अपने स्वभाव मे निरत रहने को कहा है। जब तक वृद्धावस्था नहीं आती है, इन्द्रियो की शक्ति क्षीण नही होती है आयुरूपी जल समाप्त नही होता है तब तक आत्म कल्याण के लिये प्रयत्नशील रहना चाहिये। जो व्यक्ति यह सोचता रहता है कि अभी तो युवावस्था है, विषय सुख भोगने के दिन है वह वृद्धावस्था आने पर कुछ नही कर सकता है :—

जर वाग्घिणी ण चपइ, जाम ण विमलाइ हुति अक्खाइ।
वुद्धि जाम ण णासइ, आउजलं जाम ण परिगलई।
जा उज्जमो ण वियलइ, सजम-तव-णाण-झाण जोएसु।
तावरिहो सो पुरिसो, उत्तम ठाणस्स सभवई।

आचार्य देवसेन ने आगे कहा है कि मन को वश मे करने की शिक्षा देनी चाहिये। जिसका मन वशीभूत है वही रागद्वेष को नाश कर सकता है और राग-द्वेष के नाश करने से परमानद की प्राप्ति होती है।

सिक्खह मणवसियरण सवसीहूएण जेण मणुआण।
णासति रायदोसे तेसि णासे समो परमो ॥64॥

4 तत्वसार:—यह आचार्य देवसेन की चतुर्थ-कृति है। यह एक लघु आध्यात्मिक रचना है जिसकी गाथा सख्या 74 है। कवि ने बतलाया है कि जिसके न क्रोध है, न मान है, न माया है और न लोभ है, न शल्य है और न लेश्या है, जो जन्म-मृत्यु से रहित है वही निरजन आत्मा है —

जस्स ण कोहो माणो माया लोहो ण सल्ल लेस्साओ।
जाइ जरा मरण चिय णिरंजणो सो अहं भणिओ।

5 नयचक्र —यह कवि की पाचवी कृति है जिसमे उसने प्राकृत गाथाओ में नयो का मूल रूप में बहुत सुन्दर वर्णन किया है। नयो के मूल रूप से दो भेद है —एक द्रव्यार्थिक और दूसरा पर्यायार्थिक। सर्वप्रथम आचार्य श्री ने लिखा है कि जो नय-दृष्टि से विहीन है उन्हें वस्तु स्वरूप की उपलब्धि नही होती.—

जो णयदिट्ठि-विहीणा ताण ण वत्थु सरूव उपलद्धि ।
वत्थु-सहाव-विहूणा सम्मादिट्ठी कहं हुंति ।।

आचार्य देवसेन की एक और कृति आलाप-पद्धति है जो सस्कृत भाषा की कृति है और जिसमे गुण, पर्याय, स्वभाव, प्रमाण, नय, गुणव्युत्पत्ति, प्रमाण का कथन, निक्षप की व्युत्पत्ति तथा नय के भेदो की व्युत्पत्ति का वर्णन मिलता है ।

इस प्रकार यद्यपि देवसेन की भावसग्रह को छोडकर सभी लघु रचनायें है किन्तु भाषा, विषय एव शैली की दृष्टि से वे सभी उत्कृष्ट रचनायें हैं । कवि ने थोडे से शब्दो में अधिक से अधिक विषय–प्रतिपादन का प्रयास किया है और इसमे वह पूर्ण सफल भी हुआ है ।

मुनि नेमिचन्द्र

'नेमिचन्द्र' नाम वाले अनेक आचार्य हो गये है । अब तक विद्वानो की यह धारणा थी कि गोम्मटसार, त्रिलोकसार, लब्धिसार तथा क्षपणासार के कर्ता आचार्य नेमिचन्द्र और द्रव्यसग्रह के कर्ता नेमिचन्द्र एक ही आचार्य है जो सिद्धान्ताचार्य की उपाधि से प्रसिद्ध हैं । किन्तु गत कुछ वर्षों मे विद्वानो द्वारा की गयी खोज के आधार पर यह मान लिया गया है कि द्रव्य-सग्रह एव वृहद्-द्रव्यसग्रह के कर्ता दूसरे नेमिचन्द्र है जिन्हें सिद्धान्तिदेव या नेमिचन्द्र मुनि कहा गया है । इसी तरह का उल्लेख वृहद् द्रव्यसग्रह के टीकाकार ब्रह्मदेव ने ग्रथ के परिचय मे लिखा है । जिसके अनुसार द्रव्य-सग्रह धारा नगरी के स्वामी मण्डलेश्वर श्रीपाल के आश्रम नामक नगर मे 20वें तीर्थंकर मुनिसुव्रतनाथ के चैत्यालय में भाण्डागार आदि अनेक नियोगों के अधिकारी सोमा नामक राजश्रेष्ठि के पठनार्थ लिखा गया था । यह आश्रम नगर 'आशारम्भ पट्टण' आश्रम पत्तन 'पट्टण' और पुटभेदन के नाम से उल्लिखित है । राजस्थान मेंबूंदी नगर से लगभग नौ मील की दूरी पर चम्बल नदी के तट पर केशोरायपाटन नाम का प्राचीन नगर है । इसे केशवराय पाटन, पाटन केशवराय भी कहते हैं । अपनी प्राकृतिक रम्यता के कारण यह स्थान आश्रमभूमि (तपोवन) के उपयुक्त होने के कारण आश्रम कहलाने का अधिकारी है । प्रसिद्ध इतिहासज्ञ डॉ दशरथ शर्मा भी इस मत से सहमत हैं कि केशवराय पाटन ही पहिले आश्रम नगर के नाम से प्रसिद्ध था । प्राचीन काल में यह नगर राजा भोजदेव के परमार साम्राज्य के अन्तर्गत रहा था ।

केशवराय पाटन में एक प्राचीन दिगम्बर जैन मन्दिर है जिसमें 12वी शताब्दी की प्राचीन एव कलापूर्ण मूर्तिया हैं । मन्दिर मे जो भूमिगत चैत्यालय हैं उससे पता चलता है कि यह स्थान प्राचीन काल में जैनाचार्यों के लिये साधना-स्थल रहा था । प्रस्तुत नेमिचन्द्र मुनि की भी यही भूमि साधना-स्थल रही थी और यहीं पर उन्होने लघु द्रव्य-सग्रह एव वृहद द्रव्य-सग्रह की रचना की थी, इसमें सन्देह को कोई स्थान नही है ।

उक्त दोनो रचनायें ही जैन समाज में अत्यधिक लोकप्रिय रही है । वृहद् द्रव्य-सग्रह के पठन-पाठन का सर्वाधिक प्रचार है । लघु द्रव्य-सग्रह में कुल 25 गाथायें हैं । ग्यारह गाथाओ में द्रव्यो का, पाच गाथाओ में तत्वों और पदार्थों का तथा दो गाथाओ में उत्पाद, व्यय और ध्रौव्य का कथन किया गया है ।

वृहद् द्रव्य-सग्रह में 58 गाथाए है । इसमें तीन अधिकार हैं । इनम जीवद्रव्य, अजीवद्रव्य, आस्रव, बध, सवर, निर्जरा और मोक्ष इन सात तत्वो का सुन्दर वर्णन किया गया है । जीव द्रव्य को जीव, उपयोगमय, अमूर्तिक, कर्ता, स्वदेहपरिमाण, भोक्ता, ससारी और स्वभाव से उर्ध्वगमन करने वाला बतलाया है । द्विविध मोक्षमार्ग का कथन करते हुए सम्यक्दर्शन, सम्यक्ज्ञान और सम्यक्चारित्र का लक्षण बतलाते हुए ध्यान का अभ्यास करन पर जोर दिया

गया है क्योंकि ध्यान ही मोक्ष प्राप्ति का मुख्य साधन है। ग्रन्थकार ने यह भी बतलाया है कि तप, श्रुत एव व्रतो का धारी आत्मा ही ध्यान करने में समर्थ है। इसलिये जीवन में तप की आराधना करनी चाहिये, श्रुत का अभ्यास करना चाहिये तथा व्रतो को धारण करना चाहिये। इस प्रकार नेमिचन्द्र मुनि ने अपनी इस कृति में जैन-दर्शन के सभी प्रमुख तत्वो का कथन कर दिया है।

आचार्य पद्मनन्दि

पद्मनन्दि नाम के 9 से भी अधिक आचार्य एव भट्टारक हो गये हैं जिनका उल्लेख विभिन्न ग्रन्थो, शिलालेखो एव मूर्तिलेखो में मिलता है। लेकिन वीरनन्दि के प्रशिष्य एव बालनन्दि के शिष्य आचार्य पद्मनन्दि उन सबसे भिन्न हैं। ये राजस्थानी विद्वान् थे और बारा नगर इनका प्रमुख साहित्यिक केन्द्र था। पद्मनन्दि ने अपने प्रमुख ग्रथ जम्बूद्दीवपण्णत्ती मे बारा नगर का विस्तृत वर्णन किया है। वह नगर उस समय पुष्करणी बावडी, सुन्दर भवनों, नानाजनो से सकीर्ण और धन्यधान्य से समाकुल, जिन मन्दिरो से विभूषित तथा सम्यक्दृष्टिजनो और मुनि-गणों के समूहो से मडित था। पद्मनन्दि के समय बारा नगर का शक्तिभूपाल शासक था। वह राजा शील-सम्पन्न, अनवरत दानशील, शासन वत्सल, धीर, नानागुण कलित, नरपति सपूजित तथा कलाकुशल एवं नरोत्तम था। राजपूताने के इतिहास में गुहिलोत वशी राजा नरवाहन के पुत्र शालिवाहन के उत्तराधिकारी शक्तिकुमार का उल्लेख मिलता है। प नाथूराम प्रेमी ने बारा की भट्टारक गादी के आधार पर पद्मनन्दि का समय विक्रम सवत् 1100 के लगभग माना है।

पद्मनन्दि प्राकृत भाषा के उद्भट विद्वान् थे। जैन-दर्शन तथा तीनो लोको की स्थिति का उन्हें अच्छा ज्ञान प्राप्त था। अपने समय के वे प्रभावशाली आचार्य एव भट्टारक थे तथा अनेक शिष्य-प्रशिष्यो के स्वामी थे। उस समय प्राकृत के पठन-पाठन का अच्छा प्रचार था। राजस्थान एव मालवा उनकी गतिविधियों का प्रमुख केन्द्र था। पद्मनन्दि की प्राकृत भाषा की दो कृतिया उपलब्ध होती हैं जिनमें एक, जम्बूदीवपण्णत्ती, तथा दूसरी धम्मरसायण है।

जम्बूदीवपण्णत्ती, एक विशालकाय कृति है जिसमें 2427 गाथाए है जो 93 अधिकारो मे विभक्त हैं। ग्रथ का विषय मध्यलोक के मध्यवर्ती जम्बूद्वीप का विस्तृत वर्णन है और वह वर्णन जम्बूद्वीप के भरत, ऐरावत, महाविदेह क्षेत्रो, हिमवान आदि पर्वतो, गगा सिन्ध्वादि नदियो, पद्म महापद्म आदि सरोवरो, लवणादि समुद्रो, काल के उत्सर्पिणी अवसर्पिणी आदि भेद प्रभेदो तथा उनसे होने वाले काल परिवर्तनो तथा ज्योतिष पटलो से सबधित है। वास्तव में यह ग्रथ प्राचीन भूगोल खगोल का अच्छा वर्णन प्रस्तुत करता है।

आचार्य पद्मनन्दि की दूसरी रचना धम्मरसायण है जिसमें 193 गाथायें हैं। भाषा एव शैली की दृष्टि से यह ग्रथ अत्यधिक सरल एव सरस है। इसमें धर्म को ही परम रसायण माना गया है। यही वह औषधि है जिसके सेवन से जन्म-मरण एव दुख का नाश होता है। धर्म की महिमा बतलाते हुए ग्रथ मे कहा है कि धर्म ही त्रिलोकबन्धु है तथा तीन लोको में धर्म ही एक मात्र शरण है। धर्म के पान से यह मनुष्य तीनो लोको का पार कर सकता है।

धम्मो तिलोयबन्ध धम्मो सरण हवे तिहुयणस्स।
धम्मेण पूयणीओ, होइ णरो सव्वलोयस्स ॥

भट्टारक जिनचन्द्र

भट्टारक शुभचन्द्र के शिष्य भट्टारक जिनचन्द्र 16 वीं शताब्दी के प्रसिद्ध दि. जैन सन्त थे। इन्होने सारे राजस्थान में विहार करके जैन-साहित्य एव संस्कृति के

प्रचार-प्रसार में महत्वपूर्ण योगदान दिया था। मूलाचार की एक प्रशस्ति में भट्टारक जिनचन्द्र की निम्न शब्दो में प्रशसा की गई है :—

तदीयपटाम्बरभानुमाली- क्षमादिनानागुणरत्नशाली ।
भटटारक—श्रीजिनचन्द्रनामा सैद्धान्तिकाना भुवि योऽस्ति सीमा ।

जिनचन्द्र की साहित्य के प्रति अपूर्व श्रद्धा थी। वे प्राचीन ग्रन्थो की नयी-नयी प्रतिया लिखवा कर शास्त्र-भण्डारो में विराजमान करवाते थे तथा जनता को प्राचीन ग्रन्थो के सरक्षण की प्रेरणा देते थे। प मेघावी उनका एक प्रमुख शिष्य था जो सस्कृत का प्रकाण्ड विद्वान् था। उसने अपने गुरु की प्रशंसा करते हुए लिखा है कि जिनचन्द्र का जन्म समुद्र मे से चन्द्रमा के जन्म के समान हुआ था। वे अपने समय के सभी जैन सन्तो के अग्रणी थे। वे स्याद्वाद रूपी आकाश के हार थे तथा अपने प्रवचनो से सब श्रोताओ के हृदयो को प्रसन्न करने वाले थे। वे षट्दर्शनो के निष्णात विद्वान् थे।

भ जिनचन्द्र की अब तक जो दो कृतिया उपलब्ध हुई है उनमें एक सस्कृत एव एक प्राकृत की रचना है। जिन चतुर्विशति स्तोत्र सस्कृत की रचना है तथा सिद्धान्तसार प्राकृत भाषा मे निबद्ध है। सिद्धान्तसार मे 79 गाथाए है। इनमें जीव समास, गुणस्थान, सज्ञा, पर्याप्ति, मरण एव मार्गणाओ का वर्णन किया गया है। इसकी 78 वी गाथा में भट्टारक जिनचन्द्र ने अपने नाम का उल्लेख किया है।

प चैनसुखदास न्यायतीर्थ

20 वी शदी के विद्वानो में प चैनसुखदास न्यायतीर्थ का नाम विशेषत उल्लेखनीय है। इनका जन्म 22 जनवरी सन् 1899 में भादवा ग्राम में हुआ तथा मृत्यु जयपुर नगर में 26 जनवरी सन् 1969 म हुई। पडित जी प्राकृत, सस्कृत एव हिन्दी के प्रकाण्ड विद्वान् थे। वे कवि थे, लेखक थे तथा जैन-दर्शन के प्रकाण्ड व्याख्याता थे। इनकी प्रमुख रचनाओं मे जैन दर्शनसार, भावना-विवेक, पावन-प्रवाह के नाम उल्लेखनीय हैं। अर्हत् प्रवचन इनकी सम्पादित कृति है जिसमे विभिन्न प्राकृत-ग्रथो मे से जीवन को स्पर्श करने वाली एव जनोपयोगी 500 से भी अधिक गाथाओ का सकलन किया गया है। इसमें जीव और आत्मा, कर्म, गुण-स्थान, सम्यक्दर्शन, भाव, मन-इन्द्रियो कषाय विजय, श्रावक, आत्म-प्रशसा, परनिन्दा, शील सगति, भक्ति, धर्म, वैराग्य, श्रमण, तप, शुद्धोपयोगी आत्मा आदि विभिन्न विषयो का अच्छा वर्णन हुआ है। पडित जी का यह सकलन आत्मोदय ग्रथमाला जयपुर से सन् 1962 में प्रकाशित हो चुका है।

डा. नेमिचन्द्र शास्त्री

डा. नेमिचन्द्र शास्त्री का अभी डेढ वर्ष पूर्व ही 10 जनवरी, 1974 को स्वर्गवास हुआ तथा वे अपने जीवन के यशस्वी 59 वर्ष पूर्ण करके चिरनिन्द्रा में समा गये। वे राजस्थानी विद्वान् थे और धौलपुर में पौष कृष्णा 12 को सवत् 1972 को इनका जन्म हुआ था। वे प्राच्य विद्याओ के प्रकाण्ड विद्वान् थे तथा प्राकृत, अपभ्रश, सस्कृत एव हिन्दी भाषा पर इनका पूर्ण अधिकार था। इनकी अब तक 37 से भी अधिक रचनायें प्रकाशित हो चुकी हैं।

शास्त्री जी प्राकृत भाषा के विशेष प्रेमी थे। इन्होने अपनी पी.एच डी की उपाधि "हरिभद्र के प्राकृत कथा-साहित्य का आलोचनात्मक अध्ययन" विषय पर प्राप्त की थी। इसके पश्चात् वे प्राकृत के प्रचार-प्रसार में लग गये और आरा जैन कॉलेज मे शिक्षण कार्य करते

हुए उन्होने हजारो छात्रो को प्राकृत भाषा का बोध ही नही कराया किन्तु पचासों विद्यार्थियों को प्राकृत में निष्णात भी बना दिया। शास्त्रीजी ने प्राकृत भाषा और साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास लिखकर प्राकृत-जगत् में एक महान् कार्य किया। यही नही 'अभिनव प्राकृत व्याकरण' लिख कर प्राकृत प्रेमियों के लिये उसके पठन-पाठन को सरल बना दिया। शास्त्री जी न 'प्राकृत-प्रबोध' के माध्यम से प्राकृत-पाठो का सुन्दर संकलन उपस्थित किया डा शास्त्री जी ने अपने विद्यार्थियो की सुविधा के लिये 'पाइय-पज्ज-सग्रहो' एव 'पाइय-गज्ज- सग्रहों इस प्रकार प्राकृत गद्य और पद्य क अलग-अलग सकलन निकाले जिससे विहार में प्राकृतभाषा के पठन-पाठन को अत्यधिक लोकप्रियता प्राप्त हुई।

जीवन के अन्तिम वर्ष में 'तीर्थंकर महावीर एव उनकी आचार्य-परम्परा' के चार भागो में जैनाचार्यों द्वारा निबद्ध साहित्य की अत्यधिक सुन्दर रूपरेखा प्रस्तुत की। इस महान् कृति में प्राकृत भाषा के आचार्यों एव उनकी कृतियों का विशद विवेचन किया गया है। वास्तव में गत सैकडो वर्षों में राजस्थान में प्राकृत भाषा का इतना प्रकाण्ड विद्वान् तथा प्राकृत साहित्य का अनन्य भक्त नही हुआ। एसे विद्वान् से सारा साहित्य-जगत गौरवान्वित है

उक्त आचार्यों, मुनियो एव विद्वानो के अतिरिक्त राजस्थान मे और भी पचासों साहित्य-सेवी हो गये हैं। जिन्होने जन्मभर प्राकृत-साहित्य की सेवा ही नहीं की किंतु उस भाषा क ग्रथो का हिन्दी एव सस्कृत में टीकायें करक जन साधारण को उनक पठन-पाठन एवं स्वाध्याय की पूर्ण सुविधा प्रदान की। ऐसे विद्वानो में आचार्य अमृतचन्द्र, प. राजमल्ल, महा पडित टोडरमल, प जयचन्द छाबड़ा जैसे विद्वानो के नाम उल्लेखनीय हैं।

संस्कृत जैन साहित्य

संस्कृत साहित्य : विकास एवं प्रवृत्तियाँ 1.

—मुनि श्री नथमल

भगवान् महावीर के युग में सस्कृत पडितो की भाषा बन गई था। भाषा के आधार पर दो वर्ग स्थापित हो गये थे—एक वर्ग उन पडितो का था, जो सस्कृतविदो को ही तत्वद्रष्टा मानते थ और सस्कृत नही जानने वालो की वुद्धि पर अपना अधिकार किये हुए थे। दूसरा वर्ग उन लोगो का था, जो यह मानते थे कि सस्कृतविद् ही तत्व की व्याख्या कर सकते है।

भगवान् महावीर ने अनुभव किया कि सत्य को खोजने की क्षमता हर व्यक्ति मे है। उस पर भाषा का प्रतिबन्ध नही हो सकता। जिसका चित्त राग-द्वेष शून्य है, वह सस्कृतविद् न होने पर भी सत्य को उपलब्ध हो जाता है और जिसका चित्त राग-द्वेष शून्य नही होता है, वह संस्कृतविद् होने पर भी सत्य को उपलब्ध नही होता। सत्य और भाषा का गठबन्धन नही है—इस सिद्धात के प्रतिपादन के लिये भगवान् महावीर ने जनभाषा प्राकृत का सत्य-निरूपण का माध्यम बनाया।

भगवान् महावीर ने प्राकृत में उपदेश किया। उनके प्रमुख शिष्य गौतम आदि गणधरो ने उसका प्राकृत में ही गुफन किया। उनके निर्वाण की पचम शताब्दी तक धर्मोपदेश तथा ग्रथ-रचना मे प्राकृत का ही उपयोग होता रहा। निर्वाण की छठी शताब्दी मे फिर सस्कृत का स्वर गुजित हुआ। आर्य रक्षित[1] ने सस्कृत और प्राकृत दोनो को ऋषि भाषा कहा[2]। उनकी यह ध्वनि स्थानाग के स्वरमण्डल में भी प्रतिध्वनित हुई। उमास्वाति (स्वामी) ने मोक्ष-शास्त्र (तत्वार्थसूत्र) का सस्कृत में प्रणयन किया। उनका अस्तित्वकाल विक्रम की तीसरी से पाचवी शताब्दी के मध्य माना जाता है। जैन परम्परा में इसी कालावधि में सस्कृत युग प्रारम्भ हुआ। जैन आचार्यों ने प्राकृत को तिलाञ्जलि नही दी। प्राकृत में ग्रथ-रचना का कार्य अनवरत चलता रहा। भगवन् महावीर ने लोक-भाषा के प्रति जो दृष्टिकोण निर्मित किया था, उसे विस्मृत नही किया गया और संस्कृत के अध्येताओ में जो पाडित्य-प्रदर्शन की भावना थी, उसे भी स्मृति में रखा गया। फिर भी दर्शन-युग की स्थापना के काल मे जैन दर्शन को प्रतिष्ठित करने की दृष्टि से सस्कृत की अनिवार्यता अनुभव की। सिद्धर्षि ने जैन लेखको की इस अनुभूति को स्पष्ट अभि व्यक्ति दी है। उन्होने लिखा है —

> सस्कृता प्राकृता चेति, भाषे प्राधान्यमर्हत ।
> तत्रापि सस्कृता तावद्, दुर्विदग्ध हृदि स्थिता ॥
> बालानामपि सद्बोध-कारिणी कर्णपेशला ।
> तथापि प्राकृता भाषा, न तेषामभिभाषते ॥
> उपाये सति कर्त्तव्य, सर्वेषा चित्तरञ्जनम् ।
> अतस्तदनुरोधेन, सस्कृतेय करिष्यते ॥

---

1. आर्यरक्षित का जन्म काल ईस्वी पूर्व 4 (वि स 52), दीक्षा ई स. 18 (वि सं. 74), युगप्रधान ई. स. 58 (वि स. 114), स्वर्गवास ई. स 71 (वि सं 127)।

2. अणुओग द्दाराइं, स्वरमण्डल·
   सक्कय पागयं चेव, पसत्थ इसिभासिय ।

"सस्कृत और प्राकृत—ये दो प्रधान भाषाए हैं । सस्कृत दुर्विदग्ध—पडितमानी जनों के हृदय में वसी हुई हैं । प्राकृत भाषा जन साधारण को प्रकाश देने वाली और श्रुति-मधुर है, फिर भी उन्हें वह अच्छी नही लगती । मेरे सामने सस्कृतप्रिय जनो के चित्तरजन का उपाय है । इसलिये उनके अनुरोध मे मैं प्रस्तुत कथा को सस्कृत भाषा में लिख रहा हू ।"

गुप्त साम्राज्य-काल मे संस्कृत का प्रभाव बहुत बढ गया । जैन और बौद्ध परम्पराओ में भी सस्कृत भाषा प्रमुख हो गई ।

उत्तर भारत में गुजरात और राजस्थान दोनो जैन धर्म के प्रमुख केन्द्र रहे । इन दोनो में जैन मुनि स्थान-स्थान पर विहार करते थे । उनकी साहित्य-साधना भी प्रचुर मात्रा मे हुई । राजस्थान की जैन परम्परा में सस्कृत-साहित्य के प्रथम निर्माता हरिभद्रसूरि है । उनका अस्तित्व-काल विक्रम की आठवी नौवी शताब्दी (757-857) हैं । उन्हे प्राकृत और सस्कृत दोनो भाषाओ पर समान अधिकार प्राप्त था । उनकी लेखनी दोनो भाषाओ पर समान रूप से चली । उनकी प्राकृत रचनाए जितनी विपुल सख्या मे और जितनी महत्वपूर्ण है, उतनी ही महत्वपूर्ण और उतनी ही विपुल सख्या में उनकी सस्कृत रचनाए हैं । उन्होंने धर्म, योग, दर्शन, न्याय, अनेकान्त, आचार, अहिंसा आदि अनेक विषयो पर लिखा । आगम सूत्रों पर अनेक विशाल व्याख्या ग्रन्थ लिखे ।

जैन दर्शन ने सत्य की व्याख्या नय-पद्धति से की । तीर्थंकर का कोई भी वचन नय-शून्य नही है—इस उक्ति की प्रतिध्वनि यह है कि कोई भी वचन निरपेक्ष नही है। प्रत्येक वचन को नयदृष्टि से ही समझा जा सकता है। सिद्धसेन दिवाकर और समन्तभद्र ने अनेकान्त और नयवाद को दार्शनिक धरातल पर प्रस्फुटित किया । उसके पल्लवनकारो में हरिभद्रसूरि का एक प्रमुख व्यक्तित्व है । उन्होंने सस्कृत साहित्य को कल्पना और अलकार की कसौटी से कसे हुए कवित्व तथा तर्कवाद और निराकरण प्रधान शैली से परिपुष्ट तार्किकता से ऊपर उठाकर स्वतन्त्र चिन्तन और समन्वय की भूमिका पर प्रतिष्ठित किया। उनके लोकतत्व-निर्णय नामक ग्रन्थ में स्वतन्त्र चिन्तन की ऐसी चिरतन व्याख्या हुई है, जिसे कालातीत कहा जा सकता है । उन्होने लिखा है :—

मातृमोदकवद् बाला, ये गृण्हन्त्यविचारितम् ।
ते पश्चात् परितप्यन्ते, सुवर्णग्राहको यथा ॥[1]

मा के द्वारा दिये हुए मोदक को विना किसी विचार के ले लेने वाले बालक की भांति विना विचार किए दूसरे के विचार को स्वीकार करने वाला वैसे ही पश्चात्ताप करता है, जैसे विना परीक्षा किए स्वर्ण को खरीदने वाला पछताता है । सुनने के लिये कान है । विचारणा के लिये वाणी और बुद्धि है । फिर भी जो व्यक्ति श्रुत विषय पर चिन्तन नही करता, वह कर्तव्य को कैसे प्राप्त हो सकता है :—

श्रोतव्ये च कृतौ कर्णौ, वाग्बुद्धिश्च विचारणे ।
यः श्रुतं न विचारेत, स कार्यं विन्दते कथम् ? ॥[2]

---

1. लोकतत्वनिर्णय, 19   2. लोकतत्वनिर्णय, 20

आगम-युग में श्रद्धा पर बहुत बल दिया गया । ईश्वरीय आदेशों और आप्त-वचनों पर संदेह नही किया जा सकता । इस मान्यता ने चिन्तन की धारा को क्षीण बना दिया था । अधिकांश लोग किसी व्यक्ति की वाणी या ग्रन्थ को बिना किसी चिन्तन के स्वीकार कर लेते थे । इस परम्परा ने रूढिवाद की जडें बहुत सुदृढ बना दी थीं । उन्हें तोडना श्रम-साध्य था । वैसे वातावरण में दूसरो पर भरोसा कर चलने को बुरा कहने वाले के लिये अच्छा नहीं था । फिर भी कहा गया :—

> हठो हठे यद्वदभिप्लुत. स्यात्, नौर्नावि बद्धा च यथा समुद्रे ।
> तथा पर-प्रत्ययमात्रदक्ष', लोक. प्रमादाम्भसि बाम्भ्रमीति ॥[1]

'जो व्यक्ति दूसरों की वाणी का अनुसरण करने में ही दक्ष है, वह प्रमाद के जल म वैसे ही भ्रमण करता है, जैसे जलकुंभी का पौधा दूसरे पौधे के पीछे-पीछे बहता है और जैसे नाव से बंधी हुई नाव उसके पीछे-पीछे चलती है ।'

हरिभद्रसूरि को समन्वय का पुरोधा और उनकी रचनाओं को समन्वय की संहिता कहा जा सकता है। जब सम्प्रदायो मे अपने-अपने इष्टदेव के नाम की महिमा गाई जा रही थी, उस समय यह स्वर कितना महत्वपूर्ण था —

> यस्य निखिलाश्च दोषा न सन्ति सर्वे गुणाश्च विद्यन्ते ।
> ब्रह् मा वा विष्णुर्वा हरो जिनो वा नमस्तस्मै ॥[2]

'जिसके समस्त दोष नष्ट हो चुके हैं, सब गुण प्रकट हो गये हैं, उसे मेरा नमस्कार है, फिर वह ब्रह् मा हो या विष्णु, महादेव हो या जिन ।'

हरिभद्रसूरि ने योग की विविध परम्पराओ का समन्वय कर जैन योग-पद्धति को नया रूप प्रदान किया था । 'योगविंशिका' प्राकृत मे लिखित है। संस्कृत में उनकी दो महत्वपूर्ण कृतिया है 'योगदृष्टिसमुच्चय' और 'योगविन्दु'। उनमे जैन योग और पतजलि की योग-पद्धति का तुलनात्मक अध्ययन बहुत सूक्ष्म मति से किया गया है। अनेकान्त-दृष्टि प्राप्त होने पर सांप्रदायिक अभिनिवेश समाप्त हो जाता है ।

विक्रम की आठवीं शती में सस्कृत-साहित्य की जो धारा प्रवाहित हुई, वह वर्तमान शती तक अविच्छिन्न रूप में प्रवाहित है। वह कभी विशाल हुई है और कभी क्षीण, पर उसका अस्तित्व निरन्तरित रहा है । जैन परम्परा के सस्कृत-साहित्य पर अभी कोई व्यवस्थित कार्य नही हुआ है । लेखक, लेखनस्थान, लेखन-काल ये सब अभी निर्णय की प्रतीक्षा में है । अब तक 'सस्कृत -साहित्य का इतिहास' इस शीर्षक से जितने प्रबन्ध लिखे गए है, वे या तो जैन परम्परा के सस्कृत-साहित्य का स्पर्श नही करते या दो चार प्रसिद्ध ग्रन्थो का विवरण प्रस्तुत कर विषय को सम्पन्न कर देते है । जैन विद्वान् भी इस कार्य के प्रति उदासीन रहे है । इन दिनों कुछ ग्रन्थ प्रकाशित हुए हैं, पर वे अपेक्षा के अनुरूप शोधपूर्ण और वैज्ञानिक पद्धति से लिखित नहीं है । मै इस अपेक्षा को इसलिये प्रस्तुत कर रहा हू कि जैन परम्परा के 'संस्कृत साहित्य का इतिहास' इस विषय का एक महाग्रन्थ आधुनिक शैली में तैयार किया जाए । मैं नहीं मानता कि इस लघुकाय निबन्ध में मै राजस्थान के जैन लेखकों की सभी सस्कृत रचनाओ के साथ न्याय कर सकूगा ।

---

1. लोकतत्वनिर्णय, 14   2. लोकतत्वनिर्णय, 20

हरिभद्रसूरि की रचनाओ के वाद सिद्धर्षि की महान् कृति 'उपमितिभवप्रपंच' कथा है। यह वि. स 906 (ई स 962) मे लिखी गई थी। शैली की दृष्टि से यह एक अपूर्व ग्रन्थ है। इसमे काल्पनिक पात्रो के माध्यम से धर्म के विराट् स्वरूप को रूपायित किया गया है। डा. हीरालाल जैन ने लिखा है—'इसे पढते हुए अग्रेजी की जान वनयन कृत 'पिल्ग्रिम्स प्रोग्रेस' का स्मरण हो आता है, जिसमे रूपक की रीति से धर्मवृद्धि और उसमे आने वाली विघ्नवाधाओ की कथा कही गई है[1]। सिद्धर्षि ने उपदेशमाला की टीका लिखी, कुछ अन्य ग्रथ भी लिखे। पर मैं केवल उन्ही ग्रन्थो का नामोल्लेख करना अपेक्षित समझता हू, जिनका विधा और वर्ण्य विषय की दृष्टि से वैशिष्ट्य है।

विधा और प्रेरक तत्व

देश, काल, मान्यताए, परिस्थितिया, लोकमानस, लोक-कल्याण, जनप्रतिवोध, शिक्षा और उद्देश्य ये लेखन के प्रेरक तत्व होते है। लेखन की विधाए प्रेरक तत्वो के आधार पर बनती है। जैन लेखको ने अनेक प्रेरणाओ से सस्कृत साहित्य लिखा और अनेक विधाओ में लिखा। धर्म प्रचार के उद्देश्य से धार्मिक और दार्शनिक ग्रन्थ लिखे गए। अपने अभ्युपगम की स्थापना और प्रतिपक्ष-निरसन के लिये तर्क-प्रधान न्यायशास्त्रो की रचना हुई। जनप्रतिवोध और शिक्षा के उद्देश्य से कथा-ग्रन्थो का प्रणयन हुआ। लोक-कल्याण की दृष्टि से आयुर्वेद, ज्योतिष के ग्रन्थ निर्मित हुए। देश, काल और लोकमानस को ध्यान में रखकर जैन लेखको ने प्राकृत के साथ-साथ सस्कृत भाषा को भी महत्व दिया। प्राकृत युग (विक्रम की तीसरी शती तक) में जैन लेखको ने केवल प्राकृत में लिखा। प्राकृत-सस्कृत-मिश्रित युग (विक्रम की चौथी शती से आठवी शती के पूर्वार्द्ध तक) में अधिकांश रचनाए प्राकृत में हुई और कुछ-कुछ सस्कृत में भी। विक्रम की पाचवी से सातवी शती के मध्य लिखित आगम-चूर्णियो में मिश्रित भाषा का प्रयोग मिलता है—प्राकृत के साथ-साथ सस्कृत के वाक्य भी प्रयुक्त हैं। आठवी शती के उत्तरार्ध मे हरिभद्रसूरि ने प्रथम बार आगम की व्याख्या सस्कृत मे लिखी। विक्रम की ग्यारहवी शती के उत्तरवर्ती सस्कृत-प्राकृत-मिश्रित युग मे आगमो की अधिकाश व्याख्याए सस्कृत मे ही लिखी गई। अन्य साहित्य भी अधिकमात्रा मे सस्कृत में ही लिखा गया और अनेक विधाओ मे लिखा गया। गुजरात, मालवा (मध्यप्रदेश) और दक्षिण भारत में लिखा गया और राजस्थान मे भी लिखा गया।

आयुर्वेद

आयुर्वेद का सम्बन्ध जीवन से है। जीवन का सबन्ध स्वास्थ्य से है। स्वास्थ्य का सबन्ध हित-मित आहार से है। हित-मित आहार करते हुए भी यदि रोग उत्पन्न हो जाय तो चिकित्सा की अपेक्षा होती है। जैन विद्वानो ने इस अपेक्षा की भी यथासम्भव पूर्ति की है। उन्होने राजस्थानी में आयुर्वेद के विषय मे प्रचुर साहित्य लिखा। कुछ ग्रथ सस्कृत में भी लिखे। हर्षकीर्त्तिसूरि (विक्रम की 17 वी शती) का योगचिन्तामणि और यति हस्तिरुचि (विक्रम की 18वी शती) का वैद्य वल्लभ दोनो प्रसिद्ध ग्रन्थ है। ये चिकित्सा-क्षेत्र में वहुत प्रचलित रहे हैं। इन पर अनेक व्याख्याए लिखी गई।

---

1. भारतीय सस्कृति मे जैन धर्म का योगदान, पृ 174

ज्योतिष

विक्रम की आठवी शती से जैन मुनियो और यतियों ने ज्योतिष के ग्रन्थ लिखने शुरू किए। यह क्रम 19वी शती तक चला। नरचन्द्रसूरि ने वि. स 1280 में ज्योतिस्सार (नारचन्द्र ज्योतिष) नामक ग्रन्थ की रचना की।

उपाध्याय नरचन्द्र ने विक्रम की चौदहवी शती में बेडा जातकवृत्ति, प्रश्नशतक, प्रश्न चतुर्विशतिका आदि अनेक ग्रन्थ लिखे। डा नेमिचन्द्र शास्त्री ने इनके ग्रन्थो का मूल्यांकन करते हुए लिखा है—'बेडा जातकवृत्ति मे लग्न और चन्द्रमा से ही समस्त फलो का विचार किया गया है। यह जातक-ग्रन्थ अत्यन्त उपयोगी है'। प्रश्नचतुर्विशतिका के प्रारम्भ में ज्योतिष का महत्वपूर्ण गणित लिखा है। ग्रन्थ अत्यन्त गूढ और रहस्यपूर्ण है।[1]

उपाध्याय मेघविजय ने विक्रमी के अठारहवी शती के पूर्वार्घ मे वर्ष प्रबोध, रमलशास्त्र, हस्त-संजीवन आदि अनेक ग्रन्थ लिखे। डॉ नेमिचद्र शास्त्री के अनुसार इनके फलित ग्रन्थो को देखने से सहिता और सामुद्रिक शास्त्र से बंधी प्रकाण्ड विद्वत्ता का पता सहज में लग जाता है।[2]

मध्य युग में जैन उपाश्रय शिक्षा, चिकित्सा और ज्योतिष के केन्द्र बन गए थे। जैसे-जैसे जन-सम्पर्क बढा वैसे-वैसे लोक-कल्याणकारी प्रवृत्तियां और तद्‌विषयक साहित्य की मात्रा बढी।

स्तोत्र

समूचा उत्तर भारत भक्ति की लहर से आप्लावित हो रहा था। ईश्वर और गुरु की स्तुति ही धर्म की प्रधान अग बन रही थी। जैन धर्म भी उस धारा से अप्रभावित नही था। इन बारह सौ वर्षो में विपुल मात्रा में स्तोत्र रचे गए। स्तोत्र के पाठ की प्रवृत्ति भी विकसित की गई। सस्कृत नही जानने वाले भी स्तोत्र का पाठ करते थे। इसके साथ श्रद्धा और विघ्न-विलय की भावना दोनो जुडी हुई थी।

स्तोत्रो के साथ मन्त्र-ग्रन्थो का भी निर्माण हुआ। ऐहिक सिद्धि के लिए मन्त्र, यन्त्र और तन्त्र तीनो का प्रयोग होता था। फलत तीनो विषयो पर अनेक ग्रन्थो की रचना हुई।

यात्रा ग्रन्थ

जिनप्रभसूरि ने वि सं 1389 (ई सं 1332) म विविध-तीर्थ-कल्प नामक ग्रन्थ का निर्माण किया। तीर्थ-यात्रा में जो देखा, उसका सजीव वर्णन हुआ है। उसमे भक्ति, इतिहास और चरित तीनो एक साथ मिलते है।

महाकाव्य और काव्य

जन-साधारण में सस्कृत का ज्ञान नही था। फिर भी उसमें सस्कृत और सस्कृत के प्रति सम्मान का भाव था। कुछ लोग सहृदय थे, वे काव्य के मर्म को समझते थे। काव्य-

---

1. भारतीय ज्योतिष, पृ 102, सस्करण छठा।
2. भारतीय ज्योतिष, पृ 109, सस्करण छठा।

शक्ति दुर्लभ मानी जाती थी। राजस्थान के जैन कवियो ने केवल काव्यों की ही रचना नहीं की, उनमे कुछ प्रयोग भी किए। उदाहरण के लिए महोपाध्याय समयसुन्दर की अष्टलक्षी, जिनप्रभसूरि के द्व्याश्रय काव्य और उपाध्याय मेघविजय के सप्तसन्धान काव्य को प्रस्तुत किया जा सकता है।

अष्टलक्षी वि. सं. 1649 की रचना है। उसमें 'राजा नो ददते सौख्यम्' इन आठ अक्षरों के आठ लाख अर्थ किए गए है।

महाकवि धनजय (ग्यारहवीं शती) का द्विसन्धान काव्य तथा आचार्य हेमचन्द्र का द्व्याश्रय काव्य प्रतिष्ठित हो चुका था। विक्रम की चौदहवीं शती मे जिनप्रभसूरि ने श्रेणिक द्व्याश्रय काव्य लिखा। उसमे कातन्त्र व्याकरण की दुर्गसिंह-कृत वृत्ति के उदाहरण और मगधपति श्रेणिक का जीवन चरित—दोनो एक साथ चलते है।

विक्रम की अठारहवीं शती मे उपाध्याय मेघविजय ने सप्तसधान काव्य का निर्माण किया। उस में ऋषभ, शान्तिनाथ, अरिष्टनेमि, पार्श्व और महावीर इन पाच तीर्थंकरों तथा राम और कृष्ण के चरित निबद्ध हैं।

विक्रम की तेरहवीं शती मे सोमप्रभाचार्य ने सूक्ति-मुक्तावली की रचना की। यह सुभाषित-सूक्त होने के साथ-साथ प्राजल भाषा, प्रसाद-गुण-सम्पन्न पदावली और कलात्मक कृति है। इनकी श्रृंगार-वैराग्य-तरगिणी भी एक महत्वपूर्ण कृति है।

सूक्ति-मुक्तावली का दूसरा नाम सिन्दूरप्रकर है। इस पर अनेक व्याख्याएं लिखी गईं। इसका अनुसरण कर कर्पूर प्रकर, कस्तूरी प्रकर, हिंगुल प्रकर आदि अनेक सूक्ति-ग्रन्थों का सृजन हुआ।

विक्रम की सातवीं शती तक जैन लेखक धर्म, दर्शन, न्याय, गणित, ज्योतिष, भूगोल खगोल, जीवन-चरित और कथा मुख्यत. इन विषयो पर ही लिखते रहे।

विक्रम की आठवीं शती से लेखन की धाराएं विकसित होने लगीं। उसमें सामाजिक-राजनैतिक परिवर्तन, साम्प्रदायिक प्रतिस्पर्धा और सघर्ष, लोक-संग्रह के प्रति झुकाव, जन शासन के अस्तित्व की सुरक्षा, शक्ति-प्रयोग, शक्ति-साधना, चमत्कार-प्रदर्शन, जनता को आकर्षित करने का प्रयत्न, बाह्याचार पर अतिरिक्त बल आदि अनेक कारण बने।

बौद्ध कवि अश्वघोष का बुद्धचरित ख्याति बहुत पा चुका था। महाकवि कालिदास, माघ और भारवि के काव्य प्रसिद्धि के शिखर पर थे। उस समय जैन कवियों में भी संस्कृत भाषा में काव्य लिखने की मनोवृत्ति विकसित हुई। राजस्थान के जैन लेखक भी इस प्रवृत्ति में पीछे नहीं रहे। महाकाव्यों की श्रृंखला में भी अनेक काव्यों की रचना हुई. उनमें भरत-बाहुबलि-महाकाव्य का उल्लेख अनिवार्य है।

जैनेतर ग्रन्थों पर टीकाएं

जैन आचार्यों और विद्वानों को उदारता का दृष्टिकोण विरासत मे प्राप्त था। उन्होंने उसका उपयोग साहित्य की दिशा में भी किया। जैन लेखकों ने बौद्ध और वैदिक साहित्य प अनेक व्याख्याएं लिखीं। राजस्थान के जैन लेखक इसमें अग्रणी रहे है। हरिभद्रसूरि बौद्ध विद्वान् दिङ्नाग (ईसा की पांचवीं शती) के न्याय-प्रवेश पर टिका लिखी। पार्श्वदे गणि (अपर नाम श्रीचन्द्रसूरि) ने विक्रम की बारहवीं शती में न्याय-प्रवेश पर पंजिका लिखी

बौद्ध आचार्य धर्मदास के विदग्धमुखमण्डन पर जिनप्रभसूरि ने एक व्याख्या लिखी । खरतर-गच्छीय जिनराजसूरि ने विक्रम की सतरहवी शती में नैषध-चरित पर टीका लिखी। विक्रम की पन्द्रहवी शती में वैराट के अंचल-गच्छीय श्रावक वाडव ने कुमार-सभव, मेघदूत, रघुवश, माघ आदि काव्यो पर अवचूरि विघा की व्याख्याए निर्मित की ।

सिंहावलोकन-

राजस्थान में सस्कृत की सरिता प्रवाहित हुई, उसमें जैन आचार्य आदि-स्रोत रहे हैं। ईसा की सातवी शती मे महाकवि माघ (भीनमाल प्रदेश) अपनी काव्य-शक्ति से राजस्थान की मरुधरा को अभिषिक्त कर रहे थे तो दूसरी ओर हरिभद्रसूरि (चित्तौड) अपनी बहुमुखी प्रतिभा से मरुधरा के कण-कण को प्राणवान् बना रहे थे । इसके उत्तरकाल में भी जैन लेखको की लेखनी सभी दिशाओ में अनवरत चली । वह आज भी गतिशील है । वर्तमान शती में राजस्थान में विहार करने वाले जैन आचार्यों, साधु-साध्वियो और लेखको ने अनेक ग्रन्थो, काव्यो, और महाकाव्यो की रचना की है। सस्कृत के अध्ययन-अध्यापन की प्रवृत्तिया भी प्रचलित है। प्राकृत, सस्कृत और अपभ्रंश आज प्रचलित भाषाएं नही है फिर भी ये बहुत समृद्ध भाषाए हैं। वर्तमान की भाषा का प्रयोग करते हुए भी इनका मूल्य विस्मृत न करना जैन परम्परा का यह चिरन्तन-सूत्र आज भी उसकी स्मृति में है। सस्कृत के विकास और उसकी प्रवृत्ति के पीछे भी वह सर्वत्र प्राणवान् रहा है ।

संस्कृत साहित्य एवं साहित्यकार: 2

—म॰ विनयसागर, साहित्य महोपाध्याय

भारतीय सस्कृत–साहित्य के सवर्धन एव सरक्षण मे जैन श्रमण-परम्परा ने अभूतपूर्व कार्य किया है। जैन श्रमण सार्वदेशीय विद्वान् एव भाषाविद् होते है। यह श्रमण–यतिवर्ग अपने धर्म–आचार परम्परा के अनुसार सर्वदा विचरणशील रहा करता है। पादभ्रमण करता हुआ एक स्थान से दूसरे स्थान, एक प्रदेश से दूसरे प्रदेश अर्थात् सारे भारत मे प्रवास करता रहता है। इस वर्ग के लिये एक प्रदेश विशेष का बन्धन नही होता है। प्रवासकाल में इन श्रमणो-मुनियो के मुख्यतया दो कार्य होते है–1 अध्ययन अध्यापन के साथ स्वतन्त्र लेखन, ग्रन्थनिर्माण और प्राचीन ग्रन्थो की प्रतिलिपिया करना। 2 लोकभाषा में धर्म–प्रचार करना, उपदेश देकर शास्त्र लिखवाना, ज्ञान भण्डार स्थापित करवाना, मन्दिर-मूर्तियो का निर्माण, प्रतिष्ठा, प्राचीन मन्दिरो का जीर्णोद्धार करवाना और सघ के साथ तीर्थयात्रा करना। इन कार्य-कलापो के द्वारा इस वर्ग ने सरस्वती की उपासना के साथ-साथ भारतीय स्थापत्य कला, मूर्तिकला, चित्रकला का भी सवर्धन और रक्षण किया है, जो आज भी प्रत्यक्ष है।

इस राजस्थान प्रदेश–मरुधरा ने ऐसे सहस्रो नर-रत्न श्रमणो को पैदा किया है जिन्होने अपने कृतित्व के माध्यम से इस क्षरदेह को अक्षरत्व-अमरत्व प्रदान करने मे सफलता प्राप्त की है। राजस्थान मे उत्पन्न हुए जैन श्वेताम्बर सस्कृत-साहित्यकारो का एवं राजस्थान में विचरण करते हुये श्रमण लेखको का यदि परिचय व्यक्तित्व एवं कृतित्व के साथ लिखा जाय तो कई ग्रन्थ लिखे जा सकते है, जो इस निबन्ध मे समव नही है। अतएव निबन्ध को दो विभागो में विभक्त किया जा रहा है–1 राजस्थान के जैन सस्कृत-साहित्यकार, और 2 राजस्थान मे रचित सस्कृत-साहित्य की सूची।

1. राजस्थान के जैन सस्कृत साहित्यकार

अन्न साक्ष्य प्रमाणो के द्वारा अथवा उनके द्वारा रचित ग्रन्थो की भाषा के आलोक मे जिनकी जन्मभूमि-निवास या साहित्यिक कार्यक्षेत्र राजस्थान प्रदेश निश्चित है और जिन्होने देववाणी में रचनायें की है उनमें से प्रमुख-प्रमुख कतिपय साहित्यकारो का सामान्य परिचय इस विभाग मे दे रहा हूं।

1 हरिभद्रसूरि—समय 757 से 857। चित्रकूट (चित्तौड) के समर्थ विद्वान् एव राजपुरोहित। जाति ब्राह्मण। साध्वी याकिनी महत्तरा से प्रतिबोधित होकर जिनदत्तसूरि के पास दीक्षा। भवविरहाक विशेषण या उपनाम। महान् सिद्धान्तकार, दार्शनिक, विचारक, महाकवि एवं सर्वश्रेष्ठ टीकाकार। श्वेताम्बर परम्परा इनको आप्तपुरुष और इनके वचनो को आप्त-वचनो की कोटि में स्थान देती आई है। परम्परानुसार इनके द्वारा रचित 1444 ग्रन्थ माने जाते हैं। वर्तमान मे प्राप्त ग्रन्थो में से कतिपय विशिष्ट ग्रन्थ निम्न है—

अनुयोगद्वार सूत्र टीका, आवश्यक सूत्र वृहद्वृत्ति, आवश्यक निर्युक्ति टीका, जम्बूद्वीप-प्रज्ञप्ति सूत्र टीका, जीवाभिगम सूत्र लघुवृत्ति, तत्वार्थसूत्र टीका, दशवैकालिक सूत्र टीका, नन्दीसूत्र टीका, पिण्डनिर्युक्ति टीका, प्रज्ञापना सूत्र प्रदेशव्याख्या, ललितविस्तारा-चैत्यवन्दन सूत्र वृत्ति आदि आगमिक टीका ग्रन्थ।

अनेकान्तवाद प्रवेश, अनेकान्तजयपताका, दिङ्नागकृत न्यायप्रवेश सूत्र टीका, न्याय-विनिश्चय, न्यायावतार टीका, लोकतत्वनिर्णय, शास्त्रवार्तासमुच्चय, सर्वज्ञसिद्धिप्रकरण आदि न्याय-दर्शन के मौलिक एव टीका ग्रन्थ।

योगदृष्टिसमुच्चय, योगविन्दु, योगशतक, योगविंशिका आदि योगशास्त्र के ग्रन्थ।

उपदेशपद, पञ्चाशक आदि प्रकरण ग्रन्थ और समराइच्चकहा आदि काव्य प्राकृत भाषा मे है।

2 सिद्धर्षिसूरि—समय 10वी शती। निर्वृत्तिकुलीय श्री दुर्गस्वामी के शिष्य। दुर्गस्वामी का स्वर्गवास भिन्नमाल में हुआ था। दीक्षा दाता गर्गस्वामी। आगम, न्याय-दर्शन और सिद्धान्तो के मूर्धन्य विद्वान्। निम्न रचनायें प्राप्त है।

उपमितिभवप्रपञ्चकथा र. स 962 भिन्नमाल, चन्द्रकेवली चरित्र र. सं. 974, उपदेशमाला वृहद्वृत्ति एव लघुवृत्ति, न्यायावतार टीका।

उपमितिभवप्रपञ्च कथा एक विशाल एव श्रेष्ठतम महारूपक ग्रन्थ है। यह समस्त भारतीय भाषाओ मे ही नही, अपितु विश्व-साहित्य में प्राचीनतम और मौलिक रूपक उपन्यास है।

3. जिनेश्वरसूरि[1]—समय लगभग 1050 से 1110। मध्यदेश निवासी कृष्ण ब्राह्मण के पुत्र। दीक्षा से पूर्व नाम श्रीधर। धारानगरी में दीक्षा। गुरु वर्धमानसूरि। खरतरगच्छ के सस्थापक प्रथम आचार्य। स 1066-1078 के मध्य मे अणहिलपुरपत्तन मे महाराजा दुर्लभराज की अध्यक्षता में चैत्यवासी सूराचार्य प्रभृति प्रमुख आचार्यों के साथ शास्त्रार्थ। शास्त्रार्थ मे विजय और खरतर विरुद प्राप्ति। कार्य क्षेत्र राजस्थान एव गुजरात। प्रमुख रचनायें है:—

प्रमालक्ष्म स्वोपज्ञ टीका सह र स 1080 जालोर, अष्टक प्रकरण टीका सं 1080 जालोर, कथाकोष प्रकरण स्वोपज्ञ टीका सह र. स. 1108 डीडवाणा, निर्वाणलीलावती कथा (अप्राप्त) आदि अन्य 7 ग्रन्थ प्राकृत भाषा मे है। प्रमालक्ष्म जैन दर्शन प्रतिपादक आद्यग्रन्थ है।

4. बुद्धिसागरसूरि—पूर्वोक्त जिनेश्वरसूरि के लघुभ्राता। दीक्षा-पूर्व नाम श्रीपति। प्रमुख रचना है पञ्चग्रन्थी व्याकरण अपरनाम बुद्धिसागर व्याकरण र स 1080 जालौर। यह श्वेताम्बर समाज का सर्वप्रथम एव मौलिक व्याकरण ग्रन्थ है। आचार्य हेमचन्द्र ने भी इस व्याकरण का अपने व्याकरण सिद्धहेमशब्दानुशासन और टीका ग्रन्थो मे उपयोग किया है। वर्द्धमानसूरि रचित मनोरमा चरित्र प्रशस्ति (र स. 1140) के अनुसार बुद्धिसागरसूरि ने छन्द. शास्त्र, निघण्टु (कोष), काव्य, नाटक, कथा, प्रबन्ध आदि अनेक विषयो के ग्रन्थो की रचना की थी, किन्तु वे सब ग्रन्थ आज अप्राप्त है।

5. जिनवल्लभसूरि[2]—समय लगभग 1090 से 1167। खरतरगच्छ। मूलत: कूर्चपुरगच्छीय जिनेश्वरसूरि के शिष्य। नवागटीकाकार अभयदेवसूरि के पास श्रुताभ्यास और उपसम्पदा। चित्तौड मे देवभद्राचार्य द्वारा 1167 आषाढ में आचार्य पद प्रदान कर अभयदेवसूरि के पट्ट पर स्थापन। 1167 कार्तिक मास, चित्तौड में ही स्वर्गवास। कार्यक्षेत्र चित्तौड आदि राजस्थान, गुजरात और पजाब। आगम-सिद्धान्त, साहित्यशास्त्र और ज्योतिष के प्रकाण्ड विद्वान्। प्रमुख रचनाये है—

---

1. विशेष परिचय के लिये लेखक की 'वल्लभ-भारती' देखें।
2. विशेष परिचय के लिये देखें, वल्लभ-भारती।

- धर्मशिक्षा प्रकरण, संघपट्टक, श्रृंगारशतक, प्रश्नोत्तरैकषष्टिशतकाव्य, अष्ट सप्ततिका अपरनाम चित्रकूटीय वीर चैत्यप्रशस्ति (1163) एव भावारिवारण स्तोत्रादि अनेको स्तोत्र ।

सूक्ष्मार्थविचारसारोद्धार, आगमिक वस्तुविचारसार, पिण्डविशुद्धि, स्वप्नसप्ततिका, द्वादशकुलक एव कतिपय स्तोत्र प्राकृत भाषा में है ।

6. जिनपतिसूरि[1]--समय 1210-1277 । खरतरगच्छ । गुरु मणिधारी जिनचन्द्रसूरि । जन्म 1210 विक्रमपुर (वीकमपुर, जैसलमेर के निकट) । माता-पिता माल्हू गोत्रीय यशोवर्धन एव सूहवदेवी । दीक्षा 1217 । दीक्षानाम नरपति । आचार्य पद 1223 । स्वर्गवास 1277 । मुख्यकार्य 1228 आशिका में नृपति भीमसिंह के समक्ष महाप्रामाणिक दिगम्बर विद्वान् के साथ शास्त्रार्थ में विजय, 1239अजमेर में अन्तिम हिन्दू सम्राट् पृथ्वीराज चौहान की सभा मे पद्मप्रभ के साथ शास्त्रार्थ में विजय, और प्रद्युम्नाचार्य के साथ हुए शास्त्रार्थ मे विजय । प्रमुख रचनायें है :—

सघपट्टक बृहद्वृत्ति, पचलिंगी प्रकरण टीका, प्रबोधोदय वादस्थल और कतिपय स्तोत्र ।

7. जिनपालोपाध्याय--समय 1217 से 1311 । खरतरगच्छ । गुरु जिनपतिसूरि । दीक्षा 1225 पुष्कर । वाचनाचार्य 1251 कुहियपग्राम । उपाध्याय पद 1269 जालोर । 1311 पालनपुर में स्वर्गवास । 1273 बृहद्द्वार में नगरकोट्टीय राजाधिराज पृथ्वीचन्द्र की सभा मे काश्मीरी पण्डित मनोदानन्द के साथ शास्त्रार्थ में विजय । चन्द्रतिलकोपाध्याय और प्रबोधचन्द्रगणि के विद्यागुरु । स्वदर्शन के साथ न्याय, अलंकार, साहित्य-शास्त्र के प्रौढ विद्वान् एव सफल टीकाकार । प्रमुख कृतियाँ है :—

सनत्कुमारचक्रिचरित महाकाव्य[2] पट्स्थानकप्रकरण टीका (1262), उपदेशरसायन विवरण (1292), द्वादशकुलक विवरण (1293), धर्मशिक्षा विवरण (1293), चर्चरी विवरण (1294) और युगप्रधानाचार्य गुर्वावली (1305) आदि । सनत्कुमारचक्रिचरित शिशुपालवध की कोटि का श्रेष्ठ महाकाव्य है और युगप्रधानाचार्य गुर्वावली ऐतिहासिक दृष्टि से एक अद्वितीय रचना है ।

8 लक्ष्मीतिलकोपाध्याय --समय लगभग 1275 से 1340 । खरतरगच्छ । गुरु जिनेश्वरसूरि द्वितीय । दीक्षा 1288 जालोर । वाचनाचार्य पद 1312 । उपाध्याय पद 1317 जालोर । स 1333 में जिनप्रबोधसूरि की अध्यक्षता में जालोर से निकले तीर्थयात्रा सघ मे सम्मिलित थे । अभयतिलकोपाध्याय और चन्द्रतिलकोपाध्याय के विद्यागुरु । पूर्णकलश गणि रचित 'प्राकृत द्वयाश्रय काव्य टीका' (1307), अभयतिलक रचित 'पंचप्रस्थान न्यायतर्क व्याख्या', चन्द्रतिलक रचित 'अभयकुमार चरित्र' (1312), प्रबोधचन्द्र गणि कृत 'सदेहदोलावली टीका' (1320), धर्मतिलक रचित 'उल्लासिस्तोत्र टीका' (1322) आदि अनेको ग्रन्थो के सशोधक । महाकवि एव सार्वदेशीय विद्वान् । प्रमुख रचनायें है :—

प्रत्येकबुद्धचरित्र महाकाव्य (1311) और श्रावक धर्म बृहद्वृत्ति (1317 जालोर) ।

---

1 देखें, खरतरगच्छालङ्कार युगप्रधानाचार्य गुर्वावली ।

2 म. विनयसागर द्वारा सम्पादित होकर राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान जोधपुर से प्रकाशित ।

9. अभयतिलकोपाध्याय :—समय 13वीं-14 वीं शती। खरतरगच्छ। गुरु जिनेश्वरसूरि द्वितीय। दीक्षा 1291 जालोर। उपाध्याय पद 1319। न्याय और काव्य-शास्त्र के प्रौढ विद्वान्। प्रमुख रचनायें हैं :— हेमचन्द्रीय संस्कृत द्व्याश्रय काव्य टीका (1312), पंचप्रस्थान न्यायतर्क व्याख्या, पानीय वादस्थल।

10. जिनप्रभसूरि[1] :—समय लगभग 1326 से 1393। लघु खरतरगच्छ। गुरु जिनसिंहसूरि। जन्मस्थान मोहिलवाडी (झुन्झुनू के आसपास)। माता-पिता श्रीमाल-वंशीय ताम्बीगोत्रीय श्रेष्ठी रत्नपाल और खेतलदेवी। दीक्षा 1326। आचार्यपद 1341। महाप्रभाविक एव चमत्कारी आचार्य। मुहम्मद तुगलक के प्रतिबोधक एव धर्मगुरु। कन्यानयनीय महावीर प्रतिमा के उद्धारक। विहार क्षेत्र—राजस्थान, गुजरात, बिहार, उत्तर प्रदेश, पजाव, दक्षिण, कर्णाटक और तैलग। कार्यक्षेत्र दिल्ली और देवगिरि। प्रमुख रचनायें है :—

श्रेणिक चरित्र (द्व्याश्रय काव्य, 1356), कल्पसूत्र सदेह-विषौषधि टीका (1364), साधुप्रतिक्रमणसूत्र टीका (1364), षडावश्यक टीका, अनुयोग चतुष्टय व्याख्या, प्रव्रज्याभिधान टीका, विधिमार्गप्रपा (1363), कातन्त्रविभ्रम टीका (1352), अनेकार्थसग्रह टीका, शेष सग्रह टीका, विदग्धमुखमण्डन टीका (1368), गायत्री विवरण, सूरिमन्त्रबृहत्कल्प विवरण, रहस्य कल्पद्रुम और विविध तीर्थ-कल्प आदि अनेको ग्रन्थ। स्तोत्र-साहित्य में लगभग 80 स्तोत्र प्राप्त है। तीर्थों का इतिहास—इस दृष्टि से विविधतीर्थकल्प अभूतपूर्व, मौलिक और ऐतिहासिक तथ्यो से परिपूर्ण रचना है।

11. जिनकुशलसूरि—समय 1337 से 1389। खरतरगच्छ। गुरु कलिकाल कल्पतरु जिनचन्द्रसूरि। श्वेताम्बर समाज में तीसरे दादाजी के नाम से प्रसिद्धतम आचार्य। जन्म 1337 सिवाना। माता-पिता छाजहड गोत्रीय ठ. जैसल एव जयतश्री। दीक्षा 1346 सिवाना। वाचनाचार्य पद 1375 नागौर। दीक्षा नाम कुशलकीर्ति। आचार्य पद 1377 पाटण। स्वर्गवास 1379 देवराजपुर (देरावर)। स 1383 वाडमेर मे रचित "चैत्यवन्दन-कुलक वृत्ति" इनकी मुख्य कृति है। कई स्तोत्र भी प्राप्त है।

12 जिनवर्द्धनसूरि—समय 15वीं शती। खरतरगच्छ। गुरु जिनराजसूरि। आचार्य पद 1461 देवकुलपाटक। इनके समय मे खरतरगच्छ की पिप्पलक शाखा का 1469 जैसलमेर मे उद्भव हुआ। कार्यक्षेत्र जैसलमेर और मेवाड। 1473 जैसलमेर में लक्ष्मण-विहार की प्रतिष्ठा। सप्तपदार्थी टीका (1474), वाग्भटालंकार टीका, प्रत्येकबुद्ध चरित्र और सत्यपुरमडन महावीर स्तोत्र इनकी मुख्य कृतियां हैं।

---

1 द्रष्टव्य, म. विनय सागर : शासन प्रभावक आचार्य जिनप्रभ और उनका साहित्य।

13. जिनभद्रसूरि—समय 1449-1514। खरतरगच्छ। गुरु जिनराजसूरि। जन्म 1449। जन्मनाम रामणकुमार। माता-पिता छाजहड़ गोत्रीय सा. धाणिक एवं खेतलदे। दीक्षा 1461। आचार्यपद 1475। स्वर्गवास 1514 कुंभलमेर। प्रमुख कार्य—जैसलमेर, जालोर, देवगिरि, नागोर, पाटण, मांडवगढ, आशापल्ली, कर्णावती और खंभात आदि स्थानो पर इन्होने ज्ञान भण्डार स्थापित किये और सहस्रों नये ग्रन्थ लिखवाकर, संशोधन कर इन भंडारों में स्थापित किये। जैसलमेर का ज्ञान भण्डार आज भी आपकी कीर्ति-पताका को अक्षुण्ण रखकर विश्व में फहरा रहा है। इन्होंने सहस्रों मूर्तियों की प्रतिष्ठायें एवं अनेकों नवीन मन्दिरो की स्थापना की। रचनायें निम्न हैं :—

सूरिमन्त्रकल्प, शत्रुञ्जय लघुमाहात्म्य, स्तोत्रादि। जिनसत्तरी प्राकृत भाषा में है।

14. वाडव.—जैन श्वेताम्बर उपासक वर्ग के इने-गिने साहित्यकारों—कवि पद्मानन्द, ठक्कुर फेरु, मन्त्री मण्डन, मन्त्री धनद आदि के साथ टीकाकार वाडव का नाम भी गौरव के साथ लिया जा सकता है। वाडव जैन श्वेताम्बर अञ्चलगच्छीय उपासक श्रावक था। वह विराट नगर वर्तमान वैराठ (अलवर के पास, राजस्थान प्रदेश) का निवासी था। संस्कृत साहित्य-शास्त्र और जैन साहित्य का प्रौढ विद्वान् एवं सफल टीकाकार था। इसका समय वैक्रमीय पन्द्रहवी शती का उत्तरार्द्ध है। इसने अनेक ग्रन्थों पर टीकायें लिखी थी किन्तु दुख है कि आज न तो उसका कोई ग्रन्थ ही प्राप्त है और न जैन इतिहास या विद्वानो में उल्लेख ही प्राप्त है। वाडव की एकमात्र अपूर्ण कृति "वृत्तरत्नाकर अवचूरि" (15वी शती के अन्तिम चरण की लिखी) मेरे निजी संग्रह में है। इसकी प्रशस्ति के अनुसार वाडव ने जिन-जिन ग्रन्थो पर टीकायें लिखी है, उनके नाम उसने इस प्रकार दिये हैं :—

1.	कुमारसम्भव काव्य	अवचूरि	2.	मेघदूत काव्य	अवचूरि
3.	रघुवंश काव्य	अवचूरि	4	माघ काव्य	अवचूरि
5.	किरातार्जुनीय काव्य	अवचूरि	6	कल्याण मन्दिर स्तोत्र	अवचूरि
7.	भक्तामर स्तोत्र	अवचूरि	8	पार्श्वनाथ स्तोत्र	अवचूरि
9.	जीरापल्ली पार्श्वनाथ स्तोत्र	अवचूरि	10	त्रिपुरा स्तोत्र	अवचूरि
11.	वृत्तरत्नाकर	अवचूरि	12.	वाग्भटालंकार	अवचूरि
13.	विदग्धमुखमण्डन	अवचूरि	14.	योगशास्त्र (4 अध्याय)	अवचूरि
15.	वीतराग स्तोत्र	अवचूरि			

वाडव की अन्य कृतिया जो अप्राप्त है उनके लिये शोध विद्वानों का कर्त्तव्य है कि खोज करके अन्य ग्रन्थो को प्राप्त करें और वाडव के व्यक्तित्व एवं कृतित्व पर विशेष प्रकाश डालें।

15 चारित्रवर्द्धन—समय लगभग 1470 से 1520। लघु खरतरगच्छ। गुरु कल्याणराज। कार्य क्षेत्र झुन्झुनू के आस-पास का प्रदेश। प्रतिभाशाली और बहुश्रुत विद्वान्। नरवेष-सरस्वती उपनाम। ख्यातिप्राप्त समर्थ टीकाकार। प्रमुख रचनायें है —

रघुवंश टीका, कुमारसम्भव टीका (1492), शिशुपालवध टीका, नैषधकाव्य टीका (1511), मेघदूत टीका, राघवपाण्डवीय टीका, सिन्दूर प्रकर टीका (1505), भावारिवारण एवं कल्याण मन्दिर स्तोत्र टीका।

चारित्रवर्द्धन ने इन टीकाओ की रचना अपने उपासको की ज्ञान-वृद्धि के लिये की है। इससे स्पष्ट है कि ठ. अरडक्कमल्ल और ठ सहस्रमल्ल, भीषण आदि भी संस्कृत के अच्छे विद्वान् थे।

16. जयसागरोपाध्याय.—समय लगभग 1450-1515 खरतरगच्छ। गुरु जिनराजसूरि । जन्म नाम जयदत्त । माता-पिता दरडागोत्रीय आसराज और सोखू । इन्हीं के भाई मण्डलीक आदि ने आबू मे खरतरवसही का निर्माण करवाया । कार्यक्षेत्र–जैसलमेर, आबू, गुजरात, सिन्ध, पंजाब, हिमाचल । श्रीवल्लभ के कथनानुसार इन्होने सहस्रों स्तुति-स्तोत्रो की रचना की थी । मुख्य कृतिया निम्न है :—

विज्ञप्ति त्रिवेणी (1484), पृथ्वीचन्द्र चरित्र (1503), जैसलमेर शान्तिनाथ जिनालय प्रशस्ति (1493), सदेहदोलावली टीका, गुरुपारतन्त्र्य स्तोत्र टीका, भावारिवारण स्तोत्र टीका आदि एव अनेकों स्तोत्र । विज्ञप्ति त्रिवेणी एक ऐतिहासिक विज्ञप्ति पत्र है । नगरकोट, कागडा आदि तीर्थों का दुर्लभ विवरण इसमे प्राप्त है ।

17 कीर्तिरत्नसूरि.—समय 1449-1525 । खरतरगच्छ । गुरु जिनवर्धनसूरि । जन्म 1449 । नाम देल्हाकुवर । माता-पिता शखवाल गोत्रीय शाह कोचर के वशज दीपा और देवलदे । दीक्षा 1463, नाम कीर्तिराज । वाचनाचार्य 1470 । उपाध्याय पद 1480 महेवा । आचार्यपद 1497 जैसलमेर । आचार्य नाम कीर्तिरत्नसूरि । स्वर्गवास 1525 वीरमपुर । नाकोडा पार्श्वनाथ तीर्थ के प्रतिष्ठापक । इनकी शिष्य परम्परा कीर्ति-रत्नसूरि शाखा के नाम से चली आ रही है । नेमिनाथ महाकाव्य इनकी विशिष्ट रचना है ।

18. जिनहससूरि.—समय 1524 से 1582 । खरतरगच्छ । गुरु जिनसमुद्रसूरि । जन्म 1524 । सेत्रावा निवासी चोपडा गोत्रीय मेघराज और कमलादे के पुत्र । दीक्षा 1535 बीकानेर । आचार्य पद 1555 । बादशाह को धौलपुर में चमत्कार दिखाकर 500 कैदियो को छुडवाया । स्वर्गवास 1582 । आचारागसूत्र दीपिका (1572 बीकानेर) इनकी प्रमुख रचना है ।

19 युगप्रधान जिनचन्द्रसूरि—समय 1598-1670 । खरतरगच्छ । गुरु जिन माणिक्यसूरि । जन्म 1598, नाम सुलतान कुमार । बडली निवासी रीहड गोत्रीय श्रीवत एव सिरियादेवी के पुत्र । दीक्षा 1604 । दीक्षा नाम सुमतिधीर । आचार्यपद 1612 जैसलमेर । क्रियोद्धार 1614 बीकानेर । 1617 पाटण मे सर्वगच्छीय आचार्यो के सन्मुख धर्मसागरोपाध्याय को उत्सूत्रवादी घोषित किया । 1648 लाहोर मे सम्राट अकबर से मिलन और प्रतिबोध । अकबर द्वारा युगप्रधान पद प्राप्त । स्वर्गवास 1670 बिलाडा । कार्यक्षेत्र राजस्थान, गुजरात, पजाब । अनेको प्रतिष्ठाये एव कई यात्रा-सघो का सचालन । प्रमुख भक्त बीकानेर के महामत्री कर्मचन्द्र बच्छावत अदेर अहमदाबाद के श्रेष्ठि शिवा सोम । मुख्य कृति पौषधविधि प्रकरण टीका (1617) है ।

20 महोपाध्याय पुण्यसागर.—समय 16वी एव 17वी शती । खरतरगच्छ । गुरु जिनहससूरि । प्रमुख रचनायें हैं :—

जम्बूद्वीपप्रज्ञप्ति सूत्र टीका (1645 जैसलमेर) और प्रश्नोत्तरैकषष्टिशत काव्य टीका (1640 बीकानेर) ।

इनके शिष्य पद्मराज भी सस्कृत के अच्छे विद्वान् थे । जिनकी भावारिवारण पादपूर्ति स्तोत्र टीका सह (1659, जैसलमेर), 'रुचित' दण्डक स्तुति टीका (1644 पाल्हणपुर) आदि कई कृतिया प्राप्त हैं ।

21. जिनराजसूरि :—समय 1647-1699 । खरतरगच्छ । गुरु जिनसिंहसूरि । जन्म 1647 बीकानेर । बोहिथरा गोत्रीय धर्मसी धारलदे के पुत्र । जन्म नाम खेतसी । दीक्षा 1656 । दीक्षा नाम राजसमुद्र । उपाध्याय पद 1668 आसाउल । आचार्य पद 1674 मेडता । स्वर्गवास 1699 । 1675 शत्रुञ्जय खरतरवसही, लौद्रवा तीर्थ और सहस्रो जिनमूर्तियो के प्रतिष्ठापक । नव्यन्याय और साहित्यशास्त्र के प्रकाण्ड पण्डित । प्रमुख रचनाएं है :—

नैषधीय महाकाव्य जैनराजी टीका (श्लोक परिमाण 36000) और भगवती सूत्र टीका ।

22. महोपाध्याय समयसुन्दर[1].—समय लगभग 1610-1703 । खरतरगच्छ । गुरु सकलचन्द्र गणि । साचौर निवासी प्राग्वाट ज्ञातीय रूपसी-लीलादेवी के पुत्र । जन्म लगभग 1610 । गणिपद 1640 जैसलमेर । वाचनाचार्य पद 1649 लाहोर । उपाध्याय पद 1671 लवेरा । स्वर्गवास 1703 । कार्य क्षेत्र राजस्थान, गुजरात, उत्तर प्रदेश, सिन्ध और पजाब । सिद्धपुर (सिन्ध) का अधिकारी मखनूम महमूद शेख काजी, जैसलमेर के रावल भीमसिंह, खभात, मडोवर और मेडता के शासको को प्रभावित कर जीवहिंसा निषेध और अमारी-पटह की घोषणा करवाई । 17वी शती का सर्वतोमुखी और सर्वश्रेष्ठ विद्वान् । स. 1649 मे काश्मीर विजय के समय सम्राट् अकबर के सन्मुख 'राजा नो ददते सौख्यम्' चरण के प्रत्येक अक्षर के एक-एक लाख अर्थ अर्थात् आठ अक्षरो के आठ लाख अर्थ कर अष्टलक्षी ग्रन्थ रचा । प्रमुख-प्रमुख कृतिया निम्नाकित है.—

सारस्वत वृत्ति, सारस्वत रहस्य, लिंगानुशासन अवचूर्णि, अनिट्कारिका, सारस्वतीय शब्द रूपावली आदि व्याकरण के ग्रन्थ ।

अष्टलक्षी, मेघदूत प्रथमपद्यस्य त्रयो अर्था:, आदि अनेकार्थी साहित्य ।

जिनसिंहसूरि पदोत्सव काव्य (रघुवश पादपूर्ति), रघुवश टीका; कुमारसभव टीका, मेघदूत टीका, शिशुपालवध तृतीय सर्ग टीका, रूपकमाला अवचूरि, ऋषभ भक्तामर (भक्तामर पादपूर्ति) आदि काव्य ग्रन्थ एव टीकाये ।

भावशतक, वाग्भटालकार टीका, वृत्तरत्नाकर टीका, मंगलवाद आदि लक्षण; छद न्याय के ग्रन्थ ।

कल्पसूत्र टीका, दशवैकालिक सूत्र टीका, नवतत्व प्रकरण टीका, समाचारी शतक; विशेष सग्रह, विशेष शतक, गाथा सहस्री, सप्तस्मरण टीका आदि अनेको आगमिक सैद्धांतिक और स्तोत्र साहित्य पर रचनाये एव टीकाये ।

समयसुन्दर के शिष्य वादी हर्षनन्दन की निम्नलिखित रचनाये प्राप्त है :—मध्याह्न व्याख्यानपद्धति (1673), ऋषि मण्डल वृत्ति (1704), स्थानाग सूत्र गाथागत वृत्ति (1705), उत्तराध्ययन सूत्र टीका (1711) आदि ।

23. महोपाध्याय गुणविनय.—समय लगभग 1615-1675 । खरतरगच्छ, क्षेमकीर्ति शाखा । गुरु जयसोमोपाध्याय । वाचक पद 1649 । स्वर्गवास 1675 के लगभग ।

टि. 1. देखें, म. विनयसागर: महोपाध्याय समयसुन्दर

कार्यक्षेत्र अधिकांशत राजस्थान । सम्राट् जहागीर द्वारा 'कविराज' पद प्राप्त । प्रमुख रचनायें है :—

खण्डप्रशस्ति टीका[1] (1641), नेमिदूत टीका[2] (1644), दमयन्ती कथा चम्पू टीका (1646), रघुवंश टीका (1646), वैराग्यशतक टीका (1647), सम्बोध सप्तति टीका (1651), कर्मचन्द्रवंश प्रवन्ध टीका (1656), लघुशान्ति स्तव टीका (1659); शीलोपदेशमाला लघु वृत्ति आदि 13 टीका ग्रन्थ । 'सव्वत्थशब्दार्थ समुच्चय' अनेकार्थी ग्रन्थ और 'हुण्डिका' (1657) सग्रह ग्रथ है । गुणविनय के शिष्य गमतिकीर्ति रचित दशाश्रुतस्कन्ध टीका और गुणकित्व षोडशिका भी प्राप्त है ।

24. श्रीवल्लभोपाध्याय :—समय लगभग 1620-1687 । खरतरगच्छ । गुरु ज्ञानविमलोपाध्याय । कार्यक्षेत्र—जोधपुर, नागौर, बीकानेर, गुजरात । महाकवि, बहुश्रुतज्ञ, व्याकरण-कोष के मूर्धन्य विद्वान् और सफल टीकाकार । प्रमुख कृतिया निम्नलिखित है :—

विजयदेवमाहात्म्य काव्य, सहस्रदलकमलगर्भित अरजिन स्तव स्वोपज्ञ टीका सह[3] विद्वत्प्रबोधकाव्य, संघपति रूपजी वश प्रशस्ति[4], मातृकाश्लोकमाला, चतुर्दशस्वरस्थापन वादस्थल आदि 8 मौलिक कृतिया ।

हैमनाममाला शेषसग्रह टीका, हैमनाममाला शिलोञ्छ टीका,[5] हैमलिंगानुशासन दुर्गप्रदप्रबोध टीका, हैमनिघण्टुशेष टीका, अभिधानचिन्तामणि नाममाला टीका, सिद्धहेमशब्दानुशासन टीका, विदग्धमुखमण्डन टीका आदि 12 टीका ग्रन्थ ।

25. सहजकीर्ति :—समय 17वी शती । खरतरगच्छ । गुरु हेमनन्दन । कार्यक्षेत्र राजस्थान । प्रमुख रचनाये है :—

कल्पसूत्र टीका (1685), अनेकशास्त्रसमुच्चय, गौतमकुलक टीका (1671), फलवर्द्धि पार्श्वनाथ माहात्म्य काव्य, वैराग्यशतक, ऋजुप्राज्ञ व्याकरण, सारस्वत टीका (1681); सिद्धशब्दार्णव नामकोष, शतदलकमलबद्ध पार्श्वनाथ स्तोत्र आदि ।

26. गुणरत्न :—समय 17वी शती । खरतरगच्छ । गुरु विनयप्रमोद । न्याय, लक्षण, काव्य-शास्त्र के प्रौढ विद्वान् । कार्यक्षेत्र राजस्थान । प्रमुख रचनायें हैं :—

काव्यप्रकाश टीका, तर्कभाषा टीका, सारस्वत टीका (1641), रघुवश टीका (1667), मंगलवाद आदि ।

1.4. म.विनयसागर द्वारा सम्पादित होकर राजस्थान प्राच्य विद्या प्रतिष्ठान, जोधपुर से प्रकाशित ।

2.3. म.विनयसागर द्वारा सम्पादित होकर सुमतिसदन, कोटा से प्रकाशित ।

5. म. विनयसागर द्वारा सम्पादित होकर ला. द. भारतीय सस्कृति विद्या मन्दिर, अहमदाबाद से प्रकाशित ।

27. सूरचन्द्र :—समय 17वी शती । खरतरगच्छ । गुरु वीरकलश । कार्यक्षेत्र राजस्थान । दर्शन और साहित्य शास्त्र का प्रकाण्ड-पण्डित । प्रमुख रचनायें हैं :—

स्थूलिभद्रगुणमालाकाव्य (1680), जैनतत्वसार स्वोपज्ञ टीका सह (1679); अष्टार्थी श्लोक वृत्ति, पदैकविंशति, शांतिलहरी, शृंगार रसमाला (1659), पंचतीर्थी श्लेषालकार चित्रकाव्य आदि ।

28 मेघविजयोपाध्याय —समय लगभग 1685-1760 । तपागच्छ । गुरु कृपाविजय । कार्यक्षेत्र राजस्थान और गुजरात । बहुमुखी प्रतिभासम्पन्न विशिष्ट विद्वान् एव काव्य-साहित्य, व्याकरण, अनेकार्थ, न्याय, ज्योतिष, सामुद्रिक आदि अन्यान्य विषयो के प्रकाण्ड पण्डित । प्रमुख रचनायें है :—

सप्तसन्धान महाकाव्य (1760), दिग्विजय महाकाव्य, शान्तिनाथ चरित्र (नैषधपादपूर्ति); देवानन्द महाकाव्य (माघ पादपूर्ति), किरात समस्या पूर्ति, मेघदूत समस्यालेख (मेघदूत पादपूर्ति), लघुत्रिषष्टिशलाका पुरुष चरित्र, भविष्यदत्त चरित्र, पचाख्यान, चन्द्रप्रभा व्याकरण (1757), हेमशब्दचन्द्रिका, हेमशब्दप्रक्रिया, चिन्तामणि परीक्षा, युक्तिप्रबोध, मेघमहोदयवर्षप्रबोध, हस्तसजीवन, उदयदीपिका, वीसायन्त्रविधि, मातृका प्रसाद (1747), अर्हद्गीता आदि 38 कृतिया प्राप्त है ।

29. महिमोदय :—समय 18वी शती । खरतरगच्छ । गुरु मतिहस । कार्यक्षेत्र राजस्थान । ज्योतिष शास्त्र का विद्वान् । प्रमुख कृतियां है .—

खेटसिद्धि, जन्मपत्री पद्धति, ज्योतिष रत्नाकर (1722), पञ्चागानयन विधि (1722); प्रेम ज्योतिष (1723), षट्पञ्चाशिकावृत्ति बालावबोध आदि ।

30. यशस्वत्सागर (जसवतसागर) —समय 18वी शती । तपागच्छ । गुरु यश सागर । न्याय-दर्शन और ज्योतिष के श्रेष्ठ विद्वान् । कार्यक्षेत्र राजस्थान । निम्नाकित साहित्य प्राप्त है .—

विचारषट्त्रिंशिका अवचूरि (1721), भावसप्ततिका (1740), जैन सप्तपदार्थी (1757); प्रमाणवादार्थ (1757 सागानेर), वादार्थ निरूपण, स्याद्वादमुक्तावली, स्तवनरत्न, ग्रहलाघव वार्तिक (1760), यशोराजी राजपद्धति आदि ।

31. लक्ष्मीवल्लभोपाध्याय .—समय 18वी शती । खरतरगच्छ, क्षेमकीर्तिशाखा । गुरु लक्ष्मीकीर्ति । कार्यक्षेत्र राजस्थान । प्रमुख रचनाए है :—

कल्पसूत्र टीका, उत्तराध्ययन सूत्र टीका, कालिकाचार्य कथा, कुमारसभव टीका, मातृकाधर्मोपदेश स्वोपज्ञ टीका सह, ससारदावा पादपूर्त्यात्मक पार्श्वनाथ स्तोत्र आदि ।

32. धर्मवर्द्धन :—समय 1700-1883-84 । खरतरगच्छ । गुरु विजयहर्ष । जन्म 1700 । जन्मनाम धर्मसी । दीक्षा 1713 । उपाध्याय पद 1740 । स्वर्गवास 1783-84 के मध्य । प्रमुख रचनाये है वीरभक्तामर स्वोपज्ञ टीका सहित और अनेको स्तोत्र ।

33. महोपाध्याय रामविजय (रूपचन्द्र) :—समय 1734-1835 । खरतरगच्छ क्षेमकीर्तिशाखा । गुरु दयासिंह । ओसवाल मांचलिया गोत्र । जन्म नाम रूपचन्द्र जो अन्त तक प्रसिद्ध रहा । दीक्षा नाम रामविजय । दीक्षा 1755 बिल्हाबास । स्वर्गवास 1835 पाली । कार्यक्षेत्र जोधपुर, बीकानेर । अनेक भाषाओ और अनेक विषयो के प्रगाढ विद्वान् । प्रमुख रचनायें हैं —

गौतमीय महाकाव्य (1807), गुणमाला प्रकरण, सिद्धान्त चन्द्रिका टीका, साध्वाचार षट्त्रिंशिका, मुहूर्त्तमणिमाला (1801), षड्भाषामय पत्र (1787) आदि ।

महो. रामविजय के शिष्य पुण्यशील गणि कृत जयदेवीय गीतगोविन्द की पद्धति पर 'चतुर्विंशति जिन स्तवनानि स्वोपज्ञ टीका सह' और 'ज्ञानानन्द प्रकाश' प्राप्त है । और इन्ही के प्रशिष्य शिवचन्द्रोपाध्याय कृत अनेक कृतियां प्राप्त हैं । जिनमे से मुख्य ये हैं .—

प्रद्युम्न लीला प्रकाश (1879), विंशतिपद प्रकाश, सिद्ध सप्ततिका, भावना प्रकाश, मूलराज गुणवर्णन समुद्रबन्ध काव्य (1861) और अनेक स्तोत्र ।

34. महोपाध्याय क्षमाकल्याण :—समय 1801 से 1872 । खरतरगच्छ । गुरु अमृतधर्म । जन्म 1801 केसरदेसर । माल्हू गोत्र । दीक्षा 1812 । स्वर्गवास 1872 । इनकी विद्वत्ता के सबध में मुनि जिनविजय जी ने तर्कसंग्रह के प्रकाशकीय वक्तव्य (पृ.2) में लिखा है:—

"राजस्थान के जैन विद्वानो में एक उत्तम कोटि के विद्वान् थे और अन्य प्रकार से अन्तिम प्रौढ पण्डित थे। इनके वाद राजस्थान में ही नही अन्यत्र भी इस श्रेणी का कोई जैन विद्वान् नहीं हुआ ।"

इनकी प्राप्त रचनाओ में मुख्य रचनायें निम्न हैं —

तर्कसग्रह फक्किका (1827), भूधातुवृति (1829), समरादित्य केवली चरित्र पूर्वार्द्ध, अम्बड चरित्र, यशोधर चरित्र, गौतमीय महाकाव्य टीका, सूक्ति रत्नावली स्वोपज्ञ टीका सह, विज्ञान चन्द्रिका, खरतरगच्छ पट्टावली, जीवविचार टीका, परसमयसार विचार सग्रह, प्रश्नोत्तर सार्द्धशतक, साधु-श्रावक विधि प्रकाश, अष्टाह्निकादि पर्वव्याख्यान, चैत्यवन्दन चतुर्विंशति आदि अनेको ग्रन्थ एव कतिपय स्तोत्र ।

35 जिनमणिसागरसूरि :—समय 1944-2007 । खरतरगच्छ । गुरु महोपाध्याय सुमतिसागर । जन्म 1944 बाकडिया बडगांव । जन्म नाम मनजी । दीक्षा 1960 पालीताणा। आचार्य पद 2000 बीकानेर । स्वर्गवास 2007 मालवाडा । सागरानन्दसूरि, विजय वल्लभसूरि और चौथमल जी आदि के साथ शास्त्रार्थ । प्रमुख कार्य आगमो का राष्ट्र भाषा में अनुवाद । कार्य क्षेत्र कोटा, बम्बई, कलकत्ता । जैन शास्त्रों के श्रेष्ठ विद्वान् । सस्कृत भाषा में एक ही कृति प्राप्त है—साध्वी व्याख्यान निर्णय । अन्य कृतिया षट्कल्याणक निर्णय, पर्युषणा निर्णय, क्या पृथ्वी स्थिर है ? देवार्चन एक दृष्टि, साध्वी व्याख्यान निर्णय, आगमानुसार मुहपति निर्णय, देव द्रव्य निर्णय आदि हिन्दी भाषा में प्राप्त है ।

36 बुद्धिमनि गणि .—समय लगभग 1950 से 2025 । खरतरगच्छ श्री मोहन लाल जी परम्परा । गुरु श्री केशर मुनि । संस्कृत, प्राकृत, गुजराती भाषा और जैन साहित्य के विशिष्ट विद्वान् । विहार क्षेत्र राजस्थान, मध्य प्रदेश, गुजरात, महाराष्ट्र । सस्कृत भाषा में इनकी कल्पसूत्र टीका, कल्याणक परामर्श, पर्युषणा परामर्श आदि कई कृतिया प्रकाशित हो चुकी हैं । साधुरंगीय सूत्रकृताग दीपिका, पिण्डविशुद्धि (3 टीका सहित) आदि अनेक ग्रन्थो

का इन्होंने सम्पादन किया है। सम्पादित ग्रन्थों की विस्तृत भूमिकायें भी इन्होंने संस्कृत में लिखी है। गुजराती और हिन्दी में भी इनकी लिखित एव सम्पादित कई पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी है।

37. आचार्य घासीलाल जी :— ये स्थानकवासी सम्प्रदाय के प्रसिद्ध आचार्य श्री जवाहिरलाल जी के शिष्य थे। इनका जन्म सं. 1941 जसवन्तगढ (मेवाड) मे हुआ था। ये संस्कृत और प्राकृत भाषा तथा जैनागम, व्याकरण, काव्य, कोष आदि विषयो के श्रेष्ठ विद्वान् थे। इन्होने स्थानकवासी सम्प्रदाय द्वारा मान्य 32 आगमो पर सस्कृत भाषा मे विस्तृत टीकायें लिखी और विविध विषयो में अनेक नूतन ग्रन्थो का निर्माण किया। इनकी मौलिक रचनायें निम्नलिखित प्राप्त होती हैं :—

शिवकोश, नानार्थ उदयसागर कोश, श्रीलाल नाममाला कोश, आर्हत् व्याकरण, आर्हत् लघु व्याकरण, आर्हत् सिद्धान्त व्याकरण, शान्ति सिन्धु महाकाव्य, लौंकाशाह महाकाव्य, पूज्य श्री लाल काव्य, लवजी मुनि काव्य, जैनागम तत्व दीपिका, वृत्तबोध, तत्व प्रदीप, सूक्ति संग्रह, गृहस्थ कल्पतरु, नागाम्बरमञ्जरी, नव स्मरण, कल्याण मगल स्तोत्र, वर्धमान स्तोत्र आदि।

38. आचार्य हस्तिमल जी :—ये वर्तमान में स्थानकवासी समाज के प्रमुख आचार्यो में से है। संस्कृत भाषा के अच्छे विद्वान् है। नन्दीसूत्र आदि आगम ग्रन्थो पर इन्होने सस्कृत भाषा में टीकाओ का निर्माण किया है। इनकी हिन्दी भाषा मे कई कृतियां भी प्रकाशित हो चुकी है।

× × × ×

राजस्थान प्रदेश मे अन्य गच्छो की अपेक्षा खरतरगच्छ का प्रभाव एव प्रचार विशेष रहा है। खरतरगच्छ की अनेक शाखाओ का उद्भव, विकास और अवसान भी इस प्रदेश में ही हुआ है। अन्य शाखाओ के कतिपय साहित्यकारो की रचनायें मेरे विचार से इसी राजस्थान प्रदेश में ही हुई होगी। इसी अनुमान के आधार पर कतिपय लेखको और उनकी कृतियो का यहा निर्देश करना अप्रासगिक न होगा।

रुद्रपल्लीय शाखा :—

अभयदेवसूरि:— जयन्त विजय महाकाव्य (1278)

सोमतिलकसूरि:— शीलोपदेशमाला टीका (1392), षड्दर्शनसमुच्चय टीका (1392), कन्यानयन तीर्थकल्प

संघतिलकसूरि:— सम्यक्त्वसप्तति टीका (1422), कुमारपालप्रबन्ध (1454), धूर्त्ताख्यान

दिवाकराचार्य — दानोपदेशमाला (14वी)

देवेन्द्रसूरि — दानोपदेशमाला टीका (1418), प्रश्नोत्तररत्नमाला टीका (1429), नवपद अभिनव प्रकरण टीका (1452)

वर्द्धमानसूरि:— आचार दिनकर (1468)

श्रीतिलक:— गौतमपृच्छा टीका (15वीं शती)

लक्ष्मीचन्द:— सदेशरासक टीका (1465)

बेगड शाखा:—

जिनसमुद्रसूरि:—	18वी शती। कल्पान्तर्वाच्य, सारस्वत धातुपाठ, वैराग्यशतक टीका

पिप्पलक शाखा.—

जिनसागरसूरि.—	15वी शती। कर्पूर प्रकर टीका, सिद्धहेमशब्दानुशासन लघुवृत्ति
धर्मचन्द्र:—	सिन्दूरप्रकर टीका (1513), स्वात्मसम्बोध, कर्पूरमञ्जरी सट्टक टीका
हर्षकुञ्जरोपाध्याय।—	सुमित्र चरित्र (1535)
विनयसागरोपाध्याय:—	अविदपद-शतार्थी, नलवर्णन महाकाव्य (अप्राप्त), प्रश्नप्रबोध काव्यालकार स्वोपज्ञ टीकासह (1667), राक्षस काव्य टीका, राघव पाण्डवीय काव्य टीका, विदग्धमुखमण्डन टीका (1669)
उदयसागर:—	17वी शती। वाग्भटालकार टीका

आद्यपक्षीय शाखा—

दयारत्न:—	न्यायरत्नावली (1626)
जिनचन्द्रसूरि.—	18वी शती। आचारांग सूत्र टीका
सुमतिहस·—	18वी शती। कल्पसूत्र टीका

2. राजस्थान में रचित संस्कृत-साहित्य की सूची :-

लेखको ने अपनी कृतियो के अन्त में रचना समय के साथ जहाँ रचना स्थान का निर्देश किया है उन कृतियो की सूची विषयवार एव अकारानुक्रम से प्रस्तुत कर रहा हूं। इस सूची के निर्माण में मैंने "जैन साहित्य नो सक्षिप्त इतिहास" जैन सस्कृत साहित्य नो इतिहास, जिनरत्न कोष और स्वसम्पादित "खरतरगच्छ साहित्य-सूची" आदि पुस्तको का उपयोग किया है। विशेष शोध करने पर इस प्रकार की कई सूचियां तैयार की जा सकती हैं।

	ग्रंथ का नाम	कर्त्ता नाम	गच्छ	रचना संवत् विक्रमी	रचना स्थान
	आगम-टीकाएं —				
1.	आचारांग सूत्र दीपिका	जिनहंससूरि	खरतर	1572	बीकानेर
2	उत्तराध्ययन सूत्र दीपिका	चारित्रचन्द्र	खरतर	1723	रिणी
3	उत्तराध्ययन सूत्र टीका	भावविजय	तपा.	1689	रोहिणीपुर (सिरोही)
4.	उत्तराध्ययन सूत्र टीका	वादी हर्षनन्दन	खरतर.	1711	बीकानेर
5	उत्तराध्ययन सूत्र कथा संग्रह	पद्मसागर	तपा.	1657	पीपाड
6	कल्पसूत्र टीका कल्पलता	समयसुन्दरोपाध्याय	खरतर.	1685	रिणी
7	जम्बूद्वीप प्रज्ञप्ति सूत्र टीका	महो पुण्यसागर	खरतर.	1645	जैसलमेर
8	ज्ञाता धर्मकथा सूत्र टीका	कस्तूरचन्द्र गणि	खरतर.	1899	जयपुर
9	तंदुलवेयालिय पयन्ना अवचूरि (संक्षेप)	विशालसुन्दर	तपा.	1655	नागौर
10	नन्दीसूत्र मलयगिरी टीकोपरि टीका	जिनचारित्रसूरि	खरतर.	20वीं	बीकानेर
11	सूत्रकृतांगसूत्र दीपिका	साधुरंग	खरतर.	1599	बडल
	सैद्धान्तिक प्रकरण —				
12	चैत्यवन्दनक	जिनेश्वरसूरि प्र.	खरतर.	1080	जालौर
13	चैत्यवन्दन कुलक टीका	जिनकुशलसूरि	खरतर.	1383	बाडमेर
14	जम्बूद्वीप समास टीका	विजयसिंहसूरि	राजगच्छ	1215	पाली
15	जीवविचार प्रकरण टीका	क्षमाकल्याणोपाध्याय	खरतर.	1850	बीकानेर
16.	प्रतिक्रमण हेतु	"	खरतर.	19वीं	बीकानेर
17.	श्रावकधर्मविधि स्वोपज्ञ-टीका	जिनेश्वरसूरि द्वि.	खरतर.	1317	जालौर
18.	श्रावकधर्मविधि वृहद्वृत्ति	लक्ष्मीतिलकोपाध्याय	खरतर.	1317	जालौर
19.	षट्स्थानक प्रकरण टीका	जिनपालोपाध्याय	खरतर.	1262	श्रीमालपुर
20	सम्बोधसप्ततिका टीका	गुणविनयोपाध्याय	खरतर.	1651	पाली

औपदेशिक प्रकरण :—

क्र.	ग्रन्थ	कर्ता	गच्छ	संवत्	स्थान
21.	अष्टकप्रकरण टीका (हरिभद्रीय)	जिनेश्वरसूरि प्र.	खरतर	1080	जालौर
22	उपदेशपद वृत्ति	मुनिचन्द्रसूरि	वृहद्गच्छ	1174	नागौर में प्रारंभ
23	उपदेशमाला टीका	विजयसिंहसूरि	चन्द्रगच्छ	12वी	चन्द्रावती
24.	उपदेशमाला संस्कृत पर्याय	शिवनिधानोपाध्याय	खरतर.	1690	जोधपुर
25	ऋषिमण्डल प्रकरण अवचूरि	समयसुन्दरोपाध्याय	खरतर.	1662	सांगानेर
26.	ऋषिमण्डल प्रकरण टीका	पद्ममन्दिर गणि	खरतर.	1553	जैसलमेर
27	ऋषिमण्डल प्रकरण टीका	वादी हर्षनन्दन	खरतर.	1704	बीकानेर
28	गणधरसार्द्धशतक लघुवृत्ति	पद्ममन्दिर गणि	खरतर.	1646	जैसलमेर
29	गुणमाला प्रकरण	रामविजयोपाध्याय	खरतर.	1817	जैसलमेर
30	गौतमपृच्छा टीका	मतिवर्द्धन	खरतर	1738	जयतारण
31	दानप्रदीप	चारित्रसुन्दरगणि	तपा.	1499	चितौड
32.	धर्मरत्नकरण्डक स्वोपज्ञ टीका सह	वर्द्धमानसूरि	खरतर.	1172	दायिका कूप
33	धर्मोपदेशमाला वृत्ति	जयसिंहसूरि		913-915	नागौर
34	भवभावना स्वोपज्ञ टीका सह	मलधारी हेमचन्द्रसूरि	मलधारगच्छ	1170	मेडता
35	भवभावना बालावबोध	माणिक्यसुन्दर गणि	तपा	1501	देवकुलपाटक
36	रूपकमाला अवचूरि	समयसुन्दर	खरतर.	1663	बीकानेर
37	शीलोपदेशमाला टीका	ललितकीर्ति	खरतर	1678	लाटद्रह
38	सूक्तिद्वात्रिंशिका विवरण	राजकुशल	तपा	1650	जालौर
39	स्वप्न सप्तति टीका (जिनवल्लभीय)	सर्वदेवसूरि	खरतर.	1287	जैसलमेर

वैधानिक, सैद्धान्तिक-प्रश्नोत्तर एव चार्चिक —

क्र.	ग्रन्थ	कर्ता	गच्छ	संवत्	स्थान
40	प्रश्नोत्तर शतक	उम्मेदचन्द्र	खरतर.	1884	जयपुर
41	प्रश्नोत्तर सार्द्धशतक	क्षमाकल्याणोपाध्याय	खरतर.	1851	जैसलमेर
42	यत्याराधना	समयसुन्दरोपाध्याय	खरतर.	1685	रिणी
43	विचाररत्नसंग्रह (हुण्डिका)	गुणविनयोपाध्याय	खरतर	1657	[illegible]

	ग्रंथ का नाम	कर्ता नाम	गच्छ	रचना संवत विक्रमी	रचना स्थान
44.	विचारशतक	समयसुन्दरोपाध्याय	खरतर.	1674	मेड़ता
45.	विधि कन्दली स्वोपज्ञ टीका सह	नयरंग	खरतर.	1625	वीरमपुर
46.	विशेषशतक	समयसुन्दरोपाध्याय	खरतर.	1672	मेड़ता
47.	श्रावकव्रत कुलक	समयसुन्दरोपाध्याय	खरतर	1683	बीकानेर
48	श्रावक विधि प्रकाश	क्षमाकल्याणोपाध्याय	खरतर.	1838	जैसलमेर
49	समाचारी शतक	समयसुन्दरोपाध्याय	खरतर.	1672	मेड़ता
50	साध्वी व्याख्यान निर्णय	जिनमणिसागरसूरि	खरतर.	2002	जयपुर

काव्य-साहित्य तथा टीकादि

	ग्रंथ का नाम	कर्ता नाम	गच्छ	रचना संवत विक्रमी	रचना स्थान
51	अभय कुमार चरित्र	चन्द्रतिलकोपाध्याय	खरतर.	1312	बाड़मर में प्रारम्भ
52	अष्टसप्तति (चित्रकूटीय वीर चैत्य प्रशस्ति)	जिनवल्लभसूरि	खरतर.	1163	चितौड़
53	आचार दिनकर लेखन प्रशस्ति	वादी हर्षनन्दन	खरतर.	1669	जैसलमेर
54	इन्दुदूत	विनयविजयोपाध्याय	तपा.	1718 लगभग	जोधपुर
55	उपकेश शब्दव्युत्पत्ति	श्रीवल्लभोपाध्याय	खरतर.	1655	बीकानेर
56	उपमिति भवप्रपञ्चकथा	सिद्धर्षि		1962	भीनमाल
57	कृष्णरुक्मिणी वेलि टीका	श्रीसार	खरतर.	1703	बीकानेर
58	खण्ड प्रशस्ति टीका	गुणविनयोपाध्याय	खरतर.	1641	फलवर्द्धि
59	गौतमीय महाकाव्य	रामविजयोपाध्याय	खरतर.	1807	जोधपुर
60	गौतमीय महाकाव्य टीका	क्षमाकल्याणोपाध्याय	खरतर.	1855	जैसलमेर
61	चित्रकूट वीरचैत्य प्रशस्ति	चारित्रसुन्दर गणि	तपा.	1495	चितौड़
62	दमयन्तीकथा चम्पू टीका	गुणविनयोपाध्याय	खरतर.	1646	सैरूणा
63	देवानन्द महाकाव्य	मेघविजयोपाध्याय	तपा.	1727	सादड़ी
64	नेमिदूत टीका	गुणविनयोपाध्याय	खरतर.	1644	बीकानेर
65	प्रद्युम्न लीला प्रकाश	शिवचन्द्रोपाध्याय	खरतर.	1879	जयपुर
66.	प्रश्नोत्तर कषष्टितशत काव्य टीका	महो. पुण्यसागर	खरतर.	1640	बीकानेर

67	फलवर्द्धिपार्श्वनाथ महाकाव्य	सहजकीर्ति	खरतर.	17 वीं	फलवर्द्धि
68	भर्तृहरि शतक त्रय टीका	पाठक धनसार	उपकेश.	1525	जयपुर(?)
69.	भावप्रदीप	हेमरत्न		1638	बीकानेर
70	मातृका श्लोकमाला	श्रीवल्लभोपाध्याय	खरतर.	1655	बीकानेर
71.	मूलराज-गुण-वर्णन समुद्रबन्धकाव्य	शिवचन्द्रोपाध्याय	खरतर.	1861	जैसलमेर
72	मेघदूत टीका	विनयचन्द्र	खरतर.	1694	राडद्रह
73.	रघुवंश टीका	गुणरत्न	खरतर.	1676	जोधपुर
74.	रघुवंश टीका	गुणविनयोपाध्याय	खरतर.	1646	बीकानेर
75.	रघुवंश टीका	सुमतिविजय	खरतर.	1698	बीकानेर
76	लक्ष्मण विहार प्रशस्ति	कीर्तिराज (कीर्तिरत्न सूरि)	खरतर.	1473	जैसलमेर
77	वस्तुपाल चरित्र काव्य	जिनहर्ष गणि	तपा.	1497	चित्तौड
78.	विजय प्रशस्ति काव्य टीका	गुणविजय	तपा.	17 वी	सिरोही
79	विज्ञप्तिका	दयासिंह	खरतर.	1771 लगभग	रूपावास
80	विज्ञप्तिका	राजविजय	खरतर.	1727	बीकानेर
81	विज्ञप्तिका	लावण्यविजय	तपा.	1709 लगभग	जोधपुर
82	विज्ञप्तिपत्र	समयसुन्दरोपाध्याय	खरतर.	17 वी	मेडता
83	विज्ञप्तिज्ञप्तिपाल पत्र	कमलसुन्दर	खरतर.	19 वी	जयपुर
84	विज्ञान चन्द्रिका	क्षमाकल्याणोपाध्याय	खरतर.	1859	जैसलमेर
85	विद्वत्प्रबोध	श्रीवल्लभोपाध्याय	खरतर.	17 वी	बलभद्रपुर (बालोतरा)
86	वैराग्यशतक	पद्मानन्द श्रावक	खरतर.	12 वी	नागौर
87	शान्तिनाथ जिनालय प्रशस्ति	जयसागरोपाध्याय	खरतर.	1473	जैसलमेर
88	श्रीधर चरित्र महाकाव्य	माणिक्यसुन्दरसूरि	अचलगच्छ	1463	दवकुलपाटक
89	षड्भाषामय पत्र	रामविजयोपाध्याय	खरतर.	1787	बेनातट (बिलाड़ा)
90	सम्भवजिनालय प्रशस्ति	सोमकुञ्जर	खरतर.	1497	जैसलमेर
91	सूक्तिमुक्तावली	जिनवर्धमानसूरि	खरतर.	1739	उदयपुर
92	स्थूलिभद्र गणमाला काव्य	सूरचन्द्रोपाध्याय	खरतर.	1680	सागानेर
	कथा चरित्र —				
93	अम्बड चरित्र	क्षमाकल्याणोपाध्याय	खरतर.	1854	पाली

	ग्रंथ का नाम	कर्त्ता नाम	गच्छ	रचना संवत् विक्रमी	रचना स्थान
94	कथाकोप स्वोपज्ञ टीका सह	जिनेश्वरसूरि प्र	खरतर.	1108	डीडवाणा
95	कालिकाचार्य कथा	कनकसोम	खरतर	1632	जैसलमेर
96	कालिकाचार्य कथा	समयसुन्दरोपाध्याय	खरतर.	1666	वीरमपुर
97	गुणवर्म चरित्र	माणिक्यसुन्दरसूरि	अचलगच्छ	1484	साचौर
98	धन्यशालिभद्र चरित्र	पूर्णभद्रगणि	खरतर.	1285	जैसलमेर
99	पञ्चकुमार कथा	लक्ष्मीवल्लभोपाध्याय	खरतर.	1746	रिणी
100	परमहंससंबोध चरित्र	नयरंग	खरतर	1624	वाल्पनाकापुरी
101	पुण्यसार कथानक	विवेकसमुद्रोपाध्याय	खरतर.	1334	जैसलमेर
102	मदननरिंद चरित्र	दयासागर	खरतर.	1619	जालौर
103	महावीर चरित्र टीका	समयसुन्दरोपाध्याय	खरतर	1684	लूणकरणसर
104	मोहजीत चरित्र	क्षेमसागर	खरतर.	1969	कोटा
105	यशोधर चरित्र	क्षमाकल्याणोपाध्याय	खरतर.	1839	जैसलमेर
106	रत्नशेखर कथा	जिनहर्ष गणि	तपा.	15वीं	चितौड़
107	रामचरित्र	देवविजय गणि	तपा	1652	श्रीमालपुर
108	शीलवती कथा	आज्ञासुन्दर	खरतर.	1562	काडिऊपुर
109	श्रीपाल चरित्र टीका	क्षमाकल्याणोपाध्याय	खरतर.	1869	बीकानेर
110	श्रीपाल चरित्र	जयकीर्ति	खरतर.	1868	जैसलमेर
111	समरादित्यकेवली चरित्र उत्तरार्द्ध	सुमतिवर्धन	खरतर.	1871	अजमेर

पर्व व्याख्यान —

112	अष्टाह्निका व्याख्यान	क्षमाकल्याणोपाध्याय	खरतर.	1860	जैसलमेर
113	कार्तिकी पूर्णिमा व्याख्यान	जयसार	खरतर.	1873	जैसलमेर
114	चातुर्मासिक व्याख्यान	क्षमाकल्याणोपाध्याय	खरतर.	1835	[illegible]

115.	चातुर्मासिक व्याख्यान	समयसुन्दरोपाध्याय	खरतर.	1665	अमरसर
116.	मेरुत्रयोदशी व्याख्यान	क्षमाकल्याणोपाध्याय	खरतर.	1860	बीकानेर
117.	मौनकादशी व्याख्यान	जीवराज	खरतर.	1847	बीकानेर
118	मौनकादशी व्याख्यान	शिवचन्द्रोपाध्याय	खरतर.	1884	जैसलमेर
119	सौभाग्यपञ्चमी कथा	कनककुशल	तपा	1665	मेडता

स्तुति स्तोत्र —

120	चतुर्विंशतिजिन स्तुति पचाशिका	रामविजयोपाध्याय	खरतर.	1814	बीकानेर
121	चैत्यवन्दन चतुर्विंशतिका स्वोपज्ञ टीका सह	क्षमाकल्याणोपाध्याय	खरतर.	1856	नागपुर (नागौर)
122	जैसलमेर अष्टजिनालय स्तोत्र	कनक कुमार	खरतर.	1716	जैसलमेर
123	जैसलमेर पार्श्वजिन स्तव	ज्ञानविमलोपाध्याय	खरतर.	17वी	जैसलमेर
124	जैसलमेर पार्श्वजिन स्तव	तरुणप्रभाचार्य	खरतर.	14वी	जैसलमेर
125	जसलमेर पार्श्वजिन स्तुति	साधुसुन्दर	खरतर.	1683	जैसलमेर
126	जैसलमेर पार्श्वजिन स्तोत्र	गुणविनयोपा याय	खरतर.	17वी	जैसलमेर
127	जैसलमेर पार्श्वजिन स्तोत्र	जिनभद्रसूरि	खरतर.	15वी	जैसलमेर
128	जैसलमेर पार्ग्वजिन स्तोत्र	मेरुसुन्दरोपाध्याय	खरतर.	16वी	जैसलमेर
129	तिमरी ग्रामस्थ पार्श्वजिन स्तव	जयसोमोपाध्याय	खरतर.	17वी	तिंवरी
130	पार्श्वजिन स्तुति (महादण्डकछन्द)	सहजकीर्ति उपाध्याय	खरतर.	1683	जैसलमेर
131	पार्श्वनाथ नवग्रहगर्भित स्तोत्रावचूरि	लक्ष्मीवल्लभोपाध्याय	खरतर.	1738	बीकानेर
132.	फलवर्द्धिमण्डन पार्श्वजिन स्तव	जिनप्रभसूरि	खरतर.	14वी	फलवर्द्धि (मेडतारोड)
133.	फलवर्द्धिमण्डन पार्श्वजिन स्तव	जिनप्रभसूरि	खरतर.	14वी	"
134.	फलवर्द्धिमण्डन पार्श्वजिन स्तव	जिनप्रभसूरि	खरतर.	14वी	"
135	फलवर्द्धिमण्डन पार्श्वजिन स्तव	जिनप्रभसूरि	खरतर.	14वी	"
136.	फलवर्द्धिमण्डन पार्श्वजिन स्तव	मेरुनन्दन	खरतर.	15वी	"
137.	फलवर्द्धिमण्डन पार्श्वजिन स्तोत्र	गुणविनयोपाध्याय	खरतर.	17वीं	"
138.	फलवर्द्धिमण्डन पार्श्वजिन स्तोत्र	जिनकुशलसूरि	खरतर.	14वी	"

	ग्रंथ का नाम	कर्ता नाम	गच्छ	रचना संवत् विक्रमी	रचना स्थान
139.	फलवर्द्धिमण्डन पार्श्वजिन स्तोत्र	सूरचन्द्रोपाध्याय	खरतर.	17वी	फलवर्द्धि
140.	भावारिवारण पादपूर्ति स्तोत्र स्वोपज्ञ टीका सह	पद्मराज गणि	खरतर	1659	जैसलमेर
141.	रुचितदण्डक स्तुति टीका	पद्मराज गणि	खरतर.	1644	जैसलमेर
142.	लघुशान्तिस्तव टीका	गुणविनयोपाध्याय	खरतर.	1659	वैनातट (बिलाडा)
143	विक्रमपुर आदीश्वर स्तोत्र	धर्मवर्द्धन	खरतर.	18वी	बीकानेर
144	विशाललोचन स्तुति टीका	कनककुशल	तपा.	1653	सादडी
145	शतदलकमलमय पार्श्वजिन स्तव	सहजकीर्ति उपाध्याय	खरतर.	1675	लौद्रवा
146.	शाश्वतजिन स्तव टीका	शिवनिधानोपाध्याय	खरतर.	1652	सामर
147.	सत्यपुरमण्डन महावीरजिन स्तव	जिनवर्द्धनसूरि	खरतर.	15वी	साचौर
148.	सप्तस्मरण स्तोत्र टीका	समयसुन्दरोपाध्याय	खरतर.	1695	जालोर
149	स्वर्णगिरि पार्श्वजिन स्तोत्र	जिनरत्नसूरि प्र	खरतर.	14वी	जालोर
150.	हरिभक्तामर	कवीन्द्रसागरसूरि	खरतर.	21वीं	मेडतारोड

न्याय-दर्शन —

151.	तर्कसंग्रह टीका	क्रमंचन्द्र	खरतर.	1824	नागौर
152.	प्रमाणवादार्थ	यशस्वत्सागर	तपा.	1759	संग्रामपुर (सांगानेर)
153	प्रमालक्ष्म स्वोपज्ञ टीका सह	जिनेश्वरसूरि प्र.	खरतर.	1080	जालोर
154.	षट्दर्शन समुच्चय टीका	सोमतिलकसूरि	खरतर (रुद्र.)	1392	आदित्यवर्द्धनपुर
155.	सप्तपदार्थी टीका	भावप्रमोद	खरतर.	1730	बैनातट (बिलाडा)

व्याकरण —

156.	पचग्रन्थी (वुद्धिसागर) व्याकरण	बुद्धिसागरसूरि	खरतर.	1080	जालौर
157.	वेद्थपद विवेचन	समयसुन्दरोपाध्याय	खरतर.	1684	बीकानेर
158.	सारस्वतानुवृत्यवबोधक	ज्ञानमेरु	खरतर.	1667	डीडवाणा
159.	सिद्धान्तरत्नावली व्याकरण		खरतर.	1897	जयपुर
160.	हैमलिंगानुशासन दुर्गपदप्रबोध टीका	श्रीवल्लभोपाध्याय	खरतर.	1661	जोधपुर

कोष —

161.	अभिधानचिन्तामणि नाममाला टीका	श्रीवल्लभोपाध्याय	खरतर.	1667	जोधपुर
162.	अभिधानचिन्तामणि नाममाला टीका	रामविजयोपाध्याय	खरतर.	1822	कालाऊना
163	शव्दप्रभेद टीका	ज्ञानविमलोपाध्याय	खरतर.	1654	बीकानेर
164.	हैमनाममाला शेषसग्रह टीका	श्रीवल्लभोपाध्याय	खरतर.	1654	बीकानेर
165.	हैमनाममाला शिलोञ्छ टीका	श्रीवल्लभोपाध्याय	खरतर.	1654	नागौर

छन्द शास्त्र —

166	वृत्तरत्नाकर टीका	वाडव	अचलगच्छ	15वी	विराटनगर
167.	वृत्तरत्नाकर टीका	समयसुन्दरोपाध्याय	खरतर.	1694	जालौर

अलंकार —

168	काव्यप्रकाश नवमोल्लास टीका	क्षमामाणिक्य	खरतर.	1884	राजपुर
169.	पाण्डित्य दर्पण	उदयचन्द्र	खरतर.	1731	बीकानेर

	ग्रंथ का नाम	कर्त्ता नाम	गच्छ	रचना संवत् विक्रमी	रचना स्थान
170	रसिकप्रिया सस्कृत टीका	समयमाणिक्य	खरतर.	1735	जालिपुर
171.	रसिक्प्रिया टीका	कुशलधीर	खरतर.	1724	जोधपुर
172	विदग्धमुखमण्डन टीका	शिवचन्द्र	खरतर.	1699	अलवर
	आयुर्वेद —				
173	पथ्यापथ्यनिर्णय	दीपचन्द्र	खरतर.	1792	जयपुर
	ज्योतिप —				
174	अकप्रस्तार	लाभवर्धन	खरतर.	1761	गढ़ा
175	अवयदी शकुनावली	रायचन्द	खरतर.	1827	नागपुर (नागोर)
176	जन्मप्रकाशिका ज्योतिष	कीर्तिवर्द्धन	खरतर.	17वीं	मेडता
177	ज्योतिपसार	हीरकलश	खरतर.	1721	नागोर
178	दीक्षा प्रतिष्ठा शुद्धि	समयसुन्दरोपाध्याय	खरतर.	1685	लूणकरणसर
179.	महादेवी दीपिका	धनराज	अचल	1692	पद्मावती पत्तन
180	लघुजातक टीका	भवितलाभोपाध्याय	खरतर.	1571	बीकानेर
181	वसन्तराज शकुन टीका	भानुचन्द्रगणि	तपा.	17वीं	निरोही

जैन मनीषियों द्वारा राजस्थान प्रदेश में सर्जित साहित्य-समृद्धि का इस लेख में यत्किंचित दिग्दर्शनमात्र हुआ है। विशेष शोध करने पर उनके नये लेखक और अनेको नवीन कृतियां प्रकाश में आ सकती है। अत विद्वानो का कर्त्तव्य है कि राजस्थान के लेखको और उनके कृतित्व पर शोध कर नतन जानकारी साहित्यिक जगत को दें।

परिशिष्ट

राजस्थान प्रदेश म उत्पन्न दो जैनेतर साहित्यकारो को भी इस प्रसंग पर भुलाया नही जा सकता। एक है–पं नित्यानन्द जी शास्त्री और दूसरे है श्री गिरिघर शर्मा।

1. पं नित्यानन्द शास्त्री –प्रतिभा सम्पन्न आशुकवि और संस्कृत के प्रकाण्ड पण्डित थे। जातित दाधीच ब्राह्मण थे और थे जोधपुर के निवासी। शायद दो दशक पूर्व ही इनका स्वर्गवास जोधपुर में हुआ है। पचासों जैन मन्दिरमार्गी साधु-साध्वियो के ये शिक्षा गुरु रहे हैं। जैन न होते हुए भी जैन-दर्शन और जैनाचार्यों के प्रति इनकी प्रगाढ श्रद्धा थी। यही कारण है कि इनके बनाये हुए कुछ महाकाव्य जैन साधु-साध्वियो से सबन्धित प्राप्त होते हैं।

(क) पुण्यश्री चरित महाकाव्य –यह अठारह सर्गों का काव्य है। इसमें खरतर-गच्छीया प्रवर्तिनी साध्वी श्री पुण्यश्रीजी का जीवन चरित्रगं फित है। इसकी हिन्दी भाषा में "तात्पर्यबोधिनी" नाम की टीका नित्यानन्दजी के बडे भाई विद्याभूषण पं भगवतीलाल शर्मा (प्रथमाध्यापक, वैदिक पाठशाला, जोधपुर) ने बनाई है। स 1967 की लिखित इसकी हस्तप्रति प्राप्त है।

(ख) श्री क्षमाकल्याण चरित –इस काव्य में महोपाध्याय श्री क्षमाकल्याणजी के जीवन-चरित्र का आलेखन है।

मेरी स्मृति के अनुसार श्री नित्यानन्दजी ने जैनाचार्यों पर दो लघुकाव्य और एक चित्र काव्य की और भी रचना की थी।

2. पं. गिरिघर शर्मा –महामहोपाध्याय, साहित्यवाचस्पति, राजकवि श्री गिरिधर शर्मा झालरापाटन के निवासी थे। इनका भी स्वर्गवास इन दो दशको के मध्य में ही हुआ है। सस्कृत और हिन्दी के प्रौढ विद्वान् थे। इनकी दो जैन रचनायें प्राप्त है —

भक्तामर स्तोत्र पादपूर्ति
कल्याणमन्दिर स्तोत्र पादपूर्ति

यह दोनो ही पादपूर्तिया अन्तिम चरणात्मक न होकर चारो ही पाद पर की गई है।

संस्कृत साहित्य एवं साहित्यकार 3.

—मुनि गुलाबचन्द्र निर्मोही

जैन परम्परा में भी संस्कृत साहित्य का प्राचुर्य है। जैन आगमो तथा तत्सम ग्रन्थों की भाषा मूलत प्राकृत, अर्धमागधी अथवा शौरसेनी रही है। आगमोत्तर साहित्य की अधिकांश प्राचीन रचनाए भी प्राकृत में हुई हैं किन्तु जनरुचि को देखते हुए जैनाचार्यों ने संस्कृत को भी प्राकृत के समकक्ष प्रतिष्ठा प्रदान की। जिस समय वैदिक साहित्य और संस्कृति का व्यापक प्रभाव समाज में बढ़ने लगा तथा शास्त्रार्थ और वाद-विवाद के अनेक उप-क्रम होने लगे तब जैन आचार्यों ने भी संस्कृत को अधिक महत्व देना प्रारम्भ किया। आचार्य सिद्धसेन दिवाकर और हरिभद्र के ग्रन्थ इसके परिणाम कहे जा सकते हैं। यह समय ईसा की दूसरी शताब्दी से आठवी शताब्दी तक का है। आठवी शताब्दी के पश्चात् जैन सस्कृत साहित्य की रचना के मूल में यहा की राजनैतिक, सामाजिक एव धार्मिक स्थिति ने अधिक काम किया है। जैन आचार्यों को संस्कृत साहित्य के निर्माण में जिन कारणों से प्रेरणा प्राप्त हुई, उनमें से कुछ इस प्रकार है—

1 जैन धर्म के मौलिक तत्वो का प्रसार
2 आप्त पुरुषो तथा धार्मिक महापुरुषों की गरिमा का बखान
3 प्रभावी राजा, मन्त्री या अनुयायियो का अनुरोध

उक्त कारणों के अतिरिक्त एक अन्य कारण यह भी हो सकता है कि अनेक जैन आचार्य मूलत ब्राह्मण थे। अत बचपन से ही सस्कृत उन्हें विरासत के रूप में प्राप्त हुई थी। उस विरासत से अपनी प्रतिभा को और अधिक विकसित करने के लिए साहित्य सर्जन का माध्यम उन्होने संस्कृत को चुना। जैन साहित्य का प्रवाह ईसा की दूसरी शताब्दी से प्रारम्भ हुआ और चौदहवी शताब्दी तक निरन्तर चलता रहा। पन्द्रहवी और सोलहवी शताब्दी के संस्कृत ग्रन्थो में रचना स्थल का उल्लेख प्राप्त नही होता। सतरहवी और अठारवी शताब्दी म सस्कृत मे प्रचुर साहित्य लिखा गया। उन्नीसवी शताब्दी में जैन विद्वानो द्वारा लिखित सस्कृत साहित्य बहुत कम प्राप्त है। तेरापथ का संस्कृत साहित्य मुख्यत. नौ भागो में विभक्त किया जा सकता है:—

1 व्याकरण, 2 दर्शन और न्याय, 3 योग, 4. महाकाव्य (गद्य-पद्य) 5 खण्ड काव्य (गद्य-पद्य), 6 प्रकीर्णक काव्य, 7. संगीत काव्य, 8. स्तोत्र काव्य, 9 नीति काव्य।

व्याकरण·

भिक्षु शब्दानुशासन की रचना राजस्थान के 'थली प्रदेश म वि. सं. 1980 से 1988 के बीच हुई। तेरापंथ के आठवे आचार्य श्री कालूगणी का व्याकरण विषयक अध्ययन बहुत विशद था। मुनि चौथमल जी का अध्ययन अधिकाशत· कालूगणी के सान्निध्य में सम्पन्न हुआ। उन्होने आगम, साहित्य, न्याय, दर्शन, व्याकरण, कोश आदि विविध विषयो का गहन अध्ययन किया। व्याकरण उनका सर्वप्रिय विषय था। उन्होने पाणिनीय, जैनेन्द्र, शाकटायन, हेमशब्दानुशासन, सारस्वत, सिद्धान्त चन्द्रिका, मुग्धबोध, सारकौमुदी आदि अनेक व्याकरण ग्रन्थो का गभीर मनन किया। आचार्य श्री कालूगणी की भावना थी कि एक समयोपयोगी सरल और सुबोध सस्कृत व्याकरण तैयार हो ताकि सस्कृत के विद्यार्थियो के लिय सुविधा हो सके। क्योंकि उस समय उपलब्ध व्याकरणो में सारस्वत चन्द्रिका बहुत अधिक संक्षिप्त थी। सिद्धान्त-कौमुदी वार्तिक फक्किका आदि की अधिकता के कारण जटिल थी। हेमशब्दानुशासन की रचना-पद्धति कठिन थी। इस प्रकार एक भी ऐसा व्याकरण ग्रन्थ उपलब्ध

नहीं था जिसे सहज और सुगम माना जा सके। मुनि चौथमल जी ने आचार्य श्री कालूगणी की भावना को साकाररूप दिया और आठ वर्षों के अनवरत परिश्रम से तेरापंथ के आद्य प्रवर्तक आचार्य भिक्षु के नाम से क्लिष्टता, विस्तार, दुरन्वय आदि से रहित एक सर्वांग सुन्दर व्याकरण तैयार किया। इसमें उणादिपाठ, धातुपाठ, न्यायदर्पण, लिंगानुशासन आदि का भी सुन्दर समावेश है। इस महान कार्य में सोनामाई (अलीगढ) निवासी आशुकविरत्न पं. रघनन्दन शर्मा आयुर्वेदाचार्य का भी मूल्यवान सहयोग रहा।

दर्शन और न्याय

जैन तत्व दर्शन, जीव विज्ञान, पदार्थ विज्ञान, आचार शास्त्र, मोक्ष मार्ग, प्रमाण, नय, निक्षेप, सप्तभंगी, स्यादवाद आदि विषयों के निरूपण के लिए तीसरी शताब्दी मे आचार्य उमास्वाति ने सर्वप्रथम तत्वार्थ सूत्र की रचना की। इसे 'मोक्षशास्त्र' भी कहा जाता है। यह ग्रन्थ दिगम्बर और श्वेताम्बरों को समान रूप मे मान्य है। इस पर सिद्धसेन, हरिभद्र, पूज्यपाद, अकलंक, विद्यानन्द, उपाध्याय यशोविजय आदि उच्चकोटि के जैन विद्वानो न टीकाएं लिखी है। जैन दर्शन साहित्य का विकास तत्वार्थ सूत्र को केन्द्रीभूत मानकर ही हुआ है।

तत्वार्थ सूत्र की गहनता को प्राप्त करना हर एक के लिए संभव नही है। आचार्य श्री तुलसी ने दर्शन विषयक "जैन सिद्धान्त दीपिका" और न्याय विषयक "भिक्षु न्याय कर्णिका" की रचना करके जैन दर्शन और न्याय के अध्येताओ के लिए सरल, सुबोध और मूल्यवान सामग्री प्रस्तुत की है। मुनि नथमल जी ने हिन्दी भाषा में उसकी विस्तृत व्याख्या लिखी है। "जैन दर्शन मनन और मीमासा" के नाम से यह स्वतन्त्र ग्रन्थ के रूप में भी प्रकाशित है। इससे जैन दर्शन के अध्ययनशील विद्यार्थी बहुत लाभान्वित हुए है।

जैन सिद्धान्त दीपिका की रचना वि. स. 2002 में वैशाख शुक्ला 13 के दिन चूरू (राजस्थान) में सम्पन्न हुई। यह नौ प्रकाशों में रचित है। पहले प्रकाश में द्रव्य, गुण और पर्याय का निरूपण है। दूसरे प्रकाश में जीव विज्ञान का निरूपण है। तीसरे प्रकाश में जीव और अजीव के भेदों का निरूपण है। चौथे प्रकाश में बन्ध पुण्य और आस्रव के स्वरूप का निरूपण है। पांचवे प्रकाश में संवर, निर्जरा और मोक्ष के स्वरूप का निरूपण है। छठे प्रकाश में मोक्ष मार्ग का विश्लषण है। सातवें प्रकाश में जीवस्थान (गुणस्थान) का निरूपण है। आठवें प्रकाश में देव, गुरू और धर्म का निरूपण है। नौवें प्रकाश में निक्षेप का निरूपण है। इसकी कुल सूत्र संख्या 266 है। इसके सम्पादक और हिन्दी भाषा मे अनुवादक मुनि नथमल जी हैं। भारतीय और पाश्चात्य विद्वानों ने समान रूप मे इसकी उपयोगिता स्वीकार की है। एक फ्रेंच महिला ने जैन सिद्धान्त दीपिका पर पी एच डी भी किया है।

भिक्षु न्याय कर्णिका की रचना वि स 2002 में माघ शुक्ला 9 के दिन डूंगरगढ (राजस्थान) में सम्पन्न हुई है। यह सात विभागों में ग्रथित है। पहले विभाग में लक्षण और प्रमाण के स्वरूप का निरूपण है। दूसरे विभाग में प्रत्यक्ष के स्वरूप का निरूपण है। तीसरे विभाग में मति के स्वरूप का निरूपण है। चौथे विभाग में श्रुत के स्वरूप का निरूपण है। पांचवें विभाग में नय के स्वरूप का निरूपण है। छठे विभाग में प्रमेय और प्रमिति के स्वरूप का निरूपण है। सातवें विभाग में प्रमाता के स्वरूप का निरूपण है। इसकी कुलसूत्र संख्या 137 है। इसके सम्पादक मुनि नथमल जी और हिन्दी भाषा म अनुवादक साध्वी प्रमुखा कनकप्रभाजी व साध्वी मंजुलाजी हैं।

इनके अतिरिक्त मुनि नथमल जी (बागोर) ने न्याय और दर्शन के क्षेत्र में "युक्तिवाद और अन्यापदेश" नामक ग्रन्थ का निर्माण किया है। तथा मुनि नथमल जी ने 'न्याय पंचाशति' की रचना की है। किन्तु ये सब अप्रकाशित हैं।

योग–

तत्वदर्शन की तरह साधना पद्धति क क्षेत्र मे जैन आचार्यों न काफी गहराई का स्पर्श किया है। प्रत्येक धर्म का अपना स्वतन्त्र साध्य होता है और उसकी सिद्धि के लिए उसी के अनुकूल साधना पद्धति होती है। महर्षि पतंजलि ने सांख्यदर्शन की साधना पद्धति को व्यवस्थित रूप दिया और "योग" नाम से एक स्वतन्त्र साधना पद्धति विकसित हो गई। अब हर साधना पद्धति योग नाम से अभिहित होती है। इसी प्रकार जैन साधना पद्धति को जैन 'योग और बौद्ध साधना पद्धति को बौद्ध योग कहा जाने लगा। जैन साधना पद्धति की स्वतन्त्र संज्ञा भी है जिसे मोक्ष मार्ग कहा जाता है।

जैन योग पर सम्यग प्रकाश डालने वाले अनेक ग्रन्थ जैन आचार्यों द्वारा लिखे जा चुके हैं, जिनमें समाधितन्त्र, योग-दृष्टि-समच्चय, योगविन्दु, योगशास्त्र, योग विद्या, अध्यात्मरहस्य ज्ञानार्णव, योग चिन्तामणि, योग दीपिका आदि प्रमुख है।

आचार्य श्री तुलसी द्वारा 'मनोनुशासनम' की रचना वि. सं. 2018 में धवल समारोह के अवसर पर हुई थी। इसके सात प्रकरण हैं। इसका रचनाक्रम सूत्र रूप में है। इसके पहले प्रकरण में योग का विस्तृत निरूपण है। दूसरे प्रकरण में मन की अवस्थाओ का निरूपण है। तीसरे प्रकरण में ध्यान, आसन, भावना आदि का प्रतिपादन है। चौथे प्रकरण मे ध्यान क प्रकार, धारणा, विपश्चना, लेश्या आदि का विवेचन है। पाचवें प्रकरण में वायु के प्रकार और उनकी विजय का निरूपण है। छठे प्रकरण में महाव्रत, श्रमणधर्म, सकल्प, जय आदि का निरुपण है। सातवें प्रकरण में जिनकल्प की पांच भावनाओं-प्रतिमाओं का प्रतिपादन है। इसकी कुल सूत्र सख्या 170 है। इसके हिन्दी अनुवाद और व्याख्याता मुनि नथमल जी हैं। व्याख्या से जैन साधारण के लिए ग्रन्थ की उपयोगिता बढ गई है।

मनोनुशासनम् के उपरान्त भी योग प्रक्रिया को विश्लेषण पूर्वक समझाने के लिए एक और ग्रन्थ की आवश्यकता अनुभव की गई। उसकी पूर्ति सम्बोधि द्वारा की गई। सम्बोधि शब्द सम्यग्ज्ञान, सम्यग्दर्शन और सम्यगचारित्र को अपने में समेटे हुए है। सम्यग्दर्शन के विना ज्ञान अज्ञान बना रहता है और चारित्र के अभाव में ज्ञान और दर्शन निष्क्रिय रह जाते है। आत्मदर्शन के लिये तीनों का समान और अपरिहार्य महत्व है। इस दृष्टि से ही इसका नाम सम्वोधि रखा गया है।

सम्वोधि मुनि नथमल जी की श्लोकबद्ध कृति है। इसमें आचारांग, सूत्रकृतांग, स्थानांग भगवति, ज्ञातृधर्मकथा, उपासकदशा, प्रश्न व्याकरण, दशाश्रुत स्कन्ध आदि आगमों के सार संगृहीत हैं। इसकी शैली गीता के समान है। गीता के तत्वदर्शन म ईश्वरार्पण का जो माहात्म्य है, वही माहात्म्य जैन दर्शन में आत्मार्पण का है। जैन दर्शन के अनसार आत्मा ही परमात्मा या ईश्वर है। गीता का अर्जुन कुरुक्षेत्र की युद्ध भूमि में कायर होता है तो सम्बोधि का मेघकुमार साधना की समरभूमि में कायर होता है। गीता के संगायक कृष्ण हैं तो सम्वोधि के सगायक महावीर हैं। कृष्ण का वाक् सबल प्राप्त कर अर्जुन का पुरुषार्थ जाग उठता है तो महावीर की वाक् प्रेरणा से मेघकुमार की मूर्छित चेतना जागृत हो जाती है। मेघकुमार न जो प्रकाश पाया उसी का व्यापक दिग्दर्शन सम्वोधि में ह।

सम्वोधि का हिन्दी अनुवाद मुनि मिठ्ठालाल जी ने किया है और इसकी विशद व्याख्या मुनि शुभकरण जी और मुनि दुलहराज जी ने की है। इसका अंग्रेजी अनुवाद भी प्रकाशित हो चुका है। इसके सोलह अध्याय हैं। उनमें से पहले आठ अध्यायो की रचना वि. स. 2012 मे महाराष्ट्र में तथा शेष आठ अध्यायो की रचना वि. सं. 2016 में कलकत्ता में हुई। इसकी कुल श्लोक संख्या 702 है।

महाकाव्य (गद्य-पद्य):

जैन मनीषियो ने सस्कृत भाषा मे काव्य रचना के द्वारा अपनी प्रतिभा का पर्याप्त चमत्कार प्रस्तुत किया है। काव्य के लिए सस्कृत भाषा का प्रयोग करने वाले जैन विद्वानो में आचार्य समन्तभद्र का नाम अग्रणी माना जाता है। उन्होने अनेक स्तोत्र काव्यो की रचना की। यह क्रम विकसित होता हुआ क्रमश. सातवी शताब्दी तक चरित काव्य और महाकाव्य तक पहुच गया है। सस्कृत भाषा के जैन महाकाव्यो मे वरागचरित, चन्द्रप्रभचरित, वर्धमानचरित, पार्श्वनाथचरित, प्रद्युम्नचरित, शान्तिनाथचरित, धर्मशर्माभ्युदय, नेमि निर्वाण काव्य, पद्मानन्द महाकाव्य, भरतबाहुबलि महाकाव्य, जैन कुमार समव, यशोधर चरित, पाडवचरित, त्रिषष्टि-शलाका पुरुष चरित आदि की गणना प्रमुख रूप से की जा सकती है।

महकाव्यो की यह परम्परा बीसवी शताब्दी में और अधिक वृद्धिगत हुई। तेरापथ धम सघ मे इस दिशा मे एक नया उन्मेष आया और विगत दो दशको में जो काव्य रचना हुई उसमें तीन महाकाव्यो के नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है.—

(1) अभिनिष्क्रमणम्।
(2) श्री तुलसी महाकाव्यम्
(3) श्री भिक्षु महाकाव्यम्

1. अभिनिष्क्रमणम्:—चन्दन मुनि द्वारा रचित आचार्य भिक्षु के जीवन का एक महत्व पूर्ण घटना वृत्त है। सस्कृत महाकाव्य के कुछ स्वतन्त्र मापदड हैं। प्रस्तुत कृति मे उनका सम्यग् निर्वहन हुआ है। इसकी शली गद्यात्मक है, रचना मे प्रौढता है और शब्दो मे ओज है। यत्र-तत्र वाक्यो का विस्तृत, सालकार तथा उक्ति वैचित्र्य पूर्ण कलवर सस्कृत के प्राचीन गद्य-पद्य लेखको की कृतियो का स्मरण करा देता ह। विद्वानो की दृष्टि में प्रस्तुत काव्य में भाव प्रवणता जहा चरम उत्कर्ष पर पहुची है, वहा विचार गरिमा भी सागर की अतल गहराइयो से जा मिली है। इसमे तत्व, प्रकृति, ऋतु, मनोभाव आदि का मार्मिक विवेचन हुआ है। स्थान-स्थान पर लोक व्यवहार क उपयोगी तथ्यो का भी विश्लेषण हुआ है। एक स्थान पर काव्यकार न लिखा है—हन्त! अनवसरे अमृतमपि विषायते, विषमप्यवसर-प्रयुक्त-ममृतमतिरिच्यते। एकमेव वस्तु महद्धस्तोपढौकित सन्महर्घ्यत्वमालिगति, बहुमूल्यरत्नमपि कौलटनेयकरक्रोडस्थ शतमूल्यमपि नार्हति। अवसरे प्रयुक्तमेकमपि सूक्त स्वात्या शुक्तिगत पानीयपृषदिव मौक्तिकतामाराधयत् सेवते सार्वभौमाना मजुलमौलिकुमुटान।

इस काव्य के सत्रह उच्छ्वास है। इसकी रचना तेरापथ द्विशताब्दी के अवसर पर वि. स. 2017 में काकरोली (राजस्थान) म हुई। इसका हिन्दी भाषा मे अनुवाद मुनि मोहन लाल जी "शार्दूल" ने किया है तथा भूमिका पेनसिलवानिया विश्वविद्यालय (अमरीका) क सस्कृत प्राध्यापक डा. लूडो रोचर ने लिखी है।

2. श्री तुलसी महाकाव्यम्.—प. रघुनन्दन शर्मा आयुर्वेदाचार्य की काव्य-कृति है। इसम आचार्य श्री तुलसी के जीवन-दर्शन का समग्रता से विश्लेषण हुआ है। तेरापथ के सघाधिनायक के रूप मे आचार्य श्री के यशस्वी जीवन के पचीस वर्षों की परिसम्पन्नता पर श्रद्धालुओ ने अपना शक्तिभर अर्घ्य चढाया। पडितजी आचार्य के श्रद्धालु भक्त थे अत. प्रस्तुत कृति उसी अर्घ्य प्रस्तुतीकरण का एक अग है।

पडितजी में कवित्व की अद्भुत क्षमता थी। कविता उनकी सहचरी क रूप म नही, अपितु अनुचरी के रूप में प्रकट हुई—इस प्रतिपत्ति में विसगति का लेश भी नही है। अत्यन्त ऋजु और अकृत्रिम व्यक्तित्व के धनी पडितजी मे एक छलाग में ही महाकाव्य के गगन-स्पर्शी प्रासाद पर

आरूढ़ होने की क्षमता थी। पडितजी प्रच्छन्न कवि थे, वे ख्याति और प्रसिद्धि से विरत थे। अत उनकी विशेषताए प्रच्छन्न ही रही। प्रस्तुत काव्य में रस, अलकार, भाव, भाषा आदि सभी दृष्टियो से पडितजी के वैदग्ध्य की स्पष्ट झलक है। उन्होंने आधुनिक शब्दो, रूपको और उपमाओं का प्रयोग करके संस्कृत भाषा को पुनरुज्जीवित करने का प्रयत्न किया है। पडित जी की शब्द-सरचना प्रसाद गुण सवलित है। पडितजी जन्मना आशु कवि थे। अत. उन्हें सहज और सानुप्रास काव्य रचना का अभ्यास था। गभीर और गूढ भावो को सरस और सरल पदावली मे रखने की उनकी अद्भुत क्षमता थी। उनकी यह विशेषता इस महाकाव्य मे यत्र-तत्र दृष्टिगोचर होती है। पडितजी को कल्पना-प्रसू सगीति का सहारा पाकर वस्तु सत्य वास्तव में ही वस्तुसत्य के रूप मे उभरा है।

प्रस्तुत महाकाव्य के पच्चीस सर्ग है जिनकी रचना वि. स. 2018 में धवल समारोह के अवसर पर हुई। इनमे स्थान-स्थान पर कवि क उत्कृष्ट शब्द-शिल्पित्व का चित्र प्रस्तुत होता है। आचार्यश्री का जन्म, जो जागतिक अध्यात्म अभ्युदय की एक उल्लेखनीय घटना थी, का बहुत ही भावपूर्ण शब्दो मे चित्रण किया गया है। इसक अध्ययन से जीवन-दर्शन, तत्वदर्शन, इतिहास एव परम्पराओ का समीचीन बोध होता है। इसका हिन्दी अनवाद छगनलाल शास्त्री ने किया है।

3. श्री भिक्षु महाकाव्य:—मुनि नथमलजी (बागोर) द्वारा रचित तेरापथ के आद्य प्रवर्त्तक आचार्य भिक्षु के जीवन-दर्शन पर प्रकाश डालन वाला चरित काव्य है। इसकी शैली पद्यात्मक है। काव्यकार स्वय प्रौढ संस्कृतज्ञ होने के कारण इसकी शब्द-सकलना भी प्रौढ और भावपूर्ण है। राजस्थान की अरावली की घाटियो का वर्णन इसमे बहुत सजीव और प्राणवान है। महाकाव्य के लक्षणो से यह परिपूर्ण है। इसके 18 सर्ग है। इसकी यथेष्ट प्रसिद्धि और पठन-पाठन न होने का मुख्य कारण यही है कि यह काव्य अब तक अप्रकाशित है। इसकी रचना तेरापथ द्विशताब्दी के अवसर पर वि. स. 2017 मे हुई।

खण्ड काव्य (गद्य-पद्य):

महाकाव्यो की परम्परा के समानान्तर खण्ड काव्यो की परम्परा भी बहुत प्राचीन रही है। गद्य और पद्य—दोनो ही शैलियो मे इनकी रचना हुई है। जैन आचार्यों और विद्वानो ने भी इस परम्परा को पर्याप्त विकसित किया है। विगत दशको मे तेरापथ धर्म-सघ मे भी इस काव्य परम्परा का इतिहास बहुत वर्धमान रहा है। प्रभव-प्रबोध काव्य, आर्जुन-मालाकारम्, अश्रुवीणा, रत्नपालचरित्रम्, प्राकृत-काश्मीरम् आदि काव्य इस दृष्टि से विशेष उल्लेखनीय है।

1. प्रभव प्रबोधकाव्यम्.—चन्दनमुनि द्वारा रचित आर्य जम्बू के जीवन चरित से सम्बन्धित एक विशेष घटना क्रम को प्रकाशित करता है। प्रभव राजकुमार भी था और चोरो का सरदार भी। उसने जम्बूकुमार को त्यागवृत्ति से प्रभावित होकर प्रव्रज्या स्वीकार की। अर्थ और काम की मनोवृत्ति को उद्वेलित करने वाला यह एक रोचक प्रसग है। कथा वस्तु की रोचकता को काव्यकार के भाव-प्रधान रचना सौष्ठव न और अधिक निखार दिया है। इस गद्य काव्य के नौ प्रकाश है। इसकी सम्पूर्ण रचना वि. स. 2008 के ज्येष्ठ मास मे गुजरात प्रान्त के जामनगर शहर मे हुई। मुनि दुलहराज जो न इसका हिन्दी भाषा मे अनुवाद किया है। इसकी भाषा जितनी प्रौढ और अस्खलित है, अनुवाद भी उतना ही अस्खलित और प्राजल है।

2. आर्जुनमालाकारम्—चन्दनमुनि द्वारा रचित गद्य काव्य है। जैन कथा साहित्य मे अर्जुनमाली एक कथानायक क रूप मे बहुत प्रसिद्ध है। इसकी भाषा मे प्रवाह, शैली में प्रसाद और शब्दो में सुकुमारता है। स्वतन्त्र सरिता की तरह इसकी वाग् धारा अस्खलित और अप्रतिबद्ध है। साहित्यिक दृष्टि से यह रचना अत्यन्त प्रशान्त कही जा सकती है। इसकी सरल

और सुबोध शब्दावली से संस्कृत के विद्यार्थी बहुत लाभान्वित हो सकते हैं । इसके छोटे वाक्यों में भी पर्याप्त भाव-गाम्भीर्य है ।

प्रस्तुत काव्य सात समुच्छ्वासो में रचित है । इसके हिन्दी अनुवादक छोगमल चोपडा है । इसकी रचना वि. स. 2005 के ज्येष्ठ मास में हुई है ।

3. अश्रुवीणा.—मुनि नथमलजी द्वारा मन्दाक्रान्ता छन्द में रचित सौ श्लोकों का खण्ड काव्य है । यह काव्य भर्तृहरि आदि विश्रुत कवियो द्वारा रचित शतक काव्यो के साथ प्रतिस्पर्धा करने में सक्षम है । इस काव्य में एक ओर जहा शब्दो का वैभव है, वहा दूसरी ओर अर्थ की गम्भीरता है । इसमे शब्दालकार और अर्थालकार दोनो एक दूसरे से बढे-चढे हैं । काव्यानुरागियो, तत्वजिज्ञासुओ तथा धर्म के रहस्य को प्राप्त करने की आकाक्षा वालों के लिये यह समान रूप से समादरणीय है । इस काव्य की कथावस्तु जैन आगमो से ग्रहण की गई है । भगवान् महावीर ने तेरह बातो का घोर अभिग्रह धारण किया था । वे घर-घर जाकर भी भिक्षा नही ले रहे थे क्योकि अभिग्रह पूर्ण नही हो रहा था । उधर चन्दनबाला राजा की पुत्री होकर भी अनेक कष्टपूर्ण स्थितियो में से गुजर रही थी । उसका शिर मडित था । हाथो-पैरो म जंजीरें थी । तीन दिनो की भूखी थी । छाज के कोने में उबले उडद थे । इस प्रकार अभिग्रह की अन्य सारी बाते तो मिल गई किन्तु उसकी आखो में आसू नही थे । महावीर इस एक बात की कमी देखकर वापस मुड गए । चन्दनबाला का हृदय दु ख से भर गया । उसको आखो में अश्रुधार बह चली । उसने अपने अश्रु-प्रवाह को दूत बनाकर भगवान् को अपना सन्देश भेजा । भगवान् वापस लौटे और उसके हाथ से उडद ग्रहण किए । अश्रुप्रवाह के माध्यम से चन्दनबाला का सन्देश ही प्रस्तुत काव्य का प्रतिपाद्य है । इसकी रचना वि. स. 2016 में कलकत्ता प्रवास के अवसर पर हुई । इसका हिन्दी अनुवाद मुनि मिट्ठालाल जी द्वारा किया गया है ।

4. रत्नपाल चरित्रम्—जैन पौराणिक आख्यान पर मुनि नथमल जी द्वारा रचित पद्यमय खण्ड काव्य है । पाच सर्गों में निबद्ध प्रस्तुत काव्य में कथानक की अपेक्षा कल्पना अधिक है ।

सहज शब्द-विलास के साथ भाव-प्रवणता को लिये प्रस्तुत काव्य सस्कृत-भारती को गरिमान्वित करने वाला है । इसकी सम्पूर्ति वि. स. 2002 में श्रावण शुक्ला 5 के दिन डूगरगढ में हुई थी । इसका हिन्दी अनुवाद मुनि दुलहराज जी द्वारा किया गया है ।

खण्ड-काव्यो की परम्परा में उक्त काव्यो के सक्षिप्त परिचय के अनन्तर और भी अनेक काव्य है जिनका परिचय अवशिष्ट रह जाता है । सस्कृत विद्यार्थियो के लिये उनक अध्ययन का स्वतन्त्र महत्व है अत. उनमें से कुछ एक का नामोल्लेख करना आवश्यक और प्रासगिक होगा ।

1.	पाण्डवविजयः	मुनि डूंगरमलजी
2.	रौहिणेय.	मुनि बुद्धमल्लजी
3.	माथेरान सुषमा	मुनि नगराजजी
4.	भाव-भास्कर काव्यम्	मुनि धनराजजी 'द्वितीय'
5.	बंकचूल चरित्रम	मुनि कन्हैयालालजी
6	कर्बुर काव्यम्	मुनि मोहनलालजी 'शार्दूल'

ज्योति स्फुलिंगा:—चन्दन मुनि द्वारा रचित भाव-प्रधान गद्य कृति है । कृतिकार का भावोद्वेलन वाणो का परिधान प्राप्त कर 56 विषयो के माध्यम से वाङ्मय के प्रागण में उपस्थित हुआ है । सहज हृदय से नि.सृत निर्व्याजभाव राशि मे अकृत्रिम लावण्य के दर्शन होते है ।

इस भावोद्वलन मे मात्र भावनात्मक उल्लास ही नही अपितु सत्कर्म और सदाचरण की पगडडिया भी अकित हैं । इसकी रचना वि. सं. 2020 में वम्बई प्रवास मे हुई थी ।

2. तुला-अतुला :—मुनि नयमलजी द्वारा समय-समय पर आशुकवित्व, समस्यापूर्ति तया अन्य प्रकार के रचित स्फुट श्लोको का सग्रह है । प्रस्तुत कृति के पाच विभाग हैं । इसका हिन्दी भाषा में अनुवाद मुनि दुलहराज जी ने किया हैं ।

मुकुलम् :—मुनि नथमलजी द्वारा रचित सस्कृत के लघु निवन्धों का सकलन है । इसमे प्राजल और प्रवाहपूर्ण भाषा मे छात्रोपयोगी 49 गद्यो का सकलन है । इसका विषय-निर्वाचन बड़ी गहराई से किया गया है । इसमें वर्णनात्मक और भावात्मक विषयों के साथ सवेदनात्मक विषयो का भी सन्धान किया गया है ।

प्रस्तुत कृति ज्ञान और अनुभव दोनों के विकास मे सहयोगी वन सकती है । इसकी रचना वि. सं. 2004 में पडिहारा (राजस्थान) में हुई थी । मुनि दुलहराजजी ने इसका हिन्दी भाषा मे अनुवाद किया है ।

उत्तिष्ठत ! जाग्रत ! :—मुनि बुद्धमल जी द्वारा लिखित 71 लघु निबन्धो का सग्रह है । प्रस्तुत निवन्धों में दृढ निश्चय, अटूट आत्म-विश्वास, गहरी स्पन्दनशीलता और अप्रतिम उदारता की भावनाएं प्रस्फुटित हुई है । साहित्य में हृदय की आवाज होती है । अत. वह सीधा हृदय का स्पर्श करता है । कुछ मानसिक कुठाएं इतनी गहरी होती है कि जिन्हें तोडना हर एक के लिये सहज नही होता किन्तु साहित्य के माध्यम से वे अनायास ही टूट जाती है । प्रस्तुत कृति मानसिक कुठाओ के घेरे को तोड कर आशा की आलोक रश्मि प्रदान करने में समर्थ वनी है।

इसकी रचना वि. सं. 2006-7 के बीच की है। इसका हिन्दी भाषा मे अनुवाद मुनि मोहनलाल जी 'शार्दूल' ने किया है। दिल्ली से प्रकाशित होने वाले 'साप्ताहिक हिन्दुस्तान' में ये निबध क्रमशः प्रकाशित हो चुके हैं । राजस्थान विश्वविद्यालय द्वारा यह कृति स्नातकीय (बी. ए. आनर्स) पाठ्यक्रम मे स्वीकृत की गई है ।

सस्कृत भाषा मे महाकवि जयदेव का 'गीतगोविन्द' तथा जैन-परम्परा मे उपाध्याय विनयविजय जी का 'शान्त-सुधारस' प्रसिद्ध संगीत-काव्य है । सगीत काव्यो की परम्परा को तेरापथ के साधु-साध्वियो ने अस्खलित रखा है । चन्दन मुनि का 'सवरसुधा' काव्य सगीत काव्यो की परम्परा में एक उत्कृष्ट कड़ी है । संवरतत्व पर आधारित विभिन्न लयो में संस्कृत भाषा की 20 गीतिकाए है । इसकी रचना वि. सं 2018 मे दीपावली के दिन बम्बई मे सम्पन्न हुई । मुनि मिट्ठालालजी ने इस का हिन्दी अनुवाद किया है। अन्य अनेक सगीतकाव्य जो अब तक अप्रकाशित हैं, वे भी भाव-प्रधान और रस-पूरित है । उनका उल्लेख भी यहां प्रासगिक और उपयोगी होगा :—

1 पचतीर्थी	चन्दनमुनि
2 गीतिसदोह:	मुनि दुलीचन्द जी 'दिनकर'
3 संस्कृत गीतिमाला	साध्वी सघमित्राजी

4 गीतिगुच्छः	साध्वी संघमित्राजी
5 गीतिसन्दोहः	साध्वी मंजुलाजी
6 गीतिगुम्फः	साध्वी कमलश्रीजी

स्तोत्र काव्य :—

जैन परम्परा में भी भक्ति रस से स्निग्ध और आत्म निवेदन से परिपूर्ण अनेक स्तोत्र काव्यों का प्रणयन हुआ है। स्तोत्र काव्यों का प्रारम्भ आचार्य समन्तभद्र ने स्वयंभू स्तोत्र, देवागम स्तोत्र आदि स्तुति रचनाओं से किया। सिद्धसेन दिवाकर का 'कल्याण-मन्दिर स्तोत्र' तथा मानतुंगाचार्य का भक्तामर स्तोत्र इस क्रम में विशेष उल्लेखनीय है। तेरापंथ के साधु-साध्वियों ने भी स्तोत्र काव्यों को पर्याप्त विकसित किया है। उन्होंने स्वतन्त्र स्तोत्र काव्यो की रचना भी की है और समस्या-पूर्तिमूलक स्तोत्र काव्यो की रचना भी की है। समस्या-पूर्तिमूलक स्तोत्र काव्यों में किसी अन्य काव्य के श्लोकों का एक-एक चरण लेकर उस पर नई श्लोक रचना के द्वारा नये काव्य की रचना की जाती है। इस पद्धति का प्रारम्भ जैन परम्परा में सर्व प्रथम आचार्य जिनसेन ने किया। उन्होंने कालिदास के मेघदूत के समस्त पद्यों के समग्र चरणों की पूर्ति करते हुए पार्श्वाभ्युदय की रचना की। मेघदूत जैसे शृंगार रस प्रधान काव्य की परिणति शान्त और संवेग रस मे करना कवि की श्लाघनीय प्रतिभा का परिणाम है।

मेघदूत के चतुर्थ चरण की पूर्ति में दो जैन काव्य और उपलब्ध हैं। उनमें पहला 'नेमिदूत' है और दूसरा 'शीलदूत' है। नेमिदूत की रचना विक्रम कवि ने तथा शीलदूत की रचना चारित्रसुन्दर गणि द्वारा हुई है।

तेरापंथ के साधु-साध्वियो में समस्या पूर्ति स्तोत्र काव्यों का प्रवाह भी एक साथ ही उमड़ा। वि. सं. 1980 में सर्व प्रथम मुनि नथमल जी (बागोर) ने सिद्धसेन दिवाकर रचित कल्याण-मन्दिर स्तोत्र की पादपूर्ति करते हुए दो 'कालू-कल्याण-मन्दिर' स्तोत्रो की रचना की। वि स 1989 में आचार्य श्री तुलसी, मुनि धनराज जी (प्रथम) और चन्दन मुनि ने भी कल्याण-मन्दिर स्तोत्र के पृथक्-पृथक् चरण लेकर कालू-कल्याण-मन्दिर स्तोत्रो की रचना की। यह क्रम क्रमशः विकसित होता गया और आगे चलकर मुनि कानमलजी ने मानतुंगाचार्य के भक्तामर स्तोत्र की पादपूर्ति करते हुए 'कालू भक्तामर' की रचना की तथा मुनि सोहनलाल जी (चूरू) ने कल्याण-मंदिर स्तोत्र और भक्तामर स्तोत्र की पादपूर्ति करते हुए क्रमश. कालू-कल्याण-मन्दिर और कालू-भक्तामर स्तोत्रो की रचना की।

स्वतंत्र स्तोत्र काव्यो में आचार्य श्री तुलसी द्वारा रचित 'चतुर्विंशति स्तवन' विशेष उल्लेखनीय है। इसकी कोमल पदावली में अन्त करण से सहज नि सृत भावो की अनुस्यूति है। इसकी रचना वि स 2000 के आस-पास हुई थी। इसके अतिरिक्त स्तोत्र काव्यो की एक लम्बी शृंखला उपलब्ध है जिसमें उल्लेखनीय है —

तेरापथी स्तोत्रम्	मुनि नथमल जी (बागोर)
जिन चतुर्विंशिका	" "
तुलसी-वचनामृतस्तोत्रम्	" "
देव-गुरु-धर्म द्वात्रिंशिका	मुनि धनराजजी 'प्रथम'
वीतराग स्तुति	चन्दन मुनि
गुरु-गौरवम्	मुनि डूंगरमल जी
देव-गुरु-स्तोत्रम्	मुनि सोहन लाल जी (चूरू)
मातृ-कीर्तनम्	"